ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

# श्रीनारदमहापुराण

## पूर्वभाग

## प्रथम पाद

### सिद्धाश्रममें शौनकादि महर्षियोंका सूतजीसे प्रश्न तथा सूतजीके द्वारा नारदपुराणकी महिमा और विष्णुभक्तिके माहात्म्यका वर्णन

ॐ वेदव्यासाय नमः

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।**
**देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ १॥**

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार करके भगवदीय उत्कर्षका प्रतिपादन करनेवाले इतिहास-पुराणका पाठ करे।

**वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।**
**उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम्॥ २॥**

जो लक्ष्मीके आनन्द-निकेतन भगवान् विष्णुके अवतार-स्वरूप हैं, उस स्नेहयुक्त करुणाकी निधि परात्पर परमानन्दस्वरूप पुरुषोत्तम वृन्दावनवासी श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।

**ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशा लोकसाधकाः।**
**तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे॥ ३॥**

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जिसके स्वरूप हैं तथा लोकपाल जिसके अंश हैं, उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूप आदिदेव परमात्माकी मैं आराधना करता हूँ।

नैमिषारण्य नामक विशाल वनमें महात्मा शौनक आदि ब्रह्मवादी मुनि मुक्तिकी इच्छासे तपस्यामें संलग्न थे। उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उनका भोजन नियमित था। वे सच्चे संत थे और सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ करते थे। आदिपुरुष सनातन भगवान् विष्णुका वे बड़ी भक्तिसे यजन-पूजन करते रहते थे। उनमें ईर्ष्याका नाम नहीं था। वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता और समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले थे। ममता और अहङ्कार उन्हें छू भी नहीं सके थे। उनका चित्त निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहता था। वे समस्त कामनाओंका त्याग करके सर्वथा निष्पाप हो गये थे। उनमें शम, दम आदि सद्गुणोंका सहज विकास था। काले मृगचर्मकी चादर ओढ़े, सिरपर जटा बढ़ाये तथा निरन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वे महर्षिगण

सदा परब्रह्म परमात्माका जप एवं कीर्तन करते थे। सूर्यके समान प्रतापी, धर्मशास्त्रोंका यथार्थ तत्त्व जाननेवाले वे महात्मा नैमिषारण्यमें तप करते थे। उनमेंसे कुछ लोग यज्ञोंद्वारा यज्ञपति भगवान् विष्णुका यजन करते थे। कुछ लोग ज्ञानयोगके साधनोंद्वारा ज्ञानस्वरूप श्रीहरिकी उपासना करते थे और कुछ लोग भक्तिके मार्गपर चलते हुए परा-भक्तिके द्वारा भगवान् नारायणकी पूजा करते थे।

एक समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उपाय जाननेकी इच्छासे उन श्रेष्ठ महात्माओंने एक बड़ी भारी सभा की। उसमें छब्बीस हजार ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले) मुनि सम्मिलित हुए थे। उनके शिष्य-प्रशिष्योंकी संख्या तो बतायी ही नहीं जा सकती। पवित्र अन्त:करणवाले वे महातेजस्वी महर्षि लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही एकत्र हुए थे। उनमें राग और मात्सर्यका सर्वथा अभाव था। वे शौनकजीसे यह पूछना चाहते थे कि इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र एवं पवित्र तीर्थ हैं। त्रिविध तापसे पीड़ित चित्तवाले मनुष्योंको मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। लोगोंको भगवान् विष्णुकी अविचल भक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा सात्त्विक, राजस और तामस—भेदसे तीन प्रकारके कर्मोंका फल किसके द्वारा प्राप्त होता है। उन मुनियोंको अपनेसे इस प्रकार प्रश्न करनेके लिये उद्यत देखकर उत्तम बुद्धिवाले शौनकजी विनयसे झुक गये और हाथ जोड़कर बोले।

**शौनकजीने कहा**—महर्षियो! पवित्र सिद्धाश्रम-तीर्थमें पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी रहते हैं। वे वहाँ अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विश्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया करते हैं। महामुनि सूतजी व्यासजीके शिष्य हैं। वे यह सब विषय अच्छी तरह जानते हैं। उनका नाम रोमहर्षण है। वे बड़े शान्त स्वभावके हैं और पुराणसंहिताके वक्ता हैं। भगवान् मधुसूदन प्रत्येक युगमें धर्मोंका ह्रास देखकर वेदव्यास-रूपसे प्रकट होते और एक ही वेदके अनेक विभाग करते हैं। विप्रगण! हमने सब शास्त्रोंमें यह सुना है कि वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। उन्हीं भगवान् व्यासने सूतजीको पुराणोंका उपदेश दिया है। परम बुद्धिमान् वेदव्यासजीके द्वारा भलीभाँति उपदेश पाकर सूतजी सब धर्मोंके ज्ञाता हो गये हैं। संसारमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुराणोंका ज्ञाता नहीं है; क्योंकि इस लोकमें सूतजी ही पुराणोंके तात्त्विक अर्थको जाननेवाले, सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं। उनका स्वभाव शान्त है। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता तो हैं ही, कर्म और भक्तिके विविध साधनोंको भी जानते हैं। मुनीश्वरो! वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रोंका जो सारभूत तत्त्व है, वह सब मुनिवर व्यासने जगत्के हितके लिये पुराणोंमें बता दिया है और ज्ञानसागर सूतजी उन सबका यथार्थ तत्त्व जाननेमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग उन्हींसे सब बातें पूछें।

इस प्रकार शौनकजीने मुनियोंसे जब अपना अभिप्राय निवेदन किया, तब वे सब महर्षि विद्वानोंमें श्रेष्ठ शौनकजीको आलिङ्गन करके बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देने लगे। तदनन्तर सब मुनि वनके भीतर पवित्र सिद्धाश्रमतीर्थमें गये और वहाँ उन्होंने देखा कि सूतजी अग्निष्टोम यज्ञके द्वारा अनन्त अपराजित भगवान् नारायणका यजन कर रहे हैं। सूतजीने उन विख्यात तेजस्वी महात्माओंका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने इस प्रकार पूछा—

**ऋषि बोले**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! हम आपके यहाँ अतिथिरूपमें आये हैं, अत: आपसे आतिथ्य-सत्कार पानेके अधिकारी

हैं। आप ज्ञान-दानरूपी पूजन-सामग्रीके द्वारा हमारा पूजन कीजिये। मुने! देवतालोग चन्द्रमाकी किरणोंसे निकला हुआ अमृत पीकर जीवन धारण करते हैं; परंतु इस पृथ्वीके देवता ब्राह्मण आपके मुखसे निकले हुए ज्ञानरूपी अमृतको पीकर तृप्त होते हैं। तात! हम यह जानना चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् किससे उत्पन्न हुआ? इसका आधार और स्वरूप क्या है? यह किसमें स्थित है और किसमें इसका लय होगा? भगवान् विष्णु किस साधनसे प्रसन्न होते हैं? मनुष्योंद्वारा उनकी पूजा कैसे की जाती है? भिन्न-भिन्न वर्णों और आश्रमोंका आचार क्या है! अतिथिकी पूजा कैसे की जाती है, जिससे सब कर्म सफल हो जाते हैं? वह मोक्षका उपाय मनुष्योंको कैसे सुलभ है, पुरुषोंको भक्तिसे कौन-सा फल प्राप्त होता है और भक्तिका स्वरूप क्या है? मुनिश्रेष्ठ सूतजी! ये सब बातें आप हमें इस प्रकार समझाकर बतावें कि फिर इनके विषयमें कोई संदेह न रह जाय, आपके अमृतके समान वचनोंको सुननेके लिये किसके मनमें श्रद्धा नहीं होगी?

**सूतजीने कहा**—महर्षियो! आप सब लोग

सुनें। आप लोगोंको जो अभीष्ट है, वह मैं बतलाता हूँ। सनकादि मुनीश्वरोंने महात्मा नारदजीसे जिसका वर्णन किया था, वह नारदपुराण आप सुनें। यह वेदार्थसे परिपूर्ण है—इसमें वेदके सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन किया गया है। यह समस्त पापोंकी शान्ति तथा दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है। दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला, धर्मसम्मत तथा भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। इसमें भगवान् नारायणकी पवित्र कथाका वर्णन है। यह नारदपुराण सब प्रकारके कल्याणकी प्राप्तिका हेतु है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका भी कारण है। इसके द्वारा महान् फलोंकी भी प्राप्ति होती है, यह अपूर्व पुण्यफल प्रदान करनेवाला है। आप सब लोग एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणको सुनें। महापातकों तथा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी महर्षि व्यासप्रोक्त इस दिव्य पुराणका श्रवण करके शुद्धिको प्राप्त होते हैं। इसके एक अध्यायका पाठ करनेसे अश्वमेध यज्ञका और दो अध्यायोंके पाठसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है। ब्राह्मणो! ज्येष्ठके महीनेमें पूर्णिमा तिथिको मूल नक्षत्रका योग होनेपर मनुष्य इन्द्रिय-संयमपूर्वक मथुरापुरीकी यमुनाके जलमें स्नान करके निराहार व्रत रहे और विधिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे तो इससे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको वह इस पुराणके तीन अध्यायोंका पाठ करके प्राप्त कर लेता है। इसके दस अध्यायोंका भक्तिभावसे श्रवण करके मनुष्य निर्वाण मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह पुराण कल्याण-प्राप्तिके साधनोंमें सबसे श्रेष्ठ है। पवित्र ग्रन्थोंमें इसका स्थान सर्वोत्तम है। यह बुरे स्वप्नोंका नाशक और परम पवित्र है। ब्रह्मर्षियो! इसका यत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये। यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका

भी पाठ कर ले तो वह महापातकोंके समूहसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

साधु पुरुषोंके समक्ष ही इस पुराणका वर्णन करना चाहिये; क्योंकि यह गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। भगवान् विष्णुके समक्ष, किसी पुण्य क्षेत्रमें तथा ब्राह्मण आदि द्विजातियोंके निकट इस पुराणकी कथा बाँचनी चाहिये। जिन्होंने काम-क्रोध आदि दोषोंको त्याग दिया है, जिनका मन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लगा है तथा जो सदाचारपरायण हैं, उन्हींको यह मोक्षसाधक पुराण सुनाना चाहिये। भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं। वे अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंकी समस्त पीड़ाओंका नाश कर देते हैं। श्रेष्ठ भक्तोंपर उनकी स्नेह-धारा सदा प्रवाहित होती रहती है। ब्राह्मणो! भगवान् विष्णु केवल भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं, दूसरे किसी उपायसे नहीं। उनके नामका बिना श्रद्धाके भी कीर्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो अविनाशी वैकुण्ठ धामको प्राप्त कर लेता है। भगवान् मधुसूदन संसाररूपी भयङ्कर एवं दुर्गम वनको दग्ध करनेके लिये दावानलरूप हैं। महर्षियो! भगवान् श्रीहरि अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंके सब पापोंका उसी क्षण नाश कर देते हैं। उनके तत्त्वका प्रकाश करनेवाले इस उत्तम पुराणका श्रवण अवश्य करना चाहिये। सुनने अथवा पाठ करनेसे भी यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है। ब्राह्मणो! जिसकी बुद्धि भक्तिपूर्वक इस पुराणके सुननेमें लग जाती है, वही कृतकृत्य है। वही सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ पण्डित है तथा उसीके द्वारा किये हुए तप और पुण्यको मैं सफल मानता हूँ; क्योंकि बिना तप और पुण्यके इस पुराणको सुननेमें प्रेम नहीं हो सकता। जो संसारका हित करनेवाले साधु पुरुष हैं, वे ही उत्तम कथाओंके कहने-सुननेमें प्रवृत्त होते हैं। पापपरायण दुष्ट पुरुष तो सदा दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंके साथ कलह करनेमें ही लगे रहते हैं। द्विजवरो! जो नराधम पुराणोंमें अर्थवाद होनेकी शङ्का करते हैं, उनके किये हुए समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। विप्रवरो! मोहग्रस्त मानव दूसरे-दूसरे कार्योंके साधनमें लगे रहते हैं, परंतु पुराणश्रवणरूप पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! जो मनुष्य बिना किसी परिश्रमके यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहता हो, उसको भक्तिभावसे निश्चय ही पुराणोंका श्रवण करना चाहिये। जिस पुरुषकी चित्तवृत्ति पुराण सुननेमें लग जाती है, उसके पूर्वजन्मोपार्जित समस्त पाप निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं। जो मानव सत्सङ्ग, देवपूजा, पुराणकथा और हितकारी उपदेशमें तत्पर रहता है, वह इस देहका नाश होनेपर भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी स्वरूप धारण करके उन्हींके परम धाममें चला जाता है। अतः विप्रवरो! आपलोग इस परम पवित्र नारदपुराणका श्रवण करें। इसके श्रवण करनेसे मनुष्यका मन भगवान् विष्णुमें संलग्न होता है और वह जन्म-मृत्यु तथा जरा आदिके बन्धनसे छूट जाता है।

आदिदेव भगवान् नारायण श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता तथा पुराणपुरुष हैं। उन्होंने अपने प्रभावसे सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त कर रखा है। वे भक्तजनोंके मनोवाञ्छित पदार्थको देनेवाले हैं। उनका स्मरण करके मनुष्य मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके इस जगत्‌की सृष्टि, संहार और पालन करते हैं, उन आदिदेव परम पुरुष परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थापित करके मनुष्य मुक्ति पा लेता है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंसे भी परम

उत्कृष्ट हैं, परात्पर पुरुष हैं, उपनिषदोंके द्वारा जिनके तत्त्वका ज्ञान होता है तथा जो अपने प्रेमी भक्तोंके समक्ष ही सगुण-साकार रूपमें प्रकट होते हैं, उन्हीं परमेश्वरकी समस्त पुराणों और वेदोंके द्वारा स्तुति की जाती है। अत: जो सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर, मोक्षस्वरूप, उपासनाके योग्य, अजन्मा, परम रहस्यरूप तथा समस्त पुरुषार्थोंके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुका स्मरण करके मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। धर्मात्मा, श्रद्धालु, मुमुक्षु, यति तथा वीतराग पुरुष ही यह पुराण सुननेके अधिकारी हैं। उन्हींको इसका उपदेश करना चाहिये। पवित्र देशमें, देवमन्दिरके सभामण्डपमें, पुण्यक्षेत्रमें, पुण्यतीर्थमें तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके समीप पुराणका प्रवचन करना चाहिये। जो मनुष्य पुराण-कथाके बीचमें दूसरेसे बातचीत करता है, वह भयङ्कर नरकमें पड़ता है। जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, वह सुनकर भी कुछ नहीं समझता। अत: एकचित्त होकर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये। जिसका मन इधर-उधर भटक रहा हो, उसे कथा-रसका आस्वादन कैसे हो सकता है? संसारमें चञ्चल चित्तवाले मनुष्यको क्या सुख मिलता है? अत: दु:खकी साधनभूत समस्त कामनाओंका त्याग करके एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। जिस किसी उपायसे भी यदि अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण किया जाय तो वे पातकी मनुष्यपर भी निस्संदेह प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक अविनाशी भगवान् विष्णुमें जिसकी भक्ति है, उसका जन्म सफल हो गया और मुक्ति उसके हाथमें है। विप्रवरो! भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।

## नारदजीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! सनत्कुमारजीने महात्मा नारदको किस प्रकार सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश किया तथा उन दोनोंका समागम किस तरह हुआ? वे दोनों ब्रह्मवादी महात्मा किस स्थानमें स्थित होकर भगवान्‌की महिमाका गान करते थे? यह हमें बताइये।

**सूतजी बोले**—महात्मा सनक आदि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उनमें न ममता है और न अहङ्कार। वे सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—इन्हीं नामोंसे उनकी ख्याति है। वे चारों महात्मा भगवान् विष्णुके भक्त हैं तथा निरन्तर परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहते हैं। उनका प्रभाव सहस्र सूर्योंके समान है। वे सत्यव्रती तथा मुमुक्षु हैं। एक दिनकी बात है, वे मेरुगिरिके शिखरपर ब्रह्माजीकी सभामें जा रहे थे। मार्गमें उन्हें भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गाजीका दर्शन हुआ। यह उन्हें अभीष्ट था। गङ्गाजीका दर्शन करके वे चारों महात्मा उनकी सीता नामवाली धाराके जलमें स्नान करनेको उद्यत हुए। द्विजवरो! इसी समय देवर्षि नारदमुनि भी वहाँ आ पहुँचे और अपने बड़े भाइयोंको वहाँ स्नानके लिये उद्यत देख उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उस समय वे प्रेम-भक्तिके साथ भगवान् मधुसूदनके नामोंका कीर्तन करने लगे—'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! कृष्ण!

विष्णु! आपको नमस्कार है। कमलनयन! कमलाकान्त! गङ्गाजनक! केशव! क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले देवेश्वर! दामोदर! आपको नमस्कार है। श्रीराम! विष्णो! नृसिंह! वामन! प्रद्युम्न! संकर्षण! वासुदेव! अज! अनिरुद्ध! निर्मल प्रकाशस्वरूप! मुरारे! आप सब प्रकारके भयसे निरन्तर हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार उच्च स्वरसे हरिनामका उच्चारण करते हुए उन अग्रज मुनियोंको प्रणाम करके वे उनके पास बैठे और उन्हींके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ स्नान भी किया। सम्पूर्ण लोकोंका पाप दूर करनेवाली गङ्गाकी धारा सीताके जलमें स्नान करके उन निष्पाप मुनियोंने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया। फिर जलसे बाहर आकर संध्योपासन आदि अपने नित्य-नियमका पालन किया। तत्पश्चात् वे भगवान् नारायणके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारकी कथा-वार्ता करने लगे। उस मनोरम गङ्गातटपर सनकादि मुनियोंने जब अपना नित्यकर्म समाप्त कर लिया, तब देवर्षि नारदने अनेक प्रकारकी कथा-वार्ताके बीच उनसे इस प्रकार प्रश्न किया।

**नारदजी बोले**—मुनिवरो! आपलोग सर्वज्ञ हैं। सदा भगवान्‌के भजनमें तत्पर रहते हैं। आप सब-के-सब सनातन भगवान् जगदीश्वर हैं और जगत्‌के उद्धारमें तत्पर रहते हैं। दीन-दुःखियोंके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाले आप महानुभावोंसे मैं कुछ प्रश्न पूछता हूँ, उसे बतायें। विद्वानो! मुझे भगवान्‌का लक्षण बताइये। यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जिनसे उत्पन्न हुआ है, भगवती गङ्गा जिनके चरणोंका धोवन हैं, वे भगवान् श्रीहरि कैसे जाने जाते हैं? मनुष्योंके मन, वाणी, शरीरसे किये हुए कर्म कैसे सफल होते हैं? सबको मान देनेवाले महात्माओ! ज्ञान और तपस्याका भी लक्षण बतलाइये। साथ ही अतिथि-पूजाका भी महत्त्व समझाइये, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। हे नाथ! इस प्रकारके और भी जो गुह्य सत्कर्म भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सबका मुझपर अनुग्रह करके यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

तदनन्तर नारदजी भगवान्‌की स्तुति करने लगे—'जो परसे भी परे परम प्रकाशस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण कार्य-कारणरूप जगत्‌में अन्तर्यामी-रूपसे निवास करते हैं तथा जो सगुण और निर्गुणरूप हैं, उनको नमस्कार है। जो मायासे रहित हैं, परमात्मा जिनका नाम है, माया जिनकी शक्ति है, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो योगियोंके ईश्वर, योगस्वरूप तथा योगगम्य हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र हेतु हैं, ज्ञानेश्वर, ज्ञेय, ज्ञाता तथा विज्ञानसम्पत्तिरूप हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। जो ध्यानस्वरूप, ध्यानगम्य तथा ध्यान करनेवाले साधकोंके पापका नाश करनेवाले हैं; जो ध्यानके ईश्वर श्रेष्ठ बुद्धिसे युक्त तथा ध्याता, ध्येयस्वरूप हैं; उन परमेश्वरको नमस्कार है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा ब्रह्मा आदि देवता,

सिद्ध, यक्ष, असुर और नागगण जिनकी शक्तिसे संयुक्त होकर ही कुछ करनेमें समर्थ होते हैं, जो अजन्मा, पुराणपुरुष, सत्यस्वरूप तथा स्तुतिके अधीश्वर हैं, उन परमात्माको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मन्! जो ब्रह्माजीका रूप धारण करके संसारकी सृष्टि और विष्णुरूपसे जगत्का पालन करते हैं तथा कल्पका अन्त होनेपर जो रुद्ररूप धारण करके संहारमें प्रवृत्त होते हैं और एकार्णवके जलमें अक्षयवटके पत्रपर शिशुरूपसे अपने चरणारविन्दका रसपान करते हुए शयन करते हैं, उन अजन्मा परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामका संकीर्तन करनेसे गजराज ग्राहके भयानक बन्धनसे मुक्त हो गया, जो प्रकाशस्वरूप देवता अपने परम पदमें नित्य विराजमान रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो शिवकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंके लिये शिवस्वरूप और विष्णुका ध्यान करनेवाले भक्तोंके लिये विष्णुस्वरूप हैं, जो संकल्पपूर्वक अपने देहधारणमें स्वयं ही हेतु हैं, उन नित्य परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो केशी तथा नरकासुरका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने बाल्यावस्थामें अपने हाथके अग्रभागसे गिरिराज गोवर्धनको धारण किया था, पृथ्वीके भारका अपहरण जिनका स्वाभाविक विनोद है, उन दिव्य शक्तिसम्पन्न भगवान् वासुदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने खम्भमें भयङ्कर नृसिंहरूपसे अवतीर्ण हो पर्वतकी चट्टानके समान कठोर दैत्य हिरण्यकशिपुके वक्ष:स्थलको विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा की; उन अजन्मा परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आकाश आदि तत्त्वोंसे विभूषित, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध, निरञ्जन, नित्य, अमेयतत्त्व तथा कर्मरहित हैं, उन विश्वविधाता पुराणपुरुष परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वायु, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, असुर तथा देवता आदि अपने विभिन्न स्वरूपोंके साथ स्थित हैं, जो एक अद्वितीय परमेश्वर हैं, उन आदिपुरुष परमात्माका मैं भजन करता हूँ। यह भेदयुक्त सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, जिनमें स्थित है और संहारकालमें जिनमें लीन हो जायगा, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो विश्वरूपमें स्थित होकर यहाँ आसक्त-से प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तवमें जो असङ्ग और परिपूर्ण हैं, उन परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जो भगवान् सबके हृदयमें स्थिर होकर भी मायासे मोहित चित्तवालोंके अनुभवमें नहीं आते तथा जो परम शुद्धस्वरूप हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ। जो लोग सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहकर ध्यानयोगमें अपने मनको लगाये हुए हैं, उन्हें जो सर्वत्र ज्ञानस्वरूप प्रतीत होते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। क्षीरसागरमें अमृतमन्थनके समय जिन्होंने देवताओंके हितके लिये मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था, उन कूर्म-रूपधारी भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिन अनन्त परमात्माने अपनी दाढ़ोंके अग्रभागद्वारा एकार्णवके जलसे इस पृथ्वीका उद्धार करके सम्पूर्ण जगत्को स्थापित किया, उन वाराह-रूपधारी भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करते हुए जिन्होंने पर्वतकी शिलाके समान अत्यन्त कठोर वक्षवाले हिरण्यकशिपु दैत्यको विदीर्ण करके मार डाला था, उन भगवान् नृसिंहको मैं नमस्कार करता हूँ। विरोचनकुमार बलिसे तीन पग भूमि पाकर जिन्होंने दो ही पगोंसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको माप लिया और उसे पुन: देवताओंको समर्पित कर

दिया, उन अपराजित भगवान् वामनको मैं नमस्कार करता हूँ। हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुनके अपराधसे जिन्होंने समस्त क्षत्रियकुलका इक्कीस बार संहार किया, उन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको नमस्कार है। जिन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हो वानरोंकी सेनासे घिरकर राक्षसदलका संहार किया था, उन भगवान् श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने श्रीबलराम और श्रीकृष्ण—इन दो स्वरूपोंको धारण करके पृथ्वीका भार उतारा और अपने यादवकुलका संहार कर दिया, उन भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ। भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंमें व्याप्त अपने हृदयमें साक्षात्कार करनेवाले निर्मल बुद्धरूप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। कलियुगके अन्तमें अशुद्ध चित्तवाले पापियोंको तलवारकी तीखी धारसे मारकर जिन्होंने सत्ययुगके आदिमें धर्मकी स्थापना की है, उन कल्किस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार जिनके अनेक स्वरूपोंकी गणना बड़े-बड़े विद्वान् करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकते, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामकी महिमाका पार पानेमें सम्पूर्ण देवता, असुर और मनुष्य भी समर्थ नहीं हैं, उन परमेश्वरकी मैं एक क्षुद्र जीव किस प्रकार स्तुति करूँ। महापातकी मानव जिनके नामका श्रवण करनेमात्रसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान्‌की स्तुति मुझ-जैसा अल्प-बुद्धिवाला व्यक्ति कैसे कर सकता है। जिनके नामका जिस किसी प्रकार कीर्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर भी पापी पुरुष अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं और शुद्धात्मा मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं, निष्पाप योगीजन अपने मनको बुद्धिमें स्थापित करके जिनका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। सांख्ययोगी सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे परिपूर्ण हुए जिन जरारहित आदिदेव श्रीहरिका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप भगवान्‌का मैं भजन करता हूँ। सम्पूर्ण जीव जिनके स्वरूप हैं, जो शान्तस्वरूप हैं, सबके साक्षी, ईश्वर, सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित तथा भावरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। भूत और भविष्य चराचर जगत्‌को व्याप्त करके जो उससे दस अङ्गुल ऊपर स्थित हैं, उन जरा-मृत्युरहित परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, महान्‌से भी अत्यन्त महान् तथा गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य हैं, उन अजन्मा भगवान्‌को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। जो परमेश्वर ध्यान, चिन्तन, पूजन, श्रवण अथवा नमस्कारमात्र कर लेनेपर भी जीवको अपना परम पद दे देते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वरकी नारदजीके स्तुति करनेपर नारदसहित वे सनन्दन आदि मुनीश्वर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। जो मनुष्य प्रातः-काल उठकर परम पुरुष भगवान् विष्णुके उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

## सृष्टिक्रमका संक्षिप्त वर्णन; द्वीप, समुद्र और भारतवर्षका वर्णन, भारतमें सत्कर्मानुष्ठानकी महत्ता तथा भगवदर्पणपूर्वक कर्म करनेकी आज्ञा

**नारदजीने पूछा**—सनकजी! आदिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्मा आदिकी किस प्रकार सृष्टि की? यह बात मुझे बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

**श्रीसनकजीने कहा**—देवर्षे! भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वव्यापी तथा निरञ्जन हैं। उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। स्वयंप्रकाश, जगन्मय महाविष्णुने आदिसृष्टिके समय भिन्न-भिन्न गुणोंका आश्रय लेकर अपनी तीन मूर्तियोंको प्रकट किया। पहले भगवान्‌ने अपने दाहिने अङ्गसे जगत्‌की सृष्टिके लिये प्रजापति ब्रह्माजीको प्रकट किया। फिर अपने मध्य अङ्गसे जगत्‌का संहार करनेवाले रुद्र-नामधारी शिवको उत्पन्न किया। साथ ही इस जगत्‌का पालन करनेके

लिये उन्होंने अपने बायें अङ्गसे अविनाशी भगवान् विष्णुको अभिव्यक्त किया। जरा-मृत्युसे रहित उन आदिदेव परमात्माको कुछ लोग 'शिव' नामसे पुकारते हैं। कोई सदा सत्यरूप 'विष्णु' कहते हैं और कुछ लोग उन्हें 'ब्रह्मा' बताते हैं। भगवान् विष्णुकी जो पराशक्ति है, वही जगत्‌रूपी कार्यका सम्पादन करनेवाली है। भाव और अभाव—दोनों उसीके स्वरूप हैं। वही भावरूपसे विद्या और अभावरूपसे अविद्या कहलाती है। जिस समय यह संसार महाविष्णुसे भिन्न प्रतीत होता है, उस समय अविद्या सिद्ध होती है; वही दु:खका कारण होती है। नारदजी! जब तुम्हारी ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूपकी उपाधि नष्ट हो जायगी और सब रूपोंमें एकमात्र भगवान् महाविष्णु ही हैं—ऐसी भावना बुद्धिमें होने लगेगी, उस समय विद्याका प्रकाश होगा। वह अभेद-बुद्धि ही विद्या कहलाती है। इस प्रकार महाविष्णुकी मायाशक्ति उनसे भिन्न प्रतीत होनेपर जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनको देनेवाली होती है और वही यदि अभेद-बुद्धिसे देखी जाय तो संसार-बन्धनका नाश करनेवाली बन जाती है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् विष्णुकी शक्तिसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये जङ्गम—जो चेष्टा करता है और स्थावर—जो चेष्टा नहीं करता, वह सम्पूर्ण विश्व भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। जैसे घट, मठ आदि भिन्न-भिन्न उपाधियोंके कारण आकाश भिन्न-भिन्न रूपमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् अविद्यारूप उपाधिके योगसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। मुने! जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्‌में व्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी शक्ति भी व्यापक है; जैसे अङ्गारमें रहनेवाली दाहशक्ति अपने आश्रयमें व्याप्त होकर स्थित रहती है। कुछ लोग भगवान्‌की उस शक्तिको लक्ष्मी कहते हैं तथा कुछ लोग उसे

उमा और भारती (सरस्वती) आदि नाम देते हैं। भगवान् विष्णुकी वह परा शक्ति जगत्की सृष्टि आदि करनेवाली है। वह व्यक्त और अव्यक्तरूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित है। जो भगवान् अखिल विश्वकी रक्षा करते हैं, वे ही परम पुरुष नारायण देव हैं। अतः जो परात्पर अविनाशी तत्त्व है, परमपद भी वही है; वही अक्षर, निर्गुण, शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं सनातन परमात्मा हैं; वे परसे भी परे हैं। परमानन्दस्वरूप परमात्मा सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित हैं। एकमात्र ज्ञानयोगके द्वारा उनके तत्त्वका बोध होता है। वे सबसे परे हैं। सत्, चित् और आनन्द ही उनका स्वरूप है। वे स्वयं प्रकाशमय परमात्मा नित्य शुद्ध स्वरूप हैं तथापि तत्त्व आदि गुणोंके भेदसे तीन स्वरूप धारण करते हैं। उनके ये ही तीनों स्वरूप जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके कारण होते हैं। मुने! जिस स्वरूपसे भगवान् इस जगत्की सृष्टि करते हैं, उसीका नाम ब्रह्मा है। ये ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, वे ही आनन्दस्वरूप परमात्मा विष्णु इस जगत्का पालन करते हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत्के अन्तर्यामी आत्मा हैं। समस्त संसारमें वे ही व्याप्त हो रहे हैं। वे सबके साक्षी तथा निरञ्जन हैं। वे ही भिन्न और अभिन्न रूपमें स्थित परमेश्वर हैं। उन्हींकी शक्ति महामाया है, जो जगत्की सत्ताका विश्वास धारण कराती है। विश्वकी उत्पत्तिका आदिकारण होनेसे विद्वान् पुरुष उसे प्रकृति कहते हैं। आदिसृष्टिके समय लोकरचनाके लिये उद्यत हुए भगवान् महाविष्णुके प्रकृति, पुरुष और काल—ये तीन रूप प्रकट होते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मरूपसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, जो विशुद्ध परम धाम कहलाता है, वही विष्णुका परम पद है। इसी प्रकार वे शुद्ध, अक्षर, अनन्त परमेश्वर ही कालरूपमें स्थित हैं। वे ही सत्त्व, रज, तम-रूप तीनों गुणोंमें विराज रहे हैं तथा गुणोंके आधार भी वे ही हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा ही इस जगत्के आदि-स्रष्टा हैं। जगद्गुरु पुरुषोत्तमके समीप स्थित हुई प्रकृति जब क्षोभ (चञ्चलता)-को प्राप्त हुई, तो उससे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ; जिसे समष्टि-बुद्धि भी कहते हैं। फिर उस महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारसे सूक्ष्म तन्मात्राएँ और एकादश इन्द्रियाँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् तन्मात्राओंसे पञ्च महाभूत प्रकट हुए, जो इस स्थूल जगत्के कारण हैं। नारदजी! उन भूतोंके नाम हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। ये क्रमशः एक-एकके कारण होते हैं।

तदनन्तर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने तामस सर्गकी रचना की। तिर्यग् योनिवाले पशु-पक्षी तथा मृग आदि जन्तुओंको उत्पन्न किया। उस सर्गको पुरुषार्थका साधक न मानकर ब्रह्माजीने अपने सनातन स्वरूपसे देवताओंको (सात्त्विक सर्गको) उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने मनुष्योंकी (राजस सर्गकी) सृष्टि की। इसके बाद दक्ष आदि पुत्रोंको जन्म दिया, जो सृष्टिके कार्यमें तत्पर हुए। ब्रह्माजीके इन पुत्रोंसे देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—ये सात लोक क्रमशः एकके ऊपर एक स्थित हैं। विप्रवर! अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात पाताल क्रमशः एकके नीचे एक स्थित हैं। इन सब लोकोंमें रहनेवाले लोकपालोंको भी ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। भिन्न-भिन्न देशोंके कुल पर्वतों और नदियोंकी भी सृष्टि की तथा वहाँके निवासियोंके लिये जीविका आदि सब आवश्यक वस्तुओंकी भी यथायोग्य व्यवस्था की। इस पृथ्वीके मध्यभागमें

मेरु पर्वत है, जो समस्त देवताओंका निवासस्थान है। जहाँ पृथ्वीकी अन्तिम सीमा है, वहाँ लोकालोक पर्वतकी स्थिति है। मेरु तथा लोकालोक पर्वतके बीचमें सात समुद्र और सात द्वीप हैं। विप्रवर! प्रत्येक द्वीपमें सात-सात मुख्य पर्वत तथा निरन्तर जल प्रवाहित करनेवाली अनेक विख्यात नदियाँ भी हैं। वहाँके निवासी मनुष्य देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीपोंके नाम हैं। वे सब-की-सब देवभूमियाँ हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध तथा स्वादु जलसे भरे हुए वे समुद्र उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन द्वीपों और समुद्रोंको क्रमशः पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूने विस्तारवाले जानना चाहिये। ये सब लोकालोक पर्वततक स्थित हैं। क्षार समुद्रसे उत्तर और हिमालय पर्वतसे दक्षिणके प्रदेशको 'भारतवर्ष' समझना चाहिये। वह समस्त कर्मोंका फल देनेवाला है।

नारदजी! भारतवर्षमें मनुष्य जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारके कर्म करते हैं, उनका फल भोगभूमियोंमें क्रमशः भोगा जाता है। विप्रवर! भारतवर्षमें किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म है, उसका क्षणभङ्गुर (बचा हुआ) फल जो जीवोंद्वारा अन्यत्र भोगा जाता है। आज भी देवतालोग भारतभूमिमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं, 'हमलोग कब संचित किये हुए महान् अक्षय, निर्मल एवं शुभ पुण्यके फलस्वरूप भारतवर्षकी भूमिपर जन्म लेंगे और कब वहाँ महान् पुण्य करके परम पदको प्राप्त होंगे। अथवा वहाँ नाना प्रकारके दान, भाँति-भाँतिके यज्ञ या तपस्याके द्वारा जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना करके उनके नित्यानन्दमय अनामय पदको कब प्राप्त कर लेंगे।' नारदजी! जो भारतभूमिमें जन्म लेकर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग जाता है, उसके समान पुण्यात्मा तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन जिसका स्वभाव बन जाता है, जो भगवद्भक्तोंका प्रिय होता है अथवा जो महापुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह देवताओंके लिये भी वन्दनीय है। जो नित्य भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर है अथवा हरि-भक्तोंके स्वागत-सत्कारमें संलग्न रहता है और उन्हें भोजन कराकर बचे हुए (श्रेष्ठ) अन्नका स्वयं सेवन करता है, वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो अहिंसा आदि धर्मोंके पालनमें तत्पर होकर शान्तभावसे रहता है और भगवान्के 'नारायण, कृष्ण तथा वासुदेव' आदि नामोंका उच्चारण करता है, वह श्रेष्ठ इन्द्रादि देवताओंके लिये भी वन्दनीय है। जो मानव 'शिव, नीलकण्ठ तथा शङ्कर' आदि नामोंद्वारा भगवान् शिवका स्मरण करता तथा सदा सम्पूर्ण जीवोंके हितमें संलग्न रहता है, वह (भी) देवताओंके लिये पूजनीय माना गया है। जो गुरुका भक्त, शिवका ध्यान करनेवाला, अपने आश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, दूसरोंके दोष न देखनेवाला, पवित्र तथा कार्यकुशल है, वह भी देवेश्वरोंद्वारा पूज्य होता है। जो ब्राह्मणोंका हित-साधन करता है, वर्णधर्म और आश्रमधर्ममें श्रद्धा रखता है तथा सदा वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर होता है, उसे 'पङ्क्तिपावन' मानना चाहिये। जो देवेश्वर भगवान् नारायण तथा शिवमें कोई भेद नहीं देखता, वह ब्रह्माजीके लिये भी सदा वन्दनीय है; फिर हमलोगोंकी तो बात ही क्या है? नारदजी! जो गौओंके प्रति क्षमाशील—उनपर क्रोध न करनेवाला, ब्रह्मचारी, परायी निन्दासे दूर रहनेवाला तथा संग्रहसे रहित है, वह भी देवताओंके लिये

पूजनीय है। जो चोरी आदि दोषोंसे पराङ्मुख है, दूसरोंद्वारा किये हुए उपकारको याद रखता है, सत्य बोलता है, बाहर और भीतरसे पवित्र रहता है तथा दूसरोंकी भलाईके कार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह देवता और असुर सबके लिये पूजनीय होता है। जिसकी बुद्धि वेदार्थ श्रवण करने, पुराणकी कथा सुनने तथा सत्सङ्गमें लगी होती है, वह भी इन्द्रादि देवताओंद्वारा वन्दनीय होता है। जो भारतवर्षमें रहकर श्रद्धापूर्वक पूर्वोक्त प्रकारके अनेकानेक सत्कर्म करता रहता है, वह हमलोगोंके लिये वन्दनीय है।

जो शीघ्र ही इन पुण्यात्माओंमेंसे किसी एककी श्रेणीमें अपने-आपको ले जानेकी चेष्टा नहीं करता, वह पापाचारी एवं मूढ़ ही है; उससे बढ़कर बुद्धिहीन दूसरा कोई नहीं है। जो भारतवर्षमें जन्म लेकर पुण्यकर्मसे विमुख होता है, वह अमृतका घड़ा छोड़कर विषके पात्रको अपनाता है। मुने! जो मनुष्य वेदों और स्मृतियोंमें बताये धर्मोंका आचरण करके अपने-आपको पवित्र नहीं करता, वही आत्महत्यारा तथा पापियोंका अगुआ है। मुनीश्वर! जो कर्मभूमि भारतवर्षका आश्रय लेकर धर्मका आचरण नहीं करता, वह वेदज्ञ महात्माओंद्वारा सबसे 'अधम' कहा गया है। जो शुभ-कर्मोंका परित्याग करके पाप-कर्मोंका सेवन करता है, वह कामधेनुको छोड़कर आकका दूध खोजता फिरता है। विप्रवर! इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवता भी अपने भोगोंके नाशसे भयभीत होकर भारतवर्षके भूभागकी प्रशंसा किया करते हैं। अतः भारतवर्षको सबसे अधिक पवित्र तथा उत्तम समझना चाहिये। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ तथा सब कर्मोंका फल देनेवाला है। जो इस पुण्यमय भूखण्डमें सत्कर्म करनेके लिये उद्यत होता है, उसके समान भाग्यशाली तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। जो इस भारतवर्षमें जन्म लेकर अपने कर्मबन्धनको काट डालनेकी चेष्टा करता है, वह नररूपमें छिपा हुआ साक्षात् 'नारायण' है। जो परलोकमें उत्तम फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसे आलस्य छोड़कर सत्कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। उन कर्मोंको भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको समर्पित कर देनेपर उनका फल अक्षय माना गया है। यदि कर्मफलोंकी ओरसे मनमें वैराग्य हो तो अपने पुण्यकर्मको भगवान् विष्णुमें प्रेम होनेके लिये उनके चरणोंमें समर्पित कर दे। ब्रह्मलोकतलके सभी लोक पुण्यक्षय होनेपर पुनर्जन्म देनेवाले होते हैं; परंतु जो कर्मोंका फल नहीं चाहता, वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान्की प्रसन्नताके लिये वेद-शास्त्रोंद्वारा बताये हुए आश्रमानुकूल कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जिसने कर्म-फलकी कामना त्याग दी है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, उसे विधिपूर्वक कर्म अवश्य करना चाहिये। जो अपने वर्ण और आश्रमके कर्म छोड़ देता है, वह विद्वान् पुरुषोंद्वारा पतित कहा जाता है। नारदजी! सदाचारपरायण ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेजके साथ वृद्धिको प्राप्त होता है। यदि वह भगवान्के चरणोंमें भक्ति रखता है तो उसपर भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न होते हैं। समस्त धर्मोंके फल भगवान् वासुदेव हैं, तपस्याका चरम लक्ष्य भी वासुदेव ही हैं, वासुदेवके तत्त्वको समझ लेना ही उत्तम ज्ञान है तथा वासुदेवको प्राप्त कर लेना ही उत्तम गति है। ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् वासुदेवस्वरूप है, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। वे ही ब्रह्मा और शिव हैं, वे ही देवता, असुर तथा यज्ञरूप हैं, वे ही यह ब्रह्माण्ड भी हैं। उनसे भिन्न अपनी पृथक् सत्ता

रखनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जिनसे पर या अपर कोई वस्तु नहीं है तथा जिनसे अत्यन्त लघु और महान् भी कोई नहीं है, उन्हीं भगवान् विष्णुने इस विचित्र विश्वको व्याप्त कर रखा है, स्तुति करनेयोग्य उन देवाधिदेव श्रीहरिको सदा प्रणाम करना चाहिये[1]।

## श्रद्धा-भक्ति, वर्णाश्रमोचित आचार तथा सत्सङ्गकी महिमा, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान्‌का मुनिको दर्शन तथा वरदान देना

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारद! श्रद्धापूर्वक आचरणमें लाये हुए सब धर्म मनोवाञ्छित फल देनेवाले होते हैं। श्रद्धासे सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धासे ही भगवान् श्रीहरि संतुष्ट होते हैं[2]। भक्तियोगका साधन भक्तिपूर्वक ही करना चाहिये तथा सत्कर्मोंका अनुष्ठान भी श्रद्धा-भक्तिसे ही करना चाहिये। विप्रवर नारद! श्रद्धाहीन कर्म कभी सिद्ध नहीं होते। जैसे सूर्यका प्रकाश समस्त जीवोंकी चेष्टामें कारण होता है, उसी प्रकार भक्ति सम्पूर्ण सिद्धियोंका परम कारण है। जैसे जल सम्पूर्ण लोकोंका जीवन माना गया है, उसी प्रकार भक्ति सब प्रकारकी सिद्धियोंका जीवन है। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वीका आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्तिका सहारा लेकर सब कार्योंका साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुषको धर्मका लाभ होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धासे ही कामनाओंकी सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है[3] मुनिश्रेष्ठ! दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी यदि भक्तिसे रहित हैं तो उनके द्वारा भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते हैं। मेरु पर्वतके बराबर सुवर्णकी करोड़ों सहस्र राशियोंका दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्तिके किया जाय तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीरको सुखाना मात्र है; बिना भक्ति जो हविष्यका हवन किया जाता है, वह राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ है, श्रद्धा-भक्तिके साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा-सा भी सत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त कालतक अक्षय सुख देनेवाला होता है। ब्रह्मन्! वेदोक्त अश्वमेध यज्ञका एक सहस्र बार अनुष्ठान क्यों न किया जाय, यदि वह श्रद्धा-भक्तिसे रहित है तो सब-का-सब निष्फल होता है। भगवान्‌की उत्तम भक्ति मनुष्योंके लिये कामधेनुके समान मानी गयी है; उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विषका पान

---

१. वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः॥
वासुदेवात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते॥
स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः। स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम्॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान्। व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम्॥
(ना० पु० ३। ८०—८३)

२. श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः। श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥
(ना० पु०४। १)

३. श्रद्धावाँल्लभते धर्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्। श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्॥
(ना० पु० ४। ६)

करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है! ब्रह्मपुत्र नारदजी! इस असार संसारमें ये तीन बातें ही सार हैं—'भगवद्भक्तोंका सङ्ग, भगवान् विष्णुकी भक्ति और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेका स्वभाव'[1]। ब्रह्मन्! जिनके मनमें दूसरोंके दोष देखनेकी प्रवृत्ति है, उनके किये हुए भजन-दान आदि सभी कर्मोंको निष्फल जानो। भगवान् विष्णु उनसे बहुत दूर हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर मन-ही-मन संतप्त होते हैं, जिनका चित्त पाखण्डपूर्ण आचारोंमें ही लगता है, वे व्यर्थ कर्म करनेवाले हैं। भगवान् श्रीहरि उनसे बहुत दूर हैं। जो बड़े-बड़े धर्मोंके विषयमें प्रश्न करते हैं, किंतु उन धर्मोंको झूठा बताते हैं और धर्म-कर्मके विषयमें जिनका मन श्रद्धा-भक्तिसे रहित है, ऐसे लोगोंसे भगवान् विष्णु बहुत दूर हैं। धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है और वेद साक्षात् परम पुरुष नारायणका स्वरूप है। अतः वेदोंमें जो अश्रद्धा रखनेवाले हैं, उनसे भगवान् बहुत दूर हैं[2]। जिसके दिन धर्मानुष्ठानके बिना ही आते और चले जाते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान साँस लेता हुआ भी जीवित नहीं है। ब्रह्मनन्दन! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ सनातन हैं। श्रद्धालु पुरुषोंको ही इनकी सिद्धि होती है; श्रद्धाहीनको नहीं[3]। जो मानव अपने वर्णाश्रमोचित आचारका उल्लङ्घन किये बिना ही भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर है, वह उस वैकुण्ठधाममें जाता है, जिसका दर्शन बड़े-बड़े ज्ञानी भक्तोंको सुलभ होता है। मुनीश्वर! जो अपने आश्रमके अनुकूल वेदोक्त धर्मोंका पालन करते हुए भगवान् विष्णुके भजन-ध्यानमें लगा रहता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी भगवान् विष्णु हैं। अतः जो अपने आश्रमके आचारमें संलग्न है, उसके द्वारा भगवान् श्रीहरि सर्वदा पूजित होते हैं[4]। जो छहों अङ्गोंसहित वेदों और उपनिषदोंका ज्ञाता होकर भी अपने वर्णाश्रमोचित आचारसे गिरा हुआ है, उसीको पतित समझना चाहिये; क्योंकि वह धर्म-कर्मसे भ्रष्ट हो चुका है। भगवान्की भक्तिमें तत्पर तथा भगवान् विष्णुके ध्यानमें लीन होकर भी जो अपने वर्णाश्रमोचित आचारसे भ्रष्ट हो, उसे पतित कहा जाता है। द्विजश्रेष्ठ! वेद, भगवान् विष्णुकी भक्ति अथवा शिवभक्ति भी आचार-भ्रष्ट मूढ़ पुरुषको पवित्र नहीं करती है। ब्रह्मन्! पुण्यक्षेत्रोंमें जाना, पवित्र तीर्थोंका सेवन करना अथवा भाँति-भाँतिके यज्ञोंका अनुष्ठान भी आचार-भ्रष्ट पुरुषकी रक्षा नहीं करता। आचारसे स्वर्ग प्राप्त होता है, आचारसे सुख मिलता है और आचारसे ही मोक्ष सुलभ होता है; आचारसे क्या नहीं मिलता?

साधुश्रेष्ठ! सम्पूर्ण आचारोंका, समस्त योगोंका तथा स्वयं हरिभक्तिका भी मूल कारण भक्ति ही मानी गयी है। सबको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु भक्तिसे ही पूजित होते हैं। अतः भक्ति सम्पूर्ण लोकोंकी माता कही जाती है। जैसे सब जीव माताका ही आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार समस्त धार्मिक

१. हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता। तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज। भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता॥
(ना० पु० ४। १२-१३)

२. वेदप्रणिहितो धर्मो वेदो नारायणः परः। तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषां दूरतरो हरिः॥ (ना० पु० ४। १७)

३. धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः। श्रद्धावतां हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन॥ (ना० पु० ४। १९)

४. आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः। आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः॥ (ना० पु० ४। २२)

पुरुष भक्तिका आश्रय लेकर जीते हैं। नारदजी! अपने वर्ण और आश्रमके आचारका पालन करनेमें लगे हुए पुरुषको यदि भगवान् विष्णुकी भक्ति प्राप्त हो जाय तो तीनों लोकोंमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। भक्तिसे कर्मोंकी सिद्धि होती है, उन कर्मोंसे भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं, उनके संतुष्ट होनेपर ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे मोक्ष मिलता है। भक्ति तो भगवद्भक्तोंके सङ्गसे प्राप्त होती है, किंतु भगवद्भक्तोंका सङ्ग मनुष्योंको पूर्वजन्मोंके संचित पुण्यसे ही मिलता है। जो वर्णाश्रमोचित कर्तव्यके पालनमें तत्पर, भगवद्भक्तिके सच्चे अभिलाषी तथा काम, क्रोध आदि दोषोंसे मुक्त हैं, वे ही सम्पूर्ण लोकोंको शिक्षा देनेवाले संत हैं[1]। ब्रह्मन्! जो पुण्यात्मा अथवा जितेन्द्रिय नहीं हैं, उन्हें परम उत्तम सत्सङ्गकी प्राप्ति नहीं होती। यदि सत्सङ्ग मिल जाय तो उसमें पूर्वजन्मोंके संचित पुण्यको ही कारण जानना चाहिये। जिसके पूर्वजन्मोंमें किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, उसीको सत्सङ्ग सुलभ होता है ; अन्यथा उसकी प्राप्ति असम्भव है। सूर्य अपनी किरणोंके समूहसे दिनमें बाहरके अन्धकारका नाश करते हैं, किंतु संत-महात्मा अपने उत्तम वचनरूपी किरणोंके समुदायसे सदा भीतरके अज्ञानान्धकारका नाश करते रहते हैं। संसारमें भगवद्भक्तिके लिये लालायित रहनेवाले पुरुष दुर्लभ हैं; उनका सङ्ग जिसे प्राप्त होता है, उसे सनातन शान्ति सुलभ होती है।

**नारदजीने पूछा**—भगवद्भक्त पुरुषोंका क्या लक्षण है? वे कैसा कर्म करते हैं तथा उन्हें कैसे लोककी प्राप्ति होती है? यह सब आप यथार्थरूपसे बताइये। सनकजी! आप सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके भक्त हैं। अतः आप ही ये सब बातें बतानेमें समर्थ हैं। आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

**सनकजीने कहा**—ब्रह्मन्! योगनिद्रासे मुक्त होनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने बुद्धिमान् महात्मा मार्कण्डेयजीको जिस परम गोपनीय रहस्यका उपदेश किया था, वही तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो। वे जो परम ज्योतिःस्वरूप देवाधिदेव सनातन भगवान् विष्णु हैं, वे ही जगत्-रूपमें प्रकट होते हैं। इस जगत्के स्रष्टा भी वे ही हैं। भगवान् शिव तथा ब्रह्माजी भी उन्हींके स्वरूप हैं। वे प्रलयकालमें भयंकर रुद्ररूपसे प्रकट होते हैं और समस्त ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बनाते हैं। स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् नष्ट होकर जब एकार्णवके जलमें विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् विष्णु ही वटवृक्षके पत्रपर शिशुरूपसे शयन करते हैं। उनका एक-एक रोम असंख्य ब्रह्मा आदिसे विभूषित होता है। महाप्रलयके समय जब भगवान् वटपत्रपर सो रहे थे, उस समय उसी स्थानपर भगवान् नारायणके परम भक्त महाभाग मार्कण्डेयजी भगवान्‌की विविध लीलाओंका दर्शन करते हुए खड़े थे।

**ऋषियोंने पूछा**—मुने! हमने पहलेसे सुन रखा है कि उस महाभयंकर प्रलयकालमें स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट हो गये थे और एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही विराजमान थे। जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर एकार्णवमें विलीन हो चुका था, तब सबको अपना ग्रास बनानेवाले श्रीहरिने मार्कण्डेय मुनिको किसलिये बचा रखा था? सूतजी! इस विषयको लेकर हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः इसका निवारण कीजिये। भगवान् विष्णुकी सुयश-सुधाका पान

१. वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलालसाः। कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्तो लोकशिक्षकाः॥ (ना० पु०४। ३४)

करनेमें किसे आलस्य हो सकता है!

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें मृकण्डु नामसे विख्यात एक महाभाग मुनि हो गये हैं। उन महातपस्वी महर्षिने शालग्राम नामक महान् तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। ब्रह्मन्! उन्होंने दस हजार युगोंतक सनातन ब्रह्मका गुणगान करते हुए उपवास किया। वे बड़े क्षमाशील, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय थे। समस्त प्राणियोंको अपने समान देखते थे। उनके मनमें विषय-भोगोंके लिये तनिक भी कामना नहीं थी। वे सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। उन्होंने उक्त तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। उनकी तपस्यासे शङ्कित हो इन्द्र आदि सब देवता उस समय अनामय परमेश्वर भगवान् नारायणकी शरणमें गये। क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर देवताओंने देवदेवेश्वर जगद्गुरु पद्मनाभका इस प्रकार स्तवन किया।

**देवता बोले**—हे अविनाशी नारायण! हे अनन्त! हे शरणागतपालक! हम सब देवता मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे भयभीत हो आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। देवाधिदेवेश्वर! आपकी जय हो। शङ्ख और गदा धारण करनेवाले देवता! आपकी जय हो। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके आदि कारण हैं। आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले! आपको नमस्कार है। लोकसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। ध्यानगम्य! आपको नमस्कार है। ध्यानके हेतुभूत! ध्यानस्वरूप तथा ध्यानके साक्षी परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पृथिवी आदि पाँच भूत आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप चैतन्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सबसे ज्येष्ठ हैं, आपको नमस्कार है। आप शुद्धस्वरूप हैं, निर्गुण हैं तथा गुणरूप हैं; आपको नमस्कार है। निराकार-साकार तथा अनेक रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी! आपको नमस्कार है। जगत्का हित-साधन करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्द! आपको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके नेत्र खिले हुए कमलदलके समान शोभा पा रहे थे। उनका करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाव था। सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे वे युक्त थे। भगवान्के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। बायें कंधेपर सुनहले रंगका यज्ञोपवीत चमक रहा था। बड़े-बड़े महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे तथा श्रेष्ठ पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे। उनका दर्शन करके वे सम्पूर्ण देवता उनके तेजके समक्ष फीके पड़ गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथिवीपर लेटकर अपने आठों अङ्गोंसे उन्हें प्रणाम किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु प्रणाम करनेवाले इन्द्रादि देवताओंको आनन्दित करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले।

**श्रीभगवान्ने कहा**—देवताओ! मैं जानता हूँ, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे तुम्हारे मनमें बड़ा खेद हो रहा है, परंतु वे महर्षि साधुपुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अतः तुम्हें कष्ट नहीं देंगे। श्रेष्ठ देवताओ! जो साधुपुरुष हैं, वे सम्पत्तिमें हों या विपत्तिमें, किसी प्रकार भी दूसरेको कष्ट नहीं देते। वे स्वप्नमें भी ऐसा नहीं करते। सज्जनो! जो मानव सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाला, दूसरोंके दोष न देखनेवाला

तथा ईर्ष्यारहित है, वह इहलोक और परलोकमें साधुपुरुषोंद्वारा 'नि:शङ्क' कहा जाता है। सशङ्क व्यक्ति सदा दु:खी रहता है और नि:शङ्क पुरुष सुख पाता है। अत: तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने घर जाओ। मृकण्डु मुनि तुम्हें कोई कष्ट नहीं देंगे। इसके सिवा तुम्हारी रक्षा करनेवाला मैं तो हूँ ही। अत: सुखपूर्वक विचरो।

इस प्रकार अलसीके फूलकी भाँति श्यामकान्तिवाले भगवान् विष्णु देवताओंको वर देकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओंका मन प्रसन्न हो गया। वे जैसे आये थे, उसी प्रकार स्वर्गको लौट गये। भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर मृकण्डुको भी प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जो स्वयंप्रकाश, निरञ्जन एवं निराकार परब्रह्म हैं, वही अलसीके फूलके समान श्यामसुन्दर विग्रह धारण करके प्रकट हो गये। दिव्य आयुधोंसे सुशोभित उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको देखकर मृकण्डु मुनि आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने ध्यानसे आँखें खोलकर देखा, भगवान् विष्णु सम्मुख विराजमान हैं। उनके मुखसे प्रसन्नता टपक रही है, वे शान्तभावसे स्थित हैं। जगत्का धारण-पोषण

उन्हींके द्वारा होता है। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींका तेज है। भगवान्का दर्शन करके मुनिका शरीर पुलकित हो उठा। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे। उन्होंने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर उन देवाधिदेव सनातन परमात्माको प्रणाम किया। फिर हर्षजनक आँसुओंसे भगवान्के दोनों चरण पखारते हुए वे सिरपर अञ्जलि बाँधे उनकी स्तुति करने लगे।

**मृकण्डुजी बोले**—परमात्मस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो परसे भी अति परे हैं, जिनका पार पाना असम्भव है, जो दूसरोंपर अनुग्रह करनेवाले तथा दूसरोंको संसार-सागरके उस पार पहुँचा देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, जिनका स्वरूप शब्दादि विषयोंके दोषसे दूर है, जिनके अनेक स्वरूप हैं तथा जो तमोगुणसे सर्वथा शून्य हैं, उन स्तुति करनेयोग्य परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो वेदान्तवेद्य और पुराणपुरुष हैं, ब्रह्मा आदिसे लेकर सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, उन स्तवन करनेयोग्य आदिपरमेश्वरकी मैं आराधना करता हूँ। जिनके समस्त दोष दूर हो गये हैं, जो एकमात्र ध्यानमें स्थित रहते हैं, जिनकी कामना निवृत्त और मोह दूर हो गये हैं,ऐसे महात्मा पुरुष जिनका दर्शन करते हैं, संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाले उन परम पवित्र परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्मरणमात्रसे समस्त पीड़ाओंका नाश कर देते हैं, शरणमें आये हुए भक्तजनोंका पालन करते हैं, जो समस्त संसारके सेव्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् जिनके भीतर निवास करता है, उन करुणासागर परमेश्वर विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ।

महर्षि मृकण्डुके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान्

विष्णुको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपनी चार विशाल भुजाओंसे खींचकर मुनिको हृदयसे लगा लिया और अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुने! तुम सर्वथा निष्पाप हो, तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो। सुव्रत! तुम्हारे मनको जो अभीष्ट हो, वही वर माँग लो।'

**मृकण्डुने कहा**—देवदेव! जगन्नाथ! मैं कृतार्थ हो गया, इसमें तनिक भी संशय नहीं है; क्योंकि जो पुण्यात्मा नहीं हैं, उनके लिये आपका दर्शन सर्वथा दुर्लभ है। ब्रह्मा आदि देवता तथा तीक्ष्ण व्रतका पालन करनेवाले योगीजन भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, धर्मनिष्ठ, यज्ञोंकी दीक्षा लेनेवाले यजमान, वीतराग साधक तथा ईर्ष्यारहित साधुओंको भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन्हीं परम तेजोमय आप श्रीहरिका मैं दर्शन कर रहा हूँ, इससे बढ़कर दूसरा क्या वर माँगूँ? जगद्गुरु जनार्दन! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ। अच्युत! महापातकी मनुष्य भी आपके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे आपके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं; फिर जो आपका दर्शन कर लेता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?

**श्रीभगवान् बोले**—ब्रह्मन्! तुमने ठीक कहा है। विद्वन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, मेरा दर्शन कदापि व्यर्थ नहीं होगा। अतः तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारे यहाँ (अंशरूपसे) समस्त गुणोंसे युक्त, रूपवान् तथा दीर्घजीवी पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा। मुनिश्रेष्ठ! जिसके कुलमें मेरा जन्म होता है, उसका समस्त कुल मोक्षको प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें कौन-सा कार्य असाध्य है।

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु मृकण्डु मुनिके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे मुनि तपस्यासे निवृत्त हो गये।

## मार्कण्डेयजीको पिताका उपदेश, समय-निरूपण, मार्कण्डेयद्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का मार्कण्डेयजीको भगवद्भक्तोंके लक्षण बताकर वरदान देना

**नारदजीने पूछा**—ब्रह्मन्! पुराणोंमें यह सुना जाता है कि चिरञ्जीवी महामुनि मार्कण्डेयने इस जगत्‌के प्रलयकालमें भगवान् विष्णुकी मायाका दर्शन किया था, अतः इस विषयमें कहिये।

**श्रीसनकजीने कहा**—नारदजी! मैं उस सनातन कथाका वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनें। मार्कण्डेय मुनिसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे परिपूर्ण है। साधुशिरोमणि मृकण्डुने तपस्यासे निवृत्त होनेके बाद विवाह करके प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थधर्मका पालन आरम्भ किया। वे मन और इन्द्रियोंका संयम करके सदा प्रसन्न रहते और कृतार्थताका अनुभव करते थे। उनकी पत्नी बड़ी पवित्र, कार्यकुशल तथा निरन्तर पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थीं। वे मन, वाणी और शरीरसे भी पातिव्रत-धर्मका पालन करती थीं। समय आनेपर उन्होंने भगवान्‌के तेजोमय अंशसे युक्त गर्भ धारण किया और दस महीनेके बाद एक परम तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। महर्षि मृकण्डु उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिपूर्वक मङ्गलमय जातकर्म-संस्कार सम्पन्न कराया। मुनिका वह पुत्र शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-दिन बढ़ने

लगा। विप्रवर! तदनन्तर पाँचवें वर्षमें प्रसन्नतापूर्वक पुत्रका उपनयन-संस्कार करके मुनिने उसे वैदिक-धर्म-संहिताकी शिक्षा दी और कहा—'बेटा! ब्राह्मणोंका दर्शन होनेपर सदा विधिपूर्वक उन्हें नमस्कार करना चाहिये। तीनों समय सूर्यको जलाञ्जलि देकर उनकी पूजा करना और वेदोंके स्वाध्यायपूर्वक वेदोक्त कर्मका पालन करते रहना चाहिये। ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि निषिद्ध कर्मको त्याग देना चाहिये। भगवान् विष्णुके भजनमें लगे हुए साधुपुरुषोंके साथ रहना चाहिये। किसीसे भी द्वेष रखना उचित नहीं है। सबके हितका साधन करना चाहिये। वत्स! यज्ञ, अध्ययन और दान—ये कर्म तुम्हें सदा करने चाहिये।

इस प्रकार पिताका आदेश पाकर मुनीश्वर मार्कण्डेय नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए स्वधर्मका पालन करने लगे। महाभाग मार्कण्डेय बड़े धर्मानुरागी और दयालु थे। वे मनको वशमें रखनेवाले और सत्यप्रतिज्ञ थे। वे जितेन्द्रिय, शान्त, महाज्ञानी और सम्पूर्ण तत्त्वोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भारी तपस्या की। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके आराधना करनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने उन्हें पुराणसंहिता बनानेका वर दिया। चिरञ्जीवी मार्कण्डेयजी सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके महान् भक्त और उनके तेजके अंश (अ० ५ श्लोक ६) थे। ब्रह्मन्! यह संसार जब एकार्णवके जलमें विलीन हो गया, उस समय भी उन्हें अपना प्रभाव दिखानेके लिये भगवान् विष्णुने उनका संहार नहीं किया। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय बड़े बुद्धिमान् और विष्णुभक्त थे। भगवान् श्रीहरि स्वयं जबतक सोते रहे, तबतक मार्कण्डेयजी वहाँ खड़े रहे। उस समयका माप मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा बतायी गयी है। नारदजी! तीस काष्ठाकी एक कला समझनी चाहिये। तीस कलाका एक क्षण होता है और छः क्षणोंकी एक घड़ी मानी गयी है। दो घड़ीका एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तका एक दिन होता है। तीस दिनका एक मास होता है और एक मासमें दो पक्ष होते हैं। दो मासका एक ऋतु और तीन ऋतुओंका एक अयन माना गया है। दो अयनसे एक वर्ष बनता है, जो देवताओंका एक दिन है। उत्तरायण देवताओंका दिन है और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। मनुष्योंके एक मासके बराबर पितरोंका एक दिन कहा जाता है। इसलिये सूर्य और चन्द्रमाके संयोगमें अर्थात् अमावस्याके दिन उत्तम पितृकल्प जानना चाहिये। बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक दैवत युग होता है। दो हजार दैवत युगके बराबर ब्रह्माके एक दिन-रात्रिका मान है। वह मनुष्योंके लिये सृष्टि और प्रलय दोनों मिलकर ब्रह्माका दिन-रात-रूप एक कल्प है। इकहत्तर दिव्य चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है और चौदह मन्वन्तरोंसे ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। मुने! जितना बड़ा ब्रह्माजीका दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी बतायी गयी है। विप्रवर! ब्रह्माजीकी रात्रिके समय तीनों लोकोंका नाश हो जाता है। मानव वर्ष-गणनाके अनुसार उसका जो प्रमाण है, वह सुनो। मुने! एक हजार चतुर्युग (चार हजार युग)-का ब्रह्माजीका एक दिन होता है। ऐसे ही तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका उनका एक वर्ष समझना चाहिये। ऐसे सौ वर्षोंमें उनकी आयु पूरी होती है। उनके काल-मानके अनुसार उनकी सम्पूर्ण आयुका समय दो परार्धका होता है। ब्रह्माजीका दो परार्ध भगवान् विष्णुके लिये एक दिन समझना चाहिये। इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी बतायी गयी है।

मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेयजी उतने ही समयतक उस भयंकर एकार्णवके जलमें भगवान् विष्णुकी शक्तिसे बलवान् होकर सूखे पत्तेकी भाँति खड़े रहे। उस समय वे श्रीहरिके समीप परमात्मतत्त्वका ध्यान करते हुए स्थित थे।

तदनन्तर प्रलयकालका अन्त समय आनेपर योगनिद्रासे मुक्त हो श्रीहरिने ब्रह्माजीके रूपसे इस चराचर जगत्की रचना की। जलका उपसंहार और जगत्की नूतन सृष्टि देखकर मार्कण्डेयजी चकित हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। महामुनि मार्कण्डेयने सिरपर अञ्जलि बाँधे नित्यानन्दस्वरूप श्रीहरिका प्रिय वचनोंद्वारा इस प्रकार स्तवन किया।

**मार्कण्डेयजी बोले**—जिनके सहस्रों मस्तक हैं, रोग-शोक आदि विकारसे जो सर्वथा रहित हैं, जिनका कोई आधार नहीं है (स्वयं ही सबके आधार हैं) तथा जो सर्वत्र व्यापक हैं, मनुष्योंसे सदा प्रार्थित होनेवाले उन भगवान् नारायणदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो प्रमाणसे परे तथा जरावस्थासे रहित हैं, नित्य एवं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं तथा जहाँ कोई तर्क या संकेत काम नहीं देता, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परम अक्षर, नित्य, विश्वके आदिकारण तथा जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं, उन सर्वतत्त्वमय शान्तस्वरूप भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो पुरातन पुरुष सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्पन्न और सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र आश्रय हैं, जिनका स्वरूप परसे भी अति परे है, उन भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो परम ज्योति, परम धाम तथा परम पवित्र पद हैं, जिनकी सबके साथ एकरूपता है, उन परमात्मा जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। सत्, चित् और आनन्द ही जिनका स्वरूप है, जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी परम पद हैं, उन सर्वस्वरूप श्रेष्ठ सनातन भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सगुण, निर्गुण, शान्त, मायातीत और विशुद्ध मायाके अधिपति हैं तथा जो रूपरहित होते हुए भी अनेक रूपवाले हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन आदिदेव भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। परेश! परमानन्द! शरणागतवत्सल! दयासागर! मेरी रक्षा कीजिये। मन-वाणीसे अतीत परमेश्वर! आपको नमस्कार है।

विप्रवर नारदजी! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् विष्णु इस प्रकार स्तुति करनेवाले मार्कण्डेयजीसे अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक बोले।

**श्रीभगवान्ने कहा**—द्विजश्रेष्ठ! संसारमें जो भक्त पुरुष मुझ भगवान्की भक्तिमें चित्त लगाये रहनेवाले हैं, उनपर संतुष्ट हो मैं सदा उनकी रक्षा करता हूँ, इसमें संदेह नहीं है। भगवद्भक्तरूपसे अपनेको छिपाकर मैं ही सदा सब लोकोंकी रक्षा करता हूँ।

**मार्कण्डेयजीने पूछा**—भगवन्! भगवद्भक्तके क्या लक्षण हैं? किस कर्मसे मनुष्य भगवद्भक्त होते हैं, यह मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस बातको जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—मुनिश्रेष्ठ! भगवद्भक्तोंके लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। उनके प्रभाव अथवा महिमाका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। जो सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत नहीं है, जो ईर्ष्यारहित, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, निष्काम एवं शान्त हैं, वे ही भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा दूसरोंको कभी पीड़ा नहीं देते तथा जिनमें संग्रह अथवा कुछ ग्रहण करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त माने गये हैं। जिनकी सात्त्विक बुद्धि उत्तम भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता सुननेमें स्वभावतः लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त समझे जाते हैं। जो श्रेष्ठ मानव माता और पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे भी श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो भगवान्‌के पूजनमें रत हैं, जो इसमें सहायक होते हैं तथा जो भगवान्‌की पूजा देखकर उसका अनुमोदन करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो व्रतियों तथा यतियोंकी सेवामें संलग्न तथा परायी निन्दासे दूर रहते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और सबके गुणोंको ही ग्रहण करनेवाले हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त माने गये हैं। जो श्रेष्ठ मानव सब जीवोंको अपने ही समान देखते तथा शत्रु और मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो धर्मशास्त्रके वक्ता, सत्यवादी तथा साधुपुरुषोंके सेवक हैं, वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहे गये हैं। जो पुराणोंकी व्याख्या करते, जो पुराण सुनते और पुराण-वक्तामें श्रद्धाभक्ति रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य सदा गौओं तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और तीर्थयात्रामें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और भगवन्नामका जप करते रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो बगीचे लगाते, तालाब और पोखरोंकी रक्षा करते तथा बावड़ी और कुएँ बनवाते हैं, वे उत्तम भक्त हैं। जो तालाब और देवमन्दिर बनवाते तथा गायत्री-मन्त्रके जपमें संलग्न रहते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं। जो हरिनामका आदर करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर जाते और पुलकित हो उठते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य तुलसीका बगीचा देखकर उसको नमस्कार करते और कानोंमें तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो तुलसीकी गन्ध सूँघकर तथा उसकी जड़के समीपकी मिट्टीको सूँघकर प्रसन्न होते हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं। जो वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, अतिथियोंका सत्कार करनेवाले तथा वेदार्थके वक्ता होते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत माने गये हैं। जो भगवान् शिवसे प्रेम रखनेवाले, शिवके चिन्तनमें ही आसक्त रहनेवाले तथा शिवके चरणोंकी पूजामें तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं। जो भगवान् विष्णु तथा परमात्मा शिवके नाम लेते तथा रुद्राक्षकी मालासे विभूषित होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा महादेवजी अथवा भगवान् विष्णुका उत्तम भक्तिसे यजन करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो पढ़े हुए शास्त्रोंका दूसरोंके हितके लिये उपदेश करते और सर्वत्र गुण ही ग्रहण करते हैं, वे उत्तम भक्त माने गये हैं। परमेश्वर शिव तथा परमात्मा

विष्णुमें जो समबुद्धिसे प्रवृत्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त माने गये हैं। जो शिवकी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्रमें तत्पर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें संलग्न तथा शिवके ध्यानमें अनुरक्त रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो जलदानमें तत्पर, अन्नदानमें संलग्न तथा एकादशीव्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं। जो गोदान करते, कन्यादानमें तत्पर रहते और मेरी प्रसन्नताके लिये सत्कर्म करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। विप्रवर मार्कण्डेय! यहाँपर कुछ ही भगवद्भक्तोंका वर्णन किया है। मैं भी सौ करोड़ वर्षोंमें भी उन सबका पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकता। अतः विप्रवर! तुम भी सदा उत्तम शीलसे युक्त होकर रहो। समस्त प्राणियोंको आश्रय दो। मन और इन्द्रियोंको वशमें रखो। सबके प्रति मैत्रीभाव रखते हुए धर्माचरणमें लगे रहो। पुनः महाप्रलय-कालतक सब धर्मोंका पालन करते हुए मेरे स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहकर तुम परम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

देवताओंके स्वामी दयासिन्धु भगवान् विष्णु अपने भक्त मार्कण्डेयको इस प्रकार वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। महाभाग मार्कण्डेयजी सदा भगवान्के भजनमें लगे रहकर उत्तम धर्मका पालन करने लगे। उन्होंने अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान्का पूजन किया। फिर महाक्षेत्र शालग्रामतीर्थमें उत्तम तपस्या की और भगवान्के ध्यानद्वारा कर्मबन्धनका नाश करके परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। इसलिये भगवान्की आराधना करनेवाला भक्त पुरुष समस्त प्राणियोंका हितकारी होता है। वह मनसे जो-जो वस्तुएँ पाना चाहता है, वह सब निस्संदेह प्राप्त कर लेता है।

**सनकजी कहते हैं**—विप्रवर नारद! तुमने जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार यह सब भगवद्भक्तिका माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

## गङ्गा-यमुना-संगम, प्रयाग, काशी तथा गङ्गा एवं गायत्रीकी महिमा

**सूतजी कहते हैं**—भगवान्की भक्तिका यह माहात्म्य सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ज्ञान-विज्ञानके पारगामी सनक मुनिसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया।

**नारदजी बोले**—मुने! आप शास्त्रोंके पारदर्शी विद्वान् हैं। मुझपर बड़ी भारी दया करके यह ठीक-ठीक बताइये कि क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र तथा तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ कौन है?

**सनकजीने कहा**—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय प्रसङ्ग है, सुनो। उत्तम क्षेत्रोंका यह वर्णन सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको देनेवाला, श्रेष्ठ, बुरे स्वप्नोंका नाशक, पवित्र, धर्मानुकूल, पापहारी तथा शुभ है। मुनियोंको नित्य-निरन्तर इसका श्रवण करना चाहिये। गङ्गा और यमुनाका जो संगम है, उसीको महर्षिलोग शास्त्रोंमें उत्तम क्षेत्र तथा तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ कहते हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता, मुनि तथा पुण्यकी इच्छा रखनेवाले सब मनुष्य श्वेत और श्याम जलसे भरे हुए उस संगम-तीर्थका सेवन करते हैं। गङ्गाको परम पवित्र नदी समझना चाहिये; क्योंकि वह भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई है। इसी प्रकार यमुना भी साक्षात् सूर्यकी पुत्री हैं। ब्रह्मन्! इन दोनोंका समागम परम कल्याणकारी है। मुने! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा स्मरणमात्रसे समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाली, सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा सारे उपद्रवोंको मिटा देनेवाली है। महामुने!

समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जो-जो पुण्यक्षेत्र हैं, उन सबसे अधिक पुण्यतम क्षेत्र प्रयागको ही जानना चाहिये। जहाँ ब्रह्माजीने यज्ञद्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिका यजन किया है तथा सब महर्षियोंने भी वहाँ नाना प्रकारके यज्ञ किये हैं। सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होते हैं, वे सब मिलकर गङ्गाजीके एक बूँद जलसे किये हुए अभिषेककी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते। जो गङ्गासे सौ योजन दूर खड़ा होकर भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; फिर जो गङ्गामें स्नान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे प्रकट होकर भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान होनेवाली भगवती गङ्गा मुनियों और देवताओंके द्वारा भी भलीभाँति सेवन करनेयोग्य हैं, फिर साधारण मनुष्योंके लिये तो बात ही क्या है?[1] श्रेष्ठ मनुष्य अपने ललाटमें जहाँ गङ्गाजीकी बालूका तिलक लगाते हैं, वहीं अर्धचन्द्रके नीचे प्रकाशित होनेवाला तृतीय नेत्र समझना चाहिये। गङ्गामें किया हुआ स्नान महान् पुण्यदायक तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; वह भगवान् विष्णुका सारूप्य देनेवाला होता है—इससे बढ़कर उसकी महिमाके विषयमें और क्या कहा जा सकता है? गङ्गामें स्नान करनेवाले पापी भी सब पापोंसे मुक्त हो श्रेष्ठ विमानपर बैठकर परम धाम वैकुण्ठको चले जाते हैं। जिन्होंने गङ्गामें स्नान किया है, वे महात्मा पुरुष पिता और माताके कुलकी बहुत-सी पीढ़ियोंको उद्धार करके भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते हैं। ब्रह्मन्! जो गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सभी पुण्य-क्षेत्रोंमें निवास कर लिया—इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-स्नान किये हुए मनुष्यको देखकर पापी भी स्वर्गलोकका अधिकारी हो जाता है। उसके अङ्गोंका स्पर्श करनेमात्रसे वह देवताओंका अधिपति हो जाता है। गङ्गा, तुलसी, भगवान्‌के चरणोंमें अविचल भक्ति तथा धर्मोपदेशक सद्‌गुरुमें श्रद्धा—ये सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं[2]। उत्तम धर्मका उपदेश देनेवाले गुरुके चरणोंकी धूल, गङ्गाजीकी मृत्तिका तथा तुलसीवृक्षके मूलभागकी मिट्टीको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता है, वह वैकुण्ठ धामको जाता है। जो मनुष्य मन-ही-मन यह अभिलाषा करता है कि मैं कब गङ्गाजीके समीप जाऊँगा और कब उनका दर्शन करूँगा, वह भी वैकुण्ठ धामको जाता है। ब्रह्मन्! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गङ्गाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। अहो! माया सारे जगत्‌को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है? क्योंकि गङ्गा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं। गङ्गाजीका नाम संसार-दुःखका नाश करनेवाला बताया गया है। तुलसीके नाम तथा भगवान्‌की कथा कहनेवाले साधु पुरुषके प्रति की हुई भक्तिका भी यही फल है। जो एक बार भी 'गङ्गा' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान्

---

१. गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शते स्थितः। सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान्॥
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरःस्थिता। संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः॥
(ना० पूर्व० ६। १२-१३)

२. गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला। अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्धर्मप्रवक्तरि॥ (ना० पूर्व० ६। २१)

विष्णुके लोकमें जाता है[1]। परम पुण्यमयी इस गङ्गा नदीका यदि मेष, तुला और मकरकी संक्रान्तियोंमें (अर्थात् वैशाख, कार्तिक और माघके महीनोंमें) भक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो सेवन करनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌को यह पवित्र कर देती है। द्विजश्रेष्ठ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, यमुना, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी तथा सरयू आदि सब तीर्थोंमें गङ्गाजी ही सबसे प्रधान मानी गयी हैं। जैसे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं, उसी प्रकार सब पापोंका नाश करनेवाली गङ्गादेवी सब तीर्थोंमें व्याप्त हैं। अहो! महान् आश्चर्य है! परम पावनी जगदम्बा गङ्गा स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण संसारको पवित्र कर रही हैं, फिर सभी मनुष्य इनका सेवन क्यों नहीं करते?

इसी प्रकार विख्यात काशीपुरी भी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। इस लोकमें कानवाले पुरुषोंके वे ही दोनों कान धन्य हैं और वे ही बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान धारण करनेवाले हैं, जिनके द्वारा बारम्बार काशीका नाम श्रवण किया गया है। द्विजश्रेष्ठ! जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र काशीका स्मरण करते हैं, वे सब पापोंका नाश करके भगवान् शिवके लोकमें चले जाते हैं। मनुष्य सौ योजन दूर रहकर भी यदि अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण करता है तो वह बहुतेरे पातकोंसे भरा होनेपर भी भगवान् शिवके रोग-शोकरहित नित्यधामको चला जाता है। ब्रह्मन्! जो प्राण निकलते समय अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण कर लेता है, वह भी सब पापोंसे छूटकर शिवधामको प्राप्त हो जाता है। काशीके गुणोंके विषयमें यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ; जो काशीका नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। ब्रह्मन्! गङ्गा और यमुनाका संगम (प्रयाग) तो काशीसे भी बढ़कर है; क्योंकि उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। सूर्यके मकर राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी गङ्गामें स्नान किया जाय, वह स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करती और अन्तमें इन्द्रलोक पहुँचाती है। लोकका कल्याण करनेवाले लिङ्गस्वरूप भगवान् शङ्कर भी जिस गङ्गाका सदा सेवन करते हैं, उसकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन कैसे किया जा सकता है? शिवलिङ्ग साक्षात् श्रीहरिरूप है और श्रीहरि साक्षात् शिव-लिङ्गरूप हैं। इन दोनोंमें थोड़ा भी अन्तर नहीं है। जो इनमें भेद करता है, उसकी बुद्धि खोटी है। अज्ञानके समुद्रमें डूबे हुए पापी मनुष्य ही आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु और शिवमें भेदभाव करते हैं। जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी और कारणोंके भी कारण हैं, वे भगवान् विष्णु ही प्रलयकालमें रुद्ररूप धारण करते हैं। ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है। भगवान् रुद्र ही विष्णुरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करते हैं। वे ही ब्रह्माजीके रूपसे संसारकी सृष्टि करते हैं तथा अन्तमें हररूपसे वे ही तीनों लोकोंका संहार करते हैं। जो मनुष्य भगवान्

---

१. गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि। न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम्। यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि॥
संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम्। तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(ना० पूर्व० ६। २४—२७)

विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीमें भेदबुद्धि करता है, वह अत्यन्त भयंकर नरकमें जाता है। जो भगवान् शिव, विष्णु और ब्रह्माजीको एक रूपसे देखता है, वह परमानन्दको प्राप्त होता है। यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है। जो अनादि, सर्वज्ञ, जगत्के आदिस्रष्टा तथा सर्वत्र व्यापक हैं, वे भगवान् विष्णु ही शिवलिङ्गरूपसे काशीमें विद्यमान हैं। काशीपुरीका विश्वेश्वरलिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग कहलाता है। श्रेष्ठ मनुष्य उसका दर्शन करके परम ज्योतिको प्राप्त होता है। जिसने त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली काशीपुरीकी परिक्रमा कर ली, उसके द्वारा समुद्र, पर्वत तथा सात द्वीपोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो गयी। धातु, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर अथवा चित्र आदिसे निर्मित जो भगवान् शिव अथवा विष्णुकी निर्मल प्रतिमाएँ हैं, उन सबमें भगवान् विष्णु विद्यमान हैं। जहाँ तुलसीका बगीचा, कमलोंका वन और पुराणोंका पाठ हो, वहाँ भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं। ब्रह्मन्! पुराणकी कथा सुननेमें जो प्रेम होता है, वह गङ्गास्नानके समान है तथा पुराणकी कथा कहनेवाले व्यासके प्रति जो भक्ति होती है, वह प्रयागके तुल्य मानी गयी है। जो पुराणोक्त धर्मका उपदेश देकर जन्म-मृत्युरूप संसार-सागरमें डूबे हुए जगत्का उद्धार करता है, वह साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप बताया गया है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है तथा गुरुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है[1]। जैसे चारों वर्णोंमें ब्राह्मण, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा तथा सरोवरोंमें समुद्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुण्य तीर्थों और नदियोंमें गङ्गा सबसे श्रेष्ठ मानी गयी हैं। शान्तिके समान कोई बन्धु नहीं है, सत्यसे बढ़कर कोई तप नहीं है, मोक्षसे बड़ा कोई लाभ नहीं है और गङ्गाके समान कोई नदी नहीं है[2]। गङ्गाजीका उत्तम नाम पापरूपी वनको भस्म करनेके लिये दावानलके समान है। गङ्गा संसाररूपी रोगको दूर करनेवाली हैं, इसलिये यत्नपूर्वक उनका सेवन करना चाहिये। गायत्री और गङ्गा दोनों समस्त पापोंको हर लेनेवाली मानी गयी हैं। नारदजी! जो इन दोनोंके प्रति भक्तिभावसे रहित है, उसे पतित समझना चाहिये। गायत्री वेदोंकी माता हैं और जाह्नवी (गङ्गा) सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। वे दोनों समस्त पापोंके नाशका कारण हैं। जिसपर गायत्री प्रसन्न होती हैं, उसपर गङ्गा भी प्रसन्न होती हैं। वे दोनों भगवान् विष्णुकी शक्तिसे

सम्पन्न हैं, अतः सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि देनेवाली हैं। गङ्गा और गायत्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके फलरूपमें प्रकट हुई हैं। ये दोनों निर्मल तथा परम उत्तम हैं और

१. नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः। नास्ति विष्णुसमं दैवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥ (ना० पूर्व० ६। ५८)

२. नास्ति शान्तिसमो बन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः। नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी॥ (ना० पूर्व० ६। ६०)

सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रवृत्त हुई हैं। मनुष्योंके लिये गायत्री और गङ्गा दोनों अत्यन्त दुर्लभ हैं। इसी प्रकार तुलसीके प्रति भक्ति और भगवान् विष्णुके प्रति सात्त्विक भक्ति भी दुर्लभ है। अहो! महाभागा गङ्गा स्मरण करनेपर समस्त पापोंका नाश करनेवाली, दर्शन करनेपर भगवान् विष्णुका लोक देनेवाली तथा जल पीनेपर भगवान्‌का सारूप्य प्रदान करनेवाली हैं। उनमें स्नान कर लेनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुके उत्तम धामको जाते हैं[1]। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले सर्वव्यापी सनातन भगवान् नारायण गङ्गा-स्नान करनेवाले मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देते हैं। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजलके एक कणसे भी अभिषिक्त होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम धामको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके जलबिन्दुका सेवन करनेमात्रसे राजा सगरकी संतति परम पदको प्राप्त हुई।

## असूया-दोषके कारण राजा बाहुकी अवनति और पराजय तथा उनकी मृत्युके बाद रानीका और्व मुनिके आश्रममें रहना

**नारदजीने पूछा—**मुनिश्रेष्ठ! राजा सगर कौन थे? वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

**सनकजीने कहा—**मुनिवर! गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य सुनिये, जिनके जलका स्पर्श होनेमात्रसे राजा सगरका कुल पवित्र हो गया और सम्पूर्ण लोकोंमें सबसे उत्तम वैकुण्ठ धामको चला गया। सूर्यवंशमें बाहु नामवाले एक राजा हो गये हैं। उनके पिताका नाम वृक था। बाहु बड़े धर्मपरायण राजा थे और सारी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जीवोंको अपने-अपने धर्मकी मर्यादामें स्थापित किया था। महाराज बाहुने सातों द्वीपोंमें सात अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदि देकर भलीभाँति तृप्त किया। नीतिशास्त्रके अनुसार उन्होंने चोर-डाकुओंको यथेष्ट दण्ड देकर शासनमें रखा और दूसरोंका संताप दूर करके अपनेको कृतार्थ माना। पृथ्वीपर बिना जोते-बोये अन्न पैदा होता और वह फल-फूलसे भरी रहती थी। मुनीश्वर! देवराज इन्द्र उनके राज्यकी भूमिपर समयानुसार वर्षा करते थे और पापाचारियोंका अन्त हो जानेके कारण वहाँकी प्रजा धर्मसे सुरक्षित रहती थी।

एक समय राजा बाहुके मनमें असूया (गुणोंमें दोष-दृष्टि)-के साथ बड़ा भारी अहंकार उत्पन्न हुआ, जो सब सम्पत्तियोंका नाश करनेवाला तथा अपने विनाशका भी हेतु है। वे सोचने लगे—मैं समस्त लोकोंका पालन करनेवाला बलवान् राजा हूँ। मैंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। मुझसे पूजनीय दूसरा कौन है? मैं विद्वान् हूँ, श्रीमान् हूँ। मैंने सब शत्रुओंको जीत लिया है। मुझे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान है और नीतिशास्त्रका तो मैं बहुत बड़ा पण्डित हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरे ऐश्वर्यको हानि नहीं पहुँचा सकता। इस पृथ्वीपर मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है? इस प्रकार अहंकारके वशीभूत होनेपर उनके मनमें दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि हो गयी। मुनीश्वर! दोषदृष्टि होनेसे उस राजाके

१. अहो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम्॥ (ना० पूर्व० ६। ६७)

हृदयमें काम प्रबल हो उठा। इन सब दोषोंके स्थित होनेपर मनुष्यका विनाश होना निश्चित है। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक-एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों वहाँके लिये क्या कहना[1]? विप्रवर! उनके भीतर बड़ी भारी असूया पैदा हो गयी, जो लोकका विरोध, अपने देहका नाश तथा सब सम्पत्तियोंका अन्त करनेवाली होती है। सुव्रत! असूयासे भरे हुए चित्तवाले पुरुषोंके पास यदि धन-सम्पत्ति मौजूद हो तो उसे भूसेकी आगमें वायुके संयोगके समान समझो। जिनका चित्त दूसरोंके दोष देखनेमें लगा होता है, जो पाखण्डपूर्ण आचारका पालन करते हैं तथा सदा कटुवचन बोला करते हैं, उन्हें इस लोकमें और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता। जिनका मन असूया-दोषसे दूषित है तथा जो सदा निष्ठुर भाषण किया करते हैं, उनके प्रियजन, पुत्र तथा भाई-बन्धु भी शत्रु बन जाते हैं। जो परायी स्त्रीको देखकर मन-ही-मन उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, वह अपनी सम्पत्तिका नाश करनेके लिये स्वयं ही कुठार बन गया है—इसमें संशय नहीं है। मुने! जो मनुष्य अपने कल्याणका नाश करनेके लिये प्रयत्न करता है, वही दूसरोंका कल्याण देखकर अपनी कुत्सित बुद्धिके कारण उनसे डाह करने लगता है। ब्रह्मन्! जो मित्र, संतान, गृह, क्षेत्र, धन-धान्य और पशु—सबकी हानि देखना चाहता हो, वही सदा दूसरोंसे असूया करे।

तदनन्तर जब राजा बाहुका हृदय असूया-दोषसे दूषित हो जानेके कारण वे अत्यन्त उद्दण्ड हो गये, तब हैहय और तालजङ्घ-कुलके क्षत्रिय उनके प्रबल शत्रु बन गये। असूया होनेपर दूसरे जीवोंके साथ द्वेष बहुत बढ़ जाता है—इसमें संदेह नहीं है। असूयासे दूषित चित्तवाले उस राजाका अपने शत्रुओंके साथ लगातार एक मासतक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्तमें वे अपने वैरी हैहय और तालजङ्घ नामवाले क्षत्रियोंसे परास्त हो गये। अतः दुःखी होकर राजा बाहु अपनी गर्भवती पत्नीके साथ वनमें चले गये। वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब देखकर उन्हें बड़ा संतोष हुआ; परंतु उनके मनमें तो असूया भरी हुई थी, इसलिये उनका भाव देखकर उस जलाशयके पक्षी भी इधर-उधर छिप गये। यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई। उस समय बड़ी उतावलीके साथ अपने घोंसलोंमें समाते हुए वे पक्षी इस प्रकार कह रहे थे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है। यहाँ तो कोई भयानक पुरुष आ गया।' राजाने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ उस सरोवरमें प्रवेश करके जल पीया और वृक्षके नीचे उसकी सुखद छायामें जा बैठे। नारदजी! गुणवान् मनुष्य कोई भी क्यों न हो, वह सबके लिये श्लाघ्य होता है और सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे युक्त होनेपर भी गुणहीन मनुष्य सदा लोगोंसे निन्दित ही होता है। द्विजश्रेष्ठ नारद! उस समय बाहुकी बहुत निन्दा हुई थी। वे संसारमें अपने पुरुषार्थ और यशका नाश करके मरे हुएकी भाँति वनमें रहते थे। अकीर्तिके समान कोई मृत्यु नहीं है। क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। निन्दाके समान कोई पाप नहीं है और मोहके समान कोई भय नहीं है। असूयाके समान कोई अपकीर्ति नहीं है, कामके समान कोई आग नहीं है, रागके समान कोई बन्धन नहीं है और सङ्ग अथवा आसक्तिके समान कोई विष नहीं है[2] इस प्रकार बहुत विलाप करके राजा बाहु

१. यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥ (ना० पूर्व० ७। १५)
२. नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः। नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः॥
नास्त्यसूयासमाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः। नास्ति रागसमः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम्॥
(ना० पूर्व० ७। ४१-४२)

अत्यन्त दु:खित हो गये। मानसिक संताप और बुढ़ापेके कारण उनका शरीर जर्जरीभूत हो गया। मुनिश्रेष्ठ! इस तरह बहुत समय बीतनेके पश्चात् और्व मुनिके आश्रमके निकट रोगसे ग्रस्त होकर राजा बाहु संसारसे चल बसे। उनकी छोटी पत्नी यद्यपि गर्भवती थी तो भी दु:खसे आतुर हो दीर्घकालतक विलाप करके उसने पतिके साथ चितापर जल मरनेका विचार किया। इसी बीचमें परम बुद्धिमान् और्व मुनि, जो महान् तेजकी निधि थे, वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उत्तम समाधिके द्वारा यह सब वृत्तान्त जान लिया था। मुनीश्वरगण तीनों कालोंके ज्ञाता होते हैं। वे असूयारहित महात्मा अपनी ज्ञानदृष्टिसे भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ देख लेते हैं। परम पुण्यात्मा और्व मुनि अपनी तपस्याके कारण तेजकी राशि जान पड़ते थे। वे उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा बाहुकी प्यारी एवं पतिव्रता पत्नी खड़ी थी। मुनिश्रेष्ठ नारद! रानीको चितापर चढ़नेके लिये

उद्यत देख मुनिवर और्व धर्ममूलक वचन बोले।

**और्वने कहा**—महाराज बाहुकी प्यारी पत्नी! तू पतिव्रता है; किंतु चितापर चढ़नेका अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य न कर। तेरे गर्भमें शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती बालक है। कल्याणमयी राजपुत्री! जिनकी संतान बहुत छोटी हो, जो गर्भवती हों, जिन्होंने अभी ऋतुकाल न देखा हो तथा जो रजस्वला हों, ऐसी स्त्रियाँ पतिके साथ चितापर नहीं चढ़तीं—उनके लिये चितारोहणका निषेध है। श्रेष्ठ पुरुषोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है, पाखण्डी और परनिन्दकका भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भके बालककी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। सुव्रते! नास्तिक, कृतघ्न, धर्मत्यागी और विश्वासघातीके उद्धारका भी कोई उपाय नहीं है[1]। अत: शोभने! तुझे यह महान् पाप नहीं करना चाहिये।

मुनिके इस प्रकार कहनेपर पतिव्रता रानीको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया और वह अत्यन्त दु:खसे पीड़ित हो अपने मरे हुए पतिके चरणकमलोंको पकड़कर विलाप करने लगी। महात्मा और्व सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वे रानीसे पुन: बोले—'राजकुमारी! तू रो मत, तुझे श्रेष्ठ राजलक्ष्मी प्राप्त होगी। महाभागे! इस समय सज्जन पुरुषोंके सहयोगसे इस मृतक शरीरका दाह-संस्कार करना उचित है, अत: शोक त्यागकर तू समयोचित कार्य कर। पण्डित हो या मूर्ख, दरिद्र हो या धनवान् तथा दुराचारी हो या सदाचारी—सबपर मृत्युकी समान दृष्टि है। नगरमें हो या वनमें, समुद्रमें हो या पर्वतपर, जिस जीवने जो कर्म किया है, उसे उसका भोग अवश्य करना होगा। जैसे दु:ख बिना बुलाये ही प्राणियोंके पास चले आते हैं, उसी

१. बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे॥
ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः। दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः॥
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च। विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते॥
(ना० पूर्व० ७। ५२—५४)

प्रकार सुख भी आ सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है। इस विषयमें दैव ही प्रबल है। पूर्वजन्मके जो-जो कर्म हैं, उन्हीं-उन्हींको यहाँ भोगना पड़ता है। कमलानने! जीव गर्भमें हों या बाल्यावस्थामें, जवानीमें हों या बुढ़ापेमें, उन्हें मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है। अत: सुव्रते! इस दु:खको त्यागकर तू सुखी हो जा। पतिके अन्त्येष्टि-संस्कार कर और विवेकके द्वारा स्थिर हो जा। यह शरीर कर्मपाशमें बँधा हुआ तथा हजारों दु:ख और व्याधियोंसे घिरा हुआ है। इसमें सुखका तो आभास ही मात्र है। क्लेश ही अधिक होता है।'

परम बुद्धिमान् और्व मुनिने रानीको इस प्रकार समझा-बुझाकर उससे दाह-सम्बन्धी सब कार्य करवाये; फिर उसने शोक त्याग दिया और मुनीश्वरको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! आप-जैसे संत दूसरोंकी भलाईकी ही अभिलाषा रखते हैं—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पृथ्वीपर जितने भी वृक्ष हैं, वे अपने उपभोगके लिये नहीं फलते—उनका फल दूसरोंके ही काम आता है। इसलिये जो दूसरोंके दु:खसे दु:खी और दूसरोंकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होता है, वही नर-रूपधारी जगदीश्वर नारायण है। संत पुरुष दूसरोंका दु:ख दूर करनेके लिये शास्त्र सुनते हैं और अवसर आनेपर सबका दु:ख दूर करनेके लिये शास्त्रोंके वचन कहते हैं। जहाँ संत रहते हैं, वहाँ दु:ख नहीं सताता; क्योंकि जहाँ सूर्य है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है?'

इस प्रकार कहकर रानीने उस तालाबके किनारे मुनिकी बतायी हुई विधिके अनुसार अपने पतिकी अन्य पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं। वहाँ और्व मुनिके स्थित होनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर मुनीश्वर और्वको प्रणाम करके परम धामको चले गये। जिनपर महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। पुण्यात्मा पुरुष यदि किसीके शरीरको, शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख ले तो वह परम पदको प्राप्त होता है[१]। नारदजी! पतिका श्राद्धकर्म करके रानी और्व मुनिके आश्रमपर गयी और अपनी सौतके साथ महर्षिकी सेवा करने लगी।

## सगरका जन्म तथा शत्रुविजय, कपिलके क्रोधसे सगर-पुत्रोंका विनाश तथा भगीरथद्वारा लायी हुई गङ्गाजीके स्पर्शसे उन सबका उद्धार

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनीश्वर! इस प्रकार राजा बाहुकी वे दोनों रानियाँ और्व मुनिके आश्रमपर रहकर प्रतिदिन भक्तिभावसे उनकी सेवा-शुश्रूषा करती रहीं। नारदजी! इस तरह छ: महीने बीत जानेपर राजाकी जो जेठी रानी थी, उसके मनमें सौतकी समृद्धि देखकर पापपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ। अत: उस पापिनीने छोटी रानीको जहर दे दिया; किंतु छोटी रानी प्रतिदिन आश्रमकी भूमि लीपने आदिके द्वारा मुनिकी भलीभाँति सेवा करती थीं, इसीलिये उस पुण्यकर्मके प्रभावसे रानीपर उस

१. महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः। परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम। यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम्॥
(ना० पूर्व० ७।७४-७५)

विषका असर नहीं हुआ। तत्पश्चात् तीन मास और व्यतीत होनेपर रानीने शुभ समयमें विषके साथ ही एक पुत्रको जन्म दिया। मुनिकी सेवासे रानीके सब पाप नष्ट हो चुके थे। अहो! लोकमें सत्सङ्गका कैसा माहात्म्य है? वह कौन-सा पाप नष्ट नहीं कर सकता और सत्सङ्गके प्रभावसे पाप नष्ट हो जानेपर पुण्यात्मा मनुष्योंको कौन-सा सुख अधिक-से-अधिक नहीं मिल सकता? जानकर और अनजानमें किया हुआ तथा दूसरोंसे कराया हुआ जो पाप है, उस सबको महात्मा पुरुषोंकी सेवा तत्काल नष्ट कर देती है। संसारमें सत्सङ्गके प्रभावसे जड भी पूज्य हो जाता है। जैसे भगवान् शंकरके द्वारा ललाटमें ग्रहण कर लिये जानेपर एक कलाका चन्द्रमा भी वन्दनीय हो गया। विप्रवर! इहलोक और परलोकमें सत्सङ्ग मनुष्योंको सदा उत्तम समृद्धि प्रदान करता है, इसलिये संत पुरुष परम पूजनीय हैं। मुनीश्वर! महात्मा पुरुषोंके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? अहो! उनके प्रभावसे गर्भमें पड़ा हुआ विष तीन मासतक पचता रहा। यह कैसी अद्भुत बात है? तेजस्वी मुनि और्वने गर (विष)-के सहित उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर उसका जातकर्म-संस्कार किया और उस बालकका नाम सगर रखा। माताने बालक सगरका बड़े प्रेमसे पालन-पोषण किया। मुनीश्वर और्वने यथासमय उसके चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत-संस्कार किये तथा राजाके लिये उपयोगी शास्त्रोंका उसे अध्ययन कराया। मुनि सब मन्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने देखा, सगर अब बाल्यावस्थासे कुछ ऊपर उठ चुका है और मन्त्रग्रहण करनेमें समर्थ है, तब उसे अस्त्र-शस्त्रोंकी मन्त्रसहित शिक्षा दी। नारदजी! महर्षि और्वसे शिक्षा पाकर सगर बड़ा बलवान्, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गुणवान् तथा परम बुद्धिमान् हो गया। धर्मज्ञ सगर अब प्रतिदिन अमित तेजस्वी और्व मुनिके लिये समिधा, कुशा, जल और फूल आदि लाने लगा। बालक बड़ा विनयी और सद्‌गुणोंका भण्डार था। एक दिन उसने अपनी माताको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा।

**सगरने कहा**—माँ! मेरे पिताजी कहाँ चले गये हैं? उनका क्या नाम है और वे किसके कुलमें उत्पन्न हुए हैं? यह सब बातें मुझे बताओ। मेरे मनमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है। संसारमें जिनके पिता नहीं हैं, वे जीवित होकर भी मरे हुएके समान हैं। जिसके माता-पिता जीवित नहीं हैं, उसे कोई सुख नहीं है। जैसे धर्महीन मूर्ख मनुष्य इस लोक और परलोकमें निन्दित होता है, वही दशा पितृहीन बालककी भी है। माता-पितासे रहित, अज्ञानी, अविवेकी, पुत्रहीन तथा ऋणग्रस्त पुरुषका जन्म व्यर्थ है। जैसे चन्द्रमाके बिना रात्रि, कमलके बिना तालाब और पतिके बिना स्त्रीकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार पितृहीन बालक भी शोभा नहीं पाता। जैसे धर्महीन मनुष्य, कर्महीन गृहस्थ और गौ आदि पशुओंसे हीन वैश्यकी शोभा नहीं होती, वैसे ही पिताके बिना पुत्र सुशोभित नहीं होता। जैसे सत्यरहित वचन, साधु पुरुषोंसे रहित सभा तथा दयाशून्य तप व्यर्थ है, वही दशा पिताके बिना बालककी होती है। जैसे वृक्षके बिना वन, जलके बिना नदी और वेगहीन घोड़ा निरर्थक होता है, वैसी ही पिताके बिना बालककी दशा होती है[१]। माँ! जैसे याचक मनुष्य-लोकमें अत्यन्त लघु समझा जाता है, उसी प्रकार पितृहीन बालक बहुत दुःख उठाता है।

---

१. चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः। पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः॥
धर्महीनो यथा जन्तुः कर्महीनो यथा गृही। पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भकः॥
सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा। तपो यथा दयाहीनं तथा पित्रा विनार्भकः॥
वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी। वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भकः॥
(ना० पूर्व० ८। २१—२४)

पुत्रकी यह बात सुनकर रानी लंबी साँस खींचकर दु:खमें डूब गयी। उसने सगरके पूछनेपर उसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। यह सब वृत्तान्त सुनकर सगरको बड़ा क्रोध हुआ। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, 'मैं शत्रुओंका नाश कर डालूँगा।' फिर और्व मुनिकी परिक्रमा करके माताको प्रणाम किया और मुनिसे आज्ञा लेकर वहाँसे प्रस्थान किया। और्वके आश्रमसे निकलनेपर सत्यवादी एवं पवित्र राजकुमार सगरको उनके कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मिल गये। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने कुलगुरु महात्मा वसिष्ठको प्रणाम करके सगरने अपना सब समाचार बताया; यद्यपि वे ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ पहलेसे ही जानते थे। राजा सगरने उन्हीं महर्षिसे ऐन्द्र, वारुण, ब्राह्म और आग्नेय-अस्त्र तथा उत्तम खड्ग तथा वज्रके समान सुदृढ़ धनुष प्राप्त किया। तदनन्तर शुद्ध हृदयवाले सगरने मुनिकी आज्ञा ले उनके आशीर्वादसे समादृत हो उन्हें प्रणाम करके तत्काल वहाँसे यात्रा की। शूरवीर सगरने एक ही धनुषसे अपने विरोधियोंको पुत्र-पौत्र और सेनासहित स्वर्गलोक पहुँचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए अग्निसदृश बाणोंसे संतप्त होकर कितने ही शत्रु नष्ट हो गये और कितने ही भयभीत होकर भाग गये। शक, यवन तथा अन्य बहुत-से राजा प्राण बचानेकी इच्छासे तुरंत वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। इस प्रकार भूमण्डलपर विजय प्राप्त करके बाहुपुत्र सगर शीघ्र ही आचार्य वसिष्ठके समीप आये। उन्हें अपने गुप्तचरोंसे यह बात मालूम हो गयी थी कि हमारे शत्रु गुरुजीकी शरणमें गये हैं। बाहुपुत्र सगरको आया हुआ सुनकर महर्षि वसिष्ठ शरणागत राजाओंकी रक्षा करने तथा अपने शिष्य सगरकी प्रसन्नताके लिये क्षणभर विचार करने लगे। फिर उन्होंने कितने ही राजाओंके सिर मुँड़वा दिये और कितने ही राजाओंकी दाढ़ी-मूँछ मुँड़वा दी। यह देखकर सगर हँस पड़े और अपने तपोनिधि गुरुसे इस प्रकार बोले।

**सगरने कहा**—गुरुदेव! आप इन दुराचारियोंकी व्यर्थ रक्षा करते हैं। इन्होंने मेरे पिताके राज्यका अपहरण कर लिया था, अत: मैं सब प्रकारसे इनका संहार कर डालूँगा। पापात्मा दुष्ट मनुष्य तबतक दुष्टता करते हैं, जबतक कि उनकी शक्ति प्रबल होती है। इसलिये शत्रु यदि दास बनकर आये, वेश्याएँ सौहार्द दिखायें और साँप साधुता प्रकट करें तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्रूर मनुष्य पहले तो जीभसे बड़ी कठोर बातें बोलते हैं, किंतु जब निर्बल पड़ जाते हैं तो उसी जीभसे बड़ी करुणाजनक बातें कहने लगते हैं। जिसको अपने कल्याणकी इच्छा हो, वह नीतिशास्त्रका ज्ञाता पुरुष दुष्टोंके दम्भपूर्ण साधुभाव और दासभावपर कभी विश्वास न करे। नम्रता दिखाते हुए दुर्जन, कपटी मित्र और दुष्टस्वभाववाली स्त्रीपर विश्वास करनेवाला पुरुष मृत्युतुल्य खतरेमें ही है। अत: गुरुदेव! आप इनकी प्राणरक्षा न करें। ये रूप तो गौका-सा बनाकर आये हैं, परंतु इनका कर्म व्याघ्रोंके समान है। इन सब दुष्टोंका वध करके मैं आपकी कृपासे इस पृथ्वीका पालन करूँगा।

**वसिष्ठ बोले**—महाभाग! तुम्हें अनेकानेक साधुवाद है। सुव्रत! तुम ठीक कहते हो। फिर भी मेरी बात सुनकर तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी। राजन्! सभी जीव कर्मोंकी रस्सीमें बँधे हुए हैं, तथापि जो अपने पापोंसे ही मारे गये हैं, उन्हें फिर किसलिये मारते हो? यह शरीर पापसे उत्पन्न हुआ और पापसे ही बढ़ रहा है। इसे पापमूलक जानकर भी तुम क्यों इसका वध करनेको उद्यत हुए हो? तुम वीर क्षत्रिय हो। इस पापमूलक

शरीरको मारकर तुम्हें कौन-सी कीर्ति प्राप्त होगी? ऐसा विचारकर इन लोगोंको मत मारो।

गुरु वसिष्ठका यह वचन सुनकर सगरका क्रोध शान्त हो गया। उस समय मुनि भी सगरके शरीरपर अपना हाथ फेरते हुए बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर महर्षि वसिष्ठने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अन्य मुनियोंके साथ महात्मा सगरका राज्याभिषेक किया। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—केशिनी और सुमति। नारदजी! ये दोनों विदर्भराज काश्यपकी कन्याएँ थीं। एक समय राजा सगरकी दोनों पत्नियोंद्वारा प्रार्थना करनेपर भृगुवंशी मन्त्रवेत्ता और्व मुनिने उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिये वर दिया। वे मुनीश्वर तीनों कालकी बातें जानते थे। उन्होंने क्षणभर ध्यानमें स्थित होकर केशिनी और सुमतिका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा।

**और्व बोले**—महाभागे! तुम दोनोंमेंसे एक रानी तो एक ही पुत्र प्राप्त करेगी; किंतु वह वंशको चलानेवाला होगा। परंतु दूसरी केवल संतानविषयक इच्छाकी पूर्तिके लिये साठ हजार पुत्र पैदा करेगी। तुमलोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे एक-एक वर माँग लो।

और्व मुनिका यह वचन सुनकर केशिनीने वंशपरम्पराके हेतुभूत एक ही पुत्रका वरदान माँगा तथा रानी सुमतिके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठ! केशिनीके पुत्रका नाम था असमञ्जस। दुष्ट असमञ्जस उन्मत्तकी-सी चेष्टा करने लगा। उसकी देखा-देखी सगरके सभी पुत्र बुरे आचरण करने लगे। इन सबके दूषित कर्मोंको देखकर बाहुपुत्र राजा सगर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने पुत्रोंके निन्दित कर्मपर भलीभाँति विचार किया। वे सोचने लगे—अहो! इस संसारमें दुष्टोंका सङ्ग अत्यन्त कष्ट देनेवाला है। तदनन्तर असमञ्जसके अंशुमान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ा धर्मात्मा, गुणवान् और शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह सदा अपने पितामह राजा सगरके हितमें संलग्न रहता था। सगरके सभी दुराचारी पुत्र लोकमें उपद्रव करने लगे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्यमें सदा विघ्न डाला करते थे। वे दुष्ट राजकुमार सदा मद्यपान करते और पारिजात आदि दिव्य वृक्षोंके फूल लाकर अपने शरीरको सजाते थे। उन्होंने साधु पुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। यह सब देखकर इन्द्र आदि देवता अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो इन सगरपुत्रोंके नाशके लिये कोई उत्तम उपाय सोचने लगे। सब देवता कुछ निश्चय करके पातालकी गुफामें रहनेवाले देवदेवेश्वर भगवान् कपिलके समीप गये। कपिलजी अपने मनसे परमानन्दस्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे। देवताओंने भूमिपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की।

**देवता बोले**—भगवन्! आप योगशक्तियोंसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप सांख्ययोगमें रत रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप नररूपसे छिपे हुए नारायण हैं, आपको नमस्कार है। संसाररूपी वनको भस्म करनेके लिये आप दावानलके समान हैं तथा धर्मपालनके लिये सेतुरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप महान् वीतराग महात्मा हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। हम सब देवता सगरके पुत्रोंसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

**कपिलजीने कहा**—श्रेष्ठ देवगण? जो लोग इस जगत्में अपने यश, बल, धन और आयुका नाश चाहते हैं, वे ही लोगोंको पीड़ा देते हैं। जो सर्वदा मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरोंको पीड़ा देते हैं, उन्हें दैव ही शीघ्र नष्ट कर देता है। थोड़े

ही दिनोंमें इन सगरपुत्रोंका नाश हो जायगा।

महात्मा कपिल मुनिके ऐसा कहनेपर देवता विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये। इसी बीचमें राजा सगरने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके सहयोगसे परम उत्तम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञके लिये नियुक्त किये हुए घोड़ेको देवराज इन्द्रने चुरा लिया और पातालमें जहाँ कपिल मुनि रहते थे, वहीं ले जाकर बाँध दिया। इन्द्रके द्वारा चुराये हुए उस अश्वको खोजनेके लिये सगरके सभी पुत्र आश्चर्यचकित होकर भू आदि लोकोंमें घूमने लगे। जब ऊपरके लोकोंमें कहीं भी उन्हें वह अश्व दिखायी नहीं दिया, तब वे पातालमें जानेको उद्यत हुए। फिर तो सारी पृथ्वीको खोदना शुरू किया। एक-एकने अलग-अलग एक-एक योजन भूमि खोद डाली। खोदी हुई मिट्टीको उन्होंने समुद्रके तटपर बिखेर दिया और उसी द्वारसे वे सभी सगरपुत्र पाताललोकमें जा पहुँचे। वे सब अविवेकी मदसे उन्मत्त हो रहे थे। पातालमें सब ओर उन्होंने अश्वको ढूँढ़ना आरम्भ किया। खोजते-खोजते वहाँ उन्हें करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली महात्मा कपिलका दर्शन हुआ। वे ध्यानमें तन्मय थे। उनके पास ही वह घोड़ा भी दिखायी दिया। फिर तो वे सभी अत्यन्त क्रोधमें भर गये और मुनिको देखकर उन्हें मार डालनेका विचार करके वेगपूर्वक दौड़ते हुए उनपर टूट पड़े। उस समय आपसमें एक-दूसरेसे वे इस प्रकार कह रहे थे—'इसे मार डालो, मार डालो। बाँध लो, बाँध लो। पकड़ो, जल्दी पकड़ो। देखो न, घोड़ा चुराकर यहाँ साधुरूपमें बगुलेकी भाँति ध्यान लगाये बैठा है। अहो! संसारमें ऐसे भी खल हैं, जो बड़े-बड़े आडम्बर रचते हैं।' इस तरहकी बातें बोलते हुए वे मुनीश्वर कपिलका उपहास करने लगे। कपिलजी अपने समस्त इन्द्रियवर्ग और बुद्धिको आत्मामें स्थिर करके ध्यानमें तत्पर थे; अतः उनकी इस करतूतका उन्हें कुछ भी पता नहीं चला। सगरपुत्रोंकी मृत्यु निकट थी, इसलिये उन लोगोंकी बुद्धि मारी गयी थी। वे मुनिको लातोंसे मारने लगे। कुछ लोगोंने उनकी बाहें पकड़ लीं। तब मुनिकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्होंने विस्मित होकर लोकमें उपद्रव करनेवाले सगरपुत्रोंको लक्ष्य करके गम्भीरभावसे युक्त यह वचन कहा—'जो ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हैं, जो भूखसे पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहंकारसे मूढ़ हो रहे हैं—ऐसे मनुष्योंको विवेक नहीं होता[१]। यदि दुष्ट मनुष्य सज्जनोंको सताते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है? नदीका वेग किनारेपर उगे हुए वृक्षोंको भी गिरा देता है। जहाँ धन है, जवानी है तथा परायी स्त्री भी है, वहाँ सदा सब अन्धे और मूर्ख बने रहते हैं। दुष्टके पास लक्ष्मी हो तो वह लोकका विनाश करनेवाली ही होती है। जैसे वायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमें सहायक होता है और जैसे दूध साँपके विषको बढ़ानेमें कारण होता है, उसी प्रकार दुष्टकी लक्ष्मी उसकी दुष्टताको बढ़ा देती है। अहो! धनके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता। यदि वह अपने हितको देखता है तभी वह वास्तवमें देखता है।'

ऐसा कहकर कपिलजीने कुपित हो अपने नेत्रोंसे आग प्रकट की। उस आगने समस्त सगरपुत्रोंको क्षणभरमें जलाकर भस्म कर डाला। उनकी नेत्राग्निको देखकर पातालनिवासी जीव शोकमें डूब गये और असमयमें प्रलय हुआ

१. ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम्। अहङ्कारविमूढानां विवेको नैव जायते॥ (ना० पूर्व० ८। १०३)

जानकर चीत्कार करने लगे। उस अग्निसे संतप्त हो सम्पूर्ण सर्प तथा राक्षस समुद्रमें शीघ्रतापूर्वक समा गये। अवश्य ही साधु-महात्माओंका कोप दुस्सह होता है।

तदनन्तर देवदूतने राजाके यज्ञमें आकर यजमान सगरको वह सब समाचार बताया। राजा सगर सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। यह सब वृत्तान्त सुनकर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—दैवने ही उन दुष्टोंको दण्ड दे दिया। माता, पिता, भाई अथवा पुत्र जो भी पाप करता है, वही शत्रु माना गया है। जो पापमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंके साथ विरोध करता है, उसे महान् शत्रु समझना चाहिये—यही शास्त्रोंका निर्णय है। मुनीश्वर नारदजी! राजा सगरने अपने पुत्रोंका नाश होनेपर भी शोक नहीं किया; क्योंकि दुराचारियोंकी मृत्यु साधु पुरुषोंके लिये संतोषका कारण होती है। 'पुत्रहीन पुरुषोंका यज्ञमें अधिकार नहीं है'। धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा होनेके कारण महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌को ही दत्तक पुत्रके रूपमें गोद ले लिया। सारग्राही राजा सगरने बुद्धिमान् और विद्वानोंमें श्रेष्ठ अंशुमान्‌को अश्व ढूँढ़ लानेके कार्यमें नियुक्त किया। अंशुमान्‌ने उस गुफाके द्वारपर जाकर तेजोराशि मुनिवर कपिलको देखा और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर दोनों हाथोंको जोड़कर वह विनयपूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया और शान्तचित्त सनातन देवदेव कपिलसे इस प्रकार बोला।

**अंशुमान्‌ने कहा**—ब्रह्मन्! मेरे पिताके भाइयोंने यहाँ आकर जो दुष्टता की है, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि साधु पुरुष सदा दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं और क्षमा ही उनका बल है। संत-महात्मा दुष्ट जीवोंपर भी दया करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालके घरसे अपनी चाँदनी खींच नहीं लेते हैं। सज्जन पुरुष दूसरोंसे सताये जानेपर भी सबके लिये सुखकारक ही होता है। देवताओंद्वारा अपनी अमृतमयी कलाके भक्षण किये जानेपर भी चन्द्रमा उन्हें परम संतोष ही देता है। चन्दनको काटा जाय या छेदा जाय, वह अपनी सुगन्धसे सबको सुवासित करता रहता है। साधु पुरुषोंका भी ऐसा ही स्वभाव होता है। पुरुषोत्तम! आपके गुणोंको जाननेवाले मुनीश्वरगण ऐसा मानते हैं कि आप क्षमा, तपस्या तथा धर्माचरणद्वारा समस्त लोकोंको शिक्षा देनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। मुने! आप ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वभावतः ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं और सदा ब्रह्मचिन्तनमें लगे रहते हैं, आपको नमस्कार है।

अंशुमान्‌के इस प्रकार स्तुति करनेपर कपिल मुनिका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उस समय वे बोले—'निष्पाप राजकुमार! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' मुनिके ऐसा कहनेपर अंशुमान्‌ने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! हमारे इन पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा दें।' तब कपिल मुनि अंशुमान्‌पर

अत्यन्त प्रसन्न हो आदरपूर्वक बोले—'राजकुमार! तुम्हारा पौत्र यहाँ गङ्गाजीको लाकर अपने पितरोंको स्वर्गलोक पहुँचायेगा। वत्स! तुम्हारे पौत्र भगीरथद्वारा लायी हुई पुण्यसलिला गङ्गा नदी इन सगरपुत्रोंके पाप धोकर इन्हें परम पदकी प्राप्ति करा देगी। बेटा! इस घोड़ेको ले जाओ, जिससे तुम्हारे पितामहका यज्ञ पूर्ण हो जाय।' तब अंशुमान् अपने पितामहके पास लौट गये और उन्हें अश्वसहित सब समाचार निवेदन किया। सगरने उस पशुके द्वारा ब्राह्मणोंके साथ वह यज्ञ पूर्ण किया और तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके वे वैकुण्ठधामको चल गये। अंशुमान्के दिलीप नामक पुत्र हुआ। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जो दिव्य लोकसे गङ्गाजीको इस भूतलपर ले आये। मुने! भगीरथकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माजीने उन्हें गङ्गा दे दी; फिर भगीरथ, गङ्गाजीको धारण कौन करेगा—इस विषयमें विचार करने लगे। तदनन्तर भगवान् शिवकी आराधना करके उनकी सहायतासे वे देवनदी गङ्गाको पृथ्वीपर ले आये और उनके जलसे स्पर्श कराकर पवित्र हुए पितरोंको उन्होंने दिव्य स्वर्गलोकमें पहुँचा दिया।

## बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय तथा अदितिकी तपस्या

**नारदजीने कहा**—भाईजी! यदि मैं आपकी कृपाका पात्र होऊँ तो भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभावसे उत्पन्न हुई जो गङ्गा बतायी जाती हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा मुझसे कहिये।

**श्रीसनकजी बोले**—निष्पाप नारदजी! मैं गङ्गाकी उत्पत्ति बताता हूँ, सुनिये। वह कथा कहने और सुननेवालेके लिये भी पुण्यदायिनी है तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। कश्यप नामसे प्रसिद्ध एक मुनि हो गये हैं। वे ही इन्द्र आदि देवताओंके जनक हैं। दक्ष-पुत्री दिति और अदिति—ये दोनों उनकी पत्नियाँ हैं। अदिति देवताओंकी माता है और दिति दैत्योंकी जननी। ब्रह्मन्! उन दोनोंके दो पुत्र हैं, वे सदा एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। दितिका पुत्र आदिदैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा बलवान् था। उसके पुत्र प्रह्लाद हुए। वे दैत्योंमें बड़े भारी संत थे। प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, जो ब्राह्मणभक्त था। विरोचनके पुत्र बलि हुए, जो अत्यन्त तेजस्वी और प्रतापी थे। मुने! बलि ही दैत्योंके सेनापति हुए। वे बहुत बड़ी सेनाके साथ इस पृथ्वीका राज्य भोगते थे। समूची पृथ्वीको जीतकर स्वर्गको भी जीत लेनेका विचार कर वे युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने विशाल सेनाके साथ देवलोकको प्रस्थान किया। देवशत्रु बलिने स्वर्गलोकमें पहुँचकर सिंहके समान पराक्रमी दैत्योंद्वारा इन्द्रकी राजधानीको घेर लिया। तब इन्द्र आदि देवता भी युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले। तदनन्तर देवताओं और दैत्योंमें घोर युद्ध छिड़ गया। दैत्योंने देवताओंकी सेनापर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इसी प्रकार देवता भी दैत्यसेनापर बाणवर्षा करने लगे। तदनन्तर दैत्यगण भी देवताओंपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा घातक प्रहार करने लगे। पत्थर, भिन्दिपाल, खड्ग, परशु, तोमर, परिघ, क्षुरिका, कुन्त, चक्र, शङ्कु, मूसल, अङ्कुश, लाङ्गल, पट्टिश, शक्ति, उपल, शतघ्नी, पाश, थप्पड़, मुक्के, शूल, नालीक, नाराच, दूरसे फेंकनेयोग्य अन्यान्य अस्त्र तथा मुद्गरसे वे देवताओंको मारने

लगे। रथ, अश्व, गज और पैदल सेनाओंसे खचाखच भरा हुआ वह युद्ध निरन्तर बढ़ने लगा। देवताओंने भी दैत्योंपर अनेक प्रकारके अस्त्र चलाये। इस प्रकार एक हजार वर्षोंतक वह युद्ध चलता रहा। अन्तमें दैत्योंका बल बढ़ जानेके कारण देवता परास्त हो गये और सब-के-सब भयभीत हो स्वर्गलोक छोड़कर भाग गये। वे मनुष्योंके रूपमें छिपकर पृथ्वीपर विचरने लगे। विरोचनकुमार बलि भगवान् नारायणकी शरण ले अव्याहत ऐश्वर्य, बढ़ी हुई लक्ष्मी और महान् बलसे सम्पन्न हो त्रिभुवनका राज्य भोगने लगे। उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये तत्पर होकर अनेक अश्वमेध यज्ञ किये। बलि स्वर्गमें रहकर इन्द्र और दिक्पाल—दोनों पदोंका—उपभोग करते थे। देवमाता अदिति अपने पुत्रोंकी यह दशा देखकर बहुत दुःखी हुईं। उन्होंने यह सोचकर कि अब मेरा यहाँ रहना व्यर्थ है, हिमालयको प्रस्थान किया। वहाँ इन्द्रका ऐश्वर्य तथा दैत्योंकी पराजय चाहती हुई वे भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगीं। कुछ कालतक वे निरन्तर बैठी ही रहीं। उसके बाद दीर्घकालतक दोनों पैरोंसे खड़ी रहीं। तदनन्तर बहुत समयतक एक पैरसे और फिर उस एक पैरकी अँगुलियोंके ही बलपर खड़ी रहीं। कुछ कालतक तो वे फलाहार करती रहीं, फिर सूखे पत्ते खाकर रहने लगीं। उसके बाद बहुत दिनोंतक जल पीकर रहीं, फिर वायुके आहारपर रहने लगीं और अन्तमें उन्होंने सर्वथा आहार त्याग दिया। नारदजी! अदिति अपने अन्तःकरणद्वारा सच्चिदानन्दघन परमात्माका ध्यान करती हुई एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्यामें लगी रहीं।

तदनन्तर दैत्योंने अदितिको ध्यानसे विचलित करनेके लिये अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे अग्नि प्रकट की, जिसने उस वनको क्षणभरमें जला दिया। उसका विस्तार सौ योजन था और वह नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा हुआ था। जो दैत्य अदितिका अपमान करनेके लिये गये थे, वे सब उसी अग्निसे जलकर भस्म हो गये। केवल देवमाता अदिति ही जीवित बची थीं, क्योंकि दैत्योंका विनाश और स्वजनोंपर अनुकम्पा

करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रने उनकी रक्षा की थी।

## अदितिको भगवद्दर्शन और वरप्राप्ति, वामनजीका अवतार, बलि-वामन-संवाद, भगवान्‌का तीन पैरसे समस्त ब्रह्माण्डको लेकर बलिको रसातल भेजना

**नारदजीने पूछा—** भाईजी! आपने यह बड़ी अद्भुत बात बतायी है। मैं जानना चाहता हूँ कि उस अग्निने अदितिको छोड़कर उन दैत्योंको ही क्षणभरमें कैसे जला दिया। आप अदितिके महान् सत्त्वका वर्णन कीजिये, जो विशेष आश्चर्यका कारण है; क्योंकि मुनीश्वर साधु पुरुष सदा दूसरोंको उपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं।

**सनकजीने कहा—** नारदजी! जिनका मन भगवान्‌के भजनमें लगा हुआ है, ऐसे संतोंकी महिमा सुनिये। भगवान्‌के चिन्तनमें लगे हुए साधु पुरुषोंको बाधा देनेमें कौन समर्थ हो सकता है? जहाँ भगवान्‌का भक्त रहता है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और साधु-संत नित्य निवास करते हैं। महाभाग! शान्तचित्तवाले हरिनामपरायण भक्तोंके भी हृदयमें भगवान् विष्णु सदा विराजते हैं, फिर जो निरन्तर उन्हींके ध्यानमें लगे हुए हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है? भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ अथवा भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर हुआ भक्त पुरुष जहाँ रहता है, वहीं लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। जहाँ भगवान् विष्णुकी उपासनामें संलग्न भक्त पुरुष वास करता है, वहाँ अग्नि बाधा नहीं पहुँचा सकती। राजा, चोर अथवा रोग-व्याधि भी कष्ट नहीं दे सकते हैं। प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, बालग्रह, डाकिनी तथा राक्षस—ये भगवान् विष्णुकी आराधना करनेवाले पुरुषको पीड़ा नहीं दे सकते। जितेन्द्रिय, सबका हितकारी तथा धर्म-कर्मका पालन करनेवाला पुरुष जहाँ रहता है, वहीं सम्पूर्ण तीर्थ और देवता वास करते हैं। जहाँ एक या आधे पल भी योगी महात्मा पुरुष ठहरते हैं, वहीं सब श्रेय हैं, वहीं तीर्थ है, वही तपोवन है। जिनके नामकीर्तनसे, स्तोत्रपाठसे अथवा पूजनसे भी सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, फिर उनके ध्यानसे उपद्रवोंका नाश हो, इसके लिये कहना ही क्या है? ब्रह्मन्! इस प्रकार दैत्योंद्वारा प्रकट की हुई उस अग्निसे दैत्योंसहित सारा वन दग्ध हो गया, किंतु देवमाता अदिति नहीं जलीं; क्योंकि वे भगवान् विष्णुके चक्रसे सुरक्षित थीं।

तदनन्तर कमलदलके समान विकसित नेत्र और प्रसन्न मुखवाले शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु अदितिके समीप प्रकट हुए। उनके मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी और चमकीले दाँतोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। उन्होंने अपने पवित्र हाथसे कश्यपजीकी प्यारी पत्नी अदितिका स्पर्श करते हुए कहा।

**श्रीभगवान् बोले—** देवमाता! तुमने तपस्याद्वारा मेरी आराधना की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुमने बहुत समयतक कष्ट उठाया है। अब तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संदेह नहीं है। तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, वह वर माँगो, मैं अवश्य दूँगा। भद्रे! भय न करो। महाभागे! तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवमाता अदितिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सम्पूर्ण जगत्‌को सुख देनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की।

**अदिति बोलीं—** देवदेवेश्वर! सर्वव्यापी जनार्दन! आपको नमस्कार है। आप ही सत्त्व आदि गुणोंके भेदसे जगत्‌के पालन आदि व्यवहार चलानेके

कारण हैं। आप रूपरहित होते हुए भी अनेक रूप धारण करते हैं। आप परमात्माको नमस्कार है। सबसे एकरूपता (अभिन्नता) ही आपका स्वरूप है। आप निर्गुण एवं गुणस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और परम ज्ञानरूप हैं। श्रेष्ठ भक्तजनोंके प्रति वात्सल्यभाव सदा आपकी शोभा बढ़ाता रहता है। आप मङ्गलमय परमात्माको नमस्कार है। मुनीश्वरगण जिनके अवतार-स्वरूपोंकी सदा पूजा करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान्‌को मैं अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रणाम करती हूँ। जिन्हें श्रुतियाँ नहीं जानतीं, उनके ज्ञाता विद्वान् पुरुष भी नहीं जानते, जो इस जगत्के कारण हैं तथा मायाको साथ रखते हुए भी मायासे सर्वथा पृथक् हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार करती हूँ। जिनकी अद्भुत कृपादृष्टि मायाको दूर भगा देनेवाली है, जो जगत्के कारण तथा जगत्स्वरूप हैं, उन विश्ववन्दित भगवान्‌की मैं वन्दना करती हूँ। जिनके चरणारविन्दोंकी धूलके सेवनसे सुशोभित मस्तकवाले भक्तजन परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं, उन भगवान् कमलाकान्तको मैं नमस्कार करती हूँ। ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी महिमाको पूर्णरूपसे नहीं जानते तथा जो भक्तोंके अत्यन्त निकट रहते हैं, उन भक्तसङ्गी भगवान्‌को मैं प्रणाम करती हूँ। वे करुणासागर भगवान् जगत्के सङ्गका त्याग करके शान्तभावसे रहनेवाले भक्तजनोंको अपना सङ्ग प्रदान करते हैं, उन सङ्गरहित श्रीहरिको मैं प्रणाम करती हूँ। जो यज्ञोंके स्वामी, यज्ञोंके भोक्ता, यज्ञकर्मोंमें स्थित रहनेवाले यज्ञकर्मके बोधक तथा यज्ञोंके फलदाता हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करती हूँ। पापात्मा अजामिल भी जिनके नामोच्चारणके पश्चात् परम धामको प्राप्त हो गया, उन लोकसाक्षी भगवान्‌को मैं प्रणाम करती हूँ। जो विष्णुरूपी शिव और शिवरूपी विष्णु होकर इस जगत्के संचालक हैं, उन जगद्गुरु भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करती हूँ। ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जिनकी मायाके पाशमें बँधे होनेके कारण जिनके परमात्मभावको नहीं समझ पाते, उन भगवान् सर्वेश्वरको मैं प्रणाम करती हूँ। जो सबके हृदयकमलमें स्थित होकर भी अज्ञानी पुरुषोंको दूरस्थ-से प्रतीत होते हैं तथा जिनकी सत्ता प्रमाणोंसे परे है, उन ज्ञानसाक्षी परमेश्वरको मैं नमस्कार करती हूँ। जिनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुआ है, दोनों भुजाओंसे क्षत्रियकी उत्पत्ति हुई है, ऊरुओंसे वैश्य उत्पन्न हुआ है और दोनों चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है; जिनके मनसे चन्द्रमा प्रकट हुआ है, नेत्रसे सूर्यका प्रादुर्भाव हुआ है; मुखसे अग्नि और इन्द्रकी तथा कानोंसे वायुकी उत्पत्ति हुई है; ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनके स्वरूप हैं, जो संगीतविषयक सातों स्वरोंके भी आत्मा हैं, व्याकरण आदि छः अङ्ग भी जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं आप परमेश्वरको मेरा बारम्बार नमस्कार है। भगवन्! आप ही इन्द्र, वायु और चन्द्रमा हैं। आप ही ईशान (शिव) और आप ही यम हैं। अग्नि और निर्ऋति भी आप ही हैं। आप ही वरुण एवं सूर्य हैं। देवता, स्थावर वृक्ष आदि, पिशाच, राक्षस, सिद्ध, गन्धर्व, पर्वत, नदी, भूमि और समुद्र भी आपके स्वरूप हैं। आप ही जगदीश्वर हैं, जिनसे परात्पर तत्त्व दूसरा कोई नहीं है। देव! सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है, इसलिये सदा आपको नमस्कार है। नाथनाथ! सर्वज्ञ! आप ही सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हैं। वेद आपका ही स्वरूप है। जनार्दन! दैत्योंद्वारा सताये हुए मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके देवमाता अदितिने भगवान्‌को बारम्बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा। उस समय आनन्दके आँसुओंसे उनका वक्षःस्थल भीग रहा था। (वे बोलीं—)

'देवेश! आप सबके आदिकारण हैं। मैं आपकी कृपाकी पात्र हूँ। मेरे देवलोकवासी पुत्रोंको अकण्टक राज्यलक्ष्मी दीजिये। अन्तर्यामिन्! विश्वरूप! सर्वज्ञ! परमेश्वर! लक्ष्मीपते! आपसे क्या छिपा हुआ है? प्रभो! आप मुझसे पूछकर मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं? तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मेरे मनमें जो अभिलाषा है, वह आपको बताऊँगी। देवेश्वर! मैं दैत्योंसे पीड़ित हो रही हूँ। मेरे पुत्र इस समय मेरी रक्षा न कर सकनेके कारण व्यर्थ हो गये हैं। मैं दैत्योंका भी वध करना नहीं चाहती, क्योंकि वे भी मेरे पुत्र ही हैं। सुरेश्वर! उन दैत्योंको मारे बिना ही मेरे पुत्रोंको सम्पत्ति दे दीजिये।' नारदजी! अदितिके ऐसा कहनेपर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु पुन: बहुत प्रसन्न हुए और देवमाताको आनन्दित करते हुए आदरपूर्वक बोले।

**श्रीभगवान‍्ने कहा**—देवि! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा; क्योंकि सौतके पुत्रोंपर इतना वात्सल्य तुम्हारे सिवा अन्यत्र दुर्लभ है। तुमने जो स्तुति की है, उसको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उन्हें श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होगी और उनके पुत्र कभी हीन दशामें नहीं पड़ेंगे। जो अपने तथा दूसरेके पुत्रपर समानभाव रखता है, उसे कभी पुत्रका शोक नहीं होता—यह सनातन धर्म है[१]।

**अदिति बोलीं**—देव! आप सबके आदिकारण और परम पुरुष हैं। मैं आपको अपने गर्भमें धारण करनेमें असमर्थ हूँ। आपके एक-एक रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। आप सबके ईश्वर तथा कारण हैं। प्रभो! सम्पूर्ण देवता और श्रुतियाँ भी जिनके प्रभावको नहीं जानतीं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान‍्को मैं गर्भमें कैसे धारण करूँगी? आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा तथा परात्पर परमेश्वर हैं। देव! आप पुरुषोत्तमको मैं कैसे गर्भमें धारण करूँगी? महापातकी मनुष्य भी जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है, वे परमात्मा ग्राम्यजनोंके बीच जन्म कैसे धारण कर सकते हैं? प्रभो! जैसे आपके मत्स्य और शूकर अवतार हो गये हैं, वैसा ही यह भी होगा। विश्वेश! आपकी लीलाको कौन जानता है? देव! मैं आपके चरणारविन्दोंमें प्रणत होकर आपके ही नाम-स्मरणमें लगी हुई सदा आपका ही चिन्तन करती हूँ। आपको जैसी रुचि हो, वैसा करें।

**श्रीसनकजीने कहा**—अदितिका वचन सुनकर देवताओंके भी देवता भगवान् जनार्दनने देवमाताको अभयदान दिया और इस प्रकार कहा।

**श्रीभगवान् बोले**—महाभागे! तुमने सत्य कहा है। इसमें संशय नहीं है। शुभे! तथापि मैं तुम्हें एक गोपनीयसे भी गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, सुनो। जो राग-द्वेषसे शून्य, दूसरोंमें कभी दोष नहीं देखनेवाले और दम्भसे दूर रहनेवाले मेरे शरणागत भक्त हैं, वे सदा मुझे धारण कर सकते हैं। जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते और मेरी कथा सुननेमें अनुराग रखते हैं, वे सदा मुझे अपने हृदयमें धारण करते हैं। देवि! जिन्होंने पति-भक्तिका आश्रय लिया है, पति ही जिनका प्राण है और जो आपसमें कभी डाह नहीं रखतीं, ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ भी सदा मुझे अपने भीतर धारण कर सकती हैं। जो माता-पिताका सेवक, गुरुभक्त, अतिथियोंका प्रेमी और ब्राह्मणोंका हितकारी है, वह सदा मुझे

१. स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा य: समत्वेन वर्तते । न तस्य पुत्रशोक: स्यादेष धर्म: सनातन:॥

(ना० पूर्व० ११ । ४८)

धारण करता है। जो सदा पुण्यतीर्थोंका सेवन करते, सत्सङ्गमें लगे रहते और स्वभावसे ही सम्पूर्ण जगत्पर कृपा रखते हैं, वे मुझे सदा अपने हृदयमें धारण करते हैं। जो परोपकारमें तत्पर, पराये धनके लोभसे विमुख और परायी स्त्रियोंके प्रति नपुंसक होते हैं, वे भी सदा मुझे अपने भीतर धारण करते हैं[१]। जो तुलसीकी उपासनामें लगे हैं, सदा भगवन्नामके जपमें तत्पर हैं और गौओंकी रक्षामें संलग्न रहते हैं, वे सदा मुझे हृदयमें धारण करते हैं। जो दान नहीं लेते, पराये अन्नका सेवन नहीं करते और स्वयं दूसरोंको अन्न और जलका दान देते हैं, वे भी सदा मुझे धारण करते हैं। देवि! तुम तो सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर पतिप्राणा साध्वी स्त्री हो, अतः मैं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।

देवमाता अदितिसे ऐसा कहकर देवदेवेश्वर

भगवान् विष्णुने अपने कण्ठकी माला उतारकर उन्हें दे दी और अभयदान देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर दक्षकुमारी देवमाता अदिति प्रसन्नचित्तसे भगवान् कमलाकान्तको पुनः प्रणाम करके अपने स्थानपर लौट आयीं। फिर समय आनेपर विश्ववन्दित महाभागा अदितिने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सर्वलोकनमस्कृत पुत्रको जन्म दिया। वह बालक चन्द्रमण्डलके मध्य विराजमान और परम शान्त था। उसने एक हाथमें शङ्ख और दूसरेमें चक्र ले रखा था। तीसरे हाथमें अमृतका कलश और चौथेमें दधिमिश्रित अन्न था। यह भगवान्‌का सुप्रसिद्ध वामन अवतार था। भगवान् वामनकी कान्ति सहस्रों सूर्योंके समान उज्ज्वल थी। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरधारी श्रीहरि सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र नायक, स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करने योग्य तथा ऋषि-मुनियोंके ध्येय भगवान् विष्णुको प्रकट हुए जानकर महर्षि कश्यप हर्षसे विह्वल हो गये। उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम करके हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करना आरम्भ किया।

**कश्यपजी बोले**—सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टिके कारणभूत! आप परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त जगत्‌का पालन करनेवाले! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवताओंके स्वामी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योंका नाश करनेवाले देव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। भक्तजनोंके प्रियतम! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। साधु पुरुष आपको अपनी चेष्टाओंसे प्रसन्न करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दुष्टोंका नाश करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। उन जगदीश्वरको नमस्कार है, नमस्कार है। कारणवश वामनस्वरूप धारण करनेवाले

१. परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः। नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा॥
(ना० पूर्व० १२। ६२)

अमित पराक्रमी भगवान् नारायणको नमस्कार है, नमस्कार है। धनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवाले पुरुषोत्तमको नमस्कार है। क्षीरसागरमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। साधु-पुरुषोंके हृदयकमलमें विराजमान परमात्माको नमस्कार है। जिनकी अनन्त प्रभाकी सूर्य आदिसे तुलना नहीं की जा सकती, जो पुण्यकथामें आते और स्थित रहते हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंमें विराजित होते हैं, आपको नमस्कार है। साधु पुरुषोंके प्रियतम! आपको नमस्कार है। जगत्‌के कारणोंके भी कारण आपको नमस्कार है। प्राकृत शब्द, रूप आदिसे रहित आप परमेश्वरको नमस्कार है। दिव्य सुख प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। भक्तोंके हृदयमें वास करनेवाले आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारण करके अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। कच्छपरूपसे मन्दराचल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। यज्ञवराह-नामधारी आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामन-रूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रिय-कुलका संहार करनेवाले परशुरामरूपधारी आपको नमस्कार है। रावणका संहार करनेवाले श्रीराम-रूपधारी आपको नमस्कार है। नन्दसुत बलराम जिनके ज्येष्ठ भ्राता हैं, उन श्रीकृष्णावतारधारी आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। आप सबको सुख देनेवाले तथा स्मरणमात्र करनेपर सबकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। यज्ञेश! यज्ञस्थापक! यज्ञविघ्न-विनाशक! यज्ञरूप! और यजमानरूप परमेश्वर! आप ही यज्ञके सम्पूर्ण अङ्ग हैं। मैं आपका यजन करता हूँ।

कश्यपजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले देवेश्वर वामन हँसकर कश्यपजीका हर्ष बढ़ाते हुए बोले।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—तात! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। देवपूजित महर्षे? थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करूँगा। मैं पहले भी दो जन्मोंमें तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ तथा अब इस जन्ममें भी तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें उत्तम सुखकी प्राप्ति कराऊँगा।

इधर दैत्यराज बलिने भी अपने गुरु शुक्राचार्य तथा अन्य मुनीश्वरोंके साथ दीर्घकालतक चलनेवाला बहुत बड़ा यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञमें ब्रह्मवादी महर्षियोंने हविष्य ग्रहण करनेके लिये लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका आवाहन किया। जिसका ऐश्वर्य बहुत बढ़ा-चढ़ा था, उस दैत्यराज बलिके महायज्ञमें माता-पिताकी आज्ञा ले ब्रह्मचारी वामनजी भी गये। वे अपनी मन्द मुसकानसे सब लोगोंका मन मोहे लेते थे। भक्तवत्सल वामनके रूपमें भगवान् विष्णु मानो बलिके हविष्यका प्रत्यक्ष भोग लगानेके लिये आये थे। दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या पण्डित, जो भक्तिभावसे युक्त है, उसके अन्त:करणमें भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं। वामनजीको आते देख ज्ञानदृष्टिवाले महर्षिगण उन्हें साक्षात् भगवान् नारायण जानकर सभासदोंसहित उनकी अगवानीमें गये। यह जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य एकान्तमें बलिको कुछ सलाह देने लगे।

**शुक्राचार्य बोले**—दैत्यराज! सौम्य! तुम्हारी राजलक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये भगवान् विष्णु वामनरूपसे अदितिके पुत्र हुए हैं। वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। असुरेश्वर! तुम उन्हें कुछ न देना। तुम तो स्वयं विद्वान् हो। इस समय मेरा

जो मत है, उसे सुनो। अपनी बुद्धि ही सुख देनेवाली होती है। गुरुकी बुद्धि विशेषरूपसे सुखद होती है। दूसरेकी बुद्धि विनाशका कारण होती है और स्त्रीकी बुद्धि तो प्रलय करनेवाली होती है।

**बलिने कहा**—गुरुदेव! आपको इस प्रकार धर्ममार्गका विरोधी वचन नहीं कहना चाहिये। यदि साक्षात् भगवान् विष्णु मुझसे दान ग्रहण करते हैं तो इससे बढ़कर और क्या होगा? विद्वान् पुरुष भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते हैं, यदि साक्षात् विष्णु ही आकर हमारे हविष्यका भोग लगाते हैं तो संसारमें मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा? पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु जीवको उत्तम भक्तिभावसे स्मरण कर लेनेसे ही पवित्र कर देते हैं। जिस किसी भी वस्तुसे उनकी पूजा की जाय, वे परम गति दे देते हैं। दूषित चित्तवाले पुरुषोंके स्मरण करनेपर भी भगवान् विष्णु उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको बिना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला ही देती है। जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' यह दो अक्षर वास करता है, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है[१]। जो राग आदि दोषोंसे दूर रहकर सदा भगवान् गोविन्दका ध्यान करता है, वह वैकुण्ठधाममें जाता है—यह मनीषी पुरुषोंका कथन है। महाभाग गुरुदेव! अग्नि अथवा ब्राह्मणके मुखमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति-भाव रखते हुए जो हविष्यकी आहुति दी जाती है, उससे वे भगवान् प्रसन्न होते हैं। मैं तो केवल भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये ही उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करता हूँ। यदि स्वयं भगवान् यहाँ आ रहे हैं, तब तो मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संशय नहीं है।

दैत्यराज बलि जब ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने यज्ञशालामें प्रवेश किया। वह स्थान होमयुक्त प्रज्वलित अग्निके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा सुडौल अङ्गोंके कारण परम सुन्दर वामनजीको देखकर

राजा बलि सहर्ष खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया। बैठनेके लिये आसन देकर उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌के चरण पखारे और उस चरणोदकको कुटुम्बसहित मस्तकपर धारण करके बड़े आनन्दका अनुभव किया। जगदाधार भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक अर्घ्य देते-देते बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे और वे इस प्रकार बोले।

**बलिने कहा**—आज मेरा जन्म सफल हुआ।

१. हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(ना० पूर्व० ११। १००-१०१)

आज मेरा यज्ञ सफल हुआ और मेरा यह जीवन भी सफल हो गया। मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संदेह नहीं है। भगवन्! आज मेरे यहाँ अत्यन्त दुर्लभ अमोघ अमृतकी वर्षा हो गयी। आपके शुभागमनमात्रसे अनायास महान् उत्सव छा गया। इसमें संदेह नहीं कि ये सब ऋषि कृतार्थ हो गये। प्रभो! इन्होंने पहले जो तपस्या की थी, वह आज सफल हो गयी। मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ—इसमें संशय नहीं है। अतः भगवन्! आपको नमस्कार है, नमस्कार है और बारम्बार नमस्कार है। आपकी आज्ञासे आपके आदेशका पालन करूँ—ऐसा विचार मेरे मनमें हो रहा है। अतः प्रभो! आप पूर्ण उत्साहके साथ मुझे अपनी सेवाके लिये आज्ञा दें।

यज्ञमें दीक्षित यजमान बलिके ऐसा कहनेपर भगवान् वामन हँसकर बोले—'राजन्! मुझे तपस्याके निमित्त रहनेके लिये तीन पग भूमि दे दो। भूमिदानका माहात्म्य महान् है। वैसा दान न हुआ है, न होगा। भूमिदान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही परम मोक्ष पाता है। जिसने अग्निकी स्थापना की हो, उस श्रोत्रिय ब्राह्मणके लिये थोड़ी-सी भी भूमि दान करके मनुष्य पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लेता है। भूमिदाता सब कुछ देनेवाला कहा गया है। भूमिदान करनेवाला मोक्षका भागी होता है। भूमिदानको अतिदान समझना चाहिये। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। कोई महापातकसे युक्त अथवा समस्त पातकोंसे दूषित हो तो भी दस हाथ भूमिका दान करके सब पापोंसे छूट जाता है। जो सत्पात्रको भूमिदान करता है, वह सम्पूर्ण दानोंका फल पाता है। तीनों लोकोंमें भूमिदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। दैत्यराज! जो जीविकारहित ब्राह्मणको भूमिदान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन मैं सौ वर्षोंमें भी नहीं कर सकता। जो ईख, गेहूँ, धान और सुपारीके वृक्ष आदिसे युक्त भूमिका दान करता है, वह निश्चय ही श्रीविष्णुके समान है। जीविकाहीन, दरिद्र एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको थोड़ी-सी भी भूमि देकर मनुष्य भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। भूमिदान बहुत बड़ा दान है। उसे अतिदान कहा गया है। वह सम्पूर्ण पापोंका नाशक तथा मोक्षरूप फल देनेवाला है। इसलिये दैत्यराज! तुम सब धर्मोंके अनुष्ठानमें लगे रहकर मुझे तीन पग पृथ्वी दे दो। जहाँ रहकर मैं तपस्या करूँगा।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर विरोचनकुमार बलि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मचारी वामनजीको भूमिदान करनेके लिये जलसे भरा कलश हाथमें लिया। सर्वव्यापी भगवान् विष्णु यह जान गये कि शुक्राचार्य इस कलशमें घुसकर जलकी धाराको रोक रहे हैं। अतः उन्होंने अपने हाथमें लिये हुए कुशके अग्रभागको उस कलशके मुखमें घुसेड़ दिया जिसने शुक्राचार्यके एक नेत्रको नष्ट कर दिया। इसके बाद उन्होंने शस्त्रके समान उस कुशके अग्रभागको आँखसे अलग किया। इतनेमें राजा बलिने भगवान् महाविष्णुको तीन पग पृथ्वीका दान कर दिया। तदनन्तर विश्वात्मा भगवान् उस समय बढ़ने लगे। उनका मस्तक ब्रह्मलोकतक पहुँच गया। अत्यन्त तेजस्वी विश्वरूप श्रीहरिने अपने दो पैरसे सारी भूमि नाप ली। उस समय उनका दूसरा पैर ब्रह्माण्डकटाह (शिखर)-को छू गया और अँगूठेके अग्रभागके आघातसे फूटकर वह ब्रह्माण्ड दो भागोंमें बँट गया। उस छिद्रके द्वारा ब्रह्माण्डसे बाहरका जल अनेक धाराओंमें बहकर आने लगा। भगवान् विष्णुके चरणोंको धोकर निकला हुआ वह निर्मल गङ्गाजल सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाला था। ब्रह्माण्डके बाहर जिसका उद्गमस्थान है, वह श्रेष्ठ एवं पावन गङ्गाजल

धारारूपमें प्रवाहित हुआ और ब्रह्मा आदि देवताओंको उसने पवित्र किया। फिर सप्तर्षियोंसे सेवित हो वह मेरुपर्वतके शिखरपर गिरा। वामनजीका यह अद्भुत कर्म देखकर ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि तथा मनुष्य हर्षसे विह्वल हो उनकी स्तुति करने लगे।

**देवता बोले**—आप परमात्मस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। आप परात्पर होते हुए भी अपरा प्रकृतिसे उत्पन्न जगत्‌का रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मरूप हैं, आपकी मन-बुद्धि अपने ब्रह्मरूपमें ही रमण करती है। आप कहीं भी कुण्ठित न होनेवाले अद्भुत कर्मसे सुशोभित होते हैं। आपको नमस्कार है। परेश! परमानन्द! परमात्मन्! परात्पर विश्वमूर्ते! प्रमाणातीत! आप सर्वात्माको नमस्कार है। आपके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर भुजाएँ हैं, सब ओर मस्तक हैं और सब ओर गति है, आपको नमस्कार है।

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् महाविष्णुने स्वर्गवासी देवताओंको अभयदान दिया और वे देवाधिदेव सनातन श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने एक पग भूमिकी पूर्तिके लिये विरोचनपुत्र दैत्यराज बलिको बाँध लिया, फिर उसे अपनी शरणमें आया जान रसातलका राज्य दे दिया और स्वयं भक्तके वशीभूत होकर बलिके द्वारपाल होकर रहने लगे।

**नारदजीने पूछा**—मुने! रसातल तो सर्पोंके भयसे परिपूर्ण भयंकर स्थान है। वहाँ भगवान् महाविष्णुने विरोचनपुत्र बलिके लिये भोजन आदिकी क्या व्यवस्था की।

**श्रीसनकजीने कहा**—नारदजी! अग्निमें बिना मन्त्रके जो आहुति डाली जाती है और अपात्रको जो दान दिया जाता है, वह सब कर्ताके लिये भयंकर होता है और वही राजा बलिके भोगका साधन बनता है। अपवित्र मनुष्यके द्वारा जो हविष्यका होम, दान और सत्कर्म किया जाता है, वह सब रसातलमें बलिके उपभोगके योग्य होता है और कर्ताको अधःपातरूप फल देनेवाला है। इस प्रकार भगवान् विष्णुने बलिदैत्यको रसातल-लोक और अभयदान देकर सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गका राज्य दे दिया। उस समय देवता उनका पूजन, महर्षिगण स्तवन और गन्धर्वलोग गुणगान कर रहे थे। वे विराट् महाविष्णु पुनः वामनरूप हो गये। ब्रह्मवादी मुनियोंने भगवान्‌का यह महान् कर्म देखकर परस्पर मुसकराते हुए उन पुरुषोत्तमको प्रणाम किया। सम्पूर्ण भूतस्वरूप भगवान् विष्णु वामनरूप धारण करके सब लोगोंको मोहित करते हुए तपस्याके लिये वनमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गादेवीका ऐसा प्रभाव है कि जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो इस गङ्गा-माहात्म्यको देवालय अथवा नदीके तटपर पढ़ता या सुनता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल पाता है।

## दानका पात्र, निष्फल दान, उत्तम-मध्यम-अधम दान, धर्मराज-भगीरथ-संवाद, ब्राह्मणको जीविकादानका माहात्म्य तथा तडाग-निर्माणजनित पुण्यके विषयमें राजा वीरभद्रकी कथा

**नारदजी बोले**—भाईजी! मुझे गङ्गा-माहात्म्य सुननेकी इच्छा थी, सो तो सुन ली। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। अब मुझे दान एवं दानके पात्रका लक्षण बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—देवर्षे! ब्राह्मण सभी वर्णोंका श्रेष्ठ गुरु है। जो दिये हुए दानको अक्षय बनाना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये। सदाचारी ब्राह्मण निर्भय होकर सबसे दान ले सकता है, किंतु क्षत्रिय और वैश्य कभी किसीसे दान ग्रहण न करें। जो ब्राह्मण क्रोधी, पुत्रहीन, दम्भाचार-परायण तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है। जो परायी स्त्रीमें आसक्त, पराये धनका लोभी तथा नक्षत्रसूचक (ज्योतिषी) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जिसके मनमें दूसरोंके दोष देखनेका दुर्गुण भरा है, जो कृतघ्न, कपटी और यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो सदा माँगनेमें ही लगा रहता है, जो हिंसक, दुष्ट और रसका विक्रय करनेवाला है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। ब्रह्मन्! जो वेद, स्मृति तथा धर्मका विक्रय करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो गीत गाकर जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है तथा जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो तलवारसे जीविका चलाता है, जो स्याहीसे जीवन-निर्वाह करता है, जो जीविकाके लिये देवताकी पूजा स्वीकार करता है, जो समूचे गाँवका पुरोहित है तथा जो धावनका काम करता है, ऐसे लोगोंको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो दूसरोंके लिये रसोई बनानेका काम करता है, जो कविताद्वारा लोगोंकी झूठी प्रशंसा किया करता है, जो वैद्य एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शूद्रोंका अन्न खाता, शूद्रोंके मुर्दे जलाता और व्यभिचारिणी स्त्रीकी संतानका अन्न भोजन करता है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो भगवान् विष्णुके नाम-जपको बेचता है, संध्याकर्मको त्यागनेवाला है तथा दूषित दान-ग्रहणसे दग्ध हो चुका है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो दिनमें सोता, दिनमें मैथुन करता और संध्याकालमें खाता है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो महापातकोंसे युक्त है, जिसे जाति-भाइयोंने समाजसे बाहर कर दिया है तथा जो कुण्ड (पतिके रहते हुए भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुआ) और गोलक (पतिके मर जानेपर व्यभिचारसे पैदा हुआ) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित हो जानेपर भी स्वयं अविवाहित), शठ, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वयं विवाह करनेवाला), स्त्रीके वशमें रहनेवाला और अत्यन्त दुष्ट है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शराबी, मांसखोर, स्त्रीलम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। द्विजश्रेष्ठ! जो कोई भी पापपरायण और सज्जन पुरुषोंद्वारा सदा निन्दित हों, उनसे न तो दान लेना चाहिये और न दान देना ही चाहिये।

नारदजी! जो ब्राह्मण सत्कर्ममें लगा हुआ हो, उसे यत्नपूर्वक दान देना चाहिये। जो दान श्रद्धापूर्वक तथा भगवान् विष्णुके समर्पणपूर्वक दिया गया हो एवं जो उत्तम पात्रके याचना करनेपर दिया गया हो, वह दान अत्यन्त उत्तम है। नारदजी! इहलोक या परलोकके लाभका उद्देश्य रखकर जो सुपात्रको दान दिया जाता है, वह सकाम दान मध्यम माना गया है। जो दम्भसे, दूसरोंकी हिंसाके लिये, अविधिपूर्वक, क्रोधसे, अश्रद्धासे और अपात्रको दिया जाता है, वह दान अधम माना गया है। राजा

बलिको संतुष्ट करनेके लिये यानी अपवित्र भावसे तथा अपात्रको किया हुआ दान अधम, स्वार्थ-सिद्धिके लिये किया हुआ दान मध्यम तथा भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया हुआ दान उत्तम है—यह वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष कहते हैं। दान, भोग और नाश—ये धनकी तीन प्रकारकी गतियाँ हैं। जो न दान करता है और न उपभोगमें लाता है, उसका धन केवल उसके नाशका कारण होता है। ब्रह्मन्! धनका फल है धर्म और धर्म वही है जो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। क्या वृक्ष जीवन धारण नहीं करते? वे भी इस जगत्‌में दूसरोंके हितके लिये जीते हैं। विप्रवर नारद! जहाँ वृक्ष भी अपनी जड़ों और फलोंके द्वारा दूसरोंका हित-साधन करते हैं, वहाँ यदि मनुष्य परोपकारी न हों तो वे मरे हुएके ही समान हैं। जो मरणशील मानव शरीरसे, धनसे अथवा मन और वाणीसे भी दूसरोंका उपकार नहीं करते, उन्हें महान् पापी समझना चाहिये। नारदजी! इस विषयमें मैं एक यथार्थ इतिहास सुनाता हूँ, सुनिये। उसमें दान आदिका लक्षण भी बताया जायगा, साथ ही उसमें गङ्गाजीका माहात्म्य भी आ जायगा, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस इतिहासमें भगीरथ और धर्मका पुण्यकारक संवाद है।

सगरके कुलमें भगीरथ नामवाले राजा हुए, जो सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित इस पृथ्वीका शासन करते थे। वे सदा सब धर्मोंमें तत्पर, सत्य-प्रतिज्ञ और प्रतापी थे। कामदेवके समान रूपवान्, महान् यज्ञकर्ता और विद्वान् थे। वे राजा भगीरथ धैर्यमें हिमालय और धर्ममें धर्मराजकी समानता करते थे। उनमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण भरे थे। मुने! वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी विद्वान्, सब सम्पत्तियोंसे युक्त और सबको आनन्द देनेवाले थे। अतिथियोंके सत्कारमें यत्नपूर्वक लगे रहते और सदा भगवान् वासुदेवकी आराधनामें तत्पर रहते थे। वे बड़े पराक्रमी, सद्‌गुणोंके भण्डार, सबके प्रति मैत्रीभावसे युक्त, दयालु तथा उत्तम बुद्धिवाले थे। द्विजश्रेष्ठ! राजा भगीरथको ऐसे सद्‌गुणोंसे युक्त जानकर एक दिन साक्षात् धर्मराज उनका दर्शन करनेके लिये आये। राजाने अपने घरपर पधारे हुए धर्मराजका शास्त्रीय विधिसे पूजन किया। तत्पश्चात् धर्मराज प्रसन्न होकर राजासे बोले।

**धर्मराजने कहा**—धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा भगीरथ! तुम तीनों लोकमें प्रसिद्ध हो। मैं धर्मराज होकर भी तुम्हारी कीर्ति सुनकर तुम्हारे दर्शनके लिये आया हूँ। तुम सन्मार्गमें तत्पर, सत्यवादी और सम्पूर्ण भूतोंके हितैषी हो। तुम्हारे उत्तम गुणोंके कारण देवता भी तुम्हारा दर्शन करना चाहते हैं। भूपाल! जहाँ कीर्ति, नीति और सम्पत्ति है, वहाँ निश्चय ही उत्तम गुण, साधु पुरुष तथा देवता निवास करते हैं। राजन्! महाभाग! समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहना आदि तुम्हारा चरित्र बहुत सुन्दर है। वह मेरे-जैसे लोगोंके लिये भी दुर्लभ है।

ऐसा कहनेवाले धर्मराजको प्रणाम करके राजा भगीरथ प्रसन्न एवं विनीत भावसे मधुर वाणीमें बोले।

**भगीरथने कहा**—भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं। परेश्वर! आप समदर्शी भी हैं। मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसे मुझपर बड़ी भारी कृपा करके बताइये। धर्म कितने प्रकारके कहे गये हैं? धर्मात्मा पुरुषोंके कौन-से लोक हैं? यमलोकमें कितनी यातनाएँ बतायी गयी हैं और वे किन्हें प्राप्त होती हैं? महाभाग! कैसे लोग आपके द्वारा सम्मानित होते हैं और कौन लोग किस प्रकार आपके द्वारा दण्डनीय हैं? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

**धर्मराजने कहा**—महाबुद्धे! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि निर्मल तथा ओजस्विनी है। मैं धर्म और अधर्मका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो! धर्म अनेक प्रकारके बताये गये हैं, जो पुण्यलोक प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार अधर्मजनित यातनाएँ भी असंख्य कही गयी हैं, जिनका दर्शन भी भयंकर है। अतः मैं संक्षेपसे ही धर्म और अधर्मका दिग्दर्शन कराऊँगा। ब्राह्मणोंको जीविका देना अत्यन्त पुण्यमय कहा गया है। इसी प्रकार अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता पुरुषको दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्राह्मण सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप बताया गया है, उसको जीविका देनेवाले मनुष्यके पुण्यका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? जो नित्य (सदाचारी) ब्राह्मणका हित करता है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, वह सब तीर्थोंमें नहा चुका और उसने सब तपस्या पूरी कर ली। जो ब्राह्मणको जीविका देनेके लिये 'दो' कहकर दूसरेको प्रेरित करता है, वह भी उसके दानका फल प्राप्त कर लेता है।

जो स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा तालाब बनवाता है, उसके पुण्यकी संख्या बताना असम्भव है। राजन्! यदि एक राही भी पोखरेका जल पी ले तो उसके बनानेवाले पुरुषके सब पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक दिन भी भूमिपर जलका संग्रह एवं संरक्षण कर लेता है, वह सब पापोंसे छूटकर सौ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो मानव अपनी शक्तिभर तालाब खुदानेमें सहायता करता है, जो उससे संतुष्ट होकर उसको प्रेरणा देता है, वह भी पोखरे बनानेका पुण्यफल पा लेता है। जो सरसों बराबर मिट्टी भी तालाबसे निकालकर बाहर फेंकता है, वह अनेकों पापोंसे मुक्त हो सौ वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। नृपश्रेष्ठ! जिसपर देवता अथवा गुरुजन संतुष्ट होते हैं, वह पोखरा खुदानेके पुण्यका भागी होता है—यह सनातन श्रुति है।

नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें संशय नहीं है। गौड़देशमें अत्यन्त विख्यात वीरभद्र नामके एक राजा हो गये हैं। वे बड़े प्रतापी, विद्वान् तथा सदैव ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले थे। वेद और शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार कुलोचित सदाचारका वे सदा पालन करते और मित्रोंके अभ्युदयमें योग देते थे। उनकी परम सौभाग्यवती रानीका नाम चम्पकमञ्जरी था। उनके मुख्य मन्त्रीगण कर्तव्य और अकर्तव्यके विचारमें कुशल थे। वे सदा धर्मशास्त्रोंद्वारा धर्मका निर्णय किया करते थे। 'जो प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिष तथा धर्मका निर्णय बिना शास्त्रके करता है, उसे ब्राह्मणघाती बताया गया है'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर राजा सदा अपने आचार्योंसे मनु आदिके बताये हुए धर्मोंका विधिपूर्वक श्रवण किया करते थे। उनके राज्यमें कोई छोटे-से-छोटा मनुष्य भी अन्यायका आचरण नहीं करता था।

उस राजाका धर्मपूर्वक पालित होनेवाला देश स्वर्गकी समता धारण करता था। वह शुभकारक उत्तम राज्यका आदर्श था।

एक दिन राजा वीरभद्र मन्त्री आदिके साथ शिकार खेलनेके लिये बहुत बड़े वनमें गये और दोपहरतक इधर-उधर घूमते रहे। वे अत्यन्त थक गये थे। भगीरथ! उस समय वहाँ राजाको एक छोटी-सी पोखरी दिखायी दी। वह भी सूखी हुई थी। उसे देखकर मन्त्रीने सोचा—पृथ्वीके ऊपर इस शिखरपर यह पोखरी किसने बनायी है? यहाँ कैसे जल सुलभ होगा, जिससे ये राजा वीरभद्र प्यास बुझाकर जीवन धारण करेंगे। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रीके मनमें उस पोखरीको खोदनेका विचार हुआ। उसने एक हाथका गड्ढा खोदकर उसमेंसे जल प्राप्त किया। राजन्! उस जलको पीनेसे राजा और उनके बुद्धिसागर नामक मन्त्रीको भी तृप्ति हुई। तब धर्म-अर्थके ज्ञाता बुद्धिसागरने राजासे कहा—'राजन्! यह पोखरी पहले वर्षाके जलसे भरी थी। अब इसके चारों ओर बाँध बना दें—ऐसी मेरी सम्मति है। देव! निष्पाप राजन्! आप इसका अनुमोदन करें और इसके लिये मुझे आज्ञा दें।' नृपश्रेष्ठ वीरभद्र अपने मन्त्रीकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इस कामको करनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अपने मन्त्री बुद्धिसागरको ही इस शुभ कार्यमें नियुक्त किया। तब राजाकी आज्ञासे अतिशय पुण्यात्मा बुद्धिसागर उस पोखरीको सरोवर बनानेके कार्यमें लग गये। उसकी लंबाई और चौड़ाई चारों ओरसे पचास धनुषकी हो गयी। उसके चारों ओर पत्थरके घाट बन गये और उसमें अगाध जलराशि संचित हो गयी। ऐसी पोखरी बनाकर मन्त्रीने राजाको सब समाचार निवेदन किया। तबसे सब वनचर जीव और प्यासे पथिक उस पोखरीसे उत्तम जल पान करने लगे। फिर आयुकी समाप्ति होनेपर किसी समय मन्त्री बुद्धिसागरकी मृत्यु हो गयी। राजन्! वे मुझ धर्मराजके लोकमें गये। उनके लिये मैंने चित्रगुप्तसे धर्म पूछा, तब चित्रगुप्तने उनके पोखरी बनानेका सब कार्य मुझे बताया। साथ ही यह भी कहा कि ये राजाको धर्म-कार्यका स्वयं उपदेश करते थे, इसलिये इस धर्मविमानपर चढ़नेके अधिकारी हैं। राजन्! चित्रगुप्तके ऐसा कहनेपर मैंने बुद्धिसागरको धर्मविमानपर चढ़नेकी आज्ञा दे दी। भगीरथ! फिर कालान्तरमें राजा वीरभद्र भी मृत्युके पश्चात् मेरे स्थानपर गये और प्रसन्नतापूर्वक मुझे नमस्कार किया। तब मैंने वहाँ उनके सम्पूर्ण धर्मोंके विषयमें भी प्रश्न किया राजन्! मेरे पूछनेपर चित्रगुप्तने राजाके लिये भी पोखरे खुदानेसे होनेवाले धर्मकी बात बतायी। तब मैंने राजाको जिस प्रकार भलीभाँति समझाया, वह सुनो। (मैंने कहा—)

'भूपाल भगीरथ! पूर्वकालमें सैकतगिरिके शिखरपर उस लावक (एक प्रकारकी चिड़िया) पक्षीने जलके लिये अपनी चोंचसे दो अङ्गुल भूमि खोद ली थी। नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कालान्तरमें उस वाराहने अपनी थूथुनसे एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तबसे उसमें हाथभर जल रहता था। उसके बाद किसी समय उस काली (एक पक्षी)-ने उसे पानीमें खोदकर दो हाथ गहरा कर दिया। महाराज! तबसे उसमें दो महीनेतक जल टिकने लगा। वनके छोटे-छोटे जीव प्याससे व्याकुल होनेपर उस जलको पीते थे। सुव्रत! उसके तीन वर्षके बाद इस हाथीने उस गड्ढेको तीन हाथ गहरा कर दिया। अब उसमें अधिक जल संचित होकर तीन महीनेतक टिकने लगा। जंगली जीव-जन्तु उसको पीया करते थे। फिर जल सूख जानेके बाद आप उस स्थानपर आये। वहाँ एक हाथ मिट्टी खोदकर आपने जल प्राप्त किया। नरपते! तदनन्तर मन्त्री बुद्धिसागरके उपदेशसे

आपने पचास धनुषकी लंबाई-चौड़ाईमें उसे उतना ही गहरा खुदवाया। फिर तो उसमें बहुत जल संचित हो गया। इसके बाद पत्थरोंसे दृढ़तापूर्वक घाट बँध जानेपर वह महान् सरोवर बन गया। वहाँ किनारेपर सब लोगोंके लिये उपकारी वृक्ष लगा दिये गये। उस पोखरेके द्वारा अपने-अपने पुण्यसे ये पाँच जीव धर्मविमानपर आरूढ़ हुए हैं। अब छठे तुम भी उसपर चढ़ जाओ।' भगीरथ! मेरा यह वचन सुनकर छठे राजा वीरभद्र भी उन पाँचके समान ही पुण्यभागी होकर उस धर्मविमानपर जा बैठे। राजन्! इस प्रकार मैंने पोखरे बनवानेसे होनेवाले सम्पूर्ण फलका वर्णन किया। इसे सुनकर मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापसे मुक्त हो जाता है। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी तालाब बनानेके सम्पूर्ण पुण्यको प्राप्त कर लेता है।

## तडाग और तुलसी आदिकी महिमा, भगवान् विष्णु और शिवके स्नान-पूजनका महत्त्व एवं विविध दानों तथा देवमन्दिरमें सेवा करनेका माहात्म्य

**धर्मराज कहते हैं**—राजन्! कासार (कच्चे पोखरे) बनानेपर तडाग (पक्के पोखरे) बनानेकी अपेक्षा आधा फल बताया गया है। कुएँ बनानेपर एक चौथाई फल जानना चाहिये। बावड़ी बनानेपर कमलोंसे भरे हुए सरोवरके बराबर पुण्य प्राप्त होता है। भूपाल! नहर निकालनेपर बावड़ीकी अपेक्षा सौगुना फल प्राप्त होता है। धनी पुरुष पत्थरसे मन्दिर या तालाब बनावे और दरिद्र पुरुष मिट्टीसे बनावे तो उन दोनोंको समान फल प्राप्त होता है। यह ब्रह्माजीका कथन है। धनी पुरुष एक नगर दान करे और गरीब एक हाथ भूमि दे; इन दोनोंके दानका समान फल है—ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। जो धनी पुरुष उत्तम फलके साधनभूत तडागका निर्माण करता है और दरिद्र एक कुआँ बनवाता है; उन दोनोंका पुण्य समान कहा गया है। जो बहुत-से प्राणियोंका उपकार करनेवाला आश्रम या धर्मशाला बनवाता है, वह तीन पीढ़ियोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाता है। राजन्! धेनु अथवा ब्राह्मण या जो कोई भी आधे क्षण भी उस आश्रमकी छायामें स्थित होता है, वह उसके बनवानेवालेको स्वर्गलोकमें पहुँचाता है। राजन्! जो बगीचे लगाते, देवमन्दिर बनवाते, पोखरा खुदाते अथवा गाँव बसाते हैं, वे भगवान् विष्णुके साथ पूजित होते हैं। जो तुलसीके मूलभागकी मिट्टीसे, गोपीचन्दनसे, चित्रकूटकी मिट्टीसे अथवा गङ्गाजीकी मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओंके समूहद्वारा अपने चरित्रका गान सुनता हुआ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्द भोगता है। जो तुलसीके पौधेपर चुल्लूभर भी पानी डालता है, वह क्षीरसागर-निवासी भगवान् विष्णुके साथ तबतक निवास करता है, जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तदनन्तर विष्णुमें लय हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको कोमल तुलसीदल अर्पित करता है, वह तीन पीढ़ियोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाता है। जो तुलसीके लिये काँटोंका आवरण या चहारदीवारी बनवाता है, वह भी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। नरेश्वर! जो तुलसीके कोमल दलोंसे भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी पूजा करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसका वहाँसे कभी

पुनरागमन नहीं होता। पुष्प तथा चन्दनके जलसे भगवान् गोविन्दको भक्तिपूर्वक नहलाकर मनुष्य विष्णुधाममें जाता है। जो कपड़ेसे छाने हुए जलके द्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिको स्नान कराता है, वह सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके साथ सुखी होता है। जो सूर्यकी संक्रान्तिके दिन दूध आदिसे श्रीहरिको नहलाता है, वह इक्कीस पीढ़ियोंके साथ विष्णुलोकमें वास करता है। शुक्लपक्षमें चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, एकादशी, रविवार, द्वादशी, पञ्चमी तिथि, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, मन्वादि तिथि, युगादितिथि, सूर्यके आधे उदयके समय, सूर्यके पुष्यनक्षत्रपर रहते समय, रोहिणी और बुधके योगमें, शनि और रोहिणी तथा मङ्गल और अश्विनीके योगमें, शनि-अश्विनी, बुध-अश्विनी, शुक्र-रेवती योग, बुध-अनुराधा, श्रवण-सूर्य, सोमवार-श्रवण, हस्त-बृहस्पति, बुध-अष्टमी तथा बुध और आषाढ़ाके योगमें और दूसरे-दूसरे पवित्र दिनोंमें जो पुरुष शान्तचित्त, मौन और पवित्र होकर दूध, दही, घी और शहदसे श्रीविष्णुको स्नान कराता है, उसको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनो। वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता और इक्कीस पीढ़ियोंके साथ वैकुण्ठधाममें निवास करता है। राजन्! फिर वहीं ज्ञान प्राप्त करके वह पुनरावृत्तिरहित और योगियोंके लिये भी दुर्लभ हरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। भूपते! जो कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथि और सोमवारके दिन भगवान् शङ्करको दूधसे नहलाता है, शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अष्टमी अथवा सोमवारको भक्तिपूर्वक नारियलके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य शिव-सायुज्यका अनुभव करता है। भूपते! शुक्लपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको घृत और मधुके द्वारा भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। तिलके तेलसे भगवान् विष्णु अथवा शिवको स्नान कराकर मनुष्य सात पीढ़ियोंके साथ उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो शिवको भक्तिपूर्वक ईखके रससे स्नान कराता है, वह सात पीढ़ियोंके साथ एक कल्पतक भगवान् शिवके लोकमें निवास करता है। (फिर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।)

नरेश! एकादशीके दिन सुगन्धित फूलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य दस हजार जन्मके पापोंसे छूट जाता और उनके परम धामको प्राप्त कर लेता है। महाराज! चम्पाके फूलोंसे भगवान् विष्णुकी और आकके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य उन-उनका सालोक्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर अथवा विष्णुको धूपमें घृतयुक्त गुग्गुल मिलाकर देता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है। नृपश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णु अथवा शङ्करको तिलके तेलसे युक्त दीपदान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको घीका दीपक देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो गङ्गा-स्नानका फल पाता है।

जो-जो अभीष्ट वस्तुएँ हैं, वह सब ब्राह्मणको दान कर दे—ऐसा मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है; न होगा। अन्नदान करनेवाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये अन्नदान करनेवालेको सम्पूर्ण दानोंका फल मिलता है। जलदान तत्काल संतुष्ट करनेवाला माना गया है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये ब्रह्मवादी मनुष्योंने जलदानको अन्नदानसे श्रेष्ठ बताया है। महापातक अथवा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि जलदान करनेवाला है तो वह उन सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह ब्रह्माजीका कथन है। शरीरको अन्नसे उत्पन्न

कहा गया है। प्राणोंको भी अन्नजनित ही मानते हैं; अतः पृथ्वीपते! जो अन्नदान देनेवाला है, उसे प्राणदाता समझना चाहिये; क्योंकि जो-जो तृप्तिकारक दान है, वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है; अतः भूपाल! इस पृथ्वीपर अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। जो दरिद्र अथवा रोगी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा रोगीकी रक्षा करता है, वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। महीपाल! जो ब्राह्मणको निवास-स्थान देता है, उसपर प्रसन्न हो देवेश्वर भगवान् विष्णु उसे अपना लोक देते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है तथा जो वेदवेत्ता ब्राह्मणको कपिला गाय दान देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रस्वरूप हो जाता है। जो भयसे व्याकुलचित्तवाले पुरुषोंको अभय दान देता है, राजन्! उसके पुण्यफलका यथार्थ वर्णन करता हूँ, सुनो; एक ओर तो पूर्णरूपसे उत्तम दक्षिणा देकर सम्पन्न किये हुए सभी यज्ञ हैं और दूसरी ओर भयभीत मनुष्यकी प्राणरक्षा है (ये दोनों समान हैं)। महीपाल! जो भयविह्वल ब्राह्मणकी रक्षा करता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका और सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका। वस्त्रदान करनेवाला रुद्रलोकमें और कन्यादाता ब्रह्मलोकमें जाता है।

भूपते! कार्तिक अथवा आषाढ़की पूर्णिमाको जो मानव भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये वृषोत्सर्ग कर्म करता है, उसका फल सुनो—वह सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो रुद्रका स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ! जो भैंसेको शिवलिङ्गसे चिह्नित करके छोड़ता है, उसे कभी यमयातना (नरक) नहीं प्राप्त होती है। नृपसत्तम! जो शक्तिके अनुसार ताम्बूल दान करता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् विष्णु उसे आयु, यश तथा लक्ष्मी प्रदान करते हैं। दूध, दही, घी और मधुका दान करनेवाला मनुष्य दस हजार दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृपोत्तम! ईख दान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है। गन्ध एवं पवित्र फल देनेवाला पुरुष भी ब्रह्मधाममें जाता है। गुड़ और ईखका रस देनेवाला मनुष्य क्षीरसागरको प्राप्त होता है। विद्यादान करनेसे मनुष्यको भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है। विद्यादान, भूमिदान और गोदान—ये उत्तम-से-उत्तम तीन दान क्रमशः जप, जोतने-बोनेकी सुविधा और दूध दुहनेके कारण नरकसे उद्धार करनेवाले होते हैं। नृपोत्तम! सम्पूर्ण दानोंमें विद्यादान श्रेष्ठ है। विद्यादानसे मनुष्य भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। ईंधन दान करनेसे मनुष्यको उपपातकोंसे छुटकारा मिलता है। शालग्राम शिलाका दान महादान बताया गया है। उसका दान करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। शिवलिङ्ग-दान भी ऐसा ही माना गया है। प्रभो! जो मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषोंको घर दान देता है, राजन्! उसे गङ्गास्नानका फल अवश्य प्राप्त होता है।

नृपश्रेष्ठ! जो रत्नयुक्त सुवर्णका दान करता है, वह भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है; क्योंकि स्वर्णदान महादान माना गया है। माणिक्यदान करनेसे मनुष्य परममोक्षको प्राप्त होता है। वज्रमणिके दानसे मानव ध्रुवलोकमें जाता है। मूँगा दान करनेसे स्वर्ग एवं रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। सवारी देने और मुक्तादान करनेसे दाता चन्द्रलोक प्राप्त करता है। वैदूर्य और पद्मरागमणि देनेवाला मनुष्य रुद्रलोकमें जाता है। पद्मरागमणिके दानसे सर्वत्र सुखकी प्राप्ति होती है। राजन्! घोड़ा दान

करनेवाला दीर्घकालके लिये अश्विनीकुमारोंके समीप जाता है। हाथी-दान महादान है। उससे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। सवारी दान करनेसे मनुष्य स्वर्गीय विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है। भैंस देनेवाला निस्संदेह अपमृत्युको जीत लेता है। गौओंको घास देनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। महीपते! नमक देनेवाला पुरुष वरुणलोकमें जाता है।

जो अपने आश्रमोचित आचारके पालनमें संलग्न, सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर तथा दम्भ और असूयासे रहित हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो वीतराग और ईर्ष्यारहित हो दूसरोंको परमार्थका उपदेश देते और स्वयं भी भगवान्‌के चरणोंकी आराधनामें लगे रहते हैं, वे वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो सत्सङ्गमें आनन्दका अनुभव करते, सत्कर्म करनेके लिये सदा उद्यत रहते और दूसरोंके अपवादसे मुँह मोड़ लेते हैं, वे विष्णुधाममें जाते हैं। जो सदा ब्राह्मणों और गौओंका हित साधन करते और परायी स्त्रियोंके सङ्गसे विमुख होते हैं, वे यमलोकका दर्शन नहीं करते। जिन्होंने इन्द्रियों और आहारको जीत लिया है, जो गायोंके प्रति क्षमाभाव रखनेवाले और सुशील हैं तथा जो ब्राह्मणोंपर भी क्षमाभाव रखते हैं, वे वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो अग्निका सेवन करनेवाले गुरुसेवक पुरुष हैं तथा जो पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली स्त्रियाँ हैं, वे कभी जन्म-मरणरूप संसार-बन्धनमें नहीं पड़तीं। जो सदा देव-पूजामें तत्पर, हरिनामकी शरण लेनेवाले तथा प्रतिग्रहसे दूर रहते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। नृपश्रेष्ठ! जो ब्राह्मणके अनाथ शवका दाह करते हैं, वे सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका फल भोगते हैं। मनुजेश्वर! जो पूजारहित शिवलिङ्गका पत्र, पुष्प, फल अथवा जलसे पूजन करता है, उसका फल सुनो—वह विमानपर बैठकर भगवान् शिवके समीप जाता है। जनेश्वर! जो भक्ष्य-भोज्य और फलोंद्वारा निर्जन स्थानमें स्थित शिवलिङ्गका पूजन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित शिव-सायुज्यको प्राप्त करता है। सूर्यवंशी भगीरथ!

जो पूजारहित विष्णु-प्रतिमाका जलसे भी पूजन करता है, उसे विष्णुका सालोक्य प्राप्त होता है। राजन्! जो देवालयमें गोचर्मके बराबर भू-भागको भी जलसे सींचता है, वह स्वर्गलोक पाता है। जो देवमन्दिरकी भूमिको चन्दनमिश्रित जलसे सींचता है, वह जितने कणोंको भिगोता है, उतने कल्पतक उस देवताके समीप निवास करता है। जो मनुष्य पत्थरके चूनेसे देवमन्दिरको लीपता है या उसमें स्वस्तिक आदिके चिह्न बनाता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जो भगवान् विष्णु या शङ्करके समीप अखण्ड दीपकी व्यवस्था करता है, उसको एक-एक क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है। भूमिपाल! जो देवीके मन्दिरकी एक बार, सूर्यके मन्दिरकी सात बार, गणेशके मन्दिरकी तीन बार और विष्णु-मन्दिरकी चार बार परिक्रमा करता है, वह उन-उनके धाममें जाकर लाखों

युगोंतक सुख भोगता है। जो भक्तिभावसे भगवान् विष्णु, गौ तथा ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो काशीमें भगवान् शिवके लिङ्गका पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, उसका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। जो विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी दक्षिण और वाम परिक्रमा करता है, वह मनुष्य उनकी कृपासे स्वर्गसे नीचे नहीं आता। जो रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता है, वह मनसे जो-जो चाहता है, उन सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। भूपाल! जो भक्तिभावसे युक्त हो देवमन्दिरमें नृत्य अथवा गान करता है, वह रुद्रलोकमें जाकर मोक्षका भागी होता है। जो मनुष्य देवमन्दिरमें बाजा बजाते हैं, वे हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके धाममें जाते हैं। जो लोग देवालयमें करताल बजाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो दस हजार युगोंतक विमानचारी होते हैं। जो लोग भेरी, मृदङ्ग, पटह, मुरज और डिंडिम आदि बाजोंद्वारा देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करते हैं, उन्हें प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वे सम्पूर्ण कामनाओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें जाकर पाँच कल्पोंतक सुख भोगते हैं। राजन्! जो मनुष्य देवमन्दिरमें शङ्खध्वनि करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके साथ सुख भोगता है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ताल और झाँझ आदिका शब्द करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो सबके साक्षी, निरञ्जन एवं ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णु हैं, वे संतुष्ट होनेपर सब धर्मोंका यथायोग्य सम्पूर्ण फल देते हैं। भूपते! जिन देवाधिदेव सुदर्शनचक्रधारी श्रीहरिके स्मरण मात्रसे सम्पूर्ण कर्म सफल होते हैं, वे जगदीश्वर परमात्मा ही समस्त कर्मोंके फल हैं। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंद्वारा सदा स्मरण किये जानेपर वे भगवान् उनकी सब पीड़ाओंका नाश करते हैं। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय मोक्षका कारण होता है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। धर्मके फल भी भगवान् विष्णु ही हैं। इसी प्रकार कर्म, कर्मोंके फल और उनके भोक्ता भी भगवान् विष्णु ही हैं। कार्य भी विष्णु हैं, करण भी विष्णु हैं। उनसे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है[1]।

## विविध प्रायश्चित्तका वर्णन, इष्टापूर्त्तका फल और सूतक, श्राद्ध तथा तर्पणका विवेचन

**धर्मराज कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ! अब मैं चारों वर्णोंके लिये वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए धर्मका क्रमशः वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। जो भोजन करते समय क्रोधमें या अज्ञानवश किसी अपवित्र वस्तुको या चाण्डाल एवं पतितको छू लेता है, उसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ।

---

१. यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः। सर्वधर्मफलं पूर्णं संतुष्टः प्रददाति च॥
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः। सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते॥
परमात्मा जगन्नाथः सर्वकर्मफलप्रदः। सत्कर्मकर्तृभिर्नित्यं स्मृतः सर्वार्तिनाशनः।
तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते॥
धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णुः कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता। कार्यं च विष्णुः करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति॥
(ना० पूर्व० १३। ५०—५३)

वह क्रमानुसार अर्थात् अपवित्र वस्तुके स्पर्श करनेपर तीन रात और चाण्डाल या पतितका स्पर्श कर लेनेपर छः राततक पञ्चगव्यसे तीनों समय स्नान करे तो शुद्ध होता है। यदि कदाचित् भोजन करते समय ब्राह्मणके गुदासे मलस्राव हो जाय अथवा जूठे मुँह या अपवित्र रहनेपर ऐसी बात हो जाय तो उसकी शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ। पहले वह ब्राह्मण शौच जाकर जलसे पवित्र होवे (अर्थात् शौच जाकर जलसे हाथ-पैरकी शुद्धि करके कुल्ला और स्नान करे)। तदनन्तर दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। यदि भोजन करते समय पेशाब हो जाय अथवा पेशाब करनेपर बिना शुद्ध हुए ही भोजन कर ले तो दिन-रात उपवास करे और अग्निमें घीकी आहुति दे। यदि भोजनके समय ब्राह्मण किसी भी निमित्तसे अपवित्र हो जाय तो उस समय ग्रासको जमीनपर रखकर स्नान करनेके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि उस ग्रासको खा ले तो उपवास करनेपर शुद्ध होता है और यदि अपवित्र अवस्थामें वह सारा अन्न भोजन करके उठे तो तीन राततक वह अशुद्ध रहता है (अर्थात् तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होता है)। यदि भोजन करते-करते वमन हो जाय तो अस्वस्थ मनुष्य तीन सौ गायत्री-मन्त्रका जप करे और स्वस्थ मनुष्य तीन हजार गायत्री जपे, यही उसके लिये उत्तम प्रायश्चित्त है। यदि द्विज मल-मूत्र करनेपर चाण्डाल या डोमसे छू जाय तो वह त्रिरात्र व्रत करे और यदि भोजन करके जूठे मुँह छू जाय तो छः राततक व्रत करे। यदि रजस्वला और सूतिका स्त्रीको चाण्डाल छू ले तो तीन राततक व्रत करनेपर उसकी शुद्धि होती है—यह शातातप मुनिका वचन[1] है। यदि रजस्वला स्त्री कुत्तों, चाण्डालों अथवा कौओंसे छू जाय तो वह अशुद्ध अवस्थातक निराहार रहे; फिर समयपर (चौथे दिन) स्नान करनेसे वह शुद्ध होती है। यदि दो रजस्वलाएँ आपसमें एक दूसरीका स्पर्श कर लेती हैं तो ब्रह्मकूर्च[2] पीनेसे उनकी शुद्धि होती है और ऊपरसे भी ब्रह्मकूर्चद्वारा उन्हें स्नान कराना चाहिये। जो जूठेसे छू जानेपर तुरंत स्नान नहीं कर लेता, उसके लिये भी यही प्रायश्चित्त है। ऋतुकालमें मैथुन करनेवाले पुरुषको गर्भाधान होनेकी आशङ्कासे स्नान करनेका विधान है। बिना ऋतुके स्त्रीसङ्गम करनेपर मल-मूत्रकी

१. इस प्रसङ्गके प्रायः अधिक श्लोक यम-स्मृतिसे और कुछ श्लोक वृद्धशातातप-स्मृतिसे भी मिलते हैं।

२. पञ्चगव्य और कुशोदक मिलानेसे ब्रह्मकूर्च बनता है। उसकी विधि इस प्रकार है—पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा ताँबे या सुवर्णके पात्रमें पञ्चगव्य संग्रह करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्रका, 'गन्धद्वारा०' इस मन्त्रसे गोबरका, 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे दूधका, 'दधिक्राव्णो०' इस मन्त्रसे दहीका, 'तेजोऽसि शुक्रं०' इस मन्त्रसे घीका और 'देवस्य त्वा०' इस मन्त्रसे कुशोदकका संग्रह करे। चतुर्दशीको उपवास करके अमावास्याको उपर्युक्त वस्तुओंका संग्रह करे। गोमूत्र एक पल होना चाहिये। गोबर आधे अँगूठेके बराबर हो। दूधका मान सात पल और दहीका तीन पल है। घी और कुशोदक एक-एक पल बताये गये हैं। इस प्रकार इन सबको एकत्र करके परस्पर मिला दे। तत्पश्चात् सात-सात पत्तोंके तीन कुश लेकर जिनके अग्रभाग कटे न हों, उनसे उस पञ्चगव्यकी अग्निमें आहुति दे। आहुतिसे बचे हुए पञ्चगव्यको प्रणवसे आलोडन और प्रणवसे ही मन्थन करके प्रणवसे ही हाथमें ले तथा फिर प्रणवका ही उच्चारण करके उसे पी जाय। इस प्रकार तैयार किये हुए पञ्चगव्यको ब्रह्मकूर्च कहते हैं। स्त्री-शूद्रोंको ब्राह्मणके द्वारा पञ्चगव्य बनवाकर प्रणव उच्चारणके बिना ही पीना चाहिये। सर्वसाधारणके लिये ब्रह्मकूर्च-पानका मन्त्र यह है—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्। ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम्॥

(वृद्धशातातप० १२)

अर्थात् 'देहधारियोंके शरीरमें चमड़े और हड्डीतकमें जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला दे, जैसे प्रज्वलित आग ईंधनको जला डालती है।'

ही भाँति शुद्धि मानी गयी है। अर्थात् हाथ, मुँह आदि धोकर कुल्ला करना चाहिये। मैथुनकर्ममें लगे हुए पति-पत्नी दोनों ही अशुद्ध होते हैं, परंतु शय्यासे उठनेपर स्त्री तो शुद्ध हो जाती है, किंतु पुरुष स्नानके पूर्वतक अशुद्ध ही बना रहता है। जो लोग पतित न होनेपर भी अपने बन्धुजनोंका त्याग करते हैं, (राजाको उचित है कि) उन्हें उत्तम साहस[१] का दण्ड दे। यदि पिता पतित हो जाय तो उसके साथ इच्छानुसार बर्ताव करे। अर्थात् अपनी रुचिके अनुसार उसका त्याग और ग्रहण दोनों कर सकते हैं; किंतु माताका त्याग कभी न करे। जो रस्सी आदि साधनोंद्वारा फाँसी लगाकर आत्मघात करता है, वह यदि मर जाय तो उसके शरीरमें पवित्र वस्तुका लेप करा दे और यदि जीवित बच जाय तो राजा उससे दो सौ मुद्रा दण्ड ले। उसके पुत्र और मित्रोंपर एक-एक मुद्रा दण्ड लगावे और वे लोग शास्त्रीय विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करें। जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें प्रवेश करके अथवा फाँसी लगाकर मरनेसे बच जाते हैं, जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास व्रत प्रारम्भ करके उसे त्याग देते हैं, जो विष पीकर अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मरनेकी चेष्टा करनेपर भी जीवित बच जाते हैं तथा जो शस्त्रका अपने ऊपर आघात करके भी मृत्युसे वञ्चित रह जाते हैं, वे सब सम्पूर्ण लोकसे बहिष्कृत हैं। इनके साथ भोजन या निवास नहीं करना चाहिये। ये सब-के-सब एक चान्द्रायण अथवा दो तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होते हैं। कुत्ते, सियार और वानर आदि जन्तुओंके काटनेपर तथा मनुष्यद्वारा दाँतसे काटे जानेपर भी मनुष्य दिन, रात अथवा संध्या कोई भी समय क्यों न हो, तुरंत स्नान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। जो ब्राह्मण अज्ञानसे—अनजानमें किसी प्रकार चाण्डालका अन्न खा लेता है, वह गोमूत्र और यावकका आहार करके पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है। गौ अथवा ब्राह्मणका घर जलाकर, फाँसी आदि लगाकर मरे हुए मनुष्यका स्पर्श करके तथा उसके बन्धनोंको काटकर ब्राह्मण अपनी शुद्धिके लिये एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। माता, गुरुपत्नी, पुत्री, बहिन और पुत्रवधूसे समागम करनेवाला तो प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाय। उसके लिये दूसरा कोई शुद्धिका उपाय नहीं है। रानी, संन्यासिनी, धाय, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी स्त्री तथा समान गोत्रवाली स्त्रीके साथ समागम करनेपर मनुष्य दो कृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करे। पिताके गोत्र अथवा माताके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाली अन्यान्य स्त्रियों तथा सभी परस्त्रियोंसे अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष उस पापसे हटकर अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रशान्तपनव्रत

---

१. मनुष्य बलके अभिमानसे जो क्रूरतापूर्ण कर्म करता है, उसे 'साहस' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम। फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको नष्ट करना 'प्रथम साहस' माना गया है। वस्त्र, पशु, अन्न,पान और घरकी सामग्री आदिकी लूट-खसोट करना 'मध्यम साहस' कहा गया है। जहर देकर या हथियारसे किसीको मारना, पराशी स्त्रियोंसे बलात्कार करना तथा अन्यान्य प्राणनाशक कार्य करना 'उत्तम साहस' के अन्तर्गत है। 'प्रथम साहस' का दण्ड है कम-से-कम सौ पण, 'मध्यम साहस' का दण्ड कम-से-कम पाँच सौ पण हैं। 'उत्तम साहस' में कम-से-कम एक हजार पण दण्ड लगाया जाता है। इसके सिवा, अपराधीका वध या अङ्ग-भङ्ग अथवा सर्वस्व-हरण या नगरसे निर्वासन आदि भी 'उत्तम साहस' के दण्ड बताये गये हैं; जैसा कि नारद-स्मृतिमें कहा गया है—

तस्य दण्डः क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः। मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावरः॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते। वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनाङ्कने॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे॥

(विवादपद ७—९)

करे। द्विजगण खूब तपाये हुए कुशोदकको केवल एक बार पाँच राततक पीकर वेश्यागमनके पापका निवारण करते हैं। गुरुतल्पगामीके लिये जो व्रत है, वही कुछ लोग गोघातकके लिये भी बताते हैं और कुछ विद्वान् अवकीर्णी (धर्मभ्रष्ट)-के लिये भी उसी व्रतका विधान करते हैं। जो डंडेसे गौके ऊपर प्रहार करके उसे मार गिराता है, उसके लिये गोवधका जो सामान्य प्रायश्चित्त है, उससे दूना व्रत करनेका विधान है। तभी वह व्रत उसके पापको शुद्ध कर सकता है। गौको हाँकनेके लिये अँगूठेके बराबर मोटी, बाँहके बराबर बड़ी पल्लवयुक्त और गीली पतली डालका डंडा उचित बताया गया है। यदि गौओंके मारनेपर उनका गर्भ भी हो और वह मर जाय तो उनके लिये पृथक्-पृथक् एक-एक कृच्छ्रव्रत करे। यदि कोई काठ, ढेला, पत्थर अथवा किसी प्रकारके शस्त्रद्वारा गौओंको मार डाले तो भिन्न-भिन्न शस्त्रके लिये शास्त्रमें इस प्रकार प्रायश्चित्त बताया गया है। काष्ठसे मारनेपर शान्तपनव्रतका विधान है। ढेलेसे मारनेपर प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। पत्थरसे आघात करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत और किसी शस्त्रसे मारनेपर अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि कोई गौओं और ब्राह्मणोंके लिये (अच्छी नीयतसे) ओषधि, तेल एवं भोजन दे और उसके देनेके बाद उसकी मृत्यु हो जाय तो उस दशामें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। तेल और दवा पीनेपर अथवा दवा खानेपर या शरीरमें धँसे हुए लोहे या काँटे आदिको निकालनेका प्रयत्न करनेपर मृत्यु हो जाय तो भी कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चिकित्सा या दवा करनेके लिये बछड़ोंका कण्ठ बाँधनेसे अथवा शामको उनकी रक्षाके लिये उन्हें घरमें रोकने या बाँधनसे भी कोई दोष नहीं होता।

(उपर्युक्त पापोंका प्रायश्चित्त करते समय मनुष्यको इस विधिसे मुण्डन कराना चाहिये)—एक पाद (चौथाई) प्रायश्चित्त करनेपर कुछ रोममात्र कटा देने चाहिये। दो पादके प्रायश्चित्तमें केवल दाढ़ी-मूँछ मुड़ा ले, तीन पादका प्रायश्चित्त करते समय शिखाके सिवा और सब बाल बनवा दे और पूरा प्रायश्चित्त करनेपर सब कुछ मुड़ा देना चाहिये। यदि स्त्रियोंको प्रायश्चित्त करना पड़े तो उनके सब केश समेटकर दो अंगुल कटा देना चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियोंके सिर मुड़ानेका विधान है। स्त्रीके लिये सारे बाल कटाने और वीरासनसे बैठनेका नियम नहीं है। उनके लिये गोशालामें निवास करनेकी विधि नहीं है। यदि गौ कहीं जाती हो तो उसके पीछे नहीं जाना चाहिये। राजा, राजकुमार अथवा बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता ब्राह्मण हो तो उन सबके लिये केश मुड़ाये बिना ही प्रायश्चित्त बताना चाहिये। उन्हें केशोंकी रक्षाके लिये दूने व्रतका पालन करनेकी आज्ञा दे। दूना व्रत करनेपर उसके लिये दक्षिणा भी दूनी ही होनी चाहिये। यदि ऐसा न करे तो हत्या करनेवालेका पाप नष्ट नहीं होता और दाता नरकमें पड़ता है। जो लोग वेद और स्मृतिके विरुद्ध व्रत-प्रायश्चित्त बताते हैं, वे धर्मपालनमें विघ्न डालनेवाले हैं। राजा उन्हें दण्डद्वारा पीड़ित करे, परंतु किसी कामना या स्वार्थसे मोहित होकर राजा उन्हें कदापि दण्ड न दे; नहीं तो उनका पाप सौगुना होकर उस राजापर ही पड़ता है। तदनन्तर प्रायश्चित्त पूरा कर लेनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। बीस गाय और एक बैल उन्हें दक्षिणामें दे। यदि गौओंके अङ्गोंमें घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जायँ अथवा मक्खी आदि लगने लगें और इन कारणोंसे उन गौओंकी मृत्यु हो जाय तो उन गायोंको रखनेवाला पुरुष आधे कृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करके

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कम-से-कम एक माशा सुवर्ण दान करे तो शुद्धि होती है।

जलके भीतरकी, बाँबीकी, चूहोंके बिलकी, ऊसर भूमिकी, रास्तेकी, श्मशान-भूमिकी तथा शौचसे बची हुई—ये सात प्रकारकी मृत्तिका काममें नहीं लानी चाहिये। ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक इष्टापूर्त कर्म करने चाहिये। इष्ट (यज्ञ-याग आदि) से वह स्वर्ग पाता है और पूर्त कर्मसे वह मोक्षसुखका भागी होता है। धनकी अपेक्षा रखनेवाले यज्ञ, दान आदि कर्म इष्ट कहलाते हैं और जलाशय बनवाना आदि कार्य पूर्त कहा जाता है। विशेषत: बगीचा, किसी देवताके लिये बने हुए तालाब, बावड़ी, कुआँ, पोखरा और देवमन्दिर—ये यदि गिरते या नष्ट होते हों तो जो इनका उद्धार करता है, वह पूर्त कर्मका फल भोगता है; क्योंकि ये सब पूर्त कर्म हैं। सफेद गायका मूत्र, काली गौका गोबर, ताँबेके रंगवाली गायका दूध, सफेद गायका दही और कपिला गायका घी— इन सब वस्तुओंको लेकर एकत्र करे तो वह पञ्चगव्य बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला होता है। कुशोंद्वारा लाये हुए तीर्थ-जल और नदी-जलके साथ उक्त सभी द्रव्योंको पृथक्-पृथक् प्रणवमन्त्रसे लाकर प्रणवद्वारा ही उन्हें उठावे, प्रणव-जप करते हुए ही उनका आलोडन करे और प्रणवके उच्चारणपूर्वक ही पीये। पलाश वृक्षके बिचले पत्तेमें अथवा ताँबेके शुभ पात्रमें अथवा कमलके पत्तेमें या मिट्टीके बर्तनमें कुशोदकसहित उस पञ्चगव्यको पीना चाहिये।

एक सूतकमें दूसरा सूतक उपस्थित हो जाय तो दूसरेमें दोष नहीं लगता। पहले सूतकके साथ ही उसकी शुद्धि हो जाती है। एक जननाशौचके साथ दूसरा जननाशौच और एक मरणाशौचके साथ दूसरा मरणाशौच भी शुद्ध हो जाता है। एक मासके भीतर गर्भस्राव हो तो तीन दिनका अशौच बताये। दो माससे ऊपर होनेपर जितने महीनेमें गर्भस्राव हो, उतनी ही रात्रियोंमें उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। साध्वी रजस्वला स्त्री रज बंद हो जानेपर स्नानमात्रसे शुद्ध होती है। विवाहसे सातवें पदपर अर्थात् सप्तपदीकी क्रिया पूरी होनेपर अपने पितृ-सम्बन्धी गोत्रसे च्युत हो जाती है यानी उसके पतिका गोत्र हो जाता है; अत: उसके लिये श्राद्ध और तर्पण पतिके गोत्रसे ही करने चाहिये। पिण्डदानमें पति और पत्नी दोनोंका उद्देश्य होता है; अत: प्रत्येक पिण्डमें दो नामसे संकल्प होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पिता या पितामह आदिको सपत्नीक विशेषण लगाकर पिण्डदान करना चाहिये। इस प्रकार छ: व्यक्तियोंके लिये तीन पिण्ड देने योग्य हैं। ऐसा दाता मोहमें नहीं पड़ता। माता अपने पतिके साथ विश्वेदेवपूर्वक श्राद्धका उपभोग करती है। इसी प्रकार पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पतिके ही साथ श्राद्ध-भोग करती हैं। प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका एकोद्दिष्टश्राद्धद्वारा सत्कार करे। उस वार्षिक श्राद्धमें विश्वेदेवका पूजन नहीं किया जाता। अत: उनके बिना ही वह श्राद्धभोजन करावे। उसमें एक ही पिण्ड दे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध तथा पार्वण—विद्वान् पुरुषोंको ये पाँच प्रकारके श्राद्ध जानने चाहिये। ग्रहण, संक्रान्ति, पूर्णिमा या अमावास्या पर्व, उत्सवकाल तथा महालयके अवसरपर मनुष्य तीन पिण्ड दे और मृत्युतिथिको एक ही पिण्ड दे। जिस कन्याका विवाह नहीं हुआ है, वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें पिताके गोत्रसे पृथक् नहीं है। पाणिग्रहण और मन्त्रोंद्वारा वह अपने पिताके गोत्रसे पृथक् होती है। जिस कन्याका विवाह जिस वर्णके साथ होता है, उसके समान उसे सूतक भी लगता है। उसके लिये पिण्ड और

तर्पण भी उसी वर्णके अनुसार होने चाहिये। विवाह हो जानेपर चौथी रातमें वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें अपने पतिके साथ एक हो जाती है। मृत व्यक्तिके प्रति हितबुद्धि रखनेवाले बन्धुजनोंको शवदाहके प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ दिन अस्थि-संचय करना चाहिये अथवा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अस्थि-संचय क्रमश: चौथे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन भी कर्तव्य बताया गया है। जिस मृत व्यक्तिके लिये ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर आवें और यह जलाञ्जलि ग्रहण करें। दोनों हाथोंको संयुक्त करके जलसे पूर्ण करे और गोशृङ्गमात्र जल उठाकर उसे पुन: जलमें डाल दे। जलमें दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा हो आकाशमें जल गिराना चाहिये; क्योंकि पितरोंका स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है। देवता आप (जल) कहे गये हैं और पितरोंका नाम भी आप है; अत: पितरोंके हितकी इच्छा रखनेवाला पुरुष उनके लिये जलमें ही जल दे। जो दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपता है, रातमें नक्षत्रोंके तेज तथा वायुका स्पर्श पाता है और दोनों संध्याओंके समय भी उक्त दोनों वस्तुओंका सम्पर्क लाभ करता है, वह जल सदा पवित्र माना गया है। जो अपने स्वाभाविक रूपमें हो, जिसमें किसी अपवित्र वस्तुका मेल न हुआ हो, वह जल सदा पवित्र है। ऐसा जल किसी पात्रमें हो या पृथ्वीपर, सदा शुद्ध माना गया है। देवताओं और पितरोंके लिये जलमें ही जलाञ्जलि दे और जो बिना संस्कारके ही मरे हैं, उनके लिये विद्वान् पुरुष भूमिपर जलाञ्जलि दे। श्राद्ध और होमके समय एक हाथसे पिण्ड एवं आहुति दे; किंतु तर्पणमें दोनों हाथोंसे जल देना चाहिये। यह शास्त्रोंद्वारा निश्चित धर्म है।

## पापियोंको प्राप्त होनेवाली नरकोंकी यातनाओंका वर्णन, भगवद्भक्तिका निरूपण तथा धर्मराजके उपदेशसे भगीरथका गङ्गाजीको लानेके लिये उद्योग

**धर्मराज कहते हैं**—राजा भगीरथ! अब मैं पापोंके भेद और स्थूल यातनाओंका वर्णन करूँगा। तुम धैर्य धारण करके सुनो; क्योंकि नरक बड़े भयंकर होते हैं। जो दुरात्मा पापी सदा जिन नरकाग्नियोंमें पकाये जाते हैं, वे नरक पापका भयंकर फल देनेवाले हैं। मैं उन सबका वर्णन करता हूँ। उनके नाम इस प्रकार हैं—तपन, बालुका, रौरव, महारौरव, कुम्भ, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र, प्रमर्दन, भयंकर असिपत्रवन, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसाकूप, वैतरणी नदी, श्वभक्ष्य, मूत्रपान, पुरीषह्रद, तप्तशूल, तप्तशिला, शाल्मली वृक्ष, शोणित कूप, भयानक शोणितभोजन, वह्निज्वालानिवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, अग्निवृष्टि, क्षारोदक, उष्णतोय, तप्तायःपिण्डभक्षण, अध:शिर:-शोषण, मरुप्रतपन, पाषाणवर्षा, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमन, क्रकचदारण, पुरीष-लेपन, पुरीष-भोजन, महाघोर रेत:पान, सर्वसन्धिदाहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, अङ्गार-शयन, मुसलमर्दन, विविधकाष्ठयन्त्र, कर्षण, छेदन, पतनोत्पतन, गदादण्डादिपीडन, गजदन्तप्रहरण, नानासर्पदंशन, नासामुखशीताम्बुसेचन, घोरक्षाराम्बुपान, लवणभक्षण, स्नायुच्छेद, स्नायुबन्ध, अस्थिच्छेद, क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्रप्रवेश,

मांस-भोजन, महाघोर पित्तपान, श्लेष्म-भोजन, वृक्षाग्रपातन, जलान्तर्मज्जन, पाषाणधारण, कण्टकोपरिशयन, पिपीलिकादंशन, वृश्चिकपीडन, व्याघ्रपीडा, शृगालीपीडा, महिष-पीडन, कर्दमशयन, दुर्गन्धपरिपूर्ण, बहुशस्त्रास्त्रशयन, महातिक्तनिषेवण, अत्युष्णतैलपान, महाकटुनिषेवण, कषायोदक-पान, तप्तपाषाण-तक्षण, अत्युष्णशीत-स्नान, दशनशीर्णन, तप्तायःशयन और अयोभार-बन्धन। महाभाग! इस तरह करोड़ों प्रकारकी नरक-यातनाएँ होती हैं। जिनका सहस्रों वर्षोंमें भी मैं वर्णन नहीं कर सकता।

भूपाल! इन नरकोंमेंसे जिस पापीको जो प्राप्त होता है, वह सब मैं बतलाऊँगा। यह सब मेरे मुखसे सुनो। ब्रह्महत्यारा, शराबी, सुवर्णकी चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीगामी—ये महापातकी हैं। इनसे संसर्ग रखनेवाला पाँचवाँ महापातकी है[1]। जो पङ्क्तिभेद करता, बलिवैश्वदेवहीन होनेके कारण व्यर्थ (केवल शरीरपोषणके लिये ही) पाक बनाता, सदा ब्राह्मणोंको लाञ्छित करता, ब्राह्मणों या गुरुजनोंपर हुक्म चलाता और वेद बेचता है, ये पाँच प्रकारके पापी ब्रह्मघातक कहे गये हैं। 'मैं आपको धन आदि दूँगा' यह आज्ञा देकर जो ब्राह्मणको बुलाता है और पीछे 'नहीं है' ऐसा कहकर उसे सूखा जवाब दे देता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा कहा गया है। जो स्नान अथवा पूजनके लिये जाते हुए ब्राह्मणके कार्यमें विघ्न डालता है, उसे भी ब्रह्मघाती कहते हैं। जो परायी निन्दा और अपनी प्रशंसामें लगा रहता है तथा जो असत्यभाषणमें रत रहता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है। अधर्मका अनुमोदन करनेवालेको भी ब्रह्मघाती कहते हैं। जो दूसरोंको उद्वेगमें डालता, दूसरोंके दोषोंकी चुगली खाता और पाखण्डपूर्ण आचारमें तत्पर रहता है, उसे ब्रह्महत्यारा बताया गया है। जो प्रतिदिन दान लेता, प्राणियोंके वधमें तत्पर रहता तथा अधर्मका अनुमोदन करता है, उसे भी ब्रह्मघाती कहा गया है। राजन्! इस तरह नाना प्रकारके पाप ब्रह्महत्याके तुल्य बताये गये हैं।

अब मदिरापानके समान पापका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। गणान्न-भोजन (कई जगहसे भोजन लेकर खाना), वेश्यासेवन करना और पतित पुरुषोंका अन्न भोजन करना सुरापानके तुल्य माना गया है। उपासनाका त्याग, देवल पुरुष (मन्दिरके पुजारी)-का अन्न खाना तथा शराब पीनेवाली स्त्रीसे सम्बन्ध रखना मदिरापानके समान माना गया है। जो द्विज शूद्रके यहाँ भोजन करता है, उसे सब धर्मोंसे बहिष्कृत शराबी ही समझना चाहिये। जो शूद्रके आज्ञानुसार दासका कर्म करता है, वह नराधम ब्राह्मण मदिरापानके समान पापका भागी होता है। इस तरह अनेक प्रकारके पाप मदिरापानके तुल्य माने गये हैं।

अब मैं सुवर्णकी चोरीके समान पापका वर्णन करता हूँ, सुनो। कंद, मूल, फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र तथा रत्नोंकी चोरीको सदा सुवर्णकी चोरीके ही समान माना गया है। ताँबा, लोहा, राँगा, काँस, घी, शहद और सुगन्धित द्रव्योंका अपहरण करना सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। सुपारी, जल, चन्दन तथा कपूरका अपहरण भी सुवर्णकी चोरीके समान है। श्राद्धका त्याग, धर्मकार्यका लोप करना और यति पुरुषोंकी निन्दा करना भी सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। भोजनके

१. ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः॥ महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः।
(ना० पूर्व० १५। २२-२३)

योग्य पदार्थोंका अपहरण, विविध प्रकारके अनाजोंकी चोरी तथा रुद्राक्षका अपहरण भी सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है।

अब गुरुपत्नीगमनके समान पापका वर्णन किया जाता है। भगिनी, पुत्र-वधू तथा रजस्वला स्त्रीके साथ संगम करना गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है। नीच जातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखना, मदिरा पीनेवाली स्त्रीसे सहवास करना तथा परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करना गुरुतल्पगमनके समान माना गया है। भाईकी स्त्रीके साथ गमन, मित्रकी स्त्रीका सेवन तथा अपनेपर विश्वास करनेवाली स्त्रीके सतीत्वका अपहरण भी गुरुतल्पगमनके समान माना गया है। असमयमें मैथुन कर्म करना, पुत्रीगमन करना तथा धर्मका लोप और शास्त्रकी निन्दा करना—यह सब गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है। राजन्! इस प्रकारके पाप महापातक कहे गये हैं। इनमेंसे किसी एकके साथ भी संसर्ग रखनेवाला पुरुष उसके समान हो जाता है। शान्तचित्त महर्षियोंने जिस किसी प्रकार प्रायश्चित्त आदिकी व्यवस्थाद्वारा इन पापोंके निवारणका उपाय देखा है।

भूपते! जो पाप प्रायश्चित्तसे रहित हैं, उनका वर्णन सुनो। वे पाप समस्त पापोंके तुल्य तथा बड़े भारी नरक देनेवाले हैं। ब्रह्महत्या आदि पापोंके निवारणका उपाय तो किसी प्रकार हो सकता है; परंतु जो ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसका कहीं भी निस्तार नहीं होता। नरेश्वर! जो विश्वासघाती, कृतघ्न तथा शूद्रजातीय स्त्रीका सङ्ग करनेवाले हैं, उनका उद्धार कभी नहीं होता। जिनका शरीर निन्दित अन्नसे पुष्ट हुआ है तथा जिनका चित्त वेदोंकी निन्दामें ही रत है और जो भगवत्-कथा-वार्ता आदिकी निन्दा करते हैं, उनका इहलोक तथा परलोकमें कहीं भी उद्धार नहीं होता। प्रायश्चित्तहीन और भी बहुत-से पाप हैं, उनका परिचय मेरे नरक-वर्णनके साथ सुनो। जो महापातकी बताये गये हैं, वे उन प्रत्येक नरकमें एक-एक युग रहते हैं और अन्तमें इस पृथ्वीपर आकर वे सात जन्मोंतक गदहे होते हैं, तदनन्तर वे पापी दस जन्मोंतक घावसे भरे शरीरवाले कुत्ते होते हैं, फिर सौ वर्षोंतक उन्हें विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर बारह जन्मोंतक वे सर्प होते हैं। राजन्! इसके बाद एक हजार जन्मोंतक वे मृग आदि पशु होते हैं। फिर सौ वर्षोंतक स्थावर (वृक्ष आदि) योनिमें जन्म लेते हैं। तत्पश्चात् उन्हें गोधा (गोह)-का शरीर प्राप्त होता है। फिर सात जन्मोंतक वे पापाचारी चाण्डाल होते हैं। इसके बाद सोलह जन्मोंतक उन्हें नीच जातियोंमें जन्म लेना पड़ता है। फिर दो जन्मतक वे दरिद्र, रोगपीड़ित तथा सदा प्रतिग्रह लेनेवाले होते हैं, इससे उन्हें फिर नरकगामी होना पड़ता है। जिनका चित्त असूया (गुणोंमें दोषदृष्टि)-से व्याप्त है, उनके लिये रौरव नरककी प्राप्ति बतायी गयी है। वहाँ दो कल्पोंतक स्थित रहकर वे सौ जन्मोंतक चाण्डाल होते हैं। जो गाय, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'न दो' ऐसा कहकर बाधा डालते हैं, वे सौ बार कुत्तोंकी योनिमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डालोंके घर उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे विष्ठाके कीड़े होते हैं। फिर तीन जन्मोंतक व्याघ्र होकर अन्तमें इक्कीस युगोंतक नरकमें पड़े रहते हैं। जो परायी निन्दामें तत्पर, कटु भाषी और दानमें विघ्न डालनेवाले होते हैं, उनके पापका यह फल है। चोर मुसल और ओखलीके द्वारा चूर्ण किये जाते हैं। उसके बाद उन्हें तीन वर्षोंतक तपाया हुआ पत्थर उठाना पड़ता है, तदनन्तर वे सात वर्षोंतक कालसूत्रसे विदीर्ण किये जाते हैं। उस समय पराये धनका अपहरण करनेवाले वे चोर अपने

पाप-कर्मके लिये शोक करते हुए कर्मके फलसे निरन्तर नरकाग्निमें पकाये जाते हैं। जो दूसरोंके दोष बताते या चुगुली खाते हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो। उन्हें एक सहस्र युगतक तपाये हुए लोहेका पिण्ड भक्षण करना पड़ता है। अत्यन्त भयानक सँड़सोंसे उनकी जीभको पीड़ा दी जाती है और वे अत्यन्त घोर निरुच्छ्वास नामक नरकमें आधे कल्पतक निवास करते हैं। अब पर-स्त्री-लम्पट पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले नरकका तुमसे वर्णन करता हूँ। तपाये हुए ताँबेकी स्त्रियाँ सुन्दर रूप और आभरणोंसे युक्त होकर उनके साथ हठपूर्वक दीर्घकालतक रमण करती हैं। उनका रूप वैसा ही होता है, जैसी स्त्रियोंके साथ वे इस लोकमें सम्बन्ध रखते रहे हैं। वह पुरुष उनके भयसे भागता है और वे बलपूर्वक उसे पकड़ लेती हैं तथा उसके पाप-कर्मका परिचय देती हुई उन्हें क्रमशः विभिन्न नरकोंमें पहुँचाती हैं। भूपाल! इस लोकमें जो स्त्रियाँ अपने पतिको त्यागकर दूसरे पुरुषकी सेवा स्वीकार करती हैं, उन्हें यमलोकमें तपाये हुए लोहेके बलवान् पुरुष लोहेकी तपी हुई शय्यापर बलपूर्वक गिराकर उनके साथ बहुत समयतक रमण करते हैं। उनसे छूटनेपर वे स्त्रियाँ अग्निके समान प्रज्वलित लोहेके खंभेका आलिङ्गन करके एक हजार वर्षतक खड़ी रहती हैं। तत्पश्चात् उन्हें नमक मिलाये जलसे नहलाया जाता है और खारे पानीका ही सेवन कराया जाता है। उसके बाद वे सौ वर्षोंतक सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगती हैं। जो मनुष्य ब्राह्मण, गौ और श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाका इस लोकमें वध करता है, वह भी पाँच कल्पोंतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता है। जो महापुरुषोंकी निन्दाको आदरपूर्वक सुनता है, उसका फल सुनो; ऐसे लोगोंके कानोंमें तपाये हुए लोहेकी बहुत-सी कीलें ठोंक दी जाती हैं। तत्पश्चात् कानोंके उन छिद्रोंमें अत्यन्त गरम किया हुआ तेल भर दिया जाता है। फिर वे कुम्भीपाक नरकमें पड़ते हैं। जो लोग भगवान् शिव और विष्णुसे विमुख एवं नास्तिक हैं, उनको मिलनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। वे यमलोकमें करोड़ों वर्षोंतक केवल नमक खाते हैं। उसके बाद एक कल्पतक तपी हुई बालूसे पूर्ण रौरव नरकमें डाले जाते हैं। राजन्! इसी प्रकार अन्य नरकोंमें भी वे पापाचारी जीव अपने पापोंका फल भोगते हैं। जो नराधम कोपपूर्ण दृष्टिसे ब्राह्मणोंकी ओर देखते हैं, उनकी आँखमें हजारों तपी हुई सूइयाँ चुभो दी जाती हैं। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर वे नमकीन पानीकी धारासे भिगोये जाते हैं, इसके बाद उन पापकर्मियोंको भयंकर क्रकचों (आरों) से चीरा जाता है। राजन्! जो लोग विश्वासघाती, मर्यादा तोड़नेवाले तथा पराये अन्नके लोभी हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो। वे अपना ही मांस खाते हैं और

उनके शरीरको वहाँ प्रतिदिन कुत्ते नोच खाते हैं।

उन्हें सभी नरकोंमें एक-एक वर्ष निवास करना पड़ता है। जो सदा दान ही लिया करते हैं, जो केवल नक्षत्रोंके ही पढ़नेवाले (नक्षत्र-विद्यासे जीविका करनेवाले) हैं तथा जो सदा देवलक (पुजारी)-का अन्न भोजन करते हैं, उनकी क्या दशा होती है, वह भी मुझसे सुनो। राजन्! वे पापसे पूर्ण जीव एक कल्पतक इन सभी यातनाओंमें पकाये जाते हैं और वे सदा दु:खी रहकर निरन्तर कष्ट भोगते रहते हैं। तत्पश्चात् कालसूत्रसे पीड़ित हो तेलमें डुबोये जाते हैं। फिर उन्हें नमकीन जलसे नहलाया जाता है और उन्हें मल-मूत्र खाना पड़ता है। इसके बाद वे पृथ्वीपर आकर म्लेच्छ जातिमें जन्म लेते हैं। जो सदा दूसरोंको उद्वेगमें डालनेवाले हैं, वे वैतरणी नदीमें जाते हैं। पञ्च महायज्ञोंका त्याग करनेवाले पुरुष लालाभक्ष नरकमें पड़ते हैं। वहाँ उन्हें लार खाना पड़ता है। उपासनाका त्याग करनेवाला पुरुष रौरव नरकमें जाता है। भूपाल! जो ब्राह्मणोंके गाँवसे 'कर' लेते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और तारोंकी स्थिति रहती है, तबतक इन नरकयातनाओंमें पकाये जाते हैं। जो राजा गाँवोंमें अधिक 'कर' लगाता है, वह पाँच कल्पोंतक सहस्रों पीढ़ियोंके साथ नरक भोगता है। राजन्! जो पापी ब्राह्मणोंके गाँवसे 'कर' लेनेकी अनुमति देता है, उसने मानो सहस्रों ब्रह्महत्याएँ कर डालीं। वह दो चतुर्युगीतक महाघोर कालसूत्रमें निवास करता है।

जो महापापी अयोनि (योनिसे भिन्न स्थान), वियोनि (विजातीय योनि) और पशुयोनिमें वीर्यत्याग करता है, वह यमलोकमें वीर्य ही भोजनके लिये पाता है। तत्पश्चात् चर्बीसे भरे हुए कुएँमें डाला जाकर वहाँ सात दिव्य वर्षोंतक केवल वीर्य भोजन करके रहता है। उसके बाद मनुष्य होकर सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दाका पात्र बनता है। राजन्! जो उपवासके दिन दाँतुन करता है, वह चार युगोंतक व्याघ्रभक्ष नामक घोर नरकमें पड़ा रहता है; जिसमें व्याघ्र उसका मांस खाते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग करनेवाला है, उसे विद्वान् पुरुष पाखण्डी कहते हैं। उसका साथ करनेवाला भी उसीके समान हो जाता है। वे दोनों अत्यन्त पापी हैं और सहस्रों कल्पोंतक क्रमशः नरक-यातनाएँ भोगते हैं। राजन्! जो देवता-सम्बन्धी द्रव्यका अपहरण करनेवाले और गुरुका धन चुरानेवाले हैं, वे ब्रह्महत्याके समान पापका फल भोगते हैं। जो अनाथका धन हड़प लेते और अनाथसे द्वेष करते हैं, वे कोटिकल्पसहस्रोंतक नरकमें निवास करते हैं। जो स्त्रियों और शूद्रोंके समीप वेदाध्ययन करते हैं, उनके पापका फल बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। उनका सिर नीचे करके पैर ऊपर कर दिया जाता है और दोनों पैरोंको दो खंभोंमें काँटेसे जड़ दिया जाता है। फिर वे ब्रह्माजीके एक वर्षतक प्रतिदिन धुआँ पीकर रहते हैं। जो जल और देवमन्दिरमें तथा उनके समीप अपने शारीरिक मलका त्याग करता है, वह भ्रूणहत्याके समान अत्यन्त भयानक पापको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मणका धन तथा सुगन्धित काष्ठ चुराते हैं, वे चन्द्रमा और तारोंकी स्थितिपर्यन्त घोर नरकमें पड़े रहते हैं। राजन्! ब्राह्मणके धनका अपहरण इहलोक और परलोकमें भी दु:ख देनेवाला है। इस लोकमें तो वह धनका नाश करता है और परलोकमें नरककी प्राप्ति कराता है।

जो झूठी गवाही देता है, उसके पापका फल सुनो। वह जबतक चौदह इन्द्रोंका राज्य समाप्त होता है, तबतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता रहता है। इस लोकमें उसके पुत्र-पौत्र नष्ट हो जाते हैं और परलोकमें वह रौरव तथा अन्य नरकोंको क्रमशः भोगता है। जो मनुष्य अत्यन्त कामी और मिथ्यावादी हैं, उनके मुँहमें सर्पके समान जोंकें भर दी जाती हैं। इस अवस्थामें उन्हें साठ

हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तत्पश्चात् उन्हें खारे पानीसे नहलाया जाता है। मनुजेश्वर! जो ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास नहीं करते, वे ब्रह्महत्याका फल पाते और घोर नरकमें जाते हैं। जो किसीको अत्याचार करते देखकर शक्ति होते हुए भी उसका निवारण नहीं करता, वह भी उस अत्याचारके पापका भागी होता है और वे दोनों नरकमें पड़ते हैं। जो लोग पापियोंके पापोंकी गिनती करके दूसरोंको बताते हैं, वे पाप सत्य होनेपर भी उनके पापके भागी होते हैं। राजन्! यदि वे पाप झूठे निकले तो कहनेवालेको दूने पापका भागी होना पड़ता है। जो पापहीन पुरुषमें पापका आरोप करके उसकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और तारोंके स्थितिकालतक घोर नरकमें रहता है। जो व्रत लेकर उन्हें पूर्ण किये बिना ही त्याग देता है, वह असिपत्रवनमें पीड़ा भोगकर पृथ्वीपर किसी अङ्गसे हीन होकर जन्म लेता है। जो मनुष्य दूसरोंद्वारा किये जानेवाले व्रतोंमें विघ्न डालता है, वह मनुष्य अत्यन्त दु:खदायक और भयंकर श्लेष्म भोजन नामक नरकमें, जहाँ कफ भोजन करना पड़ता है, जाता है। जो न्याय करने तथा धर्मकी शिक्षा देनेमें पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त कर ले तो भी उस पापसे उसका उद्धार नहीं होता[1]। जो अपने कटुवचनोंसे ब्राह्मणोंका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण नरकोंकी यातनाएँ भोगकर दस जन्मोंतक चाण्डाल होता है। जो ब्राह्मणको कोई चीज देते समय विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो दूसरेका धन चुराकर दूसरोंको दान देता है, वह चुरानेवाला तो नरकमें जाता है और जिसका धन होता है, उसीको उस दानका फल मिलता है। जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, वह लालाभक्ष नरकमें जाता है। राजन्! जो संन्यासीकी निन्दा करता है, वह शिलायन्त्र नामक नरकमें जाता है। बगीचा काटनेवाले लोग इक्कीस युगोंतक श्वभोजन नामक नरकमें रहते हैं, जहाँ कुत्ते उनका मांस नोचकर खाते हैं। फिर क्रमश: वह सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगता है।

भूपते! जो देवमन्दिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते और फुलवारी उजाड़ देते हैं, वे जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वह सुनो। वे इन सब यातनाओं (नरकों)-में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। अन्तमें इक्कीस कल्पोंतक वे विष्ठाके कीड़े होते हैं। राजन्! उसके बाद वे सौ बार चाण्डालकी योनिमें जन्म लेते हैं। जो जूठा खाते और मित्रोंसे द्रोह करते हैं, उन्हें चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक भयंकर नरकयातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जो पितृयज्ञ और देवयज्ञका उच्छेद करते तथा वैदिक मार्गसे बाहर हो जाते हैं, वे पाखण्डीके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें सब प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। राजा भगीरथ! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेक प्रकारकी यातनाएँ हैं। प्रभो! मैं नरकों और उनकी यातनाओंकी गणना करनेमें असमर्थ हूँ। भूपते! पापों, यातनाओं तथा धर्मोंकी संख्या बतलानेके लिये संसारमें भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कौन समर्थ है? इन सब पापोंका धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त कर लेनेपर पापराशि नष्ट हो जाती है। धार्मिक कृत्योंमें जो न्यूनाधिकता रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समीप पूर्वोक्त पापोंके प्रायश्चित्त करने चाहिये। गङ्गा, तुलसी, सत्सङ्ग, हरिकीर्तन, किसीके दोष न

१. न्याये च धर्मशिक्षायां पक्षपातं करोति य:। न तस्य निष्कृतिर्भूय: प्रायश्चित्तायुतैरपि॥
(ना० पूर्व० १५। ११९)

देखना और हिंसासे दूर रहना—ये सब बातें पापोंका नाश करनेवाली होती हैं। भगवान् विष्णुको अर्पित किये हुए कर्म निश्चय ही सफल होते हैं। जो कर्म उन्हें अर्पित नहीं किये जाते, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ होते हैं। नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा जो मोक्षके साधनभूत कर्म हैं, वे सब भगवान् विष्णुके समर्पित होनेपर सात्त्विक और सफल होते हैं।

भगवान् विष्णुकी उत्तम भक्ति सब पापोंका नाश करनेवाली है। नृपश्रेष्ठ! सात्त्विक, राजस और तामस आदि भेदोंसे भक्ति दस[1] प्रकारकी जाननी चाहिये। वह पापरूपी वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। राजन्! जो दूसरेका विनाश करनेके लिये भगवान् लक्ष्मीपतिका भजन किया जाता है, वह 'अधमा तामसी' भक्ति है; क्योंकि वह दुष्टभाव धारण करनेवाली है। जो मनमें कपटबुद्धि रखकर, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिकी सेवा करती है, उस प्रकार जगदीश्वर भगवान् नारायणका पूजन करता है, उसकी वह 'मध्यमा तामसी' भक्ति है। पृथ्वीपाल! जो दूसरोंको भगवान्की आराधनामें तत्पर देखकर ईर्ष्यावश स्वयं भी भगवान् श्रीहरिकी पूजा करता है, उसकी वह क्रिया 'उत्तमा तामसी' भक्ति मानी गयी है। जो धन-धान्य आदिकी याचना करते हुए परम श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह पूजा 'अधमा राजसी' भक्ति मानी गयी है। जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात कीर्तिका उद्देश्य रखकर परम भक्तिभावसे भगवान्की आराधना करता है, उसकी वह क्रिया 'मध्यमा राजसी' भक्ति कही गयी है। पृथ्वीपते! जो सालोक्य और सारूप्य आदि पद प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान् विष्णुकी अर्चना करता है, उसके द्वारा की हुई वह पूजा 'उत्तमा राजसी' भक्ति कही गयी है। जो अपने किये हुए पापोंका नाश करनेके लिये पूर्ण श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी पूजा करता है, उसकी की हुई वह पूजा 'अधमा सात्त्विकी' भक्ति मानी गयी है। 'यह भगवान् विष्णुको प्रिय है' ऐसा मानकर जो श्रद्धापूर्वक सेवा-शुश्रूषा करता है, उसकी वह सेवा 'मध्यमा सात्त्विकी' भक्ति है। राजन्! 'शास्त्रकी ऐसी ही आज्ञा है' यह मानकर जो दासकी भाँति भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा-अर्चा करता है, उसकी वह भक्ति सब प्रकारकी भक्तियोंमें श्रेष्ठ 'उत्तमा सात्त्विकी' भक्ति मानी गयी है। जो भगवान् विष्णुकी थोड़ी-सी भी महिमा सुनकर परम संतुष्ट हो उनके ध्यानमें तन्मय हो जाता है, उसकी वह भक्ति 'उत्तमोत्तमा' मानी गयी है। 'मैं ही परम विष्णुरूप हूँ, मुझमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है।'

१. पहले सात्त्विक, राजस और तामस—भेदसे भक्तिके तीन भेद हैं। फिर प्रत्येकके उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन भेद और होते हैं। इस प्रकार नौ भेद हुए। दसवीं 'उत्तमोत्तमा परा भक्ति' है।

इस प्रकार जो सदा भगवान्‌से अपनेको अभिन्न देखता है, उसे उत्तमोत्तम भक्त समझना चाहिये[१]। यह दस प्रकारकी भक्ति संसार-बन्धनका नाश करनेवाली है। उसमें भी सात्त्विकी भक्ति सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। इसलिये भूपाल! सुनो—संसारको जीतनेकी इच्छावाले उपासकको अपने कर्मका त्याग न करते हुए भगवान् जनार्दनकी भक्ति करनी चाहिये। जो स्वधर्मका परित्याग करके भक्तिमात्रसे जीवन धारण करता है, उसपर भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते। वे तो धर्माचरणसे संतुष्ट होते हैं। सम्पूर्ण आगमोंमें आचारको प्रथम स्थान दिया गया है। आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं[२]। इसलिये स्वधर्मका विरोध न करते हुए श्रीहरिकी भक्ति करनी चाहिये। सदाचारशून्य मनुष्योंके धर्म भी सुख देनेवाले नहीं होते। स्वधर्मपालनके बिना की हुई भक्ति भी नहीं की हुईके समान कही गयी है। राजन्! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह दिया। अतः तुम अपने धर्ममें तत्पर रहकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्वरूपवाले जनार्दन भगवान् नारायणका पूजन करो। इससे तुम्हें सनातन सुखकी प्राप्ति होगी। भगवान् शिव ही साक्षात् श्रीहरि हैं और श्रीहरि ही स्वयं शिव हैं। इन दोनोंमें भेद देखनेवाला दुष्ट पुरुष करोड़ों नरकोंमें जाता है। इसलिये भगवान् विष्णु और शिवको समान समझकर उनकी आराधना करो। इनमें भेददृष्टि करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी दुःख पाता है।

जनेश्वर! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारे पास आया था, वह तुम्हें बतलाता हूँ। सुमते! सावधान होकर सुनो। राजन्! आत्मघातका पाप करनेवाले तुम्हारे पितामहगण महात्मा कपिलके क्रोधसे दग्ध हो गये हैं और इस समय वे नरकमें निवास करते हैं। महाभाग! गङ्गाजीको लानेका पराक्रम करके तुम उनका उद्धार करो। भूपते! गङ्गाजी निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती हैं। नृपश्रेष्ठ! मनुष्यके केश, हड्डी, नख, दाँत तथा शरीरकी भस्म भी यदि गङ्गाजीके शरीरसे छू जायँ तो वे भगवान् विष्णुके धाममें पहुँचा देती हैं। राजन्! जिसकी हड्डी अथवा भस्मको मनुष्य गङ्गाजीमें डाल देते हैं, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। भूपते! अबतक जितने भी पाप तुम्हें बताये गये हैं, वे सब गङ्गाजीके एक बिन्दुका अभिषेक होनेसे नष्ट हो जाते हैं।

---

१. यच्चान्यस्य विनाशार्थं भजनं श्रीपतेर्नृप। सा तामस्यधमा भक्तिः खलभावधरा यतः॥
योऽर्चयेत्कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतिं यथा। नारायणं जगन्नाथं तामसी मध्यमा तु सा॥
देवपूजापरान् दृष्ट्वा मात्सर्याद् योऽर्चयेद्धरिम्। सा भक्तिः पृथ्वीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता॥
धनधान्यादिकं यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम्। श्रद्धया परया युक्तः सा राजस्यधमा स्मृता॥
यः सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम्। अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता॥
सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम्। सा राजस्युत्तमा भक्तिः कीर्तिता पृथिवीपते॥
यस्तु स्वकृतपापानां क्षयार्थं प्रार्चयेद्धरिम्। श्रद्धया परयोपेतः सा सात्त्विक्यधमा स्मृता॥
हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते तु यः। श्रद्धया संयुतो भूयः सात्त्विकी मध्यमा तु सा॥
विधिबुद्ध्यार्चयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप। भक्तीनां प्रवरा सा तु उत्तमा सात्त्विकी स्मृता॥
महिमानं हरेर्यस्तु किंचिच्छ्रुत्वापि यो नरः। तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिरुत्तमोत्तमा॥
अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत्। इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम्॥
(ना० पूर्व० १५। १४०—१५०)

२. सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते। आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः॥
(ना० पूर्व० १५। १५४)

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ नारद! धर्मात्मा महाराज भगीरथसे ऐसा कहकर धर्मराज तत्काल अन्तर्धान हो गये। तब सब शास्त्रोंके पारगामी महाबुद्धिमान् राजा भगीरथ सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मन्त्रियोंको सौंपकर स्वयं वनको चले गये। वहाँसे हिमालयपर जाकर नर-नारायणके आश्रमसे पश्चिमकी तरफ बर्फसे ढके हुए एक शिखरपर, जो सोलह योजन विस्तृत है, उन्होंने तपस्या की और त्रिभुवनपावनी गङ्गाको वे इस भूतलपर ले आये।

## राजा भगीरथका भृगुजीके आश्रमपर जाकर सत्सङ्ग-लाभ करना तथा हिमालयपर घोर तपस्या करके भगवान् विष्णु और शिवकी कृपासे गङ्गाजीको लाकर पितरोंका उद्धार करना

**नारदजीने पूछा**—मुने! हिमालय पर्वतपर जाकर राजा भगीरथने क्या किया? वे गङ्गाजीको किस प्रकार ले आये? यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

**श्रीसनकजीने कहा**—मुने! महाराज भगीरथ जटा और चीर धारण करके तपस्याके लिये हिमालयपर जाते हुए गोदावरी नदीके तटपर पहुँचे[1]। वहाँ उन्होंने महान् वनमें महर्षि भृगुका उत्तम आश्रम देखा, जो कृष्णसार मृगोंसे भरा हुआ था और चमरी गायोंका समुदाय अपनी पूँछ हिलाकर मानो उस आश्रमको चँवर डुला रहा था। मालती, जूही, कुन्द, चम्पा और अश्वत्थ—उस आश्रमको विभूषित कर रहे थे। वहाँ चारों ओर भाँति-भाँतिके फूल खिले हुए थे। ऋषि-मुनियोंका समुदाय वहाँ निवास करता था। वेदों और शास्त्रोंका महान् घोष आकाशमें गूँज रहा था। महर्षि भृगुके ऐसे आश्रममें राजा भगीरथने प्रवेश किया। भृगुजी परब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन कर रहे थे। शिष्योंकी मण्डली उन्हें घेरकर बैठी थी। तेजमें वे भगवान् सूर्यके समान थे। राजा भगीरथने वहाँ उनका दर्शन किया और उनके चरण-ग्रहण

आदि विधिसे उन ब्राह्मणशिरोमणिकी वन्दना की; साथ ही भृगुजीने भी सम्मानपूर्वक राजाका आतिथ्य-सत्कार किया। महर्षि भृगुके द्वारा आतिथ्य-सत्कार हो जानेपर राजा भगीरथ उन मुनीश्वरसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले।

**भगीरथने कहा**—भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं। मैं संसार-

१. इस प्रसंगको देखनेसे यह जान पड़ता है कि उन दिनों राजा भगीरथ दक्षिण भारतमें गोदावरीसे भी कुछ दूर दक्षिणके किसी स्थानमें रहा करते थे। तभी उनके मार्गमें गोदावरी नदी आ सकी। सूर्यवंशियोंकी सुप्रसिद्ध राजधानी अयोध्यासे हिमालय जानेमें तो गोदावरीका मार्गमें आना सम्भव नहीं है।

बन्धनके भयसे डरकर आपसे मनुष्योंके उद्धारका उपाय पूछता हूँ। सर्वज्ञ मुनिसत्तम! यदि मैं आपका कृपापात्र होऊँ तो जिस कर्मसे भगवान् संतुष्ट होते हैं, वह मुझे बताइये।

**भृगुने कहा**—राजन्! तुम्हारी अभिलाषा क्या है, यह मुझे मालूम हो गयी। तुम पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ हो। अन्यथा अपने समस्त कुलका उद्धार करनेकी योग्यता तुममें कैसे आती। भूपाल! जो कोई भी क्यों न हो, यदि वह शुभ कर्मके द्वारा अपने कुलके उद्धारकी इच्छा रखता है तो उसे नररूपमें साक्षात् नारायण ही समझना चाहिये। राजेन्द्र! जिस कर्मसे प्रसन्न होकर देवेश्वर भगवान् विष्णु मनुष्योंको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं, वह बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। राजन्! तुम सदा सत्यका पालन करो और अहिंसाधर्ममें स्थित रहो। सदा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहकर कभी भी झूठ न बोलो। दुष्टोंका साथ छोड़ दो। सत्सङ्गका सेवन करो। पुण्य करो और दिन-रात सनातन भगवान् विष्णुका स्मरण करते रहो। भगवान् महाविष्णुकी पूजा करो और उत्तम शान्तिका आश्रय लो। द्वादशाक्षर अथवा अष्टाक्षर-मन्त्र जपो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

**भगीरथने पूछा**—मुने? सत्य कैसा कहा गया है? सम्पूर्ण भूतोंका हित क्या है? अनृत (झूठ) किसे कहते हैं? दुष्ट कैसे होते हैं? कैसे लोगोंको साधु कहा गया है? तथा पुण्य कैसा होता है? भगवान् विष्णुका स्मरण कैसे करना चाहिये और उनकी पूजा कैसे होती है? मुने! शान्ति किसे कहा गया है? अष्टाक्षर-मन्त्र क्या है? तत्त्वार्थके ज्ञाता महर्षे! द्वादशाक्षर-मन्त्र क्या होता है? मुझपर बड़ी भारी कृपा करके इन सबकी व्याख्या करें।

**भृगुने कहा**—महाप्राज्ञ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि बहुत उत्तम है। भूपाल! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह सब तुम्हें बतलाता हूँ। विद्वान् पुरुष यथार्थ कथनको 'सत्य' कहते हैं। धर्मपरायण मनुष्योंको इस प्रकार सत्य बोलना चाहिये कि धर्मका विरोध न होने पाये। इसलिये साधु पुरुष देश, काल आदिका विचार करके स्वधर्मका विरोध न करते हुए जो यथार्थ वचन बोलते हैं, वह 'सत्य' कहलाता है। राजन्! सम्पूर्ण जीवोंमेंसे किसीको भी जो क्लेश न देना है, उसीका नाम 'अहिंसा' है। वह सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली बतायी गयी है। धर्मके कार्यमें सहायता पहुँचाना और अधर्मके कार्यका विरोध करना—इसे धर्मज्ञ पुरुष सम्पूर्ण लोकोंका हितसाधन कहते हैं। धर्म और अधर्मका विचार न करके केवल अपनी इच्छाके अनुसार कहना असत्य है। उसे सब प्रकारके कल्याणका विरोधी समझना चाहिये। राजन्! जिनकी बुद्धि सदा कुमार्गमें लगी रहती है, जो सब लोगोंसे द्वेष रखनेवाले और मूर्ख हैं, उन्हें सम्पूर्ण धर्मोंसे बहिष्कृत दुष्ट पुरुष जानना चाहिये। जो लोग धर्म और अधर्मका विवेक करके वेदोक्त मार्गपर चलते हैं तथा सब लोगोंके हितमें संलग्न रहते हैं, उन्हें 'साधु' कहा गया है[1]। जो भगवान्‌की भक्तिमें सहायक है, साधु पुरुष जिसका पालन करते हैं तथा जो अपने लिये भी आनन्ददायक है, उसे 'धर्म' कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका स्वरूप है, विष्णु सबके कारण हैं और मैं भी विष्णु हूँ—यह जो ज्ञान है, उसीको 'भगवान् विष्णुका स्मरण' समझना चाहिये। भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं, मैं विधिपूर्वक उनकी पूजा करूँगा; इस प्रकारसे जो

१. धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः॥ सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिताः। (ना० पूर्व० १६। २९-३०)

श्रद्धा होती है, वह उनकी 'भक्ति' कही गयी है। श्रीविष्णु सर्वभूतस्वरूप हैं, सर्वत्र परिपूर्ण सनातन परमेश्वर हैं; इस प्रकार जो भगवान्‌के प्रति अभेद बुद्धि होती है, उसीका नाम 'समता' है। राजन् ! शत्रु और मित्रोंके प्रति समान भाव हो, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वशमें हों और दैववश जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष रहे तो इस स्थितिको 'शान्ति' कहते हैं। राजन्! इस प्रकार तुम्हारे इन सभी प्रश्नोंकी व्याख्या हो गयी। ये सब विषय मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और समस्त पापराशियोंका वेगपूर्वक नाश करनेके साधन हैं।

अष्टाक्षर-मन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है। राजेन्द्र! मैं उसका स्वरूप तुम्हें बतलाता हूँ। वह समस्त पुरुषार्थोंका एकमात्र साधन, भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। '**ॐ नमो नारायणाय**' यही अष्टाक्षर-मन्त्र है। इसका जप करना चाहिये। महाराज! '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' यह द्वादशाक्षर-मन्त्र कहा गया है। राजन्! इन अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर—दोनों मन्त्रोंका समान फल है। इनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनों मार्गवालोंके लिये समता बतायी गयी है। इन दोनों मन्त्रोंके जपके लिये भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। भगवान् नारायण अपने हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण किये शान्तभावसे विराजमान हैं। रोग और शोक उनका कभी स्पर्श नहीं करते। उनके वामाङ्कमें लक्ष्मीजी विराज रही हैं। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु सबको अभयदान कर रहे हैं। उनके मस्तकपर किरीट और कानोंमे कुण्डल शोभा पाते हैं। वे नाना प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित हैं। गलेमें कौस्तुभमणि और वनमाला धारण किये हुए हैं। उनका वक्ष:स्थल श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित है। वे पीताम्बरधारी भगवान् देवताओं और दानवोंसे भी वन्दित हैं। उनका आदि और अन्त नहीं है। वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले हैं। इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। वे अन्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सनातन हैं। राजा भगीरथ! तुमने जो कुछ पूछा, वह सब इस रूपमें बताया गया है। तुम्हारा कल्याण हो। अब सुखपूर्वक तपस्यामें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जाओ।

महर्षि भृगुके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथ बहुत प्रसन्न हुए और तपस्याके लिये वनमें गये। हिमालय पर्वतपर पहुँचकर वहाँके मनोहर पावन प्रदेशमें स्थित नादेश्वर महाक्षेत्रमें उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। राजा तीनों काल स्नान करते। कन्द, मूल तथा फल खाकर रहते और उसीसे आये हुए अतिथियोंका सत्कार भी करते थे। वे प्रतिदिन होममें तत्पर रहते। सम्पूर्ण भूतोंके हितैषी होकर शान्तभावसे स्थित थे। उन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ले रखी थी। पत्र, पुष्प, फल और जलसे वे तीनों काल श्रीहरिकी आराधना करते थे। इस प्रकार अत्यन्त धैर्यपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए वे सूखे पत्ते खाकर रहने लगे। तदनन्तर परम धर्मात्मा राजा भगीरथने प्राणायाम करते हुए श्वास बंद करके तपस्या करना प्रारम्भ किया। जिनका कहीं अन्त नहीं है या जो किसीसे पराजित नहीं होते, उन्हीं श्रीनारायणदेवका चिन्तन करते हुए वे साठ हजार वर्षोंतक श्वास रोके रहे। उस समय राजाकी नासिकाके छिद्रसे भयंकर अग्नि प्रकट हुई। उसे देखकर सब देवता थर्रा उठे और उस अग्निसे संतप्त होने लगे। फिर वे देवेश्वरगण क्षीरसागरके उत्तर तटपर जहाँ जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं, पहुँचकर भगवान् महाविष्णुकी शरणमें गये और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देवदेवेश्वर भगवान्‌की

इस प्रकार स्तुति करने लगे।

**देवताओंने कहा**—जो जगत्के एकमात्र स्वामी तथा स्मरण करनेवाले भक्तजनोंकी समस्त पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं, उन परमेश्वर श्रीविष्णुको हम नमस्कार करते हैं। ज्ञानी पुरुष उन्हें स्वभावतः शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं। श्रेष्ठ योगीजन जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो परमात्मा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके देवताओंका कार्य सिद्ध करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो जगत्के आदिस्वामी हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं। जिनके नामोंका संकीर्तन करनेमात्रसे दुष्ट पुरुषोंके भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; जो सबके शासक, स्तवन करने योग्य एवं पुराणपुरुष हैं, उन भगवान् विष्णुको हम पुरुषार्थसिद्धिके लिये नमस्कार करते हैं। सूर्य आदि जिनके तेजसे प्रकाशित होते हैं और कभी भी जिनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते, जो सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर तथा पुरुषार्थरूप हैं, उन कालस्वरूप श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं। जिनकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्माजी इस जगत्की सृष्टि करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और ब्राह्मणलोग श्रुतियोंके द्वारा सब लोगोंको पवित्र करते हैं, जो गुणोंके भण्डार और सबके उपदेशक गुरु हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुकी हम शरणमें आये हैं। जो सबसे श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तथा मधु और कैटभको मारनेवाले हैं, देवता और दैत्य भी जिनकी चरणपादुकाका पूजन करते हैं, जो श्रेष्ठ भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके कारण हैं तथा एकमात्र ज्ञानद्वारा जिनके तत्त्वका बोध होता है, उन दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान्को हम प्रणाम करते हैं। जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, अनादि, अविद्या नामक अन्धकारका नाश करनेवाले, सत्, चित्, परमानन्दघन स्वरूप तथा रूप आदिसे रहित हैं, उन भगवान् परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं। जो जलमें शयन करनेके कारण नारायण, सर्वव्यापी होनेसे विष्णु, अविनाशी होनेसे अनन्त और सबके शासक होनेसे ईश्वर कहलाते हैं, अपने श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो यज्ञके प्रेमी, यज्ञ करनेवाले, विशुद्ध, सर्वोत्तम एवं अव्यय हैं, उन भगवान् विष्णुको हम नमस्कार करते हैं।

इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने देवताओंको राजर्षि भगीरथका चरित्र बतलाया। नारदजी! फिर उन सबको आश्वासन तथा अभय देकर निरञ्जन भगवान् विष्णु उस स्थानपर गये, जहाँ राजर्षि भगीरथ तपस्या करते थे। सम्पूर्ण जगत्के गुरु शङ्ख-चक्रधारी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिने राजा भगीरथको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। राजाने देखा, सामने कमलनयन भगवान् विराजमान हैं। उनकी प्रभासे सम्पूर्ण दिग्दिगन्त उद्भासित हो रहा है। उनके अङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम है। कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। चिकने घुँघराले केशोंवाले मुखारविन्दसे सुशोभित हैं। मस्तकपर जगमगाता हुआ मुकुट उनके स्वरूपको और भी प्रकाशपूर्ण किये देता है। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि है। वे वनमालासे विभूषित हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता टपक रही है। उनके चरणारविन्द लोकेश ब्रह्माजीके द्वारा पूजित हैं। भगवान्की यह झाँकी देखकर राजा भगीरथ भूतलपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उनका कंधा झुक गया और वे बार-बार प्रणाम करने लगे। उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भरा हुआ था।

शरीरमें रोमाञ्च हो आया था और वे गद्गद कण्ठसे 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण'—इस प्रकार उच्चारण कर रहे थे। अन्तर्यामी जगद्गुरु भगवान् विष्णु भगीरथपर प्रसन्न थे। उन भूतभावन भगवान्ने करुणासे भरकर कहा।

**श्रीभगवान् बोले**—महाभाग भगीरथ! तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, तुम्हारे पूर्व पितामह मेरे लोकमें जायँगे। राजन्! भगवान् शिव मेरे दूसरे स्वरूप हैं। तुम यथाशक्ति स्तुति-पाठ करके उनका स्तवन करो। वे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ तत्काल सिद्ध करेंगे। जिन्होंने अपनी शरणमें आये हुए चन्द्रमाको स्वीकार किया है, वे बड़े शरणागतवत्सल हैं। अत: स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करने योग्य उन सुखदाता ईशानकी तुम आराधना करो। अनादि अनन्तदेव महेश्वर सम्पूर्ण कामनाओं तथा फलोंके दाता हैं। राजन्! तुमसे भलीभाँति पूजित होकर वे शीघ्र तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मुनिश्रेष्ठ नारद! तीनों लोकोंके स्वामी देवदेवेश्वर भगवान् अच्युत ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। फिर वे राजा भगीरथ भी उठे। द्विजश्रेष्ठ! राजाके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—क्या यह सब स्वप्न था अथवा साक्षात् सत्यका ही दर्शन हुआ है। अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार भ्रान्तचित्त हुए राजा भगीरथसे आकाशवाणीने उच्च स्वरसे कहा—'राजन्! यह सब अवश्य ही सत्य है। तुम चिन्ता न करो।' आकाशवाणी सुनकर भूपाल भगीरथने हम सबके कारण तथा समस्त देवताओंके स्वामी भगवान् शिवका भक्तिपूर्वक स्तवन किया।

**भगीरथने कहा**—मैं प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले विश्वनाथ शिवको प्रणाम करता हूँ। जो प्रमाणसे परे तथा प्रमाणरूप हैं, उन भगवान् ईशानको मैं नमस्कार करता हूँ। जो जगत्स्वरूप होते हुए भी नित्य और अजन्मा हैं, संसारकी सृष्टि, संहार और पालनके एकमात्र कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। योगीश्वर, महात्मा जिनका आदि, मध्य और अन्तसे रहित अनन्त, अजन्मा एवं अव्ययरूपसे चिन्तन करते हैं, उन पुष्टिवर्धक शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। पशुपति भगवान् शिवको नमस्कार है। चैतन्यस्वरूप भगवान् शंकरको नमस्कार है। असमर्थोंको सामर्थ्य देनेवाले शिवको नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके पालक भगवान् भूतनाथको नमस्कार है। प्रभो! आप हाथमें पिनाक धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। त्रिशूलसे शोभित हाथवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूत आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जगत्के अनेक रूप आपके ही रूप हैं। आप निर्गुण परमात्माको नमस्कार है। ध्यानस्वरूप आपको नमस्कार है। ध्यानके साक्षी आपको नमस्कार है ध्यानमें सम्यक् रूपसे स्थित आपको नमस्कार है तथा ध्यानसे ही अनुभवमें आनेवाले आपको नमस्कार है। जो अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, महात्मा, परमज्योति:स्वरूप तथा सनातन हैं, तत्त्वज्ञ पुरुष जिन्हें मानवनेत्रोंको प्रकाश देनेवाले सूर्य कहते हैं, जो उमाकान्त, नन्दिकेश्वर, नीलकण्ठ, सदाशिव, मृत्युञ्जय, महादेव, परात्पर एवं विभु कहे जाते हैं, परब्रह्म और शब्दब्रह्म जिनके स्वरूप हैं, उन समस्त जगत्के कारणभूत परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप जटाजूट धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। जिनसे समुद्र, नदियाँ, पर्वत, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध-समुदाय, स्थावर-जङ्गम, बड़े-छोटे, सत्-असत् तथा जड और चेतन—सबका प्रादुर्भाव हुआ है, योगी पुरुष जिनके चरणारविन्दोंमें नमस्कार करते हैं, जो सबके अन्तरात्मा, रूपहीन

एवं ईश्वर हैं, उन स्वतन्त्र एक तथा गुणियोंके गुणस्वरूप भगवान् शिवको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ, बार-बार मस्तक झुकाता हूँ।

सब लोगोंका कल्याण करनेवाले महादेव भगवान् शंकर इस प्रकार अपनी स्तुति सुनकर, जिनकी तपस्या पूर्ण हो चुकी है, उन राजा भगीरथके आगे प्रकट हुए। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। उन्होंने अर्धचन्द्रका मुकुट धारण कर रखा है। उनके तीन नेत्र हैं। एक-एक अङ्गसे

उदारता टपकती है। उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत पहन रखा है। उनका वक्ष:स्थल विशाल तथा कान्ति हिमालयके समान उज्ज्वल है। गजचर्मका वस्त्र पहने हुए उन भगवान् शिवके चरणारविन्द समस्त देवताओंद्वारा पूजित हो रहे हैं। नारदजी! भगवान् शिवको इस रूपमें उपस्थित देख राजा भगीरथ उनके चरणोंके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सहसा उठकर उन्होंने भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़े और उनके महादेव तथा शंकर आदि नामोंका कीर्तन करते हुए प्रणाम किया। राजाकी भक्ति जानकर चन्द्रशेखर भगवान् शिव उनसे बोले—'राजन्! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुमने स्तोत्र और तपस्याद्वारा मुझे भलीभाँति संतुष्ट किया है।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे हाथ जोड़कर जगदीश्वर शिवसे इस प्रकार बोले।

**भगीरथने कहा**—महेश्वर! यदि मैं वरदान देकर अनुगृहीत करने योग्य होऊँ तो हमारे पितरोंकी मुक्तिके लिये आप हमें गङ्गा प्रदान करें।

**भगवान् शिव बोले**—राजन्! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी। इससे तुम्हारे पितरोंको उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हें भी परम मोक्ष मिलेगा।

यों कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जटाजूटधारी भगवान् शिवकी जटासे नीचे आकर जगत्‌को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्‌को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे चलीं। मुने! तबसे परम निर्मल पापहारिणी गङ्गादेवी तीनों लोकोंमें 'भागीरथी' के नामसे विख्यात हुई। सगरके पुत्र पूर्वकालमें अपने ही पापके कारण जहाँ दग्ध हुए थे, उस स्थानको भी सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाने अपने जलसे प्लावित कर दिया। सगर-पुत्रोंकी भस्म ज्यों ही गङ्गाजलसे प्रवाहित हुई, त्यों ही वे निष्पाप हो गये। पहले जो नरकमें डूबे हुए थे, उनका गङ्गाने उद्धार कर दिया। पूर्वकालमें यमराजने अत्यन्त कुपित होकर जिन्हें बड़ी भारी पीड़ा दी थी, वे ही गङ्गाजीके जलसे (उनके शरीरकी भस्म) आप्लावित होनेके कारण उन्हीं यमराजके द्वारा पूजित हुए। सगर-पुत्रोंको निष्पाप समझकर यमराजने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजकुमारो! आपलोग अत्यन्त भयंकर नरकसे उद्धार पा गये। अब इस

विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके धाममें जाइये।' यमराजके ऐसा कहनेपर वे पापरहित महात्मा दिव्य देह धारण करके भगवान् विष्णुके लोकमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभागसे प्रकट हुई गङ्गाजीका ऐसा प्रभाव है। महापातकोंका नाश करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात हैं। यह पवित्र आख्यान महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह गङ्गास्नानका फल पाता है। जो इस पवित्र आख्यानको ब्राह्मणके सम्मुख कहता है, वह भगवान् विष्णुके पुनरावृत्तिरहित धाममें जाता है।

## मार्गशीर्ष माससे लेकर कार्तिक मासपर्यन्त उद्यापनसहित शुक्लपक्षके द्वादशीव्रतका वर्णन

**ऋषि बोले**—महाभाग सूतजी! आपको साधुवाद है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है। आपने कृपा करके सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम गङ्गा-माहात्म्य हमें सुनाया है। यह गङ्गा-माहात्म्य सुनकर देवर्षि नारदजीने मुनिश्रेष्ठ सनकजीसे कौन-सा प्रश्न किया? यह बताइये।

**सूतजीने कहा**—आप सब ऋषि सुनें। देवर्षि नारदने फिर जिस प्रकार प्रश्न किया था, वह बतलाऊँगा।

**नारदजी बोले**—मुने! आप भगवान् विष्णुके उन व्रतोंका वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो भगवत्-सम्बन्धी व्रत, पूजन और ध्यानमें तत्पर हो भगवान्‌का भजन करते हैं, उनको भगवान् विष्णु मुक्ति तो अनायास ही दे देते हैं, पर वे जल्दी किसीको भक्तियोग नहीं देते। मुनिश्रेष्ठ! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं। प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग-सम्बन्धी जो कर्म भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न करनेवाला हो, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

**श्रीसनकजीने कहा**—मुनिश्रेष्ठ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम भगवान् पुरुषोत्तमके भक्त हो, इसीलिये बार-बार उन शार्ङ्गधन्वा—श्रीहरिका चरित्र पूछते हो। मैं तुम्हें उन लोकोपकारी व्रतोंका उपदेश करता हूँ, जिनसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं और साधकको अभय-दान देते हैं। जिस पुरुषपर यज्ञस्वरूप भगवान् जनार्दनकी प्रसन्नता हो जाती है, उसे इहलोक और परलोकमें सुख मिलता है तथा उसके तपकी वृद्धि होती है। महर्षिगण कहते हैं कि जिस किसी उपायद्वारा भी जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। मार्गशीर्ष मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशीको उपवास करके मनुष्य श्रद्धापूर्वक जलशायी भगवान् नारायणकी पूजा करे। मुनिश्रेष्ठ! पहले दन्तधावन करके स्नान करे, फिर श्वेतवस्त्र धारण करके मौन हो गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-भावसे श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। '**केशवाय नमस्तुभ्यम्**' (केशव! आपको नमस्कार है।)—इस मन्त्रद्वारा श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उसी मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर भगवान् शालग्रामके समीप रातमें जागरण करे। उस रात्रिमें ही सेरभर दूधसे रोग-शोकरहित भगवान् श्रीनारायणको स्नान करावे और गीत-वाद्य, नैवेद्य, भक्ष्य तथा भोज्यपदार्थोंद्वारा महालक्ष्मीसहित उन भगवान् नारायणका भक्तिपूर्वक तीन समय पूजन करे। फिर सबेरे उठकर यथावश्यक शौच-स्नानादि

कर्म करके पूर्ववत् मन-इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए मौनभावसे पवित्रतापूर्वक भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे दक्षिणासहित घृतमिश्रित खीर और नारियलका फल भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पित करे—

**केशवः केशिहा देवः सर्वसम्पत्प्रदायकः॥**
**परमान्नप्रदानेन मम स्यादिष्टदायकः।**

(ना० पूर्व० १७। २१-२२)

'जिन्होंने केशी दैत्यको मारा है तथा जो सब प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाले हैं, वे भगवान् केशव यह उत्तम अन्न दान करनेसे मेरे लिये अभीष्ट वस्तुको देनेवाले हों।'

तदनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणभोजन करावे। उसके बाद भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए मौन होकर स्वयं भी भाई-बन्धुओंसहित भोजन करे। इस प्रकार जो भक्ति-भावसे भगवान् केशवकी उत्तम पूजा करता है, वह आठ पौण्डरीक यज्ञके समान फल पाता है। पौष मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके '**नमो नारायणाय**' इस मन्त्रसे पवित्रतापूर्वक श्रीहरिका पूजन करे। दूधसे भगवान्‌को नहलाकर खीरका नैवेद्य अर्पण करे। रातमें तीनों समय श्रीहरिकी पूजामें संलग्न रहकर जागता रहे। गन्ध, मनोरम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नृत्य, गीत-वाद्य आदि तथा स्तोत्रोंद्वारा श्रीहरिकी अर्चना करे। सबेरेकी पूजाके पश्चात् घृत और दक्षिणासहित खिचड़ी ब्राह्मणको दे। (उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ना चाहिये—)

**सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः।**
**नारायणः प्रसन्नः स्यात् कृशरान्नप्रदानतः॥**

(ना० पूर्व० १७। २८)

'जो सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर तथा सर्वत्र व्यापक हैं, वे सनातन भगवान् श्रीनारायण यह खिचड़ी दान करनेसे मुझपर प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे ब्राह्मणको उत्तम दान देकर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे। फिर स्वयं बन्धु-बान्धवोंसहित भोजन करे। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् नारायणदेवका पूजन करता है, वह आठ अग्निष्टोम यज्ञोंका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है। माघ शुक्ला द्वादशीको भी पूर्ववत् उपवास करके '**नमस्ते माधवाय**' इस मन्त्रसे अग्निमें आठ बार घीकी आहुति दे। उस दिन पूर्ववत् सेरभर दूधसे भगवान् माधवको स्नान करावे। फिर चित्तको एकाग्र करके गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे पहलेकी तरह तीनों समय भक्तिपूर्वक पूजन करते हुए रातमें जागरण करे। तत्पश्चात् प्रातःकालका कृत्य समाप्त करके पुनः श्रीमाधवकी अर्चना करे। अन्तमें सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये वस्त्र और दक्षिणासहित सेरभर तिल ब्राह्मणको इस मन्त्रसे दान करे—

**माधवः सर्वभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रदः।**
**तिलदानेन महता सर्वान् कामान् प्रयच्छतु॥**

(ना० पूर्व० १७। ३५)

'सम्पूर्ण कर्मोंका फल देनेवाले तथा समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् लक्ष्मीपति तिलके इस महादानसे प्रसन्न होकर मेरी सब कामनाएँ पूरी करें।'

इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिल दान देकर भगवान् माधवका स्मरण करते हुए यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये। मुने! जो इस प्रकार भक्ति-भावसे तिलदानयुक्त व्रत करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें द्वादशीको उपवास करके व्रती पुरुष '**गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्**' इस मन्त्रसे भगवान्‌का पूजन करे और घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर पूर्वोक्त मानके अनुसार एक सेर दूधसे पवित्रतापूर्वक भगवान्

गोविन्दको स्नान करावे। पूर्ववत् रातमें जागरण और तीनों समय पूजा करे। फिर प्रात:कालका शौच, स्नान आदि कर्म पूरा करके पुन: भगवान् गोविन्दकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र और दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) धान ब्राह्मणको दे और निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

**नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ॥**
**अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो।**

(ना० पूर्व० १७। ४१-४२)

'गोविन्द! सर्वेश्वर! गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! जगद्गुरो! इस धान्यके दानसे आप मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महान् यज्ञका पूरा पुण्य प्राप्त कर लेता है।

चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके पहले बताये अनुसार '**नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यम्**'—इस मन्त्रसे भगवान्‌की पूजा करे। पूर्ववत् एक सेर दूधसे भगवान् विष्णुको स्नान करावे। विप्रवर! यदि शक्ति हो तो उसी प्रकार सेरभर घीसे भी आदरपूर्वक भगवान्‌को नहलावे तथा रातमें भी पहलेकी तरह जागरण और पूजन करे। तदनन्तर सबेरे उठकर प्रात:-कालके आवश्यक कर्म पूरा करके मधु, घी और तिलमिश्रित हवन-सामग्रीकी एक सौ आठ आहुति दे। उसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) चावल दान करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः॥**
**तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः।**

(१७। ४७-४८)

'भगवान् महाविष्णु प्राणस्वरूप हैं। वे ही सबके प्रियतम और प्राणदाता हैं। इस एक आढक चावलके दानसे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भक्तिभावसे व्रतका पालन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अत्यग्निष्टोम यज्ञके आठगुने फलको पाता है।

वैशाख शुक्ला द्वादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक देवेश्वर मधुसूदनको द्रोण (कलश) परिमित दूधसे स्नान करावे तथा रातमें तीन समय पूजन करते हुए जागरण करे। मधुसूदनकी विधिपूर्वक पूजा करके '**नमस्ते मधुहन्त्रे**'—इस मन्त्रसे घीकी एक सौ आठ आहुतिका होम करे। घीका उपयोग अपनी शक्तिके अनुसार करे। इससे पापरहित होकर मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक आढक (चार सेर) दूधसे भगवान् त्रिविक्रमको स्नान करावे और '**नमस्त्रिविक्रमाय**' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करे। खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर होम करे। फिर रातमें जागरण करके भगवान्‌की पूजा करे। फिर प्रात:कृत्य करके पूजनके पश्चात् ब्राह्मणको दक्षिणासहित बीस

पूआ दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

**देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर॥**
**उपायनं च संगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव।**

(ना० पूर्व० १७। ५५-५६)

'देवदेव! जगन्नाथ! परमेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये और यह भेंट ग्रहण करके मेरे अभीष्टकी सिद्धि कीजिये।'

तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उसके बाद स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ब्रह्मन्! जो इस प्रकार भगवान् त्रिविक्रमका व्रत करता है, वह निष्पाप हो आठ यज्ञोंका फल पाता है।

आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको उपवास-व्रत करनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष पूर्ववत् एक आढक (चार सेर) दूधसे वामनजीको स्नान करावे। '**नमस्ते वामनाय**'—इस मन्त्रसे दूर्वा और घीकी एक सौ आठ आहुति देकर रातमें जागरण और वामनजीका पूजन करे। दक्षिणासहित दही, अन्न और नारियलका फल वामनजीकी पूजा करनेवाले ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक अर्पण करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनः सदा।**
**वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः॥**

(ना० पूर्व० १७। ६१)

'वामन बुद्धिदाता हैं। वे ही होता हैं और द्रव्यमें भी सदा वामनजी स्थित रहते हैं। वामन ही इस संसार-सागरसे तारनेवाले हैं। वामनजीको बार-बार नमस्कार है।'

इस मन्त्रसे दही-अन्नका दान करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे। ऐसा करके मनुष्य सौ अग्निष्टोम यज्ञोंका फल पा लेता है।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करनेवाला व्रती मधुमिश्रित दूधसे भगवान् श्रीधरको स्नान करावे और '**नमोऽस्तु श्रीधराय**'—इस मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि सामग्रियोंद्वारा क्रमशः पूजन करे। मुने! तत्पश्चात् दही मिले हुए घीसे एक सौ आठ आहुति दे। फिर रातमें जागरण करके पूजाकी व्यवस्था करे और ब्राह्मणको परम उत्तम एक आढक (चार सेर) दूध दान करे। विप्रवर! साथ ही सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये वस्त्र और दक्षिणासहित सोनेके दो कुण्डल भी निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्पण करे।

**क्षीराब्धिशायिन् देवेश रमाकान्त जगत्पते।**
**क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः॥**

(ना० पूर्व० १७। ६७)

'क्षीरसागरमें शयन करनेवाले देवेश्वर! लक्ष्मीकान्त! जगत्पते! इस दुग्धदानसे आप अत्यन्त प्रसन्न हो सम्पूर्ण सुखोंके दाता होइये।'

ब्राह्मणभोजन सुख देनेवाला है, इसलिये व्रती पुरुष यथाशक्ति भोजन करावे। ऐसा करनेसे एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक द्रोण (कलश) दूधसे जगद्गुरु भगवान् हृषीकेशको स्नान करावे। '**हृषीकेश नमस्तुभ्यम्**' इस मन्त्रसे मनुष्य भगवान्‌का पूजन करे। फिर मधुमिश्रित चरुसे एक सौ आठ आहुति दे। फिर पूर्ववत् जागरण आदि कार्य सम्पन्न करके आत्मज्ञानी ब्राह्मणको डेढ़ आढक (छः सेर) गेहूँ और यथाशक्ति सुवर्णकी दक्षिणा दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**हृषीकेश नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकहेतवे।**
**मह्यं सर्वसुखं देहि गोधूमस्य प्रदानतः॥**

(ना० पूर्व० १७। ७२)

'इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् हृषीकेश! आप सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कारण हैं। आपको नमस्कार है। इस गोधूम-दानसे प्रसन्न हो आप मुझे सब प्रकारके सुख दीजिये।'

तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो महान् यज्ञका फल पाता है।

आश्विन मासकी शुक्ला द्वादशीको उपवास करके पवित्र हो भक्तिपूर्वक भगवान् पद्मनाभको दूधसे स्नान करावे। फिर '**नमस्ते पद्मनाभाय**'—इस मन्त्रसे यथाशक्ति तिल, चावल, जौ और घृतद्वारा होम एवं विधिपूर्वक पूजन करे। रातमें जागरणका कार्य सम्पन्न करके पुनः पूजन करे और ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक पाव मधु दान करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**पद्मनाभ नमस्तुभ्यं सर्वलोकपितामह।**
**मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः॥**

(ना० पूर्व० १७। ७७)

'सम्पूर्ण लोकोंके पितामह पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। इस मधुदानसे अत्यन्त प्रसन्न हो आप हमें सम्पूर्ण सुख प्रदान करें।'

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष इस प्रकार भक्तिभावसे पद्मनाभ-व्रतका पालन करता है, उसे निश्चय ही एक हजार महान् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

कार्तिक शुक्ला द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रिय पुरुष एक आढक (चार सेर) दूध, दही अथवा उतने ही घीसे भक्तिपूर्वक भगवान् दामोदरको स्नान करावे। स्नान करानेका मन्त्र है—'**ॐ नमो दामोदराय**।' उसीसे मधु और घी मिलाये हुए तिलकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर संयम-नियमपूर्वक तीनों समय श्रीहरिकी पूजामें तत्पर हो रातमें जागरण करे और प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो मनोरम कमलके फूलोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद घृतमिश्रित तिलोंके द्वारा पुनः एक सौ आठ आहुति दे और पाँच प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त अन्न ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण।**
**त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक॥**

(ना० पूर्व० १७। ८३)

'दामोदर! जगन्नाथ! आप समस्त कारणोंके भी कारण हैं। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कुटुम्बयुक्त श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान और यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भी भोजन करावे। इस प्रकार व्रतका विधिपूर्वक पालन करके अपने बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इससे वह दो हजार अश्वमेधयज्ञोंका फल पाता है।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाला जो पुरुष परम उत्तम द्वादशी-व्रतका एक वर्षतक पूर्वोक्त विधिसे अनुष्ठान करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो एक मास या दो मासमें भक्तिपूर्वक उक्त व्रतका पालन करता है, वह उस-उस महीनेके बताये हुए फलको पाता है और हरिके परम पदको प्राप्त हो जाता है। मुनीश्वर! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एक वर्ष पूरा करके मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रतका उद्यापन करे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त हो दन्तधावन और स्नान करके नित्य कृत्य करे। फिर श्वेत वस्त्र तथा श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे। घरके आँगनमें एक दिव्य चौकोर एवं परम सुन्दर मण्डप बनावे। उसमें घण्टा और चँवर यथास्थान लगा दे। छोटी-छोटी घण्टियोंकी ध्वनिसे उस मण्डपको सुशोभित करे। फूलोंकी मालाओंसे उसको सजावे। ऊपरसे चँदोवा लगा दे और ध्वजा-पताकासे भी उस मण्डपको विभूषित करे। वह मण्डप श्वेत वस्त्रसे आच्छादित तथा दीपमालाओंसे

आच्छादित होना चाहिये। उसके मध्यभागमें सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसे विविध रंगोंसे भलीभाँति अलंकृत करे। सर्वतोभद्रके ऊपर जलसे भरे हुए बारह घड़े रखे। भलीभाँति शुद्ध किये हुए एक ही श्वेत वस्त्रसे उन सभी कलशोंको ढँक दे। वे सब कलश पञ्चरत्नसे युक्त होने चाहिये। ब्रह्मन्! व्रती पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा बनावे और उसे मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए कलशके ऊपर स्थापित करे। द्विजश्रेष्ठ! जो प्रतिमा न बना सके, वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण अथवा उसका मूल्य वहाँ चढ़ा दे। बुद्धिमान् पुरुष सभी व्रतोंमें उदार रहे। धनकी कंजूसी न करे। यदि वह कृपणता करता है तो उसकी आयु और धन-सम्पत्तिका क्षय होता है। पहले शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले रोग-शोकसे रहित भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान करके उन्हें भक्तिपूर्वक पञ्चामृतसे स्नान करावे। फिर केशव आदि नामोंसे उनके लिये भिन्न-भिन्न उपचार चढ़ावे। रातमें पुराण-कथा-श्रवण आदिके द्वारा जागरण करे। निद्राको जीते और उपवासपूर्वक जितेन्द्रिय-भावसे रहकर अपने वैभवके अनुसार रातके प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रहरके अन्तमें तीन बार भगवान्‌की पूजा करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेके शौच-स्नान आदि आवश्यक कृत्य पूरे करके ब्राह्मणोंद्वारा व्याहृतिमन्त्रसे तिलकी एक हजार आहुतियाँ दिलावे। उसके बाद क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे पुनः भगवान्‌की पूजा करे तथा भगवान्‌के समक्ष पुराणकी कथा भी सुने। फिर बारह ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको दस-दस पूआ, घृत, दधिसहित अन्न तथा खीर दान करे। उसके साथ दक्षिणा भी दे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

**देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह।**
**गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव॥**

(ना० पूर्व० १७। १०३)

'भक्तोंपर कृपा करके अवतार—शरीर धारण करनेवाले देवेदव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! आप यह भेंट ग्रहण कीजिये और मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ दीजिये।'

इस मन्त्रसे भगवान्‌को भेंट अर्पण करके दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर व्रती पुरुष विनयसे नतमस्तक हो हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

**नमो नमस्ते सुरराजराज**
**नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास।**
**कुरुष्व सम्पूर्णफलं ममाद्य**
**नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय॥**

(ना० पूर्व० १७। १०५)

'देवताओंके राजाधिराज! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌के निवासस्थान नारायणदेव! आपको नमस्कार है। आज मेरे इस व्रतको पूर्णतः सफल बनाइये। आप पुरुषोत्तमको नमस्कार है।'

इस प्रकार ब्राह्मणों तथा भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रार्थना करे। तत्पश्चात् महालक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य दे।

**लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं क्षीरार्णवनिवासिने।**
**अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो॥**
**यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।**
**न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥**

(ना० पूर्व० १७। १०७-१०८)

'लक्ष्मीपते! क्षीरसागरमें निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। देवेश्वर! प्रभो! आप लक्ष्मीजीके साथ यह अर्घ्य स्वीकार करें। जिनके स्मरण तथा नामोच्चारण करनेसे तप तथा यज्ञकर्म आदिमें जो त्रुटि रह गयी हो, उसकी पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं शीघ्र मस्तक झुकाता हूँ।'

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् विष्णुसे वह सब कुछ निवेदन करके संयमशील व्रती पुरुष दक्षिणासहित प्रतिमा आचार्यको समर्पित करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। फिर स्वयं

भी बन्धुजनोंके साथ मौन होकर भोजन करे। फिर सायंकालतक विद्वानोंके साथ बैठकर भगवान् विष्णुकी कथा सुने। नारदजी! जो मनुष्य इस प्रकार द्वादशी-व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें जाता है, जहाँ जाकर कोई शोकका सामना नहीं करता। ब्रह्मन्! जो इस उत्तम द्वादशी-व्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है।

## मार्गशीर्ष-पूर्णिमासे आरम्भ होनेवाले लक्ष्मीनारायण-व्रतकी उद्यापनसहित विधि और महिमा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं दूसरे उत्तम व्रतका वर्णन करता हूँ सुनिये। वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यजनक तथा सम्पूर्ण दुःखोंका नाशक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री—इन सबकी समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको सफल करनेवाला तथा सम्पूर्ण व्रतोंका फल देनेवाला है। उस व्रतसे बुरे-बुरे स्वप्नोंका नाश हो जाता है। वह धर्मानुकूल व्रत दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है, उसका नाम है पूर्णिमाव्रत। वह परम उत्तम तथा सम्पूर्ण जगत्‌में विख्यात है। उसके पालनसे पापोंकी करोड़ों राशियाँ नष्ट हो जाती हैं।

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिको संयम-नियमपूर्वक पवित्र हो शास्त्रीय आचारके अनुसार दन्तधावनपूर्वक स्नान करे; फिर श्वेत वस्त्र धारण करके शुद्ध हो मौनपूर्वक घर आवे। वहाँ हाथ-पैर धोकर आचमन करके भगवान् नारायणका स्मरण करे और संध्या-वन्दन, देवपूजा आदि नित्यकर्म करके संकल्पपूर्वक भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। व्रती पुरुष 'नमो नारायणाय'—इस मन्त्रसे आवाहन, आसन तथा गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-तत्पर हो भगवान्‌की अर्चना करे और एकाग्रचित्त हो वह गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ तथा स्तोत्र आदिके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करे। भगवान्‌के सामने चौकोर वेदी बनावे, जिसकी लंबाई-चौड़ाई लगभग एक हाथ हो। उसपर गृह्य-सूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार अग्निकी स्थापना करे और उसमें आज्यभागान्त[१] होम करके पुरुषसूक्तके

१. अग्निस्थापनाके पश्चात् दायें हाथमें स्रुव लेकर दाहिना घुटना भूमिपर रखकर ब्रह्मासे अन्वारम्भ करके घृतकी जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमेंसे दो आहुतियोंकी 'आघार' संज्ञा है और शेष दो आहुतियोंको 'आज्यभाग' कहते हैं। 'प्रजापतये स्वाहा'—इस मन्त्रसे प्रजापतिके लिये जो घृतकी अविच्छिन्न धारा दी जाती है, वह 'पूर्व आघार' है। यह अग्निके उत्तरभागमें प्रज्वलित अग्निमें ही छोड़ी जाती है। इसी प्रकार अग्निके दक्षिणभागमें 'इन्द्राय स्वाहा'—इस मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके

मन्त्रोंसे चरु, तिल तथा घृतद्वारा यथाशक्ति एक, दो, तीन बार होम करे। सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक होमकार्य सम्पन्न करना चाहिये। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार प्रायश्चित्त आदि सब कार्य करे। फिर विधिवत् होमकी समाप्ति करके विद्वान् पुरुष शान्तिसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के समीप आकर पुनः उनकी पूजा करे और अपना उपवासव्रत भक्तिभावसे भगवान्‌के अर्पण करे।

**पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।**
**भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥**

(ना० पूर्व० १८। १३)

'देव! पुण्डरीकाक्ष! मैं पूर्णिमाको निराहार रहकर दूसरे दिन आपकी आज्ञासे भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरण हों।'

इस प्रकार भगवान्‌को व्रत निवेदन करके संध्याको चन्द्रोदय होनेपर पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर श्वेत पुष्प, अक्षत, चन्दन और जलसहित अर्घ्य हाथमें ले चन्द्रदेवको समर्पित करे—

**क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।**
**गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो॥**

(ना० पूर्व० १८। १५)

'भगवन् रोहिणीपते! आपका जन्म अत्रिकुलमें हुआ है और आप क्षीरसागरसे प्रकट हुए हैं। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।'

नारदजी! इस प्रकार चन्द्रदेवको अर्घ्य देकर पूर्वाभिमुख खड़ा हो चन्द्रमाकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

**नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।**
**रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते॥**

(ना० पूर्व०१८। १७)

'भगवन्! आप श्वेत किरणोंसे सुशोभित होते हैं, आपको नमस्कार है। आप द्विजोंके राजा हैं, आपको नमस्कार है। आप रोहिणीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीजीके भाई हैं, आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर पुराण-श्रवण आदिके द्वारा जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे रातभर जागरण करे। पाखण्डियोंकी दृष्टिसे दूर रहे। फिर प्रातःकाल उठकर अपने नित्य-नियमका विधिपूर्वक पालन करे। उसके बाद अपने वैभवके अनुसार पुनः भगवान्‌की पूजा करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं भी शुद्धचित्त हो अपने भाई-बन्धुओं तथा भृत्य आदिके साथ भोजन करे। भोजनके समय मौन रहे। इसी प्रकार पौष आदि महीनोंमें भी पूर्णिमाको उपवास करके भक्तियुक्त हो रोग-शोकरहित भगवान् नारायणकी पूजा-अर्चा करे। इस तरह एक वर्ष पूरा करके कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उद्यापन करे। उद्यापनका विधान तुम्हें बतलाता हूँ! व्रती पुरुष एक परम सुन्दर चौकोर मङ्गलमय मण्डप बनवावे, जो पुष्प-लताओंसे सुशोभित तथा चँदोवा और ध्वजा-पताकासे सुसज्जित हो। वह मण्डप अनेक दीपकोंके प्रकाशसे व्याप्त होना चाहिये। उसकी शोभा बढ़ानेके लिये छोटी-छोटी घण्टिकाओंसे सुशोभित झालर लगा देनी चाहिये। उसमें किनारे-किनारे बड़े-बड़े शीशे और चँवर लगा देने चाहिये। कलशोंसे वह मण्डप घिरा रहे। मण्डपके मध्य भागमें पाँच रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। नारदजी! उस मण्डलपर जलसे भरा हुआ एक कलश स्थापित करे। फिर सुन्दर एवं महीन वस्त्रसे उस कलशको ढक दे। उसके ऊपर सोने, चाँदी अथवा ताँबेसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी परम सुन्दर प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। तदनन्तर जितेन्द्रिय पुरुष भक्तिभावसे भगवान्‌को पञ्चामृतद्वारा स्नान करावे और क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि

लिये जो अविच्छिन्न घृतकी धार दी जाती है उसका नाम 'उत्तर आघार' है। इसके बाद अग्निके उत्तरार्ध-पूर्वार्धमें 'अग्नये स्वाहा'—इस मन्त्रसे अग्निके लिये जो घृतकी एक आहुति दी जाती है, उसका नाम 'आग्नेय आज्यभाग' है और अग्निके दक्षिणार्ध-पूर्वार्धमें 'सोमाय स्वाहा'—इस मन्त्रसे सोमके लिये दी जानेवाली आहुतिका नाम 'सौम्य आज्यभाग' है।

सामग्रियों तथा भक्ष्य, भोज्य आदि नैवेद्योंद्वारा उनकी पूजा करके उत्तम श्रद्धापूर्वक रातमें जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल पूर्ववत् भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक अर्चना करे। फिर दक्षिणासहित प्रतिमा आचार्यको दान कर दे और धन-वैभव हो तो ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अवश्य भोजन करावे। उसके बाद एकाग्रचित्त हो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति तिल दान करे और तिलका ही विधिपूर्वक अग्निमें होम करे। जो मनुष्य इस प्रकार भलीभाँति लक्ष्मीनारायणका व्रत करता है, वह इस लोकमें पुत्र-पौत्रोंके साथ महान् भोग भोगकर सब पापोंसे मुक्त हो अपनी बहुत-सी पीढ़ियोंके साथ भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें जाता है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

## श्रीविष्णुमन्दिरमें ध्वजारोपणकी विधि और महिमा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! अब मैं ध्वजारोपण नामक दूसरे व्रतका वर्णन करूँगा, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यस्वरूप तथा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका कारण है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ध्वजारोपणका उत्तम कार्य करता है, वह ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा पूजित होता है। बहुत-सी दूसरी बातें कहनेसे क्या लाभ! जो कुटुम्बयुक्त ब्राह्मणको सुवर्णका एक हजार भार दान देता है, उसके उस दानका फल ध्वजारोपण-कर्मके बराबर ही होता है। परम उत्तम गङ्गा-स्नान, तुलसीकी सेवा अथवा शिवलिङ्गका पूजन—ये सब कर्म ही ध्वजारोपणकी समानता कर सकते हैं। ब्रह्मन्! यह ध्वजारोपण नामक कर्म अद्भुत है, अपूर्व है और आश्चर्यजनक है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला है। ध्वजारोपण कार्यमें जो-जो कार्य आवश्यक हैं, उन सबको बतलाता हूँ, आप मेरे मुखसे सुनें।

कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको मनुष्य अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए, प्रयत्नपूर्वक दातुन करके स्नान करे। व्रत करनेवाला ब्राह्मण उस दिन एक समय भोजन करे, ब्रह्मचर्यसे रहे और धुले हुए शुद्ध वस्त्र धारण करके शुद्धतापूर्वक भगवान् नारायणके सामने उन्हींका स्मरण करते हुए रातमें शयन करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके नित्यकर्म पूर्ण करनेके अनन्तर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। चार ब्राह्मणोंके साथ स्वस्तिवाचन करके ध्वजारोपणके निमित्त नान्दीमुख-श्राद्ध करे। वस्त्रसहित ध्वज और स्तम्भका गायत्री-मन्त्रद्वारा प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करे। फिर उस ध्वजके वस्त्रमें सूर्य, गरुड और चन्द्रमाकी

पूजा करे। ध्वजके दण्डमें धाता और विधाताका पूजन करे। हल्दी अक्षत और गन्ध आदि सामग्रियोंसे

जिनके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं, जिनकी भुजासे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, जिनके ऊरुसे वैश्य प्रकट हुए हैं और जिनके चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है, विद्वान् लोग मायाके संयोगमात्रसे जिन्हें पुरुष कहते हैं, जो स्वभावतः निर्मल, शुद्ध, निर्विकार तथा दोषोंसे निर्लिप्त हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो किसीसे पराजित नहीं होते और क्षीरसागरमें शयन करते हैं, श्रेष्ठ भक्तोंपर जिनकी स्नेहधारा सदा प्रवाहित होती रहती है तथा जो भक्तिसे ही सुलभ होते हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म और स्थूल सभी पदार्थ जिनसे अस्तित्व लाभ करते हैं, सब ओर मुखवाले उन सर्वव्यापी परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्हें सम्पूर्ण लोकोंमें उत्तम-से-उत्तम, निर्गुण, अत्यन्त सूक्ष्म, परम प्रकाशमय परब्रह्म कहा गया है, उन श्रीहरिको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। योगीश्वरगण जिन्हें निर्विकार, अजन्मा, शुद्ध, सब ओर बाँहवाले तथा ईश्वर मानते हैं, जो समस्त कारणतत्त्वोंके भी कारण हैं, जो भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो निर्गुण परमात्मा हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुषोंके लिये हृदयमें रहकर भी उनसे दूर बने हुए हैं और ज्ञानियोंके लिये जो सर्वत्र प्राप्त हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। चार[१], चार[२], दो[३], पाँच[४] और दो[५] अक्षरवाले मन्त्रोंसे जिनके लिये आहुति दी जाती है, वे विष्णुभगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जो ज्ञानियों, कर्मयोगियों तथा भक्त पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं, वे विश्वपालक भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जगत्का कल्याण करनेके लिये श्रीहरि लीलापूर्वक जिन शरीरोंको धारण करते हैं, विद्वान् लोग उन सबकी पूजा करते हैं, वे लीलाविग्रहधारी भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। ज्ञानी महात्मा जिन्हें सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुण तथा गुणोंके अधिष्ठान मानते हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार स्तुति करके भगवान् विष्णुको प्रणाम और ब्राह्मणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् दक्षिणा और वस्त्र आदिके द्वारा आचार्यकी भी पूजा करे। विप्रवर! उसके बाद भक्तिभावसे पूर्ण होकर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे। फिर स्त्री-पुत्र और मित्र आदि बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे तथा निरन्तर भगवान् नारायणके चिन्तनमें लगा रहे। नारदजी! जितने क्षणोंतक उस ध्वजाकी पताका वायुसे फहराती रहती है, आरोपण करनेवाले मनुष्यकी उतनी ही पाप-राशियाँ निस्संदेह नष्ट हो जाती हैं। महापातकोंसे युक्त अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे दूषित पुरुष भी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ध्वजा फहराकर सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो धार्मिक पुरुष ध्वजाको आरोपित देखकर उसका अभिनन्दन करते हैं, वे सभी अनेकों महापातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके मन्दिरमें स्थापित किया हुआ ध्वज जब अपनी पताका फहराने लगता है, उस समय आधे पलमें ही वह उसे आरोपित करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है।

---

१. ओश्रावय। २. अस्तु श्रौषट्। ३. यज। ४. ये यजामहे। ५. वषट्।

## हरिपञ्चक-व्रतकी विधि और माहात्म्य

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! अब मैं दूसरे व्रतका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये। यह व्रत हरिपञ्चक नामसे प्रसिद्ध है और सम्पूर्ण लोकोंमें दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ! स्त्रियों तथा पुरुषोंके सम्पूर्ण दुःखोंका इससे निवारण हो जाता है तथा यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला एवं सम्पूर्ण मनोरथों और समस्त व्रतोंके फलको देनेवाला है।

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको मनुष्य अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए शौच, दन्तधावन और स्नान करके शास्त्रविहित नित्यकर्म करे। फिर भलीभाँति देवपूजन तथा पञ्च महायज्ञोंका अनुष्ठान करके उस दिन नियमपूर्वक रहकर केवल एक समय भोजन करे। मुनीश्वर! दूसरे दिन एकादशीको प्रातः-काल उठकर स्नान और नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपने घरपर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। पञ्चामृतकी विधिसे देवदेवेश्वर श्रीहरिको स्नान करावे। तत्पश्चात् गन्ध, पुष्प आदिसे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल और परिक्रमाद्वारा उत्तम भक्तिभावके साथ क्रमशः भगवान्‌की अर्चना करे। देवदेवेश्वर भगवान्‌की भलीभाँति पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—

**नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते॥**
**नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने।**

(ना० पूर्व० २१। ८-९)

'प्रभो! आप ज्ञानस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप ज्ञानदाता हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वरूप तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार सर्वव्यापी देवेश्वर भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके आगे बताये जानेवाले मन्त्रके द्वारा अपना उपवास-व्रत भगवान्‌को समर्पित करे—

**पञ्चरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव॥**
**त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन् ममाभीष्टप्रदो भव।**

(ना० पूर्व० २१। १०-११)

'सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी केशव! आपकी आज्ञासे मैं आजसे पाँच राततक निराहार रहूँगा। आप मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें।'

इस प्रकार भगवान्‌को उपवास समर्पित करके जितेन्द्रिय पुरुष रातमें जागरण करे। मुने! एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको इन्द्रियसंयम एवं उपवासपूर्वक इसी प्रकार भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। विप्रवर! एकादशी तथा पूर्णिमाकी रात्रिमें ही जागरण करना चाहिये। पञ्चामृत आदि सामग्रियोंसे की जानेवाली पूजा तो पाँचों दिन समानरूपसे आवश्यक है; परंतु पूर्णिमाके दिन यथाशक्ति दूधके द्वारा भगवान् विष्णुको स्नान कराना चाहिये। साथ ही तिलका होम और दान भी करना चाहिये। तत्पश्चात् छठा दिन आनेपर अपना आश्रमोचित कर्म करके पञ्चगव्य पीकर विधिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करे। यदि अपने पास धन हो तो ब्राह्मणोंको बेरोक-टोक भोजन करावे। तदनन्तर भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। नारदजी! इस प्रकार पौषसे लेकर कार्तिकतकके महीनोंमें भी शुक्लपक्षमें मनुष्य पूर्वोक्त विधिसे इस व्रतको करे। इस प्रकार इस पापनाशक व्रतको एक वर्षतक करे। फिर मार्गशीर्ष मास आनेपर व्रती पुरुष उसका उद्यापन करे। ब्रह्मन्! एकादशीको पहलेकी ही भाँति निराहार रहना चाहिये और द्वादशीको एकाग्रचित्त हो पञ्चगव्य पीना चाहिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंसे देवदेव जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणको भेंट दे। मुनीश्वर!

मधु और घृतयुक्त खीर, फल, सुगन्धित जलसे भरा और वस्त्रसे ढका हुआ पञ्चरत्न और दक्षिणासहित कलश अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मणको दान करे। (उस समय निम्नाङ्कित१रूपसे प्रार्थना करे—)

**सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन।**
**परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव॥**

(ना० पूर्व० २१। २३)

'सबके आत्मा, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सर्वव्यापी, सनातन माधव! आप इस उत्तम अन्नके दानसे अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे खीर दान करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन करावे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस हरिपञ्चक नामक व्रतका पालन करता है, उसका ब्रह्मलोक अर्थात् परमात्माके परम धामसे कभी पुनरागमन नहीं होता। उत्तम मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिये। ब्रह्मन्! यह व्रत सम्पूर्ण पापरूपी दुर्गम वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। जो मानव भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको सुनता है, वह महाघोर पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

## मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! अब मैं मासोपवास नामक दूसरे श्रेष्ठ व्रतका वर्णन करूँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। वह सब पापोंको हर लेनेवाला, पवित्र तथा सब लोकोंका उपकार करनेवाला है। विप्रवर! आषाढ़, श्रावण, भादों अथवा आश्विन मासमें इस व्रतको करना चाहिये। इनमेंसे किसी एक मासके शुक्ल पक्षमें जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्य पीये और भगवान् विष्णुके समीप शयन करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म समाप्त करनेके पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधरहित हो, श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विद्वानोंके साथ भगवान् विष्णुका यथोचित पूजन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक यह संकल्प करे—

**मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।**
**मासान्ते पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया॥**
**तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक।**
**ममाभीष्टफलं देहि सर्वविघ्नान् निवारय॥**

(ना० पूर्व० २२। ६-७)

'देवदेव! केशव! आजसे एक मासतक मैं निराहार रहकर मासके अन्तमें आपकी आज्ञासे पारण करूँगा। प्रभो! आप तपस्यारूप हैं और तपस्याके फल देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे अभीष्ट फल दें और मेरे सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करें।'

इस प्रकार भगवान् विष्णुको शुभ मासव्रत समर्पण करके उस दिनसे लेकर महीनेके अन्ततक

भगवान् विष्णुके मन्दिरमें निवास करे और प्रतिदिन पञ्चामृतकी विधिसे भगवानको स्नान करावे। उस महीनेमें निरन्तर भगवान्के मन्दिरमें दीप जलावे। नित्यप्रति अपामार्ग (ऊँगा—चिरचिरा)-की दातुन करे और भगवान् नारायणके चिन्तनमें रत हो विधिपूर्वक स्नान करे। तदनन्तर पहलेकी भाँति संयमपूर्वक भगवान् विष्णुको स्नान करावे और उनकी पूजा करे। इस प्रकार मासोपवास पूरा होनेपर भगवत्पूजनपूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और भक्तिपूर्वक उन्हें दक्षिणा दे। फिर स्वयं भी इन्द्रियोंको वशमें करके बन्धुजनोंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रती पुरुष तेरह बार मासोपवास अर्थात् प्रतिवर्ष एक मासोपवास-व्रत करता हुआ तेरह वर्षतक व्रत करे। उसके अन्तमें वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणासहित गोदान करे। बारह ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें वस्त्र, आभूषण तथा दक्षिणा दे।

इस प्रकार जो मनुष्य इन्द्रियसंयमपूर्वक तेरह पराक पूर्ण कर लेता है, वह परमानन्द पदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता। मासोपवास-व्रतमें लगे हुए, गङ्गास्नानमें तत्पर तथा धर्ममार्गका उपदेश करनेवाले मनुष्य निस्संदेह मुक्त ही हैं। विधवा स्त्रियों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और विशेषत: वानप्रस्थियोंको यह मासोपवास-व्रत करना चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, इस परम दुर्लभ व्रतका अनुष्ठान करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी हो या संन्यासी तथा मूर्ख हो या पण्डित—इस प्रसंगको सुनकर कल्याणका भागी होता है। जो भगवान् नारायणकी शरण होकर इस पुण्यमय व्रतका वर्णन सुनता अथवा पढ़ता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है।

## एकादशी-व्रतकी विधि और महिमा—भद्रशीलकी कथा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! अब मैं इस अन्य व्रतका, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है, वर्णन करूँगा। यह सब पापोंका नाश करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। इसका नाम है—एकादशी-व्रत। यह भगवान् विष्णुको विशेष प्रिय है। ब्रह्मन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री—जो भी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करते हैं, उनको यह मोक्ष देनेवाला है। यह मनुष्योंको उनकी समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करता है। विप्रवर! सब प्रकारसे इस व्रतका पालन करना चाहिये; क्योंकि यह भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। दोनों पक्षकी एकादशीको भोजन न करे। जो भोजन कर लेता है, वह इस लोकमें बड़ा भारी पापी है। परलोकमें उसे नरककी प्राप्ति होती है। मुनीश्वर! मनुष्य यदि मुक्तिकी अभिलाषा रखता है तो वह दशमी और द्वादशीको एक समय भोजन करे और एकादशीको सर्वथा निराहार रहे। महापातकों अथवा सब प्रकारके पातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि एकादशीको निराहार रहे तो वह परम गतिको प्राप्त होता है। एकादशी परम पुण्यमयी तिथि है। यह भगवान् विष्णुको बहुत प्रिय है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको सर्वथा इसका सेवन करना चाहिये। दशमीको प्रात:काल उठकर दन्तधावनपूर्वक स्नान करे और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करे। रातमें भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए उन्हींके समीप शयन करे। एकादशीको सबेरे

उठकर शौच-स्नानके अनन्तर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके इस प्रकार कहे—

**एकादश्यां निराहारः स्थित्वाद्याहं परेऽहनि।**
**भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥**

(ना० पूर्व० २३। १५)

'कमलनयन अच्युत! आज एकादशीको निराहार रहकर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरणदाता हों।'

सुदर्शनचक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके समीप भक्तिभावसे उक्त मन्त्रका उच्चारण करके संतुष्टचित्त हो उन्हें एकादशीका उपवास समर्पित करे। व्रती पुरुष नियमपूर्वक रहकर भगवान् विष्णुके समक्ष गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुराणश्रवण आदिके द्वारा रातमें जागरण करे। तदनन्तर द्वादशीके दिन प्रातःकाल उठकर व्रतधारी पुरुष स्नान करे और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विप्रवर! जो एकादशीके दिन भगवान् जनार्दनको पञ्चामृतसे स्नान कराकर द्वादशीको दूधसे नहलाता है, वह श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। (पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—)

**अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।**
**प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥**

(ना० पूर्व० २३। २०)

'केशव! मैं अज्ञानरूपी तिमिर रोगसे अन्धा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और प्रसन्नमुख होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

विप्रवर! इस प्रकार द्वादशीके दिन भगवान् लक्ष्मीपतिसे निवेदन करके एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। तत्पश्चात् अपने भाई-बन्धुओंके साथ भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए पञ्चमहायज्ञ (बलिवैश्वदेव) करके स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। जो इस प्रकार संयमपूर्वक पवित्र एकादशी-व्रतका पालन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित वैकुण्ठधाममें जाता है। उपवास-व्रतमें तत्पर तथा धर्मकार्यमें संलग्न मनुष्य चाण्डालों और पतितोंकी ओर कभी न देखे। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने मर्यादा भङ्ग की है तथा जो निन्दक और चुगले हैं, ऐसे लोगोंसे उपवास-व्रत करनेवाला पुरुष कभी बातचीत न करे। जो यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उससे भी व्रती पुरुष कभी न बोले। जो कुण्ड (पतिके जीते-जी परपुरुषसे उत्पन्न किये हुए पुरुष)-का अन्न खाता, देवता और ब्राह्मणसे विरोध रखता, पराये अन्नके लिये लालायित रहता और परायी स्त्रियोंमें आसक्त होता है, ऐसे मनुष्यका व्रती पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे। जो इस प्रकारके दोषोंसे रहित, शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा सबके हितमें तत्पर है, वह उपवासपरायण होकर परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है। माताके समान कोई गुरु नहीं है। भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है। क्षमाके समान कोई माता नहीं है। कीर्तिके समान कोई धन नहीं है। ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है। धर्मके समान कोई पिता नहीं है। विवेकके समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशीसे बढ़कर कोई व्रत नहीं है[१]।

---

१. नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः। नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम्॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्। नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्। (ना० पूर्व० २३। ३०—३२)

इस विषयमें लोग भद्रशील और गालवमुनिके पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके तटपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक सत्यपरायण मुनि रहते थे। वे शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रियसंयम)-से सम्पन्न तथा तपस्याकी निधि थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर आदि देवयोनिके लोग भी वहाँ विहार करते थे। वह स्थान कंद, मूल, फलोंसे परिपूर्ण था। वहाँ मुनियोंका बहुत बड़ा समुदाय निवास करता था। विप्रवर गालव वहाँ चिरकालसे निवास करते थे। उनके एक पुत्र हुआ, जो भद्रशील नामसे विख्यात हुआ। वह बालक अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता था। उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वह महान् भाग्यशाली ऋषिकुमार निरन्तर भगवान् नारायणके भजन-चिन्तनमें ही लगा रहता था। महामति भद्रशील बालोचित्त क्रीड़ाके समय भी मिट्टीसे भगवान्

विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करता और अपने साथियोंको समझाता कि 'मनुष्योंको सदा भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये और विद्वानोंको एकादशी-व्रतका भी पालन करना चाहिये।' मुनीश्वर! भद्रशीलद्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर उसके साथी शिशु भी मिट्टीसे भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर एकत्र या अलग-अलग बैठ जाते और प्रसन्नतापूर्वक उसकी पूजा करते थे। इस तरह वे परम सौभाग्यशाली बालक भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। भद्रशील भगवान् विष्णुको नमस्कार करके यही प्रार्थना करता था कि 'सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण हो।' खेलके समय वह दो घड़ी या एक घड़ी भी ध्यानस्थ हो एकादशी-व्रतका संकल्प करके भगवान् विष्णुको समर्पित करता था। अपने पुत्रको इस प्रकार उत्तम चरित्रसे युक्त देखकर तपोनिधि गालव मुनि बड़े विस्मित हुए और उसे हृदयसे लगाकर पूछने लगे।

**गालव बोले**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग भद्रशील! तुम अपने कल्याणमय शील-स्वभावके कारण सचमुच भद्रशील हो। तुम्हारा जो मङ्गलमय चरित्र है, वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम सदा भगवान्‌की पूजामें तत्पर, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न तथा एकादशी-व्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हो। शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंसे तुम सदा दूर रहते हो। तुमपर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। तुममें ममता नहीं दिखायी देती और तुम शान्तभावसे भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते हो। बेटा! अभी तुम बहुत छोटे हो तो भी तुम्हारी बुद्धि ऐसी किस प्रकार हुई; क्योंकि महापुरुषोंकी सेवाके बिना भगवान्‌की भक्ति प्रायः दुर्लभ होती है। इस जीवकी बुद्धि स्वभावतः अज्ञानयुक्त सकाम कर्मोंमें लगती है। तुम्हारी सब क्रिया अलौकिक कैसे हो रही है? सत्संग होनेपर भी पूर्व पुण्यकी अधिकतासे ही मनुष्योंमें भगवद्भक्तिका उदय होता है। अतः

तुम्हारी अद्भुत स्थिति देखकर मैं बड़े विस्मयमें पड़ा हूँ और प्रसन्नतापूर्वक इसका कारण पूछता हूँ। अत: तुम्हें यह बताना चाहिये।

मुनिश्रेष्ठ! पिताके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर पूर्वजन्मका स्मरण रखनेवाला पुण्यात्मा भद्रशील बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मुखपर हास्यकी छटा छा गयी। उसने अपने अनुभवमें आयी हुई सब बातें पिताको ठीक-ठीक कह सुनायीं।

**भद्रशील बोला—**पिताजी! सुनिये। पूर्वजन्ममें मैंने जो कुछ अनुभव किया है, वह जातिस्मर होनेके कारण अब भी जानता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! मैं पूर्वजन्ममें चन्द्रवंशी राजा था। मेरा नाम धर्मकीर्ति था और महर्षि दत्तात्रेयने मुझे शिक्षा दी थी। मैंने नौ हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन किया। पहले मैंने पुण्यकर्म भी बहुत-से किये थे, परंतु पीछे पाखण्डियोंसे बाधित होकर मैंने वैदिकमार्गको त्याग दिया। पाखण्डियोंकी कूट युक्तिका अवलम्बन करके मैंने भी सब यज्ञोंका विध्वंस किया। मुझे अधर्ममें तत्पर देख मेरे देशकी प्रजा भी सदैव पाप-कर्म करने लगी। उसमेंसे छठा अंश और मुझे मिलने लगा। इस प्रकार मैं सदा पापाचारपरायण हो दुर्व्यसनोंमें आसक्त रहने लगा। एक दिन शिकार खेलनेकी रुचिसे मैं सेनासहित एक वनमें गया और वहाँ भूख-प्याससे पीड़ित हो थका-मादा नर्मदाके तटपर आया। सूर्यकी तीखी धूपसे संतप्त होनेके कारण मैंने नर्मदाजीके जलमें स्नान किया। सेना किधर गयी, यह मैंने नहीं देखा। अकेला ही वहाँ भूखसे बहुत कष्ट पा रहा था। संध्याके समय नर्मदा-तटके निवासी, जो एकादशी-व्रत करनेवाले थे, वहाँ एकत्र हुए। उन सबको मैंने देखा। उन्हीं लोगोंके साथ निराहार रहकर बिना सेनाके ही मैं अकेला रातमें वहाँ जागरण करता रहा। और हे तात! जागरण समाप्त होनेपर मेरी वहीं मृत्यु हो गयी। तब बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे भय उत्पन्न करनेवाले यमराजके दूतोंने मुझे बाँध लिया और अनेक प्रकारके क्लेशसे भरे हुए मार्गद्वारा यमराजके निकट पहुँचाया। वहाँ जाकर मैंने यमराजको देखा, जो सबके प्रति समान बर्ताव करनेवाले हैं। तब यमराजने चित्रगुप्तको बुलाकर कहा—'विद्वन्! इसको दण्ड-विधान कैसे करना है, बताओ।' साधुशिरोमणे! धर्मराजके ऐसा कहनेपर चित्रगुप्तने देरतक विचार किया; फिर इस प्रकार कहा— 'धर्मराज! यद्यपि यह सदा पापमें लगा रहा है, यह ठीक है, तथापि एक बात सुनिये। एकादशीको उपवास करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नर्मदाके रमणीय तटपर एकादशीके दिन यह निराहार रहा है। वहाँ जागरण और उपवास करके यह सर्वथा निष्पाप हो गया है। इसने जो कोई भी बहुत-से पाप किये थे, वे सब उपवासके प्रभावसे नष्ट हो चुके हैं।' बुद्धिमान् चित्रगुप्तके ऐसा कहनेपर धर्मराज मेरे सामने काँपने लगे। उन्होंने भूमिपर दण्डकी भाँति पड़कर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिभावसे मेरी पूजा की। तदनन्तर धर्मराजने अपने सब दूतोंको बुलाकर इस प्रकार कहा।

**धर्मराज बोले—**'दूतो! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे हितकी बड़ी उत्तम बात बतलाता हूँ। धर्ममार्गमें लगे हुए मनुष्योंको मेरे पास न लाया करो। जो भगवान् विष्णुके पूजनमें तत्पर, संयमी, कृतज्ञ, एकादशी-व्रतपरायण तथा जितेन्द्रिय हैं और जो 'हे नारायण! हे अच्युत! हे हरे! मुझे शरण दीजिये' इस प्रकार शान्तभावसे निरन्तर कहते रहते हैं, ऐसे लोगोंको तुम तुरंत छोड़ देना। मेरे दूतो! जो सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी तथा परम शान्तभावसे रहनेवाले हैं और जो नारायण! अच्युत! जनार्दन! कृष्ण! विष्णो! कमलाकान्त! ब्रह्माजीके

पिता! शिव! शंकर! इत्यादि नामोंका नित्य कीर्तन किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग दिया करो। उनपर मेरा शासन नहीं चलता। मेरे सेवको! जो अपना सम्पूर्ण कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर देते हैं, उन्हींके भजनमें लगे रहते हैं, अपने वर्णाश्रमोचित आचारके मार्गमें स्थित हैं, गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं, सत्पात्रको दान देते, दीनोंकी रक्षा करते और निरन्तर भगवन्नामके जप-कीर्तनमें संलग्न रहते हैं, उनको भी त्याग देना। दूतगण! जो पाखण्डियोंके संगसे रहित, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सत्संगके लोभी, अतिथि-सत्कारके प्रेमी, भगवान् शिव और विष्णुमें समता रखनेवाले तथा लोगोंके उपकारमें तत्पर हों, उन्हें त्याग देना। मेरे दूतो! जो लोग भगवान्‌की कथारूप अमृतके सेवनसे वञ्चित हैं, भगवान् विष्णुके चिन्तनमें मन लगाये रखनेवाले साधु-महात्माओंसे जो दूर रहते हैं, उन पापियोंको ही मेरे घरपर लाया करो। मेरे किङ्करो! जो माता और पिताको डाँटनेवाले, लोगोंसे द्वेष रखनेवाले, हितैषी-जनोंका भी अहित करनेवाले, देवताकी सम्पत्तिके लोभी, दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले तथा सदैव दूसरोंके अपराधमें ही तत्पर रहनेवाले हैं, उनको यहाँ पकड़कर लाओ। मेरे दूतो! जो एकादशी-व्रतसे विमुख, क्रूर स्वभाववाले, लोगोंको कलङ्क लगानेवाले, परनिन्दामें तत्पर, ग्रामका विनाश करनेवाले, श्रेष्ठ पुरुषोंसे वैर रखनेवाले तथा ब्राह्मणके धनका लोभ करनेवाले हैं, उनको यहाँ ले आओ। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे मुँह मोड़ चुके हैं, शरणागतपालक भगवान् नारायणको प्रणाम नहीं करते हैं तथा जो मूर्ख मनुष्य कभी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें नहीं जाते हैं, उन अतिशय पापमें रत रहनेवाले दुष्ट लोगोंको ही तुम बलपूर्वक पकड़कर यहाँ ले आओ।

इस प्रकार जब मैंने यमराजकी कही हुई बातें सुनीं तो पश्चात्तापसे दग्ध होकर अपने किये हुए उस निन्दित कर्मको स्मरण किया। पापकर्मके लिये पश्चात्ताप और श्रेष्ठ धर्मका श्रवण करनेसे मेरे सब पाप वहीं नष्ट हो गये। उसके बाद मैं उस पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोकमें गया। वहाँपर मैं सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न रहा। सम्पूर्ण देवता मुझे नमस्कार करते थे। बहुत कालतक स्वर्गमें रहकर फिर वहाँसे मैं भूलोकमें आया। यहाँ भी आप-जैसे विष्णु-भक्तोंके कुलमें मेरा जन्म हुआ। मुनीश्वर! जातिस्मर होनेके कारण मैं यह सब बातें जानता हूँ। इसलिये मैं बालकोंके साथ भगवान् विष्णुके पूजनकी चेष्टा करता हूँ। पूर्वजन्ममें एकादशी-व्रतका ऐसा माहात्म्य है, यह बात मैं नहीं जान सका था। इस समय पूर्वजन्मकी बातोंकी स्मृतिके प्रभावसे मैंने एकादशी-व्रतको जान लिया है। पहले विवश होकर भी जो व्रत किया गया था, उसका यह फल मिला है। प्रभो! फिर जो भक्तिपूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उनको क्या नहीं मिल सकता। अत: विप्रेन्द्र! 'मैं शुभ एकादशी-व्रतका पालन तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी पूजा करूँगा। भगवान्‌के परम धामको पानेकी आकाङ्क्षा ही इसमें हेतु है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उन्हें निश्चय ही परमानन्ददायक वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है।' अपने पुत्रका ऐसा वचन सुनकर गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भर गया। वे बोले—'वत्स! मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा कुल भी पवित्र हो गया; क्योंकि तुम्हारे-जैसा विष्णुभक्त पुरुष मेरे घरमें पैदा हुआ है।' इस प्रकार पुत्रके उत्तम कर्मसे मन-ही-मन संतुष्ट होकर महर्षि गालवने उसे भगवान्‌की पूजाका विधान ठीक-ठीक समझाया। मुनिश्रेष्ठ नारद! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने ये सब बातें कुछ विस्तारके साथ तुम्हें बता दी हैं। तुम और क्या सुनना चाहते हो?

## चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन

**सूतजी कहते हैं**—महर्षियो! सनकजीके मुखसे एकादशी-व्रतका यह माहात्म्य जो अप्रमेय, पवित्र, सर्वोत्तम तथा पापराशिको शान्त करनेवाला है, सुनकर ब्रह्मपुत्र नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और फिर इस प्रकार बोले।

**नारदजीने कहा**—महर्षे! आप बड़े तत्त्वज्ञ हैं। आपने भगवान्‌की भक्ति देनेवाले तथा परम पुण्यमय व्रत-सम्बन्धी इस आख्यानका यथार्थरूपसे पूरा-पूरा वर्णन किया है। मुने! अब मैं चारों वर्णोंके आचारकी विधि और सम्पूर्ण आश्रमोंके आचार तथा प्रायश्चित्तकी विधि सुनना चाहता हूँ। महाभाग! मुझपर बड़ी भारी कृपा करके यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये।

**श्रीसनकजी बोले**—मुनिश्रेष्ठ! सुनिये। भक्तोंका प्रिय करनेवाले अविनाशी श्रीहरि वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले पुरुषोंद्वारा जिस प्रकार पूजित होते हैं, वह सब बतलाता हूँ। मनु आदि स्मृतिकारोंने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मका जैसा वर्णन किया है, वह सब आपको विधिपूर्वक बतलाता हूँ; क्योंकि आप भगवान्‌के भक्त हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार ही वर्ण कहे गये हैं। इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन द्विज कहे गये हैं। पहला जन्म मातासे और दूसरा उपनयन-संस्कारसे होता है। इन्हीं दो कारणोंसे तीनों वर्णोंके लोग द्विजत्व प्राप्त करते हैं। इन वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने वर्णके अनुरूप सब धर्मोंका पालन करना चाहिये। अपने वर्णधर्मका त्याग करनेसे विद्वान् पुरुष उसे पाखण्डी कहते हैं। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बताये हुए कर्मका अनुष्ठान करनेवाला द्विज कृतकृत्य होता है, अन्यथा वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत एवं पतित हो जाता है। इन वर्णोंको यथोचित युगधर्मका धारण करना चाहिये तथा स्मृतिधर्मके विरुद्ध न होनेपर देशाचार भी अवश्य ग्रहण करना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा यत्नपूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये।

द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके सामान्य कर्तव्योंका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्राह्मण ब्राह्मणोंको दान दे, यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे, जीविकाके लिये दूसरोंका यज्ञ करावे तथा दूसरोंको पढ़ावे। जो यज्ञके अधिकारी हों, उन्हींका यज्ञ करावे। ब्राह्मणको नित्य जलसम्बन्धी क्रिया—स्नान-संध्या और तर्पण करना चाहिये। वह वेदोंका स्वाध्याय

तथा अग्निहोत्र करे। सम्पूर्ण लोकोंका हित करे,

सदा मीठे वचन बोले और सदा भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर रहे। द्विजश्रेष्ठ! क्षत्रिय भी ब्राह्मणोंको दान दे। वह भी वेदोंका स्वाध्याय और यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे। वह शस्त्रग्रहणके द्वारा जीविका चलावे और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करे। दुष्टोंको दण्ड दे और शिष्ट पुरुषोंकी रक्षा करे। द्विजसत्तम! वैश्यके लिये भी वेदोंका अध्ययन आवश्यक बताया गया है। इसके सिवा वह पशुओंका पालन, व्यापार तथा कृषिकर्म करे। सजातीय स्त्रीसे विवाह करे और धर्मोंका भलीभाँति पालन करता रहे। वह क्रय-विक्रय अथवा शिल्पकर्मद्वारा प्राप्त हुए धनसे जीविका चलावे। शूद्र भी ब्राह्मणोंको दान दे, किंतु पाकयज्ञोंद्वारा[1] यजन न करे। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें तत्पर रहे और अपनी स्त्रीसे ऋतुकालमें सहवास करे।

सब लोगोंका हित चाहना, सबका मङ्गल-साधन करना, प्रिय वचन बोलना, किसीको कष्ट न पहुँचाना, मनको प्रसन्न रखना, सहनशील होना तथा घमंड न करना—यह सब मुनियोंने समस्त वर्णोंका सामान्य धर्म बतलाया है। अपने आश्रमोचित कर्मके पालनसे सब लोग मुनितुल्य हो जाते हैं। ब्रह्मन्! आपत्तिकालमें ब्राह्मण क्षत्रियोचित आचारका आश्रय ले सकता है। इसी प्रकार अत्यन्त आपत्ति आनेपर क्षत्रिय भी वैश्यवृत्तिको ग्रहण कर सकता है; परंतु भारी-से-भारी आपत्ति आनेपर भी ब्राह्मण कभी शूद्रवृत्तिका आश्रय न ले। यदि कोई मूढ़ ब्राह्मण शूद्रवृत्ति ग्रहण करता है तो वह चाण्डालभावको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये ही चार आश्रम बताये गये हैं। कोई पाँचवाँ आश्रम सिद्ध नहीं होता। साधुशिरोमणे! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये ही चार आश्रम हैं। विप्रवर! इन्हीं चार आश्रमोंद्वारा उत्तम धर्मका आचरण किया जाता है। जिसका चित्त कर्मयोगमें लगा हुआ है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जिनके मनमें कोई कामना नहीं है, जिनका चित्त शान्त है तथा जो अपने वर्ण-आश्रमोचित कर्तव्यके पालनमें लगे रहते हैं, वे उस परम धामको प्राप्त होते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें लौटकर आना नहीं पड़ता।

## संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं विशेष-रूपसे वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार और विधिका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। जो स्वधर्मका त्याग करके परधर्मका पालन करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये। द्विजोंके गर्भाधान आदि संस्कार वैदिक मन्त्रोक्त विधिसे करने चाहिये। स्त्रियोंके संस्कार यथासमय बिना मन्त्रके ही विधिपूर्वक करने चाहिये। प्रथम बार गर्भाधान होनेपर चौथे मासमें सीमन्तकर्म करना उत्तम माना गया है अथवा उसे छठे, सातवें या आठवें महीनेमें कराना चाहिये। पुत्रका जन्म होनेपर पिता वस्त्रसहित स्नान करके स्वस्तिवाचनपूर्वक

१. तैयार की हुई रसोईसे जो यज्ञ होते हैं, उन्हें 'पाकयज्ञ' कहते हैं। मनुस्मृतिमें चार प्रकारके पाकयज्ञोंका उल्लेख है—वैश्वदेवहोम, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथि-भोजन।

नान्दीश्राद्ध तथा जातकर्म-संस्कार करे। पुत्र-जन्मके अवसरपर किया जानेवाला वृद्धिश्राद्ध सुवर्ण या रजतसे करना चाहिये। सूतक व्यतीत होनेपर पिता मौन होकर आभ्युदयिक श्राद्ध करनेके अनन्तर पुत्रका विधिपूर्वक नामकरण-संस्कार करे। विप्रवर! जो स्पष्ट न हो, जिसका कोई अर्थ न बनता हो, जिसमें अधिक गुरु अक्षर आते हों अथवा जिसमें अक्षरोंकी संख्या विषम होती हो, ऐसा नाम न रखे। तीसरे वर्षमें चूड़ा-संस्कार उत्तम है। यदि उस समय न हो तो पाँचवें, छठे, सातवें अथवा आठवें वर्षमें भी गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार उसे सम्पन्न कर लेना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार करना चाहिये। विद्वान् पुरुष सोलहवें वर्षतक उपनयनका गौणकाल बतलाते हैं।

गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियके उपनयनका मुख्यकाल है। उसके लिये बाईसवें वर्षतक गौणकाल निश्चित करते हैं। गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार उचित कहा गया है। उसके लिये चौबीसवें वर्षतक गौणकाल बतलाते हैं। ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी और क्षत्रियकी मेखला धनुषकी प्रत्यञ्चासे बनी हुई (सूतकी) तथा वैश्यकी मेखला भेड़के ऊनकी बनी होती है। ब्राह्मणके लिये पलाशका और क्षत्रियके लिये गूलरका तथा वैश्यके लिये बिल्वदण्ड विहित है। ब्राह्मणका दण्ड केशतक, क्षत्रियका ललाटके बराबर और वैश्यके दण्डकी लंबाई नासिकाके अग्रभागतककी बतायी है। ब्राह्मण आदि ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः गेरुए, लाल और पीले रंगका वस्त्र बताया गया है। विप्रवर! जिसका उपनयन-संस्कार किया गया हो, वह द्विज गुरुकी सेवामें तत्पर रहे और जबतक वेदाध्ययन समाप्त न हो जाय, तबतक गुरुके ही घरमें निवास करे। मुनीश्वर! ब्रह्मचारी प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन सबेरे ही गुरुके लिये समिधा, कुशा और फल आदि ले आवे। मुनिश्रेष्ठ! यज्ञोपवीत, मृगचर्म अथवा दण्ड जब नष्ट या अपवित्र हो जाय तो मन्त्रसे नूतन यज्ञोपवीत आदि धारण करके नष्ट-भ्रष्ट हुए पुराने यज्ञोपवीत आदिको जलमें फेंक दे। ब्रह्मचारीके लिये केवल भिक्षाके अन्नसे ही जीवन-निर्वाह करना बताया गया है। वह मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रोत्रिय पुरुषके घरसे भिक्षा ले आवे। भिक्षा माँगते समय ब्राह्मण वाक्यके आदिमें, क्षत्रिय वाक्यके मध्यमें और वैश्य वाक्यके अन्तमें '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे। जैसे—ब्राह्मण '**भवति! भिक्षां मे देहि**' (पूजनीय देवि! मुझे भिक्षा दीजिये), क्षत्रिय '**भिक्षां भवति! मे देहि**' और वैश्य '**भिक्षां मे देहि भवति**' कहे। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल शास्त्रीय विधिके अनुसार अग्निहोत्र (ब्रह्मयज्ञ) तथा तर्पण करे। जो अग्निहोत्रका परित्याग करता है, उसे विद्वान् पुरुष पतित कहते हैं। ब्रह्मयज्ञसे रहित ब्रह्मचारी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। वह प्रतिदिन देवताकी पूजा और गुरुकी उत्तम सेवा करे। ब्रह्मचारी नित्यप्रति भिक्षाका ही अन्न भोजन करे। किसी एक घरका अन्न कभी न खाय। वह इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा लाकर गुरुको समर्पित कर दे और उनकी आज्ञासे मौन होकर भोजन करे। ब्रह्मचारी मधु, मांस, स्त्री, नमक, पान, दन्तधावन, उच्छिष्ट-भोजन, दिनका सोना तथा छाता लगाना आदि न करे। पादुका, चन्दन, माला, अनुलेपन, जलक्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य, परनिन्दा, दूसरोंको सताना, बहकी-बहकी बातें करना, अंजन लगाना, पाखण्डी लोगोंका साथ करना और शूद्रोंकी संगतिमें रहना आदि न करे।

वृद्ध पुरुषोंको क्रमशः प्रणाम करे। वृद्ध तीन प्रकारके होते हैं। एक ज्ञानवृद्ध, दूसरे तपोवृद्ध

और तीसरे वयोवृद्ध हैं। जो गुरु वेद-शास्त्रोंके उपदेशसे आध्यात्मिक आदि दुःखोंका निवारण करते हैं, उन्हें पहले प्रणाम करे। प्रणाम करते समय द्विज बालक 'मैं अमुक हूँ, इस प्रकार अपना परिचय भी दे। ब्राह्मण किसी प्रकार क्षत्रिय आदिको प्रणाम न करे। जो नास्तिक, धर्ममर्यादाको तोड़नेवाला, कृतघ्न, ग्राम-पुरोहित, चोर और शठ हो, उसे ब्राह्मण होनेपर भी प्रणाम न करे। पाखण्डी, पतित, संस्कार-भ्रष्ट, नक्षत्रजीवी (ज्यौतिषी) तथा पातकीको भी प्रणाम न करे। पागल, शठ, धूर्त, दौड़ते हुए, अपवित्र, सिरमें तेल लगाये हुए तथा मन्त्र-जप करते हुए पुरुषको भी प्रणाम नहीं करना चाहिये। जो झगड़ालू और क्रोधी हो, वमन कर रहा हो, पानीमें खड़ा हो, हाथमें भिक्षाका अन्न लिये हो और सो रहा हो, उसको भी प्रणाम न करे। स्त्रियोंमें जो पतिकी हत्या करनेवाली, रजस्वला, परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, कृतघ्न और क्रोधिनी हो, उसे कभी प्रणाम न करे। सभा, यज्ञशाला और देवमन्दिरमें भी एक-एक व्यक्तिके लिये किया जानेवाला नमस्कार पूर्वकृत पुण्यका नाश करता है। श्राद्ध, व्रत, दान, देवपूजा, यज्ञ और तर्पण करते हुए पुरुषको प्रणाम न करे; क्योंकि प्रणाम करनेपर जो शास्त्रीय विधिसे आशीर्वाद न दे सके, वह प्रणाम करने योग्य नहीं। बुद्धिमान् शिष्य दोनों पैर धोकर आचमन करके सदा गुरुके सामने बैठे और उनके चरण पकड़कर नमस्कार करे। फिर अध्ययन करे। अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, अमावास्या, पूर्णिमा, महाभरणी (भरणी-नक्षत्रके योगसे होनेवाले पर्वविशेष) श्रवणयुक्त द्वादशी, पितृपक्षकी द्वितीया, माघशुक्ला सप्तमी, आश्विन शुक्ला नवमी—इन

तिथियोंमें तथा सूर्यके चारों ओर घेरा लगनेपर एवं किसी श्रोत्रिय विद्वान्के अपने यहाँ पधारनेपर अध्ययन बंद रखना चाहिये। जिस दिन किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका स्वागत-सत्कार किया गया हो या किसीके साथ कलह बढ़ गया हो, उस दिन भी अनध्याय रखना चाहिये। देवर्षे! संध्याके समय, अकालमें मेघकी गर्जना होनेपर, असमयमें वर्षा होनेपर, उल्कापात तथा वज्रपात होनेपर, अपने द्वारा किसी ब्राह्मणका अपमान हो जानेपर, मन्वादि तिथियोंके आनेपर तथा युगादि चार तिथियोंके उपस्थित होनेपर सब कर्मोंके फलकी इच्छा रखनेवाला कोई भी द्विज अध्ययन न करे। वैशाख शुक्ला तृतीया, भाद्र कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ला नवमी तथा माघकी पूर्णिमा—ये तिथियाँ युगादि कही गयी हैं। इनमें जो दान दिया जाता है, उसके पुण्यको ये अक्षय बनानेवाली हैं[१]। नारदजी! आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र तथा भाद्रपदमासकी तृतीया, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी,

---

१. तृतीया माधवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी। कार्तिके नवमी शुद्धा माघे पञ्चदशी तिथिः॥
एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः। (ना० पूर्व० २५। ५०-५१)

स्कन्दपुराणके अनुसार भिन्न-भिन्न युगकी आदितिथि इस प्रकार हैं—कार्तिक शुक्ला नवमी सत्ययुगकी, वैशाख शुक्ला तृतीया त्रेतायुगकी, माघकी पूर्णिमा द्वापरकी और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदितिथि है।

श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, फाल्गुनकी अमावास्या, पौष शुक्ला एकादशी तथा कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा तिथियाँ—ये मन्वन्तरकी आदितिथियाँ बतायी गयी हैं, जो दानके पुण्यको अक्षय बनानेवाली हैं[१]। द्विजोंको मन्वादि और युगादि तिथियोंमें श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धका निमन्त्रण हो जानेपर, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके दिन, उत्तरायण और दक्षिणायन प्रारम्भ होनेके दिन, भूकम्प होनेपर, गलग्रहमें और बादलोंके आनेसे अँधेरा हो जानेपर कभी अध्ययन न करे। नारदजी! इन सब अनध्यायोंमें जो अध्ययन करते हैं, उन मूढ़ पुरुषोंकी संतति, बुद्धि, यश, लक्ष्मी, आयु, बल तथा आरोग्यका साक्षात् यमराज नाश करते हैं। जो अनध्यायकालमें अध्ययन करता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा समझना चाहिये। जो ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न करके अन्य कर्मोंमें परिश्रम करता है, उसे शूद्रके तुल्य जानना चाहिये, वह नरकका प्रिय अतिथि है। वेदाध्ययनरहित ब्राह्मणके नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा दूसरे जो वैदिककर्म हैं, वे सब निष्फल होते हैं। भगवान् विष्णु शब्द-ब्रह्ममय हैं और वेद साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप माना गया है। जो ब्राह्मण वेदोंका अध्ययन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

## विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! वेदाध्ययनकालतक ब्रह्मचारी निरन्तर गुरुकी सेवामें लगा रहे, उसके बाद उनकी आज्ञा लेकर अग्निपरिग्रह (गार्हपत्य-अग्निकी स्थापना) करे। द्विज वेद, शास्त्र और वेदाङ्गोंका अध्ययन करके गुरुको दक्षिणा देकर अपने घर जाय। वहाँ उत्तम कुलमें उत्पन्न, रूप और लावण्यसे युक्त, सद्‌गुणवती तथा सुशीला और धर्मपरायणा कन्याके साथ विवाह करे। जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोगसे युक्त कुलमें उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक या कम हों, जो सर्वथा केशरहित हो और बहुत बोलनेवाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो क्रोध करनेवाली, बहुत नाटी, बहुत बड़े शरीरवाली, कुरूपा, किसी अङ्गसे हीन या अधिक अङ्गवाली, उन्मादिनी और चुगली करनेवाली हो तथा जो कुबड़ी हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरेके घरमें रहती हो, झगड़ालू हो, जिसकी मति भ्रान्त हो तथा जो निष्ठुर स्वभावकी हो, जो बहुत खानेवाली हो, जिसके दाँत और ओठ मोटे हों, जिसकी नाकसे घुर्घुराहटकी आवाज होती हो और जो धूर्त हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो सदा रोनेवाली हो, जिसके शरीरकी आभा श्वेत रंगकी हो, जो निन्दित, खाँसी और दमे आदिके रोगसे पीड़ित तथा अधिक सोनेवाली हो, जो अनर्थकारी वचन बोलती हो, लोगोंसे द्वेष रखती हो और चोरी करती हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जिसकी नाक बड़ी हो, जो छल-कपट

१. अश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥
आषाढशुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी। श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता॥
मन्वादयः समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिकाः। (ना० पूर्व० २५। ५१—५५)
स्कन्दपुराणमें भी मन्वादि तिथियोंका पाठ ऐसा ही है। केवल श्लोकोंके क्रममें थोड़ा अन्तर है।

करनेवाली हो, जिसके शरीरमें अधिक रोएँ बढ़ गये हों तथा जो बहुत घमंडी और बगुलावृत्तिवाली (ऊपरसे साधु और भीतरसे दुष्ट हो), उससे भी विद्वान् पुरुष विवाह न करे।

मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाह होते हैं, यह जानना चाहिये। इनमें पहला-पहला श्रेष्ठ है। पहलेवालेके अभावमें दूसरा श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माना गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा आठवाँ पैशाच विवाह है। श्रेष्ठ द्विजको ब्राह्मविवाहकी विधिसे विवाह करना चाहिये। अथवा दैवविवाहकी रीतिसे भी विवाह किया जा सकता है। कोई-कोई आर्ष-विवाहको भी श्रेष्ठ बतलाते हैं। ब्रह्मन्! शेष प्राजापत्य आदि पाँच विवाह निन्दित हैं।

(अब गृहस्थ पुरुषका शिष्टाचार बताया जाता है—) दो यज्ञोपवीत तथा एक चादर धारण करे। कानोंमें सोनेके दो कुण्डल पहने। धोती दो रखे। सिरके बाल और नख कटाता रहे। पवित्रतापूर्वक रहे। स्वच्छ पगड़ी, छाता तथा चरणपादुका धारण करे। वेष ऐसा रखे जो देखनेमें प्रिय लगे। प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करे। शास्त्रोक्त आचारका पालन करे। दूसरोंका अन्न न खाय। दूसरोंकी निन्दा छोड़ दे। पैरसे पैरको न दबाये, जूठी चीजको न लाँघे। दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलाये। पूज्य पुरुष तथा देवालयको बायें करके न चले। देवपूजा, स्वाध्याय, आचमन, स्नान, व्रत तथा श्राद्धकर्म आदिमें शिखाको खुली न रखे और एक वस्त्र धारण करके न रहे। गदहे आदिकी सवारी न करे। सूखा वाद-विवाद त्याग दे। परायी स्त्रीके पास कभी न जाय। ब्रह्मन्! गौ, पीपल तथा अग्निको भी अपनेसे बायें करके न जाय। इसी प्रकार चौराहेको, देववृक्षको, देवसम्बन्धी कुण्ड या सरोवरको तथा राजाको भी अपनेसे

बायें करके न चले। दूसरोंके दोष देखना, डाह रखना और दिनमें सोना छोड़ दे। दूसरोंके पाप न कहे। अपना पुण्य प्रकट न करे। अपने नामको, जन्म-नक्षत्रको तथा मानको अत्यन्त गुप्त रखे। दुष्टोंके साथ निवास न करे। अशास्त्रीय बात न सुने। द्विजको मद्य, जूआ तथा गीतमें कभी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। गीली हड्डी, जूठी वस्तु, पतित तथा मुर्दा और कुत्तेको छूकर मनुष्य वस्त्रसहित स्नान कर ले। चिता, चिताकी लकड़ी, यूप, चाण्डालका स्पर्श कर लेनेपर मनुष्य वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करे। दीपककी, खाटकी और शरीरकी छाया, केशका, वस्त्रका और चटाईका जल तथा बकरीके, झाड़ूके और बिल्लीके नीचेकी धूल—ये सब शुभ प्रारब्धको हर लेते हैं। सूपकी हवा, प्रेतके दाहका धुआँ, शूद्रके अन्नका भोजन तथा वृषलीके पतिका साथ दूरसे ही त्याग दे। असत् शास्त्रोंके अर्थका विचार, नख और केशोंका दाँतोंसे चबाना तथा नंगे होकर सोना सर्वदा छोड़ दे। सिरमें लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरमें न लगावे। अपवित्र ताम्बूल (बाजारके लगाये हुए पान) न खाय तथा सोतेको न जगाये। अशुद्ध

हुआ मनुष्य अग्निकी सेवा, देवताओं और गुरुजनोंका पूजन न करे। बायें हाथसे अथवा केवल मुखसे जल न पीये। मुनीश्वर! गुरुकी छायापर पैर न रखे। उनकी आज्ञा भी न टाले। योगी, ब्राह्मण और यति पुरुषोंकी कभी निन्दा न करे। द्विजको चाहिये कि वह आपसकी गुप्त (रहस्य)-की बातें कभी न कहे। अमावास्या तथा पूर्णिमाको विधिपूर्वक याग करे। द्विजोंको सुबह-शाम उपासना और होम अवश्य करने चाहिये। जो उपासनाका परित्याग करता है, उसे विद्वान् पुरुष 'शराबी' कहते हैं। अयन आरम्भ होनेके दिन, विषुवयोगमें (जब दिन-रात बराबर होते हैं), चार युगादि तिथियोंमें, अमावास्याको और प्रेतपक्षमें गृहस्थ द्विजको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। नारदजी! मन्वादि तिथियोंमें, मृत्युकी तिथिको, तीनों अष्टकाओंमें तथा नूतन अन्न घरमें आनेपर गृहस्थ पुरुष अवश्य श्राद्ध करे। कोई श्रोत्रिय ब्राह्मण घरपर आ जाय या चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण लगा हो अथवा पुण्यक्षेत्र एवं तीर्थमें पहुँच जाय तो गृहस्थ पुरुष निश्चय ही श्राद्ध करे। जो उपर्युक्त सदाचारमें तत्पर हैं, उनपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! भगवान् विष्णुके प्रसन्न हो जानेपर क्या असाध्य रह जाता है?

## गृहस्थ-सम्बन्धी शौचाचार, स्नान, संध्योपासन आदि तथा वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं गृहस्थका सदाचार बतलाता हूँ, सुनो। उन सदाचारोंके पालन करनेवाले पुरुषोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मन्! गृहस्थ पुरुष ब्राह्ममुहूर्त (सूर्योदयसे पूर्वकी चार घड़ी)-में उठकर जो पुरुषार्थ (मोक्ष) साधनकी विरोधिनी न हो, ऐसी जीविकाका चिन्तन करे। दिनमें या संध्याके समय कानपर जनेऊ चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। यदि रातमें इसका अवसर आवे तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। द्विज सिरको वस्त्रसे ढककर और भूमिपर तृण बिछाकर शौचके लिये बैठे और उसके होनेतक मौन रहे। मार्गमें, गोशालामें, नदीके तटपर, पोखरे और घरके समीप, पेड़की छायामें, दुर्गम स्थानमें, अग्निके समीप, देवालयके निकट, बगीचेमें, जोते हुए खेतमें, चौराहेपर; ब्राह्मण, गाय, गुरुजन तथा स्त्रियोंके समीप; भूसी, अंगार, खप्पर या खोपड़ीमें तथा जलके भीतर—इत्यादि स्थानोंमें मल-मूत्र न करे। शौच (शुद्धि)-के लिये सदा यत्न करना चाहिये। शौच ही द्विजत्वका मूल है। जो शौचाचारसे रहित है उसके सब कर्म निष्फल होते हैं[१]। शौच दो प्रकारका कहा गया है—एक बाह्य शौच और दूसरा आभ्यन्तर-शौच। मिट्टी और जलसे जो ऊपर-ऊपरकी शुद्धि की जाती है, वही बाह्य-शौच है और भीतरके भावोंकी जो पवित्रता है उसे ही आभ्यन्तर-शौच कहा गया है। मलत्यागके पश्चात् उठकर शुद्धिके लिये मिट्टी लावे। चूहे आदिकी खोदी हुई, फारसे उलटी हुई तथा बावड़ी, कुँआ और पोखरेसे निकाली हुई मिट्टी शौचके लिये न लावे। अच्छी मिट्टी लेकर यत्नसे शुद्धिका सम्पादन करे। लिङ्गमें एक बार या तीन बार मिट्टी लगाकर धोये और अण्डकोषोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे धोये। मनीषी पुरुषोंने

१. शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः। शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम्॥ (ना० पूर्व० २७। ८)

मूत्रत्यागके पश्चात् इस प्रकार शुद्धिका विधान किया है। लिङ्गमें एक बार, गुदाद्वारमें पाँच बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा दोनों पैरोंमें तीन बार पृथक् मिट्टी लगानी और धोनी चाहिये। यह मल-त्यागके पश्चात् उसके लेप और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये शुद्धिका विधान किया गया है। ब्रह्मचारियोंके लिये इससे दुगुने शौचका विधान है। वानप्रस्थियोंके लिये तिगुना और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुना शौच बताया गया है। मुनिश्रेष्ठ! कहीं रास्तेमें हो तो आधा ही पालन करे। रोगीके लिये या बड़ी भारी विपत्ति पड़नेपर भी नियमका बन्धन नहीं रहता। स्त्रियों और उपनयनरहित द्विजकुमारोंके लिये भी लेप और दुर्गन्ध दूर होनेतक ही शौचकी सीमा है। उसके बाद किसी श्रेष्ठ वृक्षकी छिलकेसहित लकड़ी लेकर उससे दाँतुन करे। बेल, असना, अपामार्ग (ऊँगा या चिरचिरा) नीम, आम और अर्क आदि वृक्षोंका दाँतुन होना चाहिये। पहले उसे जलसे धोकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे—

**आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।**
**ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥**

(ना० पूर्व० २७। २५)

'वनस्पते! तुम हमें आयु, यश, बल, तेज, प्रजा, पशु, धन, वेद, बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करो।'

कनिष्ठिकाके अग्रभागके समान मोटा और दस अंगुल लंबा दाँतुन ब्राह्मण करे। क्षत्रिय नौ अंगुल, वैश्य आठ अंगुल, शूद्र और स्त्रियोंको चार अंगुलका दाँतुन करना चाहिये। दाँतुन न मिलनेपर बारह कुल्लोंसे मुख शुद्धि कर लेनी चाहिये। उसके बाद नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे। वहाँ तीर्थोंको प्रणाम करके सूर्यमण्डलमें भगवान् नारायणका आवाहन करे। फिर गन्ध आदिसे मण्डल बनाकर उन्हीं भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। नारदजी! तदनन्तर पवित्र मन्त्रों और तीर्थोंका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये—

**गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।**
**नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥**
**पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।**
**आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम॥**
**अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।**
**पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥**

(ना० पूर्व० २७। ३३—३५)

'गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नामवाली नदियाँ इस जलमें निवास करें। पुष्कर आदि तीर्थ और गङ्गा आदि परम सौभाग्यवती नदियाँ सदा मेरे स्नानकालमें यहाँ पधारें। अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारकापुरी—इन सातोंको मोक्षदायिनी समझना चाहिये।'

तदनन्तर श्वासको रोके हुए पानीमें डुबकी लगावे और अघमर्षण सूक्तका जप करे। फिर स्नानाङ्ग-तर्पण करके आचमनके पश्चात् सूर्यदेवको अर्घ्य दे। नारदजी! उसके बाद सूर्यभगवान्‌का ध्यान करके जलसे बाहर निकलकर बिना फटा हुआ शुद्ध धौतवस्त्र धारण करे। ऊपरसे दूसरा वस्त्र (चादर) भी ओढ़ ले। तत्पश्चात् कुशासनपर बैठकर संध्याकर्म प्रारम्भ करे। ब्रह्मन्! ईशानकोणकी ओर मुख करके गायत्री-मन्त्रसे आचमन करे, फिर '**ऋतञ्च**' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष दुबारा आचमन करे। तदनन्तर अपने चारों ओर जल छिड़कर अपने-आपको उस जलसे आवेष्टित करे। अपने शरीरपर भी जल सींचे। फिर प्राणायामका संकल्प लेकर प्रणवका उच्चारण करनेके बाद प्रणवसहित सातों व्याहृतियोंके तथा गायत्री-मन्त्रके ऋषि, छन्द और देवताओंका

स्मरण[1] करते हुए (विनियोग करते हुए) भूः आदि सात व्याहृतियोंद्वारा मस्तकपर जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ पुरुष पृथक्-पृथक् करन्यास और अङ्गन्यास करे। पहले हृदयमें प्रणवका न्यास करके मस्तकपर भूःका न्यास करे। फिर शिखामें भुवःका, कवचमें स्वःका, नेत्रोंमें भूर्भुवःका तथा दिशाओंमें भूर्भुवः स्वः—इन तीनों व्याहृतियोंका और अस्त्रका न्यास करे। तीन बार हथेलीपर ताल देना ही अस्त्रन्यास है[2]। तदनन्तर प्रातःकाल कमलके आसनपर विराजमान संध्या (गायत्री)-देवीका आवाहन करे।

सबको वर देनेवाली तीन अक्षरोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी गायत्रीदेवी! तुम वेदोंकी माता तथा ब्रह्मयोनि हो! तुम्हें नमस्कार है[3]। मध्याह्नकालमें वृषभपर आरूढ़ हुई, श्वेतवस्त्रसमावृत सावित्रीका आवाहन करे। जो रुद्रयोनि तथा रुद्रवादिनी है[4]। सायंकालके समय गरुड़पर चढ़ी हुई पीताम्बरसे आच्छादित विष्णुयोनि एवं विष्णुवादिनी सरस्वतीदेवीका आवाहन करना चाहिये[5]। प्रणव, सात व्याहृति, त्रिपदा गायत्री तथा शिरःशिखा मन्त्र—इन सबका उच्चारण करते हुए क्रमशः पूरक, कुम्भक और विरेचन करे। प्राणायाममें बायीं नासिकाके छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे अपने भीतर भरना चाहिये। फिर क्रमशः कुम्भक करके विरेचनद्वारा उसे बाहर निकालना चाहिये[6]। तत्पश्चात् प्रातःकालकी संध्यामें **'सूर्यश्च मा'** इत्यादि मन्त्र

---

१. ॐकारसहित व्याहृतियोंका, गायत्री-मन्त्रका तथा शिरोमन्त्रका विनियोग या उनके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण इस प्रकार है—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपो ज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

२. आधुनिक संध्याकी प्रतियोंमें न्यासकी विधि सूर्योपस्थानके बाद दी हुई है। परंतु नारदपुराणके अनुसार प्राणायामके पहले तथा जपके पहले भी न्यास करना चाहिये। मूलमें करन्यास और अङ्गन्यास दोनोंकी चर्चा की गयी है। पर विधि केवल अङ्गन्यासकी ही दी गयी है। जिसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

ॐ हृदयाय नमः। ॐ भूः शिरसे स्वाहा। ॐ भुवः शिखायै वषट्। ॐ स्वः कवचाय हुम्। ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्। ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्।

उपर्युक्त छः मन्त्रवाक्य अङ्गन्यासके हैं। इनमेंसे पहले वाक्यका उच्चारण करके दाहिने हाथकी हथेलीसे हृदयका स्पर्श करे। दूसरे वाक्यको पढ़कर अँगूठेसे मस्तकका स्पर्श करना चाहिये। तीसरे वाक्यका उच्चारण करके अंगुलियोंके अग्रभागसे शिखाका स्पर्श करे। चतुर्थ वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी अंगुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे। पञ्चम वाक्यसे अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा दोनों नेत्रोंका स्पर्श करना चाहिये। छठा वाक्य बोलकर दाहिने हाथको बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिने ओरसे आगेकी ओर ले आवे। तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजावे। अङ्गन्याससे पहले करन्यास करना चाहिये। करन्यास-वाक्य इस प्रकार हो सकते हैं—

ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ भूः तर्जनीभ्यां नमः। ॐ भुवः मध्यमाभ्यां नमः। ॐ स्वः अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भूर्भुवः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इनमें प्रथम वाक्य बोलकर दोनों तर्जनीसे दोनों अङ्गुष्ठोंका, द्वितीय वाक्य बोलकर दोनों अङ्गुष्ठोंसे दोनों तर्जनीका, तृतीय वाक्यसे अङ्गुष्ठोंद्वारा ही दोनों मध्यमाओंका, चतुर्थ वाक्यसे दोनों अनामिकाओंका, पञ्चम वाक्यसे दोनों कनिष्ठिकाओंका और छठे वाक्यसे दोनों हथेलियों तथा उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श करना चाहिये।

३. आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि। गायत्रिच्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥

(ना० पूर्व० २७। ४३-४४)

४. मध्याह्ने वृषभारूढां शुक्लाम्बरसमावृताम्। सावित्रीं रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम्॥

५. सायं तु गरुडारूढां पीताम्बरसमावृताम्। सरस्वतीं विष्णुयोनिमाह्वयेद् विष्णुवादिनीम्॥

(ना० पूर्व० २७। ४४—४६)

६. प्राणायाम-मन्त्र और उसकी विधि इस प्रकार है—

पढ़कर दो बार आचमन करे। मध्याह्नकालमें 'आपः पुनन्तु' इत्यादिसे और सायं संध्यामें 'अग्निश्च मा' इत्यादि मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। इसके बाद 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। फिर—

**सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः।**

—इस मन्त्रको पढ़ते हुए हथेलीमें जल लेकर नासिकासे उसका स्पर्श कराये और भीतरके काम-क्रोधादि शत्रु उस जलमें आ गये, ऐसी भावना करके दूर फेंक दे। इस प्रकार शत्रुवर्गको दूर भगाकर '**द्रुपदादिव मुमुचानः**' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको अपने सिरपर डाले। उसके बाद '**ऋतञ्च सत्यम्**' इत्यादि मन्त्रसे अघमर्षण करके '**अन्तश्चरसि**' इत्यादि मन्त्रद्वारा एक ही बार जलका आचमन करे। देवर्षे! तदनन्तर सूर्यदेवको विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प और जलकी अञ्जलि दे। प्रातःकाल स्वस्तिकाकार अञ्जलि बाँधकर भगवान् सूर्यका उपस्थान करे। मध्याह्नकालमें दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर और सायंकाल बाँहें नीचे करके उपस्थान करे। इस प्रकार प्रातः आदि तीनों समयके लिये पृथक्-पृथक् विधि है। नारदजी! सूर्योपस्थानके समय '**उदुत्यं जातवेदसम्**', '**चित्रं देवानामुदगादनीकम्**', '**तच्चक्षुर्देवहितम्**' इन तीन ऋचाओंका जप करे। इसके सिवा सूर्यदेवता-सम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका, शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंका तथा विष्णुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका भी जप किया जा सकता है। सूर्योपस्थानके बाद '**तेजोऽसि**' तथा '**गायत्र्यस्येकपदी**' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् सविताके तेजःस्वरूप गायत्रीकी अथवा परमात्म-तेजकी स्तुति—प्रार्थना करे। तदनन्तर पुनः तीन बार अङ्गन्यास करके ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुकी स्वरूपभूता शक्तियोंका चिन्तन करे। (प्रातःकाल ब्रह्माकी, मध्याह्नमें रुद्रकी और सायंकाल विष्णुकी शक्तिरूपसे क्रमशः गायत्री, सावित्री और सरस्वतीका चिन्तन करना चाहिये। उनका क्रमशः ध्यान इस प्रकार है—)

**ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयं कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ**
**बिभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका।**
**हंसारोहणकेलिखण्खण्मणोर्बिम्बार्चिता भूषिता**
**गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा॥**

(ना० पूर्व० । २७ । ५५)

'प्रातःकालमें गायत्रीदेवी ऋग्वेदस्वरूपा बालिकाके रूपमें विराज रही हैं। ये ब्रह्माजीकी शक्ति हैं। इनके चार मुख हैं। इन्होंने अपने हाथोंमें अक्षवलय, कलश, स्रुक् और स्रुवा धारण कर रखा है। इनके मुखकी कान्ति अरुण चन्द्रमाके समान कमनीय है। ये हंसपर चढ़नेकी क्रीड़ा कर रही हैं। उस समय इनके मणिमय आभूषण

---

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

पहले दाहिने हाथके अङ्गुठसे नासिकाका दायाँ छिद्र बंद करके बायें छिद्रसे वायुको अंदर खींचे। साथ ही नाभिदेशमें नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय। (यदि तीन बार पाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिकके लिये अभ्यास बढ़ाये।) इसको पूरक कहते हैं। पूरकके पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियोंसे नासिकाके बायें छिद्रको भी बंद करके तबतक श्वास रोके रहे, जबतक कि प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार (या शक्तिके अनुसार एक बार) पाठ न हो जाय। इस समय हृदयके बीच कमलासनपर विराजमान अरुण-गौरमिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका ध्यान करे। यह कुम्भक क्रिया है। इसके बाद अँगूठा हटाकर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे तबतक बाहर निकाले, जबतक प्राणायाम-मन्त्रका तीन (या एक) बार पाठ न हो जाय। इस समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्णवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरका ध्यान करे। यह रेचक क्रिया है, यह सब मिलकर एक प्राणायाम कहलाता है।

खनखन करने लगते हैं। मणिके बिम्बोंसे ये कूजित और विभूषित हैं। ऐसी गायत्रीदेवी हमारे ध्यानकी विषय होकर दैवी सम्पत्ति बढ़ानेमें सहायक हों।'

**रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा**
**खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिः श्रियै चास्तु नः।**
**विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा**
**सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी॥**

(ना० पूर्व०। २७। ५६)

'मध्याह्नकालमें वही गायत्री 'सावित्री' नाम धारण करती हैं। ये रुद्रकी शक्ति हैं। नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं। इनके तीन नेत्र हैं। व्याघ्रका चर्म इन्होंने वस्त्रके रूपमें धारण कर रखा है। इनके हाथोंमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल, अक्षवलय और अभयकी मुद्रा है। तेजोमयी विद्युत्के समान देदीप्यमान जटामें बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है। ये आनन्दमें मग्न हैं। वृषभ इनका वाहन है। शरीरका रंग (कपूरके समान) गौर है और यजुर्वेद इनका स्वरूप है। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सावित्री हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करें।'

**ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता**
**श्यामा श्यामतनुर्जरा परिलसद् गात्राञ्चिता वैष्णवी।**
**तार्क्ष्यस्था मणिनूपुराङ्गदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला**
**हस्तालङ्कृतशङ्खचक्रसुगदापद्मा श्रियै चास्तु नः॥**

(ना० पूर्व० २७। ५७)

'सायंकालमें वही गायत्री विष्णुशक्ति भगवती सरस्वतीका रूप धारण करती हैं। उनके श्रीअङ्ग पीताम्बरसे अलङ्कृत होते हैं। उनका रंग-रूप श्याम है। शरीरका एक-एक अवयव श्याम है। विभिन्न अङ्गोंमें जरावस्थाके लक्षण प्रकट होकर उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे गरुड़पर बैठी हैं। मणिमय नूपुर, भुजबंद और सुन्दर हार, हमेल आदि भूषणोंसे उनकी स्वाभाविक प्रभा और बढ़ गयी है। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और उत्तम गदा तथा पद्म सुशोभित हैं। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सरस्वतीदेवी हमारी श्रीवृद्धि करें।'

इस प्रकार ध्यान करके गायत्री-मन्त्रका जप करे। प्रातः और मध्याह्नकालमें खड़े होकर तथा सायंकालमें बैठकर भक्तिभावसे गायत्रीके ध्यानमें ही मनको लगाये हुए जप करना चाहिये। प्रति समयकी संध्योपासनामें गायत्रीदेवीका एक हजार जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा कम-से-कम दस बार जप साधारण माना गया है। आरम्भमें प्रणव फिर '**भूर्भुवःस्वः**' उसके बाद '**तत्सवितुः**' इत्यादि त्रिपदा गायत्री—यही जपने योग्य गायत्री-मन्त्रका स्वरूप है। मुने! ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यतिके द्वारा जो गायत्री-मन्त्रका जप होता है, उसमें छः प्रणव लगावे अथवा आदि-अन्तमें प्रणव लगाकर मन्त्रको उसमें सम्पुटित कर दे। परंतु गृहस्थके लिये केवल आदिमें एक प्रणव लगानेका नियम है। ऐसा ही मन्त्र उसके लिये जपने योग्य है। तदनन्तर यथाशक्ति जप करके उसे भगवान् सूर्यको निवेदित करे। फिर गायत्री तथा सूर्यदेवताके लिये एक-एक अञ्जलि

जल छोड़े। तत्पश्चात् 'उत्तरे[1] शिखरे देवि' इत्यादि मन्त्रसे गायत्रीदेवीका विसर्जन करते हुए कहे—'देवि! श्रीब्रह्मा, शिव तथा भगवान् विष्णुकी अनुमति लेकर सादर पधारो।' इसके बाद दिशाओं और दिग्देवताओंको हाथ जोड़कर प्रणाम करनेके अनन्तर प्रात:काल आदिका दूसरा कर्म भी विधिपूर्वक सम्पन्न करे। देवर्षे! गृहस्थ पुरुष तो प्रात:काल और मध्याह्नकालमें स्नान करे। परंतु वानप्रस्थी तथा संन्यासीको तीनों समय स्नान करना चाहिये। जो रोग आदिसे कष्ट पा रहे हों उनके लिये तथा पथिकोंके लिये एक ही बार स्नानका विधान किया गया है। मुनीश्वर! संध्योपासनके अनन्तर द्विज हाथमें कुश धारण करके ब्रह्मयज्ञ करे। यदि दिनमें बताये गये कर्म प्रमादवश न किये गये हों तो रातके पहले पहरमें उन्हें क्रमश: पूर्ण कर लेना चाहिये। जो धूर्त बुद्धिवाला द्विज आपत्तिकाल न होनेपर भी संध्योपासन नहीं करता, उसे सब धर्मोंसे भ्रष्ट एवं पाखण्डी समझना चाहिये। जो कपटपूर्ण झूठी युक्ति देनेमें चतुर होनेके कारण संध्या आदि कर्मोंको अनावश्यक बताते हुए उनका त्याग करता है, उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये[2]।

संध्योपासनाके बाद विधिपूर्वक देवपूजा तथा बलिवैश्वदेव-कर्म करना चाहिये। उस समय आये हुए अतिथिका अन्न आदिसे भलीभाँति सत्कार करना चाहिये। उनके आनेपर मीठे वचन बोलना चाहिये। उन्हें घरमें ठहरनेके लिये स्थान देकर अन्न-जल अथवा कन्द-मूल-फलसे उनकी पूजा करनी चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है। जिसका नाम और गोत्र पहलेसे ज्ञात न हो और जो दूसरे गाँवसे आया हो, ऐसे व्यक्तिको विद्वान् पुरुष 'अतिथि' कहते हैं। उसका श्रीविष्णुकी भाँति पूजन करना चाहिये[3]। ब्रह्मन्! प्रतिदिन पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे अपने ग्रामके निवासी एक श्रोत्रिय एवं वैष्णव ब्राह्मणको अन्न आदिसे तृप्त करना चाहिये। जो पञ्चमहायज्ञोंका त्यागी है, उसे विद्वान् लोग ब्रह्महत्यारा कहते हैं। इसलिये प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—इनको पञ्चयज्ञ कहते हैं। भृत्य

---

१. तैत्तिरीय आरण्यकमें 'उत्तमे शिखरे' ऐसा पाठ मिलता है। इस पुराणमें 'उत्तरे शिखरे' आया है।

२. यस्तु संध्यादिकर्माणि कूटयुक्तिविशारद:। परित्यजति तं विद्यान्महापातकिनां वरम्॥
(ना० पूर्व० २७। ६८)

३. अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥
अज्ञातगोत्रनामानं अन्यग्रामादुपागतम्। विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत् तं प्रपूजयेत्॥
(ना० पूर्व० २७। ७२-७३)

और मित्रादिवर्गके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करना चाहिये। द्विज कभी अभक्ष्य पदार्थको न खाय। सुपात्र व्यक्तिका त्याग न करे, उसे अवश्य भोजन करावे। जो अपने आसनपर पैर रखकर अथवा आधा वस्त्र पहनकर भोजन करता है या मुखसे उगले हुए अन्नको खाता है, विद्वान् पुरुष उसे 'शराबी' कहते हैं। जो आधा खाये हुए मोदक, फल और प्रत्यक्ष नमकको पुनः खाता है, वह गोमांसभोजी कहा जाता है। द्विजको चाहिये कि वह पानी पीते, आचमन करते तथा भक्ष्य पदार्थोंका भोजन करते समय मुखसे आवाज न करे। यदि वह उस समय मुँहसे आवाज करता है तो नरकगामी होता है। मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए हितकर अन्नका भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले एक बार जलका आचमन करे और इस प्रकार कहे '**अमृतोपस्तरणमसि**'—(हे अमृतरूप जल! तू भोजनका आश्रय अथवा आसन है)। फिर भोजनके अन्तमें एक बार जल पीये और कहे—'**अमृतापिधानमसि**' (हे अमृत! तू भोजनका आवरण—उसे ढकनेवाला है)। पहले प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान—इनके निमित्त अन्नकी पाँच आहुतियाँ अपने मुखमें डालकर आचमन कर ले[1]। उसके बाद भोजन आरम्भ करे। विप्रवर नारदजी! इस प्रकार भोजनके पश्चात् आचमन करके शास्त्रचिन्तनमें तत्पर होना चाहिये। रातमें भी आये हुए अतिथिका यथाशक्ति भोजन, आसन तथा शयनसे अथवा कन्द-मूल-फल आदिसे सत्कार करे। मुने! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष सदा सदाचारका पालन करे। जिस समय वह सदाचारको त्याग देता है, उस समय प्रायश्चित्तका भागी होता है।

साधुशिरोमणे! अपने शरीरको सफेद बाल आदि दोषोंसे युक्त देखकर अपनी पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें छोड़ दे। स्वयं घरसे विरक्त होकर वनमें चला जाय अथवा पत्नीको भी साथ ही लेता जाय। वहाँ तीनों समय स्नान करे। नख, दाढ़ी, मूँछ और जटा धारण किये रहे। नीचे भूमिपर सोये। ब्रह्मचर्यका पालन करे और पञ्चमहायज्ञोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहे। प्रतिदिन फल-मूलका भोजन करे और स्वाध्यायमें लगा रहे। भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न होकर सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखे। गाँवमें पैदा हुए फल-मूलको त्याग दे। प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे तथा रातमें उपवासपूर्वक रहे। वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला द्विज उबटन, तेल, मैथुन, निद्रा और आलस्य त्याग दे। वानप्रस्थी पुरुष शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणका चिन्तन तथा चान्द्रायण आदि तपोमय व्रत करे। सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्वोंको सहन करे। सदा अग्निकी सेवा (अग्निहोत्र)-में संलग्न रहे।

जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय तभी संन्यास ग्रहण करे, अन्यथा वह पतित हो जाता है। संन्यासीको वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर, शान्त, संयमी और जितेन्द्रिय, द्वन्द्वोंसे रहित तथा ममता और अहंकारसे शून्य रहना चाहिये। वह शम-दम आदि गुणोंसे युक्त तथा काम-क्रोधादि दोषोंसे दूर रहे। संन्यासी द्विज नग्न रहे या पुराना कौपीन पहने। उसे अपना मस्तक मुँड़ाये रहना चाहिये। वह शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमें समान भाव रखे। गाँवमें एक रात और नगरमें अधिक-से-अधिक तीन रात रहे। संन्यासी सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। किसी एकके

१. प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा—इस प्रकार कहता हुआ पाँच ग्रास ले।

घरका अन्न खानेवाला न हो। जब चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके लोगोंका खाना-पीना हो गया हो, कोई बाकी न हो, उस समय किसी उत्तम द्विजके घरमें, जहाँ लड़ाई-झगड़ा न हो, भिक्षाके लिये संन्यासीको जाना चाहिये। संन्यासी तीनों काल स्नान और भगवान् नारायणका ध्यान करे। और मनको जीतकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रतिदिन प्रणवका जप करता रहे। अगर कोई लम्पट संन्यासी कभी एक व्यक्तिका अन्न खाकर रहने लगे तो दस हजार प्रायश्चित्त करनेपर भी उसका उद्धार नहीं दिखायी देता। ब्रह्मन्! यदि संन्यासी लोभवश केवल शरीरके ही पालन-पोषणमें लगा रहे तो उसे चाण्डालके समान समझना चाहिये। सभी वर्णों और आश्रमोंमें उसकी निन्दा होती है। संन्यासी अपने आत्मस्वरूप भगवान् नारायणका चिन्तन करे। जो रोग-शोकसे रहित, द्वन्द्वोंसे परे, ममताशून्य, शान्त, मायातीत, ईर्ष्यारहित, अव्यय, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानमय, निर्मल, परम ज्योतिर्मय, सनातन, अधिकारी, अनादि, अनन्त जगत्‌की चिन्मयताके कारण गुणातीत तथा परात्पर परमात्मा हैं, उन्हींका नित्य ध्यान करना चाहिये। वह उपनिषद्-वाक्योंका पाठ एवं वेदान्तशास्त्रके अर्थका विचार करता रहे। जितेन्द्रिय रहकर सदा सहस्रों मस्तकवाले भगवान् श्रीहरिका ध्यान करे। जो ईर्ष्या छोड़कर इस प्रकार भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है, वह परमानन्दस्वरूप उत्कृष्ट सनातन ज्योतिको प्राप्त होता है। जो द्विज इस तरह क्रमशः आश्रमसम्बन्धी आचारोंका पालन करता है, वह परम धाममें जाता है। वहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता। वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मके पालनमें तत्पर एवं सब पापोंसे रहित भगवद्भक्त भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होते हैं।

## श्राद्धकी विधि तथा उसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुनिश्रेष्ठ! मैं श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। पिताकी क्षयाह तिथिके पहले दिन स्नान करके एक समय भोजन करे। जमीनपर सोये, ब्रह्मचर्यका पालन करे तथा रातमें ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे। श्राद्धकर्ता पुरुष दाँतुन करना, पान खाना, तेल और उबटन लगाना, मैथुन, औषध-सेवन तथा दूसरोंके अन्नका भोजन अवश्य त्याग दे। रास्ता चलना, दूसरे गाँव जाना, कलह, क्रोध और मैथुन करना, बोझ ढोना तथा दिनमें सोना—ये सब कार्य श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ताको छोड़ देने चाहिये। यदि श्राद्धमें निमन्त्रित पुरुष मैथुन करता है तो वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता और नरकमें जाता है। श्राद्धमें वेदके ज्ञाता और वैष्णव ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिये। जो अपने वर्ण और आश्रमधर्मके पालनमें तत्पर, परम शान्त, उत्तम कुलमें उत्पन्न, राग-द्वेषसे रहित, पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण, सब प्राणियोंपर दया करनेवाला, देवपूजापरायण, स्मृतियोंका तत्त्व जाननेमें कुशल, वेदान्त-तत्त्वका ज्ञाता, सम्पूर्ण लोकोंके हितमें संलग्न, कृतज्ञ, उत्तम गुणयुक्त, गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर तथा उत्तम शास्त्रवचनोंद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाला हो, उसे श्राद्धमें निमन्त्रित करे।

किसी अङ्गसे हीन अथवा अधिक अङ्गवाला, कदर्य, रोगी, कोढ़ी, बुरे नखोंवाला, अपने व्रतको खण्डित करनेवाला, ज्योतिषी, मुर्दा जलानेवाला, कुत्सित वचन बोलनेवाला, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वयं विवाह करनेवाला), देवल, दुष्ट, निन्दक, असहनशील, धूर्त, गाँवभरका पुरोहित, असत्-शास्त्रोंमें अनुराग

रखनेवाला, वृषलीपति[1], कुण्डगोलक, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला, पाखण्डपूर्ण आचरणवाला, अकारण सिर मुँड़ानेवाला, परायी स्त्री और पराये धनका लोभ रखनेवाला, भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित, भगवान् शिवकी भक्तिसे विमुख, वेद बेचनेवाला, व्रतका विक्रय करनेवाला, स्मृतियों तथा मन्त्रोंको बेचनेवाला, गवैया, मनुष्योंकी झूठी प्रशंसाके लिये कविता करनेवाला, वैद्यक-शास्त्रसे जीविका चलानेवाला, वेदनिन्दक, गाँव और वनमें आग लगानेवाला, अत्यन्त कामी, रस बेचनेवाला, झूठी युक्ति देनेमें तत्पर रहनेवाला—ये सब ब्राह्मण यत्नपूर्वक श्राद्धमें त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धसे एक दिन पहले या श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। श्राद्धकर्ता पुरुष हाथमें कुश लेकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विद्वान् ब्राह्मणको निमन्त्रण दे और इस प्रकार कहे 'हे साधुशिरोमणे! श्राद्धमें अपना समय देकर मुझपर कृपा प्रसाद करें।'

तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेका नित्यकर्म समाप्त करके विद्वान् पुरुष कुतपकालमें[2] श्राद्ध प्रारम्भ करे। दिनके आठवें मुहूर्तमें जब सूर्यका तेज कुछ मन्द हो जाता है, उस समयको 'कुतपकाल' कहते हैं। उसमें पितरोंकी तृप्तिके लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्रह्माजीने पितरोंको अपराह्णकाल ही दिया है। मुनिश्रेष्ठ! विभिन्न द्रव्योंके साथ जो कव्य असमयमें पितरोंके लिये दिया जाता है, उसे राक्षसका भाग समझना चाहिये। वह पितरोंके पास नहीं पहुँच पाता है। सायंकालमें दिया हुआ कव्य राक्षसका भाग हो जाता है। उसे देनेवाला नरकमें पड़ता है और उसको भोजन करनेवाला भी नरकगामी होता है। ब्रह्मन्! यदि निधनतिथिका मान पहले दिन एक दण्ड ही हो और दूसरे दिन वह अपराह्णतक व्याप्त हो तो विद्वान् पुरुषको दूसरे ही दिन श्राद्ध करना चाहिये। किंतु मृत्युतिथि यदि दोनों दिन अपराह्णकालमें व्याप्त हो तो क्षयपक्षमें पूर्वतिथिको श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये और वृद्धिपक्षमें परतिथिको। यदि पहले दिन क्षयाहतिथि चार घड़ी हो और दूसरे दिन वह सायंकालतक व्याप्त हो तो श्राद्धके लिये दूसरे दिनवाली तिथि ही उत्तम मानी गयी है। द्विजोत्तम! निमन्त्रित ब्राह्मणोंके एकत्र होनेपर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हृदयवाला श्राद्धकर्ता पुरुष उनसे श्राद्धके लिये आज्ञा ले। ब्राह्मणोंसे श्राद्धके लिये आज्ञा मिल जानेपर श्राद्धकर्ता पुरुष फिर उनमेंसे दोको विश्वेदेव श्राद्धके लिये और तीनको विधिपूर्वक पितृश्राद्धके लिये पुनः निमन्त्रित करे। अथवा देवश्राद्ध तथा पितृश्राद्धके लिये एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। श्राद्धके लिये आज्ञा लेकर एक-एक मण्डल बनावे। ब्राह्मणके लिये चौकोर, क्षत्रियके लिये त्रिकोण तथा वैश्यके लिये गोल मण्डल बनाना आवश्यक समझना चाहिये और शूद्रको मण्डल न बनाकर केवल भूमिको सींच देना चाहिये। योग्य ब्राह्मणोंके अभावमें भाईको, पुत्रको अथवा अपने-आपको ही श्राद्धमें नियुक्त करे। परंतु वेदशास्त्रके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको श्राद्धमें नियुक्त न करे। ब्राह्मणोंके पैर धोकर उन्हें आचमन करावे और नियत आसनपर बैठाकर भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। ब्राह्मणोंके बीचमें तथा श्राद्धमण्डपके द्वारदेशमें श्राद्धकर्ता पुरुष '**अपहता असुरा रक्षांऽसि वेदिषदः।**' इस ऋचाका उच्चारण करते हुए तिल बिखेरे। जौ

१. वृषली शूद्रजातिकी स्त्रीको कहते हैं। स्मृतियोंके अनुसार जो कन्या अविवाहित अवस्थामें अपने पिताके यहाँ रजस्वला हो जाती है, उसकी भी वृषली संज्ञा होती है।

२. सम्पूर्ण दिन १५ मुहूर्तका होता है। उसमें आठवाँ मुहूर्त मध्याह्नके बाद आता है। वही पितरोंके श्राद्धके लिये उत्तम माना गया है, उसीका नाम 'कुतप' है।

और कुशोंद्वारा विश्वेदेवोंको आसन दे। हाथमें जौ और कुश लेकर कहे—**'विश्वेषां देवनाम् इदम् आसनम्'** ऐसा कहकर विश्वेदेवोंके बैठनेके लिये आसनरूपसे उस कुशाको रख दे और प्रार्थना करे—हे विश्वेदेवो! आपलोग इस देवश्राद्धमें अपना क्षण (समय) दें और प्रतीक्षा करें। अक्षय्योदक और आसन समर्पणके वाक्यमें विश्वेदेवों और पितरोंके लिये षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये। आवाहन-वाक्यमें द्वितीया विभक्ति बतायी गयी है। अन्न समर्पणके वाक्यमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग होना चाहिये। शेष कार्य सम्बोधनपूर्वक करना चाहिये। कुशकी पवित्रीसे युक्त दो पात्र लेकर उनमें **'शं नो देवी'** इत्यादि ऋचाका उच्चारण करके जल डाले। फिर **'यवोऽसि'** इत्यादि मन्त्र बोलकर उसमें जव डाले। उसके बाद चुपचाप बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प छोड़ दे। इस प्रकार अर्घ्यपात्र तैयार हो जानेपर **'विश्वेदेवाः स'** इत्यादि मन्त्रसे विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तदनन्तर **'या दिव्या आपः'** इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके एकाग्रचित्त हो पितृ और मातामह-सम्बन्धी विश्वेदेवोंको संकल्पपूर्वक क्रमशः अर्घ्य दे। उसके बाद गन्ध, पत्र, पुष्प, यज्ञोपवीत, धूप, दीप आदिके द्वारा उन देवताओंका पूजन करे। तत्पश्चात् विश्वेदेवोंसे आज्ञा लेकर पितृगणोंका पूजन करे। उनके लिये सदा तिलयुक्त कुशोंवाला आसन देना चाहिये। उन्हें अर्घ्य देनेके लिये द्विज पूर्ववत् तीन पात्र रखे। **'शं नो देवी०'** इत्यादि मन्त्रसे जल डालकर **'तिलोऽसि सोमदैवत्यो'** इत्यादि मन्त्रसे तिल डाले। फिर **'उशन्तस्त्वा'** इत्यादि मन्त्रद्वारा पितरोंका आवाहन करके ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो **'या दिव्या आपः'** इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् संकल्पपूर्वक पितरोंको समर्पित करे (अर्घ्यपात्रको उलटकर पितरोंके वामभागमें रखना चाहिये)। साधुशिरोमणे! तदनन्तर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र और आभूषणसे अपनी शक्तिके अनुसार उन सबकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष घृतसहित अन्नका ग्रास ले **'अग्नौ करिष्ये'** (अग्निमें होम करूँगा) ऐसा कहकर उन ब्राह्मणोंसे इसके लिये आज्ञा ले। मुने! **'करवै'**—अथवा **'करवाणि'** (करूँ?) ऐसा कहकर श्राद्धकर्ताके पूछनेपर ब्राह्मण लोग **'कुरुष्व' 'क्रियताम्'** अथवा **'कुरु'** (करो) ऐसा कहें। इसके बाद अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार उपासनाग्निकी स्थापना करके उसमें पूर्वोक्त अन्नके ग्रासकी दो आहुतियाँ डाले। उस समय **'सोमाय पितृमते स्वधा नमः'** ऐसा उच्चारण करे। फिर **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः'** ऐसा उच्चारण करे। विद्वान् पुरुष अन्तमें स्वधाकी जगह स्वाहा लगाकर भी पितृयज्ञकी भाँति आहुति दे सकते हैं। इन्हीं दो आहुतियोंसे पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। अग्निके अभावमें अर्थात् यजमानके अग्निहोत्री न होनेपर ब्राह्मणके हाथमें दानरूप होम करनेका विधान है[१]।

१. आजकल अपात्रक पार्वण आदि श्राद्धोंमें अग्नौकरण होमकी दोनों आहुतियाँ पुटकस्थित जलमें डाली जाती हैं। परंतु प्राचीन मत उपासनाग्निमें ही हवन करनेका है। आश्वलायनका वचन है 'अग्नौकरणहोमं तु कुर्यादौपासनानले' और अग्निके अभावमें पितृस्वरूप ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करनेका विधान है जैसा कि आश्वलायनका वचन है। 'जुहुयात् पितृपाणिषु' अतः नारदपुराणका मूलोक्त वचन अन्य स्मृतिकारोंके मतसे भी मिलता-जुलता है।

ब्रह्मन्! जैसा आचार हो, उसके अनुसार ब्राह्मणके हाथ या अग्निमें उक्त होम करना चाहिये। पार्वण उपस्थित होनेपर अग्निको दूर नहीं करना चाहिये। विप्रवर! यदि पार्वण उपस्थित होनेपर अपनी उपास्य अग्नि दूर हो तो पहले नूतन अग्निकी स्थापना करके उसमें होम आदि आवश्यक कार्य करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष उस अग्निका विसर्जन कर दे। यदि क्षयाह (निधनदिन) तिथि प्राप्त हो और उपासनाग्नि दूर हो तो अपने अग्निहोत्री द्विज भाइयोंसे विधिपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्न करावे। द्विजश्रेष्ठ! श्राद्धकर्ता प्राचीनावीती होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर करके) अग्निमें होम करे और होमावशिष्ट अन्नको ब्राह्मणके पात्रोंमें भगवत्स्मरणपूर्वक डाले। फिर स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य, लेह्य आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करे। तदनन्तर एकाग्रचित्त हो विश्वेदेव और पितर—दोनोंके लिये अन्न परोसे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

**आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः॥**
**ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते।**

(ना० पूर्व० २८। ५७-५८)

'महान् बलवान् महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ पधारें और जो जिस श्राद्धमें विहित हों वे उसके लिये सावधान रहें।'

इस प्रकार विश्वेदेवोंसे प्रार्थना करे। 'ये देवासः' इत्यादि मन्त्रसे भी उनकी अभ्यर्थना करनी चाहिये। देवपक्षके ब्राह्मणोंसे भी ऐसी ही प्रार्थना करे। उसके बाद 'ये चेह पितरो' इत्यादि मन्त्रसे पितरोंकी अभ्यर्थना करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उनको नमस्कार करे—

**अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्॥**
**नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्।**

(ना० पूर्व० २८। ५९-६०)

'जिनका तेज सब ओर प्रकाशित हो रहा है, जो ध्यानपरायण तथा योगदृष्टिसे सम्पन्न हैं, उन मूर्त पितरोंको तथा अमूर्त पितरोंको भी मैं सदा नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार पितरोंको प्रणाम करके श्राद्धकर्ता पुरुष भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए दिये हुए हविष्य तथा श्राद्धकर्मको भगवान् विष्णुकी सेवामें समर्पित कर दे। इसके बाद वे सब ब्राह्मण मौन होकर भोजन प्रारम्भ करें। यदि कोई ब्राह्मण उस समय हँसता या बात करता है तो वह हविष्य राक्षसका भाग हो जाता है। पाक आदिकी प्रशंसा (या निन्दा) न करे। सर्वथा मौन रहे। भोजनपात्रको हाथसे स्पर्श किये हुए ही भोजन करे। यदि कोई श्राद्धमें नियुक्त हुआ ब्राह्मण पात्रको सर्वथा छोड़ देता है तो उसे श्राद्धहन्ता जानना चाहिये। वह नरकमें पड़ता है। भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंमेंसे कुछ लोग यदि एक- दूसरेका स्पर्श कर लें और अन्नका त्याग न करके उसे खा लें तो उस स्पर्शजनित दोषका निवारण करनेके लिये उन्हें आठ सौ गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। जब ब्राह्मणलोग भोजन करते हों उस समय श्राद्धकर्ता पुरुष श्रद्धापूर्वक कभी पराजित न होनेवाले अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण करे। रक्षोघ्नमन्त्र[1], वैष्णवसूक्त[2] तथा विशेषतः पितृसम्बन्धी[3] मन्त्रोंका पाठ करे। इसके सिवा पुरुषसूक्त[4], त्रिणाचिकेत[5], त्रिमधु[6],

१. 'ॐ अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः' इत्यादि।

२. 'इदं विष्णुर्विचक्रमे', 'विष्णोः कर्माणि पश्यत', 'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा', 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम्', 'विष्णो रराटमसि विष्णोः'।

३. 'आयन्तु नः पितरः', 'उदीरतामवर', 'ये चेह पितरो', 'ऊर्जंवहन्तीरमृतं' इत्यादि।

४. 'सहस्रशीर्षाः पुरुषः' इत्यादि।

५. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाक।

६. 'मधुवाता' इत्यादि तीन ऋचाएँ।

त्रिसुपर्ण[1], पवमानसूक्त तथा यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंका जप करे। अन्यान्य पुण्यदायक प्रसंगोंका चिन्तन करे। इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रोंका भी पाठ करे। नारदजी! जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करें, तबतक इन सबका जप या पाठ करना चाहिये। जब वे भोजन कर लें, उस समय परोसनेवाले पात्रमें बचा हुआ उच्छिष्टके समीप भूमिपर बिखेर दे। यह विकिरान्न[2] कहलाता है।

उस समय '**मधुवाता ऋतायते**' इत्यादि सूक्तका जप करे। नारदजी! इसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष स्वयं दोनों पैर धोकर भलीभाँति आचमन कर ले। फिर ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर पिण्डदान करे। स्वस्तिवाचन कराकर अक्षय्योदक दे (तर्पण करें)। उसे देकर एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंका अभिवादन करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रोंको सीधा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और उनसे स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद ले। जो द्विज अर्घ्यपात्रको हिलाये या सीधा किये बिना (दक्षिणा लेते और) स्वस्तिवाचन करते हैं, उनके पितर एक वर्षतक उच्छिष्ट भोजन करते हैं। स्मृति-कथित '**गोत्रं नो वर्धताम्**' '**दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्**' इत्यादि वचन कहकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर उन्हें प्रणाम करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा, गन्ध एवं ताम्बूल अर्पित करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रको उत्तान करनेके बाद हाथमें लेकर '**स्वधा**'का उच्चारण करे। फिर '**वाजे वाजे**' इत्यादि ऋचाको पढ़कर पितरोंका, देवताओंका विसर्जन करे।

श्राद्ध-भोजन करनेवाला ब्राह्मण तथा श्राद्धकर्ता यजमान दोनों उस रातमें मैथुनका त्याग करें। उस दिन स्वाध्याय तथा रास्ता चलनेका कार्य यत्नपूर्वक छोड़ दें। जो कहीं जानेके लिये यात्रा कर रहा हो, जिसे कोई रोग हो तथा जो धनहीन हो, वह पुरुष पाक न बनाकर कच्चे अन्नसे श्राद्ध करे और जिसकी पत्नी रजस्वला होनेसे स्पर्श करने योग्य न हो, वह दक्षिणारूपसे सुवर्ण देकर श्राद्धकार्य सम्पन्न करे। यदि धनका अभाव हो और ब्राह्मण भी न मिलें तो बुद्धिमान् पुरुष केवल अन्नका पाक बनाकर पितृसूक्तके मन्त्रसे उसका होम करे। ब्रह्मन्! यदि उसके पास अन्नमय हविष्यका अभाव हो तो यथाशक्ति घास ले आकर पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे गौओंको अर्पण करे। अथवा स्नान करके विधिपूर्वक तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करे। अथवा विद्वान् पुरुष निर्जन वनमें चला जाय और मैं महापापी दरिद्र हूँ—यह कहते हुए उच्चस्वरसे रुदन करे। मुनीश्वर! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करते हैं वे सम्पत्तिशाली होते हैं और उनकी संतानपरम्पराका नाश नहीं होता। जो श्राद्धमें पितरोंका पूजन करते हैं, उनके द्वारा साक्षात् भगवान् विष्णु पूजित होते हैं और जगदीश्वर भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध और मनुष्यके रूपमें सनातन भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं। उन्हींसे यह स्थावर-जंगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। अतः दाता और भोक्ता सब भगवान् विष्णु ही हैं। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्के आधार सर्वभूतस्वरूप तथा अविनाशी हैं। उनके स्वभावकी कहीं भी तुलना नहीं है, वे ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं। एकमात्र भगवान् जनार्दन ही परब्रह्म परमात्मा कहलाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार तुमसे श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन किया गया। इस विधिसे श्राद्ध करनेवालोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो श्रेष्ठ द्विज श्राद्धकालमें भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होते हैं और संतति बढ़ती है।

---

१. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाक।

२. विकिरान्न उन पितरोंका भाग है जो आगमें जलकर मर गये हों अथवा जिनका दाह-संस्कार न हुआ हो। पितृ-सम्बन्धी ब्राह्मणके आगे उनके जूठनके समीप दक्षिणाग्र कुश बिछाकर परोसनेकी थालीमें बचे अन्नको बिखेर देना चाहिये। फिर तिल और जल लेकर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए वह अन्न समर्पित करना चाहिये।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

(याज्ञ० आचार० २४१ वें श्लोककी मिताक्षरा टीका)

## व्रत, दान और श्राद्ध आदिके लिये तिथियोंका निर्णय

**श्रीसनकजी कहते हैं—**ब्रह्मन्! श्रुतियों और स्मृतियोंमें कहे हुए जो व्रत, दान और अन्य वैदिक कर्म हैं वे यदि अनिर्णीत (अनिश्चित) तिथियोंमें किये जायँ तो उनका कोई फल नहीं होता। एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावास्या और तृतीया—ये पर-तिथिसे विद्ध (संयुक्त) होनेपर उपवास और व्रत आदिमें श्रेष्ठ मानी जाती हैं। पूर्व-तिथिसे संयुक्त होनेपर ये व्रत आदिमें ग्राह्य नहीं होती हैं। कोई-कोई आचार्य कृष्णपक्षमें सप्तमी, चतुर्दशी, तृतीया और नवमीको पूर्वतिथिसे विद्ध होनेपर भी श्रेष्ठ कहते हैं। परंतु सम्पूर्ण व्रत आदिमें शुक्लपक्ष ही उत्तम माना गया है और अपराह्णकी अपेक्षा पूर्वाह्णको व्रतमें ग्रहण करने योग्य काल बताया गया है; क्योंकि वह उससे अत्यन्त श्रेष्ठ है। रात्रि-व्रतमें सदा वही तिथि ग्रहण करनी चाहिये जो प्रदोषकालतक मौजूद रहे। दिनके व्रतमें दिनव्यापिनी तिथियाँ ही व्रतादि कर्म करनेके लिये पवित्र मानी गयी हैं। इसी प्रकार रात्रि-व्रतोंमें तिथियोंके साथ रात्रिका संयोग बड़ा श्रेष्ठ माना गया है। श्रवण द्वादशीके व्रतमें सूर्योदयव्यापिनी द्वादशी ग्रहण करनी चाहिये। सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें जबतक ग्रहण लगा रहे, तबतककी तिथि जप आदिमें ग्रहण करने योग्य है।

अब सम्पूर्ण संक्रान्तियोंमें होनेवाले पुण्यकालका वर्णन किया जाता है। सूर्यकी संक्रान्तियोंमें स्नान, दान और जप आदि करनेवालोंको अक्षय फल प्राप्त होता है। इन संक्रान्तियोंमें कर्ककी संक्रान्तिको दक्षिणायन संक्रम जानना चाहिये। कर्ककी संक्रान्तिमें विद्वान् लोग पहलेकी तीस घड़ीको पुण्यकाल मानते हैं। वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ राशिकी

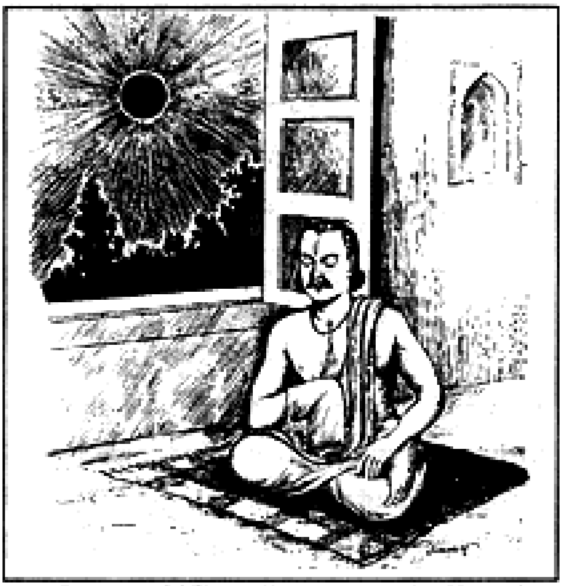

संक्रान्तियोंमें पहलेके आठ मुहूर्त (सोलह घड़ी) स्नान और जप आदिमें ग्राह्य हैं। और तुला तथा मेषकी संक्रान्तियोंमें पूर्व और परकी दस-दस घड़ियाँ स्नान आदिके लिये श्रेष्ठ मानी गयी हैं। इनमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्रह्मन्! कन्या, मिथुन, मीन और धनकी संक्रान्तियोंमें बादकी सोलह घटिकाएँ पुण्यदायक जाननी चाहिये। मकर-संक्रान्तिको उत्तरायण संक्रम कहा गया है। इसमें पूर्वकी चालीस और बादकी तीस घड़ियाँ स्नान-दान आदिके लिये पवित्र मानी गयी हैं। विप्रवर! यदि सूर्य और चन्द्रमा ग्रहण लगे हुए ही अस्त हो जायँ तो दूसरे दिन उनका शुद्ध मण्डल देखकर ही भोजन करना चाहिये।

धर्मकी इच्छा रखनेवाले विद्वानोंने अमावास्या दो प्रकारकी बतायी है—सिनीवाली और कुहू। जिसमें चन्द्रमाकी कला देखी जाती है, वह चतुर्दशीयुक्त अमावास्या सिनीवाली कही जाती है और जिसमें चन्द्रमाकी कलाका सर्वथा क्षय हो जाता है, वह चतुर्दशीयुक्त अमावास्या कुहू मानी

गयी है[१]। अग्निहोत्री द्विजोंको श्राद्धकर्ममें सिनीवाली अमावास्याको ही ग्रहण करना चाहिये तथा स्त्रियों, शूद्रों और अग्निरहित द्विजोंको कुहूमें श्राद्ध करना चाहिये। यदि अमावास्या तिथि अपराह्णकालमें व्याप्त हो तो क्षय (मृत्युकर्म)-में पूर्व-तिथि और वृद्धि (जन्म-कर्म)-में उत्तर-तिथिको ग्रहण करना चाहिये। यदि अमावास्या मध्याह्नकालके बाद प्रतीत हो तो शास्त्रकुशल साधु पुरुषोंने उसे भूतविद्धा (चतुर्दशीसे संयुक्त) कहा है। जब तिथिका अत्यन्त क्षय होनेसे दूसरे दिन वह अपराह्णव्यापिनी न हो तब (पूर्व दिनकी) सायंकालव्यापिनी सिनीवाली तिथिको ही श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये। यदि तिथिकी अतिशय वृद्धि होनेपर वह दूसरे दिन अपराह्णकालतक चली गयी हो तो चतुर्दशी-विद्धा अमावास्याको त्याग दे और कुहूको ही श्राद्धकर्ममें ग्रहण करे। यदि अमावास्या तिथि एक मध्याह्नसे लेकर दूसरे मध्याह्नतक व्याप्त हो तो इच्छानुसार पूर्व या पर-दिनकी तिथिको ग्रहण करे।

मुनिश्रेष्ठ! अब मैं सम्पूर्ण पर्वोपर होनेवाले अन्वाधान (अग्निस्थापन)-का वर्णन करता हूँ। प्रतिपदाके दिन याग करना चाहिये। पर्वके अन्तिम चतुर्थांश और प्रतिपदाके प्रथम तीन अंशको मनीषी पुरुषोंने यागका समय बताया है। यागका आरम्भ प्रात:काल करना चाहिये। विप्रवर! यदि अमावास्या और पूर्णिमा दोनों मध्याह्नकालमें व्याप्त हों तो दूसरे ही दिन यागका मुख्य काल नियत किया जाता है। यदि अमावास्या और पूर्णिमा दूसरे दिन सङ्गवकाल (प्रात:कालसे छ: घड़ी)-के बाद हो तो दूसरे ही दिन पुण्यकाल होता है। तिथिक्षयमें भी ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। सभी लोगोंको दशमीरहित एकादशी तिथि व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। दशमीयुक्त एकादशी तीन जन्मोंके कमाये हुए पुण्यका नाश कर देती है। यदि एकादशी द्वादशीमें एक कला भी प्रतीत हो और सम्पूर्ण दिन द्वादशी हो और द्वादशी भी त्रयोदशीमें मिली हुई हो तो दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) ही उत्तम मानी गयी है। यदि सम्पूर्ण दिन शुद्ध एकादशी हो और द्वादशीमें भी उसका संयोग प्राप्त होता हो तथा रात्रिके अन्तमें त्रयोदशी आ जाय तो उस विषयमें निर्णय बतलाता हूँ। पहले दिनकी एकादशी गृहस्थोंको करनी चाहिये और दूसरे दिनकी विरक्तोंको। यदि कलाभर भी द्वादशी न रहनेसे पारणाका अवसर न मिलता हो तो उस दशामें दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास-व्रत करना चाहिये। यदि शुक्ल या कृष्णपक्षमें दो एकादशियाँ हों तो पहली गृहस्थोंके लिये और दूसरी विरक्त यतियोंके लिये ग्राह्य मानी गयी है। यदि दिनभर दशमीयुक्त एकादशी हो और दिनकी समाप्तिके समय द्वादशीमें भी कुछ एकादशी हो तो सबके लिये दूसरे ही दिन (द्वादशी) व्रत बताया गया है। यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्राह्य है। और यदि दूसरे दिन द्वादशी है तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी निषिद्ध ही है (इसलिये ऐसी परिस्थितिमें द्वादशीको व्रत करना चाहिये)। यदि एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी भी आ जाय तो त्रयोदशीमें पारणा करनेपर बारह द्वादशियोंका पुण्य होता है। यदि द्वादशीके दिन कलामात्र ही एकादशी हो और त्रयोदशीमें द्वादशीका योग हो या न हो तो गृहस्थोंके पहले दिनकी विद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। और विरक्त साधुओं

१. अमावास्याके तीन विभाग हैं—सिनीवाली, दर्श और कुहू। चतुर्दशीका अन्तिम प्रहर और अमावास्याके आठ प्रहर इस प्रकार यह नौ प्रहरका समय चन्द्रमाके क्षयका काल माना गया है। इनमेंसे पहले दो प्रहरोंमें चन्द्रमाकी कला विराजमान रहती है, अत: उसे सिनीवाली कहते हैं और अन्तिम दो प्रहरोंमें चन्द्रमाकी कलाका पूर्णत: क्षय हो जाता है। अत: उसीका नाम कुहू है और बीचके जो शेष पाँच प्रहर हैं उनका नाम दर्श है।

तथा विधवाओंको दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) स्वीकार करनी चाहिये। यदि पूरे दिनभर शुद्ध एकादशी हो, द्वादशीमें उसका तनिक भी योग न हो तथा द्वादशी त्रयोदशीमें संयुक्त हो तो वहाँ कैसे व्रत रहना चाहिये—इसका उत्तर देते हैं—गृहस्थोंको पूर्वकी (एकादशी) तिथिमें व्रती रहना चाहिये और विरक्त साधुओंको दूसरे दिनकी (द्वादशी) तिथिमें। कोई-कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सब लोगोंको दूसरे दिनकी तिथिमें ही भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो, द्वादशीमें उसकी प्रतीति न हो और द्वादशी त्रयोदशीसे संयुक्त हो तो उस दशामें सबको शुद्ध द्वादशी तिथिमें उपवास करना चाहिये—इसमें संशय नहीं है। कुछ लोग पूर्व तिथिमें व्रत कहते हैं; किंतु उनका मत ठीक नहीं है।

जो रविवारको दिनमें, अमावास्या और पूर्णिमाको रातमें, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको दिनमें तथा एकादशी तिथिको दिन और रात दोनोंमें भोजन कर लेता है, उसे प्रायश्चित्तरूपमें चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर तीन पहर पहलेसे ही भोजन न करे। यदि कोई कर लेता है तो वह मदिरा पीनेवालेके समान होता है। मुनिश्रेष्ठ! यदि अग्न्याधान और दर्शपौर्णमास आदि यागके बीच चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण हो जाय तो यज्ञकर्ता पुरुषोंको प्रायश्चित्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! चन्द्रग्रहणमें **'दशमे सोमः' 'आप्यायस्व'** तथा **'सोमपास्ते'** इन तीन मन्त्रोंसे हवन करें। और सूर्यग्रहण होनेपर हवन करनेके लिये **'उदुत्यं जातवेदसम्', 'आसत्येन', 'उद्वयं तमसः'**—ये तीन मन्त्र बताये गये हैं। जो पण्डित इस प्रकार स्मृतिमार्गसे तिथिका निर्णय करके व्रत आदि करता है उसे अक्षय फल प्राप्त होता है। वेदमें जिसका प्रतिपादन किया गया है वह धर्म है। धर्मसे भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। अतः धर्मपरायण मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धाममें जाते हैं। जो धर्माचरण करना चाहते हैं, वे साक्षात् भगवान् कृष्णके स्वरूप हैं। अतः संसाररूपी रोग उन्हें कोई बाधा नहीं पहुँचाता।

## विविध पापोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा भगवान् विष्णुके आराधनकी महिमा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारदजी! अब मैं प्रायश्चित्तकी विधिका वर्णन करूँगा, सुनिये! सम्पूर्ण धर्मोंका फल चाहनेवाले पुरुषोंको काम-क्रोधसे रहित धर्मशास्त्रविशारद ब्राह्मणोंसे धर्मकी बात पूछनी चाहिये। विप्रवर! जो लोग भगवान् नारायणसे विमुख हैं, उनके द्वारा किये हुए प्रायश्चित्त उन्हें पवित्र नहीं करते; ठीक उसी तरह जैसे मदिराके पात्रको नदियाँ भी पवित्र नहीं कर सकतीं। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, स्वर्ण आदि वस्तुओंकी चोरी करनेवाला तथा गुरुपत्नीगामी—ये चार महापातकी कहे गये हैं। तथा इनके साथ सम्पर्क करनेवाला पुरुष पाँचवाँ महापातकी है। जो इनके साथ एक वर्षतक सोने, बैठने और भोजन करने आदिका सम्बन्ध रखते हुए निवास करता है, उसे भी सब कर्मोंसे पतित समझना चाहिये। अज्ञातवश ब्राह्मणहत्या हो जानेपर चीर-वस्त्र और जटा धारण करे और अपने द्वारा मारे गये ब्राह्मणकी कोई वस्तु ध्वज-दण्डमें बाँधकर उसे लिये हुए वनमें घूमे। वहाँ जंगली फल-मूलोंका आहार करते हुए निवास करे। दिनमें एक बार परिमित भोजन करे। तीनों समय स्नान और विधिपूर्वक संध्या करता रहे। अध्ययन और अध्यापन आदि कार्य छोड़ दे।

निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करता रहे। नित्य ब्रह्मचर्यका पालन करे और गन्ध एवं माला आदि भोग्य वस्तुओंको छोड़ दे। तीर्थों तथा पवित्र आश्रमोंमें निवास करे। यदि वनमें फल-मूलोंसे जीविका न चले तो गाँवोंमें जाकर भिक्षा माँगे। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करते हुए बारह वर्षका व्रत करे। इससे ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता और ब्राह्मणोचित कर्म करनेके योग्य हो जाता है। व्रतके बीचमें यदि हिंसक जन्तुओं अथवा रोगोंसे उसकी मृत्यु हो जाय तो वह शुद्ध हो जाता है। यदि गौओं अथवा ब्राह्मणोंके लिये प्राण त्याग दे या श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दस हजार उत्तम गायोंका दान करे तो इससे भी उसकी शुद्धि होती है। इनमेंसे एक भी प्रायश्चित्त करके ब्रह्महत्यारा पापसे मुक्त हो सकता है।

यज्ञमें दीक्षित क्षत्रियका वध करके भी ब्रह्महत्याका ही व्रत करे अथवा प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाय या किसी ऊँचे स्थानसे वायुके झोंके खाकर गिर जाय। यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर दुगुने व्रतका आचरण करे। आचार्य आदिकी हत्या हो जानेपर चौगुना व्रत बतलाया गया है। नाममात्रके ब्राह्मणकी हत्या हो जाय तो एक वर्षतक व्रत करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्राह्मणके लिये प्रायश्चित्तकी विधि बतलायी गयी है। यदि क्षत्रियके द्वारा उपर्युक्त पाप हो जाय तो उसके लिये दुगुना और वैश्यके लिये तीनगुना प्रायश्चित्त बताया गया है। जो शूद्र ब्राह्मणका वध करता है, उसे विद्वान् पुरुष मुशल्य (मूसलसे मार डालने योग्य) मानते हैं। राजाको ही उसे दण्ड देना चाहिये। यही शास्त्रोंका निर्णय है। ब्राह्मणीके वधमें आधा और ब्राह्मण-कन्याके वधमें चौथाई प्रायश्चित्त कहा गया है। जिनका यज्ञोपवीत-संस्कार न हुआ हो, ऐसे ब्राह्मण बालकोंका वध करनेपर भी चौथाई व्रत करे। यदि ब्राह्मण क्षत्रियका वध कर डाले तो वह छः वर्षोंतक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। वैश्यको मारनेपर तीन वर्ष और शूद्रको मारनेपर एक वर्षतक व्रत करे। यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी धर्मपत्नीका वध करनेपर आठ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। मुनिश्रेष्ठ! वृद्ध, रोगी, स्त्री और बालकोंके लिये सर्वत्र आधे प्रायश्चित्तका विधान बताया गया है।

सुरा मुख्य तीन प्रकारकी जाननी चाहिये। गौड़ी (गुड़से तैयार की हुई), पैष्टी (चावलों आदिके आटेसे बनायी हुई) तथा माध्वी (फूलके रस, अंगूर या महुवेसे बनायी हुई)। नारदजी! चारों वर्णोंके पुरुषों तथा स्त्रियोंको इनमेंसे कोई भी सुरा नहीं पीनी चाहिये। मुने! शराब पीनेवाला द्विज स्नान करके गीले वस्त्र पहने हुए मनको एकाग्र करके भगवान् नारायणका निरन्तर स्मरण करे और दूध, घी अथवा गोमूत्रको तपाये हुए लोहेके समान गरम करके पी जाय, फिर (जीवित रहे तो) जल पीवे। वह भी लौहपात्र अथवा आयसपात्रसे पीये या ताँबेके पात्रसे पीकर मृत्युको प्राप्त हो जाय। ऐसा करनेपर ही मदिरा पीनेवाला द्विज उस पापसे मुक्त होता है। अनजानमें पानी समझकर जो द्विज शराब पी ले तो विधिपूर्वक ब्रह्महत्याका व्रत करे; किंतु उसके चिह्नोंको न धारण करे। यदि रोग-निवृत्तिके लिये औषध-सेवनकी दृष्टिसे कोई द्विज शराब पी ले तो उसका फिर उपनयन-संस्कार करके उससे दो चान्द्रायण-व्रत कराने चाहिये। शराबसे छुवाये हुए पात्रमें भोजन करना, जिसमें कभी शराब रखी गयी हो उस पात्रका जल पीना तथा शराबसे भीगी हुई वस्तुको खाना यह सब शराब पीनेके ही समान बताया गया है। ताड़, कटहल, अंगूर, खजूर और महुआसे तैयार की हुई तथा पत्थरसे आटेको पीसकर बनायी हुई अरिष्ट, मैरेय और नारियलसे

निकाली हुई, गुड़की बनी हुई तथा माध्वी—ये ग्यारह प्रकारकी मदिराएँ बतायी गयी हैं। (उपर्युक्त तीन प्रकारकी मदिराके ही ये ग्यारह भेद हैं।) इनमेंसे किसी भी मद्यको ब्राह्मण कभी न पीवे। यदि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञानवश इनमेंसे किसी एकको पी ले तो फिरसे अपना उपनयन-संस्कार कराकर तप्तकृच्छ्र-व्रतका आचरण करे।

जो सामने या परोक्षमें बलपूर्वक या चोरीसे दूसरोंके धनको ले लेता है, उसका यह कर्म विद्वान् पुरुषोंद्वारा स्तेय (चोरी) कहा गया है। मनु आदिने सुवर्णके मापकी परिभाषा इस प्रकार की है। विप्रवर! वह मान (माप) आगे कहे जानेवाले प्रायश्चित्तकी उक्तिका साधन है। अतः उसका वर्णन करता हूँ; सुनिये! झरोखेके छिद्रसे घरमें आयी हुई सूर्यकी जो किरणें हैं, उनमेंसे जो उत्पन्न सूक्ष्म धूलिकण उड़ता दिखायी देता है, उसे विद्वान् पुरुष त्रसरेणु कहते हैं। वही त्रसरेणुका माप है। आठ त्रसरेणुओंका एक निष्क होता है और तीन निष्कोंका एक राजसर्षप (राई) बताया गया है। तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप (पीली सरसों) होता है और छः गौरसर्षपोंका एक यव कहा जाता है। तीन यवका एक कृष्णल होता है। पाँच कृष्णलका एक माष (माशा) माना गया है। नारदजी! सोलह माशेके बराबर एक सुवर्ण होता है। यदि कोई मूर्खतासे सुवर्णके बराबर ब्राह्मणके धनका अर्थात् सोलह माशा सोनेका अपहरण कर लेता है तो उसे पूर्ववत् बारह वर्षोंतक कपाल और ध्वजके चिह्नोंसे रहित ब्रह्महत्या-व्रत करना चाहिये। गुरुजनों, यज्ञ करनेवाले धर्मनिष्ठ पुरुषों तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके सुवर्णको चुरा लेनेपर इस प्रकार प्रायश्चित्त करे। पहले उस पापके कारण बहुत पश्चात्ताप करे, फिर सम्पूर्ण शरीरमें घीका लेप करे और कंडेसे अपने शरीरको ढककर आग

लगाकर जल मरे। तभी वह उस चोरीसे मुक्त होता है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको चुरा ले और पश्चात्ताप होनेपर फिर उसे वहीं लौटा दे तो उसके लिये प्रायश्चित्तकी विधि मुझसे सुनिये। ब्रह्मर्षे! वह बारह दिनोंतक उपवासपूर्वक सान्तपन-व्रत करके शुद्ध होता है। रत्न, सिंहासन, मनुष्य, स्त्री, दूध देनेवाली गाय तथा भूमि आदि पदार्थ भी स्वर्णके ही समान माने गये हैं। इनकी चोरी करनेपर आधा प्रायश्चित्त कहा है। राजसर्षप (राई) बराबर सोनेकी चोरी करनेपर चार प्राणायाम करने चाहिये। गौरसर्षप बराबर स्वर्णका अपहरण कर लेनेपर विद्वान् पुरुष स्नान करके विधिपूर्वक ८००० गायत्रीका जप करे। जौ बराबर स्वर्णको चुरानेपर द्विज यदि प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे तो उससे शुद्ध होता है। कृष्णल बराबर स्वर्णकी चोरी करनेपर मनुष्य सान्तपन-व्रत करे। यदि एक माशाके बराबर सोना चुरा ले तो वह एक वर्षतक गोमूत्रमें पकाया हुआ जौ खाकर रहे तो शुद्ध होता है। मुनीश्वर! पूरे सोलह माशा सोनेकी चोरी करनेपर मनुष्य एकाग्रचित्त हो बारह वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे।

अब गुरुपत्नीगामी पुरुषोंके लिये प्रायश्चित्तका वर्णन किया जाता है। यदि मनुष्य अज्ञानवश माता अथवा सौतेली मातासे समागम कर ले तो लोगोंपर अपना पाप प्रकट करते हुए स्वयं ही अपने अण्डकोशको काट डाले। और हाथमें उस अण्डकोशको लिये हुए नैर्ऋत्य कोणमें चलता जाय। जाते समय मार्गमें कभी सुख-दु:खका विचार न करे। जो इस प्रकार किसी यात्रीकी ओर न देखते हुए प्राणान्त होनेतक चलता जाता है, वह पापसे शुद्ध होता है। अथवा अपने पापको बताते हुए किसी ऊँचे स्थानसे हवाके झोंकेके साथ कूद पड़े। यदि बिना विचारे अपने वर्णकी या अपनेसे उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ समागम कर ले तो एकाग्रचित्त हो बारह वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। द्विजश्रेष्ठ! जो बिना जाने हुए कई बार समान वर्ण या उत्तम वर्णवाली स्त्रीसे समागम कर ले तो वह कंडेकी आगमें जलकर शुद्धिको प्राप्त होता है। यदि वीर्यपातसे पहले ही माताके साथ समागमसे निवृत्त हो जाय तो ब्रह्महत्याका व्रत करे और यदि वीर्यपात हो जाय तो अपने शरीरको अग्निमें जला दे। यदि अपने वर्णकी तथा अपनेसे उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करनेवाला पुरुष वीर्यपातसे पहले ही निवृत्त हो जाय तो भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए नौ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। मनुष्य यदि कामसे मोहित होकर मौसी, बूआ, गुरुपत्नी, सास, चाची, मामी और पुत्रीसे समागम कर ले तो दो दिनतक समागम करनेपर उसे विधिपूर्वक ब्रह्महत्याका व्रत करना चाहिये और तीन दिनतक सम्भोग करनेपर वह आगमें जल जाय, तभी शुद्ध होता है, अन्यथा नहीं। मुनीश्वर! जो कामके अधीन हो चाण्डाली, पुष्कसी (भीलजातिकी स्त्री), पुत्रवधू, बहिन, मित्रपत्नी तथा शिष्यकी स्त्रीसे समागम करता है, वह छ: वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे[1]।

अब महापातकी पुरुषोंके साथ संसर्गका प्रायश्चित्त बतलाया जाता है। ब्रह्महत्यारे आदि चार प्रकारके महापातकियोंसे जिसके साथ जिस पुरुषका संसर्ग होता है, वह उसके लिये विहित प्रायश्चित्त व्रतका पालन करके निश्चय ही शुद्ध हो जाता है। जो बिना जाने पाँच राततक इनके साथ रह लेता है, उसे विधिपूर्वक प्राजापत्य कृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिये। बारह दिनोंतक उनके साथ संसर्ग हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त महासान्तपन-व्रत बताया गया है। और पंद्रह दिनोंतक महापातकियोंका साथ कर लेनेपर मनुष्य बारह दिनतक उपवास करे। एक मासतक संसर्ग करनेपर पराक-व्रत और तीन मासतक संसर्ग हो तो चान्द्रायण-व्रतका विधान है। छ: महीनेतक महापातकी मनुष्योंका संग करके मनुष्य दो चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करे। एक वर्षसे कुछ कम समयतक उनका सङ्ग करनेपर छ: महीनेतक चान्द्रायण-व्रतका पालन करे और यदि जान-बूझकर महापातकी पुरुषोंका सङ्ग किया जाय तो क्रमश: इन सबका प्रायश्चित्त ऊपर बताये हुए प्रायश्चित्तसे तीनगुना बताया गया है। मेढ़क, नेवला, कौआ, सूअर, चूहा, बिल्ली, बकरी, भेड़, कुत्ता और मुर्गा— इनमेंसे किसीका वध करनेपर ब्राह्मण अर्धकृच्छ्र-व्रतका आचरण करे और घोड़ेकी हत्या करनेवाला मनुष्य अतिकृच्छ्र-व्रतका पालन करे। हाथीकी हत्या करनेपर तप्तकृच्छ्र और गोहत्या करनेपर पराक-व्रत करनेका विधान है। यदि स्वेच्छासे जान-बूझकर गौओंका वध किया जाय तो मनीषी पुरुषोंने उसकी शुद्धिका

१. ये महापाप समाजमें प्राय: बहुत ही कम होते हैं, परंतु प्रायश्चित्त-विधानमें तो लाखों-करोड़ोंमेंसे एक भी मनुष्यसे यदि वैसा पाप बनता है तो उसका भी प्रायश्चित्त बताना चाहिये, इसीलिये शास्त्रका यह कठिन दण्ड-विधान है।

कोई भी उपाय नहीं देखा है। पीनेयोग्य वस्तु, शय्या, आसन, फूल, फल, मूल तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंकी चोरीके पापका शोधन करनेवाला प्रायश्चित्त पञ्चगव्यका पान कहा गया है। सूखे काठ, तिनके, वृक्ष, गुड़, चमड़ा, वस्त्र और मांस—इनकी चोरी करनेपर तीन रात उपवास करना चाहिये। टिटिहरी, चकवा, हंस, कारण्डव, उल्लू, सारस, कबूतर, जलमुर्गा, तोता, नीलकण्ठ, बगुला, सूँस और कछुआ इनमेंसे किसीको भी मारनेपर बारह दिनोंतक उपवास करना चाहिये। वीर्य, मल और मूत्र खा लेनेपर प्राजापत्य-व्रत करे। शूद्रका जूठा खानेपर तीन चान्द्रायण-व्रत करनेका विधान है। रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, उच्छिष्ट वस्तु आदिका स्पर्श कर लेनेपर वस्त्रसहित स्नान करे और घृत पीवे। नारदजी! इसके सिवा आठ सौ गायत्रीका जप करे, तब वह शुद्धचित्त होता है। ब्राह्मणों और देवताओंकी निन्दा सब पापोंसे बड़ा पाप है। विद्वानोंने जो-जो पाप महापातकके समान बताये हैं, उन सबका इसी प्रकार विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो भगवान् नारायणकी शरण लेकर प्रायश्चित्त करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

जो राग-द्वेष आदिसे मुक्त हो पापोंके लिये प्रायश्चित्त करता है, समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और भगवान् विष्णुके स्मरणमें तत्पर रहता है, वह महापातकोंसे अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त हो तो भी उसे सब पापोंसे मुक्त ही समझना चाहिये। क्योंकि वह भगवान् विष्णुके भजनमें लगा हुआ है। जो मानव अनादि, अनन्त, विश्वरूप तथा रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका चिन्तन करता है, वह करोड़ों पापोंसे मुक्त हो जाता है। साधु पुरुषोंके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुका स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा नमस्कार किया जाय तो वे सब पापोंका निश्चय ही नाश कर देते हैं। जो किसीके सम्पर्कसे अथवा मोहवश भी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उनके वैकुण्ठधाममें जाता है। नारदजी! भगवान् विष्णुके एक बार स्मरण करनेसे सम्पूर्ण क्लेशोंकी राशि नष्ट हो जाती है तथा उसी मनुष्यको स्वर्गादि भोगोंकी प्राप्ति होती है—यह स्वयं ही अनुमान हो जाता है। मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। जो लोग इसे पाते हैं, वे धन्य हैं। मानव-जन्म मिलनेपर भी भगवान्की भक्ति और भी दुर्लभ बतायी गयी है, इसलिये बिजलीकी तरह चञ्चल (क्षणभङ्गुर) एवं दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करना चाहिये। वे भगवान् ही अज्ञानी जीवोंको अज्ञानमय बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। भगवान्के भजनसे सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जनार्दनके पूजित होनेपर मनुष्य परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवान्की आराधनामें लगे हुए मनुष्योंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक सनातन पुरुषार्थ

अवश्य सिद्ध होते हैं। इसमें संशय नहीं है[1]।

अरे! पुत्र, स्त्री, घर, खेत, धन और धान्य नाम धारण करनेवाली मानवी वृत्तिको पाकर तू घमण्ड न कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, परापवाद और निन्दाका सर्वथा त्याग करके भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिका भजन कर। सारे व्यापार छोड़कर भगवान् जनार्दनकी आराधनामें लग जा। यमपुरीके वे वृक्ष समीप ही दिखायी देते हैं। जबतक बुढ़ापा नहीं आता, मृत्यु भी जबतक नहीं आ पहुँचती है और इन्द्रियाँ जबतक शिथिल नहीं हो जातीं तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। यह शरीर नाशवान् है। बुद्धिमान् पुरुष इसपर कभी विश्वास न करे। मौत सदा निकट रहती है। धन-वैभव अत्यन्त चञ्चल है और शरीर कुछ ही समयमें मृत्युका ग्रास बन जानेवाला है। अत: अभिमान छोड़ दे। महाभाग! संयोगका अन्त वियोग ही है। यहाँ सब कुछ क्षणभङ्गुर है— यह जानकर भगवान् जनार्दनकी पूजा कर। मनुष्य आशासे कष्ट पाता है। उसके लिये मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करता है, वह महापातकी होनेपर भी उस परम धामको जाता है, जहाँ जाकर किसीको शोक नहीं होता। साधुशिरोमणे! सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त यज्ञ और अङ्गोंसहित सब वेद भी भगवान् नारायणके पूजनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते[2]। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिसे वञ्चित हैं, उन्हें वेद, यज्ञ और शास्त्रोंसे क्या लाभ हुआ? उन्होंने तीर्थोंकी सेवा करके क्या पाया तथा उनके तप और व्रतसे भी क्या होनेवाला है? जो अनन्तस्वरूप, निरीह, ॐकारबोध्य, वरेण्य, वेदान्तवेद्य तथा संसाररूपी रोगके वैद्य भगवान् विष्णुका यजन करते हैं, वे मनुष्य उन्हीं भगवान् अच्युतके वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो अनादि, आत्मा, अनन्तशक्तिसम्पन्न, जगत्‌के आधार, देवताओंके आराध्य तथा ज्योति:स्वरूप परम पुरुष भगवान् अच्युतका स्मरण करता है, वह नर अपने नित्यसखा नारायणको प्राप्त कर लेता है।

---

१. यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वित:॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्पर:। महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै:॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यत:। नारायणमनाद्यन्तं विश्वाकारमनामयम्॥
यस्तु संस्मरते मर्त्य: स मुक्त: पापकोटिभि:। स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यात: प्रणमितोऽपि वा॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमन: सताम्। सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्त: स प्रयाति हरे: पदम्। सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यन्ति क्लेशसंचया:॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते। मानुषं दुर्लभं जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर॥
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्तिता। तस्मात्तडिल्लतालोलं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्॥
हरिं सम्पूजयेद् भक्त्या पशुपाशविमोचनम्। सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मन:शुद्धिश्च जायते॥
परं मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने। धर्मार्थकाममोक्षाख्या: पुरुषार्था: सनातना:॥
हरिपूजापराणां तु सिध्यन्ति नात्र संशय:। (ना० पूर्व० ३०। ९२—१०२)

२. सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदाश्च सत्तम॥
नारायणार्चनस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम्। (ना० पूर्व० ३०। ११०-१११)

## यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन एवं कल्पान्तरमें भी कर्मोंके भोगका प्रतिपादन

**श्रीसनकजी बोले—**ब्रह्मन्! सुनिये। मैं अत्यन्त दुर्गम यमलोकके मार्गका वर्णन करता हूँ। वह पुण्यात्माओंके लिये सुखद और पापियोंके लिये भयदायक है। मुनीश्वर! प्राचीन ज्ञानी पुरुषोंने यमलोकके मार्गका विस्तार छियासी हजार योजन बताया है। जो मनुष्य यहाँ दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं; और जो धर्मसे हीन हैं, वे अत्यन्त पीड़ित होकर बड़े दुःखसे यात्रा करते हैं। पापी मनुष्य उस मार्गपर दीनभावसे जोर-जोरसे रोते-चिल्लाते जाते हैं—वे अत्यन्त भयभीत और नंगे होते हैं। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं। यमराजके दूत चाबुक आदिसे तथा अनेक प्रकारके आयुधोंसे उनपर आघात करते रहते हैं। और वे इधर-उधर भागते हुए बड़े कष्टसे उस पथपर चल पाते हैं। वहाँ कहीं कीचड़ है, कहीं जलती हुई आग है, कहीं तपायी हुई बालू बिछी है, कहीं तीखी धारवाली शिलाएँ हैं। कहीं काँटेदार वृक्ष हैं और कहीं

ऐसे-ऐसे पहाड़ हैं, जिनकी शिलाओंपर चढ़ना अत्यन्त दुःखदायक होता है। कहीं काँटोंकी बहुत बड़ी बाड़ लगी हुई है, कहीं-कहीं कन्दरामें प्रवेश करना पड़ता है। उस मार्गमें कहीं कंकड़ हैं, कहीं ढेले हैं और कहीं सुईके समान काँटे बिछे हैं तथा कहीं बाघ गरजते रहते हैं। नारदजी! इस प्रकार पापी मनुष्य—भाँति-भाँतिके क्लेश उठाते हुए यात्रा करते हैं। कोई पाशमें बँधे होते हैं, कोई अङ्कुशोंसे खींचे जाते हैं और किन्हींकी पीठपर अस्त्र-शस्त्रोंकी मार पड़ती रहती है। इस दुर्दशाके साथ पापी उस मार्गपर जाते हैं। किन्हींकी नाक छेदकर उसमें नकेल डाल दी जाती है और उसीको पकड़कर खींचा जाता है। कोई आँतोंसे बँधे रहते हैं और कुछ पापी अपने शिश्नके अग्रभागसे लोहेका भारी भार ढोते हुए यात्रा करते हैं। कोई नासिकाके अग्रभागद्वारा लोहेका दो भार ढोते हैं और कोई पापी दोनों कानोंसे दो लौहभार वहन करते हुए उस मार्गपर चलते हैं। कोई अत्यन्त उच्छ्वास लेते हैं और किन्हींकी आँखें ढक दी जाती हैं। उस मार्गमें कहीं विश्रामके लिये छाया और पीनेके लिये जलतक नहीं है। अतः पापी लोग जानकर या अनजानमें किये हुए अपने पापकर्मोंके लिये शोक करते हुए अत्यन्त दुःखसे यात्रा करते हैं।

नारदजी! जो उत्तम बुद्धिवाले मानव धर्मनिष्ठ और दानशील होते हैं, वे अत्यन्त सुखी होकर धर्मराजके लोककी यात्रा करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! अन्न देनेवाले स्वादिष्ट अन्नका भोजन करते हुए जाते हैं। जिन्होंने जल दान किया है, वे भी अत्यन्त सुखी होकर उत्तम दूध पीते हुए यात्रा करते हैं।

मट्ठा और दही दान करनेवाले तत्सम्बन्धी भोग प्राप्त करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! घृत, मधु और दूधका दान करनेवाले पुरुष सुधापान करते हुए धर्ममन्दिरको जाते हैं। साग देनेवाला खीर खाता है और दीप देनेवाला सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर! वस्त्र-दान करनेवाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको

जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके घर जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह द्विज देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादानमें तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओंसे युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म)-का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा? यह शरीर यातनारूप (दु:खरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्मघाती समझना चाहिये। सब भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान् और विद्वानोंमें अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ हैं। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमें कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है इसमें संशय नहीं है। तुम लोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है

तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्‌गतिको पहुँचा देते हैं और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते हैं। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयंकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पड़ती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयंकर आँखें बावड़ीके समान जान पड़ती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हें देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते हैं और अपने-अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते हैं। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे, ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया है। पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुम लोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये जैसा पाप तुमने किया है, उसीके अनुसार कर्मवश तुम यहाँ आ पहुँचे हो। अब अत्यन्त दु:खी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं सोचो, जब पहले तुमने पापाचार किया था, उस समय यह भी क्यों नहीं विचार लिया कि यमराज इसका दण्ड अवश्य देंगे। कोई दरिद्र हो या धनी, मूर्ख हो या पण्डित और कायर हो या वीर—यमराज सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले हैं।' चित्रगुप्तका यह वचन सुनकर वे पापी भयभीत हो अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले क्रूर, क्रोधी और भयंकर दूत इन पापियोंको बलपूर्वक पकड़कर नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापोंका फल भोगकर अन्तमें शेष पापके फलस्वरूप वे भूतलपर आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

**नारदजीने कहा**—भगवन्! मेरे मनमें एक संदेह पैदा हो गया है। आपने ही कहा है कि जो लोग ग्राम-दान आदि पुण्यकर्म करते हैं, उन्हें कोटिसहस्र कल्पोंतक उनका महान् भोग प्राप्त होता रहता है। दूसरी ओर यह भी आपने बताया है कि प्राकृत प्रलयमें सम्पूर्ण लोकोंका नाश हो जाता है और एकमात्र भगवान् विष्णु ही शेष रह जाते हैं। अत: मुझे यह संशय हुआ है कि प्रलयकालतक जीवके पुण्य और पापभोगकी क्या समाप्ति नहीं होती? आप इस संदेहका निवारण करने योग्य हैं।

**श्रीसनकजी बोले**—महाप्राज्ञ! भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, परमप्रकाशस्वरूप और सनातन पुरुष हैं। वे विशुद्ध, निर्गुण, नित्य और माया-मोहसे रहित हैं। परमानन्दस्वरूप श्रीहरि निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंमें व्यक्त होकर भेदवान्-से दिखायी देते हैं। वे ही मायाके संयोगसे सम्पूर्ण जगत्‌का कार्य करते हैं। वे ही श्रीहरि ब्रह्माजीके रूपसे सृष्टि और विष्णुरूपसे जगत्‌का पालन करते हैं और अन्तमें भगवान् रुद्रके रूपसे वे ही सबको अपना ग्रास बनाते हैं। यह निश्चित सत्य है। प्रलयकाल व्यतीत होनेपर भगवान् जनार्दनने शेषशय्यासे उठकर ब्रह्माजीके रूपसे सम्पूर्ण चराचर विश्वकी

पूर्व कल्पोंके अनुसार सृष्टि की है। विप्रवर! पूर्व कल्पोंमें जो-जो स्थावर-जङ्गम जीव जहाँ-जहाँ स्थित थे, नूतन कल्पमें ब्रह्माजी उस सम्पूर्ण जगत्‌की पूर्ववत् सृष्टि कर देते हैं। अत: साधुशिरोमणे! किये हुए पापों और पुण्योंका अक्षय फल अवश्य भोगना पड़ता है (प्रलय हो जानेपर जीवके जिन कर्मोंका फल शेष रह जाता है, दूसरे कल्पमें नयी सृष्टि होनेपर वह जीव पुन: अपने पुरातन कर्मोंका भोग भोगता है।) कोई भी कर्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे नष्ट नहीं होता। अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है[1]।

## पापी जीवोंके स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेने और दु:ख भोगनेकी अवस्थाका वर्णन

**श्रीसनकजी कहते हैं**—इस प्रकार कर्मपाशमें बँधे हुए जीव स्वर्ग आदि पुण्यस्थानोंमें पुण्यकर्मोंका फल भोगकर तथा नरक-यातनाओंमें पापोंका अत्यन्त दु:खमय फल भोगकर क्षीण हुए कर्मोंके अवशेष भागसे इस लोकमें आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और पर्वत तथा तृण—ये स्थावरके नामसे विख्यात हैं। स्थावर जीव महामोहसे आच्छन्न होते हैं। स्थावर योनियोंमें उनकी स्थिति इस प्रकार होती है। पहले वे बीजरूपसे पृथ्वीमें बोये जाते हैं। फिर जलसे सींचनेके पश्चात् मूलभावको प्राप्त होते हैं। उस मूलसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है। अङ्कुरसे पत्ते, तने और पतली डाली आदि प्रकट होते हैं। उन शाखाओंसे कलियाँ और कलियोंसे फूल प्रकट होते हैं। उन फूलोंसे ही वे धान्य वृक्ष फलवान् होते हैं। स्थावर योनिमें जो बड़े-बड़े वृक्ष होते हैं, वे भी दीर्घकालतक काटने, दावानलमें जलने तथा सर्दी-गरमी लगने आदिके महान् दु:खका अनुभव करके मर जाते हैं। तदनन्तर वे जीव कीट आदि योनियोंमें उत्पन्न होकर सदा अतिशय दु:ख उठाते रहते हैं। अपनेसे बलवान् प्राणियोंद्वारा पीड़ा प्राप्त होनेपर वे उसका निवारण करनेमें असमर्थ होते हैं। शीत और वायु आदिके भारी क्लेश भोगते हैं और नित्य भूखसे पीड़ित हो मल-मूत्र आदिमें विचरते हुए दु:ख-पर-दु:ख उठाते रहते हैं। तदनन्तर इसी क्रमसे पशुयोनिमें आकर अपनेसे बलवान् पशुओंकी बाधासे भयभीत रहते हुए वे जीव अकारण भी भारी उद्वेगसे कष्ट पाते रहते हैं। उन्हें हवा, पानी आदिका महान् कष्ट सहन करना पड़ता है। अण्डज (पक्षी)-की योनिमें भी वे कभी वायु पीकर रहते हैं और कभी मांस तथा अपवित्र वस्तुएँ खाते हैं। ग्रामीण पशुओंकी योनिमें आनेपर भी उन्हें कभी भार ढोने, रस्सी आदिसे बाँधे जाने, डंडोंसे पीटे जाने तथा हल आदि धारण करनेके समस्त दु:ख भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार बहुत-सी योनियोंमें क्रमश: भ्रमण करके वे जीव मनुष्य-जन्म पाते हैं। कोई पुण्यविशेषके कारण बिना क्रमके भी शीघ्र मनुष्य-योनि प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य-जन्म पाकर भी नीची जातियोंमें नीच पुरुषोंकी टहल बजानेवाले, दरिद्र, अङ्गहीन तथा अधिक अङ्गवाले इत्यादि होकर वे कष्ट और अपमान उठाते हैं तथा

१. नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ (ना० पूर्व० ३१। ६९-७०)

अत्यन्त दुःखसे पूर्ण ज्वर, ताप, शीत, गुल्मरोग, पादरोग, नेत्ररोग, सिरदर्द, गर्भ-वेदना तथा पसलीमें दर्द होने आदिके भारी कष्ट भोगते हैं।

मनुष्य-जन्ममें भी जब स्त्री और पुरुष मैथुन करते हैं, उस समय वीर्य निकलकर जब जरायु (गर्भाशय)-में प्रवेश करता है, उसी समय जीव अपने कर्मोंके वशीभूत हो उस वीर्यके साथ गर्भाशयमें प्रविष्ट हो रज-वीर्यके कललमें स्थित होता है। वह वीर्य जीवके प्रवेश करनेके पाँच दिन बाद कललरूपमें परिणत होता है। फिर पंद्रह दिनके बाद वह पलल (मांसपिण्डकी-सी स्थिति) भागको प्राप्त हो एक महीनेमें प्रादेशमात्र[1] बड़ा हो जाता है। तबसे लेकर पूर्ण चेतनाका अभाव होनेपर भी माताके उदरमें दुस्सह ताप और क्लेश होनेसे वह एक स्थानपर स्थिर न रह सकनेके कारण वायुकी प्रेरणासे इधर-उधर भ्रमण करता है। फिर दूसरा महीना पूर्ण होनेपर वह मनुष्यके-से आकारको पाता है। तीसरे महीनेकी पूर्णता होनेपर उसके हाथ-पैर आदि अवयव प्रकट होते हैं और चार महीने बीत जानेपर उसके सब अवयवोंकी सन्धिका भेद ज्ञात होने लगता है। पाँच महीनेपर अँगुलियोंमें नख प्रकट होते हैं। छः मास पूरे हो जानेपर नखोंकी सन्धि स्पष्ट हो जाती है। उसकी नाभिमें जो नाल होती है, उसीके द्वारा अन्नका रस पाकर वह पुष्ट होता है। उसके सारे अङ्ग अपवित्र मल-मूत्र आदिसे भीगे रहते हैं। जरायुमें उसका शरीर बँधा होता है और वह माताके रक्त, हड्डी, कीड़े, वसा, मज्जा, स्नायु और केश आदिसे दूषित तथा घृणित शरीरमें निवास करता है। माताके खाये हुए कड़वे, खट्टे, नमकीन तथा अधिक गरम भोजनसे वह अत्यन्त दग्ध होता रहता है। इस दुरवस्थामें अपने-आपको देखकर वह देहधारी जीव पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके प्रभावसे पहलेके अनुभव किये हुए नरकके दुःखोंको भी स्मरण करता और आन्तरिक दुःखसे अधिकाधिक जलने लगता है। 'अहो! मैं बड़ा पापी हूँ! कामसे अन्धा होनेके कारण परायी स्त्रियोंको हरकर उनके साथ सम्भोग करके मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं। उन पापोंसे अकेला मैं ही ऐसे-ऐसे नरकोंका कष्ट भोगता रहा। फिर स्थावर आदि योनियोंमें महान् दुःख भोगकर अब मानवयोनिमें आया हूँ। आन्तरिक दुःख तथा बाह्य संतापसे दग्ध हो रहा हूँ। अहो! देहधारियोंको कितना दुःख उठाना पड़ता है। शरीर पापसे ही उत्पन्न होता है। इसलिये पाप नहीं करना चाहिये। मैंने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये दूसरोंका धन चुराया है। उसी पापसे आज गर्भकी झिल्लीमें बँधा हुआ जल रहा हूँ। पूर्वजन्ममें दूसरोंका धन देखकर ईर्ष्यावश जला करता था; इसीलिये मैं पापी जीव इस समय भी गर्भकी आगसे निरन्तर दग्ध हो रहा हूँ। मन, वाणी और शरीरसे मैंने दूसरोंको बहुत पीड़ा दी थी। उस पापसे आज मैं अकेला ही अत्यन्त दुःखी होकर जल रहा हूँ।' इस प्रकार वह गर्भस्थ जीव नाना प्रकारसे विलाप करके स्वयं ही अपने-आपको इस प्रकार आश्वासन देता है—'अब मैं जन्म लेनेके बाद सत्सङ्ग तथा भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण करके विशुद्ध-चित्त हो सत्कर्मोंका अनुष्ठान करूँगा और सम्पूर्ण जगत्‌के अन्तरात्मा तथा अपनी शक्तिके प्रभावसे अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले सत्य-ज्ञानानन्दस्वरूप लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके उन युगल-चरणारविन्दोंका भक्तिपूर्वक पूजन करूँगा। जिनकी समस्त देवता,

१. अँगूठेकी नोकसे लेकर तर्जनीकी नोकतककी लम्बाईको 'प्रादेश' कहते हैं।

असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, मुनि तथा किन्नरसमुदाय आराधना करते रहते हैं। भगवान्‌के वे चरण दुस्सह संसार-बन्धनके मूलोच्छेदके हेतु हैं। वेदोंके रहस्यभूत उपनिषदोंद्वारा उनकी महिमाका स्पष्ट ज्ञान होता है। वे ही सम्पूर्ण जगत्‌के आश्रय हैं। मैं उन्हीं भगवच्चरणारविन्दोंको अपने हृदयमें रखकर अत्यन्त दुःखसे भरे हुए संसारको लाँघ जाऊँगा।' इस प्रकार वह मनमें भावना करता है।

नारदजी! जब माताके प्रसवका समय आता है, उस समय वह गर्भस्थ जीव वायुसे अत्यन्त पीड़ित हो माताको भी दुःख देता हुआ कर्मपाशसे बँधकर जबरदस्ती योनिमार्गसे निकलता है। निकलते समय सम्पूर्ण नरक-यातनाओंका भोग उसे एक ही साथ भोगना पड़ता है। बाहरकी वायुका स्पर्श होते ही उसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। फिर वह जीव बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है। उसमें भी अपने ही मल-मूत्रमें उसका शरीर लिपटा रहता है। आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखोंसे पीड़ित

होकर भी वह कुछ नहीं बता सकता। उसके रोनेपर लोग यह समझते हैं कि यह भूख-प्याससे कष्ट पा रहा है, इसे दूध आदि देना चाहिये और इसी मान्यताके अनुसार वे लोग प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार वह अनेक प्रकारके शारीरिक कष्ट-भोगका अनुभव करता है। मच्छरों और खटमलोंके काट लेनेपर वह उन्हें हटानेमें असमर्थ होता है। शैशवसे बाल्यावस्थामें पहुँचकर वहाँ माता-पिता और गुरुकी डाँट सुनता और चपत खाता है। वह बहुत-से निरर्थक कार्योंमें लगा रहता है। उन कार्योंके सफल न होनेपर वह मानसिक कष्ट पाता है। इस प्रकार बाल्य-जीवनमें अनेक प्रकारके कष्टोंका अनुभव करता है। तत्पश्चात् तरुणावस्थामें आनेपर जीव धनोपार्जन करते हैं। कमाये हुए धनकी रक्षा करनेमें लगे रहते हैं। उस धनके नष्ट या खर्च हो जानेपर अत्यन्त दुःखी होते हैं। मायासे मोहित रहते हैं। उनका अन्तःकरण काम-क्रोधादिसे दूषित हो जाता है। ये सदा दूसरोंके गुणोंमें भी दोष ही देखा करते हैं। पराये धन और परायी स्त्रीको हड़प लेनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। पुत्र, मित्र और स्त्री आदिके भरण-पोषणके लिये क्या उपाय किया जाय? अब इस बढ़े हुए कुटुम्बका कैसे निर्वाह होगा? मेरे पास मूल-धन नहीं है (अतः व्यापार नहीं हो सकता), इधर वर्षा भी नहीं हो रही है (अतः खेतीसे क्या आशा की जाय), मेरी घरवालीके बच्चे अभी बहुत छोटे हैं (अतः उनसे काम-काजमें कोई मदद नहीं मिल सकती), इधर मैं भी रोगी हो चला और निर्धन ही रह गया। मेरे विचार न करनेसे खेती-बारी नष्ट हो गयी। बच्चे रोज रोया करते हैं। मेरा घर टूट-फूट गया। कोई जीविका भी नहीं मिलती। राजाकी ओरसे भी अत्यन्त दुःसह दुःख प्राप्त हो रहा है। शत्रु रोज मेरा पीछा करते हैं। मैं इन्हें कैसे जीतूँगा। इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल तथा अपने दुःखको दूर करनेमें

असमर्थ हो, वे कहते हैं—विधाताको धिक्कार है। उसने मुझ भाग्यहीनको पैदा ही क्यों किया? इसी तरह जीव जब वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है तो उसका बल घटने लगता है। बाल सफेद हो जाते हैं और जरावस्थाके कारण सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। अनेक प्रकारके रोग उसे पीड़ा देने लगते हैं। उसका एक-एक अङ्ग काँपता रहता है। दमा और खाँसी आदिसे वह पीड़ित होता है। कीचड़से मलिन हुई आँखें चञ्चल एवं कातर हो उठती हैं। कफसे कण्ठ भर जाता है। पुत्र और पत्नी आदि भी उसे ताड़ना करते हैं। मैं कब मर जाऊँगा—इस चिन्तासे वह व्याकुल हो उठता है और सोचने लगता है कि मेरे मर जानेके बाद यदि दूसरोंने मेरा धन हड़प लिया तो मेरे पुत्र आदिका जीवन-निर्वाह कैसे होगा? इस प्रकार ममता और दुःखमें डूबा हुआ वह लंबी साँस खींचता है और अपनी आयुमें किये हुए कर्मोंको बार-बार स्मरण करता है तथा क्षण-क्षणमें भूल जाता है। फिर जब मृत्युकाल निकट आता है तो वह रोगसे पीड़ित हो आन्तरिक संतापसे व्याकुल हो जाता है। मेरे कमाये हुए धन आदि किसके अधिकारमें होंगे—इस चिन्तामें पड़कर उसकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। कण्ठ घुरघुराने लगता है और इस दशामें शरीरसे प्राण निकल जाते हैं। फिर यमदूतोंकी डाँट-फटकार सुनता हुआ वह जीव पाशमें बँधकर पूर्ववत् नरक आदिके कष्ट भोगता है। जिस प्रकार सुवर्ण आदि धातु तबतक आगमें तपाये जाते हैं, जबतक कि उनकी मैल नहीं जल जाती। उसी प्रकार सब जीवधारी कर्मोंके क्षय होनेतक अत्यन्त कष्ट भोगते हैं।

द्विजश्रेष्ठ! इसलिये संसाररूपी दावानलके तापसे संतप्त मनुष्य परम ज्ञानका अभ्यास करे। ज्ञानसे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञानशून्य मनुष्य पशु कहे गये हैं। अतः संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये परम ज्ञानका अभ्यास करे[१]। सब कर्मोंको सिद्ध करनेवाले मानव-जन्मको पाकर भी जो भगवान् विष्णुकी सेवा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता जगदीश्वर भगवान् विष्णुके रहते हुए भी मनुष्य ज्ञानरहित होकर नरकोंमें पकाये जाते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। जिससे मल-मूत्रका स्रोत बहता रहता है, ऐसे इस क्षणभङ्गुर शरीरमें अज्ञानी पुरुष महान् मोहसे आच्छन्न होनेके कारण नित्यताकी भावना करते हैं। जो मनुष्य मांस तथा रक्त आदिसे भरे हुए उस घृणित शरीरको पाकर संसार-बन्धनका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुका भजन नहीं करता, वह अत्यन्त पातकी है। ब्रह्मन्! मूर्खता या अज्ञान अत्यन्त कष्टकारक है, महान् दुःख देनेवाला है, परंतु भगवान्‌के ध्यानमें लगा हुआ चाण्डाल भी ज्ञान प्राप्त करके महान् सुखी हो जाता है। मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। देवता भी उसके लिये प्रार्थना करते हैं। अतः उसे पाकर विद्वान् पुरुष परलोक सुधारनेका यत्न करे[२]। जो अध्यात्मज्ञानसे सम्पन्न तथा भगवान्‌की आराधनामें तत्पर रहनेवाले हैं, वे पुनरावृत्तिरहित परम धामको पा लेते हैं। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, जिनसे चेतना पाता है और जिनमें ही इसका लय होता है, वे भगवान् विष्णु ही संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जो अनन्त परमेश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं, उन देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा-अर्चा करके मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

---

१. तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम। अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः। तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत्॥
(ना० पूर्व० ३२। ३९-४०)

२. दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि। तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥
(ना० पूर्व० ३२। ४७)

# मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण

**नारदजीने पूछा**—भगवन्! कर्मसे देह मिलता है। देहधारी जीव कामनासे बँधता है। कामसे वह लोभके वशीभूत होता है और लोभसे क्रोधके अधीन हो जाता है। क्रोधसे धर्मका नाश होता है। धर्मके नाशसे बुद्धि बिगड़ जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य पुनः पाप करने लगता है। अतः देह ही पापकी जड़ है तथा उसीकी पापकर्ममें प्रवृत्ति होती है, इसलिये मनुष्य इस देहके भ्रमको त्यागकर जिस प्रकार मोक्षका भागी हो सके, वह उपाय बताइये।

**श्रीसनकजीने कहा**—महाप्राज्ञ! सुव्रत! जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं, महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व जिनके प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं, उन रोग-शोकसे रहित सर्वव्यापी भगवान् नारायणको ही मोक्षदाता जानना चाहिये। सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनसे भिन्न नहीं है तथा जो जरा और मृत्युसे परे हैं, उस तेज प्रभाववाले भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य दुःखसे मुक्त हो जाता है। जो विकाररहित, अजन्मा, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निरञ्जन, ज्ञानरूप तथा सच्चिदानन्दमय हैं, ब्रह्मा आदि देवता जिनके अवतारस्वरूपोंकी सदा आराधना करते हैं, वे श्रीहरि ही सनातन स्थान (परम धाम या मोक्ष)-के दाता हैं। ऐसा जानना चाहिये। जो निर्गुण होकर भी सम्पूर्ण गुणोंके आधार हैं, लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करते हैं और सबके हृदयाकाशमें विराजमान तथा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो सबके आधार हैं, उन भगवान्की शरणमें जाना चाहिये। जो कल्पके अन्तमें सबको अपने भीतर समेटकर स्वयं जलमें शयन करते हैं, वेदार्थके ज्ञाता तथा कर्मकाण्डके विद्वान् नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा जिनका यजन करते हैं, वे ही भगवान् कर्मफलके दाता हैं और निष्कामभावसे कर्म करनेवालोंको वे ही मोक्ष देते हैं। जो ध्यान, प्रणाम अथवा भक्तिपूर्वक पूजन करनेपर अपना सनातन स्थान वैकुण्ठ प्रदान करते हैं, उन दयालु भगवान्की आराधना करनी चाहिये। मुनीश्वर! जिनके चरणारविन्दोंकी पूजा करके देहाभिमानी जीव भी शीघ्र ही अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं, उन्हींको ज्ञानीजन पुरुषोत्तम मानते हैं। जो आनन्दस्वरूप, जरारहित, परमज्योतिर्मय, सनातन एवं परात्पर ब्रह्म हैं, वही भगवान् विष्णुका सुप्रसिद्ध परम पद है। जो अद्वैत, निर्गुण, नित्य, अद्वितीय, अनुपम, परिपूर्ण तथा ज्ञानमय ब्रह्म है, उसीको साधु पुरुष मोक्षका साधन मानते हैं। जो योगी पुरुष योगमार्गकी विधिसे ऐसे परम तत्त्वकी उपासना करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करनेवाला, शम-दम आदि गुणोंसे युक्त और काम आदि दोषोंसे रहित है, वह योगी परम पदको पाता है।

**नारदजीने पूछा**—वक्ताओंमें श्रेष्ठ! किस कर्मसे योगियोंके योगकी सिद्धि होती है? वह उपाय यथार्थरूपसे मुझे बताइये।

**श्रीसनकजीने कहा**—तत्त्वार्थका विचार करनेवाले ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि परम मोक्ष ज्ञानसे ही प्राप्त होने योग्य है। उस ज्ञानका मूल

है भक्ति और भक्ति प्राप्त होती है (भगवदर्थ) कर्म करनेवालोंको। भक्तिका लेशमात्र होनेसे भी अक्षय परम धर्म सम्पन्न होता है। उत्कृष्ट श्रद्धासे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। सब पापोंका नाश होनेपर निर्मल बुद्धिका उदय होता है। वह निर्मल बुद्धि ही ज्ञानी पुरुषोंद्वारा ज्ञानके नामसे बतायी गयी है। ज्ञानको मोक्ष देनेवाला कहा गया है। वैसा ज्ञान योगियोंको होता है। कर्मयोग और ज्ञानयोग—इस प्रकार दो प्रकारका योग कहा गया है। कर्मयोगके बिना मनुष्योंका ज्ञानयोग सिद्ध नहीं होता; अतः क्रिया (कर्म)-योगमें तत्पर होकर श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण, भूमि, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय तथा चित्र नामवाली—ये भगवान् केशवकी आठ प्रतिमाएँ हैं। इनमें भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। अतः मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरोंको पीड़ा न देते हुए भक्तिभावसे संयुक्त हो सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी पूजा करे। अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ईर्ष्याका त्याग तथा दया—ये सद्गुण ज्ञानयोग और कर्मयोग—दोनोंमें समानरूपसे आवश्यक हैं[1]। यह चराचर विश्व सनातन भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है। ऐसा मनसे निश्चय करके उक्त दोनों योगोंका अभ्यास करे। जो मनीषी पुरुष समस्त प्राणियोंको अपने आत्माके ही समान मानते हैं, वे ही देवाधिदेव चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुके परम भावको जानते हैं। जो असूया (दूसरोंके दोष देखने)-में संलग्न हो तपस्या, पूजा और ध्यानमें प्रवृत्त होता है, उसकी वह तपस्या, पूजा और ध्यान सब व्यर्थ होते हैं। इसलिये शम, दम आदि गुणोंके साधनमें लगकर विधिपूर्वक क्रियायोगमें तत्पर हो मनुष्य अपनी मुक्तिके लिये सर्वस्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा करे। जो सम्पूर्ण लोकोंके हितसाधनमें तत्पर हो मन, वाणी और क्रियाद्वारा देवेश्वर भगवान् विष्णुका भलीभाँति पूजन करता है, जो जगत्‌के कारणभूत, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वपापहारी सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी स्तोत्र आदिके द्वारा स्तुति करता है, वह कर्मयोगी कहा जाता है। उपवास आदि व्रत, पुराणश्रवण आदि सत्कर्म तथा पुष्प आदि सामग्रियोंसे जो भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, उसे क्रियायोग कहा गया है। इस प्रकार जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखकर क्रियायोगमें मन लगानेवाले हैं, उनके पूर्वजन्मोंके किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंके नष्ट होनेसे जिसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है, वह उत्तम ज्ञानकी इच्छा रखता है; क्योंकि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। अब मैं तुम्हें ज्ञान-प्राप्तिका उपाय बतलाता हूँ।

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रार्थविशारद साधुपुरुषोंके सहयोगसे इस चराचर विश्वमें स्थित नित्य और अनित्य वस्तुका भलीभाँति विचार करे। संसारके सभी पदार्थ अनित्य हैं। केवल भगवान् श्रीहरि नित्य माने गये हैं। अतः अनित्य वस्तुओंका परित्याग करके नित्य श्रीहरिका ही आश्रय लेना चाहिये। इहलोक और परलोकके जितने भोग हैं, उनकी ओरसे विरक्त होना चाहिये। जो भोगोंसे विरक्त नहीं होता, वह संसारमें फँस जाता है। जो मानव जगत्‌के अनित्य पदार्थोंमें आसक्त होता है, उसके संसार-बन्धनका नाश कभी नहीं होता। अतः शम, दम आदि गुणोंसे सम्पन्न हो मुक्तिकी इच्छा रखकर ज्ञान-प्राप्तिके लिये साधन करे। जो शम (दम,

१. अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयोः समाः॥

(ना० पूर्व० ३३। ३५)

तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान) आदि गुणोंसे शून्य है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। जो राग-द्वेषसे रहित, शमादि गुणोंसे सम्पन्न तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर है, उसीको 'मुमुक्षु' कहते हैं। इन चार (नित्यानित्यवस्तुविचार, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—) साधनोंसे मनुष्य विशुद्धबुद्धि कहा जाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखते हुए सदा

सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका ध्यान करे। ब्रह्मन्! क्षर-अक्षर (जड-चेतन) स्वरूप सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके भगवान् नारायण विराजमान हैं। ऐसा जो जानता है, उसका ज्ञान योगज माना गया है। अतः मैं योगका उपाय बतलाता हूँ। जो संसार-बन्धनको दूर करनेवाला है।

पर और अपर-भेदसे आत्मा दो प्रकारका कहा गया है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि दो ब्रह्म जानने योग्य हैं। पर आत्मा अथवा परब्रह्मको निर्गुण बताया गया है तथा अपर आत्मा या अपरब्रह्म अहंकारयुक्त (जीवात्मा) कहा गया है। इन दोनोंके अभेदका ज्ञान 'ज्ञानयोग' कहलाता है। इस पाञ्चभौतिक शरीरके भीतर हृदयदेशमें जो साक्षीरूपमें स्थित है, उसे साधु पुरुषोंने अपरात्मा कहा है तथा परमात्मा पर (श्रेष्ठ) माने गये हैं। शरीरको क्षेत्र कहते हैं। जो क्षेत्रमें स्थित आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। परमात्मा अव्यक्त, शुद्ध एवं सर्वत्र परिपूर्ण कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! जब जीवात्मा और परमात्माके अभेदका ज्ञान हो जाता है, तब अपरात्माके बन्धनका नाश होता है। परमात्मा एक, शुद्ध, अविनाशी, नित्य एवं जगन्मय हैं। वे मनुष्योंके बुद्धिभेदसे भेदवान्-से दिखायी देते हैं। ब्रह्मन्! उपनिषदोंद्वारा वर्णित जो एक अद्वितीय सनातन परब्रह्म परमात्मा हैं, उनसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है[१]। उन निर्गुण परमात्माका न कोई रूप है, न रंग है, न कर्तव्य कर्म है और न कर्तृत्व या भोक्तृत्व ही है। वे सब कारणोंके भी आदिकारण हैं, सम्पूर्ण तेजोंके प्रकाशक परम तेज हैं। उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मुक्तिके लिये उन्हीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! शब्दब्रह्ममय जो महावाक्य आदि हैं अर्थात् वेदवर्णित जो 'तत्त्वमसि', 'सोऽहमस्मि' इत्यादि महावाक्य हैं, उनपर विचार करनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान प्रकाशित होता है, वह मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। नारदजी! जो उत्तम ज्ञानसे हीन हैं,

१. यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः। भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मनः॥
एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः परमात्मा जगन्मयः। नृणां विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते॥
एकमेवाद्वितीयं यत्परं ब्रह्म सनातनम्। गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥
(ना० पूर्व० ३३। ६०—६२)

उन्हें यह जगत् नाना भेदोंसे युक्त दिखायी देता है, परंतु परम ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सब परब्रह्मरूप है। परमानन्दस्वरूप, परात्पर, अविनाशी एवं निर्गुण परमात्मा एक ही हैं, किंतु बुद्धिभेदसे वे भिन्न-भिन्न अनेक रूप धारण करनेवाले प्रतीत होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! जिनके ऊपर मायाका पर्दा पड़ा है, वे मायाके कारण परमात्मामें भेद देखते हैं, अत: मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष योगके बलसे मायाको निस्सार समझकर त्याग दे। माया न सद्रूप है, न असद्रूप, न सद्-असद् उभयरूप है, अत: उसे अनिर्वाच्य (किसी रूपमें भी न कहने योग्य) समझना चाहिये। वह केवल भेदबुद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अज्ञान शब्दसे मायाका ही बोध होता है, अत: जो मायाको जीत लेते हैं, उनके अज्ञानका नाश हो जाता है[1]। ज्ञान शब्दसे सनातन परब्रह्मका ही प्रतिपादन किया जाता है, क्योंकि ज्ञानियोंके हृदयमें निरन्तर परमात्मा प्रकाशित होते रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! योगी पुरुष योगके द्वारा अज्ञानका नाश करे। योग आठ अङ्गोंसे सिद्ध होता है; अत: मैं उन आठों अङ्गोंका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ।

मुनिवर नारद! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अङ्ग हैं[2]। मुनीश्वर! अब क्रमश: संक्षेपसे इनके लक्षण बतलाता हूँ। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध और अनसूया—ये संक्षेपसे यम बताये गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंमेंसे किसीको (कभी किंचिन्मात्र) भी जो कष्ट न पहुँचानेका भाव है, उसे सत्पुरुषोंने 'अहिंसा' कहा है। 'अहिंसा' योगमार्गमें सिद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! धर्म और अधर्मका विचार रखते हुए जो यथार्थ बात कही जाती है, उसे श्रेष्ठ पुरुष 'सत्य' कहते हैं। चोरीसे या बलपूर्वक जो दूसरेके धनको हड़प लेना है, वह साधु पुरुषोंद्वारा 'स्तेय' कहा गया है। इसके विपरीत किसीकी वस्तुको न लेना 'अस्तेय' है। सब प्रकारसे मैथुनका त्याग 'ब्रह्मचर्य' कहा गया है। मुनीश्वर! आपत्तिकालमें भी द्रव्योंका संग्रह न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। वह योगमार्गमें उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। जो अपना उत्कर्ष जताते हुए किसीके प्रति अत्यन्त कठोर वचन बोलता है, उसके उस क्रूरतापूर्ण भावको धर्मज्ञ पुरुष 'क्रोध' कहते हैं, इसके विपरीत शान्तभावका नाम 'अक्रोध' है। धन आदिके द्वारा किसीको बढ़ते देखकर डाहके कारण जो मनमें संताप होता है, उसे साधु पुरुषोंने 'असूया' (ईर्ष्या) कहा है; इस 'असूया'का त्याग ही 'अनसूया' है। देवर्षे! इस प्रकार संक्षेपसे 'यम' बताये गये हैं। नारदजी! अब मैं तुम्हें 'नियम' बतला रहा हूँ, सुनो। तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच, भगवान् विष्णुकी आराधना तथा संध्योपासन आदि नियम कहे गये हैं। जिसमें चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा शरीरको कृश किया जाता है, उसे साधु पुरुषोंने 'तप' कहा है। वह योगका उत्तम साधन है। ब्रह्मन्! ॐकार, उपनिषद्, द्वादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय), अष्टाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) तथा तत्त्वमसि

---

१. एक एव परानन्दो निर्गुण: परत: पर:। भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय:॥
मायिनो मायया भेदं पश्यन्ति परमात्मनि। तस्मान्मायां त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम॥
नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका। अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी॥
मायैवाज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम। तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्वै जितमायिनाम्॥
(ना० पूर्व० ३३। ६७—७०)

२. यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम। प्राणायाम: प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च॥
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम्। (ना० पूर्व० ३३। ७३-७४)

आदि महावाक्योंके समुदायका जो जप, अध्ययन एवं विचार है, उसे 'स्वाध्याय' कहा गया है। वह भी योगका उत्तम साधन है। जो मूढ़ उपर्युक्त स्वाध्याय छोड़ देता है, उसका योग सिद्ध नहीं होता। किंतु योगके बिना भी केवल स्वाध्यायमात्रसे मनुष्योंके पापका नाश हो जाता है। स्वाध्यायसे संतुष्ट किये हुए इष्टदेवता प्रसन्न होते हैं। विप्रवर! जप तीन प्रकारका कहा गया है—वाचिक, उपांशु और मानस। इन तीन भेदोंमें भी पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ है। विधिपूर्वक अक्षर और पदको स्पष्ट बोलते हुए जो मन्त्रका उच्चारण किया जाता है, उसे 'वाचिक' जप बताया गया है। वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है। कुछ मन्द स्वरमें मन्त्रका उच्चारण करते समय एक पदसे दूसरे पदका विभाग करते जाना 'उपांशु' जप कहा गया है। वह पहलेकी अपेक्षा दूना महत्त्व रखता है। मन-ही-मन अक्षरोंकी श्रेणीका चिन्तन करते हुए जो उसके अर्थपर विचार किया जाता है, वह 'मानस' जप कहा गया है। मानस जप योगसिद्धि देनेवाला है[1]। जपसे स्तुति करनेवाले पुरुषपर इष्टदेव नित्य प्रसन्न रहते हैं, इसलिये स्वाध्यायपरायण मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है। प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसीसे प्रसन्न रहना 'संतोष' कहलाता है। संतोषहीन पुरुष कहीं सुख नहीं पाता। भोगोंकी कामना भोग्य वस्तुओंको भोग लेनेसे शान्त नहीं होती, अपितु इससे भी अधिक भोग मुझे कब मिलेगा—इस प्रकार कामना बढ़ती रहती है। अतः कामनाका त्याग करके दैवात् जो कुछ मिले, उसीसे संतुष्ट रहकर मनुष्यको धर्मके पालनमें लगे रहना चाहिये। बाह्यशौच और आभ्यन्तर शौचके भेदसे 'शौच' दो प्रकारका माना गया है। मिट्टी और जलसे जो शरीरको शुद्ध किया जाता है, वह बाह्यशौच है और अन्तःकरणके भावकी जो शुद्धि है, उसे आभ्यन्तरशौच कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! आन्तरिक शुद्धिसे हीन पुरुषोंद्वारा जो नाना प्रकारके यज्ञ किये जाते हैं, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान निष्फल होते हैं। अतः राग आदि सब दोषोंका त्याग करके सुखी होना चाहिये। हजारों भार मिट्टी और करोड़ों घड़े जलसे शरीरकी शुद्धि कर लेनेपर भी जिसका अन्तःकरण दूषित है, वह चाण्डालके ही समान अपवित्र माना गया है। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित होकर केवल बाहरसे शरीरको शुद्ध करता है, वह ऊपरसे सजाये हुए मदिरापात्रकी भाँति अपवित्र ही है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धिसे हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते जैसे मदिरासे भरे हुए पात्रको नदियाँ। मुनिश्रेष्ठ! जो वाणीसे धर्मोंका उपदेश करता और मनसे पापकी इच्छा रखता है, उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्ममार्गका आचरण करते हैं तो उसका फल अक्षय एवं सुखदायक जानना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्तुति, कथाश्रवण तथा पूजा करनेसे भगवान् विष्णुमें जिसकी दृढ भक्ति हो गयी है, उसकी वह भक्ति भी भगवान् विष्णुकी 'आराधना' कही गयी है (तथा संध्योपासना तो प्रसिद्ध ही है)। नारदजी! इस प्रकार मैंने यम और नियमोंको संक्षेपसे समझाया। इनके द्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो गया है, उनके मोक्ष हस्तगत ही है—ऐसा माना जाता है। यम

१. धिया यदक्षरश्रेण्यां तत्तदर्थविचारणम्। स जपो मानसः प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायकः॥ (ना० पूर्व० ३३। ९५)

और नियमोंद्वारा बुद्धिको स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष योग-साधनाके अनुकूल उत्तम आसनका विधिपूर्वक अभ्यास करे।

पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्गरासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणु-आसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और वीरासन—ये सब योगसाधनके हेतु हैं। मुनीश्वरोंने ये तीस आसन बनाये हैं। साधक पुरुष शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पृथक् हो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर गुरुदेवके चरणोंमें भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करके प्राणोंको जीतनेका अभ्यास करे। जहाँ मनुष्योंकी भीड़ न हो और किसी प्रकारका कोलाहल न होता हो, ऐसे एकान्त स्थानमें पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिमकी ओर मुँह करके अभ्यासपूर्वक प्राणोंको जीते—प्राणायामका अभ्यास करे। शरीरके भीतर स्थित वायुका नाम प्राण है। उसके विग्रह (वशमें करनेकी चेष्टा)-को आयाम कहते हैं। यही 'प्राणायाम' कहा गया है। उसके दो भेद बताये गये हैं—एक अगर्भ प्राणायाम और दूसरा सगर्भ प्राणायाम, इनमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप और ध्यानके बिना जो प्राणायाम किया जाता है, वह अगर्भ है और जप तथा ध्यानके सहित किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं। मनीषी पुरुषोंने इस दो भेदोंवाले प्राणायामको रेचक, पूरक, कुम्भक और शून्यकके भेदसे चार प्रकारका बताया है। जीवोंकी दाहिनी नाड़ीका नाम पिङ्गला है। उसके देवता सूर्य हैं। उसे पितृयोनि भी कहते हैं। इसी प्रकार बायीं नाड़ीका नाम इडा है, जिसे देवयोनि भी कहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! चन्द्रमाको उसका अधिदेवता समझो। इन दोनोंके मध्यभागमें सुषुम्ना नाड़ी है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और परम गुह्य है। ब्रह्माजीको इसका अधिदेवता जानना चाहिये। नासिकाके बायें छिद्रसे वायुको बाहर निकाले। रेचन करने (निकालने)-के कारण इसका नाम 'रेचक' है, फिर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको अपने भीतर भरे। वायुको पूर्ण करने (भरने)-के कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। अपने देहमें भरी हुई वायुको रोके रहे, छोड़े नहीं और भरे हुए कुम्भ (घड़े)-की भाँति स्थिरभावसे बैठा रहे। कुम्भकी भाँति स्थित होनेके कारण इस प्राणायामका नाम 'कुम्भक' है। बाहरकी वायुको न तो भीतरकी ओर ग्रहण करे और न भीतरकी वायुको बाहर निकाले। जैसे हो, वैसे ही स्थित रहे। इस तरहके प्राणायामको 'शून्यक' समझो। जैसे मतवाले गजराजको धीरे-धीरे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणको धीरे-धीरे जीतना चाहिये। अन्यथा बड़े-बड़े भयङ्कर रोग हो जाते हैं। जो योगी क्रमशः वायुको जीतनेका अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापोंसे मुक्त होनेपर वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

'मुनीश्वर! जो विषयोंमें फँसी हुई इन्द्रियोंको विषयोंसे सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्नका नाम 'प्रत्याहार' है। ब्रह्मन्! जिन्होंने प्रत्याहारद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, वे महात्मा पुरुष ध्यान न करनेपर भी पुनरावृत्तिरहित परब्रह्म पदको प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रियसमुदायको वशमें किये बिना ही ध्यानमें तत्पर होता है, उसे मूर्ख समझो; क्योंकि उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको देखता है, उसे अपने आत्मामें आत्मस्वरूप समझे और प्रत्याहारद्वारा वशमें की

हुई इन्द्रियोंको अपने आत्मामें ही अन्तर्मुख करके धारण करे। इस प्रकार इन्द्रियोंको जो आत्मामें धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं। योग (प्रत्याहार)-से इन्द्रियोंके समुदायको जीतकर धारणाद्वारा उन इन्द्रियोंको दृढ़तापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनेके पश्चात् साधक उन परमात्माका ध्यान करे, जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं और जो कभी अपनी महिमासे च्युत नहीं होते। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं। समस्त लोकोंके एकमात्र कारण वे ही हैं। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान सुशोभित हैं। मनोहर कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है। सब प्रकारके आभूषण उनके सुन्दर विग्रहकी शोभा बढ़ाते हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है। वे दिव्यशक्तिसे सम्पन्न हैं। उन्होंने स्वर्णमय यज्ञोपवीत धारण किया है। गलेमें तुलसीकी माला पहन रखी है। कौस्तुभमणिसे उनकी शोभा और बढ़ गयी है। वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। देवता और असुर सभी भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक नवा रहे हैं। बारह अंगुल विस्तृत तथा आठ दलोंसे विभूषित अपने हृदयकमलके आसनपर विराजमान सर्वव्यापी अव्यक्तस्वरूप परात्पर परमात्माका उपर्युक्तरूपसे ध्यान करना चाहिये। ध्येय वस्तुमें चित्तकी वृत्तिका एकाकार हो जाना ही साधु पुरुषोंद्वारा 'ध्यान' कहा गया है। दो घड़ी ध्यान करके भी मनुष्य परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है। ध्यानसे पाप नष्ट होते हैं। ध्यानसे मोक्ष मिलता है। ध्यानसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं तथा ध्यानसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है[१]। भगवान् महाविष्णुके जो-जो स्वरूप हैं, उनमेंसे किसीका भी एकाग्रतापूर्वक ध्यान करे। उस ध्यानसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु निश्चय ही मोक्ष देते हैं। साधुशिरोमणे! ध्येय वस्तुमें मनको इस प्रकार स्थिर कर देना चाहिये कि ध्याता, ध्यान और ध्येयकी त्रिपुटीका तनिक भी भान न रह जाय। तब ज्ञानरूपी अमृतके सेवनसे अमृतत्व (परमात्मा)-को प्राप्त होता है।

निरन्तर ध्यान करनेसे ध्येय वस्तुके साथ अपना अभेदभाव स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जिसकी सब इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं और वह परमानन्दसे पूर्ण हो वायुशून्य स्थानमें जलते हुए दीपककी भाँति अविचलभावसे ध्यानमें स्थित हो जाता है, तो उसकी इस ध्येयाकार स्थितिको 'समाधि' कहते हैं। नारदजी! योगी पुरुष समाधि-अवस्थामें न देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श करता है और न वह कुछ बोलता ही है। उस अवस्थामें योगियोंको सम्पूर्ण उपाधियोंसे मुक्त, शुद्ध, निर्मल, सच्चिदानन्दस्वरूप तथा अविचल आत्माका साक्षात्कार होता है। विद्वान् नारदजी! यह आत्मा परम ज्योतिर्मय तथा अमेय है। जो मायाके अधीन हैं, उन्हींको वह मायायुक्त-सा प्रतीत होता है। उस मायाका निवारण होनेपर वह निर्मल ब्रह्मरूपसे प्रकाशित होता है। वह ब्रह्म एक, अद्वितीय, परमज्योति:स्वरूप, निरञ्जन तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मारूपसे स्थित है। परमात्मा सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्‌से भी अत्यन्त महान् है। वह सनातन परमेश्वर समस्त विश्वका कारण है। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरुष परम पवित्र परात्पर ब्रह्मरूपमें उसका दर्शन करते हैं। अकारसे लेकर हकारतकके भिन्न-भिन्न वर्णोंके रूपमें स्थित अनादि पुराणपुरुष परमात्माको

१. ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्षं च विन्दति। ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थसाधनम्॥
(ना० पूर्व० ३३। १३९)

ही शब्दब्रह्म कहा गया है और जो विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण, हृदयाकाशके मध्य विराजमान अथवा आकाशमें व्याप्त, आनन्दमय, निर्मल एवं शान्त तत्त्व है, उसीको 'परब्रह्म परमात्मा' कहते हैं, योगीलोग अपने हृदयमें जिन अजन्मा, शुद्ध, विकाररहित, सनातन परमात्माका दर्शन करते हैं, उन्हींका नाम परब्रह्म है।

मुनिश्रेष्ठ! अब दूसरा ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। परमात्माका यह ध्यान संसार-तापसे संतप्त मनुष्योंको अमृतकी वर्षाके समान शान्ति प्रदान करनेवाला है। परमानन्दस्वरूप भगवान् नारायण प्रणवमें स्थित हैं—ऐसा चिन्तन करे। उनकी कहीं उपमा नहीं है।

वे प्रणवकी अर्धमात्राके ऊपर विराजमान नादस्वरूप हैं। अकार ब्रह्माजीका रूप है, उकार भगवान् विष्णुका स्वरूप है, मकार रुद्ररूप है तथा अर्धमात्रा निर्गुण परब्रह्म परमात्मस्वरूप है। अकार, उकार और मकार—ये प्रणवकी तीन मात्राएँ कही गयी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन क्रमशः उनके देवता हैं। इन सबका समुच्चयरूप जो ॐकार है, वह परब्रह्म परमात्माका बोध करानेवाला है। परब्रह्म परमात्मा वाच्य हैं और प्रणव उनका वाचक माना गया है। नारदजी! इन दोनोंमें वाच्य-वाचक-सम्बन्ध उपचारसे ही कहा गया है। जो प्रतिदिन प्रणवका जप करते हैं, वे सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा जो निरन्तर उसीके अभ्यासमें लगे रहते हैं, वे परम मोक्ष पाते हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप प्रणव-मन्त्रका जप करता है, उसे अपने अन्तःकरणमें कोटि-कोटि सूर्योंके समान निर्मल तेजका ध्यान करना चाहिये अथवा प्रणव-जपके समय शालग्रामशिला या किसी भगवत्प्रतिमाके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अथवा जो-जो पापनाशक तीर्थादिक वस्तु हैं, उसी-उसीका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये। मुनीश्वर! यह वैष्णवज्ञान तुम्हें बताया गया है। इसे जानकर योगीश्वर पुरुष उत्तम मोक्ष पा लेता है। जो एकाग्रचित्त होकर इस प्रसंगको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है।

## भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश

**नारदजीने कहा**—हे सर्वज्ञ महामुने! सबके स्वामी देवदेव भगवान् जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताइये।

**श्रीसनकजी बोले**—नारदजी! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् विष्णुकी शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर आँख उठाकर देख नहीं सकते। भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो

भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णत: सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधुपुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसारबन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है, तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। नारदजी! जो आनन्दस्वरूप, अक्षर एवं जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे रहित तथा हृदयमें विराजमान हैं, उन्हीं भगवान्का तुम निरन्तर भजन करो। मुनिश्रेष्ठ! जिनका अन्त:करण शुद्ध नहीं है—ऐसे लोग भगवान्के स्थान या स्वरूपका न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही। विप्रवर! यह स्थावर-जंगमरूप जगत् केवल भावनामय है और बिजलीके समान चञ्चल है। अत: इसकी ओरसे विरक्त होकर भगवान् जनार्दनका भजन करो।

जिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विद्यमान हैं, उन्हींपर जगदीश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और ब्राह्मणोंके आदर-सत्कारमें तत्पर रहता है, उसपर जगदीश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो भगवान् और उनके भक्तोंकी कथामें प्रेम रखता है, स्वयं भगवान्की कथा कहता है, साधु-महात्माओंका संग करता है और मनमें अहङ्कार नहीं लाता, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न रहते हैं। जो भूख-प्यास और लड़खड़ाकर गिरने आदिके अवसरोंपर भी सदा भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण करता है, उसपर भगवान् अधोक्षज (विष्णु) प्रसन्न होते हैं। मुने! जो स्त्री पतिको प्राणके समान समझकर उनके आदर-सत्कारमें सदा लगी रहती है, उसपर प्रसन्न हो जगदीश्वर श्रीहरि उसे अपना परम धाम दे देते हैं। जो ईर्ष्या तथा दोषदृष्टिसे रहित होकर अहङ्कारसे दूर रहते हैं और सदा देवाराधन किया करते हैं, उनपर भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। अत: देवर्षे! सुनो, तुम सदा श्रीहरिका भजन करो। शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है। जीवन अत्यन्त चञ्चल है। धनपर राजा आदिके द्वारा बराबर बाधा आती रहती है और सम्पत्तियाँ क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाली हैं। देवर्षे! क्या तुम नहीं देखते कि आधी आयु तो नींदसे ही नष्ट हो जाती है और कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। आयुका कुछ भाग बचपनमें, कुछ विषय-भोगोंमें और कुछ बुढ़ापेमें व्यर्थ बीत जाता है। फिर तुम धर्मका आचरण कब करोगे? बचपन और बुढ़ापेमें भगवान्की आराधना नहीं हो सकती, अत: अहङ्कार

छोड़कर युवावस्थामें ही धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। मुने! यह शरीर मृत्युका निवासस्थान और आपत्तियोंका सबसे बड़ा अड्डा है। शरीर रोगोंका घर है। यह मल आदिसे सदा दूषित रहता है। फिर मनुष्य इसे सदा रहनेवाला समझकर व्यर्थ पाप क्यों करते हैं। यह संसार असार है। इसमें नाना प्रकारके दु:ख भरे हुए हैं। निश्चय ही यह मृत्युसे व्याप्त है, अत: इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये। इसलिये विप्रवर! सुनो, मैं यह सत्य कहता हूँ—देह-बन्धनकी निवृत्तिके लिये भगवान् विष्णुकी ही पूजा करनी चाहिये। अभिमान और लोभ त्यागकर काम-क्रोधसे रहित होकर सदा भगवान् विष्णुका भजन करो; क्योंकि मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

सत्तम! (अधिकांश) जीवोंको कोटि सहस्र जन्मोंतक स्थावर आदि योनियोंमें भटकनेके बाद कभी किसी प्रकार मनुष्य-शरीर मिलता है। साधु-शिरोमणे! मनुष्य-जन्ममें भी देवाराधनकी बुद्धि, दानकी बुद्धि और योगसाधनाकी बुद्धिका प्राप्त होना मनुष्योंके पूर्वजन्मकी तपस्याका फल है। जो दुर्लभ मानव-शरीर पाकर एक बार भी श्रीहरिकी पूजा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख, जड़बुद्धि कौन है? दुर्लभ मानव-जन्म पाकर जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, उन महामूर्ख मनुष्योंमें विवेक कहाँ है? ब्रह्मन्! जगदीश्वर भगवान् विष्णु आराधना करनेपर मनोवाञ्छित फल देते हैं। फिर संसार-रूप अग्निमें जला हुआ कौन मानव उनकी पूजा नहीं करेगा? मुनिश्रेष्ठ! विष्णुभक्त चाण्डाल भी भक्तिहीन द्विजसे बढ़कर है। अत: काम, क्रोध आदिको त्यागकर अविनाशी भगवान् नारायणका भजन करना चाहिये। उनके प्रसन्न होनेपर सब संतुष्ट होते हैं; क्योंकि वे भगवान् श्रीहरि ही सबके भीतर विद्यमान हैं। जैसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार इस चराचर विश्वको भगवान् विष्णुने व्याप्त कर रखा है। भगवान् विष्णुके भजनसे जन्म और मृत्यु दोनोंका नाश हो जाता है। ध्यान, स्मरण, पूजन अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् जनार्दन जीवके संसारबन्धनको काट देते हैं। ब्रह्मर्षे! उनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे महापातकोंका नाश हो जाता है और उनकी विधिपूर्वक पूजा करके तो मनुष्य मोक्षका भागी होता है। ब्रह्मन्! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, बड़ी अद्भुत बात है और बड़ी विचित्र बात है कि भगवान् विष्णुके नामके रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्युरूप संसारमें चक्कर काटते हैं[१]। जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं और जबतक रोग-व्याधि नहीं सताते, तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। जीव जब माताके गर्भसे निकलता है, तभी मृत्यु उसके साथ हो लेती है। अत: सबको धर्मपालनमें लग जाना चाहिये। अहो! बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है कि यह जीव इस शरीरको नाशवान् समझकर भी धर्मका आचरण नहीं करता।

नारदजी! बाँह उठाकर यह सत्य-सत्य और पुन: सत्य बात दुहरायी जाती है कि पाखण्डपूर्ण आचरणका त्याग करके मनुष्य भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाय। क्रोध मानसिक संतापका कारण है। क्रोध संसारबन्धनमें डालनेवाला है और क्रोध सब धर्मोंका नाश करनेवाला है। अत: क्रोधको छोड़ देना चाहिये। काम इस जन्मका मूल कारण है, काम पाप करानेमें हेतु है और

१. अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज। हरिनाम्नि स्थिते लोक: संसारे परिवर्तते॥
(ना० पूर्व० ३४। ४८)

काम यशका नाश करनेवाला है। अतः कामको भी त्याग देना चाहिये। मात्सर्य समस्त दुःख-समुदायका कारण माना गया है, वह नरकोंका भी साधन है, अतः उसे भी त्याग देना चाहिये[1]। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। अतः मनको परमात्मामें लगाकर सुखी हो जाना चाहिये। अहो! मनुष्योंका धैर्य कितना अद्भुत, कितना विचित्र तथा कितना आश्चर्यजनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए भी वे मदसे उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते हैं[2]। सबका धारण-पोषण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए मनुष्य कैसे पार जा सकेंगे? अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ[3]। जो लोग नारायण! जगन्नाथ! वासुदेव! जनार्दन! आदि नामोंका नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय हैं। देवर्षे! दुष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी कितनी भारी मूर्खता है कि वे अपने हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुको नहीं जानते हैं। मुनिश्रेष्ठ! नारद! सुनो, मैं बार-बार इस बातको दुहराता हूँ, भगवान् विष्णु श्रद्धालु जनोंपर ही संतुष्ट होते हैं, अधिक धन और भाई-बन्धुवालोंपर नहीं। इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य सदा श्रीहरिकी पूजा करे तथा इहलोक और परलोकमें दुःख चाहनेवाला मनुष्य दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी भक्तिसे रहित हैं, ऐसे मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है। जिसे सत्पात्रके लिये दान नहीं दिया जाता, उस धनको बारम्बार धिक्कार है। मुनिश्रेष्ठ! जो शरीर भगवान् विष्णुको नमस्कार नहीं करता, उसे पापकी खान समझना चाहिये। जिसने सुपात्रको दान न देकर जो कुछ द्रव्य जोड़ रखा है, वह लोकमें चोरीसे रखे हुए धनकी भाँति निन्दनीय है। संसारी मनुष्य बिजलीके समान चञ्चल धन-सम्पत्तिसे मतवाले हो रहे हैं। वे जीवोंके अज्ञानमय पाशको दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं।

दैवी और आसुरी सृष्टिके भेदसे सृष्टि दो प्रकारकी बतायी गयी है। जहाँ भगवान्‌की भक्ति (और सदाचार) है, वह दैवी सृष्टि है और जो भक्ति (और सदाचार)-से हीन है, वह आसुरी सृष्टि है। अतः विप्रवर नारद! सुनो, भगवान् विष्णुके भजनमें लगे हुए मनुष्य सर्वत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं; क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित, ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर तथा काम आदि दोषोंसे दूर हैं, उनपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं।

---

१. काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्। यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्। नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत्॥
(ना० पूर्व० ३४। ५६-५७)

२. अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्। विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धताः॥
(ना० पूर्व० ३४। ५९)

३. अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥
(ना० पू० ३४। ६१)

## वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति

**श्रीसनकजी कहते हैं**—नारद! जिन्होंने योगके द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्यरूपी छः शत्रुओंको जीत लिया है तथा जो अहङ्कारशून्य और शान्त हैं, ऐसे ज्ञानी महात्मा ज्ञानस्वरूप अविनाशी श्रीहरिका ज्ञानयोगके द्वारा यजन करते हैं। जो व्रत, दान, तपस्या, यज्ञ तथा तीर्थस्नान करके विशुद्ध हो गये हैं, वे कर्मयोगी महापुरुष कर्मयोगके द्वारा भगवान् अच्युतका पूजन करते हैं। जो लोभी, दुर्व्यसनोंमें आसक्त और अज्ञानी हैं, वे जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते। वे मूढ़ अपनेको अजर-अमर समझते हैं; किंतु वास्तवमें मनुष्योंमें वे कीड़ेके समान जीवन बिताते हैं। जो बिजलीकी लकीरके समान क्षणभरमें चमककर लुप्त हो जानेवाली है, ऐसी लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हो व्यर्थ अहंकारसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सब प्रकारसे कल्याण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते हैं। जो भगवद्धर्मके पालनमें तत्पर, शान्त, श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह रखनेवाले हैं, ऐसे तो कोई बिरले महात्मा ही दैवयोगसे उत्पन्न हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह समस्त लोकोंमें परम उत्तम, परम धामको जाता है। इस विषयमें इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसे पढ़ने और सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

नारदजी! प्राचीन कालकी बात है। रैवतमन्वन्तरमें वेदमालि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदों और वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् थे। उनके मनमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई थी। वे सदा भगवान्‌की पूजामें लगे रहते थे; किंतु आगे चलकर वे स्त्री, पुत्र और मित्रोंके लिये धनोपार्जन करनेमें संलग्न हो गये। जो वस्तु नहीं बेचनी चाहिये, उसको भी वे बेचने लगे। उन्होंने रसका भी विक्रय किया। वे चाण्डाल आदिसे भी बात करते और उनका दिया हुआ दान ग्रहण करते थे। उन्होंने पैसे लेकर तपस्या और व्रतोंका विक्रय किया और तीर्थयात्रा भी वे दूसरोंके लिये ही करते थे। यह सब उन्होंने अपनी स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया। विप्रवर! इसी तरह कुछ समय बीत जानेपर ब्राह्मणके दो जुड़वे पुत्र हुए, जिनका नाम था—यज्ञमाली और सुमाली। वे दोनों बड़े सुन्दर थे। तदनन्तर पिता उन दोनों बालकोंका बड़े स्नेह और वात्सल्यसे अनेक प्रकारके साधनोंद्वारा पालन-पोषण करने लगे। वेदमालिने अनेक उपायोंसे यत्नपूर्वक धन एकत्र किया और एक दिन मेरे पास कितना धन है यह जाननेके लिये उन्होंने अपने धनको गिनना प्रारम्भ किया। उनका धन संख्यामें बहुत ही अधिक था। इस प्रकार धनकी स्वयं गणना करके वे हर्षसे फूल उठे। साथ ही उस अर्थकी चिन्तासे उन्हें बड़ा विस्मय भी हुआ। वे सोचने लगे—मैंने नीच पुरुषोंसे दान लेकर, न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय करके तथा तपस्या आदिको भी बेचकर यह प्रचुर धन पैदा किया है। किंतु मेरी अत्यन्त दुःसह तृष्णा अब भी शान्त नहीं हुई। अहो! मैं तो समझता हूँ, यह तृष्णा बहुत बड़ा कष्ट है, समस्त क्लेशोंका कारण भी यही है। इसके कारण मनुष्य यदि समस्त कामनाओंको प्राप्त कर ले तो भी पुनः दूसरी वस्तुओंकी अभिलाषा करने लगता है। जरावस्था (बुढ़ापे)-में आनेपर मनुष्यके केश पक जाते हैं, दाँत गल जाते हैं, आँख और कान

भी जीर्ण हो जाते हैं; किंतु एक तृष्णा ही तरुण-सी होती जाती है[१]। मेरी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, बुढ़ापेने मेरे बलको भी नष्ट कर दिया, किंतु तृष्णा तरुणी हो और भी प्रबल हो उठी है। जिसके मनमें कष्टदायिनी तृष्णा मौजूद है, वह विद्वान् होनेपर भी मूर्ख हो जाता है। परम शान्त होनेपर भी अत्यन्त क्रोधी हो जाता है और बुद्धिमान् होनेपर भी अत्यन्त मूढ़बुद्धि हो जाता है। आशा मनुष्योंके लिये अजेय शत्रुकी भाँति भयंकर है। अतः विद्वान् पुरुष यदि शाश्वत सुख चाहे तो आशाको त्याग दे। बल हो, तेज हो, विद्या हो, यश हो, सम्मान हो, नित्य वृद्धि हो रही हो और उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो तो भी यदि मनमें आशा, तृष्णा बनी हुई है तो वह बड़े वेगसे इन सबपर पानी फेर देती है[२]। मैंने बड़े क्लेशसे यह धन कमाया है। अब मेरा शरीर भी गल गया। बुढ़ापेने मेरे बलको नष्ट कर दिया। अतः अब मैं उत्साहपूर्वक परलोक सुधारनेका यत्न करूँगा। विप्रवर! ऐसा निश्चय करके वेदमालि धर्मके मार्गपर चलने लगे। उन्होंने उसी क्षण उस सारे धनको चार भागोंमें बाँटा। अपने द्वारा पैदा किये उस धनमेंसे दो भाग तो ब्राह्मणने स्वयं रख लिये और शेष दो भाग दोनों पुत्रोंको दे दिये। तदनन्तर अपने किये हुए पापोंका नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने जगह-जगह पौंसले, पोखरे, बगीचे और बहुत-से देवमन्दिर बनाये तथा गङ्गाजीके तटपर अन्न आदिका दान भी किया।

इस प्रकार सम्पूर्ण धनका दान करके भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो वे तपस्याके लिये नर-नारायणके आश्रम बदरीवनमें गये। वहाँ उन्होंने एक अत्यन्त रमणीय आश्रम देखा, जहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि रहते थे। फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। शास्त्र-चिन्तनमें तत्पर भगवत्सेवापरायण तथा परब्रह्म परमेश्वरकी स्तुतिमें संलग्न अनेक वृद्ध महर्षि उस आश्रमकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। वेदमालिने वहाँ जाकर जानन्ति नामवाले एक मुनिका दर्शन किया, जो शिष्योंसे घिरे बैठे थे और उन्हें परब्रह्म तत्त्वका उपदेश कर रहे थे। वे मुनि महान् तेजके पुञ्ज-से जान पड़ते थे। उनमें शम, दम आदि सभी गुण विराजमान थे। राग आदि दोषोंका सर्वथा अभाव था। वे सूखे पत्ते खाकर रहा करते थे। वेदमालिने मुनिको देखकर उन्हें प्रणाम किया। मुनि जानन्तिने कन्द, मूल और फल आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। आतिथ्य-सत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा—भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं। ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये। ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—

ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-

---

१. जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ताः जीर्यन्ति जीर्यतः। चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते॥
(ना० पूर्व० ३५। २१)

२. आशा भयंकरी पुंसामजेयारातिसन्निभा। तस्मादाशां त्यजेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छाश्वतं सुखम्॥
बलं तेजो यशश्चैव विद्यां मानं च वृद्धताम्। तथैव सत्कुले जन्म आशा हन्त्यतिवेगतः॥
(ना० पूर्व० ३५। २४-२५)

जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, लापरवाही न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल, दूर्वा अथवा पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई भी किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो तथा भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोंका निश्चय ही निवारण एवं मोक्ष हो जाता है।

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान् वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने-आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

## भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्‌के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार

**श्रीसनकजी कहते हैं**—विप्रवर! भगवान् लक्ष्मीपति विष्णुके माहात्म्यका वर्णन फिर सुनो। भगवान्‌की अमृतमयी कथा सुननेके लिये किसके मनमें प्रेम और उत्साह नहीं होता? जो विषयभोगमें अन्धे हो रहे हैं, जिनका चित्त ममतासे व्याकुल है, उन मनुष्योंके सम्पूर्ण पापोंका नाश भगवान्‌के एक ही नामका स्मरण कर देता है। जो भगवान्‌की पूजासे दूर रहते, वेदोंका विरोध करते और गौ तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखते हैं, वे राक्षस कहे गये हैं[1]। जो भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहकर सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह रखते तथा धर्मकार्यमें सदा तत्पर रहते हैं, वे साक्षात् भगवान् विष्णुके

१. हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा। गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्तिताः॥
(ना० पूर्व० ३७। ५)

स्वरूप माने गये हैं। जिनका चित्त भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगा हुआ है, उनके करोड़ों जन्मोंका पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाता है; फिर उनके मनमें पापका विचार कैसे उठ सकता है? भगवान् विष्णुकी आराधना विषयान्ध मनुष्योंके भी सम्पूर्ण दु:खोंका नाश करनेवाली कही गयी है। वह भोग और मोक्ष देनेवाली है। जो मनुष्य किसीके सङ्गसे, स्नेहसे, भयसे, लोभसे अथवा अज्ञानसे भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है[१]। जो भगवान् विष्णुके चरणोदकका एक कण भी पी लेता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भगवान्‌को वह अत्यन्त प्रिय होता है। भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका निवारण, समस्त रोगोंका नाश और सम्पूर्ण दु:खोंकी शान्ति करनेवाला माना गया है[२]।

इस विषयमें भी ज्ञानी पुरुष यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, इसे पढ़ने और सुननेवालोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है। प्राचीन सत्ययुगकी बात है, गुलिक नामसे प्रसिद्ध एक व्याध था; वह परायी स्त्री और पराये धनको हड़प लेनेके लिये सदा उद्यत रहता था। वह सदा दूसरोंकी निन्दा किया करता था। जीव-जन्तुओंको भारी सङ्कटमें डालना उसका नित्यका काम था। उसने सैकड़ों गौओं और हजारों ब्राह्मणोंकी हत्या की थी। नारदजी! व्याधोंका सरदार गुलिक देवसम्पत्तिको हड़पने तथा दूसरोंका धन लूट लेनेके लिये सदा कमर कसे रहता था। उसने बहुत-से बड़े भारी-भारी पाप किये थे। जीव-जन्तुओंके लिये वह यमराजके समान था। एक दिन वह महापापी व्याध सौवीर नरेशके नगरमें गया, जो सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे भरा-पूरा था। उसके उपवनमें भगवान् विष्णुका एक बड़ा सुन्दर मन्दिर था, जो सोनेके कलशोंसे छाया गया था। उसे देखकर व्याधको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने निश्चय किया, यहाँ बहुत-से सुवर्ण-कलश हैं, उन सबको चुराऊँगा। ऐसा विचारकर व्याध चोरीके लिये लोलुप हो उठा और मन्दिरके भीतर गया। वहाँ उसने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखा, जो परम शान्त और तत्त्वार्थज्ञानमें निपुण थे। उनका नाम उत्तङ्क था। वे भगवान् विष्णुकी सेवा-पूजा कर रहे थे। उत्तङ्क तपस्याकी निधि थे। वे एकान्तवासी, दयालु, नि:स्पृह तथा भगवान्‌के ध्यानमें परायण थे। मुने! उस व्याधने उन्हें अपनी चोरीमें विघ्न डालनेवाला समझा। वह देवताका सम्पूर्ण धन हड़प लेनेके लिये आया हुआ अत्यन्त साहसी लुटेरा था और मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने हाथमें तलवार उठा ली और उत्तङ्कजीको मार डालनेका उद्योग आरम्भ किया। मुनि (-को भूमिपर गिराकर उन)-की छातीको एक पैरसे दबाकर उसने एक हाथसे उनकी जटाएँ पकड़ लीं और उन्हें मार डालनेका विचार किया। इस अवस्थामें उस व्याधको देखकर उत्तङ्कजीने कहा।

**उत्तङ्क बोले**—अरे, ओ साधु पुरुष! तुम व्यर्थ ही मुझे मार रहे हो। मैं तो निरपराध हूँ। महामते! बताओ तो सही, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। लोकमें शक्तिशाली पुरुष अपराधियोंको दण्ड देते हैं, किंतु सज्जन पुरुष पापियोंको भी अकारण नहीं मारते हैं। जिनके चित्तमें शान्ति विराज रही

१. सङ्गात्स्नेहाद् भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः। विष्णोरुपासनं कुर्यात्सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। १४)

२. अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्। सर्वदु:खोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम्॥
(ना० पूर्व० ३७। १६)

है, वे साधु पुरुष अपनेसे विरोध रखनेवाले मूर्खोंमें भी जो गुण विद्यमान हैं, उन्हींपर दृष्टि रखकर उनका विरोध नहीं करते हैं। जो मनुष्य अनेक बार सताये जानेपर भी क्षमा करता है, उसे उत्तम कहा गया है। वह भगवान् विष्णुको सदा ही अत्यन्त प्रिय है। जिनकी बुद्धि सदा दूसरोंके हितमें लगी हुई है, वे साधु पुरुष मृत्युकाल आनेपर भी किसीसे वैर नहीं करते। चन्दनका वृक्ष काटे जानेपर भी कुठारकी धारको सुगन्धित ही करता है। मृग तृणसे, मछलियाँ जलसे तथा सज्जन पुरुष संतोषसे जीवन-निर्वाह करते हैं, परंतु संसारमें क्रमशः तीन प्रकारके व्यक्ति इनके साथ भी अकारण वैर रखनेवाले होते हैं—व्याध, धीवर और चुगलखोर[1]। अहो! माया बड़ी प्रबल है। वह समस्त जगत्को मोहमें डाल देती है। तभी तो लोग पुत्र-मित्र और स्त्रीके लिये सबको दुःखी करते रहते हैं। तुमने दूसरोंका धन लूटकर अपनी स्त्रीका पालन-पोषण किया है, परंतु अन्तकालमें मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोककी यात्रा करता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी यह वस्तु—इस प्रकारकी ममता प्राणियोंको व्यर्थ पीड़ा देती रहती है। पुरुष जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है[2]। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमें झोंककर स्वयं घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। लोग सदा धन आदिके उपार्जनमें व्यर्थ ही व्याकुल रहते हैं। 'जो होनेवाला है, वह होकर ही रहता है और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होता' जिनकी बुद्धिमें ऐसा निश्चय होता है, उन्हें चिन्ता कभी नहीं सताती[3]। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है; अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। अहो! ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्योंका दुःख महान् है; क्योंकि वे बड़े-बड़े पाप करके भी दूसरोंका यत्नपूर्वक पालन करते हैं। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है[4]।

ऐसा कहते हुए महर्षि उत्तङ्कको गुलिकने छोड़ दिया। फिर वह भयसे व्याकुल हो उठा और हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कीजिये।' सत्सङ्गके प्रभावसे तथा भगवद्विग्रहका सामीप्य मिल जानेसे व्याधका सारा पाप नष्ट हो गया। उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह इस प्रकार बोला—'विप्रवर! मैंने बहुत बड़े-बड़े पाप किये हैं। वे सब आपके दर्शनसे

१. मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्। लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥
(ना० पूर्व० ३७। ३८)

२. यावदर्जयति द्रव्यं बान्धवास्तावदेव हि। धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥
(ना० पूर्व० ३७। ४२)

३. यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्यं न तद्भवेत्। इति निश्चितबुद्धीनां न चिन्ता बाधते क्वचित्॥
(ना० पूर्व० ३७। ४७)

४. अर्जितं च धनं सर्वं भुञ्जते बान्धवाः सदा। स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। ५१)

नष्ट हो गये। अहो! मेरी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रही और मैं शरीरसे भी सदा महान् पापोंका ही आचरण करता रहा। अब मेरा उद्धार कैसे होगा? भगवन्! मैं किसकी शरणमें जाऊँ? पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण मेरा व्याधके कुलमें जन्म हुआ। अब इस जीवनमें भी ढेर-के-ढेर पाप

करके मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? अहो! मेरी आयु शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो रही है। मैंने पापोंके निवारणके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया, अतः उन पापोंका फल मैं कितने जन्मोंतक भोगूँगा?'—

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए उस व्याधने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसकर तुरंत प्राण त्याग दिये। व्याधको गिरा हुआ देख महर्षि उत्तङ्कको बड़ी दया आयी और उन महाबुद्धिमान् मुनिने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे उसके शरीरको सींच दिया। भगवान्‌के चरणोदकका स्पर्श पाकर उसके पाप नष्ट हो गये और वह व्याध दिव्य शरीरसे दिव्य विमानपर बैठकर मुनिसे इस प्रकार बोला।

**गुलिकने कहा**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कजी! आप मेरे गुरु हैं। आपके ही प्रसादसे मुझे इन महापातकोंसे छुटकारा मिला है। मुनीश्वर! आपके उपदेशसे मेरा संताप दूर हो गया और सम्पूर्ण पाप भी तुरंत नष्ट हो गये। मुने! आपने मेरे ऊपर जो भगवान्‌का चरणोदक छिड़का है, उसके प्रभावसे आज मुझे आपने भगवान् विष्णुके परम पदको पहुँचा दिया। विप्रवर! आपके द्वारा इस पापमय शरीरसे मेरा उद्धार हो गया; इसलिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ। विद्वन्! मेरे किये हुए अपराधको आप क्षमा करें।

ऐसा कहकर उसने मुनिवर उत्तङ्कपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की और विमानसे उतरकर तीन बार परिक्रमा करके उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर पुनः उस दिव्य विमानपर चढ़कर गुलिक भगवान् विष्णुके धामको चला गया। यह सब प्रत्यक्ष देखकर तपोनिधि उत्तङ्कजी बड़े विस्मयमें पड़े और उन्होंने सिरपर अञ्जलि रखकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उनके द्वारा स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने उन्हें उत्तम वर दिया और उस वरसे उत्तङ्कजी भी परम पदको प्राप्त हो गये।

## उत्तङ्कके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्‌की आज्ञासे उनका नारायणाश्रममें जाकर मुक्त होना

**नारदजीने पूछा**—महाभाग! वह कौन-सा स्तोत्र था और उसके द्वारा भगवान् विष्णु किस प्रकार संतुष्ट हुए? पुण्यात्मा पुरुष उत्तङ्कजीने भगवान्‌से कैसा वर प्राप्त किया?

**श्रीसनकजीने कहा**—भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले विप्रवर उत्तङ्कने उस समय भगवान्‌के चरणोदकका माहात्म्य देखकर उनकी भक्तिभावसे स्तुति की।

**उत्तङ्कजी बोले**—जो सम्पूर्ण जगत्के निवासस्थान और उसके एकमात्र बन्धु हैं, उन आदिदेव भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्मरण करनेमात्रसे भक्तजनोंकी सारी पीड़ा नष्ट कर देते हैं, अपने हाथोंमें चक्र, कमल, शार्ङ्गधनुष और खड्ग धारण करनेवाले उन महाविष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माजी इन सम्पूर्ण लोकोंके समुदायकी सृष्टि करते हैं और जिनके क्रोधसे प्रकट हुए भगवान् रुद्र इस जगत्का संहार किया करते हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो लक्ष्मीजीके पति हैं, जिनके कमलदलके समान विशाल नेत्र हैं, जिनकी शक्ति अद्भुत है, जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र कारण तथा वेदान्तवेद्य पुराणपुरुष हैं, उन तेजोराशि भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो सबके आत्मा, अविनाशी और सर्वव्यापी हैं, जिनका नाम अच्युत है, जो ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानियोंको शरण देनेवाले हैं, एकमात्र ज्ञानसे ही जिनके तत्त्वका बोध होता है, जिनका कोई आदि नहीं है, यह व्यष्टि और समष्टि जगत् जिनका ही स्वरूप है, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनके बल और पराक्रमका अन्त नहीं है, जो गुण और जातिसे हीन तथा गुणस्वरूप हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, नित्य तथा शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं, वे दयासागर परमात्मा मुझे वर प्रदान करें। जो स्थूल और सूक्ष्म आदि विशेष भेदोंसे युक्त जगत्की यथायोग्य रचना करके अपने बनाये हुए उस जगत्में स्वयं ही अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुए हैं, वह परमेश्वर आप ही हैं। हे अनन्त शक्ति-सम्पन्न परमात्मन्! वह सब जगत् आप ही हैं; क्योंकि आपसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। भगवन्! आपका जो शुद्ध स्वरूप है वह इन्द्रियातीत, मायाशून्य, गुण और जाति आदिसे रहित, निरञ्जन, निर्मल और अप्रमेय है। ज्ञानी संत-महात्मा उस परमार्थस्वरूपका दर्शन करते हैं। जैसे एक ही सुवर्णसे अनेक आभूषण बनते हैं और उपाधिके भेदसे उनके नाम और रूपमें भेद हो जाता है, उसी प्रकार सबके आत्मस्वरूप एक ही सर्वेश्वर उपाधि-भेदसे मानो भिन्न-भिन्न रूपोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। जिनकी मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुष आत्मारूपसे प्रसिद्ध होते हुए भी उनका दर्शन नहीं कर पाते और मायासे रहित होनेपर वे ही उन सर्वात्मा परमेश्वरको अपने ही आत्माके रूपमें देखने लगते हैं, जो सर्वत्र व्यापक, ज्योतिः-स्वरूप तथा उपमारहित हैं, उन विष्णुभगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। यह सारा जगत् जिनसे प्रकट हुआ है, जिनके ही आधारपर स्थित है और जिनसे ही इसे चेतनता प्राप्त हुई है और जिनका ही यह स्वरूप है, उनको नमस्कार है। जो प्रमाणकी पहुँचसे परे हैं, जिनका दूसरा कोई आधार नहीं है, जो स्वयं ही आधार और आधेयरूप हैं, उन परमानन्दमय चैतन्यस्वरूप भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। सबकी हृदयगुहामें जिनका निवास है, जो देवस्वरूप तथा योगियोंद्वारा सेवित हैं और प्रणवमें उसके अर्थ एवं अधिदेवतारूपमें जिनकी स्थिति है, उन योगमार्गके आदिकारण परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो नादस्वरूप, नादके बीज, प्रणवरूप, सत्स्वरूप अविनाशी तथा सच्चिदानन्दमय हैं, उन तीक्ष्ण चक्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो जरा आदिसे रहित, इस जगत्के साक्षी, मन-वाणीके अगोचर, निरञ्जन तथा अनन्त नामसे प्रसिद्ध हैं, उन विष्णुरूप भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धृति, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—इन सबको भगवान् वासुदेवका स्वरूप कहा गया है। विद्या और

अविद्या भी उन्हींके रूप हैं। वे ही परात्पर परमात्मा कहे गये हैं। जिनका आदि और अन्त नहीं है तथा जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं, उन शान्तस्वरूप भगवान् अच्युतकी जो महात्मा शरण लेते हैं, उन्हें सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य, वरदाता, पुराण, पुरुष, सनातन, सर्वगत तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान्‌को मैं पुन: प्रणाम करता हूँ, पुन: प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुन: प्रणाम करता हूँ। जिनका चरणोदक संसाररूपी रोगको दूर करनेवाला वैद्य है, जिनके चरणोंकी धूल निर्मलता (अन्त:-शुद्धि) का साधन है तथा जिनका नाम समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है, उन अप्रमेय पुरुष श्रीहरिकी मैं आराधना करता हूँ। जो सद्‌रूप, असद्‌रूप, सदसद्‌रूप और उन सबसे विलक्षण हैं तथा जो श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं, उन अविनाशी भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जो निरञ्जन, निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण परमव्योममें विराजमान, विद्या और अविद्यासे परे तथा हृदयकमलमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करनेवाले हैं, जो स्वयंप्रकाश, अनिर्देश्य (जाति, गुण और क्रिया आदिसे रहित), महान्‌से भी परम महान्, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा, सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित, नित्य, परमानन्द और सनातन परब्रह्म हैं, उन जगन्निवास भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। क्रियानिष्ठ भक्त जिनका भजन करते हैं, योगीजन समाधिमें जिनका दर्शन करते हैं तथा जो पूज्यसे भी परम पूज्य एवं शान्त हैं, उन भगवान् श्रीहरिको मैं शरण लेता हूँ। विद्वान् पुरुष भी जिन्हें देख नहीं पाते, जो इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित और सबसे श्रेष्ठ हैं, उन नित्य अविनाशी विभुको मैं प्रणाम करता हूँ। अन्त:करणके संयोगसे जिन्हें जीव कहा जाता है और अविद्याके कार्यसे रहित होनेपर जो परमात्मा कहलाते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जो सबके कारण, समस्त कर्मोंके फलदाता, श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य तथा अजन्मा हैं, उन परात्पर भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके आश्रय तथा ज्ञानमें स्थित हैं, उन सर्वव्यापी श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जो वेदोंके निधि हैं, वेदान्तके विज्ञानद्वारा जिनके परमार्थस्वरूपका भलीभाँति निश्चय होता है, सूर्य और चन्द्रमाके तुल्य जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं, जो ऐश्वर्यशाली इन्द्ररूप हैं, आकाशमें विचरनेवाले पक्षी एवं ग्रह-नक्षत्र आदि जिनके स्वरूप हैं तथा जो खगपति (गरुड़)-स्वरूप हैं, उन भगवान् मुरारिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सबके ईश्वर, सबमें व्यापक, महान् वेदस्वरूप, वेद-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, वाणी और मनकी पहुँचसे परे, अनन्त शक्तिसम्पन्न तथा एकमात्र ज्ञानके ही द्वारा जाननेयोग्य हैं, उन परम पुरुष श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जिनकी सत्ता सर्वत्र परिपूर्ण है, जो इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, सूर्य तथा पुरन्दर आदिके द्वारा स्वयं ही सब लोकोंकी रक्षा करते हैं, उन अप्रमेय परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों पैर, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंसे सेवित तथा सबको संतोष प्रदान करनेवाले हैं, उन उग्रशक्तिसम्पन्न आदिपुरुष श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कालस्वरूप, काल-विभागके हेतु, तीनों गुणोंसे अतीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, कामना पूर्ण करनेवाले, सङ्गरहित, अतीन्द्रिय, विश्वपालक, तृष्णाहीन, निरीह, श्रेष्ठ, मनके द्वारा भी अगम्य, मनोमय और अन्नमय स्वरूप, सबमें व्याप्त, विज्ञानसे सम्पन्न तथा शक्तिशाली हैं, जो वाणीके विषय नहीं हो सकते तथा जो सबके प्राणस्वरूप हैं, उन भगवान्‌का मैं भजन

करता हूँ। जिनके रूपको, जिनके बल और प्रभावको, जिनके विविध कर्मोंको तथा जिनके प्रमाणको ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते, उन आत्मस्वरूप श्रीहरिकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ? मैं संसार-समुद्रमें गिरा हुआ एक दीन मनुष्य हूँ, मोहसे व्याकुल हूँ, सैकड़ों कामनाओंने मुझे बाँध रखा है। मैं अकीर्तिभागी, चुगला, कृतघ्न, सदा अपवित्र, पापपरायण तथा अत्यन्त क्रोधी हूँ। दयासागर! मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये। मैं बार-बार आपकी शरण लेता हूँ[१]।

---

१. नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम्। चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये॥
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च। यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्। वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः॥
आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः। ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः॥
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः। नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात्॥
यः स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभेदैर्जगद्यथावत्स्वकृतं प्रविष्टः। त्वमेव तत्सर्वमनन्तसारः त्वत्तः परं नास्ति यतः परात्मन्॥
अगोचरं यत्तव शुद्धरूपं मायाविहीनं गुणजातिहीनम्। निरञ्जनं निर्मलमप्रमेयं पश्यन्ति सन्तः परमार्थसंज्ञम्॥
एकेन हेम्नैव विभूषणानि यातानि भेदत्वमुपाधिभेदात्। तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा॥
यन्मायया मोहितचेतसस्त्वां पश्यन्ति नात्मानमपि प्रसिद्धम्। त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम्॥
विभुं ज्योतिरनौपम्यं विष्णुसंज्ञं नमाम्यहम्। समस्तमेतदुद्भूतं यतो यत्र प्रतिष्ठितम्॥
यतश्चैतन्यमायातं यद्रूपं तस्य वै नमः। अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम्॥
परमानन्दचिन्मात्रं वासुदेवं नतोऽस्म्यहम्। हृद्गुहानिलयं देवं योगिभिः परिसेवितम्॥
योगानामादिभूतं तं नमामि प्रणवस्थितम्। नादात्मकं नादबीजं प्रणवात्मकमव्ययम्॥
सद्भावं सच्चिदानन्दं तं वन्दे तिग्मचक्रिणम्। अजरं साक्षिणं त्वस्य ह्यवाङ्मनसगोचरम्॥
निरञ्जनमनन्ताख्यं विष्णुरूपं नतोऽस्म्यहम्। इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः॥
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च। विद्याविद्यात्मकं प्राहुः परात्परतरं तथा॥
अनादिनिधनं शान्तं सर्वधातारमच्युतम्। ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती॥
वरं वरेण्यं वरदं पुराणं सनातनं सर्वगतं समस्तम्।
नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयो नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयः॥
यत्पादतोयं भवरोगवैद्यो यत्पादपांशुर्विमलत्वसिद्ध्यै। यन्नाम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रमेयं पुरुषं भजामि॥
सद्रूपं तमसद्रूपं सदसद्रूपमव्ययम्। तत्तद्विलक्षणं श्रेष्ठं श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं भजे॥
निरञ्जनं निराकारं पूर्णमाकाशमध्यगम्। परं च विद्याविद्याभ्यां हृदम्बुजनिवासिनम्॥
स्वप्रकाशमनिर्देश्यं महतां च महत्तरम्। अणोरणीयांसमजं सर्वोपाधिविवर्जितम्॥
यन्नित्यं परमानन्दं परं ब्रह्म सनातनम्। विष्णुसंज्ञं जगद्धाम तमस्मि शरणं गतः॥
यं भजन्ति क्रियानिष्ठा यं पश्यन्ति च योगिनः। पूज्यात्पूज्यतरं शान्तं गतोऽस्मि शरणं प्रभुम्॥
यं न पश्यन्ति विद्वांसो य एतद् व्याप्य तिष्ठति। सर्वस्मादधिकं नित्यं नतोऽस्मि विभुमव्ययम्॥
अन्तःकरणसंयोगाज्जीव इत्युच्यते च यः। अविद्याकार्यरहितः परमात्मेति गीयते॥
सर्वात्मकं सर्वहेतुं सर्वकर्मफलप्रदम्। वरं वरेण्यमजनं प्रणतोऽस्मि परात्परम्॥
सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वान्तर्यामिणं हरिम्। ज्ञानात्मकं ज्ञाननिधिं ज्ञानसंस्थं विभुं भजे॥
नमाम्यहं वेदनिधिं मुरारिं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम्। सूर्येन्दुवत्प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्रं खगस्वरूपं च पतिस्वरूपम्॥
सर्वेश्वरं सर्वगतं महान्तं वेदात्मकं वेदविदां वरिष्ठम्। तं वाङ्मनोऽचिन्त्यमनन्तशक्तिं ज्ञानैकवेद्यं पुरुषं भजामि॥
इन्द्राग्निकालासुरपाशिवायुसोमेशमार्त्तण्डपुरन्दराद्यैः। यः पाति लोकान्परिपूर्णभावस्तमप्रमेयं शरणं प्रपद्ये॥
सहस्रशीर्षं च सहस्रपादं सहस्रबाहुं च सहस्रनेत्रम्। समस्तयज्ञैः परिजुष्टमाद्यं नतोऽस्मि तुष्टिप्रदमुग्रवीर्यम्॥
कालात्मकं कालविभागहेतुं गुणत्रयातीतमहं गुणज्ञम्। गुणप्रियं कामदमस्तसङ्गमतीन्द्रियं विश्वभुजं वितृष्णम्॥
निरीहमग्र्यं मनसाप्यगम्यं मनोमयं चान्नमयं निरूढम्। विज्ञानभेदं प्रतिपन्नकल्पं न वाङ्मयं प्राणमयं भजामि॥
न यस्य रूपं न बलप्रभावौ न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम्। जानन्ति देवाः कमलोद्भवाद्याः स्तोष्याम्यहं तं कथमात्मरूपम्॥

महर्षि उत्तङ्कके द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर परम दयालु तथा तेजोनिधि भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। दोनों नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा धारण करते थे। मस्तकपर किरीट, दोनों कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और भुजाओंमें केयूरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उन्होंने वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभमणि धारण कर रखी थी। सुवर्णमय यज्ञोपवीत उनके बायें कंधेपर सुशोभित हो रहा था। नाकमें पहनी हुई मुक्तामणिकी प्रभासे उनके श्रीअङ्गोंकी श्याम कान्ति और बढ़ गयी थी। वे श्रीनारायणदेव पीताम्बर धारण करके वनमालासे विभूषित हो रहे थे। तुलसीके कोमल दलोंसे उनके चरणारविन्दोंकी अर्चना की गयी थी। उनके श्रीविग्रहका महान् प्रकाश सब ओर छा रहा था। कटिप्रदेशमें किंकिणी और चरणोंमें नूपुर आदि आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनकी फहराती हुई ध्वजामें गरुड़का चिह्न सुशोभित था। इस रूपमें भगवान्‌का दर्शन करके विप्रवर उत्तङ्कने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया[1] और आनन्दके आँसुओंसे श्रीहरिके दोनों चरणोंको नहला दिया। फिर वे एकाग्रचित्त होकर बोले—'मुरारे! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब परम दयालु भगवान् महाविष्णुने मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कको उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स! कोई वर

माँगो। साधुशिरोमणे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।' भगवान् चक्रपाणिके इस कथनको सुनकर महर्षि उत्तङ्कने पुनः प्रणाम किया और उन देवाधिदेव जनार्दनसे इस प्रकार कहा—'भगवन्! मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? देव! मुझे दूसरे वरोंसे क्या प्रयोजन है? मेरी तो जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणोंमें ही अविचल भक्ति बनी रहे।' तब जगदीश्वर भगवान् विष्णुने 'एवमस्तु' (ऐसा ही होगा) यह कहकर शङ्खके सिरेसे उत्तङ्कजीके शरीरका स्पर्श कराया और उन्हें वह दिव्य ज्ञान दे दिया जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तदनन्तर पुनः स्तुति करते हुए विप्रवर उत्तङ्कसे देवदेव जनार्दनने उनके सिरपर हाथ रखकर मुसकराते हुए कहा।

---

संसारसिन्धौ पतितं कदर्यं मोहाकुलं कामशतेन बद्धम्। अकीर्तिभाजं पिशुनं कृतघ्नं सदाशुचिं पापरतं प्रमन्युम्।
दयाम्बुधे पाहि भयाकुलं मां पुनः पुनस्त्वां शरणं प्रपद्ये॥ (ना० पूर्व० ३८। ३—३८)

१. अतसीपुष्पसंकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम्॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम्। नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम्॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। तुलसीकोमलदलैरर्चिताङ्घ्रिं महाद्युतिम्॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम्। दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले॥
(ना० पूर्व० ३८। ४०—४३)

**श्रीभगवान् बोले**—जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अन्तमें मोक्षका भागी होगा।

नारदजी! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर भगवान् लक्ष्मीपति वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उत्तङ्कजी भी वहाँसे बदरिकाश्रमको चले गये। अतः सदा देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। हरिभक्ति श्रेष्ठ कही गयी है। वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। मुने! नरनारायणके आश्रममें जाकर उत्तङ्कजी क्रियायोगमें तत्पर हो प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् माधवकी आराधना करने लगे। वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न थे। उनका द्वैतभ्रम नाश हो चुका था। अतः उन्होंने भगवान् विष्णुके दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लिया। भक्तोंका सम्मान बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण पूजन, नमस्कार अथवा स्मरण कर लेनेपर भी जीवको मोक्ष प्रदान करते हैं[1]। अतः इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य अनन्त, अपराजित श्रीनारायणदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करे। जो इस उपाख्यानको पढ़ता अथवा एकाग्रचित्त होकर सुनता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

## भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा

**श्रीसनकजी कहते हैं**—विप्रवर नारद! अब पुनः भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुनो; वह सर्व-पापहारी, पवित्र तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। अहो! संसारमें भगवान् विष्णुकी कथा अद्भुत है। वह श्रोता, वक्ता तथा विशेषतः भक्तजनोंके पापोंका नाश और पुण्यका सम्पादन करनेवाली है। जो श्रेष्ठ मानव भगवद्भक्तिका रसास्वादन करके प्रसन्न होते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। उनका सङ्ग करनेसे साधारण मनुष्य भी मोक्षका भागी होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो संसार-सागरके पार जाना चाहता हो, वह भगवद्भक्तोंके भक्तोंकी सेवा करे, क्योंकि वे सब पापोंको हर लेनेवाले हैं। दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् गोविन्द दुस्तर भवसागरसे उद्धार कर देते हैं। जो सोते, खाते, चलते, ठहरते, उठते और बोलते हुए भी भगवान् विष्णुके नामका चिन्तन करता है, उसे प्रतिदिन बारम्बार नमस्कार है। जिनका मन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें अनुरक्त है, उनका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है; क्योंकि योगियोंके लिये भी दुर्लभ मुक्ति उन भक्तोंके हाथमें ही रहती है[2]।

विप्रवर नारद! जानकर या बिना जाने भी जो लोग भगवान्‌की पूजा करते हैं, उन्हें अविनाशी भगवान् नारायण अवश्य मोक्ष देते हैं। सब भाई-बन्धु अनित्य हैं। धन-वैभव भी सदा रहनेवाला नहीं है और मृत्यु सदा समीप खड़ी रहती है—यह सोचकर धर्मका संचय करना चाहिये[3]।

---

१. पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः। नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः॥
(ना० पूर्व० ३८। ५७)

२. संसारसागरं तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुङ्गव। स भजेद्धरिभक्तानां भक्तान्वै पापहारिणः॥
दृष्टः स्मृतः पूजितो वा ध्यातः प्रणमितोऽपि वा। समुद्धरति गोविन्दो दुस्तराद् भवसागरात्॥
स्वपन् भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा। चिन्तयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम्। येषां मुक्तिः करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा॥
(ना० पूर्व० ३९। ५—८)

३. अनित्या बान्धवाः सर्वे विभवो नैव शाश्वतः। नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥
(ना० पूर्व० ३९। ४९)

मूर्खलोग मदसे उन्मत्त होकर व्यर्थ गर्व करते हैं। जब शरीरका ही विनाश निकट है तो धन आदिकी तो बात ही क्या कही जाय? तुलसीकी सेवा दुर्लभ है, साधु पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है और सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव भी किसी विरलेको ही सुलभ होता है। सत्सङ्ग, तुलसीकी सेवा तथा भगवान् विष्णुकी भक्ति—ये सभी दुर्लभ हैं। दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर विद्वान् पुरुष उसे व्यर्थ न गँवाये। जगदीश्वर श्रीहरिकी पूजा करे। द्विजोत्तम! इस संसारमें यही सार है। मनुष्य यदि दुस्तर भवसागरके पार जाना चाहता है तो वह भगवान्‌के भजनमें तत्पर हो जाय। यही रसायन है। भैया! भगवान् गोविन्दका आश्रय लो। प्रिय मित्र! इस कार्यमें विलम्ब न करो; क्योंकि यमराजका नगर निकट ही है। जो महात्मा पुरुष सबके आधार, सम्पूर्ण जगत्‌के कारण तथा समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी भगवान् विष्णुकी शरण ले चुके हैं, वे निस्संदेह कृतार्थ हो गये हैं। जो लोग प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले भगवान् महाविष्णुकी पूजा करते हैं, वे वन्दनीय हैं। जो विष्णुभक्त पुरुष निष्कामभावसे परमेश्वर श्रीहरिका यजन करते हैं, वे इक्कीस पीढ़ियोंके साथ वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो कुछ भी न चाहनेवाले महात्मा भगवद्भक्तको जल अथवा फल देते हैं, वे ही भगवान्‌के प्रेमी हैं। जो कामनारहित होकर भगवान् विष्णुके भक्तों तथा भगवान् विष्णुका भी पूजन करते हैं, वे ही अपने चरणोंकी धूलसे सम्पूर्ण विश्वको पवित्र करते हैं[1]। जिसके घरमें सदा भगवत्पूजापरायण पुरुष निवास करता है, वहीं सम्पूर्ण देवता तथा साक्षात् श्रीहरि विराजमान होते हैं। ब्रह्मन्! जिसके घरमें तुलसी पूजित होती हैं, वहाँ प्रतिदिन सब प्रकारके श्रेयकी वृद्धि होती है। जहाँ शालग्रामशिलारूपमें भगवान् केशव निवास करते हैं, वहाँ भूत, वेताल आदि ग्रह बाधा नहीं पहुँचाते। जहाँ शालग्रामशिला विद्यमान है, वह स्थान तीर्थ है, तपोवन है, क्योंकि शालग्रामशिलामें साक्षात् भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं। ब्रह्मन्! पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र तथा छः अङ्गोंसहित वेद—ये सब भगवान् विष्णुके स्वरूप कहे गये हैं। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी चार बार परिक्रमा

कर लेते हैं, वे भी उस परम पदको प्राप्त होते हैं, जहाँ समस्त कर्मबन्धनोंका नाश हो जाता है[2]।

१. ये यजन्ति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा। त एव भुवनं सर्वं पुनन्ति स्वाङ्घ्रि पांसुना॥
(ना० पूर्व० ३९। ६४)

२. भक्त्या कुर्वन्ति ये विष्णोः प्रदक्षिणचतुष्टयम्। तेऽपि यान्ति परं स्थानं सर्वकर्मनिबर्हणम्॥
(ना० पूर्व० ३९। ७१)

## इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन तथा भगवत्-भजनका माहात्म्य

**श्रीसनकजी कहते हैं**—मुने! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुकी विभूतिस्वरूप मनु और इन्द्र आदिका वर्णन करूँगा। इस वैष्णवी विभूतिका श्रवण अथवा कीर्तन करनेवाले पुरुषोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

एक समय वैवस्वत मन्वन्तरके भीतर ही गुरु बृहस्पति और देवताओंसहित इन्द्र सुधर्मके निवास-स्थानपर गये। देवर्षे! बृहस्पतिजीके साथ देवराजको आया देख सुधर्मने आदरपूर्वक उनकी यथायोग्य पूजा की। सुधर्मसे पूजित हो इन्द्रने विनयपूर्वक कहा।

**इन्द्र बोले**—विद्वन्! यदि आप बीते हुए ब्रह्मकल्पका वृत्तान्त जानते हैं तो बताइये। मैं यही पूछनेके लिये गुरुजीके साथ आया हूँ।

देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर सुधर्म हँस पड़ा और उसने विनयपूर्वक पूर्वकल्पकी सब बातोंका विधिवत् वर्णन किया।

**सुधर्मने कहा**—इन्द्र! एक सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माजीका एक दिन होता है और उनके एक दिनमें चौदह मनु, चौदह इन्द्र तथा पृथक्-पृथक् अनेक प्रकारके देवता हुआ करते हैं। वासव! सभी इन्द्र और मनु आदि तेज, लक्ष्मी, प्रभाव और बलमें समान ही होते हैं। मैं उन सबके नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। सबसे पहले स्वायम्भुव मनु हुए। तदनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, सातवें वैवस्वत मनु, आठवें सूर्यसावर्णि और नवें दक्षसावर्णि हैं। दसवें मनुका नाम ब्रह्मसावर्णि और ग्यारहवेंका धर्मसावर्णि है। तदनन्तर बारहवें रुद्रसावर्णि तथा तेरहवें रोचमान हुए। चौदहवें मनुका नाम भौत्य बताया गया है। ये चौदह मनु हैं।

देवराज! अब मैं देवताओं और इन्द्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। स्वयम्भू मन्वन्तरमें देवतालोग यामके नामसे विख्यात थे। उनके परम बुद्धिमान् इन्द्रकी शचीपति नामसे प्रसिद्धि थी। स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तुषित नामके देवता थे। उनके स्वामी इन्द्रका नाम विपश्चित था। वे सब प्रकारकी सम्पदाओंसे समृद्ध थे। तीसरे उत्तम नामक मन्वन्तरमें सुधामा, सत्य, शिव तथा प्रतर्दन नामवाले देवता थे। उनके इन्द्र सुशान्ति नामसे प्रसिद्ध थे। चौथे तामस मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये देवता हुए थे[1]

१. विष्णुपुराणमें भी तामस मन्वन्तरके ये ही देवता बताये गये हैं। वहाँका मूल पाठ इस प्रकार है—

तामसस्यान्तरे देवाः सुपाराः हरयस्तथा। सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः॥
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीत् ......। (३। १। १६-१७)

मार्कण्डेयपुराणमें तामस मन्वन्तरके देवता सत्य, सुधी, हरि तथा सुरूप बताये गये हैं और इन्द्रका नाम 'शिखी' कहा गया है।

शक्र! उन देवताओंके इन्द्रका नाम उस समय शिबि था। पाँचवें (रैवत) मन्वन्तरमें अमिताभ आदि देवता थे और पाँचवें देवराजका नाम विभु कहा गया है। छठे (चाक्षुष) मन्वन्तरमें आर्य आदि देवता बताये गये हैं। उन सबके इन्द्रका नाम मनोजव था। इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता हैं और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न आप ही इन्द्र हैं। आपका विशेष नाम पुरन्दर बताया गया है। आठवें सूर्यसावर्णि मन्वन्तरमें अप्रमेय तथा सुतप आदि होनेवाले देवता बताये जाते हैं। भगवान् विष्णुकी आराधनाके प्रभावसे राजा बलि उनके इन्द्र होंगे। नवें दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें पार आदि देवता होंगे और उनके इन्द्रका नाम अद्भुत बताया जाता है। दसवें ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें सुवासन आदि देवता कहे गये हैं। उनके इन्द्रका नाम शान्ति होगा। ग्यारहवें धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें विहङ्गम आदि देवता होंगे और उनके इन्द्र वृष नामसे प्रसिद्ध होंगे। बारहवें रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें हरित आदि देवता तथा ऋतुधामा नामवाले इन्द्र होंगे। तेरहवें रोचमान या रौच्य नामक मन्वन्तरमें सुत्रामा आदि देवता होंगे। उनके महापराक्रमी इन्द्रका नाम दिवस्पति कहा जाता है। चौदहवें भौत्य मन्वन्तरमें चाक्षुष आदि देवता होंगे और उनके इन्द्रकी शुचि नामसे प्रसिद्धि होगी। देवराज! इस प्रकार मैंने भूत और भविष्य मनु, इन्द्र तथा देवताओंका यथार्थ वर्णन किया है। ये सब ब्रह्माजीके एक दिनमें अपने अधिकारका उपभोग करते हैं। सम्पूर्ण लोकों तथा सभी स्वर्गोंमें एक ही तरहकी सृष्टि कही गयी है। उस सृष्टिके विधाता बहुत हैं। उनकी संख्या यहाँ कौन जानता है? देवराज! मेरे ब्रह्मलोकमें रहते समय बहुत-से ब्रह्मा आये और चले गये। आज मैं उनकी संख्या बतानेमें असमर्थ हूँ। इस स्वर्गलोकमें आकर भी मेरा जितना समय बीता है, उसको सुनो—'अबतक चार मनु बीत गये, किंतु मेरी समृद्धिका विस्तार बढ़ता ही गया। प्रभो! अभी मुझे सौ करोड़ युगोंतक यहीं रहना है। तत्पश्चात् मैं कर्मभूमिको जाऊँगा।'

महात्मा सुधर्मके ऐसा कहनेपर देवराज मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और निरन्तर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग गये। यद्यपि देवतालोग स्वर्गका सुख भोगते हैं तथापि वे सब इस भारतवर्षमें जन्म पानेके लिये लालायित रहते हैं। जो भगवान् नारायणकी पूजा करते हैं, उन महात्माओंकी पूजा सदा ब्रह्मा आदि देवता किया करते हैं। जो महात्मा सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहका त्याग करके निरन्तर भगवान् नारायणके चिन्तनमें लगे रहते हैं, उन्हें भयङ्कर संसारका बन्धन कैसे प्राप्त हो सकता है? यदि कोई उन महापुरुषोंके सङ्गका लोभ रखते हैं तो वे भी मोक्षके भागी हो जाते हैं। जो मानव प्रतिदिन सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके गरुड़वाहन भगवान् नारायणकी अर्चना करते हैं, वे सम्पूर्ण पापराशियोंसे सर्वथा मुक्त होकर हर्षपूर्ण हृदयसे भगवान् विष्णुके कल्याणमय पदको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य आसक्तिरहित तथा पर-अवर (उत्तम-मध्यम, शुभ-अशुभ)-के ज्ञाता हैं और निरन्तर देवगुरु भगवान् नारायणका चिन्तन करते रहते हैं, उस ध्यानसे उनके अन्तःकरणकी सारी पापराशि नष्ट हो जाती है और वे फिर कभी माताके स्तनोंका दूध नहीं पीते। जो मानव भगवान्‌की कथा श्रवण करके अपने समस्त दोष-दुर्गुण दूर कर चुके हैं और जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी आराधनामें अनुरक्त है, वे अपने शरीरके सङ्ग अथवा सम्भाषणसे भी संसारको पवित्र करते हैं, अतः सदा श्रीहरिकी ही पूजा

करनी चाहिये। ब्रह्मन्! जैसे नीची भूमिमें इधर-उधरका सारा जल (सिमट-सिमटकर) एकत्र हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ भगवत्पूजापरायण शुद्धचित्त महापुरुष रहते हैं, वहीं सम्पूर्ण कल्याणका वास होता है[१]। भगवान् विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ बन्धु हैं। वे ही सर्वोत्तम गति हैं। अतः उन्हींकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये, क्योंकि वे ही सबकी चेतनाके कारण हैं। मुनिश्रेष्ठ! तुम स्वर्ग और मोक्षफलके दाता सदानन्दस्वरूप निरामय भगवान् श्रीहरिकी पूजा करो। इससे तुम्हें परम कल्याणकी प्राप्ति होगी।

## चारों युगोंकी स्थितिका संक्षेपसे तथा कलिधर्मका विस्तारसे वर्णन एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमाका प्रतिपादन

**नारदजीने कहा—**मुने! आप तात्त्विक अर्थोंके ज्ञानमें निपुण हैं। अब मैं युगोंकी स्थितिका परिचय सुनना चाहता हूँ।

**श्रीसनकजीने कहा—**महाप्राज्ञ! साधुवाद, तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। मुने! तुम सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाले हो। अच्छा, अब मैं समस्त जगत्‌के लिये उपकारी युग-धर्मका वर्णन आरम्भ करता हूँ। किसी समय तो पृथ्वीपर उत्तम धर्मकी वृद्धि होती है और किसी समय वही विनाशको प्राप्त होने लगता है। साधुशिरोमणे! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग माने गये हैं; इनकी आयु बारह हजार दिव्य वर्षोंकी समझनी चाहिये। वे चारों युग उतने ही सौ वर्षोंकी संध्या और संध्यांशसे युक्त होते हैं। इनकी कला-संख्या सदा एक-सी ही जाननी चाहिये। पहले युगको सत्ययुग कहते हैं, दूसरेका नाम त्रेता है, तीसरेका नाम द्वापर है और अन्तिम युगको कलियुग कहते हैं। इसी क्रमसे इनका आगमन होता है। विप्रवर! सत्ययुगमें देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पोंका भेद नहीं था। उस समय सब-के-सब देवताओंके समान स्वभाववाले थे। सब प्रसन्न और धर्मनिष्ठ थे। कृतयुगमें क्रय-विक्रयका व्यापार और वेदोंका विभाग नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहकर सदा भगवान् नारायणकी उपासना करते थे। सभी अपनी योग्यताके अनुसार तपस्या और ध्यानमें लगे रहते थे। उनमें काम, क्रोध आदि दोष नहीं थे। सब लोग शम-दम आदि सद्‌गुणोंमें तत्पर थे। सबका मन धर्मसाधनमें लगा रहता था। किसीमें ईर्ष्या तथा दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं था। सभी लोग दम्भ और पाखण्डसे दूर रहते थे। सत्ययुगके सभी द्विज सत्यवादी, चारों आश्रमोंके धर्मका पालन करनेवाले, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। चारों आश्रमोंवाले अपने-अपने कर्मोंके द्वारा कामना और फलासक्तिका त्याग करके परम गतिको प्राप्त होते थे। सत्ययुगमें भगवान् नारायणका श्रीविग्रह अत्यन्त निर्मल एवं शुक्लवर्णका होता है। मुनिश्रेष्ठ! त्रेतामें धर्म एक पादसे हीन हो जाता है। (सत्ययुगकी अपेक्षा एक चौथाई कम लोग धर्मका पालन करते हैं।) भगवान्‌के शरीरका वर्ण लाल हो जाता है। उस समय जनताको

---

१. ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषाः कृष्णाङ्घ्रिपद्मभजने रतचेतनाश्च।
ते वै पुनन्ति च जगन्ति शरीरसङ्गात् सम्भाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः॥
हरिपूजापरा यत्र महान्तः शुद्धबुद्धयः। तत्रैव सकलं भद्रं यथा निम्ने जलं द्विज॥
(ना० पूर्व० ४०। ५३-५४)

कुछ क्लेश भी होने लगता है। त्रेतामें सभी द्विज क्रियायोगमें तत्पर रहते हैं। यज्ञ-कर्ममें उनकी निष्ठा होती है। वे नियमपूर्वक सत्य बोलते, भगवान्‌का ध्यान करते, दान देते और न्याययुक्त प्रतिग्रह भी स्वीकार करते हैं। मुनीश्वर! द्वापरमें धर्मके दो ही पैर रह जाते हैं। भगवान् विष्णुका वर्ण पीला हो जाता है और वेदके चार विभाग हो जाते हैं। द्विजोत्तम! उस समय कोई-कोई असत्य भी बोलने लगते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंमेंसे कुछ लोगोंमें राग-द्वेष आदि दुर्गुण आ जाते हैं। विप्रवर! कुछ लोग स्वर्ग और अपवर्गके लिये यज्ञ करते हैं, कोई धनादिकी कामनाओंमें आसक्त हो जाते हैं और कुछ लोगोंका हृदय पापसे मलिन हो जाता है। द्विजश्रेष्ठ! द्वापरमें धर्म और अधर्म दोनोंकी स्थिति समान होती है। अधर्मके प्रभावसे उस समयकी प्रजा क्षीण होने लगती है। मुनीश्वर! कितने ही लोग द्वापर आनेपर अल्पायु भी होंगे। ब्रह्मन्! कुछ लोग दूसरोंको पुण्यमें तत्पर देखकर उनसे डाह करने लगेंगे। कलियुग आनेपर धर्मका एक ही पैर शेष रह जाता है। इस तामस युगके प्राप्त होनेपर भगवान् श्रीहरि श्याम रंगके हो जाते हैं। उसमें कोई बिरला ही धर्मात्मा यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और कोई महान् पुण्यात्मा ही क्रियायोगमें तत्पर रहता है। उस समय धर्मपरायण मनुष्यको देखकर सब लोग ईर्ष्या और निन्दा करते हैं। कलियुगमें व्रत और सदाचार नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान और यज्ञ आदिकी भी यही दशा होती है। उस समय अधर्मका प्रचार होनेसे जगत्‌में उपद्रव होते रहते हैं। सब लोग दूसरोंके दोष बतानेवाले और स्वयं पाखण्डपूर्ण आचारमें तत्पर होते हैं।

**नारदजीने कहा**—मुने! आपने संक्षेपसे ही युगधर्मोंका वर्णन किया है, कृपया कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका खान-पान और आचार-व्यवहार कैसा होगा?

**श्रीसनकजीने कहा**—सब लोकोंका उपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ! सुनो, मैं कलि-धर्मोंका यथार्थ एवं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। कलि बड़ा भयङ्कर युग है। उसमें सब प्रकारके पातकोंका सम्मिश्रण होता है अर्थात् पापोंकी बहुलता होनेके कारण एक पापमें दूसरा पाप शामिल हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धर्मसे मुँह मोड़ लेते हैं। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर सभी द्विज वेदोंसे विमुख हो जाते हैं। सभी किसी-न-किसी बहानेसे धर्ममें लगते हैं। सब दूसरोंके दोष बताया करते हैं। सबका अन्तःकरण व्यर्थ अहङ्कारसे दूषित होता है। पण्डित लोग भी सत्यसे दूर रहते हैं। 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' इस प्रकार सभी परस्पर विवाद करते हैं। सब मनुष्य अधर्ममें आसक्त और वितण्डावादी होते हैं। इन्हीं कारणोंसे कलियुगमें सब लोग स्वल्पायु होंगे। ब्रह्मन्! थोड़ी आयु होनेके कारण मनुष्य शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकेंगे और विद्याध्ययनशून्य होंगे। उनके द्वारा बार-बार अधर्मपूर्ण बर्ताव होता है। उस समयकी समस्त पापपरायण प्रजा अवस्था-क्रमके विपरीत मरने लगेगी। ब्राह्मण आदि सभी वर्णके लोगोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। मूढ़ मनुष्य काम-क्रोधके वशीभूत हो व्यर्थके संतापसे पीड़ित होंगे। कलियुगमें सब वर्णोंके लोग शूद्रके समान हो जायँगे। उत्तम नीच हो जायँगे और नीच उत्तम। शासकगण केवल धन-संग्रहमें लग जायँगे और अन्यायपूर्ण बर्ताव करेंगे। वे अधिक कर लगाकर प्रजाको पीड़ा देंगे। द्विज लोग शूद्रोंके मुर्दे ढोने लगेंगे और पति अपनी धर्मपत्नियोंके होते हुए भी व्यभिचारमें फँसकर परायी स्त्रियोंसे संगमन करेंगे। पुत्र पितासे और

सारी स्त्रियाँ पतिसे द्वेष करेंगी। सब लोग परस्त्रीलम्पट और पराये धनमें आसक्त होंगे। मछलीके मांससे जीवन-निर्वाह करेंगे और बकरी तथा भेड़का भी दूध दुहेंगे। नारदजी! घोर कलियुगमें सब मनुष्य पापपरायण हो जायँगे। सभी लोग श्रेष्ठ पुरुषोंमें दोष देखेंगे और उनका उपहास करेंगे। नदियोंके तटपर भी कुदालसे खोदकर अनाज बोयेंगे। पृथ्वी फलहीन हो जायगी। बीज और फूल भी नष्ट हो जायँगे। युवतियाँ प्राय: वेश्याओंके लावण्य और स्वभावको अपने लिये आदर्श मानकर उसकी अभिलाषा करेंगी। ब्राह्मण धर्म बेचनेवाले होंगे, स्त्रियाँ अपना शरीर बेचेंगी अर्थात् वेश्यावृत्ति करेंगी तथा दूसरे द्विज वेदोंका विक्रय करनेवाले और शूद्रोंके-से आचरणमें तत्पर होंगे। लोग श्रेष्ठ पुरुषों और विधवाओंके भी धन चुरा लेंगे। ब्राह्मण धनके लिये लोलुप होकर व्रतोंका पालन नहीं करेंगे। लोग व्यर्थके वाद-विवादमें फँसकर धर्मका आचरण छोड़ बैठेंगे। द्विजलोग केवल दम्भके लिये पितरोंका श्राद्ध आदि कार्य करेंगे। नीच मनुष्य अपात्रोंको ही दान देंगे और केवल दूधके लोभसे गौओंसे प्रेम करेंगे। विप्रगण स्नान-शौच आदि क्रिया छोड़ देंगे। अधम द्विज असमयमें (मुख्यकाल बिताकर) संध्या आदि कर्म करेंगे। मनुष्य साधुओं तथा ब्राह्मणोंकी निन्दामें तत्पर रहेंगे।

नारदजी! प्राय: किसीका मन भगवान् विष्णुके भजनमें नहीं लगेगा। द्विजलोग यज्ञ नहीं करेंगे तथा दुष्ट राजकर्मचारी धनके लिये द्विजोंको भी पीटेंगे। मुने! घोर कलियुगमें सब लोग दानसे मुँह मोड़ लेंगे और ब्राह्मण पतितोंका दिया हुआ दान भी ग्रहण कर लेंगे। कलिके प्रथम पादमें भी मनुष्य भगवान् विष्णुकी निन्दा करेंगे और युगके अन्तिम भागमें तो कोई भगवान्‌का नामतक नहीं लेगा। कलिमें द्विजलोग शूद्रोंकी स्त्रियोंसे संगम करेंगे, विधवाओंसे व्यभिचारके लिये लालायित होंगे और शूद्रोंके घरकी बनी हुई रसोई भोजन करेंगे। वेदोक्त सन्मार्गका त्याग करके कुमार्गपर चलने लगेंगे और चारों आश्रमोंकी निन्दा करते हुए पाखण्डी हो जायँगे। शूद्रलोग द्विजोंकी सेवा नहीं करेंगे और पाखण्ड-चिह्न धारण करके वे द्विजातियोंके धर्मको अपनायेंगे। गेरुआ वस्त्र पहने, जटा बढ़ाये और शरीरमें भस्म रमाये शूद्रलोग झूठी युक्तियाँ देकर धर्मका उपदेश करेंगे। दूषित अन्त:करणवाले शूद्र संन्यासी बनेंगे। मुने! कलियुगमें लोग केवल सूदसे जीवन-निर्वाह करनेवाले होंगे। धर्महीन अधम मनुष्य पाखण्डी, कापालिक एवं भिक्षु बनेंगे। द्विजश्रेष्ठ! शूद्र ऊँचे आसनपर बैठकर द्विजोंको धर्मका उपदेश करेंगे। ये तथा और भी बहुत-से पाखण्डमत प्रचलित होंगे, जो प्राय: वेदोंकी निन्दा करेंगे। कलिमें प्राय: धर्मके विध्वंसक मनुष्य गाने-बजानेमें कुशल तथा शूद्रोंके धर्मका आश्रय लेनेवाले होंगे। सबके पास थोड़ा धन होगा। प्राय: सभी व्यर्थके चिह्न धारण करनेवाले और वृथा अहंकारसे दूषित होंगे। कलिके नीच मनुष्य दूसरोंका धन हड़पनेवाले होंगे। प्राय: सभी सदा दान लेंगे और उनका स्वभाव जगत्‌को बुरे मार्गपर ले जानेवाला होगा। सभी अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे। नारदजी! कलियुगमें अधर्म ही लोगोंका भाई-बन्धु होगा। वे सब-के-सब विश्वासघाती, क्रूर और दयाधर्मसे शून्य होंगे। विप्रवर! घोर कलियुगमें बड़ी-से-बड़ी आयु सोलह वर्षकी होगी और पाँच वर्षकी कन्याके बच्चा पैदा होगा। लोग सात या आठ वर्षकी अवस्थामें जवान कहलायेंगे। सभी अपने कर्मका त्याग करनेवाले कृतघ्न तथा धर्मयुक्त आजीविकाको भंग करनेवाले होंगे। कलियुगमें द्विज प्रतिदिन भीख माँगनेवाले होंगे। वे दूसरोंका अपमान करेंगे और दूसरोंके ही घरमें रहकर प्रसन्न होंगे। इसी प्रकार दूसरोंकी निन्दामें तत्पर

तथा व्यर्थ विश्वास दिलानेवाले लोग सदा पिता, माता और पुत्रोंकी निन्दा करेंगे। वाणीसे धर्मकी बात करेंगे, किंतु उनका मन पापमें आसक्त होगा। धन, विद्या और जवानीके नशेमें मतवाले हो सब लोग दुःख भोगते रहेंगे। रोग-व्याधि, चोर-डाकू तथा अकालसे पीड़ित होंगे। सबके मनमें अत्यन्त कपट भरा होगा और अपने अपराधका विचार न करके व्यर्थ ही दूसरोंपर दोषारोपण करेंगे। पापी मनुष्य धर्ममार्गका संचालन करनेवाले धर्मपरायण पुरुषका तिरस्कार करेंगे। कलियुग आनेपर म्लेच्छ जातिके राजा होंगे। शूद्र लोग भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवाले होंगे और द्विज उनकी सेवा-शुश्रूषामें संलग्न रहेंगे। इस सङ्कटकालमें न कोई शिष्य होगा, न गुरु; न पुत्र होगा, न पिता और न पत्नी होगी न पति। कलियुगमें धनीलोग भी याचक होंगे और द्विजलोग रसका विक्रय करेंगे। धर्मका चोला पहने हुए मुनिवेषधारी द्विज नहीं बेचनेयोग्य वस्तुओंका विक्रय तथा अगम्या स्त्रीके साथ समागम करेंगे। मुने! नरकके अधिकारी द्विज वेदों और धर्मशास्त्रोंकी निन्दा करते हुए शूद्रवृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करेंगे।

कलियुगमें सभी मनुष्य अनावृष्टिसे भयभीत होकर आकाशकी ओर आँखें लगाये रहेंगे और क्षुधाके भयसे कातर बने रहेंगे। उस अकालके समय मनुष्य कन्द, पत्ते और फल खाकर रहेंगे और अनावृष्टिसे अत्यन्त दुःखित होकर आत्मघात कर लेंगे। कलियुगमें सब लोग कामवेदनासे पीड़ित, नाटे शरीरवाले, लोभी, अधर्मपरायण, मन्दभाग्य तथा अधिक संतानवाले होंगे। स्त्रियाँ अपने शरीरका ही पोषण करनेवाली तथा वेश्याओंके सौन्दर्य और स्वभावको अपनानेवाली होंगी। वे पतिके वचनोंका अनादर करके सदा दूसरेके घरमें निवास करेंगी। अच्छे कुलोंकी स्त्रियाँ भी दुराचारिणी होकर सदा दुराचारियोंसे ही स्नेह करेंगी और अपने पुरुषोंके प्रति असद्व्यवहार करनेवाली होंगी। चोर आदिके भयसे डरे हुए लोग अपनी रक्षाके लिये काष्ठ-यन्त्र अर्थात् काठके मजबूत किवाड़ बनायेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त पीड़ित हुए मनुष्य दुःखी होकर गेहूँ और जौ आदि अन्नसे सम्पन्न देशमें चले जायँगे। लोग हृदयमें निषिद्ध कर्मका संकल्प लेकर ऊपरसे शुभ वचन बोलेंगे। अपने कार्यकी सिद्धि होनेतक ही लोग बन्धुता (सौहार्द) प्रकट करेंगे। संन्यासी भी मित्र आदिके स्नेह-सम्बन्धसे बँधे रहेंगे और अन्न-संग्रहके लिये लोगोंको चेले बनायेंगे। स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई बड़ोंकी तथा पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगी। जिस समय द्विज पाखण्डी लोगोंका साथ करके पाखण्डपूर्ण बातें करनेवाले हो जायँगे, उस समय कलियुगका वेग और बढ़ेगा। जब द्विज-जातिकी प्रजा यज्ञ और होम करना छोड़ देगी, उसी समयसे बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान कर लेना चाहिये।

नारदजी! कलियुगके बढ़नेसे पापकी वृद्धि होगी और छोटे बालकोंकी भी मृत्यु होने लगेगी। सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेपर यह जगत् श्रीहीन हो जायगा। विप्रवर! इस प्रकार मैंने तुम्हें कलिका स्वरूप बतलाया है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर

हैं, उन्हें यह कलियुग कभी बाधा नहीं देता। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें भगवान्‌के ध्यानको, द्वापरमें यज्ञको और कलियुगमें एकमात्र दानको ही श्रेष्ठ बताया गया है। सत्ययुगमें जो पुण्यकर्म दस वर्षोंमें सिद्ध होता है, त्रेतामें एक वर्ष और द्वापरमें एक मासमें जो धर्म सफल होता है, वही कलियुगमें एक ही दिन-रातमें सिद्ध हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्‌का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है[१]। जो मनुष्य दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन अथवा उनकी पूजा करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं देता है। जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे 'नमो नारायणाय'का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता। घोर कलियुग आनेपर भी सम्पूर्ण जगत्‌के आधार एवं परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाला कभी कष्ट नहीं पाता। अहो! सम्पूर्ण धर्मोंसे रहित भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर जिन्होंने एक बार भी भगवान् केशवका पूजन कर लिया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं। कलियुगमें वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते समय जो कमी-वेशी रह जाती है, उस दोषके निवारणपूर्वक कर्ममें पूर्णता लानेवाला यहाँ केवल भगवान्‌का स्मरण ही है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे! केशव! गोविन्द! जगन्मय! वासुदेव!' इस प्रकार कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता[२]। अथवा जो 'शिव! शङ्कर! रुद्र! ईश! नीलकण्ठ! त्रिलोचन!' इत्यादि महादेवजीके नामोंका उच्चारण करते हैं उन्हें भी कलियुग बाधा नहीं देता। नारदजी! 'महादेव! विरूपाक्ष! गङ्गाधर! मृड! और अव्यय!' इस प्रकार जो शिव-नामोंका कीर्तन करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं— अथवा जो 'जनार्दन! जगन्नाथ! पीताम्बरधर! अच्युत!' इत्यादि विष्णु-नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें इस संसारमें कलियुगसे भय नहीं है। विप्रवर! घोर कलियुग आनेपर संसारमें मनुष्योंको पुत्र, स्त्री और धन आदि तो सुलभ हैं, किंतु भगवान् विष्णुकी भक्ति दुर्लभ है। जो वेदमार्गसे बहिष्कृत, पापकर्मपरायण तथा मानसिक शुद्धिसे रहित हैं, ऐसे लोगोंका उद्धार केवल भगवान्‌के नामसे ही होता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने अधिकारके अनुसार यथाशक्ति सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें—भगवान् महाविष्णुको समर्पित कर दे और स्वयं उन्हीं नारायणदेवकी शरण होकर रहे। परमात्मा महाविष्णुको समर्पित किये हुए कर्म उनके स्मरणमात्रसे निश्चय ही पूर्ण हो जाते हैं। नारदजी! जो भगवान् विष्णुके स्मरणमें लगे हैं और जिनका चित्त भगवान् शिवके नाममें अनुरक्त है, उनके समस्त कर्म अवश्य पूर्ण हो जाते हैं। भगवन्नाममें अनुरक्तचित्तवाले पुरुषोंका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है। वे देवताओंके लिये भी पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अधिक बातें करनेसे क्या लाभ? अतः मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी ही बात कहता हूँ कि भगवन्नामपरायण मनुष्योंको कलियुग कभी बाधा नहीं दे सकता। भगवान् विष्णुका नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है[३]।

## प्रथम पाद सम्पूर्ण

१. यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां शरदा च यत्। द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(ना० पूर्व० ४१। ९१-९२)

२. न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम्। हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णत्वविधायकम्॥
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय। इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान्बाधते कलिः॥
(ना० पूर्व० ४१। ९९-१००)

३. हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पूर्व० ४१। ११५)

# द्वितीय पाद

## सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण

**श्रीनारदजीने पूछा**—सनन्दनजी! इस स्थावर-जङ्गमरूप जगत्‌की उत्पत्ति किससे हुई है और प्रलयके समय यह किसमें लीन होता है?

**श्रीसनन्दनजी बोले**—नारदजी! सुनो, मैं भरद्वाजके पूछनेपर भृगुजीने जो शास्त्र बताया है, वही कहता हूँ।

**भृगुजी बोले**—भरद्वाज! महर्षियोंने जिन पूर्वपुरुषको मानस-नामसे जाना और सुना है, वे आदि-अन्तसे रहित देव 'अव्यक्त' नामसे विख्यात हैं। वे अव्यक्त पुरुष शाश्वत, अक्षय एवं अविनाशी हैं; उन्हींसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूत-प्राणी जन्म और मृत्युको प्राप्त होते हैं। उन स्वयम्भू भगवान् नारायणने अपनी नाभिसे तेजोमय दिव्य कमल प्रकट किया। उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो वेदस्वरूप हैं, उनका दूसरा नाम विधि है। उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी रचना की है। इस प्रकार इस विराट् विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं, जो अनन्त नामसे विख्यात हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे स्थित हैं। जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, ऐसे पुरुषोंके लिये उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है।

**भरद्वाजजीने पूछा**—जीव क्या है और कैसा है? यह मैं जानना चाहता हूँ। रक्त और मांसके संघात (समूह) तथा मेद-स्नायु और अस्थियोंके संग्रहरूप इस शरीरके नष्ट होनेपर तो जीव कहीं नहीं दिखायी देता।

**भृगुने कहा**—मुने! साधारणतया पाँच भूतोंसे निर्मित किसी भी शरीरको यहाँ एकमात्र अन्तरात्मा धारण करता है। वही गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श, रूप तथा अन्य गुणोंका भी अनुभव करता है। अन्तरात्मा सम्पूर्ण अङ्गोंमें व्याप्त रहता है। वही इसमें होनेवाले सुख-दुःखका भी अनुभव करता है। इस शरीरके पाँचों तत्त्व जब अलग-अलग हो जाते हैं, तब वह इस देहको त्यागकर अदृश्य हो जाता है। चेतनता जीवका गुण बतलाया जाता है। वह स्वयं चेष्टा करता है और सबको चेष्टामें लगाता है। मुने! देहका नाश होनेसे जीवका नाश नहीं होता। जो लोग देहके नाशसे जीवके नाशकी बात कहते हैं, वे अज्ञानी हैं और उनका यह कथन मिथ्या है। जीव तो इस देहसे दूसरी देहमें चला जाता है। तत्त्वदर्शी पुरुष अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसका दर्शन करते हैं। विद्वान् पुरुष शुद्ध एवं सात्त्विक आहार करके सदा रातके पहले और पिछले पहरमें योगयुक्त तथा विशुद्ध-चित्त होकर अपने भीतर ही आत्माका दर्शन करता है।

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये। सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है। लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं। अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये। क्रोधसे सदा लक्ष्मीको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे। मान और अपमानसे विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे। ब्रह्मन्! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है। किसी भी प्राणीकी

हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते। ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो। सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे। आसक्तिके जितने विषय हैं, उन सबमें अनासक्त रहे और जो किसीसे पराजित नहीं हुआ, उस परमेश्वरको जीतने (जानने या प्राप्त करने)-की इच्छा रखे। इन्द्रियोंसे जिन-जिन वस्तुओंका ग्रहण होता है, वह सब व्यक्त है। यही व्यक्तकी परिभाषा है। जो अनुमानके द्वारा कुछ-कुछ जानी जाय उस इन्द्रियातीत वस्तुको अव्यक्त जानना चाहिये। जबतक (ज्ञानकी कमीके कारण) पूरा विश्वास न हो जाय, तबतक ज्ञेयस्वरूप परमात्माका मनन करते रहना चाहिये और पूर्ण विश्वास हो जानेपर मनको उसमें लगाना चाहिये अर्थात् ध्यान करना चाहिये। प्राणायामके द्वारा मनको वशमें करे और संसारकी किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे। ब्रह्मन्! सत्य ही व्रत, तपस्या तथा पवित्रता है, सत्य ही प्रजाकी सृष्टि करता है। सत्यसे ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्यसे ही मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं[1]। असत्य तमोगुणका स्वरूप है, तमोगुण मनुष्यको नीचे (नरकमें) ले जाता है। तमोगुणसे ग्रस्त मनुष्य अज्ञानान्धकारसे आवृत होनेके कारण ज्ञानमय प्रकाशको नहीं देख पाते। नरकको तम और दुष्प्रकाश कहते हैं। इहलोककी सृष्टि शारीरिक और मानसिक दु:खोंसे परिपूर्ण है। यहाँ जो सुख हैं वे भी भविष्यमें दु:खको ही लानेवाले हैं। जगत्‌को इन सुख-दु:खोंसे संयुक्त देखकर विद्वान् पुरुष मोहित नहीं होते। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दु:खसे छूटनेका प्रयत्न करे। प्राणियोंको इहलोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाला जो सुख है, वह अनित्य है। मोक्षरूपी फलसे बढ़कर कोई सुख नहीं है। अत: उसीकी अभिलाषा करनी चाहिये। धर्मके लिये जो शम-दमादि सद्‌गुणोंका सम्पादन किया जाता है, उसका उद्देश्य भी सुखकी प्राप्ति ही है। सुखरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही सभी कर्मोंका आरम्भ किया जाता है। किंतु अनृत (झूठ) से तमोगुणका प्रादुर्भाव होता है। फिर उस तमोगुणसे ग्रस्त मनुष्य अधर्मके ही पीछे चलते हैं, धर्मपर नहीं चलते। वे क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा और असत्य आदिसे आच्छादित होकर न तो इस लोकमें सुख पाते हैं, न परलोकमें ही। नाना प्रकारके रोग, व्याधि और उग्र तापसे पीड़ित होते हैं। वध, बन्धनजनित क्लेश आदिसे तथा भूख, प्यास और परिश्रमजनित संतापसे संतप्त रहते हैं। वर्षा, आँधी, अधिक गरमी और अधिक सर्दीके भयसे चिन्तित होते हैं। शारीरिक दु:खोंसे दु:खी तथा बन्धु-धन आदिके नाश अथवा वियोगसे प्राप्त होनेवाले मानसिक शोकोंसे व्याकुल रहते हैं और जरा तथा मृत्युजनित कष्टसे या अन्य इसी प्रकारके क्लेशोंसे पीडित रहा करते हैं। स्वर्गलोकमें जबतक जीव रहता है सदा उसे सुख ही मिलता है। इस लोकमें सुख और दु:ख दोनों हैं। नरकमें केवल दु:ख-ही-दु:ख बताया गया है। वास्तविक सुख तो वह परमपद-स्वरूप मोक्ष ही है।

**भरद्वाजजी बोले**—ब्रह्मर्षियोंने पूर्वकालमें जो चार आश्रमोंका विधान किया है, उन आश्रमोंके अपने-अपने आचार क्या हैं? यह बतानेकी कृपा करें।

१. सत्यं व्रतं तप: शौचं सत्यं विसृजते प्रजा॥ सत्येन धार्यते लोक: स्व: सत्येनैव गच्छति।
(ना० पूर्व० ४३। ८१-८२)

भृगुजीने कहा—मुने! जगत्‌का हित-साधन करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने पहलेसे ही धर्मकी रक्षाके लिये चार आश्रमोंका उपदेश किया है। उनमेंसे गुरुकुलमें निवास ही पहला आश्रम बतलाया जाता है। इस आश्रममें शौच, संस्कार, नियम तथा व्रतके नियमपूर्वक पालनमें चित्त लगाकर दोनों संध्याओंके समय उपासना करनी चाहिये। सूर्यदेव तथा अग्निदेवका उपस्थान करे। आलस्य छोड़कर गुरुको प्रणाम करे। गुरुमुखसे वेदका श्रवण और अभ्यास करके अपने अन्तःकरणको पवित्र करे। तीनों समय स्नान करके ब्रह्मचर्यपालन, अग्निहोत्र तथा गुरु-शुश्रूषा करे। प्रतिदिन भिक्षा माँगे और भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, वह सब गुरुके अर्पित कर दे तथा अपने अन्तरात्माको भी गुरुके चरणोंमें अर्पित कर दे। गुरुके वचन और आज्ञाका पालन करनेमें कभी प्रतिकूलता न दिखाये—सदा आज्ञापालनके लिये तैयार रहे तथा गुरुकी कृपासे प्राप्त हुए वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहे। इस विषयमें यह उक्ति प्रसिद्ध है—जो द्विज गुरुकी आराधना करके वेदका ज्ञान प्राप्त करता है, उसे स्वर्गरूप फलकी उपलब्धि होती है और उसका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाता है।

दूसरे आश्रमको गार्हस्थ्य कहते हैं। उसके सदाचारका जो स्वरूप है, उसकी पूर्णरूपसे व्याख्या करेंगे। जो गुरुकुलसे लौटे हुए सदाचारपरायण स्नातक हैं और धर्मानुष्ठानका फल चाहते हैं, उनके लिये गृहस्थ-आश्रमका विधान है। इसमें धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी प्राप्ति होती है। यहाँ त्रिवर्ग-साधनकी अपेक्षा रखकर निन्दित कर्मके परित्यागपूर्वक उत्तम (न्याययुक्त) कर्मसे धनोपार्जन करे। वेदोंके स्वाध्यायद्वारा, उपलब्ध हुई प्रतिष्ठासे अथवा ब्रह्मर्षिनिर्मित मार्गसे प्राप्त हुए धनके द्वारा या समुद्रसे उपलब्ध हुए द्रव्यद्वारा अथवा नियमोंके अभ्यास तथा देवताके कृपाप्रसादसे मिली हुई सम्पत्तिद्वारा गृहस्थ पुरुष अपनी गृहस्थी चलावे। गृहस्थ-आश्रमको सम्पूर्ण आश्रमोंका मूल कहते हैं। गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा अन्य लोग जो संकलित व्रत, नियम एवं धर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं, उन सबका आधार गृहस्थ-आश्रम है। उनके अतिरिक्त भी गृहस्थ-आश्रममें भिक्षा और बलिवैश्व आदिका वितरण चलता रहता है। वनप्रस्थोंके लिये भी आवश्यक द्रव्य-सामग्री गृहस्थाश्रमसे ही प्राप्त होती है। प्रायः ये श्रेष्ठ पुरुष उत्तम पथ्य अन्नका सेवन करते हुए स्वाध्यायके प्रसङ्गसे अथवा तीर्थयात्राके लिये देश-दर्शनके निमित्त इस पृथ्वीपर घूमते रहते हैं। गृहस्थको उचित है कि उठकर उनकी अगवानी करे, उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये, उनसे ईर्ष्यारहित वचन बोले, उनके लिये आवश्यक वस्तुओंका दान करे, उन्हें सुख और सत्कारपूर्वक आसन दे तथा उनके लिये सुखसे सोने और खाने-पीनेकी सुव्यवस्था करे।

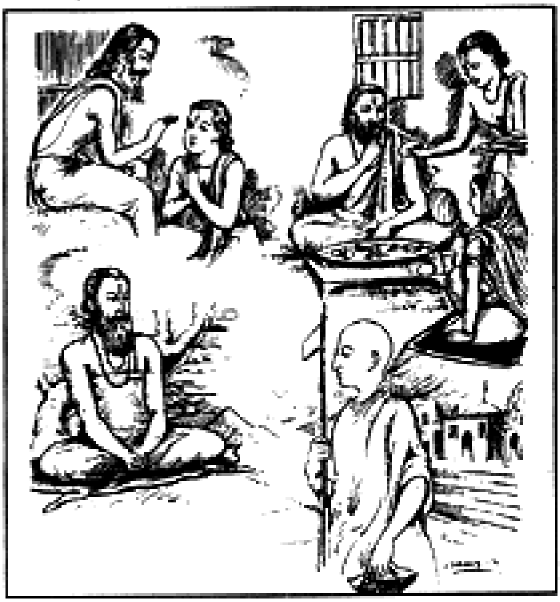

इस विषयमें यह उक्ति है—जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है[1]। इसके सिवा, इस आश्रममें यज्ञ-कर्मोंद्वारा देवता तृप्त होते हैं,

१. अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥

श्राद्ध एवं तर्पणसे पितरोंकी तृप्ति होती है, विद्याके बार-बार श्रवण और धारणसे ऋषि संतुष्ट होते हैं और संतानोत्पादनसे प्रजापतिको प्रसन्नता होती है। इस विषयमें हैं—इस आश्रममें सम्पूर्ण भूतोंके लिये वात्सल्यका भाव होता है। देवता और अतिथियोंका वाणीद्वारा स्तवन किया जाता है। इसमें दूसरोंको सताना, कष्ट देना या कठोरता करना निन्दित है। इसी तरह दूसरोंकी अवहेलना तथा अपनेमें अहंकार और दम्भका होना भी निन्दित ही माना गया है। अहिंसा, सत्य और अक्रोध—ये सभी आश्रमके लिये तप हैं। जिसके गृहस्थ-आश्रममें प्रतिदिन धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गका सम्पादन होता है, वह इस लोकमें सुखका अनुभव करके श्रेष्ठ पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होता है। जो गृहस्थ उञ्छवृत्तिसे रहकर अपने धर्मके पालनमें तत्पर है और काम्यसुखको त्याग चुका है, उसके लिये स्वर्गलोक दुर्लभ नहीं है।

वानप्रस्थी भी धर्मका अनुष्ठान करते हुए पुण्य तीर्थों तथा नदियों और झरनोंके आसपास रहते हैं; वनोंमें रहकर तपस्या करते और घूमते हैं। ग्रामीण वस्त्र, भोजन और उपभोगका वे त्याग कर देते हैं। जंगली अन्न, फल, मूल और पत्तोंका परिमित एवं नियमित भोजन करते हैं। अपने स्थानपर ही बैठते हैं और पृथ्वी, पत्थर, सिकता, कंकड़ तथा बालूपर सो जाते हैं। काश, कुश, मृगचर्म तथा वल्कलसे ही अपने शरीरको ढकते हैं। केश, दाढ़ी, मूँछ, नख तथा लोम धारण किये रहते हैं। नियत समयपर स्नान करते और शुष्क बलिवैश्व एवं होमका शास्त्रोक्त समयपर अनुष्ठान करते हैं। समिधा, कुशा, पुष्प-संचय तथा सम्मार्जन आदि कार्योंमें ही विश्राम पाते हैं। सर्दी, गरमी तथा वायुके आघातसे उनके शरीरकी सारी त्वचाएँ फटी होती हैं। अनेक प्रकारके नियम और योगचर्याके अनुष्ठानसे उनके शरीरका मांस और रक्त सूख जाता है और वे अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर धैर्यपूर्वक सत्त्वगुणके योगसे शरीर धारण करते हैं। जो ब्रह्मर्षियोंद्वारा विहित इस व्रतचर्याका नियमपूर्वक पालन करता है, वह अग्निकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंको जला देता है और दुर्जय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

अब संन्यासियोंका आचार बतलाया जाता है। धन, स्त्री तथा राजोचित सामग्रियोंमें जो अपना स्नेह बना हुआ है, उस स्नेह-बन्धनको काटकर तथा अग्निहोत्र आदि कर्मोंका विधिपूर्वक त्याग करके विरक्त एवं जिज्ञासु पुरुष संन्यासी होते हैं। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझते हैं। धर्म, अर्थ और काममयी प्रवृत्तियोंमें उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती। शत्रु, मित्र और उदासीनोंके प्रति उनकी दृष्टि समान रहती है। वे स्थावर, जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह नहीं करते। उनका कोई एक निवासस्थान नहीं होता। वे पर्वत, नदी-तट, वृक्ष मूल तथा देवमन्दिर आदि स्थानोंमें ठहरते और विचरते हुए कभी किसी समूहके पास जाकर रहते हैं अथवा नगर या गाँवमें विश्राम करते हैं। क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा तथा अभिमानके कारण उनसे कभी हिंसा नहीं होती। इस विषयमें ऐसा कहा है—जो मुनि सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर स्वच्छन्द विचरता है, उसको कभी उन सब प्राणियोंसे भय नहीं होता[1]। ब्राह्मण संन्यासी अग्निहोत्रको अपने शरीरमें स्थापित करके शरीररूपी अग्निको तृप्त करनेके लिये भिक्षान्नरूपी हविष्यकी आहुति अपने मुखमें डालता है और उसी शरीरसंचित अग्निद्वारा उत्तम लोकोंमें जाता है। अपने संकल्पके अनुसार बुद्धिको संयममें रखनेवाला जो पवित्र ब्राह्मण शास्त्रोक्तविधिसे संन्यास-आश्रममें विचरता है, वह ईंधनरहित अग्निकी भाँति परम शान्तिमय ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

---

१. अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्॥ (ना० पूर्व० ४३। १२५)

## उत्तम लोक, अध्यात्मतत्त्व तथा ध्यानयोगका वर्णन

**भरद्वाजजी बोले**—महर्षे! इस लोकसे उत्तम एक लोक यानी प्रदेश सुना जाता है। मैं उस उत्तम लोकको जानना चाहता हूँ। आप उसके विषयमें बतलानेकी कृपा करें।

**भृगुजीने कहा**—उत्तरमें हिमालयके पास सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमय प्रदेश है, जो पुण्यदायक, क्षेमकारक और कमनीय है। वही 'उत्तम लोक' कहा जाता है। वहाँके मनुष्य पापकर्मसे रहित, पवित्र, अत्यन्त निर्मल, लोभ-मोहसे शून्य तथा उपद्रवरहित हैं। वह प्रदेश स्वर्गके समान है। वहाँ सात्त्विक शुभ गुण बताये गये हैं। वहाँ समय आनेपर ही मृत्यु होती है (अकाल मृत्यु नहीं होती)। रोग वहाँके मनुष्योंका स्पर्श नहीं करता। वहाँ किसीके मनमें परायी स्त्रीके लिये लोभ नहीं होता। सब लोग अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखनेवाले हैं। उस देशमें धनके लिये दूसरोंका वध नहीं किया जाता। उस प्रदेशमें अधर्म अच्छा नहीं माना जाता। किसीको धर्मविषयक संदेह नहीं होता। वहाँ किये हुए कर्मका फल प्रत्यक्ष मिलता है। इस लोकमें तो किन्हींके पास जीवन-निर्वाहमात्रके लिये सब सामग्री उपलब्ध है और कोई-कोई बड़े परिश्रमसे जीविका चलाते हैं। यहाँ कुछ लोग धर्मपरायण हैं, कुछ लोग शठता करनेवाले हैं, कोई सुखी है, कोई दु:खी; कोई धनवान् है, कोई निर्धन। इस लोकमें परिश्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधाका कष्ट प्राप्त होता है। मनुष्योंके मनमें धनके लिये लोभ रहता है, जिससे अज्ञानी पुरुष मोहित होते हैं। कपट, शठता, चोरी, परनिन्दा, दोषदृष्टि, दूसरोंपर चोट करना, हिंसा, चुगली तथा मिथ्याभाषण—इन दुर्गुणोंका जो सेवन करता है, उसकी तपस्या नष्ट होती है। जो विद्वान् इनका आचरण नहीं करता उसकी तपस्या बढ़ती है। इस लोकमें धर्म और अधर्म-सम्बन्धी कर्मके लिये नाना प्रकारकी चिन्ता करनी पड़ती है। लोकमें यह कर्मभूमि है। यहाँ शुभ और अशुभ कर्म करके मनुष्य शुभ कर्मोंका शुभ फल और अशुभ कर्मोंका अशुभ फल पाता है। पूर्वकालमें यहाँ प्रजापति ब्रह्मा, अन्यान्य देवता तथा महर्षियोंने यज्ञ और तपस्या करके पवित्र हो ब्रह्मलोक प्राप्त किया था। पृथ्वीका उत्तरीय भाग सबसे अधिक पवित्र और शुभ है। यहाँ जो पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्य हैं, वे यदि सत्कार (शुभ फल) चाहते हैं तो पृथ्वीके उस भागमें जन्म पाते हैं। कुछ लोग कर्मानुसार पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें जन्म लेते हैं, दूसरे लोग क्षीणायु होकर यहीं भूतलपर नष्ट हो जाते हैं। जो एक-दूसरेको खा जानेके लिये उद्यत रहते हैं, ऐसे लोभ और मोहमें डूबे हुए मनुष्य यहीं चक्कर लगाते रहते हैं, उत्तर दिशाको नहीं जाते। जो गुरुजनोंकी सेवा करते और इन्द्रियसंयमपूर्वक ब्रह्मचर्यके पालनमें तत्पर होते हैं, वे मनीषी पुरुष सम्पूर्ण लोकोंका मार्ग जानते हैं। इस प्रकार मैंने ब्रह्माजीके बताये हुए धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया है। जो जगत्के धर्म और अधर्मको जानता है, वही बुद्धिमान् है।

**भरद्वाजजीने कहा**—तपोधन! पुरुषके शरीरमें अध्यात्म-नामसे जिस वस्तुका चिन्तन किया जाता है, वह अध्यात्म क्या है और कैसा है। यह मुझे बताइये।

**भृगुजी बोले**—ब्रह्मर्षे! जिस अध्यात्मके विषयमें पूछ रहे हो, उसकी व्याख्या करता हूँ। तात! वह अतिशय कल्याणकारी सुखस्वरूप है। अध्यात्मज्ञानका जो फल मिलता है—वह है सम्पूर्ण प्राणियोंका

हित। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पाँचवाँ तेज—ये पाँच महाभूत हैं, जो सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसीमें लीन हो जाते हैं। जैसे समुद्रसे लहरें उठती हैं और फिर उसीमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये महाभूत क्रमशः अपने-अपने कारणरूप अन्य भूतोंसे उत्पन्न होते और प्रलयकाल आनेपर फिर उन्हींमें लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, उसी प्रकार भूतात्मा परमेश्वर अपने रचे हुए भूतोंको पुनः अपनेमें लीन करते हैं। महाभूत पाँच ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले परमात्माने समस्त प्राणियोंमें उन्हीं पाँचों भूतोंको भलीभाँति नियुक्त किया है, किंतु जीव उन परमात्माको नहीं देखता है।

शब्द, कान और शरीरके छिद्र—ये तीनों आकाशसे प्रकट हुए हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा—ये तीन वायुके कार्य हैं। रूप, नेत्र और पाक—इन तीन रूपोंमें तेजकी उपलब्धि कही जाती है। रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा—ये तीन जलके गुण बताये गये हैं। गन्ध, नासिका और शरीर—ये तीन भूमिके कार्य हैं। इन्द्रियरूपमें पाँच ही महाभूत हैं और छठा मन है। इस प्रकार श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियोंका और मनका ही परिचय दिया गया है। बुद्धिको सातवाँ तत्त्व कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आठवाँ है। कान सुननेके लिये और त्वचा स्पर्शका अनुभव करनेके लिये है। रसका आस्वादन करनेके लिये रसना (जिह्वा) और गन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका है। नेत्रका काम देखना है। मन संदेह करता है। बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञ साक्षीकी भाँति स्थित है। दोनों पैरोंसे ऊपर सिरतक—जो कुछ भी नीचे-ऊपर है, सबको वह क्षेत्रज्ञ ही देखता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है। इसने इस सम्पूर्ण शरीरको बाहर-भीतरसे व्याप्त कर रखा है। पुरुष ज्ञाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसके लिये ज्ञेय हैं। तम, रज और सत्त्व—ये सारे भाव पुरुषके आश्रित हैं। जो मनुष्य इस अध्यात्मज्ञानको जान लेता है, वह भूतोंके आवागमनका विचार करके धीरे-धीरे उत्तम शान्ति पा लेता है। पुरुष जिससे देखता है, वह नेत्र है। जिससे सुनता है, उसे श्रोत्र (कान) कहते हैं। जिससे सूँघता है, उसका नाम घ्राण (नासिका) है। वह जिह्वासे रसका अनुभव करता है और त्वचासे स्पर्शको जानता है। बुद्धि सदा ज्ञान या निश्चय कराती है। पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि इन सबका अधिष्ठान है। अतः पाँच विषय और पाँच इन्द्रियाँ उससे पृथक् कही गयी हैं। इन सबका अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता।

प्रीति या प्रसन्नता सत्त्वगुणका कार्य है। शोक रजोगुण और क्रोध तमोगुण है। इस प्रकार ये तीन भाव हैं। लोकमें जो-जो भाव हैं, वे सब इन तीनों गुणोंमें आबद्ध हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा प्राणियोंके भीतर रहते हैं। इसलिये सब जीवोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी—यह तीन प्रकारकी अनुभूति देखी जाती है। तुम्हारे शरीर अथवा मनमें जो कुछ प्रसन्नतासे संयुक्त है, वह सब सात्त्विक भाव है। मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ भी दुःखसे संयुक्त और मनको अप्रसन्न करनेवाला है, उसे रजोगुणका ही प्रकाश समझो। इससे अतिरिक्त जो कुछ मोहसे संयुक्त हो और उसका आधार व्यक्त न हो तथा जो ज्ञानमें न आता हो, वह तमोगुण है—ऐसा निश्चय करे। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख एवं चित्तकी शान्ति—इन भावोंको सात्त्विक गुण समझना चाहिये। असंतोष, परिताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं।

अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि भाव तमोगुणके ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जो बहुधा दोषकी ओर जाता है, उस मनके दो स्वरूप हैं—याचना करना और संशय। जिसका मन अपने अधीन है, वह इस लोकमें तो सुखी होता ही है, मरनेके बाद परलोकमें भी उसे सुख मिलता है।

सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष)—ये दोनों सूक्ष्म हैं। जिसे इन दोनोंका अन्तर (पार्थक्य) ज्ञात हो जाता है, वह भी इहलोक और परलोकमें सुखका भागी होता है। इनमें एक तो गुणोंकी सृष्टि करता है और एक नहीं करता। सत्त्व आदि गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा सब प्रकारसे गुणोंको जानता है। यद्यपि पुरुष गुणोंका द्रष्टामात्र है, तथापि बुद्धिके संसर्गसे वह अपनेको उनका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुषका संयोग हुआ है, किंतु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मनके द्वारा इन्द्रियरूपी

घोड़ोंकी रास खींचती है और भलीभाँति काबूमें रखती है, उस समय आत्मा प्रकाशित होने लगता है। जो मुनि प्राकृत कर्मोंका त्याग करके सदा आत्मामें ही रमण करता है, वह सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा होकर उत्तम गतिको प्राप्त होता रहता है। जैसे जलचर पक्षी जलसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शुद्धबुद्धिपुरुष लिप्त नहीं होता। वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें अनासक्तभावसे रहता है। इस प्रकार अपनी बुद्धिद्वारा विचार करके मनुष्य अनासक्त-भावसे व्यवहार करे। वह हर्ष-शोकसे रहित हो सभी अवस्थाओंमें सम रहे। ईर्ष्या-द्वेषको त्याग दे। बुद्धि और चेतनकी एकता है, यही हृदयकी सुदृढ़ ग्रन्थि है। इसको खोलकर विद्वान् पुरुष सुखी हो जाय और संशयका उच्छेद करके सदाके लिये शोक त्याग दे। जैसे मलिन मनुष्य गङ्गामें स्नान करके शुद्ध होते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ विद्वान् इस ज्ञानगङ्गामें गोता लगाकर निर्मल हो जाते हैं—ऐसा जानो। इस तरह जो मनुष्य इस उत्तम अध्यात्म-ज्ञानको जानते हैं, वे कैवल्यको प्राप्त होते हैं। ऐसा समझकर सब मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंके आवागमनपर दृष्टि रखते हुए बुद्धिपूर्वक विचार करें। इससे धीरे-धीरे शान्ति प्राप्त होती है। जिनका अन्तःकरण पवित्र नहीं है, वे मनुष्य भिन्न-भिन्न विषयोंकी ओर प्रवृत्त हुई इन्द्रियोंमें यदि पृथक्-पृथक् आत्माकी खोज करना चाहें तो उन्हें इस प्रकार आत्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता। आत्मा तो इन सब इन्द्रिय, मन और बुद्धिका साक्षी होनेके कारण उनसे परे है—ऐसा जान लेनेपर ही मनुष्य ज्ञानी हो सकता है। इस तत्त्वको जान लेनेपर मनीषी पुरुष अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको जो महान् भय प्राप्त होता है, वह ज्ञानियोंको नहीं प्राप्त होता। जो फलकी इच्छा और आसक्तिका त्याग करके कर्म करता है, वह अपने पूर्वकृत कर्मबन्धनको जला देता है। ऐसा पुरुष यदि कर्म करता है तो उसका किया हुआ कर्म प्रिय अथवा अप्रिय फल नहीं

उत्पन्न कर सकता। यदि मनुष्य अपनी आयुभर लोकको सताता है तो कर्ममें लगे हुए उस पुरुषका वह अशुभ कर्म उसके लिये यहाँ अशुभ फल ही उत्पन्न करता है। देखो, कुशल (पुण्य) कर्म करनेसे कोई भी शोकमें नहीं पड़ता, परंतु यदि उससे पाप बनता है तो सदाके लिये भयपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

**भरद्वाजजी बोले**—ब्रह्मन्! मुझे अभयपदकी सिद्धिके लिये ध्यानयोग बताइये। जिस तत्त्वको जानकर मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापोंसे मुक्त हो जाता है, उसका मुझे उपदेश कीजिये।

**भृगुजीने कहा**—मुने! मैं तुम्हें ध्यानयोग बतलाता हूँ। (यद्यपि) वह चार प्रकारका है (किंतु यहाँ एक ही बताया जाता है), जिसे जानकर महर्षिगण इस जगत्में शाश्वत सिद्धिको प्राप्त होते हैं। योगी लोग भलीभाँति अभ्यासमें लाये हुए ध्यानका जिस प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वैसा ही ध्यान करके ज्ञानतृप्त महर्षिगण संसारदोषसे मुक्त हो गये हैं। उन मुक्त पुरुषोंका पुनः इस संसारमें आगमन नहीं होता। वे जन्मदोषसे रहित हो अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो गये हैं। उनपर शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा अपने विशुद्ध स्वरूपमें स्थित, सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त तथा परिग्रहशून्य हैं। अनासक्ति आदि गुण मनको शान्ति प्रदान करनेवाले हैं।

अनेक प्रकारकी चिन्ताओंसे पीड़ित मनको ध्यानके द्वारा एकाग्र करके ध्येय वस्तुमें स्थित करे। इन्द्रियसमुदायको सब ओरसे समेट करके ध्यानयोगी मुनि काष्ठकी भाँति स्थित हो जाय। कानसे किसी शब्दको न ग्रहण करे। त्वचासे स्पर्शका अनुभव न करे। नेत्रसे रूप न देखे तथा जिह्वासे रसोंका आस्वादन न करे। नासिकाद्वारा सब प्रकारके गन्धोंको ग्रहण करना भी त्याग दे। पाँचों विषय पाँचों इन्द्रियोंको मथ डालनेवाले हैं। तत्त्ववेत्ता पुरुष ध्यानके द्वारा इन विषयोंकी अभिलाषा छोड़ दे। तदनन्तर सशक्त एवं बुद्धिमान् पुरुष पाँच इन्द्रियोंको मनमें लीन करके पाँचों इन्द्रियोंसहित इधर-उधर भटकनेवाले मनको ध्येय वस्तुमें एकाग्र करे। मन चारों ओर विचरण करनेवाला है। उसका कोई दृढ़ आधार नहीं है। पाँचों इन्द्रियोंके द्वार उसके निकलनेके मार्ग हैं। वह अजितेन्द्रिय पुरुषके लिये बलवान् और जितेन्द्रियके लिये निर्बल है। धीर पुरुष पूर्वोक्त ध्यानके साधनमें शीघ्रतापूर्वक मनको एकाग्र करे। जब वह इन्द्रिय और मनको अपने वशमें कर लेता है तो उसका पूर्वोक्त ध्यान सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार मैंने यहाँ प्रथम ध्यानमार्गका वर्णन किया है।

इसके बाद पहलेसे वशमें किया हुआ मनसहित इन्द्रियवर्ग पुनः अवसर पाकर स्फुरित होता है, ठीक इसी तरह जैसे बादलमें बिजली चमकती है। जिस प्रकार पत्तेपर रखी हुई जलकी बूँद सब ओरसे चञ्चल एवं अस्थिर होती है, उसी प्रकार प्रथम ध्यानमार्गमें साधकका चित्त भी चञ्चल होता है। क्षणभरके लिये कभी एकाग्र होकर कुछ देर ध्यानमार्गमें स्थिर होता है, फिर भ्रान्त होकर वायुकी भाँति आकाशमें दौड़ लगाने लगता है। परंतु ध्यानयोगका ज्ञाता पुरुष इससे ऊबे नहीं। वह क्लेश, चिन्ता, ईर्ष्या और आलस्यका त्याग करके पुनः ध्यानके द्वारा चित्तको एकाग्र करे। प्रथम ध्यानमार्गपर चलनेवाले मुनिके हृदयमें विचार, वितर्क एवं विवेककी उत्पत्ति होती है। मन उद्विग्न होनेपर उसका समाधान करे। ध्यानयोगी मुनि कभी उससे खिन्न या उदासीन न हो। ध्यानद्वारा अपना हित-साधन अवश्य करे। इन इन्द्रियोंको धीरे-धीरे शान्त करनेका प्रयत्न करे। क्रमशः इनका उपसंहार

करे। ऐसा करनेपर इनकी पूर्णरूपसे शान्ति हो जायगी। मुनीश्वर! प्रथम ध्यानमार्गमें पाँचों इन्द्रियों और मनको स्थापित करके नित्य अभ्यास करनेसे ये स्वयं शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मसंयम करनेवाले पुरुषको जिस सुखकी प्राप्ति होती है, वह किसी लौकिक पुरुषार्थ और प्रारब्धसे नहीं मिलता। उस सुखके प्राप्त होनेपर मनुष्य ध्यानके साधनमें रम जाता है। इस प्रकार ध्यानका अभ्यास करनेवाले योगीजन निरामय मोक्षको प्राप्त होते हैं।

**सनन्दनजी कहते हैं—**ब्रह्मन्! महर्षि भृगुके इस प्रकार कहनेपर परम धर्मात्मा एवं प्रतापी भरद्वाज मुनि बड़े विस्मित हुए और उन्होंने भृगुजीकी बड़ी प्रशंसा की।

## पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

**सूतजी कहते हैं—**ब्राह्मणो! सनन्दनजीका मोक्षधर्मसम्बन्धी वचन सुनकर तत्त्वज्ञ नारदजीने पुनः अध्यात्मविषयक उत्तम बात पूछी।

**नारदजी बोले—**महाभाग! मैंने आपके बताये हुए अध्यात्म और ध्यानविषयक मोक्ष-शास्त्रको सुना, यह सब बार-बार सुननेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जा रही है)। सर्वज्ञ मुने! जीव अविद्याके बन्धनसे जिस प्रकार मुक्त होता है, वह उपाय बताइये। साधु पुरुषोंने जिसका आश्रय ले रखा है, उस मोक्ष-धर्मका पुनः वर्णन कीजिये।

**सनन्दनजीने कहा—**नारद! इस विषयमें विद्वान् पुरुष इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। जिससे यह ज्ञात होता है कि मिथिलानरेश जनकने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया था। यह उस समयकी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनदेवका राज्य था। जनदेव सदा ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले धर्मोंका ही चिन्तन किया करते थे। उनके दरबारमें एक सौ आचार्य बराबर रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रमोंके धर्मोंका उपदेश देते रहते थे। 'इस शरीरको त्याग देनेके पश्चात् जीवकी सत्ता रहती है या नहीं? अथवा देह-त्यागके बाद उसका पुनर्जन्म होता है या नहीं?' इस विषयमें उन आचार्योंका जो सुनिश्चित सिद्धान्त था, वे लोग आत्मतत्त्वके विषयमें जैसा विचार उपस्थित करते थे, उससे शास्त्रानुयायी राजा जनदेवको विशेष संतोष नहीं होता था। एक बार कपिलाके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे। वे सम्पूर्ण संन्यास-धर्मोंके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानके निर्णयमें एक सुनिश्चित सिद्धान्तके पोषक थे। उनके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था। वे निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे। उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय बताया जाता है। कामना तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी। वे मनुष्योंके हृदयमें अपने उपदेशद्वारा अत्यन्त दुर्लभ सनातन सुखकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे। सांख्यके विद्वान् तो उन्हें साक्षात् प्रजापति महर्षि कपिलका ही स्वरूप समझते हैं। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिखके रूपमें आकर लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे हैं। उन्हें आसुरि मुनिका प्रथम शिष्य और चिरञ्जीवी बताया जाता है। एक समय उन्होंने महर्षि कपिलके मतका अनुसरण करनेवाले मुनियोंकी विशाल मण्डलीमें जाकर सबमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित परमार्थस्वरूप अव्यक्त ब्रह्मके विषयमें निवेदन किया था और

क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञका अन्तर स्पष्टरूपसे जान लिया था। यही नहीं, जो एकमात्र अक्षर एवं अविनाशी ब्रह्म नाना रूपोंमें दिखायी देता है, उसका ज्ञान भी आसुरिने उस मुनिमण्डलीमें प्राप्त किया था, उन्हींके शिष्य पञ्चशिख थे, जो देव-कोटिके पुरुष होते हुए भी मानवीके दूधसे पले थे। कपिला नामकी एक ब्राह्मणी थी, जो पति-पुत्र आदि कुटुम्बके साथ रहती थी; उसीके पुत्रभावको प्राप्त होकर वे उसके स्तनोंका दूध पीते थे। अतः कपिलाका दूध पीनेके कारण उनकी कापिलेय संज्ञा हुई। उन्होंने नैष्ठिक (ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाली) बुद्धि प्राप्त की थी। कापिलेयकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह बात मुझे भगवान् ब्रह्माजीने बतायी थी। उनके कपिलापुत्र कहलाने और सर्वज्ञ होनेका यही उत्तम वृत्तान्त है। धर्मज्ञ पञ्चशिखने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। वे राजा जनकको सौ आचार्योंपर समानभावसे अनुरक्त जानकर उनके

दरबारमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने युक्तियुक्त वचनोंसे उन सब आचार्योंको मोहित कर दिया। उस समय महाराज जनक कपिलानन्दन पञ्चशिखका ज्ञान देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो गये और अपने सौ आचार्योंको छोड़कर उन्हींके पीछे चलने लगे। तब मुनिवर पञ्चशिखने राजाको धर्मानुसार चरणोंमें पड़ा देख उन्हें योग्य अधिकारी मानकर परम मोक्षका उपदेश किया, जिसका सांख्य-शास्त्रमें वर्णन है। उन्होंने 'जातिनिर्वेद'[1] का वर्णन करके 'कर्मनिर्वेद'[2] का उपदेश किया। तत्पश्चात् 'सर्वनिर्वेद'[3] की बात बतायी। उन्होंने कहा—जिसके लिये धर्मका आचरण किया जाता है, जो कर्मोंके फलका उदय होनेपर प्राप्त होता है, वह इहलोक या परलोकका भोग नश्वर है। उसपर आस्था करना उचित नहीं। वह मोहरूप चञ्चल और अस्थिर है।

कुछ नास्तिक ऐसा कहा करते हैं कि 'देहरूपी आत्माका विनाश प्रत्यक्ष देखा जा रहा है, सम्पूर्ण लोक इसका साक्षी है; फिर भी यदि कोई शास्त्र-प्रमाणकी ओट लेकर देहसे भिन्न आत्माकी सत्ताका प्रतिपादन करता है तो वह परास्त ही है; क्योंकि उसका कथन लोकानुभवके विरुद्ध है। आत्माके स्वरूपका अभाव हो जाना ही उसकी मृत्यु है। जो लोग मोहवश आत्माको देहसे भिन्न मानते हैं, उनकी वह मान्यता ठीक नहीं है। यदि ऐसी वस्तुका भी अस्तित्व मान लिया जाय, जो लोकमें सम्भव नहीं है अर्थात् यदि शास्त्रके आधारपर यह स्वीकार किया जाय कि शरीरसे भिन्न कोई अजर-अमर आत्मा है, जो स्वर्ग आदि लोकोंमें दिव्य सुख भोगता है, तब तो

१. जन्मके समय गर्भवास आदिके कारण जो कष्ट होता है, उसपर विचार करके शरीरसे वैराग्य होना 'जातिनिर्वेद' है। २. कर्मजनित क्लेश—नाना योनियोंकी प्राप्ति एवं नरकादि यातनाका विचार करके पाप तथा काम्य कर्मोंसे विरत होना 'कर्मनिर्वेद' है। ३. इस जगत्‌की छोटी-से-छोटी वस्तुओंसे लेकर ब्रह्मलोकतकके भोगोंकी क्षणभङ्गुरता और दुःखरूपताका विचार करके सब ओरसे विरक्त होना 'सर्वनिर्वेद' कहलाता है।

बंदीलोग, जो राजाको अजर-अमर कहते हैं, उनकी वह बात भी ठीक माननी पड़ेगी। सारांश यह है कि जैसे बंदीलोग आशीर्वादमें उपचारतः राजाको अजर-अमर कहते हैं, उसी प्रकार शास्त्रका वह वचन भी औपचारिक ही है। नीरोग शरीरको ही अजर-अमर और यहाँके प्रत्यक्ष सुख-भोगको ही स्वर्गीय सुख कहा गया है। यदि आत्मा है या नहीं—यह संशय उपस्थित होनेपर अनुमानसे उसके अस्तित्वका साधन किया जाय तो इसके लिये कोई ऐसा ज्ञापक हेतु नहीं उपलब्ध होता, जो कहीं व्यभिचरित न होता हो; फिर किस अनुमानका आश्रय लेकर लोक-व्यवहारका निश्चय किया जा सकता है। अनुमान और आगम—इन दोनों प्रमाणोंका मूल्य प्रत्यक्ष प्रमाण है। आगम या अनुमान यदि प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध है तो वह कुछ भी नहीं है, उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। जिस किसी भी अनुमानमें ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्माकी सिद्धिके लिये की हुई भावना भी व्यर्थ है; अतः नास्तिकोंके मतमें शरीरसे भिन्न जीवका अस्तित्व नहीं है, यह बात स्थिर हुई। जैसे वटवृक्षके बीजमें पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि अन्तर्हित होते हैं, जैसे गायके द्वारा खायी हुई घासमेंसे घी, दूध आदि प्रकट हो जाते हैं तथा जिस प्रकार अनेक औषध-द्रव्योंका पाक एवं अधिवासन करनेसे उसमें नशा पैदा करनेवाली शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार वीर्यसे ही शरीर आदिके साथ चेतनता भी प्रकट होती है।'

(इस नास्तिक मतका खण्डन इस प्रकार समझना चाहिये) मरे हुए शरीरमें जो चेतनताका अतिक्रमण देखा जाता है, वही देहातिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें प्रमाण है। यदि चेतनता देहका ही धर्म होता तो मृतक शरीरमें भी उसकी उपलब्धि होती। मृत्युके पश्चात् कुछ कालतक शरीर तो रहता है, पर उसमें चेतनता नहीं रहती। अतः चेतन आत्मा शरीरसे भिन्न है—यह सिद्ध होता है। नास्तिक भी रोग आदिकी निवृत्तिके लिये मन्त्रजप तथा तान्त्रिक-पद्धतिसे देवता आदिकी आराधना करते हैं। वह देवता क्या है? यदि पाञ्चभौतिक है तो घट आदिकी भाँति उसका दर्शन होना चाहिये और यदि वह भौतिक पदार्थोंसे भिन्न है तो चेतनकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी। अतः देहसे भिन्न आत्मा है—यह प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध हो जाता है; और देह ही आत्मा है, यह प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध जान पड़ता है। यदि शरीरकी मृत्युके साथ आत्माकी भी मृत्यु मान ली जाय, तब तो उसके किये हुए कर्मोंका भी नाश मानना पड़ेगा; फिर तो उसके शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेवाला कोई नहीं रह जायगा और देहकी उत्पत्तिमें अकृताभ्यागम (बिना किये हुए कर्मका ही भोग प्राप्त हुआ ऐसा) माननेका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। ये सब प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि देहातिरिक्त चेतन आत्माकी सत्ता अवश्य है। नास्तिकोंकी ओरसे जो हेतुभूत दृष्टान्त दिये गये हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं। मूर्त जड-पदार्थसे मूर्त जड-पदार्थकी ही उत्पत्ति होती है—यही उनके द्वारा सिद्ध होता है। जैसे काष्ठसे अग्निकी उत्पत्ति आदि।

पञ्चभूतोंसे आत्माकी उत्पत्तिकी भाँति यदि मूर्तसे अमूर्तकी उत्पत्ति मानी जाय तो पृथ्वी आदि मूर्त भूतोंसे अमूर्त आकाशकी भी उत्पत्ति स्वीकार करनी पड़ेगी, जो असम्भव है। अतः स्थूल भूतोंके संयोगसे अमूर्त चेतन आत्माकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है।

आत्माकी सत्ता न माननेपर लोकयात्राका निर्वाह नहीं होगा। दान, धर्मके फलकी प्राप्तिके लिये कोई आस्था नहीं रहेगी; क्योंकि वैदिक

शब्द तथा लौकिक व्यवहार सब आत्माको ही सुख देनेके लिये हैं। इस प्रकार मनमें अनेक प्रकारके तर्क उठते हैं और उन तर्कों तथा युक्तियोंसे आत्माकी सत्ता या असत्ताका निर्धारण कुछ भी होता नहीं दिखायी देता। इस प्रकार विचार करते हुए भिन्न-भिन्न मतोंकी ओर दौड़नेवाले लोगोंकी बुद्धि कहीं एक जगह प्रवेश करती है और वहीं वृक्षकी भाँति जड़ जमाये जीर्ण हो जाती है। इस प्रकार अर्थ और अनर्थसे सभी प्राणी दुःखी रहते हैं। केवल शास्त्र ही उन्हें खींचकर राहपर लाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे महावत हाथीपर अङ्कुश रखकर उन्हें काबूमें किये रहते हैं। बहुत-से शुष्क हृदयवाले लोग ऐसे विषयोंकी लिप्सा रखते हैं, जो अत्यन्त सुखदायक हों; किंतु इस लिप्सामें उन्हें भारी-से-भारी दुःखोंका ही सामना करना पड़ता है और अन्तमें वे भोगोंको छोड़कर मृत्युके ग्रास बन जाते हैं। जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं, ऐसे अनित्य शरीरको पाकर इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमें वैराग्यपूर्वक त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु—ये सदा शरीरकी रक्षा करते रहते हैं, इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है? जो एक दिन मृत्युके मुखमें पड़नेवाला है, ऐसे शरीरसे सुख कहाँ?

**पञ्चशिखने फिर कहा**—राजन्! अब मैं उस परम उत्तम सांख्यशात्रका वर्णन करता हूँ, जिसका नाम है—सम्यङ्मन (मनको संदेहरहित करनेवाला), उसमें त्यागकी प्रधानता है। तुम ध्यान देकर सुनो। उसका उपदेश तुम्हारे मोक्षमें सहायक होगा। जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सम्पूर्ण सकाम कर्मोंका और धन आदिका भी त्याग करें। जो त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत (शम-दमादि साधनोंमें तत्पर) होनेका झूठा दावा करते हैं, उन्हें दुःख देनेवाले अविद्यारूप क्लेश प्राप्त होते रहते हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग करनेके लिये यज्ञ आदि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिये व्रत, दैहिक सुखोंके त्यागके लिये तप और सब कुछ त्यागनेके लिये योगके अनुष्ठानकी आज्ञा दी गयी है। यही त्यागकी सीमा है। सर्वस्व-त्यागका यह एकमात्र मार्ग ही दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये उत्तम बताया गया है। इसका आश्रय न लेनेवालोंको दुर्गति भोगनी पड़ती है।

छठे मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बतायी हैं, जिनकी स्थिति बुद्धिमें है, इनका वर्णन करके पाँच कर्मेन्द्रियोंका निरूपण करता हूँ। दोनों हाथ काम करनेवाली इन्द्रिय हैं। दोनों पैर चलने-फिरनेका कार्य करनेवाली इन्द्रिय हैं। लिङ्ग मैथुन-जनक सुख और संतानोत्पादन आदिके लिये है। गुदा नामक इन्द्रियका कार्य मलत्याग करना है। वाक्-इन्द्रिय शब्दविशेषका उच्चारण करनेके लिये है। मनको इन पाँचोंसे संयुक्त माना गया है। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन—ये सब मिलकर ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इन सबको मनरूप जानकर बुद्धिके द्वारा शीघ्र इनका त्याग कर देना चाहिये। श्रवणकालमें श्रोत्ररूपी इन्द्रिय, शब्दरूपी विषय और चित्तरूपी कर्ता—इन तीनका संयोग होता है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धके अनुभवकालमें भी इन्द्रिय, विषय एवं मनका संयोग अपेक्षित है। इस तरह तीन-तीनके पाँच समुदाय हैं। ये सब गुण कहे गये हैं। इनसे शब्दादि विषयोंका ग्रहण होता है और इसीके लिये ये कर्ता, कर्म और करणरूपी त्रिविध

भाव बारी-बारीसे उपस्थित होते हैं। इनमेंसे एक-एकसे सात्त्विक, राजस और तामस तीन-तीन भेद होते हैं। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्तकी शान्ति—ये सब भाव बिना किसी कारणके हों या किसी कारणवश हों[1], सात्त्विक गुण माने गये हैं। असंतोष, संताप, शोक, लोभ तथा क्षमाका अभाव—ये किसी कारणसे हों या अकारण—रजोगुणके चिह्न हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य—ये किसी तरह भी क्यों न हों, तमोगुणके ही नाना रूप हैं[2]।

जो इस मोक्ष-विद्याको जानकर सावधानीके साथ आत्मतत्त्वका अनुसंधान करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति कर्मके अनिष्ट फलोंसे कभी लिप्त नहीं होता। संतानोंके प्रति आसक्ति और भिन्न-भिन्न देवताओंके लिये सकाम यज्ञोंका अनुष्ठान—ये सब मनुष्यके लिये नाना प्रकारके दृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनोंसे छूटकर दुःख-सुखकी चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सर्वश्रेष्ठ गति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। श्रुतिके महावाक्योंका विचार और शास्त्रमें बताये हुए मङ्गलमय साधनोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य जरा तथा मृत्युके भयसे रहित होकर सुखसे रहता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःखादि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सब वस्तुओंकी आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप एवं निर्गुण आत्माका साक्षात्कार कर लेता है। जो शरीरमें आसक्ति न रखकर उसके प्रति अपनेपनका अभिमान त्याग देता है, वह दुःखसे छूट जाता है। जैसे वृक्षके प्रति आसक्ति न रखनेवाला पक्षी जलमें गिरते हुए वृक्षको छोड़कर उड़ जाता है, उसी प्रकार जो शरीरकी आसक्तिको छोड़ चुका है, वह मुक्त पुरुष सुख और दुःख दोनोंका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

आचार्य पञ्चशिखके बताये हुए इस अमृतमय ज्ञानको सुनकर राजा जनक उसे पूर्णरूपसे विचार करके एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँच गये और शोकरहित हो बड़े सुखसे रहने लगे। फिर तो उनकी स्थिति ऐसी हो गयी कि एक बार मिथिलानगरीको आगसे जलती देखकर भूपालने स्वयं यह उद्गार प्रकट किया कि 'इस नगरके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता।' महामुनि नारदजी! इस अध्यायमें मोक्षतत्त्वका निर्णय किया गया है। जो सदा इसका स्वाध्याय और चिन्तन करता रहता है, वह दुःख-शोकसे रहित हो कभी किसी प्रकारके उपद्रवका अनुभव नहीं करता तथा जिस प्रकार राजा जनक पञ्चशिखके समागमसे इस ज्ञानको पाकर मुक्त हो गये थे, उसी प्रकार वह भी मोक्ष प्राप्त करता है।

---

१. मनमें हर्ष, प्रीति आदि भावोंका उदय जब किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति आदिसे होता है तो उसे कारणवश हुआ कहा गया है और जब वैराग्य आदिसे स्वतः उक्त भावोंका उदय हो तो उसे अकारण माना गया है।

२. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २१८ और २१९ में भी यही प्रसङ्ग आया है। २१९ के २८ वें श्लोकतक यह प्रसङ्ग ज्यों-का-त्यों है। इसके आगे महाभारतमें पंद्रह श्लोक अधिक हैं, जो इस प्रसङ्गकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक हैं। नारदपुराणके श्लोक सतहत्तरके बाद ही उन श्लोकोंका भाव अपेक्षित है। अतः प्रसङ्गकी पूर्तिके लिये यहाँ उन श्लोकोंमेंसे कुछका संक्षिप्त भाव दिया जाता है।

'शब्दका आधार श्रोत्रेन्द्रिय है और श्रोत्रेन्द्रियका आधार आकाश है, अतः वह आकाशरूप ही है। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं। इन सबका अधिष्ठान है मन; इसलिये सब-के-सब मनःस्वरूप हैं। क्योंकि जब सब इन्द्रियोंका कार्य एक समय प्रारम्भ होता है, तब उन सबके विषयोंको एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही सबमें अनुगतरूपसे उपस्थित रहता है; अतः मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है और बुद्धि बारहवीं मानी गयी है। इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावतः व्यवहारपरायण हो रहे हैं। ऐसी दशामें ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है। तब केवल सनातन आत्मा ही रह जाता है। जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपको त्याग देती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने नाम और रूपको त्यागकर महत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होते हैं। यही उनका मोक्ष है।

## त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन

**सूतजी कहते हैं**—महर्षियो! उत्तम अध्यात्मज्ञान सुनकर उदारबुद्धि नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पुनः प्रश्न किया।

**नारदजी बोले**—दयानिधे! मैं आपकी शरणमें हूँ। मुने! मनुष्यको आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका अनुभव न हो, वह उपाय मुझे बतलाइये।

**सनन्दनजीने कहा**—विद्वन्! गर्भमें, जन्मकालमें और बुढ़ापा आदि अवस्थाओंमें प्रकट होनेवाले जो तीन प्रकारके दुःख-समुदाय हैं, उनकी एकमात्र अमोघ एवं अनिवार्य ओषधि भगवान्‌की प्राप्ति ही मानी गयी है। जब भगवत्प्राप्ति होती है, उस समय ऐसे लोकोत्तर आनन्दकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे बढ़कर सुख और आह्लाद कहीं है ही नहीं। यही उस भगवत्प्राप्तिकी पहचान है। अतः विद्वान् मनुष्योंको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। महामुने! भगवत्प्राप्तिके दो ही उपाय बताये गये हैं—ज्ञान और (निष्काम) कर्म। ज्ञान भी दो प्रकारका कहा जाता है। एक तो शास्त्रके अध्ययन और अनुशीलनसे प्राप्त होता है और दूसरा विवेकसे प्रकट होता है। शब्दब्रह्म अर्थात् वेदका ज्ञान शास्त्रज्ञान है और परब्रह्म परमात्माका बोध विवेकजन्य ज्ञान है। मुनिश्रेष्ठ! मनुजीने भी वेदार्थका स्मरण करके इस विषयमें जो कुछ कहा है, उसे मैं स्पष्ट बताता हूँ—सुनो। जानने योग्य ब्रह्म दो प्रकारका है—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। जो शब्दब्रह्म (शास्त्रज्ञान)-में पारङ्गत हो जाता है, वह विवेकजन्य ज्ञानद्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है[1]। अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि दो प्रकारकी विद्याएँ जानने योग्य हैं—परा और अपरा। परासे निर्गुण-सगुणरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है। जो अव्यक्त, अजर, चेष्टारहित, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य (नाम आदिसे रहित), रूपहीन, हाथ-पैर आदि अङ्गोंसे शून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण तथा स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तुएँ व्याप्त हैं, समस्त जगत् जिससे प्रकट हुआ है एवं ज्ञानीजन ज्ञानदृष्टिसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, वही परमधामस्वरूप ब्रह्म है। मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका ध्यान करना चाहिये। वही वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित, अतिसूक्ष्म भगवान् विष्णुका परम पद है। परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्यार्थ है और 'भगवत्' शब्द उस अविनाशी परमात्माका वाचक कहा गया है। इस प्रकार जिसका स्वरूप बतलाया गया है, वही परमात्माका यथार्थ तत्त्व है। जिससे उसका ठीक-ठीक बोध होता है, वही परा विद्या अथवा परम ज्ञान है। इससे भिन्न जो तीनों वेद हैं उन्हें अपर ज्ञान या अपरा विद्या कहा गया है।

ब्रह्मन्! यद्यपि वह ब्रह्म किसी शब्द या वाणीका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये 'भगवान्' इस नामसे उसका कथन किया जाता है। देवर्षे! जो समस्त कारणोंका भी कारण है, उस परम शुद्ध महाभूति नामवाले परब्रह्मके लिये ही भगवत् शब्दका प्रयोग हुआ है। 'भगवत्'

---

१. द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ (ना० पूर्व० ४६।८)

शब्दके 'भ' कारके दो अर्थ हैं—सम्भर्ता (भरण-पोषण करनेवाला) तथा भर्ता (धारण करनेवाला)। मुने! 'ग' कारके तीन अर्थ हैं—गमयिता (प्रेरक), नेता (सञ्चालक) तथा स्रष्टा (जगत्‌की सृष्टि करनेवाला)। 'भ' और 'ग' के योगसे 'भग' शब्द बनता है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य—इन छ:का नाम 'भग' है[1]। उस सर्वात्मा परमेश्वरमें सम्पूर्ण भूत-प्राणी निवास करते हैं तथा वह स्वयं भी सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वह अव्यय परमात्मा ही 'व' कारका अर्थ है। साधुशिरोमणे! इस प्रकार 'भगवान्' यह महान् शब्द परब्रह्मस्वरूप भगवान् वासुदेवका ही बोध करानेवाला है। पूज्यपदका जो अर्थ है, उसको सूचित करनेकी परिभाषासे युक्त यह भगवत्-शब्द परमात्माके लिये तो प्रधानरूपसे प्रयुक्त होता है और दूसरोंके लिये गौणरूपसे। जो सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको, आवागमनको तथा विद्या और अविद्याको जानता है, वही भगवान् कहलाने योग्य है। त्याग करने योग्य अवगुण आदिको छोड़कर जो अलौकिक ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण हैं, वे सभी भगवत् शब्दके वाच्यार्थ हैं। उन परमात्मामें सम्पूर्ण भूत वास करते हैं और वह भी समस्त भूतोंमें निवास करता है, इसीलिये उसे 'वासुदेव' कहा गया है[2]। पूर्वकालमें खाण्डिक्य जनकसे उनके पूछनेपर केशिध्वजने भगवान् अनन्तके वासुदेव नामकी यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी। परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंमें वास करते हैं और वे भूतप्राणी भी उनके भीतर रहते हैं तथा वे परमात्मा ही जगत्‌के धारण-पोषण करनेवाले और स्रष्टा हैं; अत: उन सर्वशक्तिमान् प्रभुको 'वासुदेव' कहा गया है[3]। मुने! जो सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा तथा समस्त आवरणोंसे परे हैं, वे परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंकी प्रकृति, प्राकृत विकार तथा गुण और दोषोंसे ऊपर उठे हुए हैं। पृथ्वी और आकाशके बीचमें जो कुछ स्थित है, वह सब उन्हींसे व्याप्त है। सम्पूर्ण कल्याणमय गुण उनके स्वरूप हैं। उन्होंने अपनी शक्तिके लेशमात्रसे सम्पूर्ण भूतसमुदायको व्याप्त कर रखा है। वे अपनी इच्छामात्रसे मनके अनुकूल अनेक शरीर धारण करते हैं और सारे जगत्‌का हित-साधन करते रहते हैं। वे तेज, बल, ऐश्वर्य, महान् ज्ञान, उत्तम वीर्य और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं। प्रकृति आदिसे भी परे हैं और उन समस्त कार्य-कारणोंके स्वामी परमेश्वरमें समस्त क्लेशोंका सर्वथा अभाव है। वे सबका शासन करनेवाले ईश्वर हैं। व्यष्टि और समष्टि जगत् उन्हींका स्वरूप है। वे ही व्यक्त हैं और वे ही अव्यक्त। वे सबके स्वामी, सम्पूर्ण सृष्टिके ज्ञाता, सर्वशक्तिमान् तथा परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं। जिसके द्वारा निर्दोष, विशुद्ध निर्मल तथा एकरूप परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार अथवा बोध होता है, उसीका नाम ज्ञान है और इसके विपरीत जो कुछ है, वह अज्ञान कहा गया है। भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन स्वाध्याय और संयमसे होता

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(ना० पूर्व० ४६। १७)

२. उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु वसनादेव वासुदेवस्ततः स्मृतः॥
(ना० पूर्व० ४६। २१—२३)

३. भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः॥
(ना० पूर्व० ४६। २५)

है। ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे वेदका भी नाम ब्रह्म ही है। इसीलिये वेदोंका स्वाध्याय किया जाता है। स्वाध्यायसे योगका अनुष्ठान करे और योगसे स्वाध्यायका अभ्यास करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग—दोनों साधनोंका सम्पादन होनेसे परमात्मा प्रकाशित होते हैं। उनका दर्शन करनेके लिये स्वाध्याय और योग दोनों नेत्र हैं।

**नारदजीने पूछा**—भगवन्! जिसके जान लेनेपर मैं सर्वाधार परमेश्वरका दर्शन कर सकूँ, उस योगको मैं जानना चाहता हूँ। कृपा करके उसका वर्णन कीजिये।

**सनन्दनजीने कहा**—पूर्वकालमें केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकको जिस प्रकार योगका उपदेश दिया था, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

**नारदजीने पूछा**—ब्रह्मन्! खाण्डिक्य और केशिध्वज कौन थे? तथा उनमें योगसम्बन्धी बातचीत किस प्रकार हुई थी?

**सनन्दनजीने कहा**—नारदजी! पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा हो गये हैं। उनके बड़े पुत्रका नाम अमितध्वज था। उसके छोटे भाई कृतध्वजके नामसे विख्यात थे। राजा कृतध्वज सदा अध्यात्मचिन्तनमें ही अनुरक्त रहते थे। कृतध्वजके पुत्र केशिध्वज हुए। ब्रह्मन्! वे अपने सद्ज्ञानके कारण धन्य हो गये थे। अमितध्वजके पुत्रका नाम खाण्डिक्य जनक था। खाण्डिक्य कर्मकाण्डमें निपुण थे। एक समय केशिध्वजने खाण्डिक्यको परास्त करके उन्हें राज्यसिंहासनसे उतार दिया। राज्यसे भ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य थोड़ी-सी साधन-सामग्री लेकर पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ एक दुर्गम वनमें चले गये। इधर केशिध्वजने ज्ञाननिष्ठ होते हुए भी निष्कामभावसे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजी! एक समय केशिध्वज जब यज्ञमें लगे हुए थे, उनकी दूध देनेवाली गायको निर्जन वनमें किसी भयङ्कर व्याघ्रने मार डाला। व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी जानकर राजाने ऋत्विजोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'इस विषयमें क्या करना चाहिये?' ऋत्विज् बोले—'महाराज! हम नहीं जानते। आप कशेरुसे पूछिये।' नारदजी! जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी वैसा ही उत्तर देते हुए कहा—'राजेन्द्र! मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता। आप शुनकसे पूछिये, वे जानते होंगे।' तब राजाने शुनकके पास जाकर यही प्रश्न किया। मुने! प्रश्न सुनकर शुनकने भी वैसा ही उत्तर दिया—'राजन्! इस विषयमें न तो कशेरु कुछ जानते हैं और न मैं। इस समय पृथ्वीपर दूसरा कोई भी इसका ज्ञाता नहीं है। एक ही व्यक्ति इस बातको जानता है, वह है तुम्हारा शत्रु 'खाण्डिक्य', जिसे तुमने परास्त किया है।' मुने! शुनककी यह बात सुनकर राजाने कहा—अच्छा तो अब मैं अपने शत्रुसे ही यह बात पूछनेके लिये जाता हूँ। यदि वह मुझे मार देगा तो भी इस यज्ञका फल तो प्राप्त ही हो जायगा। मुनिश्रेष्ठ! यदि मेरा वह शत्रु पूछनेपर मुझे प्रायश्चित्त बतला देगा तब तो यह यज्ञ साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होगा ही।' ऐसा कहकर राजा केशिध्वज काला मृगचर्म धारण किये रथपर बैठे और जहाँ महाराज खाण्डिक्य रहते थे, उस वनमें गये। खाण्डिक्यने अपने उस शत्रुको आते देख धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे आँखें लाल करके कहा।

**खाण्डिक्य बोले**—अरे! क्या तू काले मृगचर्मको कवचके रूपमें धारण करके हमें मारेगा?

**केशिध्वजने कहा**—खाण्डिक्यजी! मैं आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ। आपको मारनेके लिये नहीं आया हूँ।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् खाण्डिक्यने अपने समस्त मन्त्रियों और पुरोहितके साथ एकान्तमें

सलाह की। मन्त्रियोंने कहा—'यह शत्रु इस समय हमारे वशमें है, अतः इसे मार डालना चाहिये। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी आपके अधीन हो जायगी।' यह सुनकर खाण्डिक्य उन सबसे बोले—'निःसंदेह ऐसी ही बात है। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी अवश्य मेरे अधीन हो जायगी। परंतु इसे पारलौकिक विजय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथ्वी। यदि इसे न मारूँ तो पारलौकिक विजय मेरी होगी और इसे सारी पृथ्वी मिलेगी। पारलौकिक विजय अनन्तकालके लिये होती है तथा पृथ्वीकी जीत थोड़े ही दिन रहती है। इसलिये मैं तो इसे मारूँगा नहीं। यह जो कुछ पूछेगा उसे बतलाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके खाण्डिक्य जनक अपने शत्रुके समीप गये और इस प्रकार बोले—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो वह सब पूछ लो, मैं बताऊँगा।' नारदजी! खाण्डिक्यके ऐसा कहनेपर केशिध्वजने होमसम्बन्धी गायके मारे जानेका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया और उसके लिये कोई व्रतरूप प्रायश्चित्त पूछा! खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बता दिया। सब बातें जान लेनेपर महात्मा खाण्डिक्यकी आज्ञा ले केशिध्वजने यज्ञभूमिको प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर क्रमशः प्रायश्चित्तका सारा कार्य पूर्ण किया। फिर धीरे-धीरे यज्ञ समाप्त होनेपर राजाने अवभृथस्नान किया। तत्पश्चात् कृतकार्य होकर राजा केशिध्वजने मन-ही-मन सोचा—'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन तथा सब सदस्योंका सम्मान किया। साथ ही याचकोंको भी उनकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दीं। इस लोकके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था वह सब मैंने पूरा किया। तथापि न जाने क्यों मेरे मनमें ऐसा अनुभव होता है कि मेरा कोई कर्तव्य अधूरा रह गया है।' इस प्रकार सोचते-सोचते राजाके ध्यानमें यह बात आयी कि मैंने अभीतक खाण्डिक्यजीको गुरुदक्षिणा नहीं दी है। नारदजी! तब वे रथपर बैठकर फिर उसी दुर्गम वनमें गये, जहाँ खाण्डिक्य रहते थे। खाण्डिक्यने पुनः उन्हें आते देख हथियार उठा लिया। यह देख राजा केशिध्वजने कहा—'खाण्डिक्यजी! क्रोध न कीजिये। मैं आपका अहित करनेके लिये नहीं, गुरुदक्षिणा देनेके लिये आया हूँ। आपके उपदेशके अनुसार मैंने अपना यज्ञ भलीभाँति पूरा कर लिया है। अतः अब मैं आपको गुरुदक्षिणा देना चाहता हूँ। आपकी जो इच्छा हो, माँग लीजिये।'

उनके ऐसा कहनेपर खाण्डिक्यने पुनः अपने मन्त्रियोंसे सलाह ली और कहा—'यह मुझे गुरुदक्षिणा देना चाहता है, मैं इससे क्या माँगूँ?' मन्त्रियोंने कहा—'आप इससे सम्पूर्ण राज्य माँग लीजिये।' तब राजा खाण्डिक्यने उन मन्त्रियोंसे हँसकर कहा—'पृथ्वीका राज्य तो थोड़े ही समयतक रहनेवाला है, उसे मेरे-जैसे लोग कैसे माँग सकते हैं? आपका कथन भी ठीक ही है,

क्योंकि आपलोग स्वार्थ-साधनके मन्त्री हैं। परमार्थ क्या और कैसा है? इस विषयमें आपलोगोंको विशेष ज्ञान नहीं है।' ऐसा कहकर वे राजा केशिध्वजके पास आये और इस प्रकार बोले—'क्या तुम निश्चय ही गुरुदक्षिणा दोगे?' उन्होंने कहा—'जी हाँ।' उनके ऐसा कहनेपर खाण्डिक्यने कहा—'आप अध्यात्मज्ञानरूप परमार्थविद्याके ज्ञाता हैं। यदि मुझे अवश्य ही गुरुदक्षिणा देना चाहते हैं तो जो कर्म सम्पूर्ण क्लेशोंका नाश करनेमें समर्थ हो, उसका उपदेश कीजिये।'

**केशिध्वजने पूछा**—राजन्! आपने मेरा निष्कण्टक राज्य क्यों नहीं माँगा? क्योंकि क्षत्रियोंके लिये राज्य मिलनेसे बढ़कर प्रिय वस्तु और कोई नहीं है।

**खाण्डिक्य बोले**—केशिध्वजजी! मैंने आपका सम्पूर्ण राज्य क्यों नहीं माँगा, इसका कारण सुनिये। विद्वान् पुरुष राज्यकी इच्छा नहीं करते। क्षत्रियोंका यह धर्म है कि वे प्रजाकी रक्षा करें और अपने राज्यके विरोधियोंका धर्मयुद्धके द्वारा वध करें। मैं इस कर्तव्यके पालनमें असमर्थ हो गया था, इसलिये यदि आपने मेरे राज्यका अपहरण कर लिया है तो इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। यह राजकार्य अविद्या ही है। यदि समझपूर्वक इसका त्याग न किया जाय तो यह बन्धनका ही कारण होती है। यह राज्यकी चाह जन्मान्तरके कर्मोंद्वारा प्राप्त सुख-भोगके लिये होती है। अतः मुझे राज्य लेनेका अधिकार नहीं है। इसके सिवा क्षत्रियोंका किसीसे याचना करना धर्म नहीं है। यह साधु पुरुषोंका मत है। इसलिये अविद्याके अन्तर्गत जो आपका यह राज्य है उसकी याचना मैंने नहीं की है। जिनका चित्त ममतासे आकृष्ट है और जो अहंकाररूपी मदिराका पान करके उन्मत्त हो रहे हैं, वे अज्ञानी पुरुष ही राज्यकी अभिलाषा करते हैं।

**केशिध्वजने कहा**—मैं भी विद्यासे मृत्युके पार जानेकी इच्छा रखकर कर्तव्यबुद्धिसे राज्यकी रक्षा और निष्कामभावसे अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करता हूँ। कुलनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका मन विवेकरूपी धनसे सम्पन्न हुआ है, अतः आप अविद्याका स्वरूप सुनें— अविद्यारूपी वृक्षकी उत्पत्तिका जो बीज है, यह दो प्रकारका है—अनात्मामें आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना अर्थात् अहंता और ममता।

जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है तथा जो मोहरूपी अन्धकारसे आवृत हो रहा है, वह देहाभिमानी जीव इस पाञ्चभौतिक शरीरमें 'मैं' और 'मेरे' पनकी दृढ़ भावना कर लेता है, परंतु जब आत्मा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदिसे सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् पुरुष शरीरमें आत्मबुद्धि करेगा? जब आत्मा देहसे परे है तो देहके उपभोगमें आनेवाले गृह और क्षेत्र आदिको कौन बुद्धिमान् पुरुष 'यह मेरा है' ऐसा कहकर अपना मान सकता है? इस प्रकार इस शरीरके अनात्मा होनेसे इसके द्वारा उत्पन्न किये हुए पुत्र, पौत्र आदिमें भी कौन विद्वान् अपनापन करेगा? मनुष्य सारे कर्म शरीरके उपभोगके लिये ही करता है; किंतु जब यह देह पुरुषसे भिन्न है तो वे कर्म केवल बन्धनके ही कारण होते हैं। जैसे मिट्टीके घरको मनुष्य मिट्टी और जलसे ही लीपते-पोतते हैं, उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर भी अन्न और जलकी सहायतासे ही स्थिर रहता है। यदि पञ्चभूतोंका बना हुआ यह शरीर पाञ्चभौतिक पदार्थोंसे ही पुष्ट होता है तो इसमें पुरुषके लिये कौन-सी गर्व करनेकी बात है। यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंसे संसाररूपी मार्गपर चल रहा है और वासनारूपी धूलसे आच्छादित होकर केवल मोहरूपी श्रमको प्राप्त होता है। सौम्य! जिस समय ज्ञानरूपी गरम जलसे इसकी वह वासनारूपी धूल

धो दी जाती है, उसी समय इस संसारमार्गके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है। उस मोहरूपी श्रमके शान्त होनेपर पुरुषका अन्त:करण निर्मल होता है और वह निरतिशय परम निर्वाणपदको प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञानमय विशुद्ध आत्मा निर्वाणस्वरूप ही है। इस प्रकार मैंने आपको अविद्याका बीज बतलाया है। अविद्याजनित क्लेशोंको नष्ट करनेके लिये योगके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

## मुक्तिप्रद योगका वर्णन

**सनन्दनजी कहते हैं**—नारदजी! केशिध्वजके इस अध्यात्मज्ञानसे युक्त अमृतमय वचनको सुनकर खाण्डिक्यने पुन: उन्हें प्रेरित करते हुए कहा।

**खाण्डिक्य बोले**—योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज! आप निमिवंशमें योगशास्त्रके विशेषज्ञ हैं अत: आप उस योगका वर्णन कीजिये।

**केशिध्वजने कहा**—खाण्डिक्यजी! मैं योगका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। उस योगमें स्थित होनेपर मुनि ब्रह्ममें लीन होकर फिर अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका कारण होता है और विषयोंसे दूर हटकर वही मोक्षका साधक बन जाता है[१]। अत: विवेकज्ञानसम्पन्न विद्वान् पुरुष मनको विषयोंसे हटाकर परमेश्वरका चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाले मुनिके चित्तको परमात्मा अपने स्वरूपमें लीन कर लेता है। आत्मज्ञानके उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जिसका योग इस प्रकारकी विशेषतावाले धर्मसे युक्त होता है, वह योगी 'मुमुक्षु' कहलाता है। पहले-पहल योगका अभ्यास करनेवाला योगी 'युञ्जान' कहलाता है। और जब उसे परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, तब वह 'विनिष्पन्नसमाधि' (युक्त) कहलाता है। यदि किसी विघ्नदोषसे उस पूर्वोक्त योगी (युञ्जान)-का चित्त दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्मोंमें उस योगभ्रष्टकी अभ्यास करते रहनेसे मुक्ति हो जाती है। 'विनिष्पन्नसमाधि' योगी योगकी अग्निसे अपनी सम्पूर्ण कर्मराशिको भस्म कर डालता है। इसलिये उसी जन्ममें शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योगीको चाहिये कि वह अपने चित्तको योगसाधनके योग्य बनाते हुए ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। ये पाँच यम हैं। इनके साथ शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाना—इन पाँच नियमोंका पालन करे। इस प्रकार ये पाँच यम और पाँच नियम बताये गये हैं। सकामभावसे इनका सेवन किया जाय तो ये विशिष्ट फल देनेवाले होते हैं और निष्कामभावसे किया जाय तो मोक्ष प्रदान करते हैं।

यत्नशील साधकको उचित है कि स्वस्तिक, सिद्ध, पद्म आदि आसनोंमेंसे किसी एकका आश्रय ले यम और नियम नामक गुणोंसे सम्पन्न हो नियमपूर्वक योगाभ्यास करे। अभ्याससे साधक जो

१. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:। बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषयं तथा।
(ना० पूर्व० ४७। ४)

प्राणवायुको वशमें करता है, उस क्रियाको प्राणायाम समझना चाहिये। उसके दो भेद हैं—सबीज और निर्बीज (जिसमें भगवान्‌के नाम और रूपका आलम्बन हो, वह सबीज प्राणायाम है और जिसमें ऐसा कोई आलम्बन नहीं है, वह निर्बीज प्राणायाम कहलाता है)। साधु पुरुषोंके उपदेशसे प्राणायामका साधन करते समय जब योगीके प्राण और अपान एक दूसरेका पराभव करते (दबाते) हैं, तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम (निरोध) करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है[१]। राजन्! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास करता है, तब उसका आलम्बन सर्वव्यापी अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुका साकाररूप होता है। योगवेत्ता पुरुष प्रत्याहारका अभ्यास (इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेटकर अपने भीतर लानेका प्रयत्न) करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई इन्द्रियोंको रोककर उन्हें अपने चित्तकी अनुगामिनी बनावे। ऐसा करनेसे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियाँ भलीभाँति वशमें हो जाती हैं। यदि इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं तो कोई योगी उसके द्वारा योगका साधन नहीं कर सकता। प्राणायामसे प्राण-अपानरूप वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको अपने वशमें करके चित्तको उसके शुभ आश्रयमें स्थिर करे।

**खाण्डिक्यने पूछा**—महाभाग! बताइये, चित्तका वह शुभ आश्रय क्या है, जिसका अवलम्बन करके वह सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्तिको नष्ट कर देता है।

**केशिध्वजने कहा**—राजन्! चित्तका आश्रय ब्रह्म है। उसके दो स्वरूप हैं—मूर्त और अमूर्त अथवा अपर और पर। भूपाल! संसारमें तीन प्रकारकी भावनाएँ हैं और उन भावनाओंके कारण यह जगत् तीन प्रकारका कहा जाता है। पहली भावनाका नाम 'कर्मभावना' है, दूसरीका 'ब्रह्मभावना' है और तीसरीका 'उभयात्मिका भावना' है। इनमेंसे पहलीमें कर्मकी भावना होनेके कारण वह 'कर्मभावात्मिका' है, दूसरीमें ब्रह्मकी भावना होनेसे वह 'ब्रह्मभावात्मिका' कहलाती है और तीसरीमें दोनों प्रकारकी भावना होनेसे उसको 'उभयात्मिका' कहते हैं। इस तरह तीन प्रकारकी भावात्मक भावनाएँ हैं। ज्ञानी नरेश! सनक आदि सिद्ध पुरुष सदा ब्रह्मभावनासे युक्त होते हैं। उनसे भिन्न जो देवताओंसे लेकर स्थावर-जङ्गमपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी हैं, वे कर्मभावनासे युक्त होते हैं। हिरण्यगर्भ, प्रजापति आदि सच्चिदानन्द ब्रह्मका बोध और सृष्टिरचनादि कर्मोंका अधिकार—दोनोंसे युक्त हैं; अतः उनमें ब्रह्मभावना एवं कर्मभावना दोनोंकी ही उपलब्धि होती है।

राजन्! जबतक विशेष भेदज्ञानके हेतुभूत सम्पूर्ण कर्म क्षीण नहीं हो जाते, तभीतक भेददर्शी मनुष्योंकी दृष्टिमें यह विश्व तथा परब्रह्म भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। जहाँ सम्पूर्ण भेदोंका अभाव हो जाता है, जो केवल सत् है और वाणीका अविषय है तथा जो स्वयं ही अनुभवस्वरूप है, वही ब्रह्मज्ञान कहा गया है[२]। वही अजन्मा एवं निराकार विष्णुका

---

१. प्राणायामके तीन अङ्ग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको बंद करके दूसरेसे जो वायुको भीतर भरा जाता है, इस क्रियाको पूरक कहते हैं, इससे प्राणवायुका दबाव पड़नेसे अपानवायु नीचेकी ओर दबती है; यही प्राणके द्वारा अपानका पराभव है। जब नासिकाके दूसरे छिद्रको बंद करके पहलेसे वायुको बाहर निकाला जाता है, उसे रेचक कहते हैं। इसमें प्राणवायुके बाहर निकलनेसे अपानवायु ऊपरको उठती है, यही अपानद्वारा प्राणका पराभव है। भीतर भरी हुई वायुको जब नासिकाके दोनों छिद्र बंद करके कुछ कालतक रोका जाता है, उस समय प्राण और अपान दोनों नियत स्थान और सीमामें अवरुद्ध रहते हैं। यही इन दोनोंका संयम या निरोध है। इसीका नाम कुम्भक है।

२. अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु। विश्वमेतत्परं चान्यद् भेदभिन्नदृशां नृप॥
प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥
(ना० पूर्व० ४७। २७-२८)

परम स्वरूप है, जो उनके विश्वरूपसे सर्वथा विलक्षण है। राजन्! योगका साधक पहले उस निर्विशेष स्वरूपका चिन्तन नहीं कर सकता, इसलिये उसे श्रीहरिके विश्वमय स्थूलरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान् हिरण्यगर्भ, इन्द्र, प्रजापति, मरुद्गण, वसु, रुद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष और दैत्य आदि समस्त देव-योनियाँ; मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत तथा प्रधानसे लेकर विशेषपर्यन्त उन भूतोंके कारण तथा चेतन-अचेतन, एक पैर, दो पैर और अनेक पैरवाले जीव तथा बिना पैरवाले प्राणी—ये सब भगवान् विष्णुके त्रिविध भावनात्मक मूर्तरूप हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है।

शक्ति तीन प्रकारकी बतलायी गयी है—परा, अपरा और कर्मशक्ति। भगवान् विष्णुको 'पराशक्ति' कहा गया है। 'क्षेत्रज्ञ' अपराशक्ति है तथा अविद्याको कर्मनामक तीसरी शक्ति माना गया है। राजन्! क्षेत्रज्ञ शक्ति सब शरीरोंमें व्याप्त है; परंतु वह इस असार संसारमें अविद्या नामक शक्तिसे आवृत हो अत्यन्त विस्तारसे प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण सांसारिक क्लेश भोगा करती है। परम बुद्धिमान् नरेश! उस अविद्या-शक्तिसे तिरोहित होनेके कारण वह क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण प्राणियोंमें तारतम्यसे दिखायी देती है। वह प्राणहीन जड़ पदार्थोंमें बहुत कम है। उनसे अधिक वृक्ष-पर्वत आदि स्थावरोंमें स्थित है। स्थावरोंसे अधिक सर्प आदि जीवोंमें और उनसे भी अधिक पक्षियोंमें अभिव्यक्त हुई है। पक्षियोंकी अपेक्षा उस शक्तिमें मृग बढ़े-चढ़े हैं और मृगोंसे अधिक पशु हैं। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य परम पुरुष भगवान्‌की उस क्षेत्रज्ञ-शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं। मनुष्योंसे भी बढ़े हुए नाग, गन्धर्व, यक्ष आदि देवता हैं। देवताओंसे भी इन्द्र और इन्द्रसे भी प्रजापति उस शक्तिमें बढ़े हैं। प्रजापतिकी अपेक्षा भी हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीमें भगवान्‌की उस शक्तिका विशेष प्रकाश हुआ है। राजन्! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं। क्योंकि ये सब आकाशकी भाँति उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं। महामते! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त (निराकार) रूप है, जिसका योगीलोग ध्यान करते हैं और विद्वान् पुरुष जिसे 'सत्' कहते हैं। जनेश्वर! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह सम्पूर्ण जगत्‌के उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। राजन्! योगके साधकको आत्मशुद्धिके लिये विश्वरूपभगवान्‌के उस सर्वपापनाशक स्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। जैसे वायुका सहयोग पाकर प्रज्वलित हुई अग्नि ऊँची लपटें उठाकर तृणसमूहको भस्म कर डालती हैं, उसी प्रकार योगियोंके चित्तमें विराजमान भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको जला डालते हैं। इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधारभूत भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे—यही शुद्ध धारणा है।

राजन्! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगियोंकी मुक्तिके लिये इनके सब ओर जानेवाले चञ्चल चित्तके शुभ आश्रय हैं। पुरुषसिंह! भगवान्‌के अतिरिक्त जो मनके दूसरे आश्रय सम्पूर्ण देवता आदि हैं, वे सब अशुद्ध हैं। भगवान्‌का मूर्तरूप चित्तको दूसरे सम्पूर्ण आश्रयोंसे निःस्पृह कर देता है—चित्तको जो भगवान्‌में धारण करना—स्थिरतापूर्वक लगाना है, इसे ही 'धारणा' समझना चाहिये। नरेश! बिना किसी आधारके धारणा नहीं हो सकती; अतः भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करना चाहिये, वह बतलाता

हूँ, सुनो। भगवान‍्का मुख प्रसन्न एवं मनोहर है। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। दोनों कपोल बड़े ही सुहावने और चिकने हैं। ललाट चौड़ा और प्रकाशसे उद्भासित है। उनके दोनों कान बराबर हैं और उनमें धारण किये हुए मनोहर कुण्डल कंधेके समीपतक लटक रहे हैं। ग्रीवा शङ्खकी-सी शोभा धारण करती है। विशाल वक्षः-स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। उनके उदरमें तिरङ्गाकार त्रिवली तथा गहरी नाभि है। भगवान् विष्णु बड़ी-बड़ी चार अथवा आठ भुजाएँ धारण करते हैं। उनके दोनों ऊरु तथा जंघे समानभावसे स्थित हैं और मनोहर चरणारविन्द हमारे सम्मुख स्थिरभावसे खड़े हैं। उन्होंने स्वच्छ पीताम्बर धारण कर रखा है। इस प्रकार उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। उनके मस्तकपर किरीट, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर और हाथोंमें कड़े आदि आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। शार्ङ्गधनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, सुदर्शन चक्र, अक्षमाला तथा वरद और अभयकी

मुद्रा—ये सब भगवान‍्के करकमलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी अंगुलियोंमें रत्नमयी मुद्रिकाएँ शोभा दे रही हैं। राजन्! इस प्रकार योगी भगवान‍्के मनोहर स्वरूपमें अपना चित्त लगाकर तबतक उसका चिन्तन करता रहे, जबतक उसी स्वरूपमें उसकी धारणा दृढ़ न हो जाय। चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा कोई कार्य करते समय भी जब वह धारणा चित्तसे अलग न हो, तब उसे सिद्ध हुई मानना चाहिये।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् पुरुष भगवान‍्के ऐसे स्वरूपका चिन्तन करे, जिसमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष आदि आयुध न हों। वह स्वरूप परम शान्त तथा अक्षमाला एवं यज्ञोपवीतसे विभूषित हो। जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान‍्के किरीट, केयूर आदि आभूषणोंसे रहित स्वरूपका चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्वान् साधक अपने चित्तसे भगवान‍्के किसी एक अवयव (चरण या मुखारविन्द)-का ध्यान करे। तदनन्तर अवयवोंका चिन्तन छोड़कर केवल अवयवी भगवान‍्के ध्यानमें तत्पर हो जाय। राजन्! जिसमें भगवान‍्के स्वरूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो अन्य वस्तुओंकी इच्छासे रहित ध्येयाकार चित्तकी एक अनवरत धारा है, उसीको 'ध्यान' कहते हैं। वह अपने पूर्व यम-नियम आदि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय और ध्यानकी त्रिपुटीसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही 'समाधि' कहते हैं[१]। राजन्! प्राप्त करनेयोग्य वस्तु है परब्रह्म परमात्मा और उसके समीप पहुँचानेवाला सहायक है पूर्वोक्त समाधिजनित विज्ञान तथा उस परमात्मातक पहुँचनेका पात्र है सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित आत्मा। क्षेत्रज्ञ कर्ता

१-तद्रूपप्रत्यया चैकसंततिश्चान्यनिःस्पृहा। तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप॥
तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्। मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते॥
(ना० पूर्व० ४७। ६६-६७)

है और ज्ञान करण है; अत: उस ज्ञानरूपी करणके द्वारा वह प्रापक विज्ञान उस क्षेत्रज्ञका मुक्तिरूप कार्य सिद्ध करके कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है। उस समय वह भगवद्भावमयी भावनासे पूर्ण हो परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। वास्तवमें क्षेत्रज्ञ और परमात्माका भेद तो अज्ञानजनित ही है। भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर आत्मा और ब्रह्ममें भेद नहीं रह जाता। उस दशामें भेदबुद्धि कौन करेगा। खाण्डिक्यजी! इस प्रकार आपके प्रश्नके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे योगका वर्णन किया। अब मैं आपका दूसरा कौन कार्य करूँ?

**खाण्डिक्य बोले**—राजन्! आपने योगद्वारा परमात्मभावको प्राप्त करनेके उपायका वर्णन किया। इससे मेरा सभी कार्य सम्पन्न हो गया। आज आपके उपदेशसे मेरे मनकी सारी मलिनता नष्ट हो गयी। मैंने जो 'मेरे' शब्दका प्रयोग किया, यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष तो यह भी नहीं कह सकते। 'मैं' और 'मेरा' यह बुद्धि तथा अहंता-ममताका व्यवहार भी अविद्या ही है। परमार्थ वस्तु तो अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है[1]। केशिध्वजजी! आपने जो इस अविनाशी मोक्षदायक योगका वर्णन किया है, इसके द्वारा मेरे कल्याणके लिये आपने सब कुछ कर दिया।

**सनन्दनजी कहते हैं**—ब्रह्मन्! तदनन्तर राजा खाण्डिक्यने यथोचितरूपसे महाराज केशिध्वजका पूजन किया और वे उनसे सम्मानित होकर पुन: अपनी राजधानीमें लौट आये। खाण्डिक्य भगवान् विष्णुमें चित्त लगाये हुए योगसिद्धिके लिये विशालापुरी (बदरिकाश्रम)-को चले गये। वहाँ यम-नियम आदि गुणोंसे युक्त हो उन्होंने भगवान्‌की अनन्यभावसे उपासना की और अन्तमें वे अत्यन्त निर्मल परब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुमें लीन हो गये। नारदजी! तुमने आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंकी चिकित्साके लिये जो उपाय पूछा था, वह सब मैंने बताया।

## राजा भरतका मृगशरीरमें आसक्तिके कारण मृग होना, फिर ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण होकर जडवृत्तिसे रहना, जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

**नारदजी बोले**—महाभाग! मैंने आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंकी चिकित्साका उपाय सुन लिया तथापि मेरा मन अभी भ्रममें भटक रहा है। वह शीघ्रतापूर्वक स्थिर नहीं हो पाता। ब्रह्मन्! आप दूसरोंको मान देनेवाले हैं। बताइये, यदि दुष्टलोग किसीके मनके विपरीत बर्ताव करें तो मनुष्य उसे कैसे सह सकता है?

**सूतजी कहते हैं**—नारदजीका यह कथन सुनकर ब्रह्मपुत्र सनन्दनजीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्हें राजा भरतके चरित्रका स्मरण हो आया और वे इस प्रकार बोले।

**सनन्दनजीने कहा**—नारदजी! मैं इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहूँगा, जिसे सुनकर तुम्हारे भ्रान्त मनको बड़ी स्थिरता प्राप्त होगी। मुनिश्रेष्ठ! प्राचीन कालमें भरतनामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं। राजा भरतने बाप-दादोंके क्रमसे चले आते हुए राज्यको पाकर

१. अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयो:। परमार्थस्त्वसंलाप्यो वचसां गोचरो न य:॥

(ना० पूर्व० ४७। ७५)

उसका धर्मपूर्वक पालन किया। जैसे पिता अपने पुत्रको संतुष्ट करता है, उसी प्रकार वे प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सर्वदेवस्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया। वे सदा भगवान्का ही चिन्तन करते और उन्हींमें मन लगाकर नाना सत्कर्मोंमें लगे रहते थे। तदनन्तर पुत्रोंको जन्म देकर विद्वान् राजा भरत विषयोंसे विरक्त हो गये और राज्य त्यागकर पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रमको चले गये। उन महर्षियोंका आश्रम शालग्राम नामक महाक्षेत्रमें था। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले बहुत-से साधक उस तीर्थका सेवन करते थे। मुने! वहाँ राजा भरत तपस्यामें संलग्न हो यथाशक्ति पूजनसामग्री जुटाकर उसके द्वारा भक्तिभावसे भगवान् महाविष्णुकी आराधना करने लगे। नारदजी! वे प्रतिदिन प्रातः-काल निर्मल जलमें स्नान करते तथा अविनाशी परब्रह्मकी स्तुति एवं प्रणवसहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका उपस्थान करते थे। तदनन्तर आश्रमपर लौटते और अपने ही लाये हुए समिधा, कुशा तथा मिट्टी आदि द्रव्योंसे और फल, फूल, तुलसीदल एवं स्वच्छ जलसे एकाग्रतापूर्वक जगदीश्वर भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे। भगवान्की पूजाके समय वे भक्तिके प्रवाहमें डूब जाते थे।

एक दिनकी बात है, महाभाग राजा भरत प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हो जप करते हुए तीन मुहूर्त (छः घड़ी)-तक शालग्रामीके जलमें खड़े रहे। ब्रह्मन्! इसी समय एक प्यासी हरिणी जल पीनेके लिये अकेली ही वनसे नदीके तटपर आयी। उसका प्रसवकाल निकट था। वह प्रायः जल पी चुकी थी, इतनेमें ही सब प्राणियोंको भय देनेवाली सिंहकी गर्जना उच्चस्वरसे सुनायी पड़ी। फिर तो वह उस सिंहनादसे भयभीत हो

नदीके तटकी ओर उछल पड़ी। बहुत ऊँचाईकी ओर उछलनेसे उसका गर्भ नदीमें ही गिर पड़ा और तरङ्गमालाओंमें डूबता-उतराता हुआ वेगसे बहने लगा। राजा भरतने गर्भसे गिरे हुए उस मृगके बच्चेको दयावश उठा लिया। मुनीश्वर! उधर वह हरिणी गर्भ गिरनेके अत्यन्त दुःखसे और बहुत ऊँचे चढ़नेके परिश्रमसे थककर एक स्थानपर गिर पड़ी और वहीं मर गयी। उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्वी राजा भरत मृगके बच्चेको लिये हुए अपने आश्रमपर आये और प्रतिदिन उसका पालन-पोषण करने लगे। मुने! उनसे पोषित होकर वह मृगका बच्चा बढ़ने लगा। उस मृगमें राजाका चित्त जैसा आसक्त हो गया था, वैसा भगवान्में भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने राज्य और पुत्रोंको छोड़ा, समस्त भाई-बन्धुओंको भी त्याग दिया, परंतु इस हरिनके बच्चेमें ममता पैदा कर ली। उनका चित्त मृगकी ममताके वशीभूत हो गया था; इसलिये उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर राजा भरत मृत्युको प्राप्त हुए। उस समय जैसे पुत्र पिताको

देखता है, उसी प्रकार वह मृगका बच्चा आँसू बहाते हुए उनकी ओर देख रहा था। राजा भी प्राणोंका त्याग करते समय उस मृगकी ही ओर देख रहे थे। द्विजश्रेष्ठ! मृगकी भावना करनेके कारण राजा भरत दूसरे जन्ममें मृग हो गये। किंतु पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होनेसे उनके मनमें संसारकी ओरसे वैराग्य हो गया। वे अपनी माँको त्यागकर पुनः शालग्राम-तीर्थमें आये और सूखे घास तथा सूखे पत्ते खाकर शरीरका पोषण करने लगे। ऐसा करनेसे मृगशरीरकी प्राप्ति करानेवाले कर्मका प्रायश्चित्त हो गया; अतः वहीं अपने शरीरका त्याग करके वे जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाले) ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुए। सदाचारी योगियोंके श्रेष्ठ एवं शुद्ध कुलमें उनका जन्म हुआ। वे सम्पूर्ण विज्ञानसे सम्पन्न तथा समस्त शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ हुए।

मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने आत्माको प्रकृतिसे परे देखा। महामुने! वे आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण देवता आदि सम्पूर्ण भूतोंको अपनेसे अभिन्न देखते थे। उपनयनसंस्कार हो जानेपर वे गुरुके पढ़ाये हुए वेद-शास्त्रका अध्ययन नहीं करते थे। किन्हीं वैदिक कर्मोंकी ओर ध्यान नहीं देते और न शास्त्रोंका उपदेश ही ग्रहण करते थे। जब कोई उनसे बहुत पूछ-ताछ करता तो वे जडके समान गँवारोंकी-सी बोलीमें कोई बात कह देते थे। उनका शरीर मैला-कुचैला होनेसे निन्दित प्रतीत होता था। मुने! वे सदा मलिन वस्त्र पहना करते थे। इन सब कारणोंसे वहाँके समस्त नागरिक उनका अपमान किया करते थे। सम्मान योगसम्पत्तिकी अधिक हानि करता है और दूसरे लोगोंसे अपमानित होनेवाला योगी योगमार्गमें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है—ऐसा विचार करके वे परम बुद्धिमान् ब्राह्मण जन-साधारणमें अपने-आपको जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे, भीगे हुए चने और उड़द, बड़े, साग, जंगली फल और अन्नके दाने आदि जो-जो सामयिक खाद्य वस्तु मिल जाती, उसीको बहुत मानकर खा लेते थे। पिताकी मृत्यु होनेपर भाई-भतीजे और बन्धु-बान्धवोंने उनसे खेतीबारीका काम कराना आरम्भ किया। उन्हींके दिये हुए सड़े-गले अन्नसे उनके शरीरका पोषण होने लगा। उनका एक-एक अङ्ग बैलके समान मोटा था और काम-काजमें वे जडकी भाँति जुते रहते थे। भोजनमात्र ही उनका वेतन था; इसलिये सब लोग उनसे अपना काम निकाल लिया करते थे।

ब्रह्मन्! एक समय सौवीर-राजने शिबिकापर आरूढ हो इक्षुमती नदीके किनारे महर्षि कपिलके श्रेष्ठ आश्रमपर जानेका निश्चय किया था। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछना चाहते थे कि इस दुःखमय संसारमें मनुष्योंके लिये कल्याणकारी साधन क्या है? उस दिन राजाकी बेगारमें बहुत-से दूसरे मनुष्य भी पकड़े गये थे। उन्हींके बीच भरतमुनि भी बेगारमें पकड़कर लाये गये। नारदजी! वे सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र भाजन थे। उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था; अतः वे अपने पापमय प्रारब्धका क्षय करनेके लिये उस शिबिकाको कंधेपर उठाकर ढोने लगे। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जडभरतजी (क्षुद्र जीवोंको बचानेके लिये) चार हाथ आगेकी भूमि देखते हुए मन्दगतिसे चलने लगे; किंतु उनके सिवा दूसरे कहार जल्दी-जल्दी चल रहे थे। राजाने देखा कि पालकी समान गतिसे नहीं चल रही है, तो उन्होंने कहा—'अरे पालकी ढोनेवाले कहारो! यह क्या करते हो? सब लोग एक साथ समान गतिसे चलो।' किंतु इतना कहनेपर भी जब शिबिकाकी गति पुनः वैसी ही विषम दिखायी दी, तब राजाने डाँटकर पूछा—'अरे! यह

क्या है? तुमलोग मेरी आज्ञाके विपरीत चलते हो?' राजाके बार-बार ऐसे वचन सुनकर पालकी ढोनेवाले कहारोंने जडभरतकी ओर संकेत करके कहा—'यही धीरे-धीरे चलता है।'

**राजाने पूछा**—अरे! क्या तू थक गया? अभी तो थोड़ी ही दूरतक तूने मेरी पालकी ढोयी है। क्या तुझसे यह परिश्रम सहन नहीं होता? वैसे तो तू बड़ा मोटा-ताजा दिखायी देता है।

**ब्राह्मणने कहा**—राजन्! न मैं मोटा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ही ढोयी है। न तो मैं थका हूँ और न मुझे कोई परिश्रम ही होता है। इस पालकीको ढोनेवाला कोई दूसरा ही है।

**राजा बोले**—मोटा तो तू प्रत्यक्ष दिखायी देता है और पालकी तेरे ऊपर अब भी मौजूद है और बोझ ढोनेमें देहधारियोंको परिश्रम तो होता ही है।

**ब्राह्मणने कहा**—राजन्! इस विषयमें मेरी बात सुनो। 'सबसे नीचे पृथ्वी है, पृथ्वीपर दो पैर हैं, दोनों पैरोंपर दो जङ्घे हैं, उन जङ्घोंपर दो ऊरु हैं तथा उनके ऊपर उदर है। फिर उदरके ऊपर छाती, भुजाएँ और कंधे हैं और कंधोंपर यह पालकी रखी गयी है। ऐसी दशामें मेरे ऊपर भार कैसे रहा? पालकीमें भी जिसे तुम्हारा कहा जाता है, वह शरीर रखा हुआ है। राजन्! मैं तुम और अन्य सब जीव पञ्चभूतोंद्वारा ही ढोये जाते हैं तथा यह भूतवर्ग भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर ही बहा जा रहा है। पृथ्वीपते! ये सत्त्व आदि गुण भी कर्मोंके वशीभूत हैं और वह कर्म समस्त जीवोंमें अविद्याद्वारा ही संचित है। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है। वह एक ही सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त है। उसकी वृद्धि अथवा ह्रास कभी नहीं होता। जब आत्मामें न तो वृद्धि होती है और न ह्रास ही, तब तुमने किस युक्तिसे यह बात कही है कि तू मोटा है। यदि क्रमशः पृथ्वी, पैर, जङ्घा, ऊरु, कटि तथा उदर आदि अङ्गोंपर स्थित हुए कंधेके ऊपर रखी हुई यह शिबिका मेरे लिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है। राजन्! इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवोंने भी न केवल पालकी उठा रखी है, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रखा है। राजन्! जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी हुई है, उसीसे यह तुम्हारा, मेरा अथवा अन्य सबका शरीर भी बना है, जिसमें सबने ममता बढ़ा रखी है।

**सनन्दनजी कहते हैं**—ऐसा कहकर वे ब्राह्मणदेवता कंधेपर पालकी लिये मौन हो गये। तब राजाने भी तुरंत पृथ्वीपर उतरकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये।

**राजाने कहा**—हे विप्रवर! यह पालकी छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और बताइये, यह छद्मवेश धारण किये हुए आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? अथवा आपके यहाँ आगमनका क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये।

**ब्राह्मण बोले**—भूपाल! सुनो—मैं कौन हूँ, यह बात बतायी नहीं जा सकती और तुमने जो यहाँ आनेका कारण पूछा, उसके उत्तरमें यह निवेदन है कि कहीं भी आने-जानेका कर्म कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करता है। धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंका उपभोग करनेके लिये ही जीव देह आदि धारण करता है। भूपाल! सब जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके कारण केवल उनके धर्म और अधर्म ही हैं।

**राजाने कहा**—इसमें संदेह नहीं कि सब कर्मोंके धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपभोगके लिये एक देहसे दूसरी देहमें

जाना होता है, किंतु आपने जो यह कहा कि 'मैं कौन हूँ' यह बात बतायी नहीं जा सकती, इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है।

**ब्राह्मण बोले**—राजन्! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालु ही करते हैं, किंतु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये सब उस शब्दके उच्चारणमात्रमें हेतु हैं। तो क्या इन जिह्वा आदि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं; अत: ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा है' ऐसा कहना कदापि उचित नहीं। राजन्! सिर और हाथ-पैर आदि लक्षणोंवाला यह शरीर आत्मासे पृथक् ही है; अत: इस 'अहं' शब्दका प्रयोग मैं कहाँ और किसके लिये करूँ? नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। जब सम्पूर्ण शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्नवाक्य व्यर्थ ही हैं। नरेश! 'तुम राजा हो, यह पालकी है और ये सामने पालकी ढोनेवाले खड़े हैं तथा यह जगत् आपके अधिकारमें है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तवमें सत्य नहीं है। वृक्षसे लकड़ी पैदा हुई और उससे यह पालकी बनी, जिसपर तुम बैठते हो। यदि इसे पालकी ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहाँ चला गया? यह तुम्हारे सेवकगण ऐसा नहीं कहते कि महाराज पेड़पर चढ़े हुए हैं और न कोई तुम्हें लकड़ीपर ही चढ़ा हुआ बतलाता है। सब लोग पालकीमें ही बैठा हुआ बतलाते हैं; किंतु पालकी क्या है—लकड़ियोंका समुदाय। वही अपने लिये एक विशेष नामका आश्रय लेकर स्थित है। नृपश्रेष्ठ! इसमेंसे लकड़ियोंके समूहको अलग कर दो और फिर खोजो—तुम्हारी पालकी कहाँ है? इसी प्रकार छातेकी शलाकाओं-(तिल्लियों-) को पृथक् करके विचार करो, छाता नामकी वस्तु कहाँ चली गयी? यही न्याय तुम्हारे और मेरे ऊपर लागू होता है (अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं हैं)। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरोंके लिये ही रखे गये हैं—ऐसा जानना चाहिये। भूपाल! आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब तो शरीरोंकी आकृतियोंके भेद हैं, जो भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। राजन्! लोकमें जो राजा, राजाके सिपाही तथा और भी जो-जो ऐसी वस्तुएँ हैं, वे सब काल्पनिक हैं, सत्य नहीं हैं। नरेश! जो वस्तु परिणाम आदिके कारण होनेवाली किसी नयी संज्ञाको कालान्तरमें भी नहीं प्राप्त होती, वही पारमार्थिक वस्तु है। विचार करो, वह क्या है? तुम समस्त प्रजाके लिये राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके लिये पति और पुत्रके लिये पिता हो। भूपाल! बताओ, मैं तुम्हें क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या हो? यह सिर हो या ग्रीवा अथवा पेट या पैर आदिमेंसे कोई हो तथा ये सिर आदि भी तुम्हारे क्या हैं? पृथ्वीपते! तुम सम्पूर्ण अवयवोंसे पृथक् स्थित होकर भलीभाँति विचार करो कि मैं कौन हूँ। नरेश! आत्म-तत्त्व जब इस प्रकार स्थित है, जब सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे 'अहं' इस नामसे कैसे बता सकता हूँ?

# जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद—परमार्थका निरूपण तथा ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञानका उपदेश

**सनन्दनजी कहते हैं**—नारदजी! ब्राह्मणका परमार्थयुक्त वचन सुनकर सौवीर-नरेशने विनयसे नम्र होकर कहा।

**राजा बोले**—विप्रवर! आपने सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त जिस विवेक-विज्ञानका दर्शन कराया है, वह प्रकृतिसे परे ब्रह्मका ही स्वरूप है। परंतु आपने जो

यह कहा कि मैं पालकी नहीं ढोता हूँ और न मुझपर पालकीका भार ही है। जिसने यह पालकी उठा रखी है, वह शरीर मुझसे भिन्न है। जीवोंकी प्रवृत्ति गुणोंकी प्रेरणासे होती है और ये गुण कर्मोंसे प्रेरित होकर प्रवृत्त होते हैं। इसमें मेरा कर्तृत्व क्या है? परमार्थके ज्ञाता द्विजश्रेष्ठ! आपकी वह बात कानमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर उसे प्राप्त करनेके लिये विह्वल हो उठा है। महाभाग द्विज! मैं पहलेसे ही महर्षि कपिलके पास जाकर यह पूछनेके लिये उद्यत हुआ था कि इस जगत्‌में श्रेय क्या है, यह मुझे बताइये। किंतु इसके बीचमें ही आपने जो ये बातें कही हैं, उन्हें सुनकर मेरा मन परमार्थश्रवणके लिये आपकी ओर दौड़ रहा है। महर्षि कपिलजी सर्वभूतस्वरूप भगवान् विष्णुके अंश हैं और संसारके मोहका नाश करनेके लिये इस पृथ्वीपर उनका आगमन हुआ है—ऐसा मुझे जान पड़ता है। वे ही भगवान् कपिल मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट हुए हैं, तभी तो आप ऐसा भाषण कर रहे हैं। अतः ब्रह्मन्! मेरे मोहका नाश करनेके लिये जो परम श्रेय हो, वह मुझे बताइये; क्योंकि आप सम्पूर्ण विज्ञानमय जलकी तरंगोंके समुद्र जान पड़ते हैं।

**ब्राह्मणने कहा**—भूपाल! क्या तुम श्रेयकी ही बात पूछते हो? या परमार्थ जाननेके लिये प्रश्न करते हो? राजन्! जो मनुष्य देवताकी आराधना करके धन-सम्पत्ति चाहता है, पुत्र तथा राज्य (एवं स्वर्ग)-की अभिलाषा करता है, उसके लिये तो वे ही वस्तुएँ श्रेय हैं; परंतु विवेकी पुरुषके लिये परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है। स्वर्गलोकरूप फल देनेवाला जो यज्ञ आदि कर्म है, वह भी श्रेय ही है; परंतु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है। भूपाल! योगयुक्त तथा अन्य पुरुषोंको भी सदा परमात्माका चिन्तन करना चाहिये; क्योंकि परमात्माका संयोगरूप जो श्रेय है, वही वास्तविक श्रेय है। इस प्रकार श्रेय तो अनेक हैं, सैकड़ों और हजारों प्रकारके हैं; किंतु वे सब परमार्थ नहीं हैं। परमार्थ मैं बतलाता हूँ, सुनो—यदि धन ही परमार्थ होता तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता? नरेश्वर! यदि इस संसारमें राज्य आदिकी

प्राप्तिको परमार्थ कहा जाय तो वे कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते हैं; इसलिये परमार्थको भी आगमापायी मानना पड़ेगा। यदि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञकर्मको तुम परमार्थ मानो तो उसके विषयमें मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। राजन्! कारणभूत मृत्तिकासे जो कर्म उत्पन्न होता है, वह कारणका अनुगमन करनेसे मृत्तिकास्वरूप ही समझा जाता है। इस न्यायसे समिधा, घृत और कुशा आदि विनाशशील द्रव्योंद्वारा जो क्रिया सम्पादित होती है, वह भी अवश्य ही विनाशशील होगी; परंतु विद्वान् पुरुष परमार्थको अविनाशी मानते हैं। जो क्रिया नाशवान् पदार्थोंसे सम्पन्न होती है, वह और उसका फल दोनों निस्संदेह नाशवान् होते हैं। यदि निष्काम-भावसे किया जानेवाला कर्म स्वर्गादि फल न देनेके कारण परमार्थ माना जाय तो मेरे विचारसे वह परमार्थभूत मोक्षका साधनमात्र है और साधन कभी परमार्थ हो नहीं सकता (क्योंकि वह साध्य माना गया है)। राजन्! यदि आत्माके ध्यानको ही परमार्थ नाम दिया जाय तो वह दूसरोंसे आत्माका भेद करनेवाला है; किंतु परमार्थमें भेद नहीं होता। अतः राजन्! निस्संदेह ये सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं। भूपाल! अब मैं संक्षेपसे परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो—

नरेश्वर! आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं। वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है। असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वव्यापक परमात्माका न कभी संयोग हुआ, न है और न होगा ही। वह अपने और दूसरेके शरीरोंमें विद्यमान रहते हुए भी एक ही है। इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है, वही परमार्थ है। द्वैतभावना रखनेवाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी ही हैं। जैसे बाँसुरीमें एक ही वायु अभेदभावसे व्याप्त है; किंतु उसके छिद्रोंके भेदसे उसमें षड्ज, ऋषभ आदि स्वरोंका भेद हो जाता है, उसी प्रकार उस एक ही परमात्माके देव, मनुष्य आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं। उस भेदकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही सीमित है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनो—

निदाघ नामक ब्राह्मणको उपदेश देते हुए महामुनि ऋभुने जो कुछ कहा था, उसीका इसमें वर्णन है। परमेष्ठी ब्रह्माजीके एक ऋभु नामक पुत्र हुए। भूपते! वे स्वभावसे ही परमार्थतत्त्वके ज्ञाता थे। पूर्वकालमें पुलस्त्यमुनिके पुत्र निदाघ उनके शिष्य हुए थे। ऋभुने बड़ी प्रसन्नताके साथ निदाघको सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। समस्त ज्ञानप्रधान शास्त्रोंका उपदेश प्राप्त कर लेनेपर भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं हुई। नरेश्वर! ऋभुने निदाघकी इस स्थितिको ताड़ लिया था। देविका नदीके तटपर वीरनागर नामक एक अत्यन्त समृद्धिशाली और परम रमणीय नगर था, उसे महर्षि पुलस्त्यने बसाया था। उसी नगरमें पहले महर्षि ऋभुके शिष्य योगवेत्ता निदाघ निवास करते थे। उनके वहाँ रहते हुए जब एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये उनके नगरमें गये। निदाघ बलिवैश्वदेवके अन्तमें द्वारपर बैठकर अतिथियोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे ऋभुको पाद्य और अर्घ्य देकर अपने घरमें ले गये और हाथ-पैर धुलाकर उन्हें आसनपर बिठाया। तत्पश्चात् द्विजश्रेष्ठ निदाघने आदरपूर्वक कहा—'विप्रवर! अब भोजन कीजिये।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपके घरमें भोजन करने योग्य जो-जो अन्न प्रस्तुत हो, उसका नाम बतलाइये।

निदाघने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे घरमें सत्तू,

जौकी लपसी और बाटी बनी हैं। आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे, वही इच्छानुसार भोजन कीजिये।

**ऋभु बोले—**ब्रह्मन्! इन सबमें मेरी रुचि नहीं है। मुझे तो मीठा अन्न दो। हलुआ, खीर और खाँडके बने हुए पदार्थ भोजन कराओ।

**निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—**शोभने! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी भोजन-सामग्री उपलब्ध हो, उसके द्वारा इन अतिथि-देवताके लिये मिष्टान्न बनाओ।

पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणपत्नीने स्वामीकी आज्ञाका आदर करते हुए ब्राह्मण देवताके लिये मीठा भोजन तैयार किया। राजन्! महामुनि ऋभुके इच्छानुसार मिष्टान्न भोजन कर लेनेपर निदाघने विनीतभावसे खड़े होकर पूछा।

**निदाघ बोले—**ब्रह्मन्! कहिये, भोजनसे आपको भलीभाँति तृप्ति हुई? आप संतुष्ट हो गये न? अब आपका चित्त पूर्णत: स्वस्थ है न? विप्रवर! आप कहाँके रहनेवाले हैं, कहाँ जानेको उद्यत हैं और कहाँसे आपका आगमन हुआ है? यह सब बताइये।

**ऋभुने कहा—**ब्रह्मन्! जिसे भूख लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति भी होती है। मुझे तो न कभी भूख लगी और न तृप्ति हुई। फिर मुझसे क्यों पूछते हो? जठराग्निसे पार्थिव धातु (पहलेके खाये हुए पदार्थ)-के पच जानेपर क्षुधाकी प्रतीति होती है। इसी प्रकार पिये हुए जलके क्षीण हो जानेपर मनुष्योंको प्यासका अनुभव होता है। द्विज! ये भूख और प्यास देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं। अत: मुझे कभी भूख लगनेकी सम्भावना ही नहीं है। इसलिये मुझे तो सर्वदा तृप्ति रहती ही है। ब्रह्मन्! मनकी स्वस्थता और संतोष—ये दोनों चित्तके धर्म (विकार) हैं। अत: आत्मा इन धर्मोंसे संयुक्त नहीं होता और तुमने जो यह पूछा है कि आपका निवास कहाँ है, आप कहाँ जायँगे और आप कहाँसे आते हैं—इन तीनों प्रश्नोंके विषयमें मेरा मत सुनो। आत्मा सबमें व्याप्त है। यह आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है, अत: इसके विषयमें कहाँसे आये, कहाँ रहते हैं और कहाँ जायँगे—यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? इसलिये मैं न जानेवाला हूँ और न आनेवाला। (तू, मैं और अन्यका भेद भी शरीरको लेकर ही है) वास्तवमें न तू तू है, न अन्य अन्य है और न मैं मैं हूँ (केवल विशुद्ध आत्मा ही सर्वत्र विराजमान है)। इसी प्रकार मीठा भी मीठा नहीं है। मैंने जो तुमसे मिष्टान्नके लिये पूछा था उसमें भी मेरा यही भाव था कि देखूँ, ये क्या कहते हैं। द्विजश्रेष्ठ! इस विषयमें मेरा विचार सुनो। मीठा अन्न भी तृप्त हो जानेके बाद मीठा नहीं लगता तो वही उद्वेगजनक हो जाता है। कभी-कभी जो मीठा नहीं है, वह भी मीठा लगता है अर्थात् अधिक भूख होनेपर फीका अन्न भी मीठा (अमृतके समान) लगता है। ऐसा कौन-सा अन्न है, जो आदि, मध्य और अन्त—तीनों कालमें रुचिकर ही हो। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लिपनेपर स्थिर होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओंसे पुष्ट होता है। जौ, गेहूँ, मूँग, घी, तेल, दूध, दही, गुड़ और फल आदि सभी भोज्य-पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं (इनमेंसे कौन स्वादिष्ट है और कौन नहीं)। अत: ऐसा समझकर जो मीठे और बे-मीठेका विचार करनेवाला है, उस मनको तुम्हें समदर्शी बनाना चाहिये; क्योंकि समता ही मोक्षका उपाय है।

राजन्! ऋभुके ये परमार्थयुक्त वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! आप प्रसन्न होइये और बताइये, मेरा हितसाधन करनेके लिये यहाँ पधारे हुए आप कौन हैं? आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट

हो गया है।'

**ऋभु बोले—**द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूँ और तुम्हें तत्त्वको समझनेवाली बुद्धि देनेके लिये यहाँ आया था। अब मैं जाता हूँ। जो कुछ परमार्थ है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। इस प्रकार परमार्थ-तत्त्वका विचार करते हुए तुम इस सम्पूर्ण जगत्‌को एकमात्र वासुदेवसंज्ञक परमात्माका स्वरूप समझो। इसमें भेदका सर्वथा अभाव है।

**ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—**तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुदेवको प्रणाम किया और बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् वे निदाघकी इच्छा न होनेपर भी वहाँसे चले गये। नरेश्वर! तदनन्तर एक सहस्र दिव्य वर्ष बीतनेके बाद गुरुदेव महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये पुनः उसी नगरमें आये। उन्होंने नगरसे बाहर ही निदाघको देखा। वहाँका राजा बहुत बड़ी सेना आदिके साथ धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा था और निदाघ मनुष्योंकी भीड़-भाड़से दूर हटकर खड़े थे। वे जंगलसे समिधा और कुशा लेकर आये थे और भूख-प्याससे उनका गला सूख रहा था। निदाघको देखकर ऋभु उनके समीप गये और अभिवादन करके बोले—'बाबाजी! आप यहाँ एकान्तमें कैसे खड़े हैं?'

**निदाघ बोले—**विप्रवर! आज इस रमणीय नगरमें यहाँके राजा प्रवेश करना चाहते हैं। अतः यहाँ मनुष्योंकी यह बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी है। इसीलिये मैं यहाँ खड़ा हूँ।

**ऋभुने पूछा—**द्विजश्रेष्ठ! आप यहाँकी बातोंके जानकार मालूम होते हैं। अतः बताइये, यहाँ राजा कौन है और दूसरे लोग कौन हैं?

**निदाघ बोले—**यह जो पर्वतशिखरके समान ऊँचे और मतवाले गजराजपर चढ़ा हुआ है, वही राजा है और दूसरे लोग उसके परिजन हैं।

**ऋभुने पूछा—**महाभाग! मैंने हाथी तथा राजाको एक ही साथ देखा है। आपने विशेषरूपसे इनका पृथक्-पृथक् चिह्न नहीं बताया; इसलिये मैं पहचान न सका। अतः आप इनकी विशेषता बतलाइये। मैं जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन राजा है और कौन हाथी?

**निदाघ बोले—**ब्रह्मन्! इनमें यह जो नीचे है, वह हाथी है और इसके ऊपर ये राजा बैठे हैं। इन दोनोंमें एक वाहन है और दूसरा सवार। भला, वाह्य-वाहक-सम्बन्धको कौन नहीं जानता?

**ऋभुने पूछा—** ब्रह्मन्! जिस प्रकार मैं अच्छी तरह समझ सकूँ, उस तरह मुझे समझाइये। 'नीचे' इस शब्दका क्या अभिप्राय है और 'ऊपर' किसे कहते हैं?

**ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—**ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघ सहसा उनके ऊपर चढ़ गये और इस प्रकार बोले—'सुनिये, आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, वह अब समझाकर कहता हूँ। इस समय मैं राजाकी भाँति ऊपर हूँ और श्रीमान् गजराजकी भाँति नीचे। ब्राह्मणदेव! आपको भलीभाँति समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखाया है।

**ऋभुने कहा**—द्विजश्रेष्ठ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं हाथीके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं और मैं कौन हूँ?

**ब्राह्मण कहते हैं**—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरंत ही उनके दोनों चरणोंमें मस्तक नवाया और कहा—'भगवन्! आप निश्चय ही मेरे आचार्यपाद महर्षि ऋभु हैं; क्योंकि दूसरेका हृदय इस प्रकार अद्वैत-संस्कारसे सम्पन्न नहीं है, जैसा कि मेरे आचार्यका। अतः मेरा विश्वास है, आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हुए हैं।

**ऋभुने कहा**—निदाघ! पहले तुमने मेरी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की है। इसलिये अत्यन्त स्नेहवश मैं तुम्हें उपदेश देनेके लिये तुम्हारा आचार्य ऋभु ही यहाँ आया हूँ। महामते! समस्त पदार्थोंमें अद्वैत आत्मबुद्धि होना ही परमार्थका सार है। मैंने तुम्हें संक्षेपसे उसका उपदेश कर दिया।

**ब्राह्मण जडभरत कहते हैं**—विद्वान् गुरु महर्षि ऋभु निदाघसे ऐसा कहकर चले गये। निदाघ भी उनके उपदेशसे अद्वैतपरायण हो गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। ब्रह्मर्षि निदाघने इस प्रकार ब्रह्मपरायण होकर परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। धर्मज्ञ नरेश! इसी प्रकार तुम भी आत्माको सबमें व्याप्त जानते हुए अपनेमें तथा शत्रु और मित्रमें समान भाव रखो।

**सनन्दनजी कहते हैं**—ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ सौवीर-नरेशने परमार्थकी ओर दृष्टि रखकर भेदबुद्धि त्याग दी और वे ब्राह्मण भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करके बोधयुक्त हो उसी जन्ममें मुक्त हो गये। मुनीश्वर नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमार्थरूप यह अध्यात्मज्ञान बताया है। इसे सुननेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको भी यह मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

## शिक्षा-निरूपण

**सूतजी कहते हैं**—सनन्दनजीका ऐसा वचन सुनकर नारदजी अतृप्त-से रह गये। वे और भी सुननेके लिये उत्सुक होकर भाई सनन्दनजीसे बोले।

**नारदजीने कहा**—भगवन्! मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, वह सब आपने बता दिया। तथापि भगवत्सम्बन्धी चर्चाको बारंबार सुनकर भी मेरा मन तृप्त नहीं होता—अधिकाधिक सुननेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। सुना जाता है, परम धर्मज्ञ व्यास-पुत्र शुकदेवजीने आन्तरिक और बाह्य—सभी भोगोंसे पूर्णतः विरक्त होकर बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त कर ली। ब्रह्मन्! महात्माओंकी सेवा (सत्सङ्ग) किये बिना प्रायः पुरुषको विज्ञान (तत्त्व-ज्ञान) नहीं प्राप्त होता, किंतु व्यासनन्दन शुकदेवने बाल्यावस्थामें ही ज्ञान पा लिया; यह कैसे सम्भव हुआ? महाभाग! आप मोक्षशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले हैं। मैं सुनना चाहता हूँ, आप मुझसे शुकदेवजीका रहस्यमय जन्म और कर्म कहिये।

**सनन्दनजी बोले**—नारद! सुनो, मैं शुकदेवजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त संक्षेपसे कहूँगा। मुने! इस वृत्तान्तको सुनकर मनुष्य ब्रह्मतत्त्वका ज्ञाता हो सकता है। अधिक आयु हो जानेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा बन्धु-बान्धवोंसे कोई बड़ा नहीं होता। ऋषि-मुनियोंने यह धर्मपूर्ण निश्चय किया है कि हमलोगोंमें जो 'अनूचान' हो, वही महान् है।

**नारदजीने पूछा**—सबको मान देनेवाले विप्रवर! पुरुष 'अनूचान' कैसे होता है? वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

**सनन्दनजी बोले**—नारद! सुनो, मैं अनूचानका लक्षण बताता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य अङ्गोंसहित वेदोंका ज्ञाता होता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष तथा छन्दःशास्त्र—इन छःको विद्वान् पुरुष वेदाङ्ग कहते हैं। धर्मका प्रतिपादन करनेमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद ही प्रमाण बताये गये हैं। जो श्रेष्ठ द्विज गुरुसे छहों अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन भलीभाँति करता है, वह 'अनूचान' होता है; अन्यथा करोड़ों ग्रन्थ बाँच लेनेसे भी कोई 'अनूचान' नहीं कहला सकता।

**नारदजीने कहा**—मानद! आप अङ्गोंसहित इन सम्पूर्ण वेदोंके महापण्डित हैं। अतः मुझे अङ्गों और वेदोंका लक्षण विस्तारपूर्वक बताइये।

**सनन्दनजी बोले**—ब्रह्मन्! तुमने मुझपर प्रश्नका यह अनुपम भार रख दिया। मैं संक्षेपसे इन सबके सुनिश्चित सार-सिद्धान्तका वर्णन करूँगा। वेदवेत्ता ब्रह्मर्षियोंने वेदोंकी शिक्षामें स्वरको प्रधान कहा है; अतः स्वरका वर्णन करता हूँ, सुनो—स्वर-शास्त्रोंके निश्चयके अनुसार विशेषरूपसे आर्चिक (ऋक्सम्बन्धी), गाथिक (गाथा-सम्बन्धी) और सामिक (साम-सम्बन्धी) स्वर-व्यवधानका प्रयोग करना चाहिये। ऋचाओंमें एकका अन्तर देकर स्वर होता है। गाथाओंमें दोके व्यवधानसे और साम-मन्त्रोंमें तीनके व्यवधानसे स्वर होता है। स्वरोंका इतना ही व्यवधान सर्वत्र जानना चाहिये। ऋक्, साम और यजुर्वेदके अङ्गभूत जो याज्य-स्तोत्र, करण और मन्त्र आदि याज्ञिकोंद्वारा यज्ञोंमें प्रयुक्त होते हैं, शिक्षा-शास्त्रका ज्ञान न होनेसे उनमें विस्वर (विरुद्ध स्वरका उच्चारण) हो जाता है। मन्त्र यदि यथार्थ स्वर और वर्णसे हीन हो तो मिथ्या-प्रयुक्त होनेके कारण वह उस अभीष्ट अर्थका बोध नहीं कराता; इतना ही नहीं, वह वाक्रूपी वज्र यजमानकी हिंसा कर देता है—जैसे 'इन्द्रशत्रु' यह पद स्वरभेदजनित अपराधके कारण यजमानके लिये ही अनिष्टकारी हो गया[1]। सम्पूर्ण वाङ्मयके उच्चारणके लिये वक्षःस्थल, कण्ठ और सिर—ये तीन स्थान हैं। इन तीनोंको सवन कहते हैं, अर्थात् वक्षःस्थानमें नीचे स्वरसे जो शब्दोच्चारण होता है, उसे प्रातःसवन कहते हैं; कण्ठस्थानमें मध्यम स्वरसे किये हुए शब्दोच्चारणका नाम माध्यन्दिनसवन है तथा मस्तकरूप स्थानमें उच्च स्वरसे जो शब्दोच्चारण होता है, उसे तृतीयसवन कहते हैं। अधरोत्तरभेदसे सप्तस्वरात्मक सामके भी पूर्वोक्त तीन ही स्थान हैं। उरोभाग, कण्ठ तथा सिर—ये सातों स्वरोंके विचरण-स्थान हैं। किंतु उरःस्थलमें मन्द्र और अतिस्वारकी ठीक अभिव्यक्ति न होनेसे उसे सातों स्वरोंका विचरण-स्थल नहीं कहा जा सकता; तथापि अध्ययनाध्यापनके लिये वैसा विधान किया गया है। (ठीक अभिव्यक्ति न होनेपर भी उपांशु या मानस प्रयोगमें वर्ण तथा स्वरका सूक्ष्म उच्चारण तो होता ही है।) कठ, कलाप, तैत्तिरीय तथा आह्वरक शाखाओंमें और ऋग्वेद तथा सामवेदमें प्रथम स्वरका उच्चारण करना चाहिये। ऋग्वेदकी प्रवृत्ति दूसरे और तीसरे स्वरके द्वारा होती है। लौकिक व्यवहारमें उच्च और मध्यमका संघात-स्वर होता है। आह्वरक शाखावाले तृतीय तथा प्रथममें उच्चारित स्वरोंका प्रयोग करते

---

१. तैत्तिरीय शाखाकी कृष्णयजुःसंहिताके द्वितीय काण्डमें पञ्चम प्रपाठकके द्वितीय अनुवाककी प्रथम पञ्चशतीमें मन्त्र आया है—'स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्व।' पौराणिक कथाके अनुसार त्वष्टा प्रजापतिने 'इन्द्रके शत्रु' वृत्रके अभ्युदयके लिये इस मन्त्रका उच्चारण किया था। 'इन्द्रस्य शत्रुः' इस विग्रहके अनुसार षष्ठी-समासमें समासान्तप्रयुक्त अन्तोदात्तका उच्चारण अभीष्ट था; परंतु प्रयोगमें पूर्वपदप्रकृतिस्वर—आद्युदात्त बोला गया; अतः वह बहुव्रीहिके अर्थका प्रकाशक हो गया। इसलिये 'इन्द्र है शत्रु (संहारक) जिसका वह' ऐसा अर्थ निकलनेके कारण वृत्रासुर ही इन्द्रके हाथसे मारा गया।

हैं। तैत्तिरीय शाखावाले द्वितीयसे लेकर पञ्चमतक चार स्वरोंका उच्चारण करते हैं। सामगान करनेवाले विद्वान् प्रथम (षड्ज), द्वितीय (ऋषभ), तृतीय (गान्धार), चतुर्थ (मध्यम), मन्द्र (पञ्चम), क्रुष्ट (धैवत) तथा अतिस्वार (निषाद)—इन सातों स्वरोंका प्रयोग करते हैं। द्वितीय और प्रथम—ये ताण्डी (ताण्ड्यपञ्चविंशादि ब्राह्मणके अध्येता कौथुम आदि शाखावाले) तथा भाल्लवी (छन्दोग शाखावाले) विद्वानोंके स्वर हैं तथा शतपथ ब्राह्मणमें आये हुए ये दोनों स्वर वाजसनेयी शाखावालोंके द्वारा भी प्रत्युक्त होते हैं। ये सब वेदोंमें प्रयुक्त होनेवाले स्वर विशेषरूपसे बताये गये हैं। इस प्रकार सार्ववैदिक स्वर-संचार कहा गया है।

अब मैं सामवेदके स्वर-संचारका वर्णन करूँगा। अर्थात् छन्दोग विद्वान् सामगानमें तथा ऋक्पाठमें जिन स्वरोंका उपयोग करते हैं, उनका यहाँ विशेषरूपसे निरूपण किया जाता है। यहाँ श्लोक थोड़े होंगे; किंतु उनमें अर्थ-विस्तार अधिक होगा। यह उत्तम वेदाङ्गका विषय सावधानीसे श्रवण करनेयोग्य है। नारद! मैंने तुम्हें पहले भी कभी तान, राग, स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छनाओंका लक्षण बताया है, जो परम पवित्र, पावन तथा पुण्यमय है। द्विजातियोंको ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके स्वरूपका परिचय कराना—इसे ही शिक्षा कहते हैं। सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना और उनचास तान—इन सबको स्वर-मण्डल कहा गया है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा सातवाँ निषाद—ये सात स्वर हैं। षड्ज, मध्यम और गान्धार—ये तीन ग्राम कहे गये हैं। भूर्लोकसे षड्ज उत्पन्न होता है, भुवर्लोकसे मध्यम प्रकट होता है तथा स्वर्ग एवं मेघलोकसे गान्धारका प्राकट्य होता है। ये तीन ही ग्राम-स्थान हैं। स्वरोंके राग-विशेषसे ग्रामोंके विविध राग कहे गये हैं। साम-गान करनेवाले विद्वान् मध्यम-ग्राममें बीस, षड्जग्राममें चौदह तथा गान्धारग्राममें पंद्रह तान स्वीकार करते हैं। नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा तथा बला—ये देवताओंकी सात मूर्च्छनाएँ जाननी चाहिये। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री तथा बार्हती—ये पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। षड्जस्वरमें उत्तर मन्द्रा, ऋषभमें अभिरूढता (या अभिरुद्गता) तथा गान्धारमें अश्वक्रान्ता नामवाली तीसरी मूर्च्छना मानी गयी है। मध्यमस्वरमें सौवीरा, पञ्चममें हृषिका तथा धैवतमें उत्तरायता नामकी मूर्च्छना जाननी चाहिये। निषादस्वरमें रजनी नामक मूर्च्छनाको जाने। ये ऋषियोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। गन्धर्वगण देवताओंकी सात मूर्च्छनाओंका आश्रय लेते हैं। यक्षलोग पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ अपनाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ऋषियोंकी जो सात मूर्च्छनाएँ हैं, उन्हें लौकिक कहा गया है—उनका अनुसरण मनुष्य करते हैं। षड्जस्वर देवताओंको और ऋषभस्वर ऋषि-मुनियोंको तृप्त करता है। गान्धारस्वर पितरोंको, मध्यमस्वर गन्धर्वोंको तथा पञ्चमस्वर देवताओं, पितरों एवं महर्षियोंको भी संतुष्ट करता है। निषादस्वर यक्षोंको तथा धैवत सम्पूर्ण भूत-समुदायको तृप्त करता है। गानकी गुणवृत्ति दस प्रकारकी है अर्थात् लौकिक-वैदिक गान दस गुणोंसे युक्त हैं। रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार तथा मधुर—ये ही वे दसों गुण हैं। वेणु, वीणा तथा पुरुषके स्वर जहाँ एकमें मिलकर अभिन्न-से प्रतीत होते हैं और उससे जो रञ्जन होता है, उसका नाम 'रक्त' है। स्वर तथा श्रुतिकी पूर्ति करनेसे तथा छन्द एवं पादाक्षरोंके संयोग (स्पष्ट उच्चारण)-से जो गुण प्रकट होता है, उसे 'पूर्ण' कहते हैं। कण्ठ अर्थात् प्रथम स्थानमें जो स्वर

स्थित है, उसे नीचे करके हृदयमें स्थापित करना और ऊँचे करके सिरमें ले जाना—यह 'अलंकृत' कहलाता है। जिसमें कण्ठका गद्गदभाव निकल गया है और किसी प्रकारकी शङ्का नहीं रह गयी है, वह 'प्रसन्न' नामक गुण है। जिसमें पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगम, लोप, कृदन्त, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ तथा एकवचन, बहुवचन आदिका भलीभाँति उपपादन हो, उसे 'व्यक्त' कहते हैं। जिसके पद और अक्षर स्पष्ट हों तथा जो उच्च स्वरसे बोला गया हो, उसका नाम 'विक्रुष्ट' है। द्रुत (जल्दबाजी) और विलम्बित—दोनों दोषोंसे रहित, उच्च, नीच, प्लुत, समाहार, हेल, ताल और उपनय आदि उपपत्तियोंसे युक्त गीतको 'श्लक्ष्ण' कहते हैं। स्वरोंके अवाप-निर्वाप (चढ़ाव-उतार)-के जो प्रदेश हैं, उनका व्यवहित स्थानोंमें जो समावेश होता है, उसीका नाम 'सम' है। पद, वर्ण, स्वर तथा कुहरण (अव्यक्त अक्षरोंको कण्ठ दबाकर बोलना)—ये सभी जिसमें मृदु—कोमल हों, उस गीतको 'सुकुमार' कहा गया है। स्वभावसे ही मुखसे निकले हुए ललित पद एवं अक्षरोंके गुणसे सम्पन्न गीत 'मधुर' कहलाता है। इस प्रकार गान इन दस गुणोंसे युक्त होता है।

इसके विपरीत गीतके दोष बताये जाते हैं—इस विषयमें ये श्लोक कहे गये हैं। शङ्कित, भीषण, भीत, उद्घुष्ट, आनुनासिक, काकस्वर, मूर्धगत (अत्यन्त उच्च स्वरसे सिरतक चढ़ाया हुआ अपूर्णगान), स्थान-विवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल तथा तालहीन—ये चौदह गीतके दोष हैं। आचार्यलोग समगानकी इच्छा करते हैं। पण्डितलोग पदच्छेद (प्रत्येक पदका विभाग) चाहते हैं। स्त्रियाँ मधुर गीतकी अभिलाषा करती हैं और दूसरे लोग विक्रुष्ट (पद और अक्षरके विभागपूर्वक उच्च स्वरसे उच्चारित) गीत सुनना चाहते हैं। षड्जस्वरका रंग कमलपत्रके समान हरा है। ऋषभस्वर तोतेके समान कुछ पीलापन लिये हरे रंगका है। गान्धार सुवर्णके समान कान्तिवाला है। मध्यमस्वर कुन्दके सदृश श्वेतवर्णका है। पञ्चमस्वरका रंग श्याम है। धैवतको पीले रंगका माना गया है। निषादस्वरमें सभी रंग मिले हुए हैं। इस प्रकार ये स्वरोंके वर्ण कहे गये हैं। पञ्चम, मध्यम और षड्ज—ये तीनों स्वर ब्राह्मण माने गये हैं। ऋषभ और धैवत—ये दोनों ही क्षत्रिय हैं। गान्धार तथा निषाद—ये दोनों स्वर आधे वैश्य कहे गये हैं और पतित होनेके कारण ये आधे शूद्र हैं। इसमें संशय नहीं है। जहाँ ऋषभके अनन्तर प्रकट हुए षड्जके साथ धैवतसहित पञ्चमस्वर मध्यमरागमें प्राप्त होता है, उस निषादसहित स्वरग्रामको 'षाडव' या 'षाड्जव' जानना चाहिये। यदि मध्यमस्वरमें पञ्चमका विराम हो और अन्तरस्वर गान्धार हो जाय तथा उसके बाद क्रमसे ऋषभ, निषाद एवं पञ्चमका उदय हो तो उस पञ्चमको भी ऐसा ही (षाडव या षाड्जव) समझे। यदि मध्यमस्वरका आरम्भ होनेपर गान्धारका आधिपत्य (वृद्धि) हो जाय, निषादस्वर बारंबार जाता-आता रहे, धैवतका एक ही बार उच्चारण होनेके कारण वह दुर्बलावस्थामें रहे तथा षड्ज और ऋषभकी अन्य पाँचोंके समान ही स्थिति हो तो उसे 'मध्यम ग्राम' कहते हैं। जहाँ आरम्भमें षड्ज हो और निषादका थोड़ा-सा स्पर्श किया गया हो तथा गान्धारका अधिक उच्चारण हुआ हो, साथ ही धैवतस्वरका कम्पन—पातन देखा जाता हो तथा उसके बाद दूसरे स्वरोंका यथारुचि गान किया गया हो, उसे 'षड्जग्राम' कहा गया है। जहाँ आरम्भमें षड्ज हो और इसके बाद अन्तरस्वर-संयुक्त काकली देखी जाती हो अर्थात् चार बार

केवल निषादका ही श्रवण होता हो, पञ्चम स्वरमें स्थित उस आधारयुक्त गीतको 'श्रुति कैशिक' जानना चाहिये। जब पूर्वोक्त कैशिक नामक गीतको सब स्वरोंसे संयुक्त करके मध्यमसे उसका आरम्भ किया जाय और मध्यममें ही उसकी स्थापना हो तो वह 'कैशिक मध्यम' नामक ग्रामराग होता है। जहाँ पूर्वोक्त काकली देखी जाती हो और प्रधानता पञ्चम स्वरकी हो तथा शेष दूसरे-दूसरे स्वर सामान्य स्थितिमें हों तो कश्यप ऋषि उसे मध्यम ग्रामजनित 'कैशिक राग' कहते हैं। विद्वान् पुरुष 'गा' का अर्थ गेय मानते हैं और 'ध' का अर्थ कलापूर्वक बाजा बजाना कहते हैं और रेफसहित 'व' का अर्थ वाद्य-सामग्री कहते हैं। यही 'गान्धर्व' शब्दका लक्ष्यार्थ है। जो सामगान करनेवाले विद्वानोंका प्रथम स्वर है, वही वेणुका मध्यम स्वर कहा गया है। जो उनका द्वितीय स्वर है, वही वेणुका गान्धार स्वर है और जो उनका तृतीय है, वही वेणुका ऋषभ स्वर माना गया है। सामग विद्वानोंके चौथे स्वरको वेणुका षड्ज कहा गया है। उनका पञ्चम वेणुका धैवत होता है। उनके छठेको वेणुका निषाद समझना चाहिये और उनका सातवाँ ही वेणुका पञ्चम माना गया है। मोर षड्ज स्वरमें बोलता है। गायें ऋषभ स्वरमें रँभाती हैं, भेड़ और बकरियाँ गान्धार स्वरमें बोलती हैं। तथा क्रौञ्च (कुरर) पक्षी मध्यम स्वरमें बोलता है। जब साधारणरूपसे सब प्रकारके फूल खिलने लगते हैं, उस वसन्त ऋतुमें कोयल पञ्चम स्वरमें बोलती है। घोड़ा धैवत स्वरमें हिनहिनाता है और हाथी निषाद स्वरमें चिग्घाड़ता है। षड्ज स्वर कण्ठसे प्रकट होता है। ऋषभ मस्तकसे उत्पन्न होता है, गान्धारका उच्चारण मुखसहित नासिकासे होता है और मध्यम स्वर हृदयसे प्रकट होता है। पञ्चम स्वरका उत्थान छाती, सिर और कण्ठसे होता है। धैवतको ललाटसे उत्पन्न जानना चाहिये तथा निषादका प्राकट्य सम्पूर्ण संधियोंसे होता है। षड्ज स्वर नासिका, कण्ठ, वक्षःस्थल, तालु, जिह्वा तथा दाँतोंके आश्रित है। इन छः अङ्गोंसे उसका जन्म होता है। इसलिये उसे 'षड्ज' कहा गया है। नाभिसे उठी हुई वायु कण्ठ और मस्तकसे टकराकर वृषभके समान गर्जना करती है। इसलिये उससे प्रकट हुए स्वरका नाम 'ऋषभ' है। नाभिसे उठी हुई वायु कण्ठ और सिरसे टकराकर पवित्र गन्ध लिये हुए बहती है। इस कारण उसे 'गान्धार' कहते हैं। नाभिसे उठी हुई वायु ऊरु तथा हृदयसे टकराकर नाभिस्थानमें आकर मध्यवर्ती होती है। अतः उससे निकले हुए स्वरका नाम 'मध्यम' होता है। नाभिसे उठी हुई वायु वक्ष, हृदय, कण्ठ और सिरसे टकराकर इन पाँचों स्थानोंसे स्वरके साथ प्रकट होती है। इसलिये उस स्वरका नाम 'पञ्चम' रखा जाता है। अन्य विद्वान् धैवत और निषाद—इन दो स्वरोंको छोड़कर शेष पाँच स्वरोंको पाँचों स्थानोंसे प्रकट मानते हैं। पाँचों स्थानोंमें स्थित होनेके कारण इन्हें सब स्थानोंमें धारण किया जाता है। षड्ज स्वर अग्निके द्वारा गाया गया है। ऋषभ ब्रह्माजीके द्वारा गाया कहा जाता है। गान्धारका गान सोमने और मध्यम स्वरका गान विष्णुने किया है। नारदजी! पञ्चम स्वरका गान तो तुम्हींने किया है, इस बातको स्मरण करो। धैवत और निषाद—इन दो स्वरोंको तुम्बुरुने गाया है। विद्वान् पुरुषोंने ब्रह्माजीको आदि—षड्ज स्वरका देवता कहा है। ऋषभका प्रकाश तीखा और उद्दीप्त है, इसलिये अग्निदेव ही उसके देवता हैं। जिसके गान करनेपर गौएँ संतुष्ट होती हैं, वह गान्धार है और इसी कारण गौएँ ही उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं। गान्धारको सुनकर गौएँ

पास आती हैं, इसमें संदेह नहीं है। पञ्चम स्वरके देवता सोम हैं, जिन्हें ब्राह्मणोंका राजा कहा गया है। जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें घटता है, उसी प्रकार स्वरग्राममें प्राप्त होनेपर जिस स्वरका ह्रास होता और वृद्धि होती है तथा इन पूर्वोत्पन्न स्वरोंकी जहाँ अतिसंधि होती है, वह धैवत है। इसीसे उसके धैवतत्वका विधान किया गया है। निषादमें सब स्वरोंका निषादन (अन्तर्भाव) होता है, इसीलिये वह निषाद कहलाता है। यह सब स्वरोंको अभिभूत कर लेता है—ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य सब नक्षत्रोंको अभिभूत करता है; क्योंकि सूर्य ही इसके अधिदेवता हैं।

काठकी वीणा तथा गात्रवीणा—ये गान-जातिमें दो प्रकारकी वीणाएँ होती हैं। नारद! सामगानके लिये गात्रवीणा होती है, उसका लक्षण सुनो। गात्रवीणा उसे कहते हैं, जिसपर सामगान करनेवाले विद्वान् गाते हैं। वह अंगुलि और अङ्गुष्ठसे रञ्जित तथा स्वर-व्यञ्जनसे संयुक्त होती है। उसमें अपने दोनों हाथोंको संयममें रखकर उन्हें घुटनोंपर रखे और गुरुका अनुकरण करे, जिससे भिन्न बुद्धि न हो। पहले प्रणवका उच्चारण करे, फिर व्याहृतियोंका। तदनन्तर गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके सामगान प्रारम्भ करे। सब अंगुलियोंको फैलाकर स्वरमण्डलका आरोपण करे। अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठका और अङ्गुष्ठसे अंगुलियोंका स्पर्श कदापि न करे। अंगुलियोंको बिलगाकर न रखे और उनके मूलभागका भी स्पर्श न करे, सदा उन अंगुलियोंके मध्यपर्वमें अँगूठेके अग्रभागसे स्पर्श करना चाहिये। विभागके ज्ञाता पुरुषको चाहिये कि मात्रा-द्विमात्रा-वृद्धिके विभागके लिये बायें हाथकी अंगुलियोंसे द्विमात्रका दर्शन कराता रहे। जहाँ त्रिरेखा देखी जाय, वहाँ संधिका निर्देश करे; वह पर्व है, ऐसा जानना चाहिये। शेष अन्तर-अन्तर है। साममन्त्रमें (प्रथम और द्वितीय स्वरके बीच) जौके बराबर अन्तर करे तथा ऋचाओंमें तिलके बराबर अन्तर करे। मध्यम पर्वोंमें भलीभाँति निविष्ट किये हुए स्वरोंका ही निवेश करे। विद्वान् पुरुष यहाँ शरीरके किसी अवयवको कँपाये नहीं। नीचेके अङ्ग—ऊरु, जङ्घा आदिको सुखपूर्वक रखकर उनपर दोनों हाथोंको प्रचलित परिपाटीके अनुसार रखे (अर्थात् दाहिने हाथको गायके कानके समान रखे और बायेंको उत्तानभावसे रखे)। जैसे बादलोंमें बिजली मणिमय सूत्रकी भाँति चमकती दिखायी देती है, यही विवृत्तियों (पदादि विभागों)-के छेद—बिलगाव—स्पष्ट निर्देशका दृष्टान्त है। जैसे सिरके बालोंपर कैंची चलती है और बालोंको पृथक् कर देती है, उसी प्रकार पद और स्वर आदिका पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक बोध कराना चाहिये। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार अन्य सब चेष्टाओंको विलीन करके मन और दृष्टि देकर विद्वान् पुरुष, स्वस्थ, शान्त तथा निर्भीक होकर वर्णोंका उच्चारण करे। मन्त्रका उच्चारण करते समय नाककी सीधमें पूर्व दिशाकी ओर गोकर्णके समान आकृतिमें हाथको उठाये रखे और हाथके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए शास्त्रके अर्थका निरन्तर चिन्तन करता रहे। मन्त्र-वाक्यको हाथ और मुख दोनोंसे साथ-साथ भलीभाँति प्रचारित करे। वर्णोंका जिस प्रकार द्रुतादि वृत्तिसे आरम्भमें उच्चारण करे, उसी प्रकार उन्हें समाप्त भी करे। (एक ही मन्त्रमें दो वृत्तियोंकी योजना न करे।) अभ्याघात, निर्घात, प्रगान तथा कम्पन न करे, समभावसे साममन्त्रोंका गान करे। जैसे आकाशमें श्येन पक्षी सम गतिसे उड़ता है, जैसे जलमें विचरती हुई मछलियों अथवा आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके मार्गका विशेष रूपसे पता नहीं चलता, उसी प्रकार सामगानमें स्वरगत श्रुतिके विशेष स्वरूपका अवधारण नहीं होता। सामान्यतः गीतमात्रकी उपलब्धि

होती है। जैसे दहीमें घी अथवा काठके भीतर अग्नि छिपी रहती है और प्रयत्नसे उसकी उपलब्धि भी होती है, उसी प्रकार स्वरगत श्रुति भी गीतमें छिपी रहती है, प्रयत्नसे उसके विशेष स्वरूपकी भी उपलब्धि होती है। प्रथम स्वरसे दूसरे स्वरपर जो स्वर-संक्रमण होता है, उसे प्रथम स्वरसे संधि रखते हुए ही करे, विच्छेद करके न करे और न वेगसे ही करे। जैसे छाया एवं धूप सूक्ष्म गतिसे धीरे-धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं—न तो पूर्वस्थानसे सहसा सम्बन्ध तोड़ते हैं और न नये स्थानपर ही वेगसे जाते हैं, उसी प्रकार स्वर-संक्रमण भी सम तथा अविच्छिन्न भावसे करे। जब प्रथम स्वरको खींचते हुए द्वितीय स्वर होता है, तब उसे 'कर्षण' कहते हैं। विद्वान् पुरुष निम्नाङ्कित छः दोषोंसे युक्त कर्षणका त्याग करे, अनागत तथा अतिक्रान्त अवस्थामें कर्षण न करे। द्वितीय स्वरके आरम्भसे पहले उसकी अनागत अवस्था है, प्रथम स्वरका सर्वथा व्यतीत हो जाना उसकी अतिक्रान्तावस्था है; इन दोनों स्थितियोंमें प्रथम स्वरका कर्षण न करे। प्रथम मात्राका विच्छेद करके भी कर्षण न करे। उसे विषमाहत—कम्पित करके भी द्वितीय स्वरपर न जाय। कर्षणकालमें तीन मात्रासे अधिक स्वरका विस्तार न करे। अस्थितान्तका त्याग करे अर्थात् द्वितीय स्वरमें भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति करनी चाहिये, न कि दो मात्रासे ही युक्त। जो स्वर स्थानसे च्युत होकर अपने स्थानका अतिवर्तन (लङ्घन) करता है, उसे सामगान करनेवाले विद्वान् 'विस्वर' कहते हैं और वीणा बजाकर गानेवाले गायक उसे 'विरक्त' नाम देते हैं। स्वयं अभ्यास करनेके लिये द्रुतवृत्तिसे मन्त्रोच्चारण करे। प्रयोगके लिये मध्यम वृत्तिका आश्रय ले और शिष्योंके उपदेशके लिये विलम्बित वृत्तिका अवलम्बन करे। इस प्रकार शिक्षाशास्त्रोक्त विधिसे जिसने ग्रन्थ (सामगान) को ग्रहण किया है, वह विद्वान् द्विज ग्रन्थोच्चारणकी शिक्षा लेनेवाले शिष्योंको हाथसे ही अध्ययन कराये।

क्रुष्ट (सप्तम एवं पञ्चम) स्वरका स्थान मस्तकमें है। प्रथम (षड्ज) स्वरका स्थान ललाटमें है। द्वितीय (ऋषभ) स्वरका स्थान दोनों भौंहोंके मध्यमें है। तृतीय (गान्धार) स्वरका स्थान दोनों कानोंमें है। चतुर्थ (मध्यम) स्वरका स्थान कण्ठ है। मन्द्र (पञ्चम)-का स्थान रसना बतायी जाती है। (मन्द्रस्योरसि तूच्यते—इस पाठके अनुसार उसका स्थान वक्षःस्थल भी है।) अतिस्वार नामवाले नीच स्वर (निषाद) का स्थान हृदयमें बताया जाता है। अङ्गुष्ठके शिरोभागमें क्रुष्ट (सप्तम-पञ्चम) का न्यास करना चाहिये। अङ्गुष्ठमें ही प्रथम स्वरका भी स्थान बताया गया है। तर्जनीमें गान्धार तथा मध्यमामें ऋषभकी स्थिति है। अनामिकामें षड्ज और कनिष्ठिकामें धैवत हैं। कनिष्ठाके नीचे मूल भागमें निषाद स्वरकी स्थिति बताये। मन्द्र स्वरसे सर्वथा पृथक् न होनेसे निषाद 'अपर्व' है। उसका पृथक् ज्ञान न होनेके कारण उसे 'असंज्ञ' कहा गया है तथा उसमें लिङ्ग, वचन आदिका सम्बन्ध न होनेसे उसे 'अव्यय' भी कहते हैं। अतः मन्द्र ही मन्दीभूत होकर 'परिस्वार' (निषाद) कहा गया है। क्रुष्ट स्वरसे देवता जीवन धारण करते हैं और प्रथमसे मनुष्य; द्वितीय स्वरसे पशु तथा तृतीयसे गन्धर्व और अप्सराएँ जीवन धारण करती हैं। अण्डज (पक्षी) तथा पितृगण चतुर्थ-स्वरजीवी होते हैं। पिशाच, असुर तथा राक्षस मन्दस्वरसे जीवन-निर्वाह करते हैं। नीच अतिस्वार (निषाद)-से स्थावर-जङ्गमरूप जगत् जीवन धारण करता है। इस प्रकार सामिक स्वरसे सभी प्राणी जीवन धारण करते हैं।

जो दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु तथा मध्यम श्रुतियोंका विशेषज्ञ नहीं है, वह आचार्य कहलानेका

अधिकारी नहीं है। मन्द्र (पञ्चम), द्वितीय, चतुर्थ, अतिस्वार (षष्ठ) और तृतीय—इन पाँच स्वरोंकी श्रुति 'दीप्ता' कही गयी है। (प्रथमकी श्रुति मृदु है) और सप्तमकी श्रुति 'करुणा' है। अन्य जो 'मृदु', 'मध्यमा' और 'आयता' नामवाली श्रुतियाँ हैं, वे द्वितीय स्वरमें होती हैं। मैं उन सबके पृथक्-पृथक् लक्षण बताता हूँ। नीच अर्थात् तृतीय स्वर परे रहते द्वितीय स्वरकी आयता श्रुति होती है, विपर्यय अर्थात् चतुर्थ स्वर परे रहनेपर उक्त स्वरकी मृदुभूता श्रुति होती है। अपना स्वर परे हो और स्वरान्तर परे न हो तो उसकी मध्यमा श्रुति होती है। यह सब विचारकर सामस्वरका प्रयोग करना चाहिये। क्रुष्ट स्वर परे होनेपर द्वितीय स्वरमें स्थित जो श्रुति है, उसे 'दीप्ता' समझे। प्रथम स्वरमें हो तो वह 'मृदु' श्रुति मानी गयी है। यदि चतुर्थ स्वरमें हो तो वही श्रुति मृदु कहलाती है। तथा मन्द्र स्वरमें हो तो दीप्ता होती है। सामकी समाप्ति होनेपर जिस किसी भी स्वरमें स्थित श्रुति दीप्ता ही होती है। स्वरके समाप्त होनेसे पहले आयतादि श्रुतिका प्रयोग न करे। स्वर समाप्त होनेपर भी जबतक गानका विच्छेद न हो जाय, दो स्वरोंके मध्यमें भी श्रुतिका प्रयोग न करे। ह्रस्व तथा दीर्घ अक्षरका गान होते समय भी श्रुति नहीं करनी चाहिये (केवल प्लुतमें ही श्रुति कर्तव्य है) तथा जहाँ घुट-संज्ञक स्वर हो, वहाँ भी श्रुतिका प्रयोग न करे। तालव्य इकारका 'आ' 'इ' भाव होता है और 'आ उ' भाव होता है; ये दो प्रकारकी गतियाँ हैं और ऊष्म वर्ण 'श ष स' के साथ जो त्रिविध पदान्त सन्धि है—ये सब मिलकर पाँच स्थान हैं; इन स्थानोंमें घुट-संज्ञक स्वर जानना चाहिये (इनमें श्रुति नहीं करनी चाहिये)। श्रुतिस्थानोंमें जहाँ स्वर और स्वरान्तर समाप्त न हुए हों तथा जो ह्रस्व, दीर्घ एवं 'घुट' संज्ञाके स्थल हैं, वे सब श्रुतिसे रहित हैं, उनमें श्रुति नहीं करनी चाहिये। वहाँ स्वरसे ही श्रुतिवत् कार्य होता है।

(सामव्यतिरिक्त स्थलोंमें) उदात्त स्वरमें 'दीप्ता' नामवाली श्रुतिको जाने। स्वरितमें भी विद्वान् लोग 'दीप्ता' की ही स्थिति मानते हैं। अनुदात्तमें 'मृदु' श्रुति जाननी चाहिये। गान्धर्व गानमें श्रुतिका अभाव होनेपर भी स्वरको ही श्रुतिके समान करना चाहिये, वहाँ स्वरमें ही श्रुतिका वैभव निहित है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय[1] तथा निघात[2]—ये पाँच स्वरभेद होते हैं।

इसके बाद मैं आर्चिकके तीन स्वरोंका प्रतिपादन करता हूँ। पहला उदात्त, दूसरा अनुदात्त और तीसरा स्वरित है। जिसको उदात्त कहा गया है, वही स्वरितसे परे हो तो विद्वान् पुरुष उसे प्रचय कहते हैं। वहाँ दूसरा कोई स्वरान्तर नहीं होता। स्वरितके दो भेद हैं—वर्ण-स्वार तथा अतीत-स्वार। इसी प्रकार वर्ण भी मात्रिक एवं उच्चरितके पश्चात् दीर्घ होता है। प्रत्यय-स्वाररूप प्रत्ययका दर्शन होनेसे उसे सात प्रकारका जानना चाहिये। वह क्या, कहाँ और कैसा है, इसका ज्ञान पदसे प्राप्त करना चाहिये। दाहिने कानमें सातों स्वरोंका श्रवण करावे। आचार्योंने पुत्रों और शिष्योंके हितकी इच्छासे ही इस शिक्षाशास्त्रका प्रणयन किया है। उच्च (उदात्त)-से कोई उच्चतर नहीं है और नीच (अनुदात्त)-से नीचतर नहीं है। फिर विशिष्ट स्वरके रूपमें जो 'स्वार' संज्ञा दी जाती है, उसमें स्वारका क्या स्थान है? (इसके उत्तरमें कहते हैं—) उच्च (उदात्त) और नीच

१-स्वरितसे आगे स्वरित ही हों तो उनकी 'प्रचय' संज्ञा होती है। २- प्रचय परे हो तो स्वरितका आहनन होनेसे उसकी 'निघात' संज्ञा होती है। प्रचय न हो, तब तो शुद्ध 'स्वरित' ही रहता है।

(अनुदात्त)-के मध्यमें जो 'साधारण' यह श्रुति है, उसीको शिक्षाशास्त्रके विद्वान् स्वार-संज्ञामें 'स्वार' नामसे जानते हैं। उदात्तमें निषाद और गान्धार स्वर हैं, अनुदात्तमें ऋषभ और धैवत स्वर हैं। और ये—षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम—स्वरितमें प्रकट होते हैं। जिसके परे 'क' और 'ख' हैं तथा जो जिह्वामूलीयरूप प्रयोजनको सिद्ध करनेवाली है, उस 'ऊष्मा' (ᳵक ᳵख)-को 'मात्रा' जाने। वह अपने स्वरूपसे ही 'कला' है (किसी दूसरे वर्णका अवयव नहीं है। इसे उपध्मानीयका भी उपलक्षण मानना चाहिये)।

जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन, तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा सातवाँ पादवृत्त—ये सात स्वार हैं। अब मैं इन सब स्वारोंका पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। लक्षण कहकर उन सबके यथायोग्य उदाहरण भी बताऊँगा। जो अक्षर 'य' कार और 'व' कारके साथ स्वरित होता है तथा जिसके आगे उदात्त नहीं होता, वह 'जात्य' स्वार कहलाता है। जब उदात्त 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण कहीं पदादि अनुदात्त अकार परे रहते सन्धि होनेपर 'य' 'व' के रूपमें परिणत हो स्वरित होते हैं, तो वहाँ सदा 'क्षैप्र' स्वारका लक्षण समझना चाहिये। 'ए' और 'ओ' इन दो उदात्त स्वरोंसे परे जो वकारसहित अकार निहित (अनुदात्तरूपमें निपातित) हो और उसका जहाँ लोप ('ए'कार या 'उ'कार में अनुप्रवेश) होता है, उसे 'अभिनिहित' स्वार माना जाता है। छन्दमें जहाँ कहीं या जो कोई भी ऐसा स्वरित होता है, जिसके पूर्वमें उदात्त हो, तो वह सर्व बहुस्वार—(सर्वत्र बहुलतासे होनेवाला स्वर) 'तैरव्यञ्जन' कहलाता है। यदि उदात्त अवग्रह हो और अवग्रहसे परे अनन्तर स्वरित हो तो उसे 'तिरोविराम' समझना चाहिये। जहाँ उदात्त 'इ'कारको अनुदात्त 'इ'कारसे संयुक्त देखो, वहाँ विचार लो कि 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। जहाँ स्वर अक्षर अकारादिमें स्वरित हो और पूर्वपदके साथ संहिता विभक्त हो, उसे पादवृत्त स्वारका शास्त्रोक्त लक्षण समझना चाहिये।

'जात्य' स्वारका उदाहरण है—'स जात्येन' इत्यादि। श्रुष्टी+अग्ने=श्रुष्ट्यग्ने आदि स्थलोंमें 'क्षैप्र' स्वार है। 'वे मन्वत' इत्यादिमें 'अभिनिहित' स्वार जानना चाहिये। उ+ऊतये=ऊतये, वि+ईतये=वीतये इत्यादिमें 'तैरव्यञ्जन' नामक स्वार है। 'विस्कभिते विस्कभिते' आदि स्थलोंमें 'तिरोविराम' है। 'हि इन्द्र गिर्वण:'='हीन्द्र०' इत्यादिमें 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। 'क ईम् कई वेद' इत्यादिमें 'पादवृत्त' नामक स्वार है। इस प्रकार ये सब सात स्वार हैं।

जात्य स्वरोंको छोड़कर एक पूर्ववर्ती उदात्त अक्षरसे परे जो भी अक्षर हो, उसकी स्वरित संज्ञा होती है। यह स्वरितका सामान्य लक्षण बताया जाता है। पूर्वोक्त चार स्वार उदात्त अथवा एक अनुदात्त परे रहनेपर शास्त्रत: 'कम्प' उत्पन्न करते हैं। (जिसका स्वरूप चल हो, उस स्वारका नाम कम्प है) इसका उदाहरण है 'जुह्वग्नि:।' 'उप त्वा जुहू', 'उप त्वा जुह्वो मम' इत्यादि। पूर्वपद 'इ'कारान्त हो और परे 'उ'कारकी स्थिति हो तो मेधावी पुरुष वहाँ 'ह्रस्व कम्प' जाने—इसमें संशय नहीं है। यदि 'उ'कारद्वययुक्त पद परे हो तो इकारान्त पदमें दीर्घ कम्प जानना चाहिये। इसका दृष्टान्त है—'शग्ध्यूषू' इत्यादि। तीन दीर्घ कम्प जानने चाहिये, जो संध्यक्षरोंमें होते हैं। उनके क्रमश: उदाहरण ये हैं—मन्या। पथ्या। न इन्द्राभ्याम्। शेष ह्रस्व कहे गये हैं। जब अनेक उदात्तोंके बाद कोई अनुदात्त प्रत्यय हो तो एक उदात्त परे रहते दूसरे-तीसरे उदात्तकी 'शिवकम्प' संज्ञा होती है अर्थात् वह शिवकम्पसंज्ञक आद्युदात्त होता है। किंतु वह

उदात्त प्रत्यय होना चाहिये। जहाँ दो, तीन, चार आदि उदात्त अक्षर हों, नीच—अनुदात्त हो और उससे पूर्व उच्च अर्थात् उदात्त हो और वह भी पूर्ववर्ती उदात्त या उदात्तोंसे परे हो तो वहाँ विद्वान् पुरुष 'उदात्त' मानते हैं। रेफ या 'ह'कारमें कहीं द्वित्व नहीं होता—दो रेफ या दो 'ह'कारका प्रयोग एक साथ नहीं होता। कवर्ग आदि वर्गोंके दूसरे और चौथे अक्षरोंमें भी कभी द्वित्व नहीं होता। वर्गके चौथे अक्षरको तीसरेके द्वारा और दूसरेको प्रथमके द्वारा पीडित न करे। आदि, मध्य और अन्त्य (क, ग, ङ आदि)-को अपने ही अक्षरसे पीडित (संयुक्त) करे। यदि संयोगदशामें अनन्त्य (जो अन्तिम वर्ण नहीं है, वह 'ग'कार आदि) वर्ण पहले हो और 'न'कारादि अन्त्य वर्ण बादमें हो तो मध्यमें यम (य व र ल ञ म ङ ण न) अक्षर स्थित होता है, वह पूर्ववर्ती अक्षरका सवर्ण हुआ करता है। पूर्ववर्ती श ष स तथा य र ल व—इन अक्षरोंसे संयुक्त वर्गान्त्य वर्णोंको देखकर यम निवृत्त हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे चोर-डाकुओंको देखकर राही अपने मार्गसे लौट जाते हैं। संहितामें जब वर्गके तीसरे और चौथे अक्षर संयुक्त हों तो पदकालमें चतुर्थ अक्षरसे ही आरम्भ करके उत्तर पद होगा। दूसरे, तीसरे और 'ह'कार — इन सबका संयोग हो तो उत्तरपद हकारादि ही होगा। अनुस्वार, उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीयके अक्षर किसी पदमें नहीं जाते, उनका दो बार उच्चारण नहीं होता। यदि पूर्वमें र या ह अक्षरसे संयोग हो तो परवर्ती अक्षरका द्वित्व हो जाता है। जहाँ संयोगमें स्वरित हो तथा उद्धृत (नीचेसे ऊपर जाने)-में और पतन (ऊँचेसे नीचे जाने)-में स्वरित हो, वहाँ पूर्वाङ्गको आदिमें करके (नीचमें उच्चत्व लाकर) पराङ्गके आदिमें स्वरितका संनिवेश करे। संयोगके विरत (विभक्त) होनेपर जो उत्तरपदसे असंयुक्त व्यञ्जन दिखायी दे, उसे पूर्वाङ्ग जानना चाहिये तथा जिस व्यञ्जनसे उत्तरपदका आरम्भ हो, उसे पराङ्ग समझे। संयोगसे परवर्ती भागको स्वरयुक्त करना चाहिये, क्योंकि वह उत्तम एवं संयोगका नायक है, वहीं प्रधानतया स्वरकी विश्रान्ति होती है तथा व्यञ्जनसंयुक्त वर्णका पूर्व अक्षर स्वरित है; उसे बिना स्वरके ही बोलना चाहिये। अनुस्वार, पदान्त, प्रत्यय तथा सवर्णपद परे रहनेपर होनेवाला द्वित्व तथा रेफस्वरूप स्वरभक्ति—यह सब पूर्वाङ्ग कहलाता है। पादादिमें, पदादिमें, संयोग तथा अवग्रहोंमें भी 'य' कारके द्वित्वका प्रयोग करना चाहिये; उसे 'य्य' शब्द जानना चाहिये। अन्यत्र 'य' केवल 'य' के रूपमें ही रहता है। पदादिमें रहते हुए भी विच्छेद (विभाग) न होनेपर अथवा संयोगके अन्तमें स्थित होनेपर र् ह् रेफविशिष्ट य—इनको छोड़कर अन्य वर्णोंका अयादेश (द्वित्वाभाव) देखा जाता है। स्वयं संयोगयुक्त अक्षरको गुरु जानना चाहिये। अनुस्वारयुक्त तथा विसर्गयुक्त वर्णका गुरु होना तो स्पष्ट ही है। शेष अणु (ह्रस्व) है। 'ह्रि' 'गो' इनमें प्रथम संयुक्त और दूसरा विसर्गयुक्त है। संयोग और विसर्ग दोनोंके आदि अक्षरका गुरुत्व भी स्पष्ट है। जो उदात्त है, वह उदात्त ही रहता है; जो स्वरित है, वह पदमें नीच (अनुदात्त) होता है। जो अनुदात्त है, वह तो अनुदात्त रहता ही है; जो प्रचयस्थ स्वर है, वह भी अनुदात्त हो जाता है। विभिन्न मन्त्रोंमें आये हुए 'अग्निः', 'सुतः' 'मित्रम्, 'इदम्', 'वयम्', 'अया', 'वहा', 'प्रियम्', 'दूतम्', 'घृतम्', 'चित्तम्' तथा 'अभि'—ये पद नीच (अर्थात् अनुदात्तसे आरम्भ) होते हैं। 'अर्क', 'सुत', 'यज्ञ', 'कलश', 'शत' तथा 'पवित्र'—इन शब्दोंमें अनुदात्तसे श्रुतिका उच्चारण प्रारम्भ किया जाता है। 'हरि', 'वरुण', 'वरेण्य',

'धारा' तथा 'पुरुष'—इन शब्दोंमें रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है। 'विश्वानर' शब्दमें नकारयुक्त और अन्यत्र 'नर' शब्दोंमें रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है। परंतु 'उदुत्तमं त्वं वरुण' इत्यादि वरुण-सम्बन्धी दो मन्त्रोंमें 'व' कार ही स्वरित होता है, रेफ नहीं। 'उरु धारा मरं कृतम्', 'उरु धारेव दोहने' इत्यादि मन्त्रोंमें 'धारा'का 'धाकार' ही स्वरित होता है, रेफ नहीं। (यह पूर्व नियमका अपवाद है) ह्रस्व या दीर्घ जो अक्षर यहाँ स्वरित होता है, उसकी पहली आधी मात्रा उदात्त होती है और शेष आधी मात्रा उससे परे अनुदात्त होती है (पाणिनिने भी यही कहा है—'तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्' [१।२।३२]) कम्प, उत्स्वरित और अभिगीतके विषयमें जो द्विस्वरका प्रयोग होता है, वहाँ ह्रस्वको दीर्घके समान करे और ह्रस्व कर्षण करे। पलक मारनेमें जितना समय लगता है, वह एक मात्रा है। दूसरे आचार्य ऐसा मानते हैं कि बिजली चमककर जितने समयमें अदृश्य हो जाती है, वह एक 'मात्रा' का मान है। कुछ विद्वानोंका ऐसा मत है कि ऋ, छ अथवा श के उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतने कालकी एक मात्रा होती है। समासमें यदि अवग्रह (विग्रह या पद-विच्छेद) करे तो उसमें समासपदको संहितायुक्त ही रखे; क्योंकि वहाँ जिससे अक्षरादिकरण होता है,उसी स्वरको उस समास-पदका अन्त मानते हैं। सर्वत्र, पुत्र, मित्र, सखि, अद्रि, शतक्रतु, आदित्य, प्रजातवेद, सत्पति, गोपति, वृत्रहा, समुद्र—ये सभी शब्द अवग्राह्य (अवग्रहके योग्य) हैं। 'स्वर्युवः', 'देवयुवः', 'अरतिम्', 'देवतातये', 'चिकितिः', 'चुक्रुधम्'—इन सबमें एक पद होनेके कारण पण्डितलोग अवग्रह नहीं करते। अक्षरोंके नियोगसे चार प्रकारकी विवृत्तियाँ जाननी चाहिये, ऐसा मेरा मत है। अब तुम मुझसे उनके नाम सुनो—वत्सानुसृता, वत्सानुसारिणी, पाकवती और पिपीलिका। जिसके पूर्वपदमें ह्रस्व और उत्तरपदमें दीर्घ है, वह ह्रस्वादिरूप बछड़ोंसे अनुगत होनेके कारण 'वत्सानुसृता' विवृत्ति कही गयी है। जिसमें पहले ही पदमें दीर्घ और उत्तर पदमें ह्रस्व हो, वह 'वत्सानुसारिणी' विवृत्ति है। जहाँ दोनों पदोंमें ह्रस्व है, वह 'पाकवती' कहलाती है तथा जिसके दोनों पदोंमें दीर्घ है, वह 'पिपीलिका' कही गयी है। इन चारों विवृत्तियोंमें एक मात्राका अन्तर होता है। दूसरोंके मतमें यह अन्तर आधा मात्रा है और किन्हींके मतमें अणु मात्रा है। रेफ तथा श ष स—ये जिनके आदिमें हों, ऐसे प्रत्यय परे होनेपर 'मकार' अनुस्वारभावको प्राप्त होता है। य व ल परे हों तो वह परसवर्ण होता है और स्पर्शवर्ण परे हों तो उन-उन वर्गोंके पञ्चम वर्णको प्राप्त होता है। नकारान्त पद पूर्वमें हो और स्वर परे हो तो नकारके द्वारा पूर्ववर्ती आकार अनुरञ्जित होता है, अतः उसे 'रक्त' कहते हैं (यथा 'महाँ३असि' इत्यादि)। यदि नकारान्त पद पूर्वमें हो और य व हि आदि व्यञ्जन परे हों तो पूर्वकी आधी मात्रा—अणु मात्रा अनुरञ्जित होती है। पूर्वमें स्वरसे संयुक्त हलन्त नकार यदि पदान्तमें स्थित हो और उसके परे भी पद हो तो वह चार रूपोंसे युक्त होता है। कहीं वह रेफ होता है, कहीं रंग (या रक्त) बनता है, कहीं उसका लोप और कहीं अनुस्वार हो जाता है (यथा 'भवांश्छिनोति'में रेफ होता है। 'महाँ ३ असि' में रंग है। 'महाँ इन्द्र' में 'न' का लोप हुआ है। पूर्वका अनुनासिक या अनुस्वार हुआ है)। 'रंग' हृदयसे उठता है, कांस्यके वाद्यकी भाँति उसकी ध्वनि होती है। वह मृदु तथा दो मात्राका (दीर्घ) होता है। दधन्वाँ २ यह उदाहरण है। नारद! जैसे सौराष्ट्र देशकी नारी 'अरां' बोलती है, उसी प्रकार 'रंग' का प्रयोग करना चाहिये—यह मेरा

मत है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—इन चार प्रकारके पदोंके अन्तमें स्वरपूर्वक ग ड द ब ङ ण न म ष स—ये दस अक्षर 'पदान्त' कहे गये हैं। उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर और स्वरित स्वर जहाँ भी स्थित हों, व्यञ्जन उनका अनुसरण करते हैं। आचार्यलोग तीनों स्वरोंकी ही प्रधानता बताते हैं। व्यञ्जनोंको तो मणियोंके समान समझे और स्वरको सूत्रके समान; जैसे बलवान् राजा दुर्बलके राज्यको हड़प लेता है, उसी प्रकार बलवान् दुर्बल व्यञ्जनको हर लेता है। ओभाव, विवृत्ति, श, ष, स, र, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये ऊष्माकी आठ गतियाँ हैं। ऊष्मा (सकार) इन आठ भावोंमें परिणत होता है। संहितामें जो स्वर-प्रत्यया विवृत्ति होती है, वहाँ विसर्ग समझे अथवा उसका तालव्य होता है। जिसकी उपधामें संध्यक्षर (ए, ओ, ऐ, औ) हों ऐसी सन्धिमें यदि य और व लोपको प्राप्त हुए हों तो वहाँ व्यञ्जननामक विवृत्ति और स्वरनामक प्रतिसंहिता होती है। जहाँ ऊष्मान्त विरत हो और सन्धिमें 'व' होता हो, वहाँ जो विवृत्ति होती है, उसे 'स्वर विवृत्ति' नामसे कहना चाहिये। यदि 'ओ' भावका प्रसंधान हो तो उत्तर पद ऋकारादि होता है; वैसे प्रसंधानको स्वरान्त जानना चाहिये। इससे भिन्न ऊष्माका प्रसंधान होता है (यथा 'वायो ऋ' इति। यहाँ ओभावका प्रसंधान है। 'क इह' यहाँ ऊष्माका प्रसंधान है)। जब श ष स आदि परे हों, उस समय यदि प्रथम (वर्गके पहले अक्षर) और उत्तम (वर्गके अन्तिम अक्षर) पदान्तमें स्थित हों तो वे द्वितीय स्थानको प्राप्त होते हैं। ऊष्मसंयुक्त होनेपर अर्थात् सकारादि परे होनेपर प्रथम जो तकार आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार आदि)-की भाँति दिखाये—थकार आदिकी भाँति उच्चारण करे, उन्हें स्पष्टत: थकार आदिके रूपमें ही न समझ ले। उदाहरणके लिये—'मत्स्य:', 'क्षुर:' और 'अप्सरा:' आदि उदाहरण हैं। लौकिक श्लोक आदिमें छन्दका ज्ञान करानेके लिये तीन हेतु हैं—छन्दोमान, वृत्त और पादस्थान (पदान्त)। परंतु ऋचाएँ स्वभावत: गायत्री आदि छन्दोंसे आवृत हैं। उनकी पाद-गणना या गुरु, लघु एवं अक्षरोंकी गणना तो छन्दोविभागको समझनेके लिये ही है; उन लक्षणोंके अनुसार ही ऋचाएँ हों, यह नियम नहीं है। लौकिक छन्द ही पाद और अक्षर-गणनाके अनुसार होते हैं। ऋवर्ण और स्वरभक्तिमें जो रेफ है, उसे अक्षरान्तर मानकर छन्दकी अक्षर-गणना या मात्रागणनामें सम्मिलित करे। किंतु स्वरभक्तियोंमें प्रत्ययके साथ रेफरहित अक्षरकी गणना करे। ऋवर्णमें रेफरूप व्यञ्जनकी प्रतीति पृथक् होती है और स्वररूप अक्षरकी प्रतीति अलग होती है। यदि 'ऋ' से ऊष्माका संयोग न हो तो उस ऋकारको लघु अक्षर जाने। जहाँ ऊष्मा (शकार आदि)-से संयुक्त होकर ऋकार पीड़ित होता है, उस ऋवर्णको ही स्वर होनेपर भी गुरु समझना चाहिये; यहाँ 'तृचम्' उदाहरण है। (यहाँ ऋकार लघु है।) ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, पृथिवी तथा निर्ऋति—इन पाँच शब्दोंमें ऋकार स्वर ही है, इसमें संशय नहीं है। श, ष, स, ह, र—ये जिसके आदिमें हों, ऐसे पदमें द्विपद सन्धि होनेपर कहीं 'इ' और 'उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति होती है, वह क्रमवियुक्त होती है। स्वरभक्ति दो प्रकारकी कही गयी है—ऋकार तथा रेफ। उसे अक्षरचिन्तकोंने क्रमश: 'स्वरोदा' और 'व्यञ्जनोदा' नाम दिया है। श, ष, स के विषयमें स्वरोदया एवं विवृता स्वरभक्ति मानी गयी है और हकारके विषयमें विद्वान् लोग व्यञ्जनोदया एवं संवृता स्वरभक्ति निश्चित करते हैं (दोनोंके क्रमश: उदाहरण हैं—'ऊर्षति, अर्हति)। स्वरभक्तिका प्रयोग करनेवाला पुरुष तीन दोषोंको त्याग दे—इकार,

उकार तथा ग्रस्तदोष। जिससे परे संयोग हो और जिससे परे छ हो, जो विसर्गसे युक्त हो, द्विमात्रिक (दीर्घ) हो, अवसानमें हो, अनुस्वारयुक्त हो तथा घुडन्त हो—ये सब लघु नहीं माने जाते।

पथ्या (आर्या) छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राके होते हैं। द्वितीय पाद अठारह मात्राका होता है और अन्तिम (चतुर्थ) पाद पंद्रह मात्राका होता है। यह पथ्याका लक्षण बताया गया; जो इससे भिन्न है, उसका नाम विपुला है। अक्षरमें जो ह्रस्व है, उससे परे यदि संयोग न हो तो उसकी 'लघु' संज्ञा होती है। यदि ह्रस्वसे परे संयोग हो तो उसे गुरु समझे तथा दीर्घ अक्षरोंको भी गुरु जाने। जहाँ स्वरके आते ही विवृति देखी जाती हो, वहाँ गुरु स्वर जानना चाहिये; वहाँ लघुकी सत्ता नहीं है। पदोंके जो स्वर हैं, उनके आठ प्रकार जानने चाहिये—अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीचस्वरित, मध्योदात्त, स्वरित तथा द्विरुदात्त—ये आठ पद-संज्ञाएँ हैं। 'अग्निर्वृत्राणि' इसमें 'अग्निः' अन्तोदात्त है। 'सोमः पवते' इसमें 'सोमः' आद्युदात्त है। 'प्र वो यह्वम्' इसमें 'प्र' उदात्त और 'वः' अनुदात्त है। 'बलं न्युब्जं वीर्यम्' इसमें 'वीर्यम्' नीचस्वरित है। 'हविषा विधेम' इसमें 'हविषा' मध्योदात्त है। 'भूर्भुवः स्वः' इसमें 'स्वः' स्वरित है। 'वनस्पतिः' में 'व' कार और 'स्प' दो उदात्त होनेसे यह द्विरुदात्तका उदाहरण है। नाममें अन्तर एवं मध्यमें उदात्त होता है। निपातमें अनुदात्त होता है। उपसर्गमें आद्य स्वरसे परे स्वरित होता है तथा आख्यातमें दो अनुदात्त होते हैं। स्वरितसे परे जो धार्य अक्षर हैं (यथा 'निहोता सत्सि' इसमें 'ता' स्वरित है, उससे परे 'सत्सि' ये धार्य अक्षर हैं), वे सब प्रचयस्थान हैं; क्योंकि 'स्वरित' प्रचित होता है। वहाँ आदिस्वरितका निघात स्वर होता है। जहाँ प्रचय देखा जाय, वहाँ विद्वान् पुरुष स्वरका निघात करे। जहाँ केवल मृदु स्वरित हो, वहाँ निघात न करे। आचार्य-कर्म पाँच प्रकारका होता है—मुख, न्यास, करण, प्रतिज्ञा तथा उच्चारण। इस विषयमें कहते हैं, सप्रतिज्ञ उच्चारण ही श्रेय है। जिस किसी भी वर्णका करण (शिक्षादि शास्त्र) नहीं उपलब्ध होता हो, वहाँ प्रतिज्ञा (गुरुपरम्परागत निश्चय)-का निर्वाह करना चाहिये; क्योंकि करण प्रतिज्ञारूप ही है। नारद! तुम, तुम्बुरु, वसिष्ठजी तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व भी सामके विषयमें शिक्षाशास्त्रोक्त सम्पूर्ण लक्षणोंको स्वरकी सूक्ष्मताके कारण नहीं जान पाते।

जठराग्निकी सदा रक्षा करे। हितकर (पथ्य) भोजन करे। भोजन पच जानेपर उषःकालमें नींदसे उठ जाय और ब्रह्मका चिन्तन करे। शरत्कालमें जो विषुवद्योग (जिस समय दिन-रात बराबर होते हैं) आता है, उसके बीतनेके बाद जबतक वसन्त ऋतुकी मध्यम रात्रि उपस्थित न हो जाय तबतक वेदोंके स्वाध्यायके लिये उषः-कालमें उठना चाहिये। सबेरे उठकर मौनभावसे आम, पलाश, बिल्व, अपामार्ग अथवा शिरीष—इनमेंसे किसी वृक्षकी टहनी लेकर उससे दाँतुन करे। खैर, कदम्ब, करवीर तथा करंजकी भी दाँतुन ग्राह्य है। काँटे तथा दूधवाले सभी वृक्ष पवित्र और यशस्वी माने गये हैं। उनकी दाँतुनसे इस पुरुषकी वाक्-इन्द्रियमें सूक्ष्मता (कफकी कमी होकर सरलतापूर्वक शब्दोच्चारणकी शक्ति) तथा मधुरता (मीठी आवाज) आती है। वह व्यक्ति प्रत्येक वर्णका स्पष्ट उच्चारण कर लेता है, जैसी कि 'प्राचीनौदवज्रि' नामक आचार्यकी मान्यता है। शिष्यको चाहिये वह नमकके साथ सदा त्रिफलाचूर्ण भक्षण करे। यह त्रिफला जठराग्निको प्रज्वलित करनेवाली तथा मेधा (धारणशक्ति)-को

बढ़ानेवाली है। स्वर और वर्णके स्पष्ट उच्चारणमें भी सहयोग करनेवाली है। पहले जठरानलकी उपासना अर्थात्—मल-मूत्रादिका त्याग करके आवश्यक धर्मों (दाँतुन, स्नान, संध्योपासन)-का अनुष्ठान करनेके अनन्तर मधु और घी पीकर शुद्ध हो वेदका पाठ करे। पहले सात मन्त्रोंको उपांशुभावसे (बिना स्पष्ट बोले) पढ़े, उसके बाद मन्द्रस्वरमें वेदपाठ आरम्भ करके यथेष्ट स्वरमें मन्त्रोच्चारण करे। यह सब शाखाओंके लिये विधि है। प्रात:काल ऐसी वाणीका उच्चारण न करे, जो प्राणोंका उपरोध करती हो; क्योंकि प्राणोपरोधसे वैस्वर्य (विपरीत स्वरका उच्चारण) हो जाता है। इतना ही नहीं, उससे स्वर और व्यञ्जनका माधुर्य भी लुप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। कुतीर्थसे प्राप्त हुई दग्ध (अपवित्र) वस्तुको जो दुर्जन पुरुष खा लेते हैं, उनका उसके दोषसे उद्धार नहीं होता—ठीक उसी तरह, जैसे पापरूप सर्पके विषसे जीवनकी रक्षा नहीं हो पाती। इसी प्रकार कुतीर्थ (बुरे अध्यापक)-से प्राप्त हुआ जो दग्ध (निष्फल) अध्ययन है, उसे जो लोग अशुद्ध वर्णोंके उच्चारणपूर्वक भक्षण (ग्रहण) करते हैं, उनका पापरूपी सर्पके विषकी भाँति पापी उपाध्यायसे मिले हुए उस कुत्सित अध्ययनके दोषसे छुटकारा नहीं होता। उत्तम आचार्यसे प्राप्त अध्ययनको ग्रहण करके अच्छी तरह अभ्यासमें लाया जाय तो वह शिष्यमें सुप्रतिष्ठित होता है और उसके द्वारा सुन्दर मुख एवं शोभन स्वरसे उच्चारित वेदकी बड़ी शोभा होती है। जो नाक, आँख, कान आदिके विकृत होनेसे विकराल दिखायी देता है, जिसके ओठ लंबे-लंबे हैं, जो सब बात नाकसे ही बोलता है, जो गद्गद-कण्ठसे बोलता है अथवा जिसकी जीभ बँधी-सी रहती है अर्थात् जो रुक-रुककर बोलता है, वह वेदमन्त्रोंके प्रयोगका अधिकारी नहीं है। जिसका चित्त एकाग्र है, अन्त:करण वशमें है और जिसके दाँत तथा ओष्ठ सुन्दर हैं, ऐसा व्यक्ति यदि स्नानसे शुद्ध हो गाना छोड़ दे तो वह मन्त्राक्षरोंका ठीक प्रयोग कर सकता है। जो अत्यन्त क्रोधी, स्तब्ध, आलसी तथा रोगी हैं और जिनका मन इधर-उधर फैला हुआ है, वे पाँच प्रकारके मनुष्य विद्या ग्रहण नहीं कर पाते। विद्या धीरे-धीरे पढ़ी जाती है। धन धीरे-धीरे कमाया जाता है, पर्वतपर धीरे-धीरे चढ़ना चाहिये। मार्गका अनुसरण भी धीरे-धीरे ही करे और एक दिनमें एक योजनसे अधिक न चले। चींटी धीरे-धीरे चलकर सहस्रों योजन चली जाती है। किंतु गरुड़ भी यदि चलना शुरू न करे तो वह एक पग भी आगे नहीं जा सकता। पापीकी पापदूषित वाणी प्रयोगों (वेदमन्त्रों)-का उच्चारण नहीं कर सकती—ठीक उसी तरह, जैसे बातचीतमें चतुर सुलोचना रमणी बहरेके आगे कुछ नहीं कह सकती[१]। जो उपांशु (सूक्ष्म) उच्चारण करता है, जो उच्चारणमें जल्दबाजी करता है तथा जो डरता हुआ-सा अध्ययन करता है, वह सहस्र रूपों (शब्दोच्चारण)-के विषयमें सदा संदेहमें ही पड़ा रहता है। जिसने केवल पुस्तकके भरोसे पढ़ा है, गुरुके समीप अध्ययन नहीं किया है, वह सभामें सम्मानित नहीं होता—वैसे ही, जैसे जारपुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री समाजमें प्रतिष्ठा नहीं पाती। प्रतिदिन व्यय किये जानेपर अञ्जनकी पर्वतराशिका भी क्षय हो जाता है और दीमकोंके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टीके संग्रहसे भी बहुत ऊँचा वल्मीक बन जाता है, इस

१. शिक्षा-संग्रहमें जो नारदी-शिक्षा संकलित हुई है, उसमें इस श्लोकका पाठ इस प्रकार है—

न हि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति। बधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना॥

दृष्टान्तको सामने रखते हुए दान और अध्ययनादि सत्कर्मोंमें लगे रहकर जीवनके प्रत्येक दिनको सफल बनावे—व्यर्थ न बीतने दे। कीड़े चिकने धूलकणोंसे जो बहुत ऊँचा वल्मीक बना लेते हैं, उसमें उनके बलका प्रभाव नहीं है, उद्योग ही कारण है। विद्याको सहस्रों बार अभ्यासमें लाया जाय और सैकड़ों बार शिष्योंको उसे पढ़ाया जाय, तब वह उसी प्रकार जिह्वाके अग्रभागपर आ जायगी, जैसे जल ऊँचे स्थानसे नीचे स्थानमें स्वयं बह आता है। अच्छी जातिके घोड़े आधी रातमें भी आधी ही नींद सोते हैं अथवा वे आधी रातमें सिर्फ एक पहर सोते हैं, उन्हींकी भाँति विद्यार्थियोंके नेत्रोंमें चिरकालतक निद्रा नहीं ठहरती। विद्यार्थी भोजनमें आसक्त होकर अध्ययनमें विलम्ब न करे। नारीके मोहमें न फँसे। विद्याकी अभिलाषा रखनेवाला छात्र आवश्यकता हो तो गरुड़ और हंसकी भाँति बहुत दूरतक भी चला जाय। विद्यार्थी जनसमूहसे उसी तरह डरे, जैसे सर्पसे डरता है। दोस्ती बढ़ानेके व्यसनको नरक समझकर उससे भी दूर रहे। स्त्रियोंसे उसी तरह बचकर रहे, जैसे राक्षसियोंसे। इस तरह करनेवाला पुरुष ही विद्या प्राप्त कर सकता है। शठ प्रकृतिके मनुष्य विद्यारूप अर्थकी सिद्धि नहीं कर पाते। कायर तथा अहंकारी भी विद्या एवं धनका उपार्जन नहीं कर पाते। लोकापवादसे डरनेवाले लोग भी विद्या और धनसे वञ्चित रह जाते हैं तथा 'जो आज नहीं कल' करते हुए सदा आगामी दिनकी प्रतीक्षामें बैठे रहते हैं, वे भी न विद्या पढ़ पाते हैं न धन ही लाभ करते हैं। जैसे खनतीसे धरती खोदनेवाला पुरुष एक दिन अवश्य पानी प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी निरन्तर सेवा करनेवाला छात्र गुरुमें स्थित विद्याको अवश्य ग्रहण कर लेता है। गुरुसेवासे विद्या प्राप्त होती है अथवा बहुत धन व्यय करनेसे उनकी प्राप्ति होती है। अथवा एक विद्या देनेसे दूसरी विद्या मिलती है; अन्यथा उसकी प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि बुद्धिके गुणोंसे सेवा किये बिना भी विद्या प्राप्त हो जाती है; तथापि वन्ध्या युवतीकी भाँति वह सफल नहीं होती। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे शिक्षाग्रन्थका संक्षेपसे वर्णन किया है। इस आदिवेदाङ्गको जानकर मनुष्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य हो जाता है। (पूर्वभाग—द्वितीय पाद, अध्याय ५०)

## वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेशपूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण

**सनन्दनजी कहते हैं**—मुनीश्वर! अब मैं कल्पग्रन्थका वर्णन करता हूँ; जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य कर्ममें कुशल हो जाता है। कल्प पाँच प्रकारके माने गये हैं—नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें नक्षत्रोंके स्वामीका विस्तारपूर्वक यथार्थ वर्णन किया गया है; वह यहाँ भी जानने योग्य है। मुनीश्वर! वेदकल्पमें ऋगादि-विधानका विस्तारसे वर्णन है—जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये कहा गया है। संहिताकल्पमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताओंका निर्देश किया है। आङ्गिरसकल्पमें स्वयं ब्रह्माजीने अभिचार-विधिसे विस्तारपूर्वक छः कर्मोंका वर्णन किया है। मुनिश्रेष्ठ! शान्तिकल्पमें दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पातोंकी पृथक्-पृथक् शान्ति बतायी गयी है। यह संक्षेपसे

कल्पके स्वरूपका परिचय दिया गया है, अन्य शाखाओंमें इसका विशेष रूपसे पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है। द्विजश्रेष्ठ! गृहकल्प सबके लिये उपयोगी है, अतः इस समय उसीका वर्णन करूँगा। सावधान होकर सुनो। पूर्वकालमें 'ॐकार' और 'अथ' शब्द—ये दोनों ब्रह्माजीके कण्ठका भेदन करके निकले थे, अतः ये मङ्गल-सूचक हैं। जो शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें ऊँचे उठाना चाहता है, वह 'अथ' शब्दका प्रयोग करे। इससे वह कर्म अक्षय होता है। परिसमूहनके लिये परिगणित शाखावाले कुश कहे गये हैं, न्यून या अधिक संख्यामें उन्हें ग्रहण करनेपर वे अभीष्ट कर्मको निष्फल कर देते हैं। पृथ्वीपर जो कृमि, कीट और पतंग आदि भ्रमण करते हैं, उनकी रक्षाके लिये परिसमूहन कहा गया है। ब्रह्मन्! वेदीपर जो तीन रेखाएँ कही गयी हैं, उनको बराबर बनाना चाहिये; उन्हें न्यूनाधिक नहीं करना चाहिये; ऐसा ही शास्त्रका कथन है। नारद! यह पृथ्वी मधु और कैटभ नामवाले दैत्योंके मेदेसे व्याप्त है, इसलिये इसे गोबरसे लीपना चाहिये। जो गाय वन्ध्या, दुष्टा, दीनाङ्गी और मृतवत्सा (जिसके बछड़े मर जाते हों, ऐसी) हो, उसका गोबर यज्ञके कार्यमें नहीं लाना चाहिये, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। विप्रवर! जो पतङ्ग आदि भयंकर जीव सदा आकाशमें उड़ते रहते हैं, उनपर प्रहार करनेके लिये वेदीसे मिट्टी उठानेका विधान है। स्रुवाके मूलभागसे अथवा कुशसे वेदीपर रेखा करनी चाहिये। इसका उद्देश्य है अस्थि, कण्टक, तुष-केशादिसे शुद्धि। ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। द्विजश्रेष्ठ! सब देवता और पितर जलस्वरूप हैं, अतः विधिज्ञ ऋषि-मुनियोंने जलसे वेदीका प्रोक्षण करनेकी आज्ञा दी है। सौभाग्यवती स्त्रियोंके द्वारा ही अग्नि लानेका विधान है। शुभदायक मृण्मय पात्रको जलसे धोकर उसमें अग्नि रखकर लानी चाहिये। वेदीपर रखा हुआ अमृतकलश दैत्योंद्वारा हड़प लिया गया, यह देखकर ब्रह्मा आदि सब देवताओंने वेदीकी रक्षाके लिये उसपर समिधासहित अग्निकी स्थापना की। नारद! यज्ञसे दक्षिण दिशामें दानव आदि स्थित होते हैं; अतः उनसे यज्ञकी रक्षाके लिये ब्रह्माको यज्ञवेदीसे दक्षिण दिशामें स्थापित करना चाहिये। नारद! उत्तर दिशामें प्रणीता-प्रोक्षणी आदि सब यज्ञपात्र रखे। पश्चिममें यजमान रहे और पूर्वदिशामें सब ब्राह्मणोंको रहना चाहिये। जुएमें, व्यापारमें और यज्ञकर्ममें यदि कर्ता उदासीनचित्त हो जाय तो उसका वह कर्म नष्ट हो जाता है—यही वास्तविक स्थिति है। यज्ञकर्ममें अपनी ही शाखाके विद्वान् ब्राह्मणोंको ब्रह्मा और आचार्य बनाना चाहिये। अन्य ऋत्विजोंके लिये कोई नियम नहीं है, यथालाभ उनका पूजन करना चाहिये। तीन-तीन अंगुलकी दो पवित्री होनी चाहिये। चार अंगुलकी एक प्रोक्षणी, तीन अंगुलकी एक आज्यस्थाली और छः अंगुलकी चरुस्थाली होनी चाहिये। दो अंगुलका एक उपयमन कुश और एक अंगुलका सम्मार्जन कुश रखे। स्रुव छः अंगुलका और स्रुच् साढ़े तीन अंगुलका बताया गया है। समिधाएँ प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके शिरोभागतकके नापकी) हों। पूर्णपात्र छः अंगुलका हो। प्रोक्षणीके उत्तर भागमें प्रणीता-पात्र रहे और वह आठ अंगुलका हो। जो कोई भी तीर्थ (सरोवर), समुद्र और सरिताएँ हैं, वे सब प्रणीता-पात्रमें स्थित होते हैं; अतः उसे जलसे भर दे। द्विजश्रेष्ठ! वस्त्रहीन वेदी नग्न कही जाती है; अतः विद्वान् पुरुष उसके चारों ओर कुश बिछाकर उसके ऊपर अग्निस्थापन करे। इन्द्रका वज्र, विष्णुका चक्र और महादेवजीका त्रिशूल—ये तीनों कुशरूपसे तीन 'पवित्रच्छेदन' बनते हैं। पवित्रीसे ही प्रोक्षणीको प्रणीताके जलसे संयुक्त करना चाहिये। अतः पवित्र-निर्माण अत्यन्त पुण्यदायक कर्म कहा गया है। आज्यस्थाली पलमात्रकी बनानी चाहिये। कुम्हारके

चाकपर गढ़ा हुआ मिट्टीका पात्र 'आसुर' कहा गया है। वही हाथसे बनाया हुआ—स्थालीपात्र आदि हो तो उसे 'दैविक' माना गया है। स्रुवसे शुभ और अशुभ सभी कर्म होते हैं। अतः उसकी पवित्रताके लिये उसे अग्निमें तपानेका विधान है। स्रुवको यदि अग्रभागकी ओरसे थाम लिया जाय तो स्वामीकी मृत्यु होती है। मध्यमें पकड़ा जाय तो प्रजा एवं संततिका नाश होता है और मूलभागमें उसे पकड़नेसे होताकी मृत्यु होती है; अतः विचार कर उसे हाथमें धारण करना चाहिये। अग्नि, सूर्य, सोम, विरञ्चि (ब्रह्माजी), वायु तथा यम—ये छः देवता स्रुवके एक-एक अंगुलमें स्थित हैं। अग्नि भोग और धनका नाश करनेवाले हैं, सूर्य रोगकारक होते हैं। चन्द्रमाका कोई फल नहीं है। ब्रह्माजी सब कामना देनेवाले हैं, वायुदेव वृद्धिदाता हैं और यमराज मृत्युदायक माने गये हैं (अतः स्रुवको मूलभागकी ओर तीन अंगुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अंगुलपर पकड़ना चाहिये)। सम्मार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिये। इनमेंसे सम्मार्जन कुश सात शाखा (कुश)-का और उपयमन कुश पाँचका होता है। स्रुव तथा स्रुक्-निर्माण करनेके लिये श्रीपर्णी (गंभारी), शमी, खदिर, विकङ्कत (कँटाई) और पलाश—ये पाँच प्रकारके काष्ठ शुभ जानने चाहिये। हाथभरका स्रुवा उत्तम माना गया है और तीस अंगुलका स्रुक्। यह ब्राह्मणोंके स्रुव और स्रुक् के विषयमें बताया गया है; अन्य वर्णवालोंके लिये एक अंगुल छोटा रखनेका विधान है। नारद! शूद्रों, पतितों तथा गर्दभ आदि जीवोंके दृष्टि-दोषका निवारण करनेके लिये सब पात्रोंके प्रोक्षणकी विधि है। विप्रवर! पूर्णपात्र-दान किये बिना यज्ञमें छिद्र उत्पन्न हो जाता है और पूर्णपात्रकी विधि कर देनेपर यज्ञकी पूर्ति हो जाती है। आठ मुट्ठीका 'किञ्चित्' होता है, चार किञ्चित्‌का 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कलका एक 'पूर्णपात्र' होता है, ऐसा विद्वानोंका मत है। होमकाल प्राप्त होनेपर अन्यत्र कहीं आसन नहीं देना चाहिये। दिया जाय तो अग्निदेव अतृप्त होते और दारुण शाप देते हैं। 'आघार' नामकी दो आहुतियाँ अग्निदेवकी नासिका कही गयी हैं। 'आज्यभाग' नामवाली दो आहुतियाँ उनके नेत्र हैं। 'प्राजापत्य' आहुतिको मुख कहा गया है और व्याहृति होमको कटिभाग बताया गया है। पञ्चवारुण होमको दो हाथ, दो पैर और मस्तक कहते हैं। विप्रवर! 'स्विष्टकृत्' होम तथा पूर्णाहुति—ये दो आहुतियाँ दोनों कान हैं। अग्निदेवके दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम-भागमें तीन और दक्षिण-भागमें चार हाथ हैं। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति—ये सब उनके दाहिने हाथोंमें हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र लिये हुए हैं। दो चँवर धारण करते हैं। भेड़पर चढ़े हुए हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्यके समान उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं। इस प्रकार अग्निके स्वरूपका ध्यान करके होमकर्म प्रारम्भ करे। दूध, दही, घी और घृतपक्व या तैलपक्व पदार्थका जो हाथसे हवन करता है, वह ब्राह्मण ब्रह्महत्यारा होता है (इन सबका स्रुवासे होम करना चाहिये)। मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये हविष्यमें तिलका भाग अधिक रखना उत्तम माना गया है। होममें तीन प्रकारकी मुद्राएँ बतायी गयी हैं—मृगी, हंसी और सूकरी। अभिचार-कर्ममें सूकरी-मुद्राका उपयोग होता है और शुभकर्ममें मृगी तथा हंसी नामवाली

मुद्राएँ उपयोगमें लायी जाती हैं। सब अंगुलियोंसे सुकरी-मुद्रा बनती है। हंसी-मुद्रामें कनिष्ठिका अंगुलि मुक्त रहती है और मृगी नामवाली मुद्रा केवल मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा सम्पन्न होनेवाली कही गयी है। पूर्वोक्त प्रमाणवाली आहुतिको पाँचों अंगुलियोंसे लेकर उसके द्वारा अन्य ऋत्विजोंके साथ हवन करे। हवन-सामग्रीमें दही, मधु और घी मिलाया हुआ तिल होना चाहिये। पुण्यकर्मोंमें संलग्न होनेपर अपनी अनामिका अंगुलिमें कुशोंकी पवित्री अवश्य धारण करनी चाहिये।

भगवान् रुद्र और ब्रह्माजीने गणेशजीको 'गणपति' पदपर बिठाया और कर्मोंमें विघ्न डालनेका कार्य उन्हें सौंप रखा है। वे विघ्नेश विनायक जिसपर सवार होते हैं, उस पुरुषके लक्षण सुनो। वह स्वप्नमें बहुत अगाध जलमें प्रवेश कर जाता है, मूँड़ मुड़ाये मनुष्योंको तथा गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले पुरुषोंको देखता है। कच्चा मांस खानेवाले गृध्र आदि पक्षियों तथा व्याघ्र आदि पशुओंपर चढ़ता है। एक स्थानपर चाण्डालों, गदहों और ऊँटोंके साथ उनसे घिरा हुआ बैठता है। चलते समय भी अपने-आपको शत्रुओंसे अनुगत मानता है—उसे ऐसा भान होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं। (जाग्रत्-अवस्थामें भी) उसका चित्त विक्षिप्त रहता है। उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है। वह अकारण खिन्न रहता है। विघ्नराजका सताया हुआ मनुष्य राजाका पुत्र होकर भी राज्य नहीं पाता। कुमारी कन्या अनुकूल पति नहीं पाती, विवाहिता स्त्रीको अभीष्ट पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता, शिष्य स्वाध्याय नहीं कर पाता, वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं हो पाता।

ऐसे पुरुषको किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करे और उस मनुष्यके शरीरमें उसीका उबटन लगाये। प्रियङ्गु, नागकेसर आदि सब प्रकारकी ओषधियों और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी आदि सब प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंको उसके मस्तकमें लगाये। फिर उसे भद्रासनपर बिठाकर उसके लिये ब्राह्मणोंसे शुभ स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) कराये। अश्वशाला, गजशाला, वल्मीक (बाँबी), नदीसङ्गम तथा जलाशयसे लायी हुई पाँच प्रकारकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध (चन्दन, कुंकुम, अगुरु आदि) और गुग्गुल—ये सब वस्तुएँ जलमें छोड़े और उसी जलमें छोड़े, जो गहरे और कभी न सूखनेवाले जलाशयसे एक रंगके चार नये कलशोंद्वारा लाया गया हो। तदनन्तर लाल रंगके वृषभचर्मपर भद्रासन[1] स्थापित करे। (इसी भद्रासनपर यजमानको बैठाकर ब्राह्मणोंसे पूर्वोक्त स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। इसके सिवा स्वस्तिवाचनके अनन्तर जिनके पति और पुत्र जीवित हों, ऐसी सुवेशधारिणी स्त्रियोंद्वारा मङ्गल-गान कराते हुए पूर्वदिशावर्ती कलशको लेकर आचार्य निम्नाङ्कित मन्त्रसे यजमानका अभिषेक करे—)

**सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।**
**तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥**

'जो सहस्रों नेत्रों (अनेक प्रकारकी शक्तियों)-

१. पूर्वोक्त गन्ध-औषधादिसहित चार कलशोंमें आम्र आदिके पल्लव रखकर उनके कण्ठमें माला पहनाये, उन्हें चन्दनसे चर्चित करे और नूतन वस्त्रसे विभूषित करके उन कलशोंको पूर्वादि चारों दिशाओंमें स्थापित कर दे। फिर पवित्र एवं लिपी-पुती वेदीपर पाँच रंगोंसे स्वस्तिक बनाकर लाल रंगका वृषभचर्म, जिसका लोम उत्तरकी ओर तथा ग्रीवा पूर्वकी ओर हो, बिछाये और उसके ऊपर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित काष्ठनिर्मित आसन रखे। यही भद्रासन है।

से युक्त हैं, जिसकी सैकड़ों धाराएँ (बहुत-से प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पावन बनाया है, उस पवित्र जलसे मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। पावमानी ऋचाएँ तथा यह पवित्र जल तुम्हें पवित्र करें (और विनायकजनित विघ्नकी शान्ति हो)।'

(तदनन्तर दक्षिण दिशामें स्थित द्वितीय कलश लेकर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए अभिषेक करे—)

**भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।**
**भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥**

'राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण तुम्हें कल्याण प्रदान करें।'

(फिर तीसरा पश्चिम कलश लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिषेक करे—)

**यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।**
**ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु सर्वदा॥**

'तुम्हारे केशोंमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य (या अकल्याण) है, वह सब सदाके लिये जल शान्त कर दे।'

(तत्पश्चात् चौथा कलश लेकर पूर्वोक्त तीनों मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे। इस प्रकार स्नान करनेवाले यजमानके मस्तकपर बायें हाथमें लिये हुए कुशोंको रखकर उसपर गूलरकी स्रुवासे सरसोंका तेल उठाकर डाले, उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—) 'ॐ मिताय स्वाहा। ॐ संमिताय स्वाहा। ॐ शालाय स्वाहा। ॐ कटंकटाय स्वाहा। ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा। ॐ राजपुत्राय स्वाहा।' मस्तकपर होमके पश्चात् लौकिक अग्निमें भी स्थालीपाककी विधिसे चरु तैयार करके उक्त छः मन्त्रोंसे ही उसी अग्निमें हवन करे। फिर होमशेष चरुद्वारा बलिमन्त्रोंको पढ़कर इन्द्रादि दिक्पालोंको बलि भी अर्पित करे। तत्पश्चात् कृताकृत आदि उपहार-द्रव्य भगवान् विनायकको अर्पित करके उनके समीप रहनेवाली माता पार्वतीको भी उपहार भेंट करे। फिर पृथ्वीपर मस्तक रखकर 'तत्पुरुषाय विद्महे। वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' इस मन्त्रसे गणेशजीको और 'सुभगायै विद्महे। काममालिन्यै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्।' इस मन्त्रसे अम्बिकादेवीको नमस्कार करे। फिर गणेशजननी अम्बिकाका उपस्थान करे। उपस्थानसे पूर्व फूल और जलसे अर्घ्य देकर दूर्वा, सरसों और पुष्पसे पूर्ण अञ्जलि अर्पण करे। (उपस्थानका मन्त्र इस प्रकार है—)

**रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।**
**पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥**

'भगवति! मुझे रूप दो, यश दो, कल्याण प्रदान करो, पुत्र दो, धन दो और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करो।'

पार्वतीजीका उपस्थान करके धूप, दीप, गन्ध, माल्य, अनुलेप और नैवेद्य आदिके द्वारा उमापति श्रीभगवान् शङ्करकी पूजा करे। तदनन्तर श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दन और मालासे अलंकृत हो ब्राह्मणोंको भोजन कराये और गुरुको भी दक्षिणासहित दो वस्त्र अर्पित करे।

इस प्रकार विनायककी पूजा करके लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि तथा आयुकी इच्छा रखनेवाले वीर्यवान् पुरुषको ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—इन नवों ग्रहोंकी क्रमशः स्थापना करनी चाहिये। सूर्यकी प्रतिमा ताँबेसे, चन्द्रमाकी रजत (या स्फटिक)-से, मङ्गलकी लाल चन्दनसे, बुधकी सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये, इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उनके-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर

उनमें गन्ध (चन्दन-कुंकुम आदि)-से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापनपूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। 'आ कृष्णेन रजसा०' इत्यादि सूर्य देवताके, 'इमं देवा:०' इत्यादि चन्द्रमाके, 'अग्निर्मूर्धा दिव: ककुत्०' इत्यादि मङ्गलके, 'उद्बुध्यस्व०' इत्यादि मन्त्र बुधके, 'बृहस्पते अति यदर्य:०' इत्यादि मन्त्र बृहस्पतिके, 'अन्नात् परिस्रुतो०' इत्यादि मन्त्र शुक्रके, 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र शनैश्चरके, 'काण्डात् काण्डात्' इत्यादि मन्त्र राहुके और 'केतुं कृण्वन्नकेतवे०' इत्यादि मन्त्र केतुके हैं। आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमश: सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधा हैं। सूर्यादि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनको ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमश: धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह जब अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हो, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि 'जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्‌की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अत: ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं। जो सदा सूर्यदेवकी पूजा एवं स्कन्दस्वामीको तथा महागणपतिको तिलक करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, उसे प्रत्येक कर्ममें सफलता एवं उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो मातृयाग किये बिना ग्रहपूजन करता है, उसपर मातृकाएँ कुपित होती हैं और उसके प्रत्येक कार्यमें विघ्न डालती हैं। शुभकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको 'वसो: पवित्रम्०' इस मन्त्रसे वसुधारा समर्पित करके प्रत्येक माङ्गलिक कर्ममें गौरी आदि मातृकाओंकी पूजा करनी चाहिये। उनके नाम ये हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाएँ, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि और तुष्टि। इनके साथ अपनी कुलदेवी और गणेशजी अधिक हैं। वृद्धिके अवसरोंपर इन सोलह मातृकाओंकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। इन सबकी प्रसन्नताके लिये क्रमश: आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, (आचमनीय), स्नान, (वस्त्र), चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, पूगीफल, आरती तथा दक्षिणा—ये उपचार समर्पित करने चाहिये।

अब मैं पितृकल्पका वर्णन करूँगा, जो धन और संततिकी वृद्धि करनेवाला है। अमावस्या, अष्टका, वृद्धि (विवाहादिका अवसर), कृष्णपक्ष, दोनों अयनोंके आरम्भका दिन, श्राद्धीय द्रव्यकी उपस्थिति, उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्ति, विषुवत् योग, सूर्यकी संक्रान्ति, व्यतीपात योग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा श्राद्धके लिये रुचिका होना—ये सभी श्राद्धके समय अथवा अवसर कहे गये हैं। सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञानमें अग्रगण्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मवेत्ता, युवक, मन्त्र और ब्राह्मणरूप वेदका

तत्त्वज्ञ, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाला, त्रिमधु[१], त्रिसुपर्ण[२], भानजा, ऋत्विक्, जामाता, यजमान, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत[३], दौहित्र, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, पञ्चाग्निसेवी[४], ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं। रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, पुनर्भूकी संतान, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य भंग करनेवाला), कुण्ड (पतिके जीते-जी पर-पुरुषसे उत्पन्न की हुई संतान), गोलक (पतिकी मृत्युके बाद जारज संतान), खराब नखवाला, काले दाँतवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, नपुंसक, कन्याको कलङ्कित करनेवाला, स्वयं जिसपर दोषारोपण किया गया हो वह, मित्र-द्रोही, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, बड़े भाईके अविवाहित रहते विवाह करनेवाला, माता, पिता और गुरुका त्याग करनेवाला, कुण्ड और गोलकका अन्न खानेवाला, शूद्रसे उत्पन्न, एक पतिको छोड़कर आयी हुई स्त्रीका पति, चोर और कर्मभ्रष्ट—ये ब्राह्मण श्राद्धमें निन्दित हैं (अतः इनका त्याग करना चाहिये)।

श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी उसी समयसे मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण संयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्णकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मणलोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर बिठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको और श्राद्धमें अयुग्म (एक, तीन, पाँच, आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओरसे घिरे हुए गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र स्थानमें, जहाँ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही सम्मिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेव-श्राद्धमें और तीन मातामहादि श्राद्धमें अथवा उभयपक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रखे।

वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। फिर ब्राह्मणसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।' तब ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर 'विश्वेदेवास आगत०' इत्यादि ऋचा पढ़कर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ बिखेरे। फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्यपात्रमें 'शं नो देवी०' इस मन्त्रसे जल छोड़े, 'यवोऽसि०' इत्यादिसे जौ डाले, फिर बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् 'या दिव्या आपः' इस मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पपूर्वक अर्घ्य दे और कहे—'अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः इदं वो हस्तार्घ्यं नमः।' यों कहकर वह अर्घ्यजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशापर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन वस्त्र अर्पण करे; पुनः हस्तशुद्धिके लिये जल दे। (विश्वेदेवोंको जो कुछ भी दे, सव्यभावसे उत्तराभिमुख

१. 'मधु वाता०' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप और तदनुकूल व्रतका आचरण करनेवाला। २. त्रिसौपर्णी ऋचाओंका अध्येता और तत्सम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाला। ३. त्रिणाचिकेत-संज्ञक त्रिविध अग्निविद्याको जाननेवाला और तदनुकूल व्रतका पालक। ४. सभ्य, आवसथ्य तथा त्रिणाचिकेत—इन पाँच अग्नियोंका उपासक।

होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये)।

वैश्वदेवकाण्डके अनन्तर यज्ञोपवीत अपसव्य करके पिता आदि तीनके लिये तीन द्विगुण-भुग्न कुशोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण-क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर 'उशन्तस्त्वा०' इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके 'आयन्तु नः०' इत्यादिका जप करे। 'अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः०' यह मन्त्र पढ़ कर सब ओर तिल बिखेरे। वैश्वदेव-श्राद्धमें जो कार्य जैसे किया जाता है, वही पितृश्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्घ्य आदि पूर्ववत् करे। संस्रव (ब्राह्मणके हाथसे चुए हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके भूमिपर दक्षिणाग्र कुश रखकर उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे 'पितृभ्यः स्थानमसि।' फिर उसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्रक आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे।

इसके बाद 'अग्नौ करण' कर्म करे। घीसे तर किया हुआ अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'अग्नौ करिष्ये' (मैं अग्निमें इसकी आहुति देना चाहता हूँ)। तब ब्राह्मण इसके लिये आज्ञा दें। इस प्रकार आज्ञा लेकर वह पिण्डपितृयज्ञकी भाँति उस अन्नकी दो आहुति दे (उस समय ये दो मन्त्र क्रमशः पढ़े—अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा नमः। सोमाय पितृमते स्वाहा नमः)। फिर होमशेष अन्नको एकाग्रचित्त होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चाँदीके पात्रोंमें परोसे। इस प्रकार अन्न परोसकर 'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानम्०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर 'इदं विष्णु०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अन्नमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श कराये। तदनन्तर तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्र तथा 'मधु वाता०' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कहे—'आप सुखपूर्वक अन्न ग्रहण करें।' फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करें। उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको त्याग दे और जबतक ब्राह्मणलोग पूर्णतः तृप्त न हो जायँ, तबतक पूछ-पूछकर प्रिय अन्न और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रोंका तथा पावमानी आदि ऋचाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' यजमान फिर पूछे—'शेष अन्न क्या किया जाय?' ब्राह्मण कहें—'इष्टजनोंके साथ भोजन करो।' उनकी इस आज्ञाको 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर वह अन्न रख दे। उस समय 'ये अग्निदग्धाः०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर दक्षिणाभिमुख हो पिण्डपितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे, तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—आपलोग 'अक्षय्यमस्तु' कहें। तब ब्राह्मण 'अक्षय्यम् अस्तु' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधावाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें—'स्वधावाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर पितरों और मातामहादिके लिये 'आप यह स्वधावाचन करें, ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'अस्तु स्वधा।' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको

दुहरायें—'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः।' तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

**दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।**
**श्रद्धा च नो मा विगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति॥**

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रिय वचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'वाजे-वाजे०' इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृपात्रको उत्तान करके ब्राह्मणोंको विदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

इसी प्रकार पुत्र-जन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक हो अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। 'अक्षय्यमस्तु' के स्थानमें 'उपतिष्ठताम्' का प्रयोग करे। 'वाजे-वाजे' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' यों कहे और ये ब्राह्मणलोग 'अभिरताः स्मः' ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय 'ये समाना०' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरणश्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्युतिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये; फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्ध-दान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूप-शीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जाति-भाइयोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान

किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्तचक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, वेद, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी, भेड़, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है जो कृत्तिकासे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है तथा आस्तिक, श्रद्धालु एवं मद-मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित होता है। वसु, रुद्र और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर श्राद्धके देवता हैं। ये श्राद्धसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं। जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार मैंने कल्पाध्यायका विषय थोड़ेमें बताया है। वेद तथा पुराणान्तरसे विशेष बातें जाननी चाहिये। मुनीश्वर! जो विद्वान् इस कल्पाध्यायका चिन्तन करता है, वह इस लोकमें कर्म-कुशल होता है और परलोकमें शुभ गति पाता है। जो मनुष्य देवकार्य तथा पितृकार्यमें इस कल्पाध्यायका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह यज्ञ और श्राद्धका पूरा फल पाता है। इतना ही नहीं, वह इस लोकमें धन, विद्या, यश और पुत्र पाता है तथा परलोकमें उसे परम गति प्राप्त होती है। अब मैं वेदके मुखस्वरूप व्याकरणका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो। (पूर्वभाग, द्वितीय पाद, अध्याय ५१)

## व्याकरण-शास्त्रका वर्णन

**सनन्दन उवाच**

**अथ व्याकरणं वक्ष्ये संक्षेपात्तव नारद।**
**सिद्धरूपप्रबन्धेन मुखं वेदस्य साम्प्रतम्॥ १॥**

**सनन्दनजी कहते हैं**—अब मैं शब्दोंके सिद्धरूपोंका उल्लेख करते हुए तुमसे संक्षेपमें व्याकरणका वर्णन करता हूँ; क्योंकि व्याकरण वेदका मुख है॥ १॥

**सुप्तिङन्तं पदं विप्र सुपां सप्त विभक्तयः।**
**स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मिका॥ २॥**

विप्रवर! सुबन्त[1] और तिङन्त[2] पदको शब्द कहते हैं (जिसके अन्तमें 'सुप्' प्रत्यय हों, वह सुबन्त कहलाता है)। सुप्‌की सात विभक्तियाँ हैं। उनमेंसे प्रथमा (पहली) विभक्ति सु, औ, जस्—इस प्रकार बतायी गयी है ('सु' प्रथमाका एकवचन है, 'औ' द्विवचन है और 'जस्' बहुवचन है)। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिक (नाम) स्वरूप मानी गयी है॥ २॥

**सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्तरि।**
**अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम्॥ ३॥**

---

१. रामः, हरिम्, पितुः, रमायाः, ज्ञानम् इत्यादि। २. तिङ् विभक्ति जिसके अन्तमें हो, उसे तिङन्त कहते हैं। तिङ्के दो विभाग हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। इन दोनोंमें तीन पुरुष होते हैं—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम। प्रत्येक पुरुषमें तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। परस्मैपदके प्रथम पुरुषसम्बन्धी प्रत्यय इस प्रकार हैं—'तिप्, तस्, अन्ति।' ये क्रमशः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये। आत्मनेपदके प्रथम पुरुषमें 'ते, आते, अन्ते' ये प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार दोनों पदोंके तीनों पुरुषसम्बन्धी प्रत्ययोंका मूलमें ही उल्लेख हुआ है। यहाँ संक्षेपसे दिग्दर्शन कराया गया है। 'ति' से लेकर 'महे' तकके समस्त प्रत्ययोंका संक्षिप्त नाम 'तिङ्' है। ये जिसके अन्तमें हों, वह 'तिङन्त' है। उसीकी 'पद' संज्ञा होती है। उदाहरण—'भवति' (होता है), 'पपाठ' (पढ़ा), 'गमिष्यति' (जायगा), 'एधते' (बढ़ता है) इत्यादि।

सम्बोधनमें[१] प्रथमा विभक्तिका प्रयोग होता है; जहाँ प्रातिपदिकके अतिरिक्त लिङ्ग[२], परिमाण[३] और वचन[४] आदिका बोध कराना हो, वहाँ भी प्रथमा विभक्तिका ही प्रयोग होता है। उक्त[५] कर्ममें (जहाँ कर्म वाच्य हो, उसमें) तथा उक्त कर्तामें[६] (जहाँ कर्ता वाच्य हो, उसमें) भी प्रथमा विभक्तिका ही प्रयोग होता है। धातु और प्रत्ययसे रहित सार्थक शब्दकी प्रातिपदिक[७] संज्ञा होती है ॥ ३ ॥

**अमौशसो द्वितीया स्यात् तत्कर्म क्रियते च यत्।**
**द्वितीया कर्मणि प्रोक्तान्तरान्तरेण संयुते ॥ ४ ॥**

अम्, औ, शस्—यह द्वितीया विभक्ति है (यहाँ भी 'अम्' आदिको क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन समझना चाहिये)। जो किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं। अनुक्त[८] कर्ममें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग कहा गया है (कर्तृवाच्य वाक्योंमें कर्म अनुक्त होता है, वहाँ उसकी प्रधानता नहीं रहती, इसीलिये उसे 'अनुक्त' कहा गया है)। 'अन्तरा', 'अन्तरेण' इन शब्दोंका जिसके साथ संयोग या अन्वय हो, उस शब्दमें द्वितीया विभक्तिका[९] प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

**टाभ्याम्भिसस्तृतीया स्यात् करणे कर्तरीरिता।**
**येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः ॥ ५ ॥**

'टा', 'भ्याम्', 'भिस्'—यह तृतीया विभक्ति है (यहाँ भी पूर्ववत् एकवचन आदिका विभाग समझना चाहिये)। करणमें[१०] और अनुक्त[११] कर्तामें तृतीया विभक्ति बतायी गयी है। जिसकी सहायतासे कार्य किया जाता है, उसका नाम करण है और जो कार्य करता है, उसे कर्ता कहते हैं (जिस वाक्यमें कर्मकी प्रधानता होती है, वहाँ कर्ता अनुक्त माना गया है) ॥ ५ ॥

**ङेभ्याम्भ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।**
**यस्मै दित्सां धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम् ॥ ६ ॥**

'ङे', 'भ्याम्' 'भ्यस्'—यह चतुर्थी विभक्ति है। इसका प्रयोग सम्प्रदान कारकमें होता है। जिस व्यक्तिको कोई वस्तु देनेकी इच्छा मनमें धारण की जाय, उसकी 'सम्प्रदान[१२]' संज्ञा होती है तथा जिसको कोई वस्तु रुचिकर प्रतीत होती है, वह भी सम्प्रदान[१३] है (सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है) ॥ ६ ॥

**पञ्चमी स्याङ्ङसिभ्याम्भ्यो ह्यपादाने च कारके।**
**यतोऽपैति समादत्ते अपादाने च यं यतः ॥ ७ ॥**

'ङसि', 'भ्याम्', 'भ्यस्' यह पञ्चमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अपादान कारकमें होता है। जहाँसे कोई जाता है, जिससे कोई किसी वस्तुको लेता है तथा जिस स्थानसे कोई वस्तु अलग की जाती या स्वतः अलग होती है, विभाग या अलगावकी उस सीमाको अपादान[१४] कारक कहते हैं ॥ ७ ॥

---

१. 'सम्बोधनमें प्रथमा विभक्तिका प्रयोग होता है—'हे राम' इत्यादि। २. 'तटः', 'तटी', 'तटम्'। ३. परिमाणका उदाहरण 'द्रोणो व्रीहिः' (एक दोन धान है) इत्यादि है। ४. 'एकः', 'द्वौ', 'बहवः'। ५. 'हरिः सेव्यते' (श्रीहरि भक्तोंद्वारा सेवित होते हैं), 'लक्ष्म्या सेवितः' (भगवान् विष्णु लक्ष्मीद्वारा सेवित हैं) इत्यादि। ६. 'रामः करोति' (राम करते हैं)। ७. धातुसे रहित इसलिये कहा गया कि 'अहन्' इत्यादि पदोंमें प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'न' लोप न हो जाय। प्रत्ययरहित कहनेका कारण यह है कि 'हरिषु', 'करोषि' इत्यादिमें भी 'सु' की प्रातिपदिक संज्ञा न हो जाय। यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती तो औत्सर्गिक एकवचन लाकर पदसंज्ञा करनेपर उक्त उदाहरणोंमें दन्त्य 'स' के स्थानमें 'मूर्धन्य 'ष' नहीं हो पाता; क्योंकि पदादि 'स' कारके स्थानमें 'ष' कार होनेका निषेध है। प्रत्ययके निषेधसे प्रत्ययान्तका भी निषेध समझना चाहिये। इससे 'हरिषु' इत्यादि समुदायकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। सार्थक शब्दकी ही प्रातिपदिक संज्ञा होती है, निरर्थककी नहीं। इसलिये 'धनम्, वनम्' इत्यादिमें प्रत्येक अक्षरकी अलग-अलग 'प्रातिपदिक' संज्ञा नहीं हो सकती।

८. 'हरिं भजति' (श्रीहरिको भजता है)। इत्यादि वाक्योंमें 'हरि' इत्यादि पद अनुक्त हैं; इसलिये उनमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग होता है। ९. इसका उदाहरण है 'अन्तरा त्वां मां हरिः' (तुम्हारे और मेरे भीतर भी भगवान् हैं)। 'अन्तरेण हरिं न सुखम्' (भगवान्‌के विना सुख नहीं है) इत्यादि। १०-११. 'रामेण बाणेन हतो वाली' (श्रीरामने बाणसे वालीको मारा) इस वाक्यमें राम अनुक्त कर्ता हैं और बाण करण। अतः इन दोनोंमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। १२. 'ब्राह्मणाय गां ददाति' (ब्राह्मणको गाय देता है) इस वाक्यमें ब्राह्मण सम्प्रदान है, इसलिये उसमें चतुर्थी हुई है।

१३. इसका उदाहरण है—'हरये रोचते भक्तिः' (भगवान्‌को भक्ति पसंद है)। १४. इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—'ग्रामादपैति' (गाँवसे दूर जाता है), 'देवदत्तः यज्ञदत्तात् पुस्तकं समादत्ते' (देवदत्त यज्ञदत्तसे पुस्तक लेता है), 'पात्रात् ओदनं गृह्णाति' (बर्तनसे भात लेता है), 'अश्वात् पतति' (घोड़ेसे गिरता है), 'पर्वतात् नदी निस्सरति' (पर्वतसे नदी निकलती है) इत्यादि।

**ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।**
**ङ्योस्सुप: सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत्॥ ८॥**

'ङस्', 'ओस्', 'आम्'—यह षष्ठी विभक्ति है। जहाँ स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धकी[1] प्रधानता हो, वहाँ (भेदकमें) षष्ठी विभक्तिका प्रयोग होता है। 'ङि', 'ओस्' 'सुप्'—यह सप्तमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अधिकरण[2] कारकमें होता है॥ ८॥

**आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगत:।**
**ईप्सितं चानीप्सिताद् यत्तदपादानकं स्मृतम्॥ ९॥**

विप्रवर! आधारमें[3] भी सप्तमी होती है। भयार्थक[4] तथा रक्षार्थक[5] धातुओंका प्रयोग होनेपर भयके कारणकी अपादान संज्ञा होती है। इसी प्रकार वारणार्थक[6] धातुओंका प्रयोग होनेपर अनीप्सितसे (जो अभीष्ट नहीं है, उससे) रक्षणीय जो अभीष्ट वस्तु है, उसकी अपादान संज्ञा होती है॥ ९॥

**पञ्चमी पर्यपाङ्‌योगे इतरर्तेऽन्यदिङ्‌मुखे।**
**एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकै:॥ १०॥**

परि, अप, आङ्, इतर, ऋते, अन्य (आरात्) तथा दिग्वाचक शब्द—इन सबके योगमें भी पञ्चमी[7] विभक्ति होती है। 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञावाले शब्दोंके साथ योग होनेपर द्वितीया विभक्ति होती है॥ १०॥

**लक्षणेत्थंभूतेऽभिरभागे चानुपरिप्रति।**
**अन्तरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते॥ ११॥**

लक्षण[8], इत्थम्भूताख्यान[9], भाग[10] तथा वीप्सा[11]—इन सबकी अभिव्यक्तिके लिये प्रयुक्त हुए प्रति, परि, अनु—इन अव्ययोंकी 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा होती है। 'भाग' अर्थको छोड़कर शेष जो लक्षण आदि अर्थ हैं, उनकी अभिव्यक्तिके लिये प्रयुक्त होनेवाला 'अभि[12]' अव्यय भी 'कर्मप्रवचनीय' होता है। हीन[13] अर्थको प्रकाशित करनेवाला 'अनु' तथा 'हीन' और 'अधिक[14]' अर्थोंको प्रकट करनेके लिये प्रयुक्त 'उप' अव्यय भी 'कर्मप्रवचनीय' होते हैं। अन्तर अर्थात् मध्य[15] अर्थ तथा सहार्थ यानी तृतीया[16] विभक्तिका अर्थ व्यक्त करनेके लिये प्रयुक्त हुआ 'अनु' शब्द भी 'कर्मप्रवचनीय' है। (इन सबके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है)॥ ११॥

**द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि।**
**अप्राणिषु विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे॥ १२॥**

गत्यर्थक[17] धातुओंके कर्ममें द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं, यदि गमनकी चेष्टा प्रकट होती हो। (परंतु मार्ग या उसका वाचक शब्द यदि गत्यर्थक धातुका कर्म

---

१. 'गृहस्य स्वामी' (घरके स्वामी), 'राज्ञ: सेवक:' (राजाका सेवक), 'दशरथस्य पुत्र:' (दशरथके पुत्र), 'सीताया: पति:' (सीताके पति) इत्यादि। २. 'गृहे वसति' (घरमें रहता है)। ३. आधार तीन प्रकारके हैं—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। इनके क्रमश: उदाहरण इस प्रकार हैं)। ४. 'कटे आस्ते' (चटाईपर बैठता है) 'मोक्षे इच्छा अस्ति' (मोक्षविषयक इच्छा है), 'सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति' (सबमें आत्मा है)। 'चौराद्बिभेति' (चोरोंसे डरता है)। ५. 'पापाद् रक्षति' (पापसे बचाता है)। ६. 'यवेभ्यो गां वारयति' (जौसे गायको हटाता है)। ७. 'परि हरे: संसार:' (श्रीहरिसे संसार अलग है), 'अप हरे: सर्वे दोषा:' (सब दोष भगवान्‌से दूर हैं), 'आ मुक्ते: संसार:' (जबतक मोक्ष न हो, तभीतक संसार है), 'इतर: कृष्णात्' (कृष्णसे भिन्न), 'ऋते भगवत:' (भगवान्‌के बिना), 'अन्य: श्रीरामात्' (श्रीरामसे भिन्न), 'आरात् वनात्' (वनसे दूर या समीप), 'पूर्वो ग्रामात्' (गाँवसे पूर्व) इत्यादि उदाहरण समझने चाहिये। ८. उदाहरण—'वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत्' (वृक्षकी ओर बिजली चमकती है)। यहाँ वृक्षके प्रकाशित होनेसे बिजलीकी चमकका ज्ञान होता है, अत: वृक्ष लक्षण है। किसीके मतमें विद्युत्‌का विद्योतन ही लक्षण है, इसे व्यक्त करनेवाले प्रति, परि अथवा अनु किसीके भी योगमें द्वितीया ही होगी। ९. 'भक्तो विष्णुं प्रति, परि, अनु वा।' (यह श्रीविष्णुका भक्त है)। यहाँ 'इत्थंभूत' का अर्थ है किसी विशेषणको प्राप्त। भक्तस्वरूप विशेषणको प्राप्त पुरुषके कथनमें प्रयुक्त प्रति आदि अव्यय कर्मप्रवचनीय होकर 'विष्णु' शब्दसे युक्त हो उसमें द्वितीया विभक्ति लाते हैं। १०. लक्ष्मीर्हरिं प्रति, परि, अनु वा। इसका अर्थ हुआ लक्ष्मीजी भगवान् श्रीहरिकी वस्तु हैं, उनपर उन्हींका अधिकार है, वे श्रीहरिका भाग हैं। ११. मूलमें 'वीप्सा' का प्रयोग न होनेपर भी 'लक्षणेत्थंभूत०' (पा० सू० १। ४। ९०)-के आधारपर उसका ग्रहण किया गया है। उसका अर्थ है व्याप्ति। उदाहरण है—'वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति' (एक-एक पेड़को सींचता है), 'परि सिञ्चति, अनु सिञ्चति' का भी प्रयोग हो सकता है। १२. उदाहरण—हरिमभि वर्तते। १३. 'अनु हरिं सुरा:' इसका अर्थ है—दैत्य भगवान्‌से हीन हैं। १४. 'अधिक' अर्थमें जहाँ 'उप' है, वहाँ सप्तमी विभक्ति होती है। 'हीन' अर्थमें जहाँ 'उप' है, उसके योगमें द्वितीया होती है। यथा—'उप हरिं सुरा:'—देवता भगवान्‌से हीन हैं। १५. उदाहरण—'हृदयमनु हरि:' भगवान् हृदयके भीतर हैं। १६. उदाहरण—नदीमन्ववसिता सेना। नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थ: (सेना नदीसे सम्बद्ध है)। १७. उदाहरण—'ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति' (गाँवको जाता है)

हो तो उसमें चतुर्थी नहीं होती, केवल द्वितीया होती है[१]। यह चतुर्थीका निषेध तभी लागू होता है, जब पथिक मार्गपर चल रहा हो। यदि वह गलत रास्तेसे जाकर अच्छा रास्ता पकड़ना चाहता हो तब चतुर्थीका प्रयोग भी हो ही सकता है[२]) ज्ञानार्थक 'मन्' धातुका कर्म यदि कोई प्राणिभिन्न वस्तु हो और अनादर अर्थ प्रकट करना हो तो उसमें भी द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[३] ॥ १२ ॥

**नमःस्वस्तिस्वधास्वाहालंवषड्योग ईरिता।**
**चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥ १३ ॥**

नमः, स्वस्ति, स्वधा, स्वाहा, अलम्, वषट्—इन सब अव्यय शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्तिके प्रयोगका विधान है[४]। तादर्थ्यमें अर्थात् जिस वस्तुके लिये कोई कार्य किया जाता है, उस 'वस्तु'के बोधक शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है[५]। 'तुमुन्' के अर्थमें प्रयुक्त अव्ययभिन्न भावार्थक प्रत्ययान्त शब्दमें भी चतुर्थी विभक्तिका ही प्रयोग होना चाहिये[६] ॥ १३ ॥

**तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।**
**काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥ १४ ॥**
**स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः।**
**निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥ १५ ॥**

'सह' तथा उसके पर्यायवाची शब्दोंसे योग होनेपर तृतीया विभक्ति होती है[७] (इसी प्रकार सदृशार्थक[८] शब्दोंके योगमें भी तृतीया होती है)। यदि कोई विकृत अङ्ग विशेषणरूपसे प्रयुक्त हुआ हो तो उसमें भी तृतीया विभक्ति होती है[९]। जहाँ एक क्रियाके होते समय दूसरी क्रिया लक्षित होती हो, वहाँ सप्तमी विभक्ति होती है[१०]। 'स्वामी', 'ईश्वर', 'अधिपति', 'साक्षी', 'दायाद', 'प्रसूत' (तथा 'प्रतिभू')—इन शब्दोंके योगमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[११]। जिस समुदायमेंसे किसी एककी जाति-सम्बन्धी, गुण-सम्बन्धी, क्रिया-सम्बन्धी अथवा किसी विशेष नामवाले व्यक्तिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करना हो, उस समुदायबोधक शब्दमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[१२]। 'हेतु' शब्दका प्रयोग करके यदि हेत्वर्थका प्रकाशन किया जाय तो षष्ठी विभक्ति होती है[१३] ॥ १४-१५ ॥

**स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके।**
**हिंसार्थानां प्रयोगे च कृति कर्मणि कर्तरि ॥ १६ ॥**

स्मरणार्थक क्रियाओंके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[१४]। 'कृ' धातुके कर्ममें भी शेषषष्ठीका विधान है। यदि प्रतियत्न (गुणाधान या संस्कार) सूचित होता हो[१५]। 'हिंसा' अर्थवाले धातुओंका प्रयोग होनेपर उनके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[१६]। कृदन्त शब्दका

१. यथा—'पन्थानं गच्छति' (राह चलता है)। २. यथा—'उत्पथेन पथे गच्छति' (अच्छी राह पकड़नेके लिये बुरे रास्तेसे जाता है)। ३. यथा—'न त्वां तृणं मन्ये, तृणाय वा' (मैं तुझे तृणके बराबर भी नहीं समझता)। वार्तिककारके मतमें यहाँ 'प्राणिभिन्न' को हटाकर 'नौका, अन्न, शुक, शृगाल—इन शब्दोंको छोड़कर' इतना बढ़ा देना चाहिये। इससे 'न त्वाम् अन्नं मन्ये' इत्यादि स्थलोंमें प्राणिभिन्न होनेपर भी चतुर्थी नहीं होगी और 'न त्वां शुने मन्ये' इत्यादि स्थलोंमें 'प्राणी' होनेपर भी चतुर्थी हो जायगी। ४. क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'हरये नमः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलं मल्लो मल्लाय। वषड् इन्द्राय। ५. यथा—'मुक्तये हरिं भजति (मोक्षके लिये भगवान्‌का भजन करता है)। ६. यागाय याति—यष्टुं यातीत्यर्थः (यज्ञके लिये जाता है)। ७. यथा—पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्रके साथ पिता आया है)। यहाँ 'सह' के योगमें तृतीया हुई है। इसी प्रकार 'साकम्', 'सार्धम्', 'समम्'—इन शब्दोंके योगमें भी तृतीया जाननी चाहिये। ८. 'सदृश', 'तुल्य', 'सम', 'निभ', 'सदृक्ष', 'नीकाश', 'संकाश', 'उपमित' आदि शब्द सदृशार्थक हैं; इनके योगमें भी तृतीया होती है, यथा—मेघेन सदृशः श्यामो हरिः (भगवान् विष्णु मेघके समान श्याम हैं)। ९. यथा—अक्ष्णा काणः (आँखका काना), कर्णेन बधिरः (कानका बहरा), पादेन खञ्जः (पैरका लँगड़ा) इत्यादि। १०. यथा—गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गौएँ दुही जाती थीं, उस समय गया)। ११. गवां गोषु वा स्वामी। मनुष्याणां मनुष्येषु वा ईश्वरः—इत्यादि उदाहरण हैं। १२. यथा—नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा। मैत्रः पटुः—ये उदाहरण हैं। १३. यथा—अन्नस्य हेतोर्वसति। १४. मातुः स्मरति, मातुः स्मरणम् आदि उदाहरण है। शेषत्वेन विवक्षित होनेपर ही षष्ठी होती है। विवक्षा न होनेपर 'मातरं स्मरति' इस प्रकार द्वितीया विभक्ति ही होगी। १५. उदाहरण—एधोदकस्योपस्करणम्—एधोदकस्योपस्कुरुते। १६. महर्षि पाणिनिने यहाँ—'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' (२।३।५६) इस सूत्रद्वारा हिंसा-अर्थमें परिगणित धातुओंको ही ग्रहण किया है। उदाहरणके लिये 'चौरस्योज्जासनम्' 'चौरस्य प्रणिहननम्' निहननम्, प्रहणनं वा।' 'चौरस्योन्नाटनम्।' 'चौरस्य क्राथनम्।' 'चौरस्य पेषणं वा।' इत्यादि प्रयोग हैं।

योग होनेपर कर्ता और कर्ममें षष्ठी होती है[1] ॥ १६ ॥

**न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादने।**
**एता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु।**
**भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥ १७ ॥**

यदि निष्ठा आदिका प्रतिपादन करनेवाले प्रत्ययोंसे युक्त शब्दका प्रयोग हो तो कर्ता और कर्ममें षष्ठी नहीं होती[2]। ये विभक्तियाँ दो प्रकारकी जाननी चाहिये—सुप् और तिङ्। ऊपर सुबादि विभक्तियोंके विषयमें वर्णन किया गया है। क्रियावाचक 'भू' 'वा' आदि शब्द ही तिङ् विभक्तियोंके साथ संयुक्त होनेपर तिङन्त कहे गये हैं। इनमें दस[3] लकार बताये गये हैं ॥ १७ ॥

**तिप्तसन्तीति प्रथमो मध्यः सिप्थस्थ उत्तमः।**
**मिब्वस्मसः परस्मै तु पदानां चात्मनेपदम् ॥ १८ ॥**

(प्रत्येक लकारमें परस्मैपद और आत्मनेपद—ये दो पद होते हैं। प्रत्येक पदमें प्रथम, मध्यम और उत्तम—ये तीन पुरुष होते हैं।) 'तिप्' 'तस्' 'अन्ति' यह प्रथम पुरुष है। 'सिप्' 'थस्' 'थ'—यह मध्यम पुरुष है तथा 'मिप्' 'वस्' 'मस्' यह उत्तम पुरुष है (प्रत्येक पुरुषमें जो तीन-तीन प्रत्यय हैं, वे क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन हैं)। ये सब परस्मैपदके प्रत्यय हैं। अब आत्मनेपद बताया जाता है ॥ १८ ॥

**ते आतेऽन्ते प्रथमो मध्यः से आथे ध्वे तथोत्तमः।**
**ए वहे मह आदेशा ज्ञेया ह्यन्ये लिडादिषु ॥ १९ ॥**

'ते' 'आते' 'अन्ते' यह प्रथम पुरुष है। 'से' 'आथे' 'ध्वे' यह मध्यम पुरुष है। 'ए' 'वहे' 'महे' यह उत्तम पुरुष है। ये 'लट्' लकारके स्थानमें होनेवाले आदेश हैं। 'लिट्' आदि लकारोंके स्थानमें होनेवाले प्रत्ययरूप आदेश दूसरे हैं, उन्हें (अन्य व्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थोंसे) जानना चाहिये ॥ १९ ॥

**नाम्नि प्रयुज्यमाने तु प्रथमः पुरुषो भवेत्।**
**मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि ॥ २० ॥**

जहाँ 'युष्मद्', 'अस्मद्' शब्दोंके अतिरिक्त अन्य कोई भी नाम (संज्ञा-शब्द) उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयुक्त होता हो, वहाँ प्रथम पुरुष होता है। 'युष्मद्' शब्द उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयुक्त हो तो मध्यम पुरुष होता है और 'अस्मद्' शब्दका उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयोग हो तो उत्तम पुरुष कहा गया है ॥ २० ॥

**भूवाद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः।**
**लडीरितो वर्तमाने भूतेऽनद्यतने तथा ॥ २१ ॥**
**मास्मयोगे च लङ्वाच्यो लोडाशिषि च धातुतः।**
**विध्यादौ स्यादाशिषि च लिङितो द्विविधो मुने ॥ २२ ॥**

क्रिया-बोधक 'भू' 'वा' आदि शब्दोंको 'धातु' कहा गया है। 'सन्[4]' आदि प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु संज्ञा है। धातुओंसे वर्तमानकालमें लट्लकारका विधान है। अनद्यतन (आजसे पहलेके) भूतकालमें लङ् लकार होता है तथा 'मा' और 'स्म' इन दोनोंके योगमें लङ् (और लुङ्) लकार होता है, यह बताना चाहिये। आशीर्वाद और विधि[5] आदि अर्थमें धातुसे लोट् लकारका विधान है। विधि आदि अर्थमें तथा आशीर्वादमें लिङ् लकारका भी प्रयोग होता है, किंतु विधिलिङ् और आशिष्-लिङ्के धातु-रूपोंमें अन्तर होता है। मुने! इसीलिये यह दो प्रकारका माना गया है ॥ २१-२२ ॥

---

१. यथा—'कृष्णस्य कृतिः' यहाँ 'कृष्ण' कर्ता है, उसमें षष्ठी हुई है। 'जगतः कर्ता कृष्णः' इसमें 'जगत्' कर्म है, यहाँ कर्ममें षष्ठी हुई है। २. आदि पदसे 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (पा० सू० २। ३। ६९) इस सूत्रमें निर्दिष्ट स्थलोंको ग्रहण करना चाहिये। निष्ठाका उदाहरण यह है—'विष्णुना हता दैत्याः' (विष्णुसे दैत्य मारे गये)। 'दैत्यान् हतवान् विष्णुः' (दैत्योंको विष्णुने मारा)। इसमें कृदन्त शब्दका योग होनेसे विष्णुशब्दमें षष्ठीकी प्राप्ति थी, जो इस निषेधसे बाधित हो गयी। ३. लट्, लिट् लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ् तथा लृङ्—ये दस लकार हैं। इनमेंसे पाँचवें लकारका प्रयोग केवल वेदमें होता है। ४. सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष, आचारक्विप, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ् तथा णिङ्—ये बारह प्रत्यय सनादि कहलाते हैं। ५. विधि (प्रेरणा या आज्ञा), निमन्त्रण (श्राद्ध आदिमें नियुक्ति या न्योता), आमन्त्रण (इच्छानुसार आज्ञा देना) तथा अधीष्ट (सत्कारपूर्ण व्यवहार)—इनको विध्यादि कहते हैं।

**लिङतीते परोक्षे स्याच्छ्वस्तने लुड् भविष्यति।**
**स्यादेवाद्यतने लृट् च भविष्यति तु धातुतः॥ २३॥**

परोक्ष भूतकालमें लिट् लकारका प्रयोग होता है। आजके बाद होनेवाले भविष्यमें 'लुट्'का प्रयोग किया जाता है। आज होनेवाले भविष्यमें (तथा सामान्य भविष्यकालमें भी) धातुसे लृट् लकार होता है॥ २३॥

**भूते लुङतिपत्तौ च क्रियाया लृङ् प्रकीर्तितः।**
**सिद्धोदाहरणं विद्धि संहितादिपुरःसरम्॥ २४॥**

सामान्य भूतकालमें लुङ् लकारका प्रयोग करना चाहिये। हेतुहेतुमद्भाव आदि जो लिङ्के निमित्त हैं, उन्हींके होनेपर भविष्य-अर्थमें लृङ् लकारका प्रयोग होता है; किंतु यदि क्रियाकी असिद्धि सूचित होती हो तभी ऐसा होना उचित है। मुने! [अब संधिका प्रकरण आरम्भ करते हैं—] संधिके सिद्ध उदाहरण संहिता आदि ग्रन्थोंके अनुसार समझो॥ २४॥

**दण्डाग्रं च दधीदं च मधूदकं पितृषभः।**
**होतॄकारस्तथा सेयं लाङ्गलीषा मनीषया॥ २५॥**
**गङ्गोदकं तवल्कार ऋणार्णं च मुनीश्वर।**
**शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सैन्द्रः सौकार इत्यपि॥ २६॥**

पहले स्वर-संधिके उदाहरण दिये जाते हैं— दण्ड+अग्रम्=दण्डाग्रम् (डंडेका सिरा)। दधि+इदम्=दधीदम् (यह दही)। मधु+उदकम्=मधूदकम् (मधु और जल)। पितृ+ऋषभः=पितृषभः (पितृवर्गमें श्रेष्ठ)। होतृ+लृकारः=होतॄकारः (होताका लृकार)[1]। इसी प्रकार 'मनीषा'के साथ 'लाङ्गलीषा' भी सिद्धसंधि है।[2] मुनीश्वर! गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम् (गङ्गाजल), तव+लृकारः=तवल्कारः (तुम्हारा लृकार), सा+इयम्=सेयम् (वह यह—स्त्री)।[3] स+ऐन्द्रः=सैन्द्रः (वह इन्द्रका भाग)। स+औकारः=सौकारः (वह औकार)। ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् (ऋणके लिये ऋण)। शीत+ऋतः=शीतार्तः (शीतसे युक्त)। कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् (कृष्णकी एकता)। गङ्गा+ओघः=गङ्गौघः (गङ्गाकी जलराशिका प्रवाह)—ये वृद्धि संधिके उदाहरण हैं[4]॥ २५-२६॥

**वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा।**
**त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा अधः॥ २७॥**

दधि+अत्र=दध्यत्र (यहाँ दही है), वधू+आसनम्=वध्वासनम् (बहूका आसन), पितृ+अर्थः=पित्रर्थः (पिताका धन), लृ+आकृतिः=लाकृतिः (देवजातिकी माताका स्वरूप)—ये यण्संधिके उदाहरण हैं[5]। (हरे+ए=हरये—भगवान्के लिये)। नै+अकः=नायकः (स्वामी)। लो+अणः=लवणः (नमक)। (पौ+अकः=पावकः—अग्नि)—ये अयादि

---

१. ये पाँच उदाहरण दीर्घसंधिके हैं। नियम यह है कि अ, इ, उ, ऋ और लृ—ये स्वर दीर्घ हों या ह्रस्व, यदि अपने सवर्ण स्वरको समीप एवं परवर्ती पावें तो दोनों मिल जाते हैं और उन दोनोंके स्थानपर एक ही दीर्घस्वर हो जाता है। ऋ और लृ असमान प्रतीत होनेपर भी परस्पर सवर्ण माने गये हैं। अतः ऋ+लृके मिलनेपर एक ही 'ॠ' बनता है, जैसा कि 'होतॄकारः' में दिखाया गया है।

२. लाङ्गल-ईषा-लाङ्गलीषा। मनस्+ईषा-मनीषा। ये ही इनके पदच्छेद हैं। पहलेमें 'लाङ्गल' शब्दके अन्तका 'अ' ईषाके ईकारमें मिलकर तद्रूप हो गया है। दूसरेमें 'मनस्' के अन्तका 'अस्' भाग ईषाके ईकारका स्वरूप बन गया है। ऐसी संधिको पररूप कहते हैं। 'मनीषा' का अर्थ बुद्धि और 'लाङ्गलीषा' का अर्थ हरिस—हलका ईषादण्ड है। वार्तिककारने मनीषा आदि शब्दोंको 'शकन्धु' आदि गण (समुदाय)-में सम्मिलित किया है। ऐसे शब्द जो प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं और जिनके साधनकी कोई विशेष पद्धति नहीं है, उन्हें निपातनात् सिद्ध माना गया है।

३. ये गुणसंधिके उदाहरण हैं। नियम यह है कि 'अ' या 'आ' से परे 'इ' 'उ' अथवा 'ऋ' हों तो वह क्रमशः 'ए' 'ओ' अथवा 'अर्' रूप धारण करता है। ये आदेश दो अक्षरोंके स्थानपर अकेले होते हैं।

४. नियम यह है कि 'अ' अथवा 'आ' से परे 'ए', 'ओ' अथवा 'ऋ' हो तो दो अक्षरोंके स्थानपर क्रमशः 'ऐ', 'औ' एवं 'आर्' आदेश होते हैं। 'ए' या 'ओ' की जगह 'ऐ', 'औ' हों तो भी वैसा ही रूप बनता है। 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होनेके स्थल परिगणित हैं।

५. नियम यह है कि 'इ' 'उ' 'ऋ' 'लृ'—ये चार अक्षर दीर्घ हों या ह्रस्व, इनसे परे कोई भी असवर्ण (असमान) स्वर होनेपर इन 'इ' कार आदिके स्थानपर क्रमशः य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं।

संधि कहलाते हैं।[1] ते+आद्या:=त आद्या: (वे प्रथम हैं)। विष्णो+एह्यत्र=विष्ण एह्यत्र (भगवन् विष्णो! यहाँ पधारिये)। तस्मै+अर्घ:=तस्मा अर्घ: (उनके लिये अर्घ्य)। गुरौ+अध:=गुरा अध: (गुरुके समीप नीचे)। इन उदाहरणोंमें यलोप और वलोप हुए हैं[2]॥ २७॥

**हरेऽव विष्णोऽवेत्येवादसो मादप्यमी अघा:।**
**शौरी एतौ विष्णू इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुन:॥ २८॥**
**आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम।**

हरे+अव=हरेऽव (भगवन्! रक्षा कीजिये)। विष्णो+अव=विष्णोऽव (विष्णो! रक्षा कीजिये)। यह पूर्वरूप संधि है[3]। अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे परे यदि दीर्घ 'ई' और 'ऊ' हों तो वे ज्यों-के-त्यों रह जाते हैं। इस अवस्थाको प्रकृतिभाव कहते हैं। जैसे अमी+अघा: (ये पापी हैं)[4], शौरी+एतौ=(ये दोनों श्रीकृष्ण-बलराम हैं), विष्णू+इमौ=(ये दोनों विष्णुरूप हैं), दुर्गे+अमू=(ये दोनों दुर्गारूप हैं)। ये भी प्रकृतिभावके ही उदाहरण हैं।[5] नो+अर्जुन: (अर्जुन नहीं है), आ+एवम् (ऐसा ही है)—इनमें भी सन्धि नहीं होती[6]। मुनिश्रेष्ठ नारद! 'अमी+अघा:' से लेकर यहाँतकके सभी उदाहरण ऐसे हैं, जो अपनी प्रकृतावस्थामें ही रहते हैं॥ २८ १/२॥

**षडत्र षण्मातरश्च वाक्छूरो वाग्घरिस्तथा॥ २९॥**

अब व्यञ्जन सन्धिके उदाहरण दिये जाते हैं। षट्+अत्र=षडत्र[7] (यहाँ छ: हैं)। षट्+मातर:=षण्मातर:[8] (छ: माताएँ)। वाक्+शूर:=वाक्छूर:[9] (बोलनेमें बहादुर)। वाक्+हरि:=वाग्घरि:[10] (वाणीरूप भगवान्)॥ २९॥

---

१. नियम यह है कि 'ए', 'ओ', 'ऐ', 'औ'—इनसे परे कोई भी स्वर हो तो इनके स्थानमें क्रमश: 'अय्, अव्, आय्, और आव्' आदेश होते हैं।

२. नियम यह है कि कोई भी स्वर परे रहनेपर अवर्णपूर्वक पदान्त य, व का लोप हो जाता है। यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार पहले अय्, अव्आदि आदेश होते हैं; फिर अभी बताये हुए नियमके अनुसार य, व का लोप हो जाता है। यहाँ 'य'-लोप या 'व' लोप होनेपर 'त आद्या' 'विष्ण एह्यत्र' आदिमें पुन: दीर्घ एवं गुण आदि संधि नहीं हो सकती; क्योंकि इन संधियोंकी दृष्टिमें य-लोप, व-लोप असिद्ध हैं; इसलिये इनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। सारांश यह कि इन स्थलोंमें पुन: संधिका निषेध है।

३. नियम यह है कि पदान्त एकार और ओकारके बाद यदि ह्रस्व अकार हो तो वह पूर्ववर्ती स्वरमें मिल जाता है।

४. इस उदाहरणमें यण्सन्धि प्राप्त हुई थी; किंतु अभी बताये हुए नियमके अनुसार प्रकृतिभाव होनेसे सन्धि नहीं हुई।

५. पूर्वके दो उदाहरणोंमें यण्की और अन्तिम उदाहरणमें पूर्वरूपकी प्राप्ति थी; परंतु सन्धिका निषेध हो गया। नियम यह है कि ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचनका प्रकृतिभाव होता है; अत: वहाँ सन्धि नहीं होती है।

६. पहलेमें पूर्वरूप और दूसरेमें वृद्धि सन्धिकी प्राप्ति थी; परंतु प्रकृतिभाव हो गया। नियम यह है कि ओकारान्त निपात और एक स्वरवाले निपात जैसे हैं, वैसे ही रह जाते हैं।

७. इसमें षट् के 'ट्' की जगह ड् हुआ है। नियम यह है कि झ, भ, घ, ढ, ध, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स—इनमेंसे यदि कोई अक्षर पदान्तमें हो तो उसके स्थानमें ज, ब, ग, ड, द—इनमेंसे कोई अक्षर योग्यताके अनुसार होता है। योग्यताका अभिप्राय स्थानकी समानतासे है। जैसे 'ट' का स्थान मूर्धा है, अत: उसकी जगह मूर्धा स्थानका 'ड' अक्षर ही हुआ। 'ज', 'ब' आदिके स्थान भिन्न हैं, इसलिये वे नहीं हुए। ८. इसमें 'ट्' की जगह 'ण्' आदेश हुआ है। 'क' से लेकर 'म' तकके किसी भी अक्षरके बाद यदि अनुनासिक वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) हों तो पूर्ववर्ती अक्षर यदि पदान्तमें हो तो उसके स्थानमें अनुनासिक हो जाता है। जो अक्षर जिस वर्गका है, उसके स्थानमें उसी वर्गका पाँचवाँ अक्षर अनुनासिक होता है। इसीलिये उक्त उदाहरणमें 'ट्' की जगह उसी वर्गका पाँचवाँ अक्षर 'ण्' हुआ। ९. यहाँ 'श्' के स्थानमें 'छ्' हुआ है। ऊपर लिखे हुए 'झ' से 'प' तकके अक्षरोंके बाद यदि 'श्' हो तो उसकी जगह 'छ्' हो जाता है; किंतु उस 'श' के बाद कोई स्वर अथवा 'ह, य, व, र'—ये अक्षर होने चाहिये। यही इस सन्धिका नियम है। १०. उपर्युक्त 'झ' से 'प' तकके अक्षरोंके बाद यदि 'ह्' हो तो उस 'ह' के स्थानमें पूर्ववर्ती अक्षरके वर्गका चौथा वर्ण हो जाता है। इस नियमके अनुसार उक्त उदाहरणमें 'क्' के बाद 'ह' होनेसे 'ह्' के स्थानमें कवर्गका चौथा अक्षर 'घ्' हो गया है और 'क्' की जगह पूर्वोक्त नियमानुसार 'ग्' हो गया॥

**हरिश्शेते विभुश्चिन्त्यस्तच्छेषो यच्चरस्तथा।**
**प्रश्नस्त्वथ हरिष्षष्ठः कृष्णाष्टीकत इत्यपि॥ ३०॥**

हरिस्+शेते=हरिश्शेते[1] (श्रीहरि शयन करते हैं)। विभुस्+चिन्त्यः=विभुश्चिन्त्यः[2] (सर्वव्यापी परमेश्वर चिन्तन करने योग्य हैं)। तत्+शेषः=तच्छेषः[3] (उसका शेष)। यत्+चरः=यच्चरः[4] (जिसमें चलनेवाला)। प्रश्+नः=प्रश्नः[5] (सवाल)। हरिस्+षष्ठः=हरिष्षष्ठः[6] (श्रीहरि छठे हैं) तथा कृष्णः+टीकते=कृष्णष्टीकते[7] (श्रीकृष्ण जाते हैं) इत्यादि॥ ३०॥

**भवान्षष्ठश्च षट् सन्तः षट् ते तल्लेप एव च।**
**चक्रिंश्छिन्धि भवाञ्छौरिर्भवाञ्शौरिरिहेत्यपि॥ ३१॥**

भवान्+षष्ठः (आप छठे हैं)। इसमें पूर्व नियमके अनुसार प्राप्त होनेपर तवर्गका टवर्ग नहीं होता[8]। इसी तरह षट् सन्तः (छः सत्पुरुष) और षट् ते (वे छः हैं) इत्यादिमें भी ष्टुत्व नहीं हुआ है[9]। तत्+लेपः=तल्लेपः[10] (उसका लेप)। चक्रिन्+छिन्धि=चक्रिंश्छिन्धि[11] (चक्रधारी प्रभो! मेरा बन्धन काटिये)। भवान्+शौरिः=भवाञ्छौरिः, भवाञ्शौरिः इह (आप श्रीकृष्ण यहाँ हैं), (भवाञ्च्छौरिः, भवाञ्च्शौरिः) इस पदच्छेदमें ये चार रूप बनते हैं[12]॥ ३१॥

**सम्यङ्ङनन्तोऽङ्गच्छाया कृष्णं वन्दे मुनीश्वर।**
**तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामरश्शिवः॥ ३२॥**

सम्यङ्+अनन्तः=सम्यङ्ङनन्तः (अच्छे शेषनाग), सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः (अच्छे गणकोंके स्वामी)। सन्+अच्युतः=सन्नच्युतः,[13] (नित्य सत्स्वरूप श्रीहरि)। अङ्ग+छाया=अङ्गच्छाया[14] (शरीरकी परछाईं) कृष्णम्+वन्दे=कृष्णं वन्दे[15] (श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ)। तेजान्+सि=तेजांसि (तेज), मन्+स्यते=मंस्यते[16] (मानेंगे)। गं+गा=गङ्गा[17] (देव-नदी गङ्गा)।

मुनीश्वर नारद! यहाँतक व्यञ्जन-सन्धिका वर्णन हुआ। अब विसर्ग-सन्धि प्रारम्भ करते हैं। हरिः+छेत्ता=हरिश्छेत्ता (श्रीहरि बन्धन काटनेवाले हैं)। अमरः+शिवः=अमरश्शिवः[18] (भगवान् शिव अमर हैं)॥ ३२॥

---

१-२-३-४. शकार और चवर्गका योग होनेपर सकार और तवर्गके स्थानमें क्रमशः शकार और चवर्ग होते हैं। इस नियमके अनुसार पूर्व दो उदाहरणोंमें 'स्' की जगह 'श्' हुआ है और शेष दोमें तवर्गकी जगह चवर्ग हुआ है। शेषके शकारका छकार हुआ है। नियम 'वाक्छूरः में, बताया गया है। ५. शके बाद तवर्ग हो तो उसकी जगह चवर्ग नहीं होता; अतः 'प्रश्नः' में न ज्यों-का-त्यों रह गया है। ६- ७. षकार और टवर्गसे संयोग होनेपर सकार और तवर्गके स्थानमें क्रमशः षकार और टवर्ग होते हैं। इस नियमके अनुसार दोनों उदाहरणोंमें 'स' की जगह 'ष' हुआ है।

८. क्योंकि षकार परे रहनेपर तवर्गके टवर्ग होनेका निषेध है।

९. क्योंकि पदान्त टवर्गसे परे नाम्-भिन्न सकार और तवर्गके स्थानमें षकार और टवर्ग नहीं होते। ऐसा निषेध है।

१०. यहाँ तकारके स्थानमें लकार आदेश हुआ। नियम यह है कि लकार परे रहनेपर तवर्गके स्थानमें 'ल्' हो जाता है।

११. इसमें 'न्' के स्थानमें 'र्', 'र' का विसर्ग एवं उसका दन्त्य 'स्' होकर फिर छकारके योगमें उसका तालव्य 'श्' हो गया तथा उसके पूर्व अनुस्वार एवं अनुनासिक हुआ। नियम यह है कि छ, ठ, थ, च, ट, त—ये अक्षर परे हों तो नान्त पदके नकारका 'र्' हो, और उसके पूर्व स्वरका विकल्पसे अनुनासिक अथवा 'र्' से परे अनुस्वारका आगम हो।

१२. नियम यह है कि शकार परे रहनेपर नान्त पदके आगे 'त्' बढ़ जाता है। शेष परिवर्तन पूर्वोक्त नियमके अनुसार होते हैं।

१३. इन उदाहरणोंमें ङ्, ण्, न् एकसे दो हो गये हैं। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे यदि 'ङ्' 'ण्' या 'न्' हो और उसके बाद भी कोई स्वर हो तो वे एकसे दो हो जाते हैं।

१४. यहाँ छ के पहले आधा च् बढ़ गया है। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे छ होनेपर उसके पहले आधा च् बढ़ जाता है। १५. यहाँ म् के स्थानमें अनुस्वार हो गया है। कोई भी हल् अक्षर परे हो तो पदान्तमें स्थित म् का अनुस्वार हो जाता है। १६. यहाँ अपदान्त न् का अनुस्वार हुआ है। नियम यह है कि झल् परे रहनेपर अपदान्त न् म् का अनुस्वार होता है। झल्में इतने अक्षर आते हैं—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह। १७. यहाँ अपदान्त अनुस्वारका परसवर्ण हुआ है। र, श, ष, स, ह—इनको छोड़कर कोई भी हल् अक्षर परे रहनेपर अपदान्त अनुस्वारका नित्य परसवर्ण (परवर्ती अक्षरके वर्गका पञ्चम वर्ण) होता है—यह नियम है। १८. इन दोनों उदाहरणोंमें विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होकर श्चुत्व सन्धिके नियमसे तालव्य 'श्' हो गया। नियम यह है कि विसर्गके स्थानमें स् हो जाता है खर् परे रहनेपर। उपर्युक्त अक्षरोंमें 'ख' से 'स' तकके अक्षरोंको खर कहते हैं।

**राम:काम्य: कृपःपूज्यो हरि: पूज्योऽर्च्य एव हि।**
**रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता दृष्टा इमा यत: ॥ ३३ ॥**

राम:+काम्य:=रामःकाम्य: (श्रीराम कमनीय हैं)। कृप:+पूज्य:=कृपःपूज्य:[1] (कृपाचार्य पूज्य हैं)। पूज्यस्+अर्च्य:=पूज्योऽर्च्य:[2] (पूजनीय और अर्चनीय)। रामस्+दृष्ट:=रामो दृष्ट:[3] (राम देखे गये हैं)। अबलास्+अत्र=अबला अत्र (यहाँ अबलाएँ हैं)। सुप्तास्+दृष्टा:=सुप्ता दृष्टा: (सोयी देखी गयीं)। इमास्+अत:=इमायत:[4] (ये स्त्रियाँ हैं, अत:) ॥ ३३ ॥

**विष्णुर्नम्यो रविरयं गी:फलं प्रातरच्युत:।**
**भक्तैर्वन्द्योऽप्यन्तरात्मा भो भो एष हरिस्तथा।**
**एष शार्ङ्गी सैष राम: संहितैवं प्रकीर्तिता ॥३४ ॥**

विष्णु:+नम्य:=विष्णुर्नम्य: (श्रीविष्णु प्रणामके योग्य हैं)। रवि:+अयम्=रविरयम् (ये सूर्य हैं) गी:+फलम्=गी:फलम् (वाणीका फल)। प्रातर्+अच्युत:=प्रातरच्युत: (प्रात:काल श्रीहरि)। भक्तैस्+वन्द्य:=भक्तैर्वन्द्य: (भक्तजनोंके द्वारा वन्दनीय हैं)। अन्तर्+आत्मा=अन्तरात्मा (जीवात्मा या अन्तर्यामी परमात्मा)। भोस्+भो:=भो भो: (हे हे)—ये सब उदाहरण पूर्वोक्त नियमोंसे ही बन जाते हैं। एषस्+हरि: =एष हरि: (ये श्रीहरि हैं)। एषस्+शार्ङ्गी=एष शार्ङ्गी[5] (ये शार्ङ्गधारी हरि हैं)। सस्+एषस्+राम: =सैष राम:[6] (वही ये श्रीराम हैं)। इस प्रकार संहिता (सन्धि)-का प्रकरण बताया गया है ॥ ३४ ॥

(अब सुबन्तका प्रकरण आरम्भ करते हुए पहले स्वरान्त शब्दोंका शुद्ध रूप देते हैं। उसमें भी एक श्लोकद्वारा मङ्गलाचरणके लिये श्रीरामका स्मरण करते हुए 'राम' शब्दके प्राय: सभी विभक्तियोंके एक-एक रूपका उल्लेख करते हैं—)

**रामेणाभिहितं करोमि सततं[7] रामं भजे सादरं**
**रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय तुभ्यं नम:।**
**रामान्मुक्तिरभीप्सिता मम सदा रामस्य दासोऽस्म्यहं**
**रामे रज्यतु मे मन: सुविशदं हे राम तुभ्यं नम: ॥ ३५ ॥**

'मैं श्रीरामके द्वारा दिये हुए आदेशका सदा पालन करता हूँ। श्रीरामका आदरपूर्वक भजन करता हूँ। रामने (मेरा) सारा पाप हर लिया। भगवान् श्रीराम! तुम्हें नमस्कार है। मुझे श्रीरामसे मोक्षकी प्राप्ति अभीष्ट है। मैं सदाके लिये श्रीरामका दास हूँ। मेरा निर्मल मन श्रीराममें अनुरक्त हो। हे श्रीराम! तुम्हें नमस्कार है'[8] ॥ ३५ ॥

१. यहाँ विसर्गके स्थानमें ः ऐसा चिह्न हो गया है। विसर्गके बाद क, ख, या प, फ होनेपर विसर्गकी यह अवस्था होती है। २. यहाँ 'स्' के स्थानमें 'रु' होकर 'रु' के स्थानमें 'उ' हुआ है। फिर गुणसन्धिके नियमसे ओकार होनेपर 'अर्च्य:' के अकारका पूर्वरूप हो गया है। यहाँ नया नियम यह जानना है कि पदान्त 'स्' के स्थानमें 'रु' होता है और अप्लुत अकारसे परे होनेपर उस 'रु' का 'उ' हो जाता है। ऐसा तभी होता है, जब उस 'रु' के बाद भी कोई अप्लुत अकार या 'हश्' हो। ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—इन अक्षरोंके समुदायको 'हश्' कहते हैं। ३. यहाँ अभी बताये गये नियमके अनुसार 'स' को 'रु' करके फिर उसका उत्व हुआ। तत्पश्चात् गुण होकर 'रामो' बना। ४. इन सब उदाहरणोंमें 'स्' के स्थानमें पूर्ववत् 'रु' होता है; फिर 'रु' के स्थानमें 'य्' होकर पूर्व दो उदाहरणोंमें उसका लोप हो जाता है। और अन्तिम उदाहरणमें 'य्' 'अ' में मिल जाता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य नियम यह है—भो, भगो, अघो तथा अवर्णपूर्वक 'रु' के स्थानमें 'य्' होता है अश् परे रहनेपर। और हल् परे रहनेपर उस 'य्'का लोप हो जाता है। सम्पूर्ण स्वरवर्ण तथा ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—ये सभी अक्षर 'अश्' के अन्तर्गत हैं। ५. एतत् और तत् शब्दोंसे परे 'सु' विभक्तिके 'स' कारका लोप हो जाता है हल् परे रहनेपर। इस नियमके अनुसार यहाँ 'स्' का लोप हो गया है। ६. यहाँ 'एष राम:' की सिद्धि तो पूर्ववत् हो जाती है; किंतु 'सस्' के 'सु' का लोप करनेके लिये एक विशेष नियम है—'सस्' के 'सु' का लोप होता है अच् परे रहनेपर, यदि उसके लोप होनेके बाद ही श्लोकके पादकी पूर्ति होती हो तब। जैसे—सैष राम: समायाति (वही ये श्रीराम आते हैं)। ७. कहीं-कहीं इस अंशका पाठ इस प्रकार मिलता है—'रामो राजमणि: सदा विजयते।' प्रथमा विभक्तिके रूपकी दृष्टिसे यही पाठ ठीक जान पड़ता है। ८. 'राम' शब्दका रूप सब विभक्तियोंमें इस प्रकार समझना चाहिये—राम: रामौ रामा:। रामम् रामौ रामान्। रामेण रामाभ्याम् रामै:। रामाय रामाभ्याम् रामेभ्य:। रामात्, रामाद् रामाभ्याम् रामेभ्य:। रामस्य रामयो: रामाणाम्। रामे रामयो: रामेषु। हे राम हे रामौ हे रामा:।

**सर्व इत्यादिका गोपाः सखा चैव पतिर्हरिः ॥ ३६ ॥**

सर्व आदि शब्द सर्वनाम[1] माने जाते हैं।[2] 'गोपाः' का अर्थ है गौओंका पालन करनेवाला[3]। सखाका अर्थ है मित्र। यह 'सखि' शब्दका रूप है[4]। पतिका अर्थ है स्वामी[5]। हरि शब्दका अर्थ है भगवान् विष्णु[6] ॥ ३६ ॥

**सुश्रीर्भानुः स्वयम्भूश्च कर्ता रा गौस्तु नौरिति।**
**अनड्वानगोधुग्लिद् च द्वौ त्रयश्चत्वार एव च ॥ ३७ ॥**

जो उत्तम श्रीसे सम्पन्न हो, उसे सुश्री कहते हैं[7]। भानुका अर्थ है सूर्य और किरण[8]। स्वयम्भूका अर्थ है स्वयं प्रकट होनेवाला। इसका प्रयोग प्रायः ब्रह्माजीके लिये होता है[9]। काम करनेवालेको कर्ता कहते हैं। यह 'कर्तृ' शब्दका रूप है[10]। 'रै' शब्द धनका वाचक है[11]। पुँल्लिङ्गमें 'गो' शब्दका अर्थ बैल होता है और स्त्रीलिङ्गमें गाय[12]। 'नौ' शब्द नौकाका वाचक है[13]। यहाँतक स्वरान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं।

अब हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये जा रहे हैं। गाड़ी खींचनेवाले बैलको अनड्वान् कहते हैं। यह अनडुह्शब्दका रूप है[14]। गाय दुहनेवालेको गोधुक् कहते हैं। मूल शब्द गोदुह् है[15]। लिह् शब्दका अर्थ है चाटनेवाला[16]। 'द्वि' शब्द संख्या दोका, 'त्रि' शब्द तीनका और 'चतुर्' शब्द चारका वाचक है। इनमेंसे पहला केवल द्विवचनमें और शेष दोनों केवल बहुवचनमें प्रयुक्त होते हैं[17] ॥ ३७ ॥

---

१. इसी प्रकरणमें आगे (श्लोक ४७-४८ में) सर्वनाम शब्द गिनाये गये हैं। २. इनमें सर्व शब्दका रूप इस प्रकार है—सर्वः सर्वौ सर्वे। सर्वम् सर्वौ सर्वान्। सर्वेण सर्वाभ्याम् सर्वैः। सर्वस्मै सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः। सर्वस्मात् सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः। सर्वस्य सर्वयोः सर्वेषाम्। सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु। अन्य सर्वनामोंके रूप भी प्रायः ऐसे ही होते हैं।

३. इसके रूप इस प्रकार हैं—गोपाः गोपौ गोपाः। गोपाम् गोपौ गोपः। गोपा गोपाभ्याम् गोपाभिः। गोपे गोपाभ्याम् गोपाभ्यः। गोपः गोपाभ्याम् गोपाभ्यः। गोपः गोपोः गोपाम्। गोपि गोपोः गोपासु। हे गोपाः हे गोपौ हे गोपाः। ४. सखि शब्दके पूरे रूप इस प्रकार हैं—सखा सखायौ सखायः। सखायम् सखायौ सखीन्। सख्या सखिभ्याम् सखिभिः। सख्ये सखिभ्याम् सखिभ्यः। सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः। सख्युः सख्योः सखीनाम्। सख्यौ सख्योः सखिषु। हे सखे हे सखायौ हे सखायः। ५. इसके दो विभक्तियोंमें रूप इस प्रकार होते हैं—पतिः पती पतयः। पतिम् पती पतीन्। शेष विभक्तियोंमें सखि शब्दके समान रूप होते हैं। सम्बोधनमें हे पते हे पती हे पतयः—इस प्रकार रूप जानने चाहिये। ६.इसके रूप इस प्रकार हैं—हरिः हरी हरयः। हरिम् हरी हरीन्। हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः। हरये हरिभ्याम् हरिभ्यः। हरेः हरिभ्याम् हरिभ्यः। हरेः हर्योः हरीणाम्। हरौ हर्योः हरिषु। हे हरे हे हरी हे हरयः। ७. इसके रूप इस प्रकार हैं—सुश्रीः सुश्रियौ सुश्रियः। सुश्रियम् सुश्रियौ सुश्रियः। सुश्रिया सुश्रीभ्याम् सुश्रीभिः। सुश्रिये सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्यः। सुश्रियः सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्यः। सुश्रियः सुश्रियोः सुश्रियाम्। सुश्रियि सुश्रियोः सुश्रीषु। हे सुश्रीः हे सुश्रियौ हे सुश्रियः। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—भानुः भानू भानवः। भानुम् भानू भानून्। भानुना भानुभ्याम् ३ भानुभिः। भानवे भानुभ्यः २। भानोः २ भान्वोः २ भानूनाम्। भानौ भानुषु। हे भानो हे भानू हे भानवः। ९. स्वयम्भू शब्दके रूप इस प्रकार हैं—स्वयम्भूः स्वयम्भुवौ २ स्वयम्भुवः २। स्वयम्भुवम्। स्वयम्भुवा स्वयम्भूभ्याम् ३। स्वयम्भूभिः। स्वयम्भुवे स्वयम्भूभ्यः २। स्वयम्भुवः २। स्वयम्भुवोः २। स्वयम्भुवाम्। स्वयम्भुवि स्वयम्भूषु। १०. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—कर्ता कर्तारौ २ कर्तारः। कर्तारम् कर्तॄन्। कर्त्रा कर्तृभ्याम् ३ कर्तृभिः। कर्त्रे कर्तृभ्यः २। कर्तुः २। कर्त्रोः २ कर्तॄणाम्। कर्तरि कर्तृषु। हे कर्तः हे कर्तारौ हे कर्तारः। ११. उसके रूप इस प्रकार हैं—राः रायौ २ रायः २। रायम्। राया राभ्याम् ३ राभिः। राये राभ्यः २। रायः २। रायोः १२. रायाम्। रायि रासु। सम्बोधने प्रथमावत्। २. दोनों लिङ्गोंमें इसके एक-से ही रूप होते हैं, जो इस प्रकार हैं—गौः गावौ २ गावः। गाम् गाः। गवा गोभ्याम् ३ गोभिः। गवे गोभ्यः २। गोः २। गवोः २ गवाम्। गवि गोषु। हे गौः हे गावौ हे गावः। १३. इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है, तथापि यहाँ पुँल्लिङ्गके प्रकरणमें इसे लिखा गया है, प्रकरणके अनुसार 'सुनौ' शब्द यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इसके रूप इस प्रकार हैं—नौः नावौ २ नावः २। नावम्। नावा नौभ्याम् ३ नौभिः। नावे नौभ्यः २। नावः २। नावोः २ नावाम्। नावि नौषु। १४. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अनड्वान् अनड्वाहौ २ अनड्वाहः। अनड्वाहम् अनडुहः। अनडुहा अनडुद्भ्याम् ३ अनडुद्भिः। अनडुहे अनडुद्भ्यः २। अनडुहः २। अनडुहोः २ अनडुहाम्। अनडुहि अनडुत्सु। सम्बोधनके एकवचनमें हे अनड्वन्। १५. इसके रूप इस प्रकार होते हैं—गोधुक् गोधुग् गोदुहौ २ गोदुहः २। गोदुहम्। गोदुहा गोधुग्भ्याम् गोधुग्भिः। गोदुहे गोधुग्भ्यः २। गोदुहः २। गोदुहोः २ गोदुहाम्। गोदुहि गोधुक्षु। १६. इसके रूप इस प्रकार हैं—लिट् लिड् लिहौ लिहः २। लिहम्। लिहा लिड्भ्याम् ३ लिड्भिः। लिहे लिड्भ्यः २। लिहः २। लिहोः २ लिहाम्। लिहि लिट्सु लिट्त्सु। १७. रूप क्रमशः इस प्रकार हैं—द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २। त्रयाणम्। त्रिषु चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः २। चतुर्णाम्। चतुर्षु।

**राजा पन्थास्तथा दण्डी ब्रह्महा पञ्च चाष्ट च।**
**अष्टौ अयं मुने सम्राट् सुराड्बिभ्रद्वपुष्मत: ॥३८॥**

राजा राजन्-शब्दका रूप है[1]। पन्था: कहते हैं मार्गको। यह पथिन् शब्दका रूप है[2]। जो दण्ड धारण करे, उसे दण्डी कहते हैं[3]। ब्रह्महन् शब्द ब्राह्मणघातीके अर्थमें प्रयुक्त होता है[4]। पञ्चन्-शब्द पाँचका और अष्टन् शब्द आठका वाचक है। ये दोनों बहुवचनान्त होते हैं[5]। अयम्‌का अर्थ है यह; यह 'इदम्' शब्दका रूप है[6]। 'सम्राट्' कहते हैं बादशाह या चक्रवर्ती राजाको[7]। सुराज् शब्दके रूप—सुराट् सुराजौ सुराज: इत्यादि हैं। शेष रूप सम्राज् शब्दकी भाँति जानने चाहिये। इसका अर्थ है—अच्छा राजा। बिभ्रत्‌का अर्थ है धारण-पोषण करनेवाला[8]। वपुष्मत् (वपुष्मान्) का अर्थ है शरीरधारी[9] ॥३८॥

**प्रत्यङ् पुमान् महान् धीमान् विद्वान्षट् पिपठीश्च दो:।**
**उशनासाविमे प्रोक्ता: पुंस्यज्झल्विरामका: ॥३९॥**

प्रत्यञ्च-शब्दका अर्थ है प्रतिकूल या पीछे जानेवाला 'भीतरकी ओर' भी अर्थ है[10]। पुमान्‌का अर्थ है पुरुष, जो पुंस्-शब्दका रूप है[11]। महान् कहते हैं श्रेष्ठको[12]। धीमान्‌का अर्थ है बुद्धिमान्। (धीमत्-शब्दके रूप वपुष्मत् शब्दकी भाँति जानने चाहिये।) विद्वान्‌का अर्थ है पण्डित[13]। षष् शब्द छ:का वाचक और बहुवचनान्त है। (इसके रूप इस प्रकार हैं—षट् षड् २। षड्भि:। षड्भ्य: २। षण्णाम्। षट्सु षट्त्सु।) जो पढ़नेकी इच्छा करे, उसे 'पिपठी:[14]' कहते हैं। दो:का अर्थ है भुजा[15]। उशनाका अर्थ है शुक्राचार्य[16]। अदस् शब्दका अर्थ है[17] 'यह' या 'वह'। ये अजन्त (स्वरान्त) और हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्द कहे गये ॥३९॥

**राधा सर्वा गतिर्गोपी स्त्री श्रीर्धेनुर्वधू: स्वसा।**
**गौर्नौरुपानद्द्यौर्गोवत् ककुप्संवित्तु वा क्वचित् ॥४०॥**

अब स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका दिग्दर्शन कराते हैं। राधाका अर्थ है भगवान् श्रीकृष्णकी आह्लादिनी

१. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—राजा राजानौ २ राजान:। राजानम् राज्ञ:। राज्ञा राजभ्याम् ३ राजभि:। राज्ञे राजभ्य: २। राज्ञ: २। राज्ञो: २ राज्ञाम्। राज्ञि राजनि राजसु। हे राजन् हे राजानौ हे राजान:। २. शेष रूप इस प्रकार समझने चाहिये—पन्थानौ २ पन्थान: पन्थानम् पथ:। पथा पथिभ्याम् ३ पथिभि:। पथे पथिभ्य: २। पथ: २। पथो: २ पथाम्। पथि पथिषु। ३. इसका मूल शब्द दण्डिन् है, जिसके रूप इस प्रकार हैं—दण्डी दण्डिनौ २ दण्डिन: २। दण्डिनम्। दण्डिना दण्डिभ्याम् ३ दण्डिभि:। दण्डिने दण्डिभ्य: २। दण्डिन: २। दण्डिनो: २ दण्डिनाम्। दण्डिनि दण्डिषु। हे दण्डिन्। ४. इसके रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्महा ब्रह्महणौ २ ब्रह्महण:। ब्रह्महणम् ब्रह्मघ्न:। ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभि:। ब्रह्मघ्ने ब्रह्मभ्य: २। ब्रह्मघ्न: २। ब्रह्मघ्नो: २ ब्रह्मघ्नाम्। ब्रह्मघ्नि ब्रह्महसु। ५. इनके रूप इस प्रकार हैं—पञ्च २। पञ्चभि:। पञ्चभ्य: २। पञ्चानाम्। पञ्चसु। अष्टौ २ अष्ट २। अष्टाभि: अष्टभि:। अष्टाभ्य: २ अष्टभ्य: २। अष्टानाम्। अष्टासु अष्टसु। ६. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अयम् इमौ इमे। इमम् इमौ इमान्। अनेन आभ्याम् ३ एभि:। अस्मै एभ्य: अस्मात्। अस्य अनयो: २ एषाम्। अस्मिन् एषु। ७. सम्राज् शब्दके रूप इस प्रकार हैं—सम्राट् सम्राड् सम्राजौ २ सम्राज: २। सम्राजम्। सम्राजा सम्राड्भ्याम् ३ सम्राड्भि:। सम्राजे सम्राड्भ्य: २। सम्राज: २। सम्राजो: २ सम्राजाम्। सम्राजि सम्राट्सु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—बिभ्रत् बिभ्रतौ २ बिभ्रत: २। बिभ्रतम्। बिभ्रता बिभ्रद्भ्याम् ३ बिभ्रद्भि:। बिभ्रते बिभ्रद्भ्य: २। बिभ्रत: २। बिभ्रतो: २ बिभ्रताम्। बिभ्रति बिभ्रत्सु। ९. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—वपुष्मान् वपुष्मन्तौ २ वपुष्मन्त: वपुष्मन्तम् वपुष्मत:। वपुष्मता वपुष्मद्भ्याम् ३ वपुष्मद्भि:। वपुष्मते वपुष्मद्भ्य: २। वपुष्मत: २। वपुष्मतो: २ वपुष्मताम्। वपुष्मति वपुष्मत्सु। हे वपुष्मन्। १०. इसके रूप इस प्रकार हैं—प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ २ प्रत्यञ्च:। प्रत्यञ्चम् प्रतीच:। प्रतीचा प्रत्यग्भ्याम् ३ प्रत्यग्भि:। प्रतीचे प्रत्यग्भ्य: २। प्रतीच: २। प्रतीचो: २ प्रतीचाम्। प्रतीचि प्रत्यक्षु। ११. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—पुमान् पुमांसौ २ पुमांस:। पुमांसम् पुंस:। पुंसा पुम्भ्याम् ३ पुम्भि:। पुंसे पुम्भ्य: २। पुंस: २। पुंसो: २ पुंसाम्। पुंसि पुंसु। हे पुमन्! १२. महत्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—महान् महान्तौ २ महान्त:। महान्तम् महत:। महता महद्भ्याम् ३ महद्भि: महते महद्भ्य: २। महत: २। महतो: २ महताम्। महति महत्सु। १३. विद्वस्-शब्दके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—विद्वान् विद्वांसौर विद्वांस:। विद्वांसम् विदुष:। विदुषा विद्वद्भ्याम् ३ विद्वद्भि:। विदुषे विद्वद्भ्य: २। विदुष: २। विदुषो: २ विदुषाम्। विदुषि विद्वत्सु। हे विद्वन्। १४. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—पिपठी: पिपठिषौ २ पिपठिष:। पिपठिषम् पिपठिष:। पिपठिषा पिपठीर्भ्याम् ३ पिपठीर्भि:। पिपठिषे पिपठीर्भ्य: २। पिपठिष: २। पिपठिषो: २ पिपठिषाम्। पिपठिषि पिपठीष्षु पिपठी:षु॥ १५. दोष् शब्दके रूप इस प्रकार हैं—दो: दोषौ २ दोष:। दोषम् दोष्ण: दोष:। दोष्णा दोषा दोर्भ्याम् ३ दोर्भि:। दोष्णे दोषे दोर्भ्य: २। दोष्ण: २ दोष: २। दोष्णो: २ दोषो: २ दोष्णाम् दोषाम्। दोष्णि दोषि दोष्षु दो:सु। १६. उशनस्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—उशना उशनसौ २ उशनस: २। उशनसम्। उशनसा उशनोभ्याम् ३ उशनोभि:। उशनसे उशनोभ्य: २। उशनस: २। उशनसो: २ उशनसाम्। उशनसि उशनस्सु उशन:सु। १७. इसके रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमी। अमुम् अमू अमून्। अमुना अमूभ्याम् अमीभि:। अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्य:। अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्य। अमुष्य अमुयो: अमीषाम्। अमुष्मिन् अमुयो: अमीषु।

शक्ति, जो उनकी भी आराध्या होनेसे 'राधा' कहलाती हैं[1]। सर्वाका अर्थ है सब[2] (स्त्री)। 'गतिः'का अर्थ है—गमन, मोक्ष, प्राप्ति या ज्ञान[3]। 'गोपी' शब्द प्रेम-भक्तिकी आचार्यरूपा गोपियोंका वाचक[4] है। स्त्रीका अर्थ है नारी[5]। 'श्री' शब्द लक्ष्मीका वाचक है[6]। धेनुका अर्थ दूध देनेवाली गाय है[7]। वधूका अर्थ है जाया अथवा पुत्रवधू[8]। स्वसा[9] कहते हैं बहिनको। गो-शब्दका रूप स्त्रीलिङ्गमें भी पुँल्लिङ्गके समान होता है। नौ-शब्दका रूप पहले दिया जा चुका है। उपानह्[10] शब्द जूतेका वाचक है। द्यौ[11] स्वर्गका वाचक है। ककुभ्[12] शब्द दिशाका वाचक है। संविद्[13]-शब्द बुद्धि एवं ज्ञानका वाचक है॥ ४०॥

**रुग्विडुद्धाः स्त्रियो तपः कुलं सोमपमक्षि च।**
**ग्रामण्यम्बु खलप्वेवं कर्तृ चातिरि वातिनु॥ ४१॥**

रुक्[14] नाम है रोगका। विट्[15]-शब्द वैश्यका वाचक है। उद्धाः[16]का अर्थ है उत्तम प्रकाश या प्रकाशित होनेवाली। ये शब्द स्त्री-लिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं।

अब नपुंसकलिङ्ग शब्दोंका परिचय देते हैं। तपस्[17]-शब्द तपस्याका वाचक है। कुल[18]-शब्द वंश या समुदायका वाचक है। सोमप[19]-शब्दका अर्थ है सोमपान करनेवाला। 'अक्षि'का[20] अर्थ है आँख। गाँवके नेताको ग्रामणी[21] कहते हैं। अम्बु[22]-शब्द जलका वाचक है। खलपू[23]का अर्थ है खलिहान या भूमि साफ करनेवाला।

---

१. इसके रूप यों हैं—राधा राधे राधाः। राधाम् राधे राधाः। राधया राधाभ्याम् राधाभिः। राधायै राधाभ्याम् राधाभ्यः। राधायाः राधाभ्याम् राधाभ्यः। राधायाः राधयोः राधानाम्। राधायाम् राधयोः राधासु। हे राधे हे राधे हे राधाः। २. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं। चतुर्थीके एकवचनमें—सर्वस्यै। पञ्चमी और षष्ठीके एकवचनमें—सर्वस्याः। षष्ठीके बहुवचनमें—सर्वासाम्। सप्तमीके एकवचनमें—सर्वस्याम्। शेष सभी रूप 'राधा' शब्दकी ही भाँति होंगे। ३. गति शब्दके रूप यों समझने चाहिये—गतिः गती गतयः। गतिम् गती गतीः। गत्या गतिभ्याम् ३ गतिभिः। गत्यै गतये गतिभ्यः २। गत्याः २ गतेः २। गत्योः २ गतीनाम्। गत्याम् गतौ गतिषु। हे गते हे गती हे गतयः। ४. गोपी-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—गोपी गोप्यौ २ गोप्यः। गोपीम् गोपीः। गोप्या गोपीभ्याम् ३ गोपीभिः। गोप्यै गोपीभ्यः २। गोप्याः २ गोप्योः २ गोपीनाम्। गोप्याम् गोपीषु। हे गोपि हे गोप्यौ हे गोप्यः। ५. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—स्त्री स्त्रियौ २ स्त्रियः। स्त्रियम् स्त्रीम् स्त्रियः स्त्रीः। स्त्रिया स्त्रीभ्याम् ३। स्त्रीभिः। स्त्रियै स्त्रीभ्यः २। स्त्रियाः २। स्त्रियोः २ स्त्रीणाम्। स्त्रियाम् स्त्रीषु। हे स्त्रि हे स्त्रियौ हे स्त्रियः। ६. उसके रूप इस प्रकार हैं—श्रीः श्रियौ २ श्रियः २। श्रियम्। श्रिया श्रीभ्याम् ३ श्रीभिः। श्रियै श्रिये श्रीभ्यः २। श्रियाः २। श्रियः २। श्रियोः २ श्रीणाम् श्रियाम्। श्रियाम् श्रियि श्रीषु। हे श्रीः हे श्रियौ हे श्रियः। ७. इसके रूप गति शब्दकी तरह होंगे। यथा—धेनुः धेनू धेनवः। धेन्वै धेनवे इत्यादि। ८. इस शब्दके रूप इस प्रकार है—वधूः वध्वौ वध्वः। शेष रूप गोपी-शब्दकी तरह समझने चाहिये। वहाँ 'ई' के स्थानमें 'य्' होता है, यहाँ 'ऊ' के स्थानमें 'व्' होगा। इतना ही अन्तर है। ९. इसके रूप कर्तृ-शब्दके समान होते हैं। केवल द्वितीयाके बहुवचनमें 'स्वसृः' ऐसा रूप होता है—इतना ही अन्तर है। १०. उसके रूप इस प्रकार हैं—उपानत् उपानद् उपानहौ २ उपानहः २। उपानहम्। उपानहा उपानद्भ्याम् ३ उपानद्भिः। उपानहे उपानद्भ्यः २। उपानहः २। उपानहोः २ उपानहाम्। उपानहि उपानत्सु। ११. दिव्-शब्दके रूप गो-शब्दके समान समझने चाहिये। १२. इसके रूप—ककुप् ककुब् ककुभौ २ ककुभः २। ककुभम्। ककुभा ककुब्भ्याम् इत्यादि है। सप्तमीके बहुवचनमें ककुप्सु रूप होता है। १३. इसके रूप—संवित् संविद् संविदौ संविदः इत्यादि हैं। १४. इसके रूप हैं—रुक् रुग् रुजौ २ रुजः २। रुजम्। रुजा रुग्भ्याम् इत्यादि। १५. इसके रूप हैं—विट् विड् विशौ विशः इत्यादि। १६. इसके रूप हैं—उद्धाः उद्धासौ उद्धासः इत्यादि। १७. नपुंसकलिङ्गमें प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप एकसे ही होते हैं और तृतीयासे लेकर सप्तमीतकके रूप पुँल्लिङ्गके समान होते हैं। तपस्-शब्दके रूप इस प्रकार समझने चाहिये—तपः तपसी तपांसि। ये तीनों रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तिमें प्रयुक्त होते हैं। शेष रूप उशनस्के समान होंगे। १८. रूप ये हैं—कुलम् कुले कुलानि। शेष रामवत्। १९. प्रथमा-द्वितीया विभक्तियोंमें इसके रूप हैं—सोमपम् सोमपे सोमपानि। शेष रामवत्। २०. इसके रूप प्रथम दो विभक्तियोंमें हैं—अक्षि अक्षिणी अक्षीणि। शेष पाँच विभक्तियोंके एकवचनमें क्रमशः इस प्रकार रूप हैं—अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः। अक्ष्णः। अक्ष्णि अक्षणि। शेष रूप हरि-शब्दके समान जानने चाहिये। २१. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप ग्रामणीः ग्रामण्यौ ग्रामण्यः इत्यादि होते हैं। यदि कोई कुल (खानदान) गाँवका अगुआ हो तो यह शब्द नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होता है। उस दशामें इसके रूप इस प्रकार होंगे—ग्रामणि ग्रामणिनी ग्रामणीनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें 'ग्रामण्या ग्रामणिना। ग्रामण्ये ग्रामणिने। ग्रामण्यः २ ग्रामणिनः २। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि—ये रूप हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् होते हैं। २२. इसके रूप—अम्बु अम्बुनी अम्बूनि इत्यादि हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें क्रमशः अम्बुना। अम्बुने। अम्बुनः २। अम्बुनि—ये रूप होते हैं। शेष रूप भानुवत् हैं। २३. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप 'खलपूः खलप्वौ खलप्वः' इत्यादि होते हैं। जब यह किसी साधन या औजारका वाचक होता है तो नपुंसकमें प्रयुक्त होता है। उसमें इसके रूप इस प्रकार हैं—खलपु खलपुनी खलपूनि। इसमें भी तृतीयासे सप्तमीतक एकवचनमें 'खलपुना, खलपुने, खलपुनः २, खलपुनि'—ये रूप अधिक होते हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं।

कर्तृ[1]-शब्द कर्ताका वाचक है। जो धनकी सीमाको लाँघ गया हो, उस कुलको अतिरि[2] कहते हैं। जो पानी नावकी शक्तिसे बाहर हो, जिसे नावसे भी पार करना असम्भव हो, उसे 'अतिनु[3]' कहते हैं॥ ४१॥

**स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च।**
**एतद्ब्रह्माहश्च दण्डी असृक्किंश्चित्त्यदादि च॥ ४२॥**

जिस कुल या गृहमें गाड़ी खींचनेवाले अच्छे बैल हों, उसको 'स्वनडुत्[4]' कहते हैं। जिस दिन आकाश साफ हो, उस दिनको विमलद्यु[5] कहते हैं। वार्[6]-शब्द जलका वाचक है। चतुर् शब्दका रूप नपुंसकलिङ्गमें केवल प्रथमा और द्वितीयामें 'चत्वारि' होता है, शेष पुँल्लिङ्गवत्। इदम्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—इदम् इमे इमानि, शेष पुँल्लिङ्गवत्। एतत्-शब्दके रूप पुँल्लिगमें—एषः एतौ एते इत्यादि सर्वशब्दके समान होते हैं। नपुंसकमें केवल प्रथम दो विभक्तियोंमें ये रूप हैं—एतत् एते एतानि। ब्रह्मन्-शब्दके रूप नपुंसकमें 'ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि' हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्[7]। अहन्[8]-शब्द दिनका वाचक है। दण्डिन्-शब्दके नपुंसकमें 'दण्डि दण्डिनी दण्डीनि' ये रूप हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। असृक्[9]-शब्द रक्तका वाचक है। किम्-शब्दके रूप पुँल्लिङ्गमें 'कः कौ के' इत्यादि सर्ववत् होते हैं। नपुंसकमें केवल प्रथम दो विभक्तिमें 'किम् के कानि'—ये रूप होते हैं। चित्-शब्दके रूप 'चित् चिती चिन्ति, चिता चिद्भ्याम् चिद्भिः' इत्यादि होते हैं। त्यद् आदि[10] शब्दोंके रूप पुँल्लिङ्गमें 'स्यः त्यौ ते' इत्यादि सर्ववत् होते हैं। नपुंसकमें 'त्यत् त्ये त्यानि'—ये रूप होते हैं॥ ४२॥

**एतद्बेभिद्गवाग्गवाङ्गोअग् गोङ्गोग् गोङ्।**
**तिर्यग्यकृच्छकृच्चैव ददद्भवत्पचत्तुदत्॥ ४३॥**

(इदम् और) एतत्-शब्दके रूप अन्वादेशमें[11] द्वितीया, टा और ओस् विभक्तियोंमें कुछ भिन्न होते हैं। पुँल्लिङ्गमें 'एनम् एनौ एनान्, एनेन एनयोः।' नपुंसकमें 'एनत् एने एनानि' ये रूप हैं। अन्वादेश न होनेपर पूर्वोक्त रूप होते हैं। बेभित्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—'बेभित् बेभिद् बेभिदी बेभिदि (यहाँ नुम् नहीं होता)। बेभिदा बेभिद्भ्याम् बेभिद्भिः' इत्यादि। गवाक्-शब्दके रूप गति और पूजा-अर्थके भेदसे अनेक होते हैं। गति-पक्षमें गवाक्का अर्थ है गायके पास जानेवाला और पूजा-पक्षमें उसका अर्थ है गो-पूजक। प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें उसके उभयपक्षीय रूप इस प्रकार हैं—एकवचनमें ये नौ रूप होते हैं—गवाक् गवाग् गोअक् गोअग् गोक् गोग् गवाङ् गोअङ्

१. इसका रूप पुँल्लिङ्गमें बताया गया है। नपुंसकमें 'कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि'—ये रूप होते हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें दो-दो रूप होते हैं। यथा—कर्तृणा कर्त्रा। कर्तृणे कर्त्रे। कर्तृणः २ कर्तुः २। कर्तृणि कर्तरि। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। २. इसके 'अतिरि अतिरिणी अतिरीणि' ये रूप हैं। तृतीया विभक्तिसे इस प्रकार रूप चलते हैं—अतिरिणा, अतिराभ्याम् ३ अतिराभिः। अतिरिणे अतिराभ्यः २। अतिरिणः २। अतिरिणोः २ अतिरीणाम्। अतिरिणि अतिरासु। ३. इसके रूप इस प्रकार है—'अतिनु अतिनुनी अतिनूनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें—'अतिनुना, अतिनुने, अतिनुनः २, अतिनुनि'-ये रूप होते हैं। शेष भानुवत्। ४. रूप इस प्रकार हैं—स्वनडुत् स्वनडुही स्वनड्वांहि। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ५. रूप इस प्रकार हैं—विमलद्यु विमलदिवी विमलदिवि। तृतीया आदि विभक्तियोंमें 'विमलदिवा विमलद्युभ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—'वाः वारी वारि। वारा वार्भ्याम् वार्भिः' इत्यादि। ७. पुँल्लिङ्गमें इसके सब रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, ब्रह्माणौ, ब्रह्माणः। ब्रह्माणं ब्रह्माणौ ब्रह्मणः। ब्रह्मणा ब्रह्माभ्याम् ब्रह्मभिः। ब्रह्मणे ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणः ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणः ब्रह्मणोः ब्रह्मणाम्। ब्रह्मणि ब्रह्मणो ब्रह्मसु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—'अहः अह्नी अहानि। अह्ना अहोभ्याम् अहोभिः' इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें अह्नि, अहनि—ये दो रूप होते हैं। ९. इसके रूप इस प्रकार हैं—'असृक् असृजी असृञ्जि। असृजा असृग्भ्याम् असृग्भिः' इत्यादि। १०. त्यद्, तद, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि—ये त्यदादि कहलाते हैं। ११. एकके विषयमें दुबारा की हुई चर्चा अन्वादेश है, जैसे—'यह आया, इसे भोजन दो' इस वाक्यमें 'इसे' अन्वादेश हुआ।

गोड् द्विवचनमें चार रूप होते हैं—गोची गवाञ्ची गोअञ्ची गोञ्ची। बहुवचनमें तीन रूप हैं—गवाञ्चि गोअञ्चि और गोञ्चि। प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें ये ही रूप होते हैं। तृतीयासे लेकर सप्तमीके एकवचनमें सर्वत्र चार-चार रूप होते हैं—'गोचा गवाञ्चा गोअञ्चा गोञ्चा' इत्यादि। भ्याम्, भिस् और भ्यस्में छः-छः रूप होते हैं—गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम् गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोङ्भ्याम् इत्यादि। सप्तमीके बहुवचनमें भी नौ रूप होते हैं—गवाङ्क्षु गोअङ्क्षु गोङ्क्षु गवाङ्षु गोअङ्षु गोङ्षु गवाक्षु गोअक्षु गोक्षु। इस प्रकार कुल एक सौ नौ रूप होते हैं[1]। तिर्यक्[2]-शब्द पशु-पक्षियोंका वाचक है। यकृत्[3]-शब्द कलेजा तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली बीमारीका बोधक है। शकृत्[4]-शब्द विष्ठाका वाचक है। ददत्-शब्दका रूप पुँल्लिङ्गमें बिभ्रत् शब्दकी तरह होता है। नपुंसकमें 'ददत्, ददती, ददन्ति ददति' ये रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। 'भवत्' शब्दका अर्थ है, पूज्य। शतृ प्रत्ययान्त 'भवत्' शब्दके रूप पुँल्लिङ्गमें 'भवन् भवन्तौ भवन्तः' इत्यादि होते हैं। शेष पूर्ववत्। स्त्रीलिङ्गमें 'भवन्ती भवन्त्यौ भवन्त्यः' इत्यादि गोपीके समान रूप हैं। नपुंसकमें पूर्ववत् हैं। पचत्-शब्दका रूप सभी लिङ्गोंमें शतृ-प्रत्ययान्त 'भवत्' शब्दके समान होता है। तुदत्-शब्द पुँल्लिङ्गमें पचत्शब्दके ही समान है। स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय होनेपर उसके दो रूप होते हैं—तुदती और तुदन्ती, फिर इन दोनोंके रूप गोपी-शब्दकी भाँति चलते हैं। नपुंसकमें प्रथम दो विभक्तियोंके रूप इस प्रकार हैं—तुदत् तुदती तुदन्ती तुदन्ति। शेष पुँल्लिङ्गवत्॥ ४३॥

**दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च।**
**गुणद्रव्यक्रियायोगांस्त्रिलिङ्गांश्च कति ब्रुवे॥ ४४॥**

दीव्यत्-शब्दके रूप सभी लिङ्गोंमें पचत्के समान हैं। धनुष्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—धनुः धनुषी धनूंषि। धनुषा धनुर्भ्याम् इत्यादि। पिपठिष्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—'पिपठीः पिपठिषी पिपठींषि' शेष पुँल्लिङ्गवत्। पयस्-शब्दके रूप तपस्-शब्दके समान होते हैं। यह दूध और जलका वाचक है। अदस्[6]-शब्दके पुँल्लिङ्ग रूप बताये जा चुके हैं। जिस कुलमें अच्छे पुरुष होते हैं, उसे सुपुम्[7] कहते हैं। अब हम कुछ ऐसे शब्दोंका वर्णन करते हैं, जो गुण, द्रव्य और क्रियाके सम्बन्धसे तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं॥ ४४॥

**शुक्तः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः।**
**पटुः स्वयम्भूः कर्ता च माता चैव पिता च ना॥ ४५॥**
**सत्यानायुरपुंसश्च मतभ्रमरदीर्घपात्।**
**धनाढ्यसोम्यौ चागर्हस्तादृक् स्वर्णमथो बहु॥ ४६॥**

शुक्त[8], कीलालपा, शुचि, ग्रामणी, सुधी, पटु,

---

१. कुछ मनीषी विद्वान् इसमें ५२७ रूपोंकी उद्भावना करते हैं। २. पुँल्लिङ्गमें इसके 'तिर्यङ् तिर्यञ्चौ' इत्यादि प्रत्यङ्-शब्दकी तरह रूप होते हैं। द्वितीयाके बहुवचनमें 'तिरश्चः' रूप होता है। तृतीया आदिमें 'तिरश्चा तिर्यग्भ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। नपुंसकमें 'तिर्यक् तिरश्ची तिर्यञ्चि' रूप होते हैं। पूजा-पक्षमें 'तिर्यङ् तिर्यञ्ची तिर्यञ्चि' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ३. इसके रूप होते हैं—यकृत् यकृती यकृन्ति। यकृता यकृद्भ्याम् इत्यादि। 'यकन्' आदेश होनेपर 'यकानि' रूप केवल 'शस्' विभक्तिमें होता है। तृतीया आदिके एकवचनमें 'यक्ना' आदि रूप अधिक होते हैं। ४. इसके रूप भी यकृत्-शब्दकी भाँति ही होते हैं। ५. इसके तीनों लिङ्गोंमें रूप होते हैं। पुँल्लिङ्गमें 'भवान् भवन्तौ भवन्तः' इत्यादि 'श्रीमत्' शब्दके समान रूप हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'भवती भवत्यौ भवत्यः' इत्यादि गोपी-शब्दके समान रूप होते हैं। नपुंसकमें दो विभक्तियोंमें उसके 'भवत् भवती भवन्ति' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ६. स्त्रीलिङ्गमें इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमूः। अमूम् अमू अमूः। अमुया अमूभ्याम् ३ अमूभिः। अमुष्यै अमूभ्यः २। अमुष्याः २। अमुयोः २ अमूषाम्। अमुष्याम् अमूषु॥ नपुंसकलिङ्गमें प्रथम दो विभक्तियोंके रूप 'अदः अमू अमूनि' हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ७. सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि। शेष विभक्तियोंमें पुंस्-शब्दकी तरह रूप होते हैं। ८. 'शुक्त' (सीप या सुतुही) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप—शुक्तः शुक्तौ शुक्ताः। शुक्तं शुक्तौ शुक्तान्। शुक्तेन शुक्ताभ्यां शुक्तैः। शुक्ताय शुक्ताभ्याम् शुक्तेभ्यः। शुक्तात् शुक्ताभ्यां शुक्तेभ्यः। शुक्तस्य शुक्तयोः शुक्तानाम्। शुक्ते शुक्तयोः शुक्तेषु। हे शुक्त शुक्तौ शुक्ताः। इस प्रकार हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'शुक्ता शुक्ते शुक्ताः' इत्यादि 'राधा' के समान रूप हैं। नपुंसकमें 'शुक्तं शुक्ते शुक्तानि' ये प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत् रूप हैं।

स्वयम्भू तथा कर्ता[1]। मातृ-शब्द यदि परिच्छेत्तृवाचक हो तो तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्ग रूप—माता, मातारौ, मातारः' इत्यादि; नपुंसकरूप—मातृ, मातृणी, मातॄणि' इत्यादि और स्त्रीलिङ्गरूप—'मात्री, मात्र्यौ मात्र्यः' हैं। जननीवाची मातृ-शब्द नित्य-स्त्रीलिङ्ग है। इसके रूप इस प्रकार हैं—'माता मातरौ मातरः। मातरम् मातरौ मातॄः' इत्यादि। इसके शेष रूप स्वसृ-शब्दके समान हैं। पितृ-शब्द यदि कुलका विशेषण हो तो नपुंसकमें प्रयुक्त हो सकता है। अन्यथा वह नित्य पुँल्लिङ्ग है। इसके रूप 'पिता पितरौ पितरः। पितरम् पितरौ पितॄन्' इत्यादि हैं। शेष कर्तृशब्दके समान समझने चाहिये। नृ-शब्द नित्य पुँल्लिङ्ग है और उसके सभी रूप पितृ-शब्दके समान हैं। केवल षष्ठीके बहुवचनमें इसके दो रूप होते हैं 'नृणाम् नॄणाम्'।

सत्य, अनायुष्, अपुंस्, मत, भ्रमर, दीर्घपात्, धनाढ्य, सोम्य, अगर्ह, तादृक्, स्वर्ण, बहु—ये शब्द भी तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं[2] ॥४६॥

**सर्वं विश्वोभये चोभौ अन्यान्यतरेतराणि च ॥ ४७ ॥**
**डतरो डतमो नेमस्त्वत्समौ त्वसिमावपि।**
**पूर्वः परावरौ चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ ॥ ४८ ॥**
**अपरः स्वोऽन्तरस्त्यत्तद्यदेवेतत्किमसावयम्।**
**युष्मदस्मच्च प्रथमश्चरमोऽल्पस्तयार्धकः ॥ ४९ ॥**
**नेमः कतिपयो द्वे निपाताः स्वरादयस्तथा।**
**उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपाश्चाव्ययाः ॥ ५० ॥**

अब सर्वनामशब्दोंको सूचित करते हैं—सर्व, विश्व, उभय, उभ, अन्य, अन्यतर, इतर, डतर, डतम, नेम, त्व, त्वत्, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर, अपर, स्व, अन्तर, त्यत्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, किम्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्। ये सर्वनाम हैं और इनके रूप प्रायः[3] सर्व-शब्दके समान ही हैं। प्रथम, चरम, तय, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम—इन शब्दोंके प्रथमाके बहुवचनमें दो रूप होते हैं यथा—प्रथमे प्रथमाः, चरमे चरमाः इत्यादि।

---

१. 'कीलालपा' (जल पीनेवाला) के सभी रूप गोपाके समान हैं। और नपुंसकमें कुलके समान रूप होते हैं। 'शुचि' (पवित्र) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप हरिके समान हैं। स्त्रीलिङ्गरूप 'गति' के समान और नपुंसकरूप 'वारि' के समान हैं। ग्रामणी (ग्रामका नेता) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं। स्त्रीलिङ्गरूप भी प्रायः वे ही हैं। नपुंसकके भी बताये जा चुके हैं। 'सुधी' शब्दका अर्थ है श्रेष्ठ बुद्धिवाला तथा विद्वान्। पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें 'सुधीः सुधियौ, सुधियः' इत्यादि रूप होते हैं। नपुंसकमें 'सुधि, सुधिनी, सुधीनि' इत्यादि रूप हैं। 'पटु' (समर्थ)-के पुँल्लिङ्ग रूप 'भानु' के समान, स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' के समान और नपुंसकरूप 'पटु पटुनी पटूनि' हैं; शेष भानुवत्। 'स्वयम्भू' (ब्रह्मा)-के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं, स्त्रीलिङ्गमें भी वैसे ही होते हैं। नपुंसकमें 'स्वयम्भु वयम्भुनी स्वयम्भूनि' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। 'कर्तृ' शब्दके पुँल्लिङ्ग और नपुंसक रूप बताये गये हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'गोपी' शब्दके समान 'कर्त्री' शब्दके रूप चलते हैं।

२. 'सत्य' शब्द जब सामान्यतः सत्य भाषणके अर्थमें आता है, तब नपुंसक होता है और विशेषणरूपमें प्रयुक्त होनेपर विशेष्यके अनुसार तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्गरूप—सत्यः सत्यौ सत्याः—इत्यादि रामवत् हैं। स्त्रीलिङ्गरूप—राधाके समान हैं—सत्या सत्ये सत्याः। नपुंसकरूप—'सत्यम् सत्ये सत्यानि' हैं। शेष रामवत्। 'अनायुष्' शब्दका अर्थ है आयुहीन। पुँल्लिङ्गमें—'अनायुः, अनायुषौ, अनायुषः' इत्यादि। स्त्रीलिङ्गमें भी ये ही रूप हैं। नपुंसकलिङ्गमें 'अनायुः अनायुषी अनायूंषि' इत्यादि। 'अपुंस्' का अर्थ है, पुरुषरहित। पुँल्लिङ्गमें—अपुमान् इत्यादि, स्त्रीलिङ्गमें 'अपुंस्का' आदि तथा नपुंसकमें 'अपुम्' इत्यादि रूप होते हैं। मतका अर्थ है—'अभिमत, राय' आदि। 'मतः', मता। मतम्' ये क्रमशः पुँल्लिङ्ग आदिके रूप हैं। 'भ्रमर'का अर्थ है भौंरा या घूमकर शब्द करनेवाला। पुँल्लिङ्गमें भ्रमरः, स्त्रीलिङ्गमें भ्रमरी, नपुंसकमें भ्रमरम्, इत्यादि रूप होते हैं। जिसके पैर बड़े हों, वह 'दीर्घपात्' है। तीनों लिङ्गोंमें 'दीर्घपात्' यही प्रथम रूप है। 'धनाढ्य' का अर्थ है धनी। धनाढ्यः, धनाढ्या, धनाढ्यम्—ये क्रमशः तीनों लिङ्गोंके प्रथम रूप हैं। 'सोम्य' का अर्थ है शान्त, मृदु स्वभाववाला। रूप धनाढ्यके ही तुल्य हैं। 'अगर्ह' का अर्थ है निन्दारहित। रूप पूर्ववत् है। 'तादृश्' शब्दका अर्थ है, 'वैसा'। इसके 'तादृक् तादृशौ तादृशः' इत्यादि पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें रूप होते हैं, नपुंसकमें तादृक् तादृशी तादृंशि रूप होते हैं। स्वर्णका अर्थ है सोना। रूप धनाढ्यवत् है। तीनों लिङ्गोंमें 'बहु' के रूप क्रमशः बहवः। बह्व्यः। बहूनि इत्यादि हैं।

३. प्रायः इसलिये कहा गया कि कुछ शब्दोंके रूपमें कहीं-कहीं अन्तर है। जैसे पूर्व पर अवर दक्षिण अपर उत्तर अधर—ये व्यवस्था और असंज्ञामें ही सर्वनाम माने जाते हैं। जहाँ संज्ञा हो अथवा व्यवस्थाभिन्न अर्थमें इन शब्दोंका प्रयोग हो वहाँ इनका रूप 'सर्व' शब्दके समान न होकर 'राम' शब्दके समान हो जाता है। यथा—दक्षिणाः गायकाः, उत्तराः कुरवः। यहाँ दक्षिण-शब्द कुशल अर्थमें और उत्तर-

स्वरादि और निपात तथा उपसर्ग, विभक्ति एवं स्वरके प्रतिरूपक शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं ॥ ४७-५० ॥

**तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थे पाण्डवाः श्रैधरस्तथा।**
**गार्ग्यो नाडायनात्रेयौ गाङ्गेयः पैतृष्वस्रीयः ॥ ५१ ॥**

अब तद्धित-प्रत्ययान्त शब्दोंका उल्लेख करते हैं। निम्राङ्कित शब्द अपत्यवाचक संज्ञाके रूपमें प्रयुक्त होते हैं। पाण्डव, श्रैधर, गार्ग्य, नाडायन, आत्रेय, गाङ्गेय, पैतृष्वस्रीय[1] ॥ ५१ ॥

**देवतार्थे चेदमर्थे ह्यैन्द्रं ब्राह्मो हविर्बलिः।**
**क्रियायुजोः कर्मकर्त्रोर्धौरेयः कौङ्कुमं तथा ॥ ५२ ॥**

निम्राङ्कित शब्द देवतार्थक और इदमर्थक प्रत्ययसे युक्त हैं। यथा—ऐन्द्रं हविः, ब्राह्मो बलिः[2]। क्रियामें संयुक्त कर्म और कर्तासे तद्धित प्रत्यय होते हैं—धुरं वहति इति धौरेयः। जो धुर् अर्थात् भारको वहन करे, वह धौरेय है। यहाँ धुर् शब्द कर्म है और वहन-क्रियामें संयुक्त भी है, अतः उससे 'एय' यह तद्धित प्रत्यय हुआ। आदि स्वरकी वृद्धि हुई और 'धौरेय' शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुङ्कुमेन रक्तं वस्त्रम्—इसमें कुङ्कुम शब्द 'रँगना' क्रियाका कर्ता है और वह उसमें संयुक्त भी है। अतः उससे तद्धित अण् प्रत्यय होकर आदिपदकी वृद्धि हुई और 'कौङ्कुम' शब्द सिद्ध हुआ ॥ ५२ ॥

**भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः।**
**स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चन्द्रवन्मुखमीक्षते ॥ ५३ ॥**

अब 'भव' आदि अर्थोंमें होनेवाले तद्धित प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं—कन्यायां भवः कानीनः। जो अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न हुआ हो, उसे 'कानीन'[3] कहते हैं। क्षत्रस्यापत्यं जातिः क्षत्रियः। क्षत्रकुलसे उत्पन्न उसी जातिका बालक 'क्षत्रिय'[4] कहलाता है। वेदे भवः वैदिकः। इक-प्रत्यय और आदि स्वरकी वृद्धि हुई है। स्व एव स्वकः। यहाँ स्वार्थमें 'क' प्रत्यय है। चोर एव चौरः, स्वार्थमें अण् प्रत्यय हुआ है। तुल्य-अर्थमें वत् प्रत्यय होता है। यथा—चन्द्रवन्मुखमीक्षते—चन्द्रमाके समान मुख देखता है। चन्द्र+वत्=चन्द्रवत् ॥ ५३ ॥

**ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च।**
**गोमानधनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान् ॥ ५४ ॥**

भाव-अर्थमें त्व, ता और य प्रत्यय होते हैं यथा—ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता, ब्राह्मण्यम्। अस्त्यर्थमें मतुप् और इन् प्रत्यय होते हैं—गौः अस्यास्ति इति गोमान्। धनमस्यास्ति इति धनी (जिसके पास गौ हो, वह 'गोमान्', जिसके पास धन हो, वह 'धनी' है[5])। अकारान्त, मकारान्त तथा मकारोपध शब्दसे एवं झयन्त शब्दसे परे मतुके 'म' का 'व' हो जाता है—यथा धनमस्यास्ति इति

---

शब्द देशकी संज्ञामें प्रयुक्त हुए हैं। व्यवस्था और असंज्ञामें यद्यपि ये सर्वनामसंज्ञक होते हैं, तथापि प्रथमाके बहुवचनमें तथा पञ्चमी और सप्तमीके एकवचनमें इनकी सर्वनामसंज्ञा वैकल्पिक होती है। अतः उन स्थलोंमें दो-दो रूप होते हैं—एक सर्ववत् दूसरा रामवत्। यथा—'पूर्वे पूर्वाः, पूर्वस्मात्, पूर्वात्, पूर्वस्मिन् पूर्वे' इत्यादि। शेष सभी रूप सर्ववत् हैं। ज्ञाति और धनसे भिन्न अर्थमें 'स्व' शब्दका रूप भी पूर्वादि शब्दोंके समान ही होता है। बाह्य और परिधानीय (पहननेयोग्य वस्त्र) अर्थमें प्रयुक्त अन्तर शब्दका रूप भी पूर्वादिके ही समान होता है। डतर और डतम शब्द प्रत्यय हैं। अतः तदन्त शब्द ही यहाँ सर्वादिमें गृहीत होते हैं, यथा—यतर यतम ततर ततम कतर कतम इत्यादि।

१. इनके क्रमशः अर्थ इस प्रकार हैं—पाण्डुपुत्र, श्रीधर-पुत्र, गर्गकी संतानपरम्परा, नडगोत्रमें उत्पन्न संतान, अत्रि-पुत्र, गङ्गापुत्र (भीष्म) तथा बुआका पुत्र। यहाँ प्रथम दोमें अण्, तीसरेमें यञ्, चौथेमें आयन, पाँचवें, छठेमें एय और सातवेंमें ईय प्रत्यय हुए हैं। प्रत्येकमें आदि स्वरकी वृद्धि हुई है। तद्धित शब्दोंमें 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (कृदन्त, तद्धितान्त और समासको प्रातिपदिक संज्ञा होती है) इस नियमसे प्रातिपदिक संज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं। २. ऐन्द्रं हविः का अर्थ है—इस हविष्यके देवता इन्द्र हैं। ब्राह्मो बलिः का अर्थ है—यह ब्रह्माके लिये बलि है। एकमें देवता-अर्थमें अण् प्रत्यय हुआ है और दूसरेमें 'तस्य इदम्' (उसका यह) इस अर्थमें अण् प्रत्यय हुआ है। दोनोंमें आदि स्वरकी वृद्धि हुई है। ३. महर्षि व्यास और कर्ण कानीन थे। कन्या-शब्दसे अण् होनेपर कन्या-शब्दके स्थानमें कनीन आदेश होता है और आदिपदकी वृद्धि होनेसे कानीन बनता है। ४. क्षत्र-इय-क्षत्रियः। 'त्र' के 'अ' का लोप होकर वह 'इय' के 'इ' में मिला है। ५. मतुप्में उप्‌का लोप हो जाता है, फिर धीमान्-शब्दकी तरह रूप चलते हैं। धनिन् शब्दका रूप दण्डिन्-शब्दके समान समझना चाहिये।

धनवान्। परिमाण-अर्थमें 'इदम्', 'किम्', 'यत्', 'तत्', 'एतत्'—इन शब्दोंसे वतुप् प्रत्यय होता है, किंतु 'इदम्' और 'किम्' शब्दोंसे परे वतुप्के वकारका 'इय्' आदेश हो जाता है। दृक्, दृश, वतु—ये परे हों तो इदम्के स्थानमें 'ई' तथा 'किम्'के स्थानमें 'कि' हो जाते हैं। किं परिमाणं यस्य स कियान्—यहाँ परिमाण-अर्थमें वतुप्-प्रत्यय, इयादेश तथा 'कि'-भाव करनेसे कियान् बनता है। इसका अर्थ है—'कितना'॥ ५४॥

**जातार्थे तुंदिलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दन्तुरः।**
**स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च॥ ५५॥**

अब जातार्थमें होनेवाले प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं। तुन्दः संजातः अस्य तुन्दिलः। जिसको तोंद हो जाय, उसे 'तुन्दिल' कहते हैं। तुन्द+इल = तुन्दिल। श्रद्धा संजाता अस्य इति श्रद्धालुः। श्रद्धा+आलु। (इसी प्रकार दयालु, कृपालु आदि बनते हैं।) दाँतोंकी ऊँचाई व्यक्त करनेके लिये दन्त शब्दसे उर-प्रत्यय होता है। उन्नताः दन्ता अस्य इति दन्तुरः (ऊँचे दाँतवाला)। अस्, माया, मेधा तथा स्रज्—इन शब्दोंसे अस्त्यर्थमें विन् प्रत्यय होता है। इनके उदाहरण क्रमसे तपस्वी, मायावी, मेधावी (बुद्धिमान्) और स्रग्वी हैं। स्रग्वीका अर्थ माला धारण करनेवाला है॥ ५५॥

**वाचालश्चैव वाचाटो बहुकुत्सितभाषिणि।**
**ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च॥ ५६॥**

खराब बातें अधिक बोलनेवालेके अर्थमें वाच् शब्दसे 'आल' और 'आट' प्रत्यय होते हैं। कुत्सितं बहु भाषते इति वाचालः, वाचाटः। ईषत् (अल्प) और असमाप्तिके अर्थमें कल्पप्, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं॥ ५६॥

**कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा।**
**पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने॥ ५७॥**
**वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने।**
**प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृन्मयः स्त्रीमयस्तथा॥ ५८॥**

जैसे—ईषत् ऊनः कविः कविकल्पः, कविदेश्यः, कविदेशीयः। जहाँ प्रकार बतलाना हो, वहाँ किम् और सर्वनाम आदि शब्दोंसे 'था' प्रत्यय होता है। तेन प्रकारेण तथा। तत्+था-तथा। त्यदादि शब्दोंका अन्तिम हल्, निवृत्त होकर वे अकारान्त हो जाते हैं, विभक्ति परे रहनेपर। (था, दा, त्र, तस् आदि प्रत्यय विभक्तिरूप माने गये हैं)। इस नियमके अनुसार तत्के स्थानमें त हो जानेसे 'तथा' बना। जहाँ किसी विशेष प्रकारके व्यक्तिका प्रतिपादन हो, वहाँ जातीय प्रत्यय होता है। यथा—पटुप्रकारः—पटुजातीयः। पटु-शब्दसे जातीय प्रत्यय हुआ। किसीकी हीनता प्रकाशित करनेके लिये संज्ञाशब्दसे पाश प्रत्यय होता है। जैसे—कुत्सितो वैद्यः वैद्यपाशः (खराब वैद्य)। प्रशंसा-अर्थमें रूप प्रत्यय होता है। यथा—प्रशस्तो वैद्यः वैद्यरूपः (उत्तम वैद्य)। मुनिवर नारदजी! भूतपूर्व अर्थको व्यक्त करनेके लिये चर प्रत्यय होता है। यथा—पूर्वं दृष्टो दृष्टचरः (पहलेका देखा हुआ)।

प्राचुर्य (अधिकता) और विकारार्थ आदि व्यक्त करनेके लिये मय प्रत्यय होता है। जैसे—अन्नमयो यज्ञः। जिसमें अधिक अन्न व्यय किया जाय, वह अन्नमय यज्ञ है। यहाँ अन्न-शब्दसे मयट् प्रत्यय हुआ। इसी प्रकार मृन्मयः अश्वः (मिट्टीका घोड़ा) तथा स्त्रीमयः पुरुषः इत्यादि उदाहरण समझने चाहिये॥ ५७-५८॥

**जातार्थे लज्जितोऽत्यर्थे श्रेयाञ्छ्रेष्ठश्च नारद।**
**कृष्णतरः शुक्लतमः किम् आख्यानतोऽव्ययात्॥ ५९॥**
**किन्तरां चैवातितरामपि ह्युच्चैस्तरामपि।**
**परिमाणे जानुदघ्नं जानुद्वयसमित्यपि॥ ६०॥**

जात-अर्थमें तारकादि शब्दोंसे इत प्रत्यय होता है। यथा—लज्जा संजाता अस्य इति

लज्जित:[1] (जिसके मनमें लज्जा पैदा हो गयी हो, उसे लज्जित कहते हैं)। नारदजी! यदि बहुतोंमेंसे किसी एककी अधिक विशेषता बतानी हो तो तम और इष्ठ प्रत्यय होते हैं और दोमेंसे एककी विशेषता बतलानी हो तो तर और ईयसु प्रत्यय होते हैं। ईयसुमें उकार इत्संज्ञक है। अयम् एषां अतिशयेन प्रशस्य: श्रेष्ठ:[2] (यह इन सबमें अधिक प्रशंसनीय है, अत: श्रेष्ठ है)। द्वयो: प्रशस्य श्रेयान् (दोमेंसे जो एक अधिक प्रशंसनीय है, वह श्रेयान् कहलाता है। यहाँ भी प्रशस्य+ईयस्=श्रेयस् (पूर्ववत् श्र आदेश हुआ)। इसके रूप इस प्रकार हैं—श्रेयान् श्रेयांसौ श्रेयांस:। श्रेयांसम् श्रेयांसौ श्रेयस:। श्रेयसा श्रेयोभ्याम् श्रेयोभि: इत्यादि। इसी प्रकार जो दोमेंसे एक अधिक कृष्ण है, उसे कृष्णतर और जो बहुतोंमेंसे एक अधिक शुक्ल है, उसे शुक्लतम कहते हैं। कृष्ण+तर=कृष्णतर। शुक्ल+तम=शुक्लतम। किम्, क्रियावाचक शब्द (तिङन्त) और अव्ययसे परे जो तम और तर प्रत्यय हैं, उनके अन्तमें आम् लग जाता है। उदाहरणके लिये किंतराम्, अतितराम् तथा उच्चैस्तराम् इत्यादि प्रयोग हैं। प्रमाण (जल आदिके माप) व्यक्त करनेके लिये द्वयस, दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। जानु प्रमाणम् अस्य इति जानुदघ्नं जलम् (जो घुटनेतक आता हो, उस जलको जानुदघ्न कहते हैं) जानु+दघ्न=जानुदघ्न। इसी प्रकार जानुद्वयसम् और जानुमात्रम्—ये प्रयोग भी होते हैं॥ ५९-६०॥

**जानुमात्रं च निर्द्धारे बहूनां च द्वयो: क्रमात्।**
**कतम: कतर: संख्येयविशेषावधारणे॥ ६१॥**
**द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थ: षष्ठपञ्चमौ।**
**एकादश: कतिपयथ: कतिथ: कति नारद॥ ६२॥**

दोमेंसे एकका और बहुतोंमेंसे एकका निश्चय करनेके लिये 'किम्' 'यत्' और 'तत्' शब्दोंसे क्रमश: डतर और डतम प्रत्यय होते हैं। यथा—भवतो: कतर:[3] श्याम: (आप दोनोंमें कौन श्याम है?) भवतां कतम: श्रीराम:? (आपलोगोंमें कौन श्रीराम हैं?)। संख्या (गणना) करनेयोग्य वस्तुविशेषका निश्चय करनेके लिये द्वि-शब्दसे द्वितीय, त्रि-शब्दसे तृतीय[4], चतुर्-शब्दसे चतुर्थ और षष्-शब्दसे षष्ठ रूप बनते हैं। इनका अर्थ क्रमश: इस प्रकार है—दूसरा, तीसरा, चौथा और छठा। पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन्—इन शब्दोंके 'न्' कारको मिटाकर 'म'कार बढ़ जाता है, जिससे पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम रूप बनते हैं। एकादशन्से अष्टादशन्तक उक्त अर्थमें 'न्' कारका लोप होकर सभी शब्द अकारान्त हो जाते हैं, जिनके 'राम' शब्दके समान रूप होते हैं। यथा एकादश: द्वादश: इत्यादि। नारदजी! कति और कतिपय शब्दोंसे थ-प्रत्यय होता है, जिससे कतिथ: और कतिपयथ: पद बनते हैं॥ ६१-६२॥

**विंशश्च विंशतितमस्तथा शततमादय:।**
**द्वेधा द्वैधा द्विधा संख्या प्रकारेऽथ मुनीश्वर॥ ६३॥**

बीसवेंके अर्थमें विंश: और विंशतितम:[5]—ये दो रूप होते हैं। शत आदि संख्यावाचक शब्दोंसे (तथा मास, अर्धमास एवं संवत्सर शब्दोंसे) नित्य 'तम' प्रत्यय होता है। यथा—शततम: (एकशततम:, मासतम:, अर्धमासतम:, संवत्सरतम:)। मुनीश्वर!

---

१. ईकार और तद्धित परे रहनेपर असंज्ञक इवर्ण और अवर्णका लोप हो जाता है, इस नियमके अनुसार 'लज्जा+इत' इस स्थितिमें 'अ'का लोप हो जाता है। २. प्रशस्य+इष्ठ=श्रेष्ठ (प्रशस्य-शब्दके स्थानमें 'श्र'आदेश हो जाता है, फिर गुण करनेसे श्रेष्ठ-शब्द बनता है)। ३. किम्+डतर, किम्+डतम। यहाँ डकार इत्संज्ञक है। डित् प्रत्यय परे रहनेपर पूर्ववर्ती शब्दके टिभागका लोप होता है। अन्तिम स्वर और उसके बादके हल् अक्षर भी 'टि' कहलाते हैं। 'किम्' में 'क' छोड़कर 'इम्' भाग 'टि' है। उसका लोप हुआ। क्+अतर=क्+अतम मिलकर 'कतर' और 'कतम' शब्द बने। इसी प्रकार यतर, यतम, ततर, ततम—ये शब्द भी बनते हैं। ४. 'त्रि+तीय' इस अवस्थामें 'त्रि' के स्थानमें सम्प्रसारण-पूर्वरूप होकर 'तृतीय' रूप बनता है। ५. इससे आगेकी सभी संख्याओंमें इसी प्रकारके दो रूप होते हैं। साठवेंके अर्थमें केवल 'षष्टितम' शब्द बनता है। उससे आगेकी संख्याओंमें भी यदि आदिमें दूसरी संख्याका प्रयोग न हो तो केवल तम प्रत्ययका विधान है। यथा—सप्ततितम:, अशीतितम:, नवतितम: इत्यादि। आदिमें संख्या लग जानेपर तो 'विंश: विंशतितम:' की भाँति दो-दो रूप होते ही हैं—जैसे एकषष्ट: एकषष्टितम: इत्यादि।

क्रियाके प्रकारका बोध करानेके लिये संख्यावाचक शब्दसे स्वार्थमें 'धा' प्रत्यय होता है—जैसे (एकधा) द्विधा, त्रिधा इत्यादि[1] ॥ ६३ ॥

**क्रियावृत्तौ पञ्चकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।**
**द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम्॥ ६४॥**

क्रियाकी आवृत्तिका बोध करानेके लिये कृत्वस् प्रत्यय होता है और 'स्' कारका विसर्ग हो जाता है। यथा—पञ्चकृत्वः[2] (पाँच बार), द्विः[3], त्रिः (दो बार, तीन बार)। बहु-शब्दसे 'धा, शस् एवं कृत्वस्' तीनों ही प्रत्यय होते हैं—यथा बहुधा, बहुशः, बहुकृत्वः। संख्याके अवयवका बोध करानेके लिये 'तय' प्रत्यय होता है। उदाहरणके लिये द्वितय, त्रितय, चतुष्टय और पञ्चतय आदि शब्द हैं। द्वि और त्रि शब्दोंसे आगे जो 'तय' प्रत्यय है, उसके स्थानमें विकल्पसे अय हो जाता है; फिर द्वि और त्रि शब्दके इकारका लोप होनेसे द्वय, त्रय शब्द बनते हैं॥ ६४॥

**कुटीरश्च शमीरश्च शुण्डारोऽल्पार्थके मतः।**
**स्त्रैणः पौंस्नस्तुण्डिभश्च वृन्दारककृषीवलौ॥ ६५ ॥**

कुटी, शमी और शुण्डा शब्दसे छोटेपनका बोध करानेके लिये 'र' प्रत्यय होता है। छोटी कुटीको कुटीर कहते हैं। कुटी+र=कुटीरः। इसी प्रकार छोटी शमीको शमीर और छोटी शुण्डाको शुण्डार कहते हैं। शुण्डा-शब्द हाथीकी सूँड़ और मद्यशाला (शराबखाने)-का बोधक है। स्त्री और पुंस् शब्दोंसे नञ् प्रत्यय होता है। आदि स्वरकी वृद्धि होती है। ञ्कार इत्संज्ञक है। नके स्थानमें ण होता है। इस प्रकार स्त्रैण शब्द बनता है। जिस पुरुषमें स्त्रीका स्वभाव हो तथा जो स्त्रीमें अधिक आसक्त हो, उसे स्त्रैण कहते हैं। पुंस्+न, आदिवृद्धि=पौंस्न (पुरुषसम्बन्धी)। तुण्डि आदि शब्दोंसे अस्त्यर्थमें 'भ' प्रत्यय होता है। तुण्डि+भ=तुण्डिभः (बढ़ी हुई नाभिवाला)। शृङ्ग और वृन्द शब्दोंसे अस्त्यर्थमें 'आरक' प्रत्यय होता है। शृङ्ग+आरक= शृङ्गारकः(पर्वत)। वृन्द+आरक= वृन्दारकः (देवता)। रजस् और कृषि आदि शब्दोंसे 'वल' प्रत्यय होता है, रजस्वला स्त्री, कृषीवलः (किसान)॥ ६५॥

**मलिनो विकटो गोमी भौरिकिविधमुत्कटम्।**
**अवटीटोऽवनाटश्च निविडं चेक्षुशाकिनम्॥ ६६ ॥**
**निबिरीसमैषुकारिभक्तं विद्याचणस्तथा।**
**विद्याचञ्चुर्बहुतिथं पर्वतः शृङ्गिणस्तथा॥ ६७॥**
**स्वामी विषमं रूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा।**
**चिल्लश्च चिपिटं चिक्कं वातूलं कुतुपस्तथा॥ ६८॥**
**बलूलश्च हिमेलुश्च कहिकश्चोपडस्ततः।**
**ऊर्णायुश्च मरुत्तश्चैकाकी चर्मण्वती तथा॥ ६९॥**
**ज्योत्स्ना तमिस्राऽष्ठीवच्च कक्षीवद्रुमण्वती।**
**आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि॥ ७०॥**

मल-शब्दसे अस्त्यर्थमें इन प्रत्यय होता है। मलम् अस्यास्ति इति मलिनः (मलयुक्त)। मल+इन अकार-लोप=मलिन। सम्, प्र, उद् और वि—इनसे कट प्रत्यय होता है,—यथा संकटः, प्रकटः, उत्कटः, विकटः। गो-शब्दसे मिन्-प्रत्यय होता है। अस्त्यर्थमें—गो+मिन्=गोमी (जिसके पास गौएँ हों, वह पुरुष) ज्योत्स्ना (चाँदनी), तमिस्रा

१. द्वि और त्रि शब्दोंके इकारका विकल्पसे एकार भी हो जाता है। यथा-द्वेधा, त्रेधा। द्वि और त्रि शब्दोंसे 'धम्' प्रत्यय और आदिस्वरकी वृद्धि—ये दो कार्य और भी होते हैं। यथा—द्वैधम्, त्रैधम्।

२. था, धा, त्र, तस्, कृत्वस् आदि प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें लगते हैं, वे तद्धितान्त अव्यय माने जाते हैं।

३. द्वि, त्रि और चतुर् शब्दोंसे कृत्वस् न होकर केवल 'सुच्' प्रत्यय होता है। इसमें केवल 'स' रहता है और 'उ'कार तथा 'च्'कारकी 'इत्संज्ञा' हो जाती है। प्रयोगमें सकारका विसर्ग हो जाता है। चतुर्-शब्दके आगे स 'स'का लोप होता है और 'र' का विसर्ग हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः द्विः त्रिः चतुः—ये रूप बनते हैं। ये तीनों अव्यय हैं।

(अँधेरी रात), शृङ्गिण, (शृङ्गवाला), ऊर्जस्विन् (ओजस्वी), ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस (मलिन)—ये शब्द मत्वर्थमें निपातन-सिद्ध हैं। 'भौरिकिविधम्' इसकी व्युत्पत्ति यों है—भौरिकीणां विषयो देश:—भौरिकिविधम् (भौरिकि नामवाले वर्ग-विशेषके लोगोंका देश)। ऐषुकारीणाम् विषयो देश:—ऐषुकारिभक्तम् (ऐषुकारि—बाण बनानेवाले लोगोंका देश)। इन दोनों उदाहरणोंमें क्रमश: 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय हुए हैं। भौरिक्यादि तथा ऐषुकार्यादि शब्दोंसे 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय होनेका नियम है। उत्कटम्—इसकी सिद्धिका नियम पहले बताया गया है, नासिकाकी निचाई व्यक्त करनेके लिये 'अव' उपसर्गसे 'टीट', 'नाट' और 'भ्रट' प्रत्यय होते हैं। तथा नि उपसर्गसे 'बिड' और 'बिरीस' प्रत्यय होते हैं। इसके सिवा 'नि'से 'इन' और 'पिट' प्रत्यय भी होते हैं। 'इन'-प्रत्यय परे होनेपर 'नि'के स्थानमें चिक् आदेश हो जाता है और 'पिट'प्रत्यय परे होनेपर 'नि'के स्थानमें 'चि' आदेश होता है। मूलोक्त उदाहरण इस प्रकार हैं—अवटीट:, अवनाट: (अवभ्रट:)-नीची नाकवाला पुरुष। निबिडम् (नीची नाक), निबिरीसम्, चिकिनम्, चिपिटम्, चिक्कम्—इन सबका अर्थ नीची नाक है। जिसके आँखसे पानी आता हो, उसको 'चिल्ल' और 'पिल्ल' कहते हैं। ल प्रत्यय है और क्लिन्न-शब्द प्रकृति है—जिसके स्थानमें चिल्ल और पिल्ल आदेश हुए हैं। पैदा करनेवाले खेतके अर्थमें पैदावार-वाचक शब्दसे शाकट और शाकिन प्रत्यय होते हैं। जैसे 'इक्षुशाकटम्' 'इक्षुशाकिनम्'। उसके द्वारा विख्यात है, इस अर्थमें चञ्चु और चण प्रत्यय होते हैं। जो विद्यासे विख्यात है, उसे 'विद्याचण' और 'विद्याचञ्चु' कहते हैं। बहु आदि शब्दोंसे 'तिथ' प्रत्यय होता है, पूरण अर्थमें। बहूनां पूरणम् इति=बहुतिथम्। शृङ्गिण-शब्द पर्वतका वाचक है, इसे निपात-सिद्ध बताया जा चुका है। ऐश्वर्यवाचक स्व-शब्दसे आमिन् प्रत्यय होता है—स्व+आमिन्=स्वामी (अधीश्वर या मालिक)। 'रूप' शब्दसे आहत और प्रशंसा अर्थमें 'य' प्रत्यय होता है। यथा विषमम्, आहतं वा रूपमस्यास्तीति—रूप्य: कार्षापण: (खराब पैसा), रूप्यम् आभूषणम् (खराब आभूषण) इत्यादि। 'उप' और 'अधि' से त्यक प्रत्यय होता है, क्रमश: समीप एवं ऊँचाईकी भूमिका बोधक होनेपर। पर्वतके पासकी भूमिको 'उपत्यका' (तराई) कहते हैं और पर्वतके ऊपरकी (ऊँची) भूमिको 'अधित्यका' कहते हैं। 'वात' शब्दसे 'ऊल' प्रत्यय होता है, असहन एवं समूहके अर्थमें। वातं न सहते वातूल:। जो हवा न सह सके, वह 'वातूल' है। वात+ऊल, अलोप-वातूल:। वातके समूह (आँधी)-को भी 'वातूल' कहते हैं। 'कुतू' शब्दसे 'डुप' प्रत्यय होता है, डकार इत्संज्ञक, टिलोप। ह्रस्वा कुतू: कुतुप: (चमड़ेका तैलपात्र—कुप्पी)। बलं न सहते (बल नहीं सहता)—इस अर्थमें बल-शब्दसे 'ऊल'-प्रत्यय होता है। बल+ऊल-बलूल:। हिमं न सहते (हिमको नहीं सहता) इस अर्थमें हिमसे एलु प्रत्यय होता है। हिम+एलु=हिमेलु:। अनुकम्पा-अर्थमें मनुष्यके नामवाचक शब्दसे 'इक' एवं 'अड' आदि प्रत्यय होते हैं तथा स्वरादि प्रत्यय परे रहनेपर पूर्ववर्ती शब्दके द्वितीय स्वरसे आगेके सभी अक्षर लुप्त हो जाते हैं। यदि द्वितीय स्वर सन्धि-अक्षर हो तो उसका भी लोप हो जाता है। इन सब नियमोंके अनुसार ये दो उदाहरण हैं—अनुकम्पित: कहोड:=कहिक:। अनुकम्पित: उपेन्द्रदत्त:=उपड:। 'ऊर्णायु:' का अर्थ है ऊनवाला जीव (भेड़ आदि) अथवा ऊनी कम्बल आदि।

'ऊर्णा' से युस् प्रत्यय होकर 'ऊर्णायुः' बना है। पर्व और मरुत् शब्दोंसे त प्रत्यय होता है। पर्व+त=पर्वतः (पहाड़)। मरुत्+त=मरुत्तः (मरुआ नामक पौधा अथवा महाराज मरुत्त)। एक शब्दसे असहाय-अर्थमें आकिन्, कन् और उसका लुक्, ये तीनों कार्य बारी-बारीसे होते हैं। एक+आकिन्= एकाकी। एक+क=एकक:। कन्का लोप होनेपर एकः। इन सबका अर्थ-अकेला, असहाय है। चर्मण्वती एक नदीका नाम है। (इसमें चर्मन् शब्दसे मतुप्, मकारका वकारादेश, नलोपका अभाव और णत्व आदि कार्य निपातसिद्ध हैं। स्त्रीलिङ्गबोधक ङीप् प्रत्यय हुआ है)। 'ज्योत्स्ना' और 'तमिस्रा' निपात-सिद्ध हैं, यह बात गोमीके प्रसङ्गमें कही गयी है। इसी प्रकार अष्ठीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत्, आसन्दीवत् तथा चक्रीवत्—ये शब्द भी निपात-सिद्ध हैं। यथा—आसन्दीवान् ग्रामः, अष्ठीवान् नाम ऋषिः, चक्रीवान् नाम राजा, कक्षीवान् नाम ऋषिः, रुमण्वान् नाम पर्वतः। तूष्णीं शब्दसे काम् प्रत्यय होता है, अकच्के प्रकरणमें। तूष्णीकाम् आस्ते (चुप बैठता है)। मित् कार्य अन्तिम स्वरके बाद होता है। तिङन्त, अव्यय और सर्वनामसे 'टि' के पहले अकच् होता है, चकार इत्संज्ञक है। इस नियमके अनुसार 'जल्पति' इस तिङन्त पदके इकारसे पहले अकच् होनेसे 'जल्पतकि' (बोलता है) रूप बनता है॥ ६६—७०॥

**कंवः कम्भश्च कंयुश्च कन्तिः कन्तुस्तथैव च।**
**कन्तः कंयश्च शंवश्च शम्भः शंयुस्तथा पुनः॥ ७१॥**
**शन्तिः शन्तुः शन्तशंयौ तथाहंयुः शुभंयुवत्।**

कम् और शम्—ये मकारान्त अव्यय हैं। कम्का अर्थ जल और सुख है, शम्का अर्थ सुख है। इन दोनोंसे सात प्रत्यय होते हैं—व, भ, युस्, ति, तु, त और यस्। युस् और यस्का सकार इत्संज्ञक है। इन सबके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—कंवः, कम्भः, कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कंयः। शंवः, शंभः, शंयुः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः, शंयः। अहम्—यह मकारान्त अव्यय अहंकारके अर्थमें प्रयुक्त होता है और शुभम्—यह मकारान्त अव्यय शुभ-अर्थमें है। इनसे 'युस्'-प्रत्यय होता है, सकार इत्संज्ञक है। अहम्+यु=अहंयुः (अहंकारवान्), शुभम्+यु= शुभंयुः (शुभयुक्त पुरुष)॥७१॥

**भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि॥ ७२॥**
**भूयादभूदभविष्यल्लाादावेतानि रूपाणि।**
**अत्ति जघासात्तात्स्यत्यत्त्वाददद्याद्द्विरघसदात्स्यत्॥ ७३॥**

(अब तिङन्तप्रकरण प्रारम्भ करके कुछ धातुओंके रूपोंका दिग्दर्शन कराते हैं। वैयाकरणोंने दस प्रकारके धातु-समुदाय माने हैं, उन्हें 'नवगणी या दसगणी' के नामसे जाना जाता है। उनके नाम हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि। भ्वादिगणके सभी धातुओंके रूप प्रायः एक प्रकार एवं एक शैलीके होते हैं, दूसरे-दूसरे गणोंके धातु भी अपने-अपने ढंगमें एक ही तरहके होते हैं। यहाँ सभी गणोंके एक-एक धातुके नौ लकारोंमें एक-एक रूप दिया जाता है। शेष धातु और उनके रूपोंका ज्ञान विद्वान् गुरुसे प्राप्त करना चाहिये।) 'भू' धातुके लट् लकारमें 'भवति भवतः भवन्ति' इत्यादि रूप बनते हैं। लिट् लकारमें 'बभूव बभूवतुः बभूवुः' इत्यादि, लुट्में 'भविता भवितारौ भवितारः' इत्यादि, लृट्में 'भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति' इत्यादि, लोट्में 'भवतु भवतात् भवताद्, भवताम् भवन्तु इत्यादि, लङ्लकारमें 'अभवत् अभवताम् अभवन्' इत्यादि। विधिलिङ्में 'भवेत् भवेताम् भवेयुः' इत्यादि, आशिष् लिङ्में भूयात् 'भूयास्ताम् भूयासुः' इत्यादि लुङ्में 'अभूत् अभूताम् अभूवन्' इत्यादि तथा लृङ् लकारमें 'अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन्' इत्यादि—ये सब रूप

होते हैं। 'भू' धातुका अर्थ सत्ता है, 'भवति'का अर्थ 'होता है'—ऐसा किया जाता है। अब अदादि गणके 'अद्' धातुका पूर्ववत् प्रत्येक लकारमें एक-एक रूप दिया जाता है, 'अद्' धातु भक्षण अर्थमें प्रयुक्त होता है। अत्ति। जघास। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। आदत्। अद्यात्। अद्यात्। अघसत्। आत्स्यत् ॥ ७२-७३ ॥

**जुहोति जुहाव जुहवाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु।**
**अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौषीदहोष्यद्दीव्यति ।**
**दिदेव देविता देविष्यति दीव्यतु चादीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ॥ ७४ ॥**
**अदेवीददेविष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै।**
**सुनोत्वसुनोत् सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत् तुदति च ॥ ७५ ॥**
**तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदतुदेत्तुद्याद्धि।**
**अतौत्सीदतोत्स्यदिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै ॥ ७६ ॥**
**रुणद्ध्वरुणद्रुन्ध्याद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च ।**
**तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ॥ ७७ ॥**
**तन्यादतनीच्चातानीदतनिष्यत् क्रीणाति चिक्राय क्रेता क्रेष्यति क्रीणात्विति च। अक्रीणात् क्रीणीयात् क्रीयादक्रैषीदक्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति चोरयत्वचोरयच्चोरयेच्चोर्याद-चूचुरदचोरयिष्यदित्येवं दश वै गणाः ॥ ७८ ॥**

जुहोत्यादि गणमें 'हु' धातु प्रधान है। इसका प्रयोग अग्निमें आहुति डालनेके अर्थमें या देवताको तृप्त करनेके अर्थमें होता है। इसका प्रत्येक लकारमें रूप इस प्रकार है—जुहोति। जुहाव, जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास। होता। होष्यति। जुहोतु। अजुहोत्। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। दिवादि गणमें 'दिव' धातु प्रधान है। इसके अनेक अर्थ हैं—क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। इसके रूप पूर्ववत् विभिन्न लकारोंमें इस प्रकार हैं—दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्। स्वादिगणमें 'सु' धातु प्रधान है। यह मूलतः 'षुञ्' धातुके नामसे प्रसिद्ध है। इसका अर्थ है अभिषव अर्थात् नहलाना, रस निचोड़ना, नहाना एवं सोमरस निकालना। रूप इस प्रकार हैं—सुनोति। सुषाव। सोता। सोष्यति। सुनोतु। असुनोत्। सुनुयात्। सूयात्। असावीत्। असोष्यत्। ये परस्मैपदके रूप हैं; आत्मनेपदमें सुनुते, 'सुषुवे' इत्यादि रूप होते हैं। तुदादिगणमें 'तुद्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है पीड़ा देना। रूप इस प्रकार हैं—तुदति। तुतोद। तोत्ता। तोत्स्यति। तुदतु। अतुदत्। तुदेत्। तुद्यात्। अतौत्सीत्। अतोत्स्यत्। रुधादिगणमें 'रुध्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है—रूँधना, बाड़ लगाना, घेरा डालना या रोकना। रूप इस प्रकार हैं—रुणद्धि। रुरोध। रोद्धा। रोत्स्यति। रुणद्धु। अरुणत्। रुन्ध्यात्। रुद्ध्यात्। अरौत्सीत्। अरोत्स्यत्।[1] तनादिगणमें 'तन्' धातु प्रधान है। इसका अर्थ है विस्तार करना, फैलाना; रूप इस प्रकार हैं—तनोति। ततान। तनिता। तनिष्यति। तनोतु। अतनोत्। तनुयात्। तन्यात्। अतनीत्, अतानीत्। अतनिष्यत्[2]। क्र्यादिमें क्री-धातु प्रधान है—जिसका अर्थ है खरीदना, एक द्रव्य देकर दूसरा द्रव्य लेना। रूप इस प्रकार हैं—क्रीणाति। चिक्राय। क्रेता। क्रेष्यति। क्रीणातु। अक्रीणात् क्रीणीयात्। क्रीयात्। अक्रैषीत्[3]। अक्रेष्यत्। चुरादिगणमें 'चुर्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है चुराना; रूप इस

१. यह उभयपदीय धातु है। मूलमें केवल परस्मैपदीय रूप दिया गया है। इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—रुन्धे। रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यते। रुन्धाम्। अरुन्ध। रुन्धीत। रोत्सीष्ट। अरुद्ध। अरोत्स्यत।

२. यह भी उभयपदीय धातु है। इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—तनुते। तेने। तनिता। तनिष्यते। तनुताम्। अतनुत। तन्वीत। तनिषीष्ट। अतत, अतनिष्ट। अतनिष्यत।

३. इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—क्रीणीते। चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यते। क्रीणीताम्। अक्रीणीत। क्रीणीत। क्रेषीष्ट। अक्रेष्ट। अक्रेष्यत।

प्रकार हैं—चोरयति। चोरयामास, चोरयाञ्चकार, चोरयाम्बभूव। चोरयिता। चोरयिष्यति। चोरयतु। अचोरयत्। चोरयेत्। चोर्यात्। अचूचुरत्। अचोरयिष्यत्[१]। इस प्रकार ये धातुओंके दस गुण माने गये हैं॥ ७४—७८॥

**प्रयोजके भावयति सनीच्छायां बुभूषति।**
**क्रियासमभिहारे तु पण्डितो बोभूयते मुने॥ ७९॥**

प्रयोजकके व्यापारमें प्रत्येक धातुसे णिच् प्रत्यय होता है। 'च'कार और 'ण'कार इत्संज्ञक हैं। णिच् प्रत्यय परे रहनेपर स्वरान्त अङ्गकी वृद्धि होती है। भू से णिच् करनेपर भू+इ बना; फिर वृद्धि और आव् आदेश करनेपर भावि बना, उससे धातुसम्बन्धी अन्य कार्य करनेपर भावयति रूप बनता है। जो कर्ताको प्रेरणा दे, उसे प्रयोजक कहते हैं। जैसे—'**चैत्रः पण्डितो भवति**' (चैत्र पण्डित होता है), '**तं मैत्रः अध्यापनादिना प्रेरयति**' (उसे मैत्र पढ़ाने आदिके द्वारा पण्डित होनेमें प्रेरणा देता है)। इस वाक्यमें चैत्र प्रयोज्य कर्ता है और मैत्र प्रयोजक कर्ता है। इस प्रयोजकके व्यापारमें ही णिच् प्रत्यय होता है; इसलिये उसीके अनुसार प्रथम, मध्यम आदि पुरुषकी व्यवस्था एवं क्रिया होती है। प्रयोज्य कर्ता प्रयोजकके व्यापारमें कर्म बन जाता है, इसलिये उसमें द्वितीया विभक्ति होती है और प्रयोजक कर्तामें प्रथमा विभक्ति। यथा—'**मैत्रः चैत्रं पण्डितं भावयति**' (मैत्र चैत्रको पण्डित बनानेमें योग देता है)। इसी प्रकार अन्य धातुओंसे भी प्रेरणार्थक प्रत्यय होता है। यथा—'**छात्रः पठति, गुरुः प्रेरयति इति गुरुः छात्रं पाठयति**' (छात्र पढ़ता है, गुरु उसे प्रेरित करता है; इसलिये गुरु छात्रको पढ़ाता है)।

इच्छा-अर्थमें 'सन्' प्रत्यय होता है '**भवितुम् इच्छति बुभूषति**' (होनेकी इच्छा करता है)। इसी प्रकार पठ्, गम्, आदि अन्य धातुओंसे भी इच्छा-अर्थमें पिपठिषति (पढ़नेकी इच्छा करता है), जिगमिषति (जाना चाहता है)—इत्यादि सन्नन्त रूप होते हैं। मुने! क्रिया-समभिहारमें एक स्वरवाले हलादि धातुसे 'यङ्' प्रत्यय होता है, इस नियमके अनुसार भू-धातुसे यङ्प्रत्यय होनेपर धातुका द्वित्व होता है; क्योंकि सन् और यङ् परे रहनेपर धातुके द्वित्व होने (एकसे दो हो जाने)-का नियम है। फिर धातु-प्रत्ययसम्बन्धी अन्य कार्य करनेपर बोभूयते रूप बनता है। यथा—'**देवदत्तः पण्डितो बोभूयते**' (देवदत्त बड़ा भारी पण्डित हो रहा है)। 'बार-बार' या 'अधिक' अर्थका बोध कराना ही क्रियासमभिहार कहलाता है। इस तरहके प्रयोगको यङन्त कहते हैं। पठ् और गम् आदि धातुओंसे यङ्-प्रत्यय करनेपर पापठ्यते, (बार-बार या बहुत पढ़ता है)। जङ्गम्यते (बार-बार या बहुत जाता है) इत्यादि रूप होते हैं॥ ७९॥

**तथा यङ्लुकि विप्रेन्द्र बोभवीति च पठ्यते।**
**पुत्रीयतीत्यात्मनीच्छायां तथाचारेऽपि नारद।**
**अनुदात्तङितो धातोः क्रियाविनिमये तथा॥ ८०॥**

यङ्-प्रत्ययका लुक् (लोप होना) भी देखा जाता है। उस दशामें बोभवीति, बोभोति, पापठीति और जङ्गमीति इत्यादि रूप होते हैं। इन रूपोंको यङ्लुगन्त रूप कहते हैं। अर्थ यङन्तके ही समान होते हैं। '**आत्मनः पुत्रम् इच्छति**' (अपने लिये पुत्र चाहता है)। इस वाक्यसे पुत्रकी इच्छा व्यक्त होती है। ऐसे स्थलोंमें इच्छा-क्रियाके कर्मभूत शब्दसे क्यच्-प्रत्यय होता है। ककार और चकारकी इत्संज्ञा होती है। उपर्युक्त उदाहरणमें पुत्र-शब्दसे क्यच्-प्रत्यय करनेपर पुत्र+य इस अवस्थामें पुत्रमें

---

१. इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—चोरयते। चोरयाञ्चक्रे, चोरयामासे, चोरयाम्बभूवे। चोरयिता। चोरयिष्यते। चोरयताम्। अचोरयत। चोरयेत। चोरयिषीष्ट। अचूचुरत। अचोरयिष्यत।

'त्र' के अकारका इ हो जाता है, फिर 'पुत्रीय' को धातुसंज्ञा करके तिङन्तके समान रूप चलते हैं। इस प्रकार 'पुत्रीयति' इत्यादि रूप होते हैं। 'पुत्रीयति' का अर्थ है—अपने लिये पुत्र चाहता है। ऐसे प्रयोगको नामधातु कहते हैं। नारदजी! कर्मभूत उपमानवाचक शब्दसे आचार-अर्थमें भी क्यच् होता है। यथा—'**पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्**' (गुरुजी छात्रके साथ पुत्रका-सा बर्ताव करते हैं)।

अब आत्मनेपदका प्रकरण आरम्भ करते हैं। जिस धातुमें अनुदात्त स्वर और ङकारकी इत्संज्ञा होती है, उससे आत्मनेपदके प्रत्यय होते हैं। यथा—एधते, वर्धते इत्यादि। ये अनुदात्तेत् हैं। त्रैङ् पालने—यह ङित् धातु है, इसके केवल आत्मनेपदमें 'त्रायते' इत्यादि रूप होते हैं। जहाँ क्रियाका विनिमय व्यक्त होता हो, वहाँ भी आत्मनेपद होता है। यथा—व्यतिलुनीते (दूसरेके योग्य लवनरूप कार्य दूसरा करता है)॥ ८०॥

**निविशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मनेपदम्।**
**परस्मैपदमाख्यातं शेषात् कर्तरि शाब्दिकैः॥ ८१॥**

विप्रवर! निपूर्वक 'विश्' एवं वि और परापूर्वक 'जि' इत्यादि धातुओंसे भी आत्मनेपद ही जानो। यथा—निविशते, विजयते, पराजयते इत्यादि। भाव और कर्ममें प्रत्यय होनेपर भी आत्मनेपद ही होता है। आत्मनेपदके जितने निमित्त हैं, उन्हें छोड़कर शेष धातुओंसे कर्तामें परस्मैपद होता है—ऐसा वैयाकरणोंका कथन है॥ ८१॥

**ञित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः।**

जिन धातुओंमें 'स्वरित' और 'ञ्' की इत्संज्ञा हुई हो, उनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं। यथा—'खनति, खनते। श्रयति, श्रयते' इत्यादि।

(अब भाव-कर्म-प्रकरण आरम्भ करते हैं—) भाव और कर्ममें धातुसे यक् प्रत्यय होता है। भावमें प्रत्यय होनेपर क्रियामें केवल औत्सर्गिक एकवचन होता है और सदा प्रथम पुरुषके ही एकवचनका रूप लिया जाता है। उस दशामें कर्ता तृतीयान्त होता है। भू धातुसे भावमें प्रत्यय करनेपर 'भूयते' रूप होता है। वाक्यमें उसका प्रयोग इस प्रकार है—'**त्वया मया अन्यैश्च भूयते।**' सकर्मक धातुसे कर्ममें प्रत्यय होनेपर कर्म उक्त हो जाता है, अतः उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और अनुक्त कर्तामें तृतीया विभक्तिका प्रयोग होता है। कर्ताके अनुसार ही क्रियामें पुरुष और वचनकी व्यवस्था होती है। यथा—'**चैत्रः आनन्दमनुभवति इति कर्मणि प्रत्यये चैत्रेणानन्दोऽनुभूयते**', (चैत्रसे आनन्दका अनुभव किया जाता या आनन्द भोगा जाता है) चैत्रस्त्वामनुभवति, चैत्रेण त्वमनुभूयसे, (चैत्रसे तुम अनुभव किये जाते हो) चैत्रो मामनुभवति, चैत्रेणाहमनुभूये' (चैत्रसे मैं अनुभव किया जाता हूँ) इत्यादि उदाहरण भाव-कर्मके हैं।

**सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने॥ ८२॥**
**विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे।**
**लभन्ते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम्॥ ८३॥**
**साध्वसिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने।**
**धातोः सकर्मकात् कर्तृकर्मणोरपि प्रत्ययाः॥ ८४॥**

मुने! जब अतिशय सौकर्य प्रकाशित करनेके लिये लक्ष्यमें कर्ताके व्यापारकी विवक्षा नहीं रह जाती, तब कर्म और करण आदि दूसरे कारक ही कर्तृभावको प्राप्त होते हैं। यथा—'**चैत्रो वह्निना स्थाल्यामोदनं पचति**' (चैत्र आगसे बटलोईमें भात पकाता है)—इस वाक्यमें जब चैत्रके कर्तृत्वकी विवक्षा न रहे और करण आदिके कर्तृत्वकी विवक्षा हो जाय तो वे ही कर्ता हो जाते हैं और तदनुकूल क्रिया होती है। यथा—'**वह्निः पचति**' (आग पकाती है)। यहाँ करण ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। '**स्थाली पचति**' (बटलोई पकाती है)—यहाँ अधिकरण ही कर्ताके रूपमें प्रयुक्त

हुआ है। **'ओदनः स्वयं पच्यते'** (भात स्वयं पकता है)—यहाँ कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है। जब कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हो तो कर्तामें लकार होता है; परंतु कर्मवद्भाव होनेसे यक् और आत्मनेपद आदि ही होते हैं। अतः 'पचति' न होकर 'पच्यते' रूप होता है। ऐसे प्रयोगको कर्म-कर्तृप्रकरणके अन्तर्गत मानते हैं। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—**'असिना साधु छिनत्ति'** (तलवारसे अच्छी तरह काटता है)—इस वाक्यमें उपर्युक्त नियमानुसार करणमें कर्तृत्वकी विवक्षा होनेपर ऐसा वाक्य बनेगा—**'साधु असिश्छिनत्ति'** (तलवार अच्छा काटती है)। मुने! सकर्मक धातु भी कर्मकर्तृमें अकर्मक हो जाता है, अतः उससे भाव तथा कर्तामें भी लकार होता है। यथा भावे—पच्यते ओदनेन। कर्तरि—पच्यते ओदनः। सम्प्रदान और अपादान कारकोंमें कर्तृत्वकी विवक्षा कभी नहीं की जाती, क्योंकि यह अनुभवके विरुद्ध है। सामान्य स्थितिमें सकर्मक धातुसे 'कर्ता' और 'कर्म'में प्रत्यय होते हैं॥ ८२—८४॥

**तस्माद् वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तिताः।**
**फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः॥ ८५॥**
**धातुस्तयोर्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः।**
**गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्॥ ८६॥**
**बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया।**
**प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥ ८७॥**

विप्रवर! वही धातु यदि अकर्मक हो तो उससे 'भाव' और 'कर्ता' में प्रत्यय कहे गये हैं। सभी धातुओंके फल और व्यापार—ये दो अर्थ हैं। ये दोनों जहाँ एकमात्र कर्तामें ही मौजूद हों, उन धातुओंको अकर्मक कहते हैं। जैसे—भू-धातुका अर्थ सत्ता है। सत्ताका तात्पर्य है—आत्मधारणानुकूल व्यापार। इसमें आत्मधारणरूप फल और तदनुकूल व्यापार दोनों केवल कर्तामें ही स्थित हैं; अतः भू-धातु अकर्मक है।

जहाँ फल और व्यापार दोनों भिन्न-भिन्न धर्मोंमें स्थित हों, वहाँ धातुको सकर्मक माना गया है। जैसे—'पच्' धातुका अर्थ है—विक्लित्त्यनुकूल व्यापार (चावल आदिको गलानेके अनुरूप प्रयत्न)। इसमें विक्लित्ति (गलना) यह फल है, जो चावलमें होता है और इसके अनुकूल जो चूल्हेमें आग जलाने आदिका व्यापार है, वह कर्तामें है; अतः 'पच्' धातु सकर्मक हुआ है। 'दुह' आदि[1] धातुओंके दो कर्म होते हैं। यथा—**'गां दोग्धि पयः'** (गायसे दूध दुहता है)—इसमें गाय गौण कर्म है और दूध प्रधान कर्म। दुह आदि धातुओंके गौण कर्ममें ही प्रत्यय होता है। यथा—**'गौर्दुह्यते पयः, बलिर्याच्यते वसुधाम्'** इत्यादि। नी, हृ, कृष् और वह्—इन चार धातुओंके प्रधान कर्ममें प्रत्यय होता है। यथा—**'अजां ग्रामं नयति'**—इस वाक्यमें अजा प्रधान कर्म और ग्राम गौण कर्म है। प्रधान कर्ममें प्रत्यय होनेपर वाक्यका स्वरूप इस प्रकार होगा—**'अजा ग्रामं नीयते।'** ज्ञानार्थक और भक्षणार्थक धातुओंके एवं शब्दकर्मक धातुओंके ण्यन्त होनेपर उनसे प्रधान या अप्रधान किसी भी कर्ममें अपनी इच्छाके अनुसार प्रत्यय कर सकते हैं। यथा—**'बोध्यते माणवकं धर्मः, माणवको धर्मम् इति वा।'** अन्य गत्यर्थक एवं अकर्मक धातुओंके ण्यन्त होनेपर उनके प्रयोज्य कर्ममें लकार आदि प्रत्यय माने गये हैं। यथा—**'मासमास्यते माणवकः'**॥ ८५—८७॥

**फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः।**
**फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्॥ ८८॥**

धातु फल और व्यापाररूप अर्थोंका बोधक होता है। जैसे—भू-धातु आत्मधारणरूप फल और तदनुकूल व्यापारका बोधक है। फल और

१. दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्—ये दुह आदिके अन्तर्गत हैं, इनके दो कर्म होते हैं। इसी प्रकार नी, हृ, कृष् और वह्—इनके भी दो कर्म होते हैं।

व्यापार दोनोंका जो आश्रय है, उसमें अर्थात् कर्ता एवं कर्ममें (तथा भावमें भी) तिङ्-प्रत्यय होते हैं, फलमें व्यापारकी ही प्रधानता है, तिङर्थरूप जो फल है वह उस व्यापारका विशेषण होता है। जैसे—'पचति'—इस क्रियाद्वारा चावल आदिके गलनेका प्रतिपादन होता है। यहाँ विक्लित्तिरूप फलके अनुकूल जो अग्निप्रज्वालन और फूत्कारादि व्यापार हैं, उनके आश्रयभूत कर्तामें प्रत्यय हुआ है। '**ओदनः पच्यते**' इत्यादिमें फलाश्रयभूत कर्ममें तिङ् प्रत्यय होनेके कारण ओदनमें प्रथमा विभक्ति है॥ ८८॥

**एधितव्यमेधनीयमिति कृत्ये निदर्शनम्।**
**भावे कर्मणि कृत्याः स्युः कृतः कर्तरि कीर्तिताः॥ ८९॥**
**कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम्।**
**गम्यादि गम्ये निर्दिष्टं शेषमद्यतने मतम्॥ ९०॥**

(अब कृदन्त-प्रकरण प्रारम्भ करते हैं—कृत्-प्रत्यय जिसके अन्तमें हो, वह कृदन्त है। ण्वुल्, तृच्, अच् आदि प्रत्यय 'कृत्' कहलाते हैं। कृत्-प्रत्ययोंमेंसे जो कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय हैं, वे केवल भाव और कर्ममें ही होते हैं। तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर् आदि प्रत्यय कृत्य कहलाते हैं। घञ् आदि प्रत्यय भाव, करण और अधिकरणमें होते हैं। सामान्यतः कृत्-प्रत्यय 'कर्ता' में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ पहले कृत्य प्रत्ययोंके उदाहरण देते हैं—) एधितव्यम् और एधनीयम्—ये कृत्य प्रत्ययके उदाहरण हैं। 'कृत्य' भाव और कर्ममें तथा 'कृत्' कर्तामें बताये गये हैं। '**त्वया मया अन्यैश्च एधितव्यम्**', यहाँ भावमें तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुए हैं। कर्ममें प्रत्ययका उदाहरण इस प्रकार समझना चाहिये। '**छात्रेण पुस्तकं पठनीयम्**' '**ग्रन्थः पठितव्यः**' इत्यादि कर्ममें प्रत्यय होनेसे कर्तामें तृतीया विभक्ति और कर्ममें प्रथमा विभक्ति हुई है। कर्ता, कारकः इत्यादि 'कृत्' प्रत्ययके उदाहरण हैं। यथा—'रामः कर्ता' 'ब्रह्मा कारकः' यहाँ कर्तामें 'तृच्' और 'ण्वुल्' प्रत्यय हुए हैं। 'वु'के स्थानमें अक् आदेश होता है। ण्, ल्, च् आदिकी इत्संज्ञा होती है। 'क्त' और 'क्तवतु' ये प्रत्यय भूतकालमें होते हैं। यथा—'**भूतः भूतवान्**' इत्यादि; और 'गम्य' आदि शब्द भविष्यत् अर्थमें निर्दिष्ट हुए हैं। शेष शब्द वर्तमान कालमें प्रयुक्त होने योग्य माने गये हैं॥ ८९-९०॥

**अधिस्त्रीत्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम्।**
**रामाश्रितस्तत्पुरुषे धान्यार्थो यूपदारु च॥ ९१॥**
**व्याघ्रभी राजपुरुषोऽक्षशौण्डो द्विगुरुच्यते।**
**पञ्चगवं दशग्रामी त्रिफलेति तु रूढितः॥ ९२॥**

(अब समासका प्रकरण आरम्भ करते हैं—)समास चार प्रकारके माने गये हैं—अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व। 'तत्पुरुष' का एक विशिष्ट भेद 'कर्मधारय' और कर्मधारयका एक विशिष्ट भेद 'द्विगु' है। भूतपूर्वः इत्यादि स्थलोंमें जो समास है, उसका कोई नाम नहीं निर्देश किया जा सकता। अतः उसे केवल समासमात्र जानना चाहिये। जिसमें प्रथम पद अव्यय हो, वह समास अव्ययीभाव होता है। अथवा अव्ययीभावके अधिकारमें जो समासविधायक वचन हैं, उनके अनुसार जहाँ समास हुआ है, वह अव्ययीभाव समास है। अव्ययीभाव अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सभी विभक्तियोंमें उसका समान रूप है। अकारान्त अव्ययीभावमें विभक्तियोंका 'अम्' आदेश हो जाता है, परंतु पञ्चमी विभक्तिको छोड़कर ऐसा होता है। तृतीया और सप्तमीमें भी अम्भाव वैकल्पिक है। यथा अपदिशम्, अपदिशे इत्यादि। अधिस्त्रि और यथाशक्ति आदि पद अव्ययीभाव समासके अन्तर्गत बताये गये हैं। द्वितीयान्तसे लेकर सप्तम्यन्त तकके पद सुबन्तके साथ समस्त होते हैं और वह समास तत्पुरुष होता है। तत्पुरुषके उदाहरण इस प्रकार हैं—रामम्+आश्रितः=रामाश्रितः। धान्येन+अर्थः=धान्यार्थः यूपाय+दारु=यूपदारु। व्याघ्रात्+भीः=व्याघ्रभीः राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः। अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः इत्यादि। जिसमें संख्यावाचक शब्द पूर्वमें हो, वह 'द्विगु' कहा गया है। '**पञ्चानां गवां समाहारः**

पञ्चगवम्।' दशानां ग्रामाणां समाहारः दशग्रामी (यहाँ स्त्रीलिङ्गसूचक 'ङीप्' प्रत्यय हुआ है)। '**त्रयाणां फलानां समाहारः त्रिफला**' (इसमें स्त्रीत्वसूचक 'टाप्' प्रत्यय हुआ है)। त्रिफला-शब्द आँवले, हर्रे और बहेड़ेके लिये रूढ़ (प्रसिद्ध) है॥ ९१-९२॥

**नीलोत्पलं महाषष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः।**
**अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुम्भकारादिकः कृतः॥ ९३॥**

समानाधिकरण तत्पुरुषकी 'कर्मधारय' संज्ञा होती है। उसके दोनों पद प्रायः विशेष्य-विशेषण होते हैं। विशेषणवाचक शब्दका प्रयोग प्रायः पहले होता है। '**नीलं च तत् उत्पलं च=नीलोत्पलम्, महती चासौ षष्ठी च=महाषष्ठी।**' जहाँ 'न' शब्द किसी सुबन्तके साथ समस्त होता है, वह 'नञ् तत्पुरुष' कहलाता है। '**न ब्राह्मणः अब्राह्मणः**' इत्यादि। कुम्भकार आदि पदोंमें 'उपपद तत्पुरुष' समास है॥ ९३॥

**अन्यार्थे तु बहुव्रीही ग्रामः प्राप्तोदको द्विज।**
**पञ्चगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः॥ ९४॥**

विप्रवर! जहाँ अन्य अर्थकी प्रधानता हो, उस समासकी बहुव्रीहिमें गणना होती है। '**प्राप्तम् उदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः**' (जहाँ जल पहुँचा हो, वह ग्राम 'प्राप्तोदक' है)। इसी तरह—'**पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः। रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः।**' मध्याह्न-पद तत्पुरुष समास है। '**सुतेन सह आगतः ससुतः**' आदि पद बहुव्रीहि समासके अन्तर्गत हैं॥ ९४॥

**समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट।**
**भिक्षामानय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत्॥ ९५॥**

चार्थमें द्वन्द्व समास होता है। 'च' के चार अर्थ हैं—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार। परस्पर निरपेक्ष अनेक पदोंका एकमें अन्वय होना 'समुच्चय' कहलाता है। समुच्चयमें '**ईशं गुरुं च भजस्व**' यह वाक्य है। इसमें ईश और गुरु दोनों स्वतन्त्ररूपसे 'भज' इस क्रियापदसे अन्वित होते हैं। ईश-पदका क्रियाके साथ अन्वय हो जानेपर पुनः क्रियापदकी आवृत्ति करके गुरुपदका भी उसमें अन्वय होता है। यही उन दोनोंकी निरपेक्षता है। समास साकाङ्क्ष पदोंमें होता है। अतः समुच्चय-वाक्यमें द्वन्द्व समास नहीं होता है। जहाँ एक प्रधान और दूसरा अप्रधानरूपसे अन्वित हो, वहाँ अन्वाचय होता है—जैसे '**भिक्षामट गाञ्चानय**' इस वाक्यमें भिक्षाके लिये गमन प्रधान है और गौका लाना अप्रधान या आनुषङ्गिक कार्य है। अतः एकार्थीभावरूप सामर्थ्य न होनेसे अन्वाचयमें भी द्वन्द्व समास नहीं होता। समुच्चय और अन्वाचयमें वाक्यमात्रका ही प्रयोग होता है॥ ९५॥

**इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ।**
**रामकृष्णं द्विज द्वौ द्वौ ब्रह्म चैकमुपास्यते॥ ९६॥**

उद्भूत अवयव-भेद-समूहरूप परस्पर अपेक्षा रखनेवाले सम्मिलित पदोंका एकधर्मावच्छिन्नमें अन्वय होना इतरेतरयोग कहलाता है। अतः इसमें सामर्थ्य होनेके कारण समास होता है, यथा—'**रामकृष्णौ भज**' इस वाक्यमें '**रामश्च-कृष्णश्च=रामकृष्णौ**' इस प्रकार समास है। इतरेतरयोग द्वन्द्वमें समस्यमान पदार्थगत संख्याका समुदायमें आरोप होता है। इसलिये वहाँ द्विवचनान्त या बहुवचनान्तका प्रयोग देखा जाता है। समूहको समाहार कहते हैं। वहाँ अवयवगत भेद तिरोहित होता है। यथा—'**रामश्च कृष्णश्चेत्यनयोः समाहारः रामकृष्णम्।**' समाहार द्वन्द्वमें अवयवगत संख्या समुदायमें आरोपित नहीं होती। इसलिये एकत्व-बुद्धिसे एकवचनान्तका प्रयोग किया जाता है। समाहारमें नपुंसकलिङ्ग होता है। विप्रवर! इतरेतरयोगमें राम और कृष्ण दोनों दो हैं और समाहारमें उनकी एकता है, इसलिये कि ब्रह्मरूपसे उन्हें एक मानकर उनकी उपासना की जाती है॥ ९६॥

*इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे व्याकरणनिरूपणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥*

## निरुक्त-वर्णन

**सनन्दनजी कहते हैं—**अब मैं निरुक्तका वर्णन करता हूँ, जो वेदका कर्णरूप उत्तम अङ्ग है। यह वैदिक धातुरूप है, इसे पाँच प्रकारका बताया गया है॥ १॥ उसमें कहीं वर्णका आगम होता है, कहीं वर्णका विपर्यय होता है, कहीं वर्णोंका विकार होता है और कहीं वर्णका नाश माना गया है॥ २॥ नारद! जहाँ वर्णोंके विकार अथवा नाशद्वारा जो धातुके साथ विशेष अर्थका प्रकाशक संयोग होता है, वह पाँचवाँ उत्तम योग कहा गया है॥३॥ वर्णके आगमसे 'हंस[1]:' पदकी सिद्धि होती है। वर्णोंके विपर्यय (अदल-बदल)-से 'सिंह[2]:' पद सिद्ध होता है। वर्णविकारसे 'गूढोत्मा[3]' की सिद्धि होती है। वर्णनाशसे 'पृषोदर[4]:' सिद्ध होता है॥ ४॥ 'भ्रमर[5]' आदि शब्दोंमें पाँचवाँ योग समझना चाहिये। वेदोंमें लौकिक नियमोंका विकल्प या विपर्यय कहा गया है। यहाँ 'पुनर्वसु[6]' पदको उदाहरणके रूपमें रखना चाहिये॥ ५॥ 'नभस्वत्'-में 'वत्' प्रत्यय परे रहते भसंज्ञा हो जानेसे 'स'का रुत्व नहीं हुआ। (वार्तिक भी है—**'नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम्'**) **'वृषन् अश्वो यस्य सः'** इस विग्रहमें बहुव्रीहि समास होनेपर 'वृषन्+अश्वः' इस अवस्थामें अन्तर्वर्तिनी विभक्तिका आश्रय लेकर पदसंज्ञा करके नकारका लोप प्राप्त था, किंतु **'वृषण् वस्वश्वयोः'** इस वार्तिकके नियमानुसार भसंज्ञा हो जानेसे न लोप नहीं हुआ; अतः 'वृषणश्वः' यही वैदिक प्रयोग है। (लोकमें 'वृषाश्वः' होता है।) कहीं-कहीं आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपदका प्रयोग होता है। यथा—**'प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति'** यहाँ **'युध्यते'** होना चाहिये, किंतु परस्मैपदका प्रयोग किया गया है। 'प्र' आदि उपसर्ग यदि धातुके पहले हों तो उनकी उपसर्ग एवं गतिसंज्ञा होती है; किंतु वेदमें वे धातुके बादमें या व्यवधान देकर प्रयुक्त होनेपर भी 'उपसर्ग' एवं 'गति' कहलाते हैं—यथा **'हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।'** यहाँ 'आयाहि' के अर्थमें 'याहि+आ' का व्यवहित तथा पर प्रयोग है। दूसरे उदाहरणमें आ+याहिके बीचमें बहुत-से पदोंका व्यवधान है॥ ६॥ वेदमें विभक्तियोंका विपर्यास देखा जाता है, जैसे—**'दध्ना जुहोति'**; यहाँ 'दधि' शब्द 'हु' धातुका कर्म है, उसमें द्वितीया होनी चाहिये, किंतु **'तृतीया च होश्छन्दसि'** इस नियमके अनुसार कर्ममें तृतीया

---

१. 'हन्तीति हंसः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार हन्-धातुके आगे ('वृतृवदिहनि॰' इत्यादि उणादि सूत्रसे) 'स'का आगम होनेसे 'हंस' शब्द बनता है। २. 'हिसि हिंसायाम्' इस धातुसे 'हिनस्तीति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्त्रर्थमें अच् प्रत्यय करनेपर पहले 'हिंसः' बनता है, फिर 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'के आदेशानुसार 'ह' के स्थानमें 'स' और 'स' के स्थानमें 'ह' आ जानेसे 'सिंहः' पद सिद्ध होता है। ३. 'गूढ+आत्मा' इस अवस्थामें 'आ' विकृत हो 'उ' के रूपमें परिणत हुआ और गुण होनेसे 'गूढोत्मा' बना। (एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते)। ४. 'पृषोदरः' में 'पृषद्+उदरः' यह पदच्छेद है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'के आदेशानुसार यहाँ तकारका लोप (नाश) हुआ तथा गुण होनेसे 'पृषोदरः' सिद्ध हुआ है। ५. 'भ्रमतीति भ्रमरः' यहाँ 'भ्रमु अनवस्थाने'से 'अर्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित्' इस उणादि सूत्रके अनुसार 'अर' प्रत्यय होनेसे 'भ्रमर' शब्द सिद्ध होता है। किन्हीं विद्वानोंके मतमें 'भ्रमन् रौति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'भ्रमर' शब्द बनता है। इसमें 'भ्रम्+अत्+रु+अच्' इस अवस्थामें 'त्'का लोप 'रु'में उका लोप करनेसे 'भ्रमर'की सिद्धि होती है। ६. लौकिक प्रयोगमें 'पुनर्वसु' शब्द नित्य द्विवचनान्त है, किंतु वेदमें 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्'के नियमानुसार इसका एकवचनान्त प्रयोग भी होता है।

हो गयी है। 'अभ्युत्सादयामक:' इसमें अभि+उत्पूर्वक 'सद्' धातुसे लुङ् लकारमें 'आम्' और 'अक'-का अनुप्रयोग हुआ है (लोकमें 'अभ्युदषीषदत्' रूप बनता है)। 'मा त्वाग्निर्ध्वनयीत्' इसमें 'नोनयति ध्वनय०' इत्यादि वैदिक सूत्रके द्वारा च्लिके चङ्भावका निषेध होता है। माङ्के योगमें 'अट् आट्' न होनेसे 'ध्वनयीत्' रूप हुआ है (लोकमें घटादि ध्वन धातुका रूप 'अदिध्वनत्' होता है और चुरादिका रूप 'अदध्वनत्' होता है)। 'ध्वनयीत्' इत्यादि प्रमुख उदाहरण हैं। 'निष्टर्क्य०' इत्यादि प्रयोग वेदमें निपातनसे सिद्ध होते हैं। 'छन्दसि निष्टर्क्य' इत्यादि सूत्र इसमें प्रमाण हैं। यहाँ 'निस् पूर्वक कृत्' धातुसे 'ऋदुपधाच्च' सूत्रके अनुसार 'क्यप्' प्राप्त था; परंतु 'ण्यत्' प्रत्यय हुआ है; साथ ही 'कृत' में आदि-अन्तका विपर्यय होनेसे 'तृक' रूप बना। फिर गुण होनेसे तर्क्य हुआ। 'निस्'के 'स्' का षत्व हुआ और ष्टुत्व होकर 'निष्टर्क्य' सिद्ध हुआ। 'गृभाय' इत्यादि प्रयोग वैकल्पिक 'शायच्' होनेसे बनते हैं। ह-धातुसे शायच् हुआ और 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' के आदेशानुसार 'ह' के स्थानमें 'भ' हो गया तो 'गृभाय' बना—'**गृभाय जिह्वया मधु**'॥७॥ शास्त्रकार सुप्, तिङ्, उपग्रह (परस्मैपद-आत्मनेपद), लिङ्ग, पुरुष, काल, हल्, अच्, स्वर, कर्तृ, (कारक) और यङ्—इन सबका व्यत्यय (विपर्यय) चाहते हैं, वह भी बाहुलकसे सिद्ध होता है॥८॥ 'रात्री' शब्दमें 'रात्रेश्चाजसौ' (पा० सू० ४।१।३१) इस नियमके अनुसार रात्रि-शब्दसे ङीप्-प्रत्यय हुआ है। (लोकमें 'कृदिकारादक्तिन:'से ङीष् होकर अन्तोदात्त होता है।) 'विभ्वी' में भी विभु-शब्दसे 'भुवश्च' के नियमानुसार ङीष् हुआ है। 'कद्रू:' पदमें 'कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि' से ऊङ् प्रत्यय हुआ है। 'आविष्ट्यो वर्धते' इत्यादि स्थलोंमें 'अविष्टयस्योपसंख्यानं छन्दसि' के नियमानुसार 'आविस्' अव्यय से 'त्यप्' यह तद्धित-प्रत्यय हुआ है। 'वाजसनेयिन:' में 'वाजसनेयेन प्रोक्तमधीयते' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वाजसनेय-शब्दसे 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि' सूत्रके द्वारा 'णिनि' प्रत्यय हुआ है॥९॥ 'कर्णेभि:' में 'बहुलं छन्दसि' के नियमानुसार 'भिस्' के स्थानमें 'ऐस्' आदेश नहीं हुआ है। 'यशोभग्य:' पदमें 'वेशोयश आदेर्भगाद्यल' इस सूत्रसे 'यल्' प्रत्यय हुआ है। इत्यादि उदाहरण जानने चाहिये। 'चतुरक्षरम्' पदसे चार अक्षरवाले 'आश्रावय' 'अस्तु श्रौषट्' आदि पदोंकी ओर संकेत किया गया है। अक्षर-समूह वाच्य हो तो 'छन्दस्' शब्दसे 'यत्' प्रत्यय होता है—'छन्दस्य:' यह उदाहरण है। 'देवास:' में 'आज्जसेरसुक्' इस नियमके अनुसार 'असुक्' का आगम हुआ है। 'सर्वदेव' शब्दसे स्वार्थमें 'तातिल्' प्रत्यय होता है। '**सविता न: सुवतु सर्वदेवतातिम्**' इस उदाहरणमें 'सर्वदेव' शब्दसे 'तातिल्' प्रत्यय होनेपर 'सर्वदेवताति' शब्दकी सिद्धि होती है। 'युष्मद्', 'अस्मद्' शब्दोंसे सादृश्य-अर्थमें 'वतुप्' प्रत्यय होता है। इस नियमसे 'त्वावत:' पदकी सिद्धि हुई है। 'त्वावत:' का पर्याय है 'त्वत्सदृशान्' (तुम्हारे सदृश)॥१०॥ 'उभयाविनम्' इत्यादि पदोंमें 'बहुलं छन्दसि' के नियमसे मत्वर्थमें विनि प्रत्यय हुआ है। 'छन्दोविन्प्रकरणे०' इत्यादि नियमसे उभय शब्दके अकारका दीर्घ होनेसे 'उभयाविनम्' रूप बना है। प्रत्न, पूर्व आदि शब्दोंसे इवार्थमें 'थाल्' प्रत्यय होता है, इस नियमसे 'प्रत्नथा' बनता है। इसी प्रकार 'पूर्वथा' आदि भी हैं। वेदमें 'ऋच्' शब्द परे होनेपर त्रिका सम्प्रसारण होता है और उत्तरपदके आदिका लोप हो जाता है। '**तिस्र ऋचो यस्मिन्' तत् तृचं सूक्तम्**। जिसमें तीन ऋचाएँ हों, उस सूक्तका नाम 'तृच्' है। '**त्रि+ऋच्**'

इस अवस्थामें 'त्रि'का सम्प्रसारण होनेपर 'तृ' बना और ऋच्‌के ऋका लोप हो गया तो 'तृचम्' सिद्ध हो गया। 'इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम्' यहाँ 'अप' उपसर्गके साथ 'स्पृध' धातुके लङ् लकारमें प्रथम पुरुषके द्विवचनका रूप है। 'अपस्पृधेथाम्' यह निपातनसे सिद्ध होता है। रेफका सम्प्रसारण और अलोप निपातनसे ही होता है। माङ्‌का योग न होनेपर भी अडागमका अभाव हुआ है (लोकमें इसका रूप 'अपास्पर्धेथाम्' होता है)। 'वसुभिर्नो अव्यात्' इत्यादिमें 'अव्यादवद्या०' इत्यादि सूत्रके अनुसार व्यपर 'अ' परे होनेपर एङ् (ओ)-का प्रकृतिभाव हुआ है। 'आपो अस्मान् मातरः' इत्यादि प्रयोग भी 'आपो जुषाणो०' आदि नियमके अनुसार प्रकृति-भावसे सिद्ध होते हैं। आकार परे रहनेपर 'आपो' आदिमें प्रकृतिभाव होता है॥ ११॥ '**समानो गर्भः सगर्भस्तत्र भवः सगर्भ्यः।**' यहाँ 'समानस्य सः' इत्यादि सूत्रसे समानका 'स' आदेश हुआ है। 'सगर्भसयूथसनुताद्यत्' से यत्-प्रत्यय हुआ है। 'अष्टापदी' यहाँ 'छन्दसि च'-के नियमानुसार उत्तरपद परे रहते अष्टन्‌के 'न'का 'आ' आदेश हो गया है। 'ऋतौ भवम् ऋत्व्यम्'—जो ऋतुमें हो, उसे 'ऋत्व्य' कहते हैं। 'ऋत्व्यवास्त्व्यः' इत्यादि सूत्रसे निपातन करनेपर 'ऋत्व्यम्' पदकी सिद्धि होती है। अतिशयेन 'ऋजु' इति 'रजिष्ठम्'—जो अत्यन्त ऋजु (कोमल या सरल) हो, उसे 'रजिष्ठ' कहा गया है। 'विभाषर्जोश्छन्दसि' के नियमानुसार इष्ठ, इमन् और ईयस् परे रहनेपर ऋजुके 'ऋ'के स्थानमें 'र' होता है। 'ऋजु+इष्ठ' इस अवस्थामें ऋके स्थानमें 'र' तथा उकार लोप होनेसे 'रजिष्ठ' शब्द बना है। 'त्रिपञ्चकम्'—**त्रीणि पञ्चकानि** यत्र तत् 'त्रिपञ्चकम्' इस विग्रहके अनुसार बहुव्रीहिसमास करनेपर 'त्रिपञ्चकम्' की सिद्धि होती है। '**हिरण्ययेन सविता रथेन**' इस मन्त्र-वाक्यमें 'ऋत्व्यवास्त्व्य' आदि सूत्रके अनुसार हिरण्य-शब्दसे 'मयट्' प्रत्यय और उसके 'म'-का लोप निपातन किया जाता है। इससे 'हिरण्यय' शब्दकी सिद्धि होती है। 'इतरम्'—वेदमें इतर शब्दसे 'अद्ड्' का निषेध है। अतः 'सु' का 'अम्' आदेश होनेसे 'इतरम्' पद सिद्ध होता है। यथा—'वार्त्रघ्नमितरम्'। 'परमे व्योमन्' यहाँ 'व्योमनि' रूप प्राप्त था; किंतु 'सुपां सुलुक्' इत्यादि नियमसे ङि-विभक्तिका लुक् हो गया॥ १२॥ 'उर्विया' की जगह 'उरुणा' रूप प्राप्त था। 'टा' का 'इया' आदेश होनेसे 'उर्विया' रूप बना। 'इयाडियाजीकाराणामुप-संख्यानम्' इस वार्तिकसे यहाँ 'इयाज्' हुआ है। 'स्वप्रया'के स्थानमें 'स्वप्रेन' यह रूप प्राप्त था, किंतु 'सुपां सुलुक्०' इत्यादि नियमके अनुसार 'टा' का 'अयाच्' हो गया; अतः 'स्वप्रया' रूप बना। 'वारयध्वम्' रूप प्राप्त था, किंतु 'ध्वमो ध्वात्' सूत्रसे 'ध्वम्' के स्थानमें 'ध्वात्' आदेश होनेसे 'वारयध्वात्' हो गया। 'अदुहत' के स्थानमें 'अदुह्र' यह वैदिक प्रयोग है। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' इस सूत्रसे तलोप और 'बहुलं छन्दसि' से रुट्‌का आगम हुआ है। 'वै' पादपूर्तिके लिये है। 'अवधिषम्' यह रूप प्राप्त था, इसके स्थानमें 'वधीं' रूप हुआ है। यहाँ 'अम्'का 'म्' आदेश और अडागमका अभाव तथा 'ईट्' का आगम हुआ है—वधीं वृत्रम्। 'यजध्वैनं'—यहाँ 'यजध्वम्+एनम्' इस दशामें 'ध्वम्' के 'म्' का लोप होकर वृद्धि होनेसे उक्त रूपकी सिद्धि हुई है। '**तमो भरन्त एमसि**'—यहाँ 'इमः'के स्थानमें 'इदन्तो मसि' इस सूत्रके अनुसार 'एमसि' रूप हुआ है। '**स्विन्नः स्नात्वी मलादिव**'—इस मन्त्रमें 'स्नात्वा' रूप प्राप्त था; किंतु 'स्नात्व्यादयश्च'— इस सूत्रके अनुसार उसके स्थानमें 'स्नात्वी' निपातन हुआ। 'गत्वाय'—गत्वाके स्थानमें 'क्त्वो यक्' सूत्रके अनुसार 'यक्'का आगम

होनेसे उक्त पद सिद्ध होता है। 'अस्थभिः' में अस्थि-शब्दके 'इ'को 'अनङ्' आदेश होकर नलोप हो गया है। 'छन्दस्यपि दृश्यते' इस नियमसे हलादि विभक्ति परे रहनेपर भी 'अनङ्' आदेश होता है॥ १३॥ 'गोनाम्' यहाँ आम्-विभक्ति परे रहते नुट्का आगम हुआ है। किसी छन्दके पादान्तमें गो-शब्द हो तो प्राय: षष्ठी-बहुवचनमें वहाँ नुट्का आगम हो जाता है। 'अपरिह्वृताः' यहाँ 'ह्रु ह्वरेश्छन्दसि'से प्राप्त हुए 'ह्रु' आदेशका अभाव निपातित हुआ है। 'ततुरिः', 'जगुरिः' इत्यादि पद भी 'बहुलं छन्दसि' के नियमसे निपातनद्वारा सिद्ध होते हैं। 'ग्रसिताम्' 'ग्रसु' अदनेका निष्ठान्त रूप है। यहाँ इट्का निषेध प्राप्त था, किंतु निपातनसे इट् हो गया है। इसी प्रकार 'स्कभित' आदिको भी समझना चाहिये। 'पश्वे' यहाँ 'जसादिषु छन्दसि वा वचनं०' इत्यादिसे वैकल्पिक घि-संज्ञा होनेके कारण घि-संज्ञाके अभावमें यण् होनेसे 'पश्वे' रूप बना है। इसी तरह 'दधद्' यह दधातिके स्थानमें निपातित हुआ है; लेट्का रूप है। 'दधद्रत्नानि दाशुषे' यह मन्त्र है। 'बभूथ' यह लिट् लकारके मध्यम पुरुषका एकवचन है। वेदमें इसके 'इट्' का अभाव निपातित हुआ है। 'प्रमिणन्ति'—यहाँ 'प्रमीणन्ति' रूप प्राप्त था। 'मीनातेर्निगमे' सूत्रसे ह्रस्व हो गया। 'अवीवृधत्'—'नित्यं छन्दसि' से चङ् परे रहते उपधा ऋवर्णका 'ऋ'-भाव नित्य होता है॥ १४॥ 'मित्रयुः' यहाँ दीर्घका निषेध होता है। 'दुष्ट इवाचरति' इस अर्थमें क्यच् परे रहते दुष्ट शब्दका 'दुरस्' आदेश होता है। 'दुरस्युः' यह निपातनात् सिद्ध रूप है। इसी प्रकार 'द्रविणस्युः' इत्यादि भी है। वेदमें 'क्त्वा' परे रहते हाधातुका 'हि' आदेश विकल्पसे होता है। 'हि' आदेश न होनेपर 'घुमास्था०' इत्यादि सूत्रसे 'आ' के स्थानमें 'ई' हो जाता है; अत: 'हित्वा' और 'हीत्वा' दोनों रूप होते हैं। 'सु' पूर्वक धा-धातुसे 'क्त'प्रत्यय परे होनेपर 'इत्व' निपातन किया जाता है; इससे 'सुधितम्' रूप बनता है—यथा '**गर्भं माता सुधितं वक्षणासु।**' 'दाधर्ति', 'दर्धर्ति' और 'दर्धर्षि' आदि रूप निपातनसे सिद्ध हैं। ये 'धृ'-धातुके यङ्लुगन्त रूप हैं। 'स्ववद्भिः' अव-धातुसे असुन् करनेपर 'अवस्' रूप होता है। 'शोभनमवो येषां ते स्ववसः, तैः स्ववद्भिः' यह उसकी व्युत्पत्ति है। 'स्ववःस्वतवसोरुषसश्चेष्यते' इस वार्तिकसे भकारादि प्रत्यय परे रहते 'स्ववस्' आदि शब्दोंके 'स्' का 'त्' हो जाता है। प्रसवार्थक 'सू' धातुके लिट्में 'ससूवेति निगमे' सूत्रसे 'ससूव' यह निपातसिद्ध रूप है। यथा—'गृष्टिः ससूव स्थविरम्'। 'सुधित' इत्यादि सूत्रसे 'धत्स्व' के स्थानमें 'धिस्व' निपातित होता है—'**धिस्व वज्रं दक्षिण इन्द्रहस्ते**'॥ १५॥ 'प्रप्रायमग्निः' यहाँ 'प्रसमुपोदः पादपूरणे' से पादपूर्तिके लिये 'प्र' उपसर्गका द्वित्व हो गया है। 'हरिवते हर्यश्वाय' यहाँ 'छन्दसीरः' से 'मतुप्' के 'म' का 'व' हुआ है। 'अक्षण्वन्तः' में अक्षि-शब्दसे मतुप्, 'छन्दस्यपि दृश्यते' से अनङ्-आदेश तथा 'अनो नुट्' से 'नुट्' का आगम हुआ है। 'सुपथिन्तरः' में 'नाद्घस्य' से 'नुट्' का आगम विशेष कार्य है। 'रथीतरः' में 'ईद्रथिनः' से 'ई' हुआ है। 'नसत्तम्' में नञ्पूर्वक सद्-धातुसे निष्ठामें नत्वका अभाव निपातित हुआ है। इसी प्रकार सूत्रोक्त 'निषत्त' आदि शब्दोंको जानना चाहिये। 'अम्रेव'—इसमें 'अम्रस्' शब्द ईषत् अर्थमें है। वेदमें सकारका वैकल्पिक रेफ निपातित हुआ है। 'भुवरथो इति' यहाँ 'भुवश्च महाव्याहृतेः' से भुवस्के 'स्'का 'र्' हुआ है॥१६॥ 'ब्रूहि' यहाँ 'ब्रूहि प्रेष्य०' इत्यादि सूत्रसे उकार प्लुत हुआ है। यथा—अग्नयेऽनुब्रू३हि। 'अग्नामावास्येत्या३त्थ'

यहाँ 'निगृह्यानुयोगे च' इस सूत्रसे वाक्यके 'टि'का प्लुतभाव होता है। 'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' इस सूत्रसे आदि और परका भी प्लुत होता है। उदाहरणके लिये 'ओ३श्रा ३ वय' इत्यादि पद है। इन सबमें प्लुत हुआ है। 'दाश्वान्' आदि पद क्वसु-प्रत्ययान्त निपातित होते हैं। 'स्वतवान्' शब्दके नकारका विकल्पसे 'रु' होता है, पायु-शब्द परे रहनेपर—स्वतवाँः पायुरग्ने।' 'त्रिभिष्ट्वं देव सवितः।' यहाँ 'त्रिभिस्+त्वम्' इस दशामें 'युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम्' इस सूत्रमें 'स्' के स्थानमें 'ष्' होकर ष्टुत्व होनेसे 'त्रिभिष्ट्वम्' बनता है। 'नृभिष्टुतः' यहाँ 'स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि' इस सूत्रसे 'नृभिस्' के 'स्' का 'ष्' होकर ष्टुत्व हुआ है॥ १७॥ 'अभीषुणः' यहाँ 'सुञः' सूत्रसे 'स्' का 'ष्' हुआ है। 'ऋताषाहम्' में 'सहेः पृतनर्ताभ्यां च' इस सूत्रसे 'स्'का मूर्धन्य आदेश हुआ है। 'न्यषीदत्' यहाँ भी 'निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि' इस सूत्रसे 'स' का मूर्धन्य हुआ है। 'नृमणाः' इस पदमें 'छन्दस्यृदवग्रहात्' सूत्रसे 'न' का 'ण' हुआ है। बाहुलक चार प्रकारके होते हैं—कहीं प्रवृत्ति होती है, कहीं अप्रवृत्ति होती है, कहीं वैकल्पिक विधि है और कहीं अन्यथाभाव होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक पद-समुदाय सिद्ध है। क्रियावाची 'भू' 'वा'आदि शब्दोंको 'धातु' संज्ञा जाननी चाहिये। 'भू' आदि धातु परस्मैपदी माने गये हैं॥ १८-१९॥ 'एध' आदि छत्तीस धातु उदात्त एवं आत्मनेपदी हैं (इन्हें 'अनुदात्तेत्' माना गया है)। मुने! 'अत' आदि सैंतीस धातु परस्मैपदी हैं॥ २०॥ शीकृ आदि बयालीस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं। फक्क आदि पचास धातु उदात्तेत् (परस्मैपदी) कहे गये हैं॥ २१॥ वर्च आदि इक्कीस धातु अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) बताये गये हैं। 'गुपू' आदि बयालीस धातु 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) कहे गये हैं॥ २२॥ 'घिणि' आदि दस धातु शाब्दिकोंद्वारा 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। 'अण्' आदि सत्ताईस धातु 'उदात्तेत्' बताये गये हैं॥ २३॥ 'अय' आदि चौंतीस धातु वैयाकरणोंद्वारा अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) माने गये हैं। 'मव्य' आदि बहत्तर धातु उदात्तानुबन्धी कहे गये हैं॥ २४॥ 'धावु' धातु अकेला ही 'स्वरितेत्' कहा गया है। 'क्षुध्' आदि बावन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं॥ २५॥ 'घुषिर्' आदि अठासी धातु 'उदात्तेत्' माने गये हैं। 'द्युत' आदि बाईस धातु 'अनुदात्तेत्' स्वीकार किये गये हैं॥ २६॥ घटादिमें तेरह धातु 'षित्' और 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'ज्वर' आदि बावन धातु उदात्त बताये गये हैं॥ २७॥ 'राजृ' धातु 'स्वरितेत्' है। उसके बाद 'भ्राजृ' भ्राशृ और भ्लाशृ'—ये तीन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'स्यमु' धातुसे लेकर आगे सभी आद्युदात्त एवं उदात्तेत् (परस्मैपदी) हैं॥ २८॥ फिर एकमात्र 'षह' धातु 'अनुदात्तेत्' तथा अकेला 'रम' धातु 'आत्मनेपदी' है। उसके बाद 'सद' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। फिर 'कुच' आदि चार धातु भी 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) ही हैं॥ २९॥ इसके बाद 'हिक्क' आदि पैंतीस धातु 'स्वरितेत्' हैं। 'श्रिञ्' धातु स्वरितेत् है। 'भृञ्' आदि चार धातु भी स्वरितेत् ही हैं॥ ३०॥ 'धेट्' आदि छियालीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'स्मिङ्' आदि अठारह धातु आत्मनेपदी माने गये हैं॥ ३१॥ फिर 'पूङ्' आदि तीन धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। 'हृ' धातु परस्मैपदी है। फिर 'गुप'से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी हैं॥ ३२॥ 'रभ' आदि धातु अनुदात्तेत् हैं और 'ञिक्ष्विदा' उदात्तेत् है। स्कम्भु आदि पंद्रह धातु परस्मैपदी हैं॥ ३३॥ 'कित' धातु 'उदात्तेत्' है। 'दान' 'शान'—ये दो धातु उभयपदी हैं। 'पच' आदि नौ धातु

स्वरितेत् (उभयपदी) हैं। वे परस्मैपदी (और आत्मनेपदी दोनों) माने गये हैं॥ ३४॥ फिर तीन स्वरितेत् धातु हैं। परिभाषणार्थक 'वद' और 'वच' धातु परस्मैपदी हैं। ये एक हजार छः धातु भ्वादि कहे गये हैं॥ ३५॥

'अद' और 'हन्' धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'द्विष' आदि चार धातु स्वरितेत् माने गये हैं॥ ३६॥ यहाँ केवल 'चक्षिङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है। फिर 'ईर' आदि तेरह धातु अनुदात्तेत् हैं॥ ३७॥ मुने! वैयाकरणोंने 'षूङ्' और 'शीङ्'—इन दो धातुओंको आत्मनेपदी कहा है। फिर 'षु' आदि सात धातु परस्मैपदी बताये गये हैं॥ ३८॥ मुनीश्वर! यहाँ एक 'ऊर्णुञ्' धातु स्वरितेत् कहा गया है। 'द्यु' आदि तीन धातु परस्मैपदी बताये गये हैं॥ ३९॥ नारद! केवल 'ष्टुञ्' धातुको शाब्दिकोंने उभयपदी कहा है॥ ४०॥ 'रा' आदि अठारह धातु परस्मैपदी माने गये हैं। नारद! फिर केवल 'इङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है॥ ४१॥ उसके बाद 'विद' आदि चार धातु परस्मैपदी माने गये हैं। 'ञिष्वप् शये' यह धातु परस्मैपदी कहा गया है॥ ४२॥ मुने! 'श्वस' आदि धातु मैंने तुम्हें परस्मैपदी कहे हैं। 'दीधीङ्' और 'वेवीङ्'—ये दो धातु आत्मनेपदी माने गये हैं॥ ४३॥ 'षस' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। मुनिश्रेष्ठ! 'चर्करीतं च' यह यङ्लुगन्तका प्रतीक है। यह अदादि माना गया है। 'ह्नुङ्' धातु अनुदात्तेत् कहा गया है॥ ४४॥ इस प्रकार अदादि गणमें तिहत्तर धातु बताये गये हैं।

'हु' आदि चार धातु (हु, भी, ह्री और पृ) परस्मैपदी माने गये हैं॥ ४५॥ 'भृञ्' धातु स्वरितेत् और 'ओहाक्' धातु उदात्तेत् है। 'माङ्' और 'ओहाङ्'—ये दोनों धातु अनुदात्तेत् हैं। दानार्थक 'दा' और धारणार्थक 'धा'—इनमें स्वरितकी इत्संज्ञा हुई है॥ ४६॥ 'णिजिर्' आदि तीन धातु स्वरितेत् कहे गये हैं। 'घृ' आदि बारह धातु परस्मैपदी माने गये हैं॥४७॥ इस प्रकार ह्वादि (जुहोत्यादि) गणमें बाईस धातु कहे गये हैं।

'दिव्' आदि पचीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं॥ ४८॥ नारद! 'षूङ्' आदि 'दूङ्'—ये आत्मनेपदी हैं। 'पूङ्' आदि सात धातु ओदित् और आत्मनेपदी माने गये हैं॥ ४९॥ विप्रवर! 'लीङ्' आदि धातु यहाँ आत्मनेपदी बताये गये हैं। श्यति (शो) आदि चार धातु परस्मैपदी हैं॥ ५०॥ मुने! 'जनी' आदि पंद्रह धातु आत्मनेपदी हैं। 'मृष' आदि पाँच धातु 'स्वरितेत्' कहे गये हैं॥ ५१॥ 'पद' आदि ग्यारह धातु आत्मनेपदी हैं। यहाँ वृद्धि-अर्थमें ही अकर्मक 'राध' धातुका ग्रहण है। यह स्वादि और चुरादिगणमें भी पढ़ा गया है॥ ५२॥ राध आदि तेरह धातु उदात्तेत् कहे गये हैं। तत्पश्चात् रध आदि आठ धातु परस्मैपदी बताये गये हैं॥ ५३॥ शम आदि छियालीस धातु उदात्तेत् कहे गये हैं। इस प्रकार दिवादिमें एक सौ चालीस धातु माने गये हैं॥ ५४॥

'सु' आदि नौ धातु स्वरितेत् कहे गये हैं। मुने! 'दु' आदि सात धातु परस्मैपदी बताये गये हैं॥ ५५॥ 'अश' और 'ष्टिघ' ये दो धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। यहाँ 'तिक' आदि चौदह धातुओंको परस्मैपदी माना गया है॥ ५६॥ विप्रवर! स्वादिगणमें कुल बत्तीस धातु बताये गये हैं।

मुनिश्रेष्ठ! 'तुद' आदि छः स्वरितेत् हैं॥ ५७॥ 'ऋषी' धातु उदात्तेत् है और 'जुषी' आदि चार धातु आत्मनेपदी हैं। 'व्रश्च' आदि एक सौ पाँच धातु उदात्तेत् कहे गये हैं॥ ५८॥ मुनीश्वर! यहाँ केवल 'गुरी' धातु अनुदात्तेत् बताया गया है। 'णू' आदि चार धातु परस्मैपदी माने गये हैं॥ ५९॥ 'कुङ्' धातुको 'अनुदात्तेत्' कहा गया है। यहीं कुटादिगणकी पूर्ति हुई है। 'पृङ्' और 'मृङ्'—ये आत्मनेपदी धातु हैं। 'रि' और 'पि' से छः

धातुतक परस्मैपदमें गिने गये हैं॥ ६०॥ 'दृङ्', 'धृङ्'—ये दो धातु आत्मनेपदी कहे गये हैं। मुने! 'प्रच्छ' आदि सोलह धातु परस्मैपदी बताये गये हैं॥ ६१॥ मुने! फिर 'मिल' आदि छः धातु स्वरितेत् कहे गये हैं। इसके बाद 'कृती' आदि तीन धातु परस्मैपदी हैं॥ ६२॥ इस प्रकार तुदादिमें एक सौ सत्तावन धातु हैं।

'रुध' आदि नौ धातु स्वरितेत् हैं। 'कृती' धातु परस्मैपदी है। 'ञिइन्धी'से तीन धातुतक अनुदात्तेत् कहे गये हैं। तत्पश्चात् 'शिष पिष' आदि बारह धातु उदात्तेत् हैं। इस प्रकार रुधादि-गणमें कुल पचीस धातु हैं॥ ६३-६४॥

'तनु' धातुसे लेकर सात धातु 'स्वरितेत्' कहे गये हैं। 'मनु' और 'वनु'—ये दोनों आत्मनेपदी हैं। 'कृञ्' धातु स्वरितेत् कहा गया है॥ ६५॥ विप्रवर! इस प्रकार वैयाकरणोंने तनादिगणमें दस धातुओंकी गणना की है।

'क्री' आदि सात धातु उभयपदी हैं। मुनीश्वर! 'स्तम्भु' आदि चार सौत्र (सूत्रोक्त) धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'क्रूञ्' आदि बाईस धातु उदात्तेत् कहे गये हैं॥ ६६-६७॥ 'वृङ्' धातु आत्मनेपदी है। 'श्रन्थ' आदि इक्कीस धातु परस्मैपदी हैं और 'ग्रह' धातु स्वरितेत् है॥ ६८॥ इस प्रकार विद्वानोंने क्र्यादिगणमें बावन धातु गिनाये हैं।

चुर आदि एक सौ छत्तीस धातु ञित् (उभयपदी) माने गये हैं॥ ६९॥ मुने! चित आदि अठारह (या अड़तीस?) आत्मनेपदी माने गये हैं। 'चर्च'से लेकर 'धृष' धातुतक 'ञित्' (उभयपदी) कहे गये हैं॥ ७०॥ इसके बाद अड़तालीस अदन्त धातु भी उभयपदी ही हैं। 'पद' आदि दस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं॥ ७१॥ यहाँ सूत्र आदि आठ धातुओंको भी मनीषी पुरुषोंने उभयपदी कहा है। प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें णिच् और प्रायः सब बातें इष्ठ प्रत्ययकी भाँति होती हैं। तात्पर्य यह कि 'इष्ठ' प्रत्यय परे रहते जैसे प्रातिपदिक, पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्मतुब्लोप, यणादिलोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार 'णि' परे रहते भी सब कार्य होंगे॥ ७२॥ 'उसे करता है, अथवा उसे कहता है' इस अर्थमें भी प्रातिपदिकसे णिच् प्रत्यय होता है। प्रयोजक व्यापारमें प्रेषण आदि वाच्य हों तो धातुसे णिच् होता है। कर्तृ-व्यापारके लिये जो करण है, उससे धात्वर्थमें णिच् होता है। चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत् हैं। किंतु 'संग्राम' धातुको शब्दशास्त्रके विद्वानोंने अनुदात्तेत् माना है। स्तोभ आदि सोलह धातु अदन्त धातुओंके निदर्शन हैं॥ ७३-७४॥ 'बहुलमेतन्निदर्शनम्'—इसमें जो बहुल शब्द आया है, उससे अन्य जो सूत्रोक्त लौकिक और वैदिक धातु हैं, उन सबका ग्रहण होता है। सभी धातु सब गणोंमें हैं और सबके अनेक अर्थ हैं॥ ७५॥ इन धातुओंके अतिरिक्त सानादि[1] प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु-संज्ञा होती है। नामधातु भी धातु ही हैं। नारद! इस प्रकार अनन्त धातुओंकी उद्भावना हो सकती है। यहाँ संक्षेपसे सब कुछ बताया गया है। इसका विस्तार तत्सम्बन्धी ग्रन्थोंमें है॥ ७६॥

(उपदेशावस्थामें एकाच् अनुदात्त धातुसे परे वलादि आर्धधातुकको इट्का आगम नहीं होता। जिनमें यह निषेध लागू होता है, उन धातुओंको 'अनिट्' कहते हैं। उन्हीं अनिट् या एकाच् अनुदात्त धातुओंका यहाँ संग्रह किया जाता है—) अजन्त धातुओंमें—ऊकारान्त, ऋकारान्त, यु, रु,

१. सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचारक्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, इयङ्, णिङ्—ये बारह प्रत्यय सनादि कहलाते हैं।

क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ्, वृङ्, वृञ्—इन सबको छोड़कर शेष सभी अनुदात्त (अर्थात् अनिट्) माने गये हैं॥ ७७॥ शक्लृ, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज्॥ ७८॥ अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता), विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध्, क्षुध्, बुध्॥ ७९॥ बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप्॥ ८०॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्, यभ्, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्रुश्, दंश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृष्॥ ८१॥ त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, घस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह्॥ ८२॥ ये हलन्तोंमें एक सौ दो धातु अनुदात्त माने गये हैं। 'च' आदिकी निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न दिशा, देश और कालमें प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थोंके बोधक होते हैं। विप्रवर! वे देश-कालके भेदसे सभी लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं। यहाँ गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अनुनासिकपाठ—'पारायण' कहा गया है। नारद! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्यसिद्ध हैं॥ ८३—८५॥ फिर वैयाकरणोंद्वारा जो शब्दोंका संग्रह किया जाता है, उसमें उन शब्दोंका पारायण ही मुख्य हेतु है (पारायण-जनित पुण्यलाभके लिये ही उनका संकलन होता है)। सिद्ध शब्दोंका ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदिके द्वारा लघुमार्गसे सम्यक् निरूपण किया जाता है। इस प्रकार तुमसे निरुक्तका यत्किंचित् ही वर्णन किया गया है। नारद! इसका पूर्णरूपसे वर्णन तो कोई भी कर ही नहीं सकता॥ ८६—८८॥ (पूर्वभाग द्वितीयपाद अध्याय ५३)

## त्रिस्कन्ध ज्यौतिषके वर्णन-प्रसङ्गमें गणितविषयका प्रतिपादन

**सनन्दन उवाच**

**ज्यौतिषाङ्गं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।**
**यस्य विज्ञानमात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ १॥**
**त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम्।**
**गणितं जातकं विप्र संहितास्कन्धसंज्ञितम्॥ २॥**
**गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये।**
**अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम्॥ ३॥**
**छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम्।**

**श्रीसनन्दनजी कहते हैं—**देवर्षे! अब मैं ज्यौतिष नामक वेदाङ्गका वर्णन करूँगा, जिसका पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उपदेश किया है तथा जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्योंके धर्मकी सिद्धि हो सकती है॥ १॥ ब्रह्मन्! ज्यौतिषशास्त्र चार लाख श्लोकोंका बताया गया है। उसके तीन[1] स्कन्ध हैं, जिनके नाम ये हैं—गणित (सिद्धान्त), जातक (होरा) और संहिता॥ २॥ गणितमें परिकर्म[2], ग्रहोंके मध्यम एवं स्पष्ट करनेकी रीतियाँ बतायी गयी हैं। इसके सिवा अनुयोग (देश, दिशा और कालका ज्ञान), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्र-शृङ्गोन्नति[3], ग्रहयुति (ग्रहोंका योग) तथा पात (महापात-सूर्य-

१. किसी-किसीके मतसे ज्यौतिषके पाँच स्कन्ध हैं—सिद्धान्त, होरा, संहिता, स्वर और सामुद्रिक। सिद्धान्तको ही गणित कहते हैं। होराका ही दूसरा नाम जातक है।

२. योग, अन्तर, गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—ये परिकर्म कहे गये हैं।

३. द्वितीयाको जो चन्द्रोदय होता है, उसमें कभी चन्द्रमाका दक्षिण सींग और कभी उत्तर सींग (नोक) ऊपरको उठा रहता है, उसीको 'चन्द्रशृङ्गोन्नति' कहा गया है। ज्यौतिषमें उसके परिणामका विचार किया गया है।

चन्द्रमाके क्रान्तिसाम्य)-का साधन-प्रकार कहा गया है ॥ ३ १/२ ॥

**जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिवियोनिजे ॥ ४ ॥**
**निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रमः।**
**कर्माजीवं चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसाः ॥ ५ ॥**
**चन्द्रयोगाः प्रव्रज्याख्या राशिशीलं च दृक्फलम्।**
**ग्रहभावफलं चैवाश्रययोगप्रकीर्णके ॥ ६ ॥**
**अनिष्टयोगाः स्त्रीजन्मफलं निर्याणमेव च।**
**नष्टजन्मविधानं च तथा द्रेष्काणलक्षणम् ॥ ७ ॥**

जातकस्कन्धमें राशिभेद, ग्रहयोनि, (ग्रहोंकी जाति, रूप और गुण आदि) वियोनिज (मानवेतर-जन्मफल), गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशाक्रम, कर्माजीव (आजीविका), अष्टकवर्ग, राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग, राशिशील, ग्रहदृष्टिफल, ग्रहोंके भावफल, आश्रययोग, प्रकीर्ण, अनिष्टयोग, स्त्रीजातक-फल, निर्याण (मृत्युविषयक विचार), नष्ट-जन्म-विधान (अज्ञात जन्म-कालको जाननेका प्रकार) तथा द्रेष्काणों[1]के स्वरूप—इन सब विषयोंका वर्णन है ॥ ४—७ ॥

**संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम्।**
**तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्द्धसंज्ञकाः ॥ ८ ॥**
**मुहूर्तोपग्रहाः सूर्यसंक्रान्तिर्गोचरः क्रमात्।**
**चन्द्रताराबलं चैव सर्वलग्नार्तवाह्वयः ॥ ९ ॥**
**आधानपुंससीमन्तजातनामान्नभुक्तयः।**
**चौलं कर्णच्छिदा मौञ्जी क्षुरिकाबन्धनं तथा ॥ १० ॥**
**समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम्।**
**यात्रा प्रवेशनं सद्योवृष्टिः कर्मविलक्षणम् ॥ ११ ॥**
**उत्पत्तिलक्षणं चैव सर्वं संक्षेपतो ब्रुवे।**

अब संहितास्कन्धके स्वरूपका परिचय दिया जाता है। उसमें ग्रहचार (ग्रहोंकी गति), वर्षलक्षण, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त, उपग्रह, सूर्य-संक्रान्ति, ग्रहगोचर, चन्द्रमा और ताराका बल, सम्पूर्ण लग्नों तथा ऋतुदर्शनका विचार, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौञ्जीबन्धन (वेदारम्भ), क्षुरिकाबन्धन, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा, गृहप्रवेश, तत्काल वृष्टिज्ञान, कर्मवैलक्षण्य तथा उत्पत्तिका लक्षण—इन सब विषयोंका संक्षेपसे वर्णन करूँगा (८—११ १/२ ॥

**एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम् ॥ १२ ॥**
**प्रयुतं कोटिसंज्ञा चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।**
**निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च ॥ १३ ॥**
**अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः।**
**क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा ॥ १४ ॥**
**हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात् तेनैवोपान्तिमादिकान्।**
**शुद्ध्येद्धरो यद्गुणश्च भाज्यान्त्यात् तत्फलं मुने ॥ १५ ॥**

[अब गणितका प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है—]
एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शङ्कु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शङ्कु) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं। यथास्थानीय अङ्कोंका योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रमसे करना चाहिये[2] ॥ १२—१४ ॥

१. राशिके तृतीय भाग (१० अंश)-की 'द्रेष्काण' संज्ञा है।

२. यथा—२+५+३२+१९३+१८+१०+१००—इन्हें क्रम या व्युत्क्रम (इकाई या सैकड़ाकी ओर)-से जोड़ा जाय, समान स्थानीय अङ्कोंका परस्पर योग किया जाय—अर्थात् इकाईको इकाईके साथ और दहाई आदिके दहाई आदिके साथ जोड़ा जाय तो सर्वथा योगफल ३६० ही होगा। इसी प्रकार १००००—३६० इसमें ३६० को १०००० के नीचे लिखकर पूर्ववत् समान स्थानीय अङ्कमेंसे उसी स्थानवाले अङ्कको क्रम या व्युत्क्रमसे भी घटाया जाय तो शेष सर्वथा ९६४० ही होगा।

गुण्यके अन्तिम अङ्कको गुणकसे गुणना चाहिये। फिर उसके पार्श्ववर्ती अङ्कको भी उसी गुणकसे गुणना चाहिये। इस तरह आदि अङ्कतक गुणन करनेपर गुणनफल प्राप्त हो जाता है[1], मुने! इसी प्रकार भागफल जाननेके लिये भी यत्न करे। जितने अङ्कसे भाजकके साथ गुणा करनेपर भाज्यमेंसे घट जाय, वही अङ्क लब्धि अथवा भागफल होता है[2] ॥ १५ ॥

**समाङ्कघातो वर्गः स्यात् तमेवाहुः कृतिं बुधाः।**
**अन्त्यात्तु विषमात्त्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक्॥ १६ ॥**
**द्विगुणेनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत् क्रमात्।**
**तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत् पुनः ॥ १७ ॥**
**एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर।**

दो समान अङ्कोंके गुणनफलको वर्ग कहा गया है। विद्वान् पुरुष उसीको कृति कहते हैं। (जैसे ४ का वर्ग ४×४ = १६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है)[3] [वर्गमूल जाननेके लिये दाहिने अङ्कसे लेकर बायें अङ्कतक अर्थात् आदिसे अन्ततक विषम और समका चिह्न कर देना चाहिये। खड़ी लकीरको विषमका और पड़ीको समका चिह्न माना गया है]। अन्तिम विषममें जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिये। उस वर्गका मूल लेना और उसे पृथक् रख देना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर द्विगुणित मूलसे सम अङ्कमें भाग दे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषममें घटा दे, फिर उसे दूना करके पङ्क्तिमें रख दे। मुनीश्वर! इस प्रकार बार-बार करनेसे पङ्क्तिका आधा वर्गमूल[4] होता है ॥ १७$\frac{१}{२}$ ॥

---

१. यहाँपर 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस उक्तिके अनुसार आदि-अन्त समझने चाहिये। जैसे—'१३५×१२' इसमें १३५ गुण्य है और १२ गुणक है। गुण्यका अन्तिम अङ्क हुआ १ उसमें १२ से गुणा पहले होगा, फिर उसके बादवाले ३ के साथ फिर ५ के साथ। यथा— १२ / १३५ / १६२० वास्तवमें यह गुणन-शैली उस समयकी है, जब लोग धूल बिछाकर उसपर अङ्गुलिसे गणित किया करते थे। आधुनिक शैली उससे भिन्न है। रूप-विभाग और स्थान-विभागसे इस गुणनके अनेक प्रकार हो जाते हैं; इसका विस्तार लीलावतीमें देखना चाहिये।

२. १६२०÷१२=१३५ भागफल हुआ। जैसे—

भाजक भाज्य भागफल
१२)१६२०(१३५
१२
४२
३६
६०
६०
×

३. वर्ग या कृति निकालनेके और भी बहुत-से प्रकार लीलावतीमें दिये गये हैं।

४. जैसे १६३८४ का वर्गमूल उपर्युक्त विधिसे निकालनेपर १२८ आता है—

१६ ३ ८ ४
१
×६
४
२३
४
१९८
१९२
६४
६४
×

१२८
२५६ पंक्ति

अङ्कोंको स्थापनकर दायेंसे बायें तरफ खड़ी-पड़ी रेखा देकर विषम-सम अङ्क समझना चाहिये।

समत्र्यङ्कहतिः प्रोक्तो घनस्तत्र विधिः पदे॥ १८॥
प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समे द्वे च ततः परम्।
विशोध्यं विषमादन्त्याद्घनं तन्मूलमुच्यते॥ १९॥
त्रिनिघ्न्यामं मूलकृत्या समं मूले न्यसेत् फलम्।
तत्कृतिञ्चान्त्यनिहतान्त्रिघ्नीं चापि विशोधयेत्॥ २०॥
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत्।

समान तीन अङ्कोंके गुणनफलको 'घन'[१] कहा गया है। अब घनमूल निकालनेकी विधि बतायी जाती है—दाहिनेके प्रथम अङ्कपर घन या विषमका चिह्न (खड़ी लकीरके रूपमें) लगावे, उसके वामभागमें पार्श्ववर्ती दो अङ्कोंपर (पड़ी लकीरके रूपमें) अघन या समका चिह्न लगावे। इसी प्रकार अन्तिम अङ्कतक एक घन (विषम) और दो अघन (सम)-के चिह्न लगाने चाहिये। अन्तिम या विषम घनमें जितने घन घट सकें उतने घटा दे। उस घनको अलग रखें। उसका घनमूल ले और उस घनमूलका वर्ग करे, फिर उसमें तीनसे गुणा करे। उससे आदि अङ्कमें भाग दे, लब्धिको अलग लिख ले, उस लब्धिका वर्ग करे और उसमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एवं तीनसे गुणा करे, फिर उसके बादके अङ्कमें उसे घटा दे तथा अलग रखी हुई लब्धिके घनको अगले घन अङ्कमें घटा दे, इस प्रकार बार-बार करनेसे घनमूल[२] सिद्ध होता है॥ १८—२० $\frac{१}{२}$॥

अन्योन्यहारनिहतौ हरांशौ तु समच्छिदा॥ २१॥
लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना हि सवर्णनम्।
भागप्रभागे विज्ञेयं मुने शास्त्रार्थचिन्तकैः॥ २२॥
अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः।
भागास्तलस्थहारेण हारं स्वांशाधिकेन तान्॥ २३॥
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिन्तयेत् तथा।
कार्यस्तुल्यहरांशानां योगश्चाप्यन्तरो मुने॥ २४॥
अहारराशौ रूपं तु कल्पयेद्धरमप्यथ।
अंशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम्॥ २५॥
छेदं चापि लवं विद्वन् परिवर्त्य हरस्य च।
शेषः कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणनाविधिः॥ २६॥

भिन्न अङ्कोंके परस्पर हरसे हर (भाजक) और अंश (भाज्य) दोनोंको गुण देनेसे सबके नीचे बराबर हर[३] हो जाता है। भागप्रभागमें अंशको अंशसे और हरको हरसे गुणा करना चाहिये। भागानुबन्ध एवं भागापवाहमें[४] यदि एक अङ्क अपने अंशसे अधिक या ऊन होवे तो तलस्थ हरसे ऊपरवाले हरको गुण देना चाहिये। उसके बाद अपने अंशसे अधिक ऊन किये हुए हरसे (अर्थात् भागानुबन्धमें हर अंशका योग

---

१. जैसे ३ का घन हुआ ३×३×३=२७।

२. उदाहरण इस प्रकार है—

१९६८३ का घनमूल निकालना है। मूलोक्त विधिके अनुसार इसकी क्रिया इस प्रकार होगी—

| |
१९ ६ ८ ३
८
२×२×३= १२) ११६ ( २७ = घनमूल
८४
३२८
७×७×२×३ २९४
३४३
७×७×७= ३४३
०००

८ घन, उसका मूल २
२ का वर्ग = ४
४ × ३ = १२
७ का वर्ग ४९
४९ × २ = ९८
९८ × ३ = २९४

३. यथा—$\frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{१}{४}$ यहाँ परस्पर हरसे हर और अंश दोनोंको गुणित किया जाता है। जिस हरसे गुणा करते हैं, वह अपने सिवा दूसरे हर और अंशको ही गुणित करता है। जैसे—

$\frac{१}{२}, \quad \frac{२}{६}, \quad \frac{२}{८}$
$\frac{३}{६}, \quad \frac{२}{६}, \quad \frac{६}{२४}$
$\frac{१२}{२४}, \quad \frac{८}{२४}, \quad \frac{६}{२४}$

इस प्रकार यहाँ सबका हर समान हो गया। ऐसा करके ही भिन्नाङ्कोंका योग या अन्तर किया जाता है। यथा—

$\frac{१}{२}+\frac{१}{३}+\frac{१}{४}=\frac{१२+८+६}{२४}=\frac{२६}{२४}=\frac{१३}{१२}$

४. किसी भागको जोड़नेको भागानुबन्ध और घटानेको भागापवाह कहते हैं।

करके और भागापवाहमें हर अंशका अन्तर करके) अंशको गुण देना चाहिये। ऐसा करनेसे भागानुबन्ध और भागापवाहका फल सिद्ध होगा[1]। जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हरकी कल्पना करनी चाहिये। भिन्न गुणन-साधनमें अंश-अंशका गुणन करना और हर-हरके गुणनसे भाग देना चाहिये। इससे भिन्न गुणनमें फलकी सिद्धि होगी। (यथा २/७×३/८ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, इनमें अंश-अंशसे गुणा करनेपर २×३=६ हुआ और हर-हरके गुणनसे ७×८=५६ हुआ। फिर ६÷५६ करनेसे ६/५६ जिसे दोसे काटनेपर ३/२८ उत्तर हुआ) ॥ २१—२५ ॥ विद्वन्! भिन्न संख्याके भागमें भाजकके हर और अंशको परिवर्तित कर (हरको अंश और अंशको हर बनाकर) फिर भाज्यके हर-अंशके साथ गुणन-क्रिया करनी चाहिये, इससे भागफल सिद्ध होता है। (यथा ३/८ ४/५ में हर और अंशके परिवर्तनसे ३/८×५/४=१५/३२ यही भागफल हुआ) ॥ २६ ॥

**हरांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने।**
**पदसिद्ध्यै पदे कुर्यादथो खं सर्वतश्च खम्॥ २७॥**

भिन्नाङ्कके वर्गादि-साधनमें यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनोंका घन करे। इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनोंका वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनोंका घनमूल निकालना चाहिये। (यथा—३/७ का वर्ग हुआ ९/४९ और मूल हुआ ३/७, इसी प्रकार ३/७ का घन हुआ २७/३४३ और मूल हुआ ३/७) ॥ २७ ॥

**छेदं गुणं गुं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम्।**
**ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये॥ २८॥**
**अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः।**
**अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत्॥ २९॥**

विलोमविधिसे राशि जाननेके लिये दृश्यमें हरको गुणक, गुणकको हर, वर्गको मूल, मूलको वर्ग, ऋणको धन और धनको ऋण बनाकर अन्तमें उलटी क्रिया करनेसे राशि (इष्ट संख्या) सिद्ध होती है। विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोड़ा गया हो वहाँ हरमें अंशको जोड़कर और जहाँ अपना अंश घटाया गया हो, वहाँ हरमें अंशको घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों-का-त्यों रहे। फिर दृश्य राशिमें विलोम क्रिया उक्त रीतिसे करे तो राशि सिद्ध होती है[2] ॥ २८-२९ ॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—१/८ का १/३ उसमेंसे घटाओ और शेषका १/२ उसी शेषमें जोड़ो, इसकी न्यास-विधि (लिखनेकी रीति) इस प्रकार होगी—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १/८ | १×३×२ / ८×२×३ | = १/८ | उत्तर हुआ। |
| १/३ | | | |
| +१/२ | | | |

२. उदाहरणके लिये यह प्रश्न लीजिये—वह कौन-सी संख्या है, जिसको तीनसे गुणा करके उसमें अपना ३/४ जोड़ देते हैं, फिर सातका भाग देते हैं, पुनः अपना १/३ घटा देते हैं, फिर उसका वर्ग करते हैं, पुनः उसमें ५२ घटाकर उसका मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़कर १० का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है। उस संख्या अथवा राशिको निकालना है। इसमें मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया की जायगी—

| | | | |
|---|---|---|---|
| गुणक | ३ | हर | ८४÷३=२८ राशि |
| धन | ३/४ | अपना ३/७ ऋण | १४७-६३=८४ |
| हर | ७ | गुणक | २१×७=१४७ |
| ऋण | १/३ | अपना १/२ धन | १४+७=२१ |
| वर्ग | = | मूल | १९६=१४ |
| ऋण | ५२ | धन | १४४+५२=१९६ |
| मूल | = | वर्ग | १२=१४४ |
| धन | ८ | ऋण | २०-८=१२ |
| हर | १० | गुणक | २×१०=२० |
| | | दृश्य | २ |

अतः विलोम गणितकी विधिसे वह संख्या २८ निश्चित हुई।

**उद्दिष्टराशिः संक्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतः।**
**इष्टघ्नदृष्टमेतेन भक्तं राशिरितीरितम्॥ ३०॥**

अभीष्ट संख्या जाननेके लिये इष्ट राशिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशिको गुणा करे या भाग दे। कोई अंश घटानेको कहा गया हो तो घटावे और जोड़नेको कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्नमें जो-जो क्रियाएँ कही गयी हों, वे इष्टराशिमें करके फिर जो राशि निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्टमें भाग दे, उसमें जो लब्धि हो, वही इष्ट राशि है[1]॥ ३०॥

**योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितो राशी तु संक्रमे।**
**राश्यन्तरहृतं वर्गान्तरं योगस्ततश्च तौ॥ ३१॥**

संक्रमण-गणितमें (यदि दो संख्याओंका योग और अन्तर ज्ञात हो तो) योगको दो जगह लिखकर एक जगह अन्तरको जोड़कर आधा करे तो एक संख्याका ज्ञान होगा और दूसरी जगह अन्तरको घटाकर आधा करे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी—इस प्रकार दोनों राशियाँ (संख्याएँ) ज्ञात हो जाती हैं[2]। वर्गसंक्रमणमें (यदि दो संख्याओंका वर्गान्तर तथा अन्तर ज्ञात हो तो) वर्गान्तरमें अन्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है, वही उनका योग है; योगका ज्ञान हो जानेपर फिर पूर्वोक्त प्रकारसे दोनों संख्याओंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये[3]॥ ३१॥

**गजघ्नीष्टकृतिर्व्येका दलिता चेष्टभाजिता।**
**एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः॥ ३२॥**
**द्विगुणेष्टहृतं रूपं सेष्टं प्राग्रूपकं परम्।**
**वर्गयोगान्तरे व्येके राश्योर्वर्गौ स्त एतयोः॥ ३३॥**
**इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोऽष्टघ्नौ च सैककः।**
**आद्यः स्यातामुभे व्यक्ते गणितेऽव्यक्त एव च॥ ३४॥**

वर्गकर्मगणितमें[4] इष्टका वर्ग करके उसमें आठसे गुणा करे, फिर एक घटा दे, उसका आधा करे। तत्पश्चात्—उसमें इष्टसे भाग दे तो एक राशि ज्ञात होगी। फिर उसका वर्ग करके आधा करे और उसमें एक जोड़ दे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी[5]॥ ३२॥ अथवा कोई इष्ट-कल्पना करके उस द्विगुणित इष्टसे १ में भाग देकर लब्धिमें इष्टको जोड़े तो प्रथम संख्या होगी और दूसरी संख्या १ होगी। ये दोनों संख्याएँ वे ही होंगी, जिनके वर्गोंके योग और अन्तरमें एक घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है[6]॥ ३३॥ किसी इष्टके वर्गका वर्ग तथा पृथक् उसीका घन करके दोनोंको पृथक्-पृथक् आठसे गुणा करे। फिर पहलेमें एक जोड़े तो दोनों संख्याएँ ज्ञात होंगी। यह विधि व्यक्त और अव्यक्त दोनों गणितोंमें उपयुक्त है[7]॥ ३४॥

---

१. इसको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये यह उदाहरणात्मक प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है—वह कौन-सी संख्या है, जिसे ५ से गुणा करके उसमें उसीका तृतीयांश घटाकर दससे भाग देनेपर जो लब्धि हो उसमें राशिके १/३, १/२, १/४ भाग जोड़नेसे ६८ होता है। इसमें गुणक ५। ऊन १/३। हर १०। युक्त होनेवाले राश्यंश १/३, १/२, १/४ और दृश्य संख्या ६८ है। कल्पना कीजिये कि इष्ट राशि ३ है। इसमें प्रश्नकर्ताके कथनानुसार ५ से गुणा किया तो १५, इसमें अपना १/३ अर्थात् ५ घटा दिया तो १० हुआ। इसमें दससे भाग दिया तो १ लब्धि अङ्क हुआ, उसमें कल्पित राशि ३ के १/३, १/२, १/४ जोड़नेसे १/१+३/३+३/२+३/४=(१२+१२+१८+९)/१२=५१/१२=१७/४ हुआ। फिर दृश्य ६८ में कल्पित इष्ट ३ से गुणा किया और १७/४ से भाग दिया तो (६८×३×४)/१७=४८ यही इष्ट संख्या हुई।

२. जैसे किसीने पूछा—वे दोनों कौन-सी संख्याएँ हैं, जिनका योग १०१ और अन्तर २५ है? यहाँ योगको दो जगह लिखा—

| | |
|---|---|
| १०१ | १०१ |
| २५ जोड़ा | २५ घटाया |
| १२६÷२=६३ | ७६÷२=३८ उत्तर—वे दोनों संख्याएँ ६३ एवं ३८ हैं। |

३. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—जिन दो संख्याओंका अन्तर ८ और वर्गान्तर ४०० है, उन्हें बताओ। ४००÷८=५० यह योग हुआ ५०+८÷२=२९ एक संख्या। ५०-८÷२=२१ दूसरी संख्या हुई। अथवा वर्गान्तरमें राशियोगका भाग देनेसे अन्तर ज्ञात होगा। यथा—४००÷५०=८ यह राश्यन्तर है। फिर पूर्वोक्त प्रक्रियासे दोनों राशियाँ ज्ञात होंगी।

४. जहाँ किन्हीं दो संख्याओंका वर्गयोग और वर्गान्तर करके दोनोंमें पृथक्-पृथक् १ घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है उसको 'वर्गकर्म' कहते हैं।

५. कल्पना कीजिये कि इष्ट १/२ है, उसका वर्ग हुआ १/४ उसको आठसे गुणा किया तो २ हुआ। उसमें १ घटाकर आधा किया तो १/२ हुआ, उसमें इष्ट १/२ से भाग दिया तो १ हुआ—यह प्रथम संख्या है। उसका वर्ग किया तो एक ही हुआ। इसका आधा करनेसे १/२ हुआ। इसमें एक जोड़नेसे ३/२ हुआ यह दूसरी संख्या हुई।

६. कल्पना कीजिये कि इष्ट १ है, उसको दोसे गुणा किया तो २ हुआ, उससे १ में भाग दिया तो १÷२/१=१×१/२=१/२ हुआ। उसमें इष्ट १ जोड़ दिया तो १ १/२=३/२ प्रथम संख्या निकल आयी और दूसरी संख्या १ है ही।

७. कल्पना कीजिये कि इष्ट २ है। इसके वर्गका वर्ग हुआ १६ और उसका घन हुआ ८। दोनोंको अलग-अलग ८ से गुणा करने-

**गुणघ्नमूलोनयुते सगुणार्धकृतेः पदम्।**
**दृष्टस्य च गुणार्धोनयुतं वर्गीकृतं गुणः॥ ३५॥**
**यदा लवोनयुग्राशिर्दृश्यं भागोनयुग्भुवा।**
**भक्तं तथा मूलगुणं ताभ्यां साध्योऽथ व्यक्तवत्॥ ३६॥**

गुणकर्म अपने इष्टाङ्कगुणित मूलसे ऊन या युक्त होकर यदि कोई संख्या दृश्य हुई हो तो मूल गुणकके आधेका वर्ग दृश्य-संख्यामें जोड़कर मूल लेना चाहिये। उसमें क्रमसे मूल गुणकके आधा जोड़ना और घटाना चाहिये। (अर्थात् जहाँ इष्टगुणितमूलसे ऊन होकर दृश्य हो वहाँ गुणकार्धको जोड़ना तथा यदि इष्टगुणितमूलयुक्त होकर दृश्य हो तो उक्त मूलमें गुणकार्ध घटाना चाहिये) फिर उसका वर्ग कर लेनेसे प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट राशि (संख्या) सिद्ध होती है[1]। यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भागसे भी ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भागको १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणकमें भाग दे; फिर इस नूतन दृश्य और मूलगुणकसे पूर्ववत् राशिका साधन करना चाहिये॥ ३५-३६॥

**प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम्।**
**इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात्॥ ३७॥**

(त्रैराशिकमें) प्रमाण और इच्छा ये समान जातिके होते हैं, इन्हें आदि और अन्तमें रखे, फल भिन्न जातिका है, अतः उसे मध्यमें स्थापित करे। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणके द्वारा भाग देनेसे लब्धि इष्टफल होती है। (यह क्रम त्रैराशिक बताया गया है।) व्यस्त त्रैराशिकमें इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिये। अर्थात् प्रमाण-फलको प्रमाणसे गुणा करके इच्छासे भाग देनेपर लब्धि इष्टफल होती है। (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियोंको जानकर इच्छाफल जाननेकी क्रियाको त्रैराशिक कहते हैं।)[2] ॥३७॥

---

पर एक हुआ १२८ और दूसरा हुआ ६४। यहाँ पहलेमें १ जोड़नेसे १२९ हुआ, यह पहली संख्या है और ६४ दूसरी संख्या हुई।

१. यदि कोई पूछे—किसी हंस-समूहके मूलका सातगुणित आधा (७/२) भाग सरोवरके तटपर चला गया और बचे हुए २ हंस जलमें ही क्रीडा करते देखे गये तो उन हंसोंकी कुल संख्या कितनी थी? यहाँ मूल गुणक ७/२ है। दृष्ट संख्या २ है। गुणार्ध हुआ ७/४ उसका वर्ग हुआ ४९/१६, उससे दृष्ट २ का योग करनेपर ८१/१६ हुआ। इसका मूल हुआ ९/४ फिर इसे गुणार्ध ७/४ से युक्त किया तो १६/४=४ हुआ, इसका वर्ग किया तो १६ हुआ, यही हंसकुलका मान है। (यह मूलोन दृष्टका उदाहरण है।)

भागोन दृष्टका उदाहरण इस प्रकार है—किसी व्यक्तिने अपने धनका आधा १/२ अपने पुत्रको दिया और धन-संख्याके मूलका १२ गुना भाग अपनी स्त्रीको दे दिया। इसके बाद उसके पास १०८०) बच गये तो बताओ उसके सम्पूर्ण धनकी संख्या क्या है?

उत्तर—इस प्रश्नमें मूलगुणक १२ है और १/२ भागसे ऊन दृष्ट १०८० है। अतः मूल श्लोकमें वर्णित रीतिके अनुसार भागको एकमें घटानेसे १—१/२=१/२ हुआ। इससे मूल गुणक १२ और दृश्य १०८० में भाग देनेसे क्रमशः नवीन मूलगुणक २४ और नवीन दृश्य २१६० हुआ। पुनः उपर्युक्त रीतिसे इस मूलगुणकके आधे १२ के वर्ग १४४ को दृश्यमें जोड़नेसे २३०४ हुआ। इसके मूल ४८ में गुणक २४ के आधे १२ को जोड़नेसे ६० हुआ और उसका वर्ग ३६०० हुआ; यही उत्तर है।

भागयुत दृष्टका उदाहरण—एक भगवद्भक्त प्रातःकाल जितनी संख्यामें हरिनामका जप करते हैं; उस संख्याके पञ्चमांशमें उसी जपसंख्याके मूलका १२ गुना जोड़नेसे जो संख्या हो, उतना जप सायंकालमें करते हैं, यदि दोनों समयकी जपसंख्या मिलकर १३२०० है तो प्रातःकाल और सायंकालकी पृथक्-पृथक् जपसंख्या बताइये।

उत्तर—यहाँ मूलगुणक १२ और भाग १/५से युत दृष्ट १३२०० है। अतः उक्त रीतिके अनुसार भागको १ में जोड़ा गया तो ६/५ हुआ। इससे मूलगुणक १२ और दृश्य १३२०० में भाग देनेपर नवीन मूलगुणक १० और नवीन दृश्य ११००० हुआ। उपर्युक्त रीतिके अनुसार गुणकके आधे ५ के वर्ग २५ को नवीन दृश्यमें जोड़नेपर ११०२५ हुआ। इसका मूल १०५ हुआ। इसमें नवीन गुणकके आधे ५ को घटानेसे १०० हुआ। इसका वर्ग १०००० है। यही प्रातःकालकी जपसंख्या हुई। शेष ३२०० सायंकालकी जपसंख्या हुई।

२. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—यदि पाँच रुपयेमें १०० आम मिलते हैं तो सात रुपयेमें कितने मिलेंगे? इस प्रश्नमें ५ प्रमाण है, १०० प्रमाण-फल है और ७ इच्छा है। प्रमाण और इच्छा एक जाति (रुपया) तथा प्रमाण-फल भिन्न जाति (आम) है। आदिमें प्रमाण, मध्यमें फल और अन्तमें इच्छाकी स्थापना की गयी—५) में १०० आम तो ७) में कितने? यहाँ प्रमाण-फल १०० को इच्छासे गुणा करके प्रमाणसे भाग दिया जायगा तो $\frac{१००\times७}{५}$ = १४० यह इच्छाफल हुआ (अर्थात् सात रुपयेके १४० आम हुए)।

जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलकी वृद्धि और इच्छाके ह्रासमें फलका ह्रास हो, वहाँ क्रम-त्रैराशिक होता है। जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलका ह्रास और इच्छाके ह्रासमें फलकी वृद्धि हो, वहाँ व्यस्तत्रैराशिक होता है। वैसे स्थलोंमें प्रमाणफलको प्रमाणसे गुणा करके उसमें इच्छाके द्वारा भाग देनेसे इच्छाफल होता है। इस प्रकारके व्यस्त-त्रैराशिकके कुछ परिगणित स्थल हैं—'जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने। भागहारे च राशीनां व्यस्तं त्रैराशिकं भवेत्॥' अर्थात् जीवोंकी वयस्के मूल्यमें, उत्तमके साथ अधम मोलवाले सोनेके तौलमें तथा किसी संख्यामें भिन्न-भिन्न भाजकसे भाग देनेमें व्यस्तत्रैराशिक होता है। एक उदाहरण लीजिये—३ आदमी मिलकर १० दिनमें एक काम पूरा करते हैं तो

पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्यपक्षं कृत्वा फलच्छिदाम्।
बहुराशिवधे भक्ते फलं स्वल्पवधेन च॥ ३८॥
इष्टकर्मविधेर्मूलं च्युतं मिश्रात् कलान्तरम्।
मानघ्नकालश्चातीतकालघ्नफलसंहृता: ॥ ३९॥
स्वयोगभक्ता मिश्रघ्ना: सम्प्रयुक्तदलानि च।

पञ्चराशिक, सप्तराशिक (नवराशिक, एकादशराशिक) आदिमें फल और हरोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करके (प्रमाण-पक्षवालेको इच्छा-पक्षमें और इच्छा-पक्षवालेको प्रमाण-पक्षमें रखकर) अधिक राशियोंके घातमें अल्पराशिके घातसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वही इच्छाफल है[1]॥ ३८॥ मिश्रधनको इष्ट मानकर इष्टकर्मसे मूलधनका ज्ञान करे, उसको मिश्रधनमें घटानेसे कलान्तर (सूद) समझना चाहिये।[2] अपने-अपने प्रमाण धनसे अपने-अपने कालको गुणा

---

१५आदमी कितने दिनमें करेंगे? यहाँ १०×३÷१५ करनेसे उत्तर आया २; अत: २ दिनमें काम पूरा करेंगे।

१. इसका प्रश्नात्मक उदाहरण इस प्रकार है—यदि १ मासमें १००) के ५) ब्याज होते हैं तो १२ महीनेमें १६) के कितने होंगे? इसका न्यास इस प्रकार है—

| प्रमाण-पक्ष | इच्छा-पक्ष | | अल्प | बहुत |
|---|---|---|---|---|
| १ | १२ | परस्पर पक्षनयन करके इस प्रकार न्यास किया गया। | १ | १२ |
| १०० | १६ | | १०० | १६ |
| ५ | ० | | ० | ५ |

बहुराशिके घात (गुणन) से—१२×१६×५=९६०
अल्पराशिके घात (गुणन) से—१×१००=१००
$९६० \div १०० = ९\frac{६०}{१००} = ९\frac{३}{५}$ रुपये ब्याज हुए।

इसी तरह मूलधन तथा ब्याज जानकर काल बताना चाहिये और काल तथा ब्याज जानकर मूलधन बताना चाहिये।

सप्तराशिकका उदाहरण इस प्रकार है—यदि ४ हाथ चौड़ी और ८ हाथ लम्बी १० दरियोंका मूल्य १००) रुपया है तो ८ हाथ चौड़ी तथा १० हाथ लम्बी २० दरियोंका मूल्य क्या होगा?

| प्रमाण-पक्ष | इच्छा-पक्ष | | अल्पराशि | बहुराशि |
|---|---|---|---|---|
| ४ | ८ | अन्योन्य पक्ष-नयनसे | ४ | ८ |
| ८ | १० | | ८ | १० |
| १० | २० | | १० | २० |
| १०० | | | | १०० |

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार $\frac{८×१०×२०×१००}{४×८×१०} = ५००)$ पाँच सौ रुपये। यही उत्तर हुआ। इसी प्रकार नवराशिक आदिको भी जानना चाहिये।

२. उदाहरण यह है—१ मासमें १००) के ५) ब्याजके हिसाबसे यदि बारह मासमें मूलधनसहित ब्याज १०००) हुए तो अलग-अलग मूलधन और ब्याजकी संख्या बताओ। इष्टकर्मसे मूलधन जाननेके लिये इष्ट ५ कल्पित मूलधन और दृश्य १००० मिश्रधन है। यहाँ कल्पित मूलधनसे पञ्चराशिकद्वारा ब्याज जाननेके लिये न्यास—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | १२ | परस्पर पक्षनयनसे | १ | १२ | बहुराशिके घात (गुणन)-में स्वल्पराशिके |
| १०० | ५ | | १०० | ५ | घात (गुणन) से भाग देनेपर |
| ५ | × | | × | ५ | $\frac{१२×५×५}{१००} = ३$ |

३. कल्पित ब्याज हुआ। कल्पित मिश्रधन ५+३=८, इससे इष्टगुणित दृश्यमें भाग देनेसे उद्दिष्ट मूलधन $\frac{१०००×५}{८} = ६२५)$ इसको मिश्रधन १००० में घटानेसे ३७५) ब्याजके हुए। संक्षेपसे इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

| | | |
|---|---|---|
| १ | १२ | लब्धिक्रमसे मूल ६२५) |
| १०० | १००० | ब्याज ३७५) |
| ५ | ० | |

अथवा इष्टकर्मसे कल्पित इष्ट १
पूर्वोक्त रीतिसे कलान्तर (सूद) ३/५ इससे युक्त १=८/५

$१००० \div \frac{८}{५} = \frac{१०००×५}{८} = ६२५)$ मूलधन    १०००—६२५=३७५) ब्याज

करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फलके घात (गुणा)-से भाग देना, लब्धिको पृथक् रहने देना, उन सबमें उन्हींके योगका पृथक्-पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधनसे गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रमसे प्रयुक्त व्यापारमें लगाये हुए धनखण्डके प्रमाण ज्ञात होते हैं[१] ॥ ३९ १/२ ॥

**बहुराशिफलात् स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥ ४० ॥**
**चेद्राशिजफलं मासफलाहतिहृतं चयः।**

पञ्चराशिकादिमें फल और हरको अन्योन्य पक्षनयन करनेसे इच्छा-पक्षमें फलके चले जानेसे इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाण-पक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणितके उदाहरणमें जब इच्छाफल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करनेसे प्रमाण-पक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष)-से अधिक होगा। यहाँ राशिजफलको इष्टमास और प्रमाण-फलके गुणनसे भाग देनेपर मूलधन होता है[२] ॥ ४० १/२ ॥

**क्षेपा मिश्रहताः क्षेपयोगभक्ताः फलानि च ॥ ४१ ॥**
**भजेच्छिदोंऽशैस्तैर्मिश्रे रूपं कालश्च पूर्तिकृत्।**

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—किसीने अपने ९४) रुपये मूलधनके तीन भाग करके एक भागको माहवारी पाँच रुपये सैकड़े ब्याज, दूसरे भागको तीन रुपये और तीसरे भागको चार रुपये सैकड़े ब्याजपर दिया। क्रमशः तीनों भागोंमें सात, दस और पाँच मासमें बराबर ब्याज मिले तो तीनों भागोंकी अलग-अलग संख्या बताओ।

| भाग १ | भाग २ | भाग ३ | मिश्रधन (सम्मिलित मूलधन) |
|---|---|---|---|
| प्रमाणकाल १ व्यतीतकाल ७ | प्र० का० १ व्य० का० १० | प्र० का० १ व्य० का० ५ | ९४ |
| प्रमाण धन १०० | प्रमाण धन १०० | प्रमाण धन १०० | |
| प्रमाण फल ५ | प्रमाण फल ३ | प्रमाण फल ४ | |

अपने प्रमाणकाल और प्रमाणधनके गुणनफलमें व्यतीतकाल और प्रमाण-फलके गुणनफलसे भाग देनेपर—

| | | |
|---|---|---|
| (१००×१=१००)/(७×५=३५) = २०/७ | (१००×१)/(३×१०) = १००/३० = १०/३ | (१००×१)/(४×५) = १००/२० = ५/१ |

इनमें इनके योग २३५/२१ से भाग देने और मिश्रधन (९४)-से गुणा करनेपर पृथक्-पृथक् भाग इस प्रकार होते हैं—

२०/७ ÷ २३५/१, २०/७ × २१/२३५ × ९४ = २४ यह प्रथम भाग हुआ।

१०/३ ÷ २३५/२१, १०/३ × २१/२३५ × ९४ = २८ यह द्वितीय भाग हुआ।

५/१ ÷ २३५/२१, ५/१ × २१/२३५ × ९४ = ४२ यह तृतीय भाग हुआ।

२. उदाहरण—एक मासमें १००) मूलधनका ५) रुपया ब्याज होता है तो १२ मासमें १६ रुपयेका कितना होगा?

उत्तरार्थ न्यास—

| प्रमाण | इच्छा |
|---|---|
| १ | १२ |
| १०० | १६ |
| ५ | × |

अन्योन्य पक्षनयनसे

| स्वल्प राशि | बहुराशि |
|---|---|
| १ | १२ |
| १०० | १६ |
| | ५ |

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार—(१२×१६×५)/१०० = ४८/५ = इच्छाफल।

प्रक्षेप (पूँजीके टुकड़े)-को पृथक्-पृथक् मिश्रधनसे गुण देना और उसमें प्रक्षेपके योगसे भाग देना चाहिये। इससे पृथक्-पृथक् फल ज्ञात होते हैं।[१] वापी आदि पूरणके प्रश्नमें—अपने-अपने अंशोंसे हरमें भाग देना, फिर उन सबके योगसे १ में भाग देनेपर वापीके भरनेके समयका ज्ञान होता है[२] ॥ ४१ $\frac{१}{२}$ ॥

**गुणो गच्छेऽसमे व्येके समे वर्गोऽर्धितेऽन्ततः ॥ ४२ ॥**
**यद् गच्छान्तफलं व्यस्तं गुणवर्गभवं हि तत्।**
**व्येकं व्येकगुणाप्तं च प्राग्घ्नं मानं गुणोत्तरे ॥ ४३ ॥**

(द्विगुणचयादि-वृद्धिमें फलका साधन)—(जहाँ द्विगुण-त्रिगुण आदि चय हो वहाँ) पद यदि विषम संख्या (३, ५, ७ आदि) हो तो उसमें १ घटाकर गुणक लिखे। यदि पद सम हो तो आधा करके वर्गचिह्न लिखे। इस प्रकार एक घटाने और आधा करनेमें भी जब विषमाङ्क हो तब गुणकचिह्न, जब समाङ्क हो तब वर्गचिह्न करना एवं जबतक पदकी कुल संख्या समाप्त न हो जाय तबतक करते रहना चाहिये। फिर अन्त्य चिह्नसे उलटा गुणज और वर्गफल साधन करके

इसी उदाहरणमें मूलधन जाननेके लिये—
न्यास—

| प्रमाण-पक्ष | इच्छा-पक्ष |
|---|---|
| मास १ | १२ मास |
| धनराशि १०० | × |
| फल ५ | $\frac{४८}{५}$=इच्छाफल (५ वीं राशि) |

यहाँ फल और हरके अन्योन्य पक्षनयन करनेसे—

| बहुराशि | स्वल्पराशि |
|---|---|
| प्रमाण | इच्छा |
| मास १ | १२ |
| धन १०० | × |
| ४८ | ५ |
| | ५ |

'बहुराशिफलात्' इत्यादि ४० वें श्लोकके अनुसार—

$\frac{१×१००×४८}{१२×५×५}$ = १६ = मूलधन।

१. मान लीजिये कि ३ व्यापारियोंके क्रमसे ५१, ६८, ८५ रुपये मूलधन हैं। तीनोंने एक साथ मिलकर व्यापारसे ३००) रुपये प्राप्त किये तो इन तीनोंके पृथक्-पृथक् कितने धन होंगे? यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार प्रक्षेपों (५१, ६८, ८५)-को मिश्रधन ३०० से गुणाकर प्रक्षेपोंके योग २०४ के द्वारा भाग देनेपर लब्धिक्रमसे तीनोंके पृथक्-पृथक् भाग हुए। यथा—प्रथमका

भाग= $\frac{५१×३००}{२०४}$ =७५। द्वितीयका भाग= $\frac{६८×३००}{२०४}$ =१००। तृतीयका भाग= $\frac{८५×३००}{२०४}$ =१२५।

२. कल्पना कीजिये कि एक झरना या नल किसी तालाबको १ दिन (१२ घंटे) में, दूसरा $\frac{१}{२}$ दिनमें, तीसरा $\frac{१}{३}$ दिनमें और चौथा १/६ दिनमें अलग-अलग खोलनेपर भर देता है तो यदि चारों एक ही साथ खोल दिये जायँ तो दिनके कितने भागमें तालाबको भरेंगे।

मूलोक्त रीतिसे अपने-अपने अंशसे हरमें भाग देनेसे $\frac{१}{१}$, $\frac{२}{१}$, $\frac{३}{१}$, $\frac{६}{१}$, इनके योग १२/१ से १ में भाग देनेपर $\frac{१}{१२}$ हुआ। अर्थात् १ दिनके १२ वें भागमें (१ घंटेमें) तालाब भर जायगा।

आद्य चिह्नतक जो फल हो, उसमें १ घटाकर शेषमें एकोन गुणकसे भाग देना चाहिये। लब्धिको आदि अङ्कसे गुणा करनेपर सर्वधन होता है[१] ॥ ४२-४३ ॥

**भुजकोटिकृतेर्योगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्।**
**श्रुतिकोटिकृतेरन्तः पदं दोःकर्णवर्गयोः ॥ ४४ ॥**
**विवराद् यत्पदं कोटिः क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके।**
**राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥ ४५ ॥**
**वर्गयोगोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तरं भवेत्।**

(क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण)—भुज और कोटिके वर्गयोगका मूल कर्ण होता है, भुज और कर्णके वर्गान्तरका मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्णके वर्गान्तरका मूल भुज होता है—यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्रके लिये कही गयी है[२]। अथवा राशिके अन्तरवर्गमें उन्हीं दोनों राशियोंका द्विगुणित घात (गुणनफल) जोड़ दें तो वर्गयोग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तरका घात वर्गान्तर होता है[३] ॥ ४४-४५ $\frac{1}{2}$ ॥

---

१. कल्पना कीजिये कि किसी दाताने किसी याचकको पहले दिन २ रुपये देकर उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देनेका निश्चय किया तो बताइये कि उसने ३० दिनमें कितने रुपये दान किये।

उत्तर—यहाँ आदि=२, गुणात्मकचय=२, पद=३० है। पद सम अंक है। अतः आधा करके १५ के स्थानमें वर्गचिह्न लगाया, यह विषमाङ्क हुआ, अतः उसमें १ घटाकर १४ के स्थानमें गुणकचिह्न लिखा। फिर यह सम हो गया, अतः आधा ७ करके वर्गचिह्न किया, इस प्रकार पद-संख्याकी समाप्तिपर्यन्त न्यास किया। न्यास देखिये—

न्यास—

| | | |
|---|---|---|
| १५ | वर्ग | १०७३७४१८२४ |
| १४ | गुण | ३२७६८ |
| ७ | वर्ग | १६३८४ |
| ६ | गुण | १२८ |
| ३ | वर्ग | ६४ |
| २ | गुण | ८ |
| १ | वर्ग | ४ |
| ० | गुण | २ |

अन्तमें गुणचिह्न हुआ। वहाँ गुणकाङ्क २ को रखकर उलटा प्रथम चिह्नतक गुणक-वर्गज फल-साधन किया तो १०७३७४१८२४ हुआ।
इसमें एक घटाकर एकोनगुण (१)-से भाग देकर आदि (२)-से गुणा किया तो २,१४,७४,८३,६४६ रुपये सर्वधन हुआ।

२. लीलावती (क्षेत्रव्यवहार श्लोक १,२)-में इस विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—'त्रिभुज या चतुर्भुजमें जब एक भुजपर दूसरा भुज लम्बरूप हो, उन दोनोंमें एक (नीचेकी पड़ी रेखा)-को 'भुज' और दूसरी (ऊपरकी खड़ी रेखा)-को 'कोटि' कहते हैं। तथा उन दोनोंके वर्गयोग मूलको 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्णका वर्गान्तर मूल कोटि तथा कोटि और कर्णका वर्गान्तर मूल भुज होता है। यथा—'क, ग, च' यह एक त्रिभुज है। 'क, ग' इस रेखाको कोटि कहते हैं। 'ग, च' इस रेखाका नाम भुज है, 'क, च' का नाम कर्ण है।

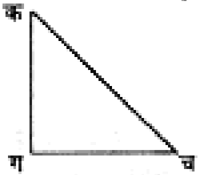


उदाहरण—जैसे प्रश्न हुआ कि जिस जात्य त्रिभुजमें कोटि=४, भुज=३ है वहाँका कर्णमान क्या होगा? तथा भुज और कर्ण जानकर कोटि बताओ और कोटि, कर्ण जानकर भुज बताओ।

उक्त रीतिसे ४ का वर्ग १६ और ३ का वर्ग ९, दोनोंके योग २५ का मूल ५ यह कर्ण हुआ। एवं कर्ण ५ और भुज ३, इन दोनोंके वर्गान्तर २५-९=१६, इसका मूल ४ कोटि हुई तथा कर्णके वर्ग २५ में कोटिके वर्ग १६ को घटाकर शेष ९ का मूल ३ भुज हुआ।

इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

३. जैसे ३ और ४ ये दो राशियाँ हैं। इन दोनोंके दूने गुणनफलमें ३×४×२=२४ में दोनों राशियोंका अन्तर वर्ग $(४-३)^{२}=(१)^{२}=१$ मिलानेसे २४+१=२५ यह दोनों राशियोंके वर्गयोग $(३)^{२}+(४)^{२}=९+१६=२५$ के बराबर है तथा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तर घात (३+४)×(४-३)=७×१=७ यह दोनों राशियोंके वर्गान्तर १६-९=७ के बराबर है। ($^{२}$ यह निशान वर्गका है।

व्यास आकृतिसंक्षुण्णोऽव्यासः स्यात् परिधिर्मुने ॥ ४६ ॥[१]
ज्याव्यासयोगविवराहतमूलोनितोऽर्धितः ।
व्यासः शरः शरोनाच्च व्यासाच्छरगुणात् पदम् ॥ ४७ ॥
द्विघ्नं जीवाथ जीवार्धवर्गे शरहृते युते ।
व्यासो वृत्ते भवेदेवं प्रोक्तं गणितकोविदैः ॥ ४८ ॥

मुने! व्यासको २२ से गुण देना और ७ से भाग देना चाहिये, इससे स्थूल परिधिका ज्ञान होता है[२] ॥ ४६ ॥ ज्या (जीवा) और व्यासका योग एक जगह रखना और अन्तरको दूसरी जगह रखना चाहिये। फिर इन दोनोंका घात (गुणा) करना

१. नारदपुराणके इस गणितविभागमें क्षेत्रव्यवहारकी चर्चामात्र होकर दूसरे विषय आ गये हैं; त्रिभुजादि क्षेत्रफलका विवेचन न होनेसे यह प्रकरण अधूरा-सा लगता है। जान पड़ता है, इस विषयके श्लोक लेखकके प्रमादसे छूट गये हैं; अतः टिप्पणीमें संक्षेपतः उक्त न्यूनताकी पूर्ति की जाती है।

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो हृतः। भुवा लब्ध्या युतोना भूर्द्विघ्ना च दलिता पृथक् ॥
आबाधे भुजयोर्ज्ञेये क्रमशश्चाधिकाल्पयोः। स्वाबाधाभुजयोर्वर्गान्तरान्मूलं च लम्बकः ॥
लम्बभूमिहतेरर्धं प्रस्फुटं त्रिभुजे फलम्। ततो बहुभुजान्तःस्थत्रिभुजेभ्यश्च तत्फलम् ॥

(त्रिभुजादि क्षेत्रफलानयन) त्रिभुजका फल जानना हो तो उसके तीन भुजोंमें एक को भूमि और शेष दोको भुज मानकर क्रिया करे। यथा—दोनों भुजके योगको उन्हीं दोनोंके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमें भूमिसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उसको भूमिमें जोड़कर आधा करे तो बड़े भुजकी 'आबाधा' होती है और उसी लब्धिको भूमिमें घटाकर आधा करनेसे लघुभुजकी 'आबाधा' होती है। अपने-अपने भुज और आबाधाके 'वर्गान्तर' करके शेषका मूल लेनेसे लम्बका मान प्रकट होता है। लम्ब और भूमिके गुणनफलका आधा त्रिभुजका क्षेत्रफल होता है।

उदाहरण—कल्पना कीजिये कि किसी त्रिभुजमें तीनों भुजोंके मान क्रमसे १३, १४, १५ हैं तो उस त्रिभुजका क्षेत्रफल क्या होगा? तो यहाँ १४ को भूमि और १३, १५ को भुज मानकर क्रिया होगी। यथा—दोनों भुजके योग २८ को उन्हीं दोनोंके अन्तर २ से गुणा करनेपर ५६ हुआ। इसमें भूमि १४ के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ४ हुई। इस चारको भूमि १४ में जोड़कर आधा करनेसे ९ हुआ—यह बड़े भुजकी 'आबाधा' का मान है। एवं भूमिमें लब्धिको घटाकर आधा करनेसे ५ हुआ। यह लघुभुजकी 'आबाधा' हुई। भुज और आबाधाके वर्गान्तर (२२५-८१=१४४) अथवा (१६९-२५=१४४) का मूल १२ हुआ। यह लम्बका मान है। लम्ब और भूमिके गुणनफल (१२×१४)=१६८ का आधा ८४ हुआ, यह उक्त त्रिभुजका क्षेत्रफल है।

इस प्रकार त्रिभुज फलानयनकी रीति जानकर बहुभुजक्षेत्रमें एक कोणसे दूसरे कोणतक कर्णरेखाको भूमि और उसके आश्रित दो भुजोंको भुज मानकर फल निकाला जायगा। चतुर्भुजमें दोनों त्रिभुजोंके फलको जोड़नेसे क्षेत्रफलकी सिद्धि होगी एवं पञ्चभुजमें ३ त्रिभुज बनेंगे और उन तीनों त्रिभुजोंके फलोंका योग करनेसे फल सिद्ध होगा। इसी प्रकार षड्भुज आदिमें भी समझना चाहिये।

विशेष वक्तव्य—तीन रेखाओंसे बना हुआ क्षेत्र त्रिभुज कहलाता है। उन तीनों रेखाओंमें नीचेकी रेखाको भूमि और दोनों बगलकी दो रेखाओंको 'भुज' कहते हैं।

(लम्ब—) ऊपरके कोणसे भूमितक सीधी रेखाको लम्ब कहते हैं।

(आबाधा—) लम्बसे विभक्त भूमिके खण्ड (जो लम्बके दोनों ओर हैं) दोनों भुजोंकी 'आबाधा' कहलाते हैं। निम्नाङ्कित क्षेत्रमें स्पष्ट देखिये—

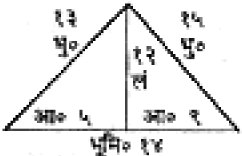


वृत्तक्षेत्रमें परिधि और व्यासके गुणनफलका चतुर्थांश क्षेत्रफल होता है। जैसे—

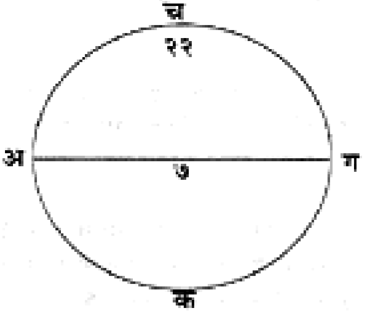


जिस वृत्तक्षेत्रमें व्यासमान ७ और परिधि २२ है, उसका क्षेत्रफल जानना है तो परिधि २२ को व्यास ७ से गुणा करनेपर १५४ हुआ। इसका चतुर्थांश $३८\frac{१}{२}$ होता है। यही क्षेत्रफल हुआ।

२. जैसे पूछा गया कि जिस वृत्तक्षेत्रका व्यास १४ है वहाँ परिधिका मान क्या होगा तथा जिसमें ४४ परिधि है, वहाँ व्यासमान क्या होगा? तो उक्त रीतिके अनुसार व्यास १४ को २२ से गुणा करके गुणनफलमें ७से भाग देनेपर $=\frac{२२\times१४}{७}=४४$ परिधिमान स्थूल हुआ।

चाहिये। उस गुणनका मूल लेना और उसको व्यासमें घटा देना चाहिये। फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा। व्यासमें शरको घटाना, अन्तरको शरसे गुण देना, उसका मूल लेना और उसे दूना करना चाहिये तो 'जीवा' हो जायगी। जीवाका आधा करके उसका वर्ग करना, शरसे भाग देना और लब्धिमें शरको जोड़ देना चाहिये, तो व्यासका मान होगा[1] ॥ ४७-४८ ॥

**चापोननिघ्नः परिधिः प्रागाख्यः परिधेः कृतेः।**
**तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्योनेनाद्यं चतुर्गुणम्॥ ४९ ॥**
**व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्यका संजायते स्फुटा।**
**ज्याङ्घ्रीषुघ्नो वृत्तवर्गोऽङ्घ्रिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत्॥ ५० ॥**
**लब्धोनवृत्तवर्गाङ्घ्रेः पदेऽर्धात् पतिते धनुः।**

परिधिसे चापको घटाकर शेषमें चापसे ही गुणा करनेपर गुणनफल 'प्रथम' कहलाता है। परिधिका वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसे पाँचसे गुणा करना और उसमें 'प्रथम' को घटा देना चाहिये। यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यासको प्रथमसे गुण देना, यह भाज्य हुआ। भाज्यमें भाजकसे भाग देना, यह जीवा हो जायगी[2] ॥ ४९ $\frac{१}{२}$ ॥ व्यासको चारसे गुणा करके उसमें जीवाको जोड़ देना, यह भाजक हुआ। परिधिके वर्गको जीवाकी चौथाई और पाँचसे गुण देना, यह भाज्य हुआ। भाजकसे भाज्यमें भाग देना, जो लब्धि आवे, उसे परिधिवर्गके चतुर्थांशमें घटा देना और शेषका मूल लेना, उसे वृत्त (परिधि) के आधेमें घटा देनेपर तो धनु (चाप) होगा[3] ॥ ५० $\frac{१}{२}$ ॥

---

१. उदाहरणार्थ प्रश्न—जिस 'वृत्त' का व्यास १० है, उसमें यदि 'जीवा' का मान ६ है तो 'शर' का मान क्या होगा? 'शर' का ज्ञान हो तो जीवा बताओ तथा 'जीवा' और 'शर' जानकर व्यासका मान बताओ।

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार व्यास और जीवाका योग १०+६=१६ हुआ। व्यास और जीवाका अन्तर १०-६=४

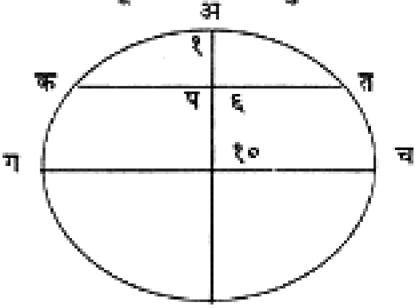


हुआ। दोनोंका गुणनफल १६×४=६४ हुआ। इसका मूल ८ हुआ। इसे व्यास १० में घटाया तो २ हुआ। इसका आधा किया तो १ 'शर' (बाण) हुआ। व्यास १० में शर १ घटाया तो ९ हुआ। इसे शर १ से गुणा किया तो ९ हुआ। इसका मूल लिया तो ३ हुआ। इसे द्विगुण किया तो ६ जीवाका प्रमाण हुआ। इसी तरह 'जीवा' और 'शर' का ज्ञान होनेपर जीवा ६ के आधे ३ का वर्ग किया तो ९ हुआ। इसमें शर १ से भाग दिया और लब्धिमें शरको जोड़ दिया तो $\frac{९}{१}+\frac{१}{१}$ =१० हुआ। यही व्यासका मान है।

२. उदाहरण—जिस वृत्तका व्यासार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है, उस वृत्तके अष्टादशांश क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो अलग-अलग सबकी जीवा बताओ।

उत्तर—क्रिया—व्यासमान २४०। इसपरसे परिधि ७५४। इसका अठारहवाँ भाग ४२ क्रमसे एकादि गुणित ४२, ८४, १२६, १६८, २१०, २५२, २९४, ३३६ और ३७८—ये ९ प्रकारके चापमान हुए। मूल-सूत्रके अनुसार इन चाप और परिधिपरसे जो जीवाओंकि मान होंगे, वे ही किसी तुल्याङ्कसे अपवर्तित चाप और अपवर्तित परिधिसे भी होंगे। अतः ४२ से अपवर्तन करनेपर परिधि १८ तथा चापमान १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हुए। अब प्रथम जीवामान साधन करना है, तो प्रथम अपवर्तित चाप १ को परिधिसे घटाकर शेषको चाप १ से गुणा करनेपर १७ यह 'प्रथम' या 'आद्य' संज्ञक हुआ। तथा परिधिवर्ग चतुर्थांशको ५ से गुणा कर $\frac{३२४\times५}{४}$=४०५ इसमें आद्य १७ को घटाकर शेष ३८८ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेसे $\frac{२४०\times४\times१७}{३८८}$=४२ लब्धि हुई। यह (स्वल्पान्तरसे) प्रथम जीवा हुई। एवं द्वितीय चाप २ को परिधिमें घटाकर शेषको चापसे गुणा कर देनेपर ३२ यह 'प्रथम' या 'आद्य' हुआ। इसे पञ्चगुणित परिधिवर्गके चतुर्थांश ४०५ में घटाकर शेष ३७३ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेपर $\frac{२४०\times४\times३२}{३७३}$ =८२ लब्धि हुई। स्वल्पान्तरसे यही द्वितीय जीवा हुई। इसी प्रकार अन्य जीवाका भी साधन करना चाहिये।

३. अब जीवामान जानकर चापमान जाननेकी विधि बताते हैं—जैसे प्रश्न हुआ कि २४० व्यासवाले वृत्तमें जीवामान ४२ और ८२ है तो इनके चापमान क्या होंगे? (उत्तर—क्रिया—) यथा—जीवा ८२। वृत्त व्यास २४०। यहाँ लाघवके लिये परिधिमान अपवर्तित ही लिया; अतः इसपरसे भी चापमान अपवर्तित ही आवेंगे। अब श्लोकानुसार परिधिवर्ग ३२४ को जीवाके चतुर्थांश ८२/४ और ५ से गुणा करनेपर $\frac{३२४\times८२\times५}{४}$ =८१×८२×५=३३२१० हुआ। इसमें चतुर्गुणित व्याससे युक्त जीवा १०४२ द्वारा भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ३२ हुई। इसे परिधिवर्गके चतुर्थांश ८१ में घटानेसे ४९ हुआ। इसका मूल ७ हुआ। इसे अपवर्तित परिधिके आधे ९ में घटानेसे शेष २ यह अपवर्तित द्वितीय चाप हुआ। अतः अपवर्तनाङ्क ४२ से गुणा कर देनेपर वास्तविक चाप २×४२=८४ हुआ।

**स्थूलमध्याण्वन्नवेधो वृत्ताङ्कांशेशभागिकः ॥ ५१ ॥**
**वृत्ताङ्गांशकृतिर्वेधनिघ्नी घनकरा मितौ।**
**वारिव्यासहतं दैर्घ्यं वेधाङ्गुलहतं पुनः ॥ ५२ ॥**
**खखेन्दुरामविहृतं मानं द्रोणादि वारिणः।**
**विस्तारायामवेधानामङ्गुल्योऽन्योन्यताडिताः ॥ ५३ ॥**
**रसाङ्काभ्रब्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिका मितिः।**
**उत्सेधव्यासदैर्घ्याणामङ्गुलान्यश्मनो द्विज ॥ ५४ ॥**
**मिथोघ्नानि भजेत् खाक्षेशैर्द्रोणादिमितिर्भवेत्।**
**विस्ताराद्यङ्गुलान्येवं मिथोघ्नान्ययसां भवेत् ॥ ५५ ॥**
**बाणेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्यं मानमादिशेत्।**

(अन्नादि राशि-व्यवहार) राशि-व्यवहारमें स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, अन्नराशियोंमें क्रमशः उनकी परिधिका नवमांश, दशमांश और एकादशांश वेध होता है। परिधिका षष्ठांश लेकर उसका वर्ग करना और उसे वेधसे गुण देना चाहिये। उसका नाम 'घनहस्त' होगा[1]। जलके व्यास (चौड़ाई)-से लंबाईको गुण देना, फिर उसीको गहराईके अंगुल-मानसे गुण देना तथा ३१०० से भाग देना चाहिये। इससे जलका द्रोणात्मक मान ज्ञात होगा[2] ॥ ५१-५२ $\frac{१}{२}$ ॥ चौड़ाई, गहराई और लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुण देना और उसमें ४०९६ से भाग देना तो अन्नका द्रोणादि मान होगा[3]। ऊँचाई, व्यास (चौड़ाई) और लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुण देना और ११५० से भाग देना चाहिये; वह पत्थरका द्रोणात्मक मान होगा।[4] विस्तार आदिके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुणा करना चाहिये और ५८५ से भाग देना चाहिये, तो लब्धि लोहेके द्रोणात्मक मानका सूचक होती है[5] ॥ ५३—५५ $\frac{१}{२}$ ॥

---

१. उदाहरणके लिये प्रश्न—समतल भूमिमें रखे हुए स्थूल धान्यकी परिधि यदि ६० हाथ है तो उसमें कितने घनहस्त (खारी-प्रमाण) होंगे? तथा सूक्ष्म धान्य और मध्यम धान्यकी परिधि भी यदि ६० हाथ हों तो उनके अलग-अलग खारी-प्रमाण क्या होंगे?

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार परिधि-मानका दशमांश ६ यह मध्यम धान्यका वेध हुआ। परिधिके षष्ठांश १० के वर्गको वेधसे गुणा करनेपर १००×६=६०० घनहस्त-मान हुए। एवं सूक्ष्म धान्यका वेध $\frac{६६}{११}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्ग १०० को गुण देनेसे सूक्ष्म धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{११}$ = ५४५ $\frac{५}{११}$ हुए। तथा स्थूल धान्यका वेध $\frac{६०}{९}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्गको गुण देनेपर स्थूल धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{९}$ = ६६६ $\frac{२}{३}$ हुए।

२. उदाहरणार्थ प्रश्न—किसी बावलीकी लंबाई ६२ हाथ, चौड़ाई २० हाथ और गहराई १० हाथ है तो बताओ, उस बावलीमें कितने द्रोण जल है?

उत्तर—यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रश्नको यों हल करना चाहिये—पहले हाथके मापको अंगुलके मापमें परिणत करनेके लिये उसे २४ से गुणा करना चाहिये। ६२×२४=१४८८ अंगुल लंबाई है। २०×२४=४८० अंगुल चौड़ाई है। १०×२४=२४० अंगुल गहराई है। इन तीनोंके परस्पर गुणनसे १४८८×४८०×२४०=१७१४१७६०० गुणनफल हुआ। इसमें ३१०० से भाग दिया तो $\frac{१७१४१७६००}{३१००}$=५५२९६ लब्धि हुई। इतने ही द्रोण जल उस बावलीमें है।

३. उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी अन्न-राशिकी लंबाई ६४ अंगुल, चौड़ाई ३२ अंगुल और ऊँचाई १६ अंगुल है तो उसका द्रोणात्मक मान क्या है? अर्थात् वह अन्नराशि कितने द्रोण होगी?

मूलकथित नियमके अनुसार ६४×३२×१६ इनके परस्पर गुणनसे ३२७६८ गुणनफल हुआ। इसमें ४०९६ से भाग देनेपर $\frac{३२७६८}{४०९६}$=८ लब्धि हुई। उत्तर निकला कि वह अन्नराशि ८ द्रोण है।

४. उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी पत्थरके टुकड़ेकी लंबाई २३, चौड़ाई २० और ऊँचाई १० अंगुल है तो वह पत्थर कितने द्रोण वजनका है? (उत्तर) मूलोक्त नियमके अनुसार लंबाई आदिको परस्पर गुणित किया—२३×२०×१० तो गुणनफल ४६०० हुआ। इसमें ११५० से भाग देनेपर लब्धि ४ हुई। अतः ४ द्रोण उस पत्थरके टुकड़ेका मान होगा।

५. जैसे किसीने पूछा—किसी लोह-खण्डकी लंबाई ११७ अंगुल, चौड़ाई १०० अंगुल और ऊँचाई ५ अंगुल है तो उसका वजन कितने द्रोण होगा? (उत्तर) लंबाई आदिको परस्पर गुणित किया—११७×१००×५=५८५०० इस गुणनफलमें ५८५ से भाग दिया $\frac{५८५००}{५८५}$=१०० लब्धि हुई। अतः १०० द्रोण उस लोहेका परिमाण है।

दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्न: शङ्कुर्भा भवेन्मुने ॥ ५६ ॥
नरोनदीपकशिखौच्च्यभक्तो ह्यथ भोद्धृते।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्यं नरान्विते ॥ ५७ ॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणा छाया शङ्कूद्धृता भवेत्।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥ ५८ ॥
मानान्तरहृता भूमि: स्यादथो भूनराहति:।
प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात् त्रिराशिकात्॥ ५९ ॥
एतत्संक्षेपत: प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम्।
ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥ ६० ॥

छाया-साधनमें प्रदीप और शङ्कुतलका जो अन्तर हो उससे शङ्कुको गुण देना और दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाकर उससे उस गुणित शङ्कुमें भाग देना तो छायाका मान होगा[1]। शङ्कु और दीपतलके अन्तरसे शङ्कुको गुण देना और छायासे भाग देना; फिर लब्धिमें शङ्कुको जोड़ देना तो दीपककी ऊँचाई हो जायगी[2]। शङ्कुरहित दीपककी ऊँचाईसे छायाको गुण देना और शङ्कुसे भाग देना और तो शङ्कु तथा दीपकका अन्तर ज्ञात होगा[3]। छायाग्रके अन्तरसे छायाको गुण देना छायाके प्रमाणान्तरसे भाग देना तो 'भू' होगी। 'भू' और शङ्कुका घात (गुणा) करना और छायासे भाग देना तो दीपककी ऊँचाई होगी[4]। उपर्युक्त सब बातोंका ज्ञान त्रैराशिकसे ही होता है। यह परिकर्मगणित मैंने संक्षेपसे कहा। अब ग्रहका मध्यादिक गणित बताता हूँ, वह भी अधिक विस्तारसे नहीं ॥ ५६-६० ॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—शङ्कु और दीपके बीचकी भूमिका मान ३ हाथ और दीपककी ऊँचाई ७/२ हाथ है तो बारह अंगुल (१/२ हाथ) शङ्कुकी छाया क्या होगी?

इस क्षेत्रमें 'अ' से 'उ' तक दीपककी ऊँचाई है। 'ग' से 'त' तक शङ्कु है। 'अ' 'त'-'क' 'ग'-शङ्कु और दीपतलका अन्तर है।

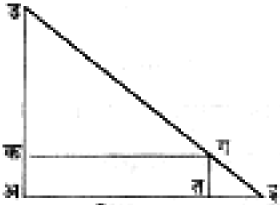


यहाँ शङ्कुको शङ्कु-दीपान्तर-भूमि-मानसे गुणा किया तो १/२×३=३/२ यह गुणनफल हुआ। फिर दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाया तो $\frac{१}{२}-\frac{१}{२}$=३ यह शेष हुआ। पूर्वोक्त गुणनफल ३/२ में शङ्कु घटायी हुई दीपककी ऊँचाई ३ से भाग दिया तो १/२ लब्धि हुई। यही छायाका मान है।

२. यदि शङ्कु १/२ हाथ, शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अंगुल है तो दीपकी ऊँचाई कितनी होगी? इस प्रश्नका उत्तर यों है—शङ्कुको शङ्कुदीपान्तरसे गुणा किया तो १/२×३=३/२ हुआ। इसमें छाया १६ अंगुल अर्थात् २/३ हाथसे भाग दिया तो ३/२÷२/३=३/२×३/२=९/४ हुआ। इसमें शङ्कु १/२ को जोड़ दिया तो ११/४=२ ३/४ हाथ दीपककी ऊँचाई हुई।

३. उपर्युक्त दीपककी ऊँचाई ११/४ मेंसे शङ्कु १/२ को घटाया तो ११/४-१/२=९/४ शेष हुआ। इससे छायाको गुणित किया तो ९/४×२/३=१/२ हुआ, इसमें शङ्कुसे भाग दिया तो ३ लब्धि हुई। अत: शङ्कु और दीपके बीचकी भूमि ३ हाथकी है।

४. अभ्यासार्थ प्रश्न—१२ अंगुलके शङ्कुकी छाया १२ अंगुल थी, फिर उसी शङ्कुको छायाग्रकी ओर २ हाथ बढ़ाकर रखनेसे दूसरी छाया १६ अंगुल हुई तो छायाग्र और दीपतलके बीचकी भूमिका मान कितना होगा? तथा दीपकी ऊँचाई कितनी होगी?

उत्तर—यहाँ प्रथम शङ्कुसे दूसरे शङ्कुतक भूमिका मान २ हाथ। प्रथम छाया १/२ हाथ, द्वितीय छाया २/३ हाथ। शङ्कु-अन्तर २ में प्रथम छाया १/२ को घटाकर शेष ३/२ में द्वितीय छाया २/३ को जोड़नेसे १३/६ यह छायाग्रोंका अन्तर हुआ। तथा छायान्तर २/३-१/२=१/६ हुआ। अब मूलोक्त नियमके अनुसार प्रथम छाया १/२ को छायाग्रान्तरसे गुणा किया तो १/२×१३/६=१३/१२ हुआ। इसमें छायान्तर १/६ से भाग दिया तो १३/१२×६/१=१३/२ (या ६ १/२) यह प्रथम भूमिमान हुआ। इसी प्रकार द्वितीय छाया २/३ से छायाग्रान्तर १३/६ को गुणा करके छायान्तर १/६ से भाग देनेपर द्वितीय भूमिमान २६/३ हुआ। तथा प्रथम भूमिमान १३/२ को शङ्कुसे गुणा कर गुणनफल १३/४ में प्रथम छायासे भाग देनेपर लब्धि १३/२ यह दीपककी ऊँचाई हुई। इसी प्रकार द्वितीय भूमिसे भी दीपककी ऊँचाई इतनी ही होती है।

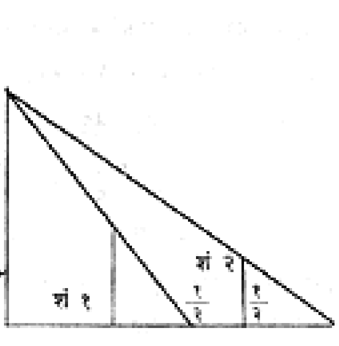

युगमानं स्मृतं विप्र खचतुष्करदार्णवाः।
तद्दशांशास्तु चत्वारः कृताख्यं पदमुच्यते॥ ६१॥
त्रयस्त्रेता द्वापरो द्वौ कलिरेकः प्रकीर्तितः।
मनुः कृताब्दसहिता युगानामेकसप्ततिः॥ ६२॥
विधेर्दिने स्युर्विप्रेन्द्र मनवस्तु चतुर्दश।
तावत्येव निशा तस्य विप्रेन्द्र परिकीर्तिता॥ ६३॥
स्वयम्भुवः सृष्टिगतानब्दान् सम्पिण्ड्य नारद।
खचरानयनं कार्यमथवेष्टयुगादितः॥ ६४॥

विप्रवर! चारों युगोंका सम्मिलित मान तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। उसके दशांशमें चारका गुणा करनेपर सत्ययुग नामक पाद होगा। (उसका मान १७ लाख २८ हजार वर्ष है)। दशांशमें तीनका गुणा करनेपर (१२९६००० वर्ष) त्रेता नामक पाद होता है। दशांशमें दोका गुणा करनेपर (८६४००० वर्ष) द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांशको एकगुना ही रखनेपर (४३२००० वर्ष) कलियुग नामक पाद कहा गया है। कृताब्दसहित (एक सत्ययुग अधिक) इकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है॥ ६१-६२॥ ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं और उतने ही समयकी उनकी एक रात्रि होती है॥ ६३॥ नारद! ब्रह्माजीके वर्तमान कल्पमें जितने वर्ष बीत गये हैं, उन्हें एकत्र करके ग्रहानयन (ग्रह-साधन) करना चाहिये। अथवा इष्ट युगादिसे ग्रह-साधन करे॥ ६४॥

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम्॥ ६५॥
इन्दो रसाग्नित्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु॥ ६६॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पतेः खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा॥ ६७॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः॥ ६८॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः॥ ६९॥

एक युगमें पूर्व दिशाकी ओर चलते हुए सूर्य, बुध और शुक्रके ४३२०००० 'भगण' होते हैं। तथा मङ्गल, शनि और बृहस्पतिके शीघ्रोच्च भगण भी उतने ही होते हैं॥ ६५॥ एक युगमें चन्द्रमाके भगण ५७७५३३३६ होते हैं। भौमके २२९६८३२, बुधके शीघ्रोच्चके १७९३७०६०, बृहस्पतिके ३६४२२०, शुक्रके शीघ्रोच्चके ७०२२३७६, शनिके १४६५६८ तथा चन्द्रमाके उच्चके भगण ४८८२०३ होते हैं। चन्द्रमाके पातकी वामगतिसम्बन्धी भगणोंकी संख्या २३२२३८ है॥ ६६—६९॥

उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः।
वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे॥ ७०॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः॥ ७१॥
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः।
षट्त्र्यग्नित्रयवेदाग्निपञ्च शुभ्रांशुमासकाः॥ ७२॥
प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः॥ ७३॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः।
गोऽग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः॥ ७४॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनन्दकाः॥ ७५॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः।

सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयपर्यन्त जो दिनका मान होता है, उसे भौमवासर या सावन वासर कहते हैं। वे एक महायुग (चतुर्युग)-में १५७७९१७८२८ होते हैं। (चान्द्र दिवस १६०३०००080 होते हैं)। अधिमास १५९३३३६ होते हैं तथा तिथिक्षय २५०८२२५२ होते हैं॥ ७०-७१॥ रविमासोंकी संख्या ५१८४०००० है। चान्द्र मास ५३४३३३३६ होते हैं॥ ७२॥ पूर्वाभिमुख

गतिके क्रमसे एक कल्पमें सूर्यके मन्दोच्च भगण ३८७, मङ्गलके मन्दोच्च भगण, २०४, बुधके मन्दोच्च ३६८, गुरुके मन्दोच्च ९००, शुक्रके मन्दोच्च ५३५ तथा शनिके मन्दोच्च भगण ३९ होते हैं। अब मङ्गल आदि ग्रहोंके पातोंको विलोमगति (पश्चिम-गमन)-के अनुसार एक कल्पमें होनेवाले भगण बताये जाते हैं॥ ७३-७४॥ भौमपातके भगण २१४, बुधपातके भगण ४८८, गुरुपातके भगण १७४, भृगुपातके भगण ९०३ तथा शनिपातके भगण ६६२ होते हैं॥ ७५ $\frac{1}{2}$ ॥

**वर्तमानयुगे याता वत्सरा भगणाभिधाः॥ ७६॥**
**मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः।**
**पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः॥ ७७॥**
**लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता।**
**द्विघ्नास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः॥ ७८॥**
**लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः।**
**सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः॥ ७९॥**
**सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः।**
**मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्॥ ८०॥**
**सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ।**

वर्तमान युग (जिस युगमें, जिस समयके अहर्गण या ग्रहादिका ज्ञान करना हो उस समय)-में सृष्ट्यादि काल या युगादिकालसे अबतक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्यके भगण होते हैं। भगणको बारहसे गुणा करके मास बनाना चाहिये। उसमें 'वर्तमान वर्षके' चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर वर्तमान मासतक जितने मास बीते हों, उनकी संख्या जोड़कर योगफलको दो स्थानोंमें रखना चाहिये। द्वितीय स्थानमें रखे हुए मासगणको युगके उपर्युक्त अधिमासोंकी संख्यासे गुणा करके गुणनफलमें युगके सूर्यमासोंकी संख्यासे भाग दे। फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमासकी संख्या माने और उसको प्रथम स्थानस्थित मासगणमें जोड़े। (योगफल बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्याका सूचक होता है) उस संख्याको तीससे गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्याका सूचक होता है), उसमें वर्तमान मासकी शुक्ल प्रतिपदासे इष्टतिथितककी संख्या जोड़े, (जोड़नेसे चान्द्र दिनकी संख्या ज्ञात होती है) इसको भी दो स्थानोंमें रखे। दूसरे स्थानमें स्थित संख्याको युगके लिये कथित तिथिक्षय-संख्यासे गुणा करे। गुणनफलमें युगकी चान्द्र दिन (तिथि) संख्याके द्वारा भाग दे। जो लब्धि हो, वही तिथिक्षय-संख्या है, उसको प्रथम स्थानमें स्थित चान्द्र दिन-संख्यामेंसे घटा दे तो अभीष्ट दिनका लंकार्धरात्रिकालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है[1]। इससे दिनपति, मासपति और वर्षपतिका ज्ञान करे॥ ७६—७९॥ यथा—दिनगणमें ७ से भाग देनेपर शेष बचे हुए १ आदि संख्याके अनुसार रवि

---

१. इस प्रकार अहर्गण-साधनमें कदाचित् एक दिन अधिक या न्यून भी होता है, उस स्थितिमें १ घटाकर या जोड़कर अहर्गण ग्रहण करे।

कलियुगादिसे अहर्गणका उदाहरण—शाके १८७५ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवारको अहर्गण बनाना है तो कलियुगादिसे गत युधिष्ठिरसंवत्की वर्षसंख्या ३१७९ में शाके १८७५ जोड़नेसे ५०५४ हुआ; इसको १२ गुणा करनेसे ६०६४८ हुआ। इसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे गत मास-संख्या ७ जोड़नेपर ६०६५५ सौर मासगण हुए। इसको पृथक् युगकी अधिमास-संख्या १५९३३३६ से गुणा करनेपर ९६६४३७९५०८० हुआ। इसमें युगकी सौर माससंख्या ५१८४०००० से भाग देनेपर लब्धि अधिमास-संख्या १८६४ को पृथक्स्थित और मासगण ६०६५५ में जोड़नेसे ६२५१९ यह चान्द्र मास-संख्या हुई। इसको ३० से गुणा करके गुणनफलमें तिथिसंख्या १५ जोड़नेसे १८७५५८५ यह चान्द्र दिनसंख्या हुई। इसको युगकी क्षय-तिथिसंख्या २५०८२२५२ से गुणा करके गुणनफल ४७०४३८९५६१७४२० में युगकी चान्द्र दिनसंख्या १६०३०००००८० से भाग देनेपर लब्धि तिथिक्षयसंख्या २९३४७ को उपर्युक्त चान्द्र दिनसंख्या १८७५५८५ में घटानेसे १८४६२३८ अहर्गण हुए। इसमें ७ का भाग देनेसे २ शेष बचते हैं; जिससे शुक्र आदि गणनाके अनुसार शनिवार आता है; किंतु होना चाहिये १ शेष (शुक्रवार); इसलिये इसमें १ घटाकर वास्तविक अहर्गण १८४६२३७ हुआ। प्रस्तुत उदाहरणमें पूर्णिमाका क्षय होनेके कारण १ दिनका अन्तर पड़ा है।

आदि वारपति समझने चाहिये। तथा दिनगणमें ३० से भाग देकर लब्धिको २ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़ दे। फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होनेपर रवि आदि मासपति समझे। इसी प्रकार दिनगणमें ३६० से भाग देकर लब्धिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़े, फिर उसमें ७ से भाग देनेपर १ आदि शेष संख्याके अनुसार रवि आदि 'वर्तमान' वर्षपति होते हैं[१] ॥ ८० $\frac{१}{२}$ ॥

**ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥ ८१ ॥**
**विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।**
**एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥ ८२ ॥**
**विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः।**

(**मध्यमग्रहज्ञान**)—युगके लिये कथित भगणकी संख्यासे दिनगणको गुणा करे। गुणनफलमें युगकी कुदिन (सावनदिन)-संख्यासे भाग देनेपर भगणादि[२] ग्रह लंकार्धरात्रिकालिक होता है। इसी प्रकार पूर्वाभिमुख गतिवाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च कहे गये हैं, उनके भगणके द्वारा उनका भी साधन होता है[३]। विलोम (पश्चिमाभिमुख) गतिवाले जो ग्रहोंके पातभगण कहे गये हैं, उनके द्वारा इसी प्रकार जो पात सिद्ध हों, उनको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि-क्रमसे राश्यादिपात समझना चाहिये[४] ॥ ८१-८२ $\frac{१}{२}$ ॥

**योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥ ८३ ॥**
**तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधिर्भवेत्।**
**लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥ ८४ ॥**

(**भूपरिधिप्रमाण**)—पृथ्वीका व्यास १६०० योजन है। इस (१६००)-के वर्गको १० से गुणा करके गुणनफलका मूल भूमध्यपरिधि होता है; अर्थात् वर्गमूलकी जो संख्या हो, उतने योजनकी पृथ्वीकी परिधि जाननी चाहिये। इस भूमध्य-परिधिकी संख्याको अपने-अपने लम्बांश-ज्यासे गुणा करके उसमें त्रिज्या (३४३८)-से भाग देकर जो लब्धि हो, वह स्पष्ट भूपरिधिकी योजन-संख्या होती है[५] ॥ ८३-८४ ॥

---

१. कलियुगके आदिमें शुक्रवार था, इसलिये कलियुगादि अहर्गणमें ७ का भाग देनेसे १ आदि शेष होनेपर शुक्र आदि वारपति होते हैं। मासपति जाननेके लिये अहर्गण १८४६२३७ में ३० से भाग देकर लब्धि ६१५४१ को २ से गुणा करनेपर १२३०८२ हुआ। इसमें १ जोड़कर ७ का भाग देनेसे शेष २ रहे, अतः शुक्रसे द्वितीय शनि वर्तमान मासपति हुआ।

एवं अहर्गणमें ३६० का भाग देकर लब्धि ५१२८ को ३ से गुणा कर गुणनफल १५३८४ में १ जोड़कर १५३८५ हुआ। इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ६ रहे; अतः शुक्रादि गणनासे बुध वर्तमान वर्षपति हुआ।

२. प्रथम लब्धि भगण होती है। शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि होगी, वह राशि है। पुनः शेषको ३० से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो वह अंश है। अंश-शेष ६० से गुणा करके गुणनफलमें कुदिनका भाग देनेसे लब्धि कला होती है। कला-शेषको ६० से गुणा करके पूर्ववत् युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह विकला होती है। इनमें भगणको छोड़कर राश्यादि ही ग्रह कहलाता है। इस प्रकार मध्यम ग्रह होता है।

३. उदाहरण—जैसे युगके सूर्यभगण ४३२०००० को अहर्गण १८४६२३७ से गुणा करनेपर ७९७५७४३८४०००० हुआ। इसमें युगके कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्ध भगण ५०५४ हुए। शेष ९४७१३७२८८ को १२ से गुणा कर गुणनफल ११३६५६४७४५६ में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि राशि ७ हुई। राशिशेष ३२०२२२६६० को ३० से गुणा करके गुणनफल ९६०६६७९८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्ध अंश ६ हुआ। अंश-शेष १३९१७२८३२ को ६० से गुणा करके गुणनफल ८३५०३६९९२० में कुदिनसे भाग देनेपर लब्धि कला ५ हुई। कलाशेष ४६०७८०७८० को ६० से गुणा कर गुणनफल २७६४६८४६८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि विकला १८ हुई। एवं भगण प्रयोजनमें नहीं आता है, इसलिये उसको छोड़कर राश्यादि फल ७। ६। ५। १८ यह लङ्कार्धरात्रिकालिक मध्यम सूर्य हुआ। इसी प्रकार अपने-अपने भगणद्वारा सब ग्रह, उच्च और पातका साधन होता है। तथा पातकी विपरीत गति होती है। अहर्गणद्वारा साधित पातको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि-क्रमसे राश्यादि-पात समझना चाहिये, यह बात आगे कही जायगी।

४. इस प्रकार साधित ग्रहरेखादेशीय होता है। इसमें आगे कहे हुए देशान्तर-संस्कार करनेसे स्वदेशीय मध्यम ग्रह होता है।

५. यथा—१६०० के वर्गको १० गुना करनेसे २,५६,००००० हुआ। इसका मूल (स्वल्पान्तरसे) ५०५८ हुआ। इतना ही

**तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।**
**कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्॥ ८५॥**
**रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः।**
**राक्षसालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः॥ ८६॥**
**अवन्तिकारोहितकं यथा सन्निहितं सरः।**
**वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत्॥ ८७॥**
**तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत्।**

**( ग्रहोंमें देशान्तर-संस्कार )**—ग्रहकी कलादि मध्यम गतिको देशान्तर-योजन (रेखादेशसे जितने योजन पूर्व या पश्चिम अपना स्थान हो उस)-से गुणा करके गुणनफलमें 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह कला आदि है। उस लब्धिको रेखासे पूर्व देशमें पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे और पश्चिम देशमें जोड़नेसे स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है[1] ॥ ८५$\frac{१}{२}$॥

**( रेखा-देश )**—लङ्कासे सुमेरुपर्वतपर्यन्त याम्योत्तर-रेखामें जो-जो देश (स्थान) हैं, वे रेखा-देश कहलाते हैं। जैसे उज्जयिनी, रोहितक, कुरुक्षेत्र आदि॥ ८६$\frac{१}{२}$॥

**( वार-प्रवृत्ति )**—भूमध्यरेखासे पूर्वदेशमें रेखा-देशीय मध्यरात्रिसे, देशान्तर घटीतुल्य पीछे और रेखासे पश्चिम देशमें मध्यरात्रिसे देशान्तर घटीतुल्य पूर्व ही वार-प्रवृत्ति (रवि-आदि वारोंका आरम्भ) होती है[2] ॥ ८७$\frac{१}{२}$॥

**इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्॥ ८८॥**
**गते शोध्यं तथा योज्यं गम्ये तात्कालिको ग्रहः।**
**भचक्रलिप्ताशीत्यंशं परमं दक्षिणोत्तरम्॥ ८९॥**
**विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः।**
**तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः॥ ९०॥**
**बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम्।**

**( इष्टकालमें मध्यम ग्रह जाननेकी विधि )**—मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्यासे ग्रहकी कलादि गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६० से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें जोड़नेसे तथा जितनी घड़ी मध्यरात्रिसे पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्यासे गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे इष्टकालिक ग्रह होता है[3] ॥ ८८$\frac{१}{२}$॥

**( चन्द्रादि ग्रहोंके परम विक्षेप )**—भचक्रकला

योजन स्थूलमानसे मध्यभूपरिधिका प्रमाण है।

गोरखपुरमें स्पष्ट भूपरिधि-साधन—यदि लम्बांश ६३। १५ है, तो उसकी ज्या आगे ९३, ९७ श्लोकोंमें वर्णित रीतिके अनुसार ३०७० हुई। मध्यभूपरिधि ५०५८ को गोरखपुरकी लम्बज्या ३०७० से गुणा कर गुणनफल १५५२८०६० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि ४५१६ स्पष्ट भूपरिधि हुई।

देशान्तर-कालज्ञान इस प्रकार होता है—गणितद्वारा सिद्ध चन्द्रग्रहण-स्पर्शकालसे जितने घड़ी-पलके पश्चात् स्पर्श होता है, उतनी ही घड़ीको रेखादेशसे 'पूर्व देशान्तर' तथा जितनी घड़ी पहले ग्रहणका स्पर्श होता है, उतनी घड़ीको 'पश्चिम देशान्तर' समझा जाता है। गोरखपुरमें इस प्रकारसे १ घड़ी और १३ पल पूर्वदेशान्तर है।

इस देशान्तर-पलसे देशान्तर-योजनका ज्ञान त्रैराशिकसे होता है-जैसे ३६०० पलमें स्पष्ट भूपरिधियोजन ४५१६ है तो देशान्तर-पलमें कितना होगा? इस प्रकार गोरखपुरमें देशान्तर ७३ पलद्वारा रेखादेशसे देशान्तर-योजन $\frac{४५१६ \times ७३}{३६००}$ =९१ हुआ। इसके द्वारा ग्रहोंमें देशान्तरसंस्कार होता है।

रेखादेशसे गोरखपुरके पूर्व देशान्तर-योजन ९१ को सूर्यकी मध्यगतिकला ५९। ८ से गुणा कर गुणनफल ५३८१। ८ में स्पष्ट भूपरिधि-योजन ४५१६ से भाग देनेपर लब्धि कलादि १। ११ हुई। इसको अहर्गणसाधित मध्यम सूर्य ७। ६। ५। १८ में पूर्व देशान्तर होनेके कारण घटानेसे ७। ६। ४। ७ यह मध्यरात्रिकालिक मध्यम सूर्य हुआ।

१. पात (राहु) में देशान्तरसंस्कार विपरीत होता है।

२. रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयसे ही सृष्टिका आरम्भ माना गया है; इसलिये रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयमें ही वारप्रवेश होता है।

३. मान लीजिये, शुक्रवार मध्यरात्रिकालिक ग्रह जानकर अग्रिम प्रातः छः बजेका मध्यम सूर्य बनाना है तो—इष्टकाल ६ घंटा (१५ घड़ी) हुआ। इसलिये सूर्यकी कलादि गति ५९। ८ को १५ से गुणा करके ६० का भाग देनेसे लब्धि १४ कला ४७ विकलाको मध्यरात्रिके सूर्य ७। ६। ४। ७ में जोड़नेसे ७। ६। १८। ५४—यह शनिवारके प्रातः छः बजेका मध्यम सूर्य हुआ।

(२१६००)-के ८० वाँ भाग (२७०) कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्त (सूर्यके मार्ग)-से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है। एवं गुरु ६० कला, मङ्गल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं[1]॥ ८९-९०$\frac{१}{२}$॥

**राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते॥ ९१॥**
**तत्तद् विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम्।**
**आद्ये नैवं क्रमात् पिण्डान् भक्त्वा लब्धोनसंयुताः॥ ९२॥**
**खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी।**
**परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः॥ ९३॥**
**तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते।**

(अभीष्ट जीवासाधनके लिये उपयोगी २४ जीवासाधन)—१ राशि-कला १८०० का आठवाँ भाग (२२५ कला) प्रथम जीवार्ध[2] होता है। उस (प्रथम जीवार्ध) से प्रथम जीवार्धमें भाग देकर लब्धिको प्रथम जीवार्धमें ही घटाकर शेष (प्रथमखण्ड) को प्रथम जीवार्धमें ही जोड़नेसे द्वितीय जीवार्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम जीवासे ही द्वितीय जीवामें भाग देकर लब्धिको द्वितीय खण्डमें घटाकर शेषको द्वितीय जीवार्धमें जोड़नेसे तृतीय जीवार्ध होता है। इसी तरह आगे भी क्रिया करनेसे क्रमशः २४ जीवार्ध सिद्ध[3] होते हैं॥ ९१-९२$\frac{१}{२}$॥

इस प्रकार सूर्यकी परमक्रान्तिज्या १३९७ होती है। इस (परमक्रान्तिज्या)-से ग्रहकी ज्या (भुजज्या) को गुणा करके त्रिज्याके द्वारा भाग देनेसे 'इष्टक्रान्तिज्या' होती है। उसका चाप बनानेसे 'इष्टक्रान्ति' (मध्यमा) कहलाती है॥ ९३$\frac{१}{२}$॥

**ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च॥ ९४॥**
**शेषं केन्द्रपदं तस्माद्भुजज्या कोटिरेव च।**

---

१. सूर्य और अन्य ग्रहोंके मार्गोंका योगस्थान (चौराहा) पात कहलाता है। जब ग्रह अपने मार्गपर चलता हुआ पात-स्थानमें आता है, उस समय वह क्रान्तिवृत्तमें होनेके कारण अपने स्थानमें ही होता है; क्योंकि सब ग्रहोंके स्थान क्रान्तिवृत्तमें ही होते हैं। पात-स्थानसे आगे-पीछे होनेपर क्रान्तिवृत्तसे जितनी दूर विक्षिप्त होते (हटते) हैं, उतना उस ग्रहका 'विक्षेप' (शर) कहलाता है। सूर्यके मार्गको 'क्रान्तिमण्डल' और अन्य ग्रहोंके मार्गको उन-उन ग्रहोंका 'विमण्डल' कहते हैं तथा चन्द्रमाके पातस्थानको ही 'राहु' और 'केतु' कहते हैं।

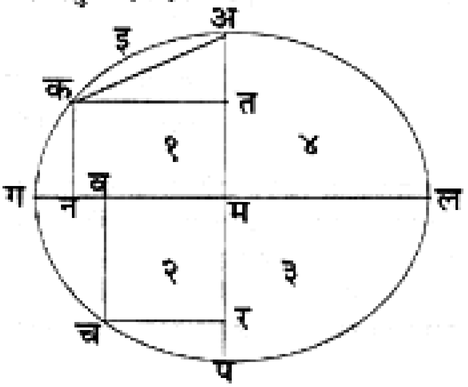


२. जीवा, जया, शिञ्जिनी, मौर्वी गुण, रज्जु—ये पर्यायवाचक शब्द हैं। ज्यौतिषमें चाप और जीवाके द्वारा ही ग्रहगणित होता है; क्योंकि ग्रहका मार्ग वृत्ताकार है। वृत्त परिधिका खण्ड चाप कहलाता है। जैसे अ, ग, प, ल, अ यह वर्तुल मार्ग वृत्तपरिधि है। इसमें अ-क, अ-ग आदि परिधिखण्ड चाप कहलाते हैं। जैसे अ, इ, क चाप है तो अ, क सरलरेखा अ, इ, क, चापकी पूर्णज्या कहलाती है तथा अ, त, सरलरेखा अ, इ, क चापकी उत्क्रमज्या तथा क, त रेखा अ, इ, क चापका जीवार्ध वा ज्यार्ध कहलाती है। इसीको अर्धज्या भी कहते हैं। गणितमें अर्धज्या (ज्यार्ध)-से ही काम लिया जाता है; इसलिये ज्यौतिषग्रन्थमें ज्यार्धको ही ज्या=जीवा=मौर्वी आदि कहते हैं। वे जीवार्ध या जीवा वृत्तके चतुर्थांशमें ही बनते हैं। इस वृत्तके चतुर्थांशको पद कहा गया है। अतः सम्पूर्ण वृत्तमें ४ पद होते हैं। १, ३ विषम और २, ४ सम पद कहलाते हैं।

वृत्तकी सम्पूर्ण परिधिमें १२ राशि या ३६० अंश होते हैं; इसलिये एक-एक पदमें तीन-तीन राशि या ९० अंश होते हैं। प्रथम और तृतीय पदमें गत चापको भुज और गम्य चापको कोटि कहते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पदमें गत चापको कोटि और गम्य चापको ही भुज कहते हैं। जैसे—प्रथम पदमें 'अ क'-भुज और 'क ग'-कोटि है तथा द्वितीय पदमें ग च-कोटि और च प-भुज है। प्रत्येक पदमें चापको ९० अंशमें घटानेसे शेष उस चापकी कोटि होती है; इसलिये क ग चाप-अ क चापकी कोटि, तथा क न सरल रेखा कोटिज्या है एवं सम (द्वितीय) पदमें च र भुजज्या और च व कोटिज्या कहलाती है। इसी क्रमसे तृतीय और चतुर्थ पदमें भुजज्या और कोटिज्या समझनी चाहिये। केवल 'ज्या' शब्दसे सर्वत्र भुजज्या ही समझी जाती है।

३. उदाहरण—जैसे—प्रथमज्या २२५में प्रथमज्या २२५ से भाग देकर लब्धि १ को प्रथमज्यामें घटाकर २२४ (प्रथम

गताद्भुजज्याविषमे गम्यात् कोटि: पदे भवेत्॥ ९५॥
युग्मे तु गम्याद्बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत्।
लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्॥ ९६॥
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनै:।
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके॥ ९७॥
स्यात्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृत:।
ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्॥ ९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते।

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानेकी रीति—) ग्रहोंको अपने-अपने मन्दोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है। उस राश्यादि केन्द्रकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिये। विषम (१, ३) पदमें 'गत' चापकी जीवा भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा कोटिज्या कहलाती है।[1] सम (२, ४) पदमें 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा 'कोटिज्या' होती है[2] ॥ ९४–९५ १/२ ॥

(इष्टज्या-साधन-विधि)—जितने राश्यादि चापकी जीवा बनाना हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५ से भाग देकर जो लब्धि हो, उतनी संख्या (सिद्ध २४ ज्या-पिण्डमें) गत ज्यापिण्डकी संख्या समझे। शेष कलाको 'गत ज्या' और 'गम्य ज्या' के अन्तरसे गुणा करके २२५ से भाग देकर लब्ध कलादिको 'गत ज्या'-पिण्डमें जोड़नेसे 'अभीष्ट ज्या' होती है। 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधिसे बनायी जाती है[3] ॥ ९६–९७ १/२ ॥

(जीवासे चाप बनानेकी विधि)—इष्ट जीवाकी कलामें सिद्ध जीवापिण्डोंमेंसे जितनी संख्यावाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिये। शेष कलाको २२५ से गुणा करके गुणनफलमें गत, गम्य जीवाके अन्तरसे भाग देकर जो लब्धि कलादि हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्यासे गुणित २२५ में जोड़नेसे इष्टज्याका चाप होता है[4] ॥ ९८ १/२ ॥

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनव: शीतगो रदा:॥ ९९॥

---

खण्ड) हुआ। इसको प्रथमज्यामें जोड़नेसे २२४+२२५=४४९ यह द्वितीय जीवा हुई। द्वितीय जीवा ४४९ में प्रथमज्या २२५ का भाग देकर लब्धि २ को प्रथम खण्ड २२४ में घटानेसे शेष २२२ द्वितीय खण्ड हुआ; इसको द्वितीय जीवामें जोड़नेसे ६७१ तृतीय जीवा हुई। फिर तृतीय जीवामें प्रथमज्यासे भाग देकर लब्धि ३ को द्वितीय खण्डमें घटानेसे शेष २१९ तृतीय खण्ड हुआ। इसको तृतीय जीवा ६७१ में जोड़नेसे ८९० यह चतुर्थ जीवा हुई। इसी प्रकार आगे भी साधन करनेपर निम्नाङ्कित सिद्ध २४ ज्यार्धकी कलाएँ होती हैं—२२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५, १५२०, १७१९, १९१०, २०९३, २२६७, २४३१, २५८५, २७२८, २८५९, २९७८, ३०८४, ३१७७, ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९, ३४३१ तथा ३४३८। ये १ पदमें (३ राशिमें) २४ ज्यार्ध-पिण्ड हैं।

१. ३ राशि (९० अंश)-का १ पद होता है। उस पदमें 'गत' चापको घटानेसे शेष 'गम्य' चाप कहलाता है। जैसे सूर्यराश्यादि ८। १०। १५। २५ है, उसका मन्दोच्च २। १७। ३५। ४० है तो मन्दोच्चमें सूर्यको घटानेसे राश्यादि शेष ६। ७। १७। १५ केन्द्र हुआ। यहाँ केन्द्र ६ राशिसे अधिक है, अत: तृतीय (विषम) पदमें पड़ा। इसलिये तृतीय पदके गतांशादि ७। १७। १५ को ९० अंशमें घटानेसे अंशादि ८२। ४२। ४५—ये 'गम्य' अंशादि हुए।

२. जैसे स्वल्पान्तरसे सूर्यका मन्दोच्च २। १७। ४८। ५४ है। इसमें मध्यम सूर्य ७। ६। १८। ५४ को घटानेसे शेष ७। ११। ३०। ० यह मन्द केन्द्र हुआ। यह ६ राशिसे अधिक होनेके कारण तुलादिमें पड़ा तथा तृतीय पदमें होनेके कारण इसमें ६ राशि घटाकर शेष १। ११। ३०। ० यह भुज हुआ। इसको ९० अंश (३ राशि) में घटानेसे शेष १। १८। ३०। ० यह कोटि हुई।

भुजज्या बनानेके लिये आगे कही हुई रीतिसे राश्यादि भुज १। ११। ३० को कला बनानेसे २४९० कला हुई। इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि गतज्या ११ हुई। शेष २५ को गतज्या, एष्यज्या (११ वीं और १२ वीं ज्या)-के अन्तर (२४३१-२२६७)=१६४ से गुणा करनेपर २४६० हुआ। इसमें २२५ का भाग देनेपर लब्धि ११ कलाको गतज्या २२६७ में जोड़नेसे सूर्यकी भुजज्या २२७८ हुई। इसी प्रकार कोटिकी कलाद्वारा कोटिज्या २६७५ हुई।

३. जैसे परम क्रान्ति २४ अंशकी कला १४४० में २२५ का भाग देनेसे लब्धि ६ 'गतज्या'-संख्या हुई, जिसका प्रमाण १३१५ है। शेष कला ९० को 'गतज्या' 'एष्यज्या' के अन्तर (१५२०-१३१५=२०५)-से गुणा कर उसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि ८२ को गतज्या १३१५ में जोड़नेसे १३९७ यह परम क्रान्ति (२४ अंश)-की ज्या हुई।

४. जैसे परमक्रान्तिज्याका चाप बनाना है, तो परमक्रान्तिज्या १३९७ में कथित छठी जीवा १३१५ को घटाकर

युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः॥ १०० ॥
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धय।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः॥ १०१ ॥
गुणाग्निचन्द्रा खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः॥ १०२ ॥
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता॥ १०३ ॥
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम्।

(रवि और चन्द्रमाके मन्दपरिध्यंश)—समपदके अन्तमें सूर्यके १४ अंश और चन्द्रमाके ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं और विषमपदके अन्तमें २० कला कम अर्थात् सूर्यके १३। ४० और चन्द्रमाके ३१। ४० मन्दपरिध्यंश हैं॥ ९९ $\frac{1}{2}$॥

(मङ्गलादि ग्रहोंकी मन्द और शीघ्र परिधि)—समपदान्तमें मङ्गलके ७५, बुधके ३०, गुरुके ३३, शुक्रके १२ और शनिके ४९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके ७२, बुधके २८, गुरुके ३२, शुक्रके ११ और शनिके ४८ मन्द परिध्यंश हैं। इसी प्रकार समपदके अन्तमें मङ्गलके २३५, बुधके १३३, गुरुके ७०, शुक्रके २६२ और शनिके ३९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके २३२, बुधके १३२, गुरुके ७२, शुक्रके २६० और शनिके ४० शीघ्र परिध्यंश कहे गये हैं॥ १००-१०२ $\frac{1}{2}$॥

(अभीष्ट स्थानमें परिधिसाधन—) अभीष्ट स्थानमें मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रहकी भुजज्याको विषम-समपदान्त-परिधिके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमें त्रिज्या (३४३८)-से भाग देकर जो अंशादि लब्धि हो, उसको समपदान्त-परिधिमें जोड़ने या घटानेसे (विषमपदान्तसे समपदान्त कम हो तो जोड़ने अन्यथा घटानेसे) इष्टस्थानमें स्पष्ट मन्द या शीघ्र परिध्यंश होते हैं[1]॥ १०३ $\frac{1}{2}$॥

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते॥ १०४ ॥
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम्।
शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्॥ १०५ ॥
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः॥ १०६ ॥
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम्॥ १०७ ॥
एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।
मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते॥ १०८ ॥
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात्।

(भुजफल-कोटिफल-साधन—) इस प्रकार साधित स्पष्ट परिधिसे ग्रहकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' को पृथक्-पृथक् गुणा करके भगणांश (३६०)-से भाग देकर लब्ध (भुजज्यासे) भुजफल और (कोटिज्यासे) कोटिफल होते हैं। एवं मन्द परिधिद्वारा मन्दफल और शीघ्र परिधिद्वारा शीघ्रफल समझने चाहिये। यहाँ मन्द परिधिवश भुजज्याद्वारा जो भुजफल आवे, उसका चाप बनानेसे मन्द कलादि फल होता है[2]॥ १०४ $\frac{1}{2}$॥

(शीघ्र कर्णसाधन—) पूर्वविधिसे शीघ्र परिधिद्वारा जो कोटिफल आवे, उसको मकरादि केन्द्र हो तो त्रिज्या (३४३८)-में जोड़े। कर्कादि केन्द्र हो तो घटावे। जोड़ या घटाकर जो फल हो, उसके वर्गमें शीघ्र भुजफलके वर्गको जोड़ दे। फिर उसका मूल लेनेसे शीघ्र कर्ण होता है॥ १०५-१०६॥

(शीघ्र फलसाधन—) पूर्वविधिसे साधित शीघ्र

---

शेष ८२ को २२५ से गुणाकर गत, गम्य ज्याके अन्तर २०५ से भाग देनेपर लब्धि ९० को ६×२२५-१३५० में जोड़नेसे १४४० हुआ। इसको अंश बनानेसे २४ परम क्रान्ति-अंश हुए।

१. जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को विषम-सम परिधिके अन्तर २० से गुणा करनेपर ४५५६० हुआ। इसमें ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि १३ कलाको समपदान्त परिधि-अंश १४ में घटानेसे १३। ४७ सूर्यकी स्पष्ट मन्द परिधि हुई।

२. जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को स्पष्ट मन्द परिधि १३। ४७ से गुणा कर ३१३९८। २६ हुआ। इसमें ३६० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ८७। १३ यह भुजफल हुआ। यह २२५ से कम है, अतः इसका चाप भी इतना ही हुआ और यही सूर्यका कलादि मन्दफल हुआ। इसके अंशादि बनानेसे १। २७। १३ हुआ, इसको तुलादि केन्द्र होनेके कारण मध्यम सूर्य ७। ६। १८। ५४ में घटानेसे शेष ७। ४। ५१। ४१ यह स्पष्ट सूर्य हुआ।

भुजफलको त्रिज्यासे गुणा करके शीघ्र कर्णके द्वारा भाग देनेपर जो कलादि लब्धि हो, उसके चाप बनानेसे शीघ्र 'भुजफल' होता है। यह शीघ्रफल मङ्गलादि ५ ग्रहोंमें प्रथम और चतुर्थ कर्ममें संस्कृत (धन या ऋण) किया जाता है॥ १०७ $\frac{1}{2}$॥

रवि और चन्द्रमामें केवल एक ही मन्दफलका संस्कार (धन या ऋण) किया जाता है। मुने! अब मङ्गलादि ५ ग्रहोंके संस्कारका वर्णन करता हूँ। उनमें प्रथम शीघ्रफलका, द्वितीय मन्दफलका, तृतीय भी मन्दफलका और चतुर्थ शीघ्रफलका संस्कार किया जाता है॥ १०८ $\frac{1}{2}$॥

**अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि॥ १०९॥**
**धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव तत्।**
**अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता॥ ११०॥**
**भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत्।**

(**संस्कारविधि**—) शीघ्र या मन्द केन्द्र मेषादि (६ राशिके भीतर) हो तो शीघ्रफल और मन्दफल जोड़े जाते हैं। यदि तुलादि केन्द्र (६ राशिसे ऊपर) हो तो घटाये जाते हैं॥ १०९ $\frac{1}{2}$॥

(**रविभुजफल-संस्कार**—) प्रत्येक ग्रहकी गतिकलाको पृथक्-पृथक् सूर्यके मन्द भुजफल-कलासे गुणा करके उसमें २१६०० के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि लब्धि हो, उसको पूर्वसाधित उदयकालिक ग्रहोंमें रविमन्दफलवत् संस्कार (मन्दफल धन हो तो धन, ऋण हो तो ऋण) करना चाहिये। इससे स्पष्ट सूर्योदयकालिक ग्रह होते हैं[1]॥ ११० $\frac{1}{2}$॥

**स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धेर्मध्यभुक्तेर्निशापतेः ॥ १११॥**
**ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि।**
**दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः॥ ११२॥**
**स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः।**
**कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम्॥ ११३॥**
**मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्च भुक्तितः।**
**तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः॥ ११४॥**
**चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम्।**
**ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत्॥ ११५॥**

(**स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थगतिफल**—) चन्द्रमध्यगतिमें चन्द्रमन्दोच्चगतिको घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्र-गतिसे) तथा अन्य ग्रहोंकी (स्वल्पान्तरसे) अपनी-अपनी गतिसे ही मन्दस्पष्टगतिसाधनमें फल साधन करे। यथा—उक्त गति (चन्द्रकी केन्द्रगति और अन्य ग्रहोंकी गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्याके अन्तर)-से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धिको अपनी-अपनी मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांश (३६०)-के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि फल लब्धि हो, उसको कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशिके भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगतिमें धन करने (जोड़ने) तथा मकरादि (९ राशिसे ऊपर ३ राशितक) केन्द्र हो तो घटानेसे मन्दस्पष्ट गति होती है।[2] पुनः इस मन्दस्पष्ट गतिको अपनी शीघ्रोच्च गतिमें घटाकर शेषको त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्णके अन्तरसे गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्णके द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि (कलादि) हो, उसको यदि कर्ण त्रिज्यासे अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गतिमें धन करने (जोड़ने) और अल्प हो तो घटानेसे स्पष्ट गति होती है। यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गतिसे अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल)-में मन्दस्पष्ट गतिको घटाकर जो बचे, वह वक्रगति होती है। इस स्थितिमें वह ग्रह वक्र-

---

१. पूर्वसाधित मध्यम या स्पष्ट सूर्य मध्यमार्कोदयकालिक होता है। उसको स्पष्ट सूर्योदयकालिक बनानेके लिये भुजफल-संस्कार किया जाता है। जैसे—सूर्यके भुजफल ८७। १३ को सूर्यकी स्पष्टगति ६०। ४७ से गुणा करनेपर ५३०१। २० हुआ। इसमें २१६०० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ०। १५ अर्थात् १५ विकलाको स्पष्ट सूर्यमें मन्दफल ऋण होनेके कारण घटानेसे स्पष्ट सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य ७। ४। ५१। २६ हुआ।

२. ग्रहोंकी केन्द्रगतिके द्वारा मन्दस्पष्टगतिफल साधन होता है। यहाँ चन्द्रमाकी अधिक गति होनेके कारण केन्द्रगति ग्रहण की जाती है। अन्य ग्रहकी १ दिनमें मन्दोच्च गति शून्य होनेके कारण ग्रहगतिके तुल्य ही केन्द्रगति होती है तथा रवि और चन्द्रमाकी मन्दस्पष्ट गति ही स्पष्ट गति होती है। मङ्गलादि ग्रहोंके शीघ्रोच्चवश शीघ्र गतिफलका पुनः संस्कार करनेसे स्पष्ट गति होती है।

गति रहता है[1] ॥१११—११५॥

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः।
शतरुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः॥११६॥
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम्।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता॥११७॥
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं चरासव।
तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते॥११८॥
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे॥११९॥

(ग्रहोंकी वक्र केन्द्रांश-संख्या—) मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांशमें, गुरु १३० केन्द्रांशमें, शुक्र १६२ केन्द्रांशमें और शनि ११५ शीघ्रकेन्द्रांशमें वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांशको ३६० में घटानेसे शेषके तुल्य केन्द्रांश होनेपर फिर वह मार्ग-गति होता है[2] ॥११६ $\frac{1}{2}$॥

(कालज्ञान—) रवि-क्रान्तिज्याको पलभा[3] से गुणा करके गुणनफलमें १२ से भाग देनेपर लब्धि 'कुज्या' होती है। उस (कुज्या)-को त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्या (क्रान्तिकी कोटिज्या) से भाग देकर लब्धि (चरज्या)-के चाप बनानेसे चरासु[4] होते हैं। उस चर-चापको यदि उत्तर क्रान्ति हो तो १५ घटीमें जोड़नेसे दिनार्ध और १५ घटीमें घटानेसे रात्र्यर्ध होता है। दक्षिणक्रान्ति हो तो विपरीत (यानी १५ घटीमें घटानेसे दिनार्ध और जोड़नेसे रात्र्यर्ध) होता है। दिनार्धको दूना करनेसे दिनमान और रात्र्यर्धको दूना करनेसे रात्रिमान होता है[5] ॥११७—११९॥

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम्॥१२०॥
रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः।
गतगम्याश्च षष्टिघ्न्यो भुक्तियोगाप्तनाडिकाः॥१२१॥
अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गता गम्याश्च षष्टिघ्न्यो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः॥१२२॥

(पञ्चाङ्ग-साधन—) ८०० कला एक-एक नक्षत्रका और ७२० कला एक-एक तिथिका भोगमान होता है। (अतः ग्रह किस नक्षत्रमें है, यह जानना हो तो) राश्यादि ग्रहको कलात्मक बनाकर उसमें भभोग (८००) के द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि हो, उसके अनुसार अश्विनी आदि गत नक्षत्र समझने

---

१. जैसे सूर्यको गति ५९। ८ को गत-एष्यज्याके अन्तर १६४ से (जो भुजज्यासाधनमें गतैष्यज्यान्तर हुआ था) गुणा करनेपर ९३९७। ५२ हुआ। इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धिकला ४३ को मन्दपरिधि १३। ४७ से गुणा करके गुणनफल ५९२। ४१ में ३६० से भाग देनेपर लब्धिकलादि गतिफल १। ३९ हुआ। इसको कर्कादि केन्द्र होनेके कारण सूर्यकी मध्यगति ५९। ८ में जोड़नेसे ६०। ४७ यह मन्दस्पष्ट गति हुई; यही सूर्यकी स्पष्ट गति भी होती है।

२. जैसे मङ्गलके वक्रकेन्द्रांश १६४ को ३६० में घटानेसे शेष १९६ मार्ग-केन्द्रांश हुए। इससे सिद्ध हुआ कि जब मङ्गलका शीघ्रकेन्द्रांश १६४ से १९६ तक रहता है, तबतक मङ्गल वक्र रहता है। इसी प्रकार सब ग्रहोंके मार्गकेन्द्रांश समझने चाहिये।

३. ३० घड़ीका दिन हो तो उस दिनके दोपहरमें बारह अङ्गुल शङ्कुकी छायाका नाम 'पलभा' है।

४. दीर्घ अक्षरके दस बार उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना काल १ असु (प्राण) कहलाता है। ६ असुका १ पल और ६० पलकी १ घड़ी होती है। अतः चरासुमें ६ के भाग देकर, पल बनाकर दिनमान साधन करना चाहिये।

५. क्रान्ति बनानेमें अयनांश जोड़ना होता है, इसलिये १३२ वें श्लोकके अनुसार अयनांश-साधन किया जाता है। अहर्गण १८४८२३७ को ६०० से गुणा कर गुणनफल ११०७७४२२०० में युग-कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि ८। १२। ४४ हुई। इसके भुज २। १२। ४४ के अंशादि ७२। ४४ को ३ से गुणा कर गुणनफल २१८। १२ में १० से भाग देनेपर लब्धि अंशादि २१। ४९। १२ यह अयनांश हुआ। इस अयनांशको स्पष्टसूर्य ७। ४। ५१। १२ में जोड़नेसे सायन सूर्य ७। २६। ४०। २४ हुआ, इसका भुज १। २६। ४०। २४ है और इस भुजकी ज्या २८७२ हुई। इस भुजज्याको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल ४०१२१८४ में त्रिज्या ३४३८ से भाग देनेपर लब्धि ११६७ क्रान्तिज्या हुई। इसकी चापकला ११९१ के अंश १९। ५१ क्रान्त्यंश हुए। इनको ९० अंशमें घटानेसे शेष ७०। ९ क्रान्तिका कोटिचाप हुआ। इसकी ज्या ३२३३ हुई, इसको द्युज्या कहते हैं।

गोरखपुरकी पलभा ६ के वर्ग ३६ को १२ के वर्ग १४४ में जोड़नेसे १८० हुआ। इसका मूल स्वल्पान्तरसे १३+ $\frac{1}{2}$ पलकर्ण हुआ। क्रान्तिज्या ११६७ को पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल ७००२ में १२ से भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५८३ कुज्या हुई। इसको त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २००४३५४ में द्युज्या ३२३३ से भाग देनेपर लब्धि ६२० चरज्या हुई। इसका चाप ६२६ यह चरासु हुआ, इसमें ६ से भाग देनेपर लब्ध चरपल १०४ हुए; इनकी घड़ी १। ४४ हुई। इसको सायनसूर्यके दक्षिणगोलमें रहनेके कारण १५ घड़ीमें घटानेसे १३। १६ यह दिनार्ध और चरको १५ घड़ीमें जोड़नेसे रात्र्यर्ध १६। ४४ हुआ। दिनार्धको दूना करनेसे घट्यादि २६। ३२ दिनमान हुआ तथा रात्र्यर्धको दूना करनेसे ३३। २८ रात्रिमान हुआ।

चाहिये। शेष कलादिसे ग्रहकी गतिके द्वारा उसकी गत और गम्यघटीको समझना चाहिये[1] ॥१२०॥

उदयकालिक स्पष्टरवि और चन्द्रका योग करके उसकी कलामें भभोग (८००)-के द्वारा भाग देकर लब्धि-गत विष्कुम्भ आदि योग होते हैं। शेष वर्तमान योगकी गतकला है। उसको ८०० में घटा देनेसे गम्यकला होती है। उस गत और गम्यकलाको ६० से गुणा करके उससे रवि और चन्द्रकी गति-कलाके योगसे भाग देनेपर गत और गम्यघटी होती हैं[2] ॥१२१॥

स्पष्टचन्द्रमें स्पष्टसूर्यको घटाकर शेष राश्यादिकी कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०)-से भाग देनेपर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथिकी गतकला है। उसको ७२० में घटानेसे गम्यकला होती है। गत और गम्यकलाको पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रविके स्पष्ट गत्यन्तरसे भाग देकर लब्धि-क्रमसे भुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चाङ्गमें वर्तमान तिथिके आगे गम्यघटी लिखी जाती है)[3] ॥१२२॥

**तिथय: शुक्लप्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृता:।**
**शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गर: ॥ १२३ ॥**
**वणिजश्च भवेद्विष्टि: कृष्णभूतापरार्द्धत:।**
**शकुनिर्नागश्च चतुष्पद: किंस्तुघ्नमेव च ॥ १२४ ॥**

(तिथिमें करण जाननेकी रीति—) शुक्लपक्षकी प्रतिपदादि गत-तिथि-संख्याको दूना करके ७ के द्वारा भाग देनेसे १ आदि शेषमें क्रमसे १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथिके पूर्वार्धमें होते हैं[4]। (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण १४ के पूर्वार्धतक (२८) तिथियोंमें ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिये ये ७ चर करण कहलाते हैं। कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्धसे शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, क्रमसे १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं[5] ॥१२३-१२४॥

**शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।**

---

१. उदाहरण—जैसे स्पष्टचन्द्रमाकी गति ८१९, राश्यादि २।१०।१५।२५ है, तो इसको कलात्मक बनानेसे ४२१५।२५ हुई। कलामें ८०० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ५ हुई। यह गत नक्षत्र अश्विनीसे ५ वें मृगशिराका सूचक है। शेष २१५।२५ यह वर्तमान आर्द्रा नक्षत्रकी गतकला हुई। इसको भभोग (८००)-में घटानेसे शेष ५८४।३५ यह आर्द्राकी गम्यकला हुई। इस प्रकार उदयकालिक चन्द्रकलासे नक्षत्रकी गम्यकलाद्वारा त्रैराशिकसे नक्षत्रकी गम्यघटी साधनकर पञ्चाङ्गमें लिखी जाती है। त्रैराशिक इस प्रकार है—यदि चन्द्रगतिकलामें ६० घड़ी तो गत, गम्यकलामें क्या? इसका उत्तर आगे श्लोक १२२ की टिप्पणीमें देखिये, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन ५ को पञ्चाङ्ग कहते हैं। स्पष्टचन्द्रमासे उक्त रीतिद्वारा साधित नक्षत्र ही पञ्चाङ्गोपयोगी नक्षत्र होता है। अर्थात् वही नक्षत्र पञ्चाङ्गमें लिखा जाता है।

२. योग-साधन—स्पष्टसूर्य और चन्द्रमाके योग ७।२९।५७।४० की कला १४३९७।४० में ८०० से भाग देनेपर लब्धि १७ गत योग व्यतीपात हुआ; शेष ७९७।४० यह वर्तमान वरीयान् योगका भुक्त हुआ; इसको ८०० कलामें घटानेसे शेष २।२० वरीयान्का भोग्य हुआ। उपर्युक्त विधिसे भुक्त ७९७।४० और भोग्य २।२० कलाको पृथक्-पृथक् ६० घड़ीसे गुणा कर गुणनफलमें सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके योग ८७६।३६ से भाग देनेपर लब्धि क्रमश: भुक्त घड़ी-पल ५४।३५ और भोग्य घड़ी-पल ०।९ हुई।

३. जैसे आर्द्रा नक्षत्रकी गम्यकला ५८४।३५ है तो उसको ६० से गुणा करनेसे गुणनफल ३५०७५ में चन्द्रगतिकला ८१९ से भाग देनेपर लब्धि घट्यादि ४२।४९ यह आर्द्राका गम्य (उदयसे आगेका) मान हुआ।

तिथि-साधन—यदि उदयकालमें चन्द्रमा ६।२४।१५।३, सूर्य १।५।४२।३७, चन्द्रगति ८१९।०, सूर्य-गति ५७।३६ है तो चन्द्रमा ६।२४।१५।३ में सूर्य १।५।४२।३७ को घटानेसे शेष ५।१८।३२।२६ की कला १०११२।२६ में ७२० से भाग देनेपर लब्धि १४ गत तिथि हुई; शेष ०।३२।२६ पूर्णिमाकी गत कलादि है। इसको ७२० कलामें घटानेसे शेष ६८७।३४ पूर्णिमाकी भोग्य कलादि हुई। गत कला ३२।२६ को ६० से गुणा कर गुणनफल १९४६ में चन्द्रमा और सूर्यकी गत्यन्तरकला ७६१।२४ से भाग देनेपर लब्ध घड़ी-पल २।३३ पूर्णिमा तिथिका भुक्त हुआ। तथा भोग्य कला ६८७।३४ को ६० से गुणाकर गुणनफल ४१२५४ में गत्यन्तरकला ७६१।२४ से भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ५४।१२ पूर्णिमा तिथिका भोग्य (सूर्योदयसे आगेका मान) हुआ।

४. जैसे शुक्लपक्षकी द्वादशीमें करणका ज्ञान प्राप्त करना है तो गत तिथि-संख्या ११ को दूना करनेसे २२ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ रहा। अत: द्वादशीके पूर्वार्धमें बव और उत्तरार्धमें बालव नामक करण हुआ। कृष्ण पक्षकी तिथि-संख्यामें १५ जोड़कर तिथि-संख्या ग्रहण करनी चाहिये। जैसे कृष्ण पक्षकी द्वादशीमें करण जानना हो तो गत तिथि-संख्या २६ को २ से गुणा करके गुणनफल ५२ में ७ से भाग देनेपर शेष ३ रहा। अत: द्वादशीके पूर्वार्धमें तीसरा कौलव और उत्तरार्धमें चौथा तैतिल नामक करण हुआ।

५. तिथिमानका आधा करण कहलाता है। इसलिये एक-एक तिथिमें २, २ करण होते हैं। बवादि ७ चर करण और शकुनि आदि ४ स्थिर करण हैं।

तत्र शङ्कङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत्॥ १२५ ॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्द्धयोः॥ १२६ ॥
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा॥ १२७ ॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि॥ १२८ ॥
चतुरस्रं बहिः कुर्यात् सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता॥ १२९ ॥
प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले।
उन्मण्डले च विषुवन्मण्डले परिकीर्त्यते॥ १३० ॥
रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ १३१ ॥

(दिक्साधन—) जलसे संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सीमेंट) से सम बनाये हुए भूतलमें जिस अङ्गुलमानसे शङ्कु बनाया गया हो, उसी अङ्गुलमानसे अभीष्ट त्रिज्याङ्गुलसे वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र)-में समान द्वादश विभाग (कल्पित अङ्गुल)-से बने हुए शङ्कुकी स्थापना करे। उस शङ्कुकी छायाका अग्र भाग दिनके पूर्वार्धमें जहाँ वृत्त-परिधिमें स्पर्श करे, वहाँ पश्चिम बिन्दु जाने और दिनके उत्तरार्धमें फिर उसी शङ्कुकी छायाका अग्रभाग जहाँ वृत्तपरिधिको स्पर्श करे, वहाँ पूर्व बिन्दु समझे। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम बिन्दुका ज्ञान करे। अर्थात् उन दोनों बिन्दुओंमें एक सरल रेखा खींचनेसे पूर्वापर-रेखा होगी। उस पूर्वापर रेखाके दोनों अग्रोंको केन्द्र मानकर दो वृत्तार्ध बनानेसे मत्स्याकार होगा। उसके मुख एवं पुच्छमें रेखा करनेसे दक्षिणोत्तर-रेखा होगी। यह दक्षिणोत्तररेखा केन्द्रबिन्दुमें होकर जाती है। यह रेखा जहाँ वृत्तमें स्पर्श करे, वहाँ दक्षिण तथा उत्तर दिशाके बिन्दु समझे। फिर इस दक्षिणोत्तर-रेखापर पूर्व-युक्तिसे मत्स्योत्पादनद्वारा पूर्वापर-रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्रबिन्दुमें होकर ठीक पूर्व और पश्चिम-बिन्दुका वृत्तमें स्पर्श करेगी। इस प्रकार चार दिशाओंको जानकर पुनः दो-दो दिशाओंके मध्यबिन्दुसे मत्स्योत्पादनद्वारा विदिशाओं (कोणों)-का ज्ञान करना चाहिये॥ १२५—१२८॥

(इस प्रकार वृत्तमें दिशाओंका ज्ञान होनेपर) वृत्तके बाहर चारों दिशाओंके बिन्दुओंसे स्पर्शरेखाद्वारा चतुरस्र (चतुर्भुज) बनावे। वृत्तके मध्यकेन्द्रसे भुजाङ्गुलतुल्य (भुजकी दिशामें उत्तर या दक्षिण) बिन्दुपर छायारेखा होती है। उस छायारेखाको पूर्वापर-रेखाके समानान्तर बनावे। पूर्वापर-रेखा, पूर्वापर-वृत्त, उन्मण्डल और नाडी वृत्तके धरातलमें होती है। इसलिये क्षितिज धरातलगत वृत्तके केन्द्रसे पूर्वापर रेखा खींचकर फिर पलभाग्र बिन्दुगत पूर्वापरके समानान्तर रेखा बनावे। इस प्रकार इष्ट-छायाग्रगत तथा पलभा रेखाके बीच (अन्तर)-को 'अग्रा' कहते हैं॥ १२९—१३१॥

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात्॥ १३२ ॥

शङ्कु (१२)-के वर्गमें छायाके वर्गको जोड़कर मूल लेनेसे छायाकर्ण होता है और छायाकर्णके वर्गमें शङ्कुके वर्गको घटानेसे मूल छाया होती है तथा छायाके-घटानेसे मूल शङ्कु होता है[१]॥१३२॥

त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते॥ १३३ ॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥ १३४॥

(अयनांश-साधन—) एक युगमें राशिचक्र सृष्ट्यादि स्थानसे पूर्व और पश्चिमको ६०० बार चलित होता है। जो उसके भगण कहलाते हैं। इसलिये अहर्गणको ६०० से गुणा करके युगके कुदिनसे भाग देकर राश्यादि-फलसे भुज बनावे। उस भुजको ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग दे तो लब्धि अयनांश होती है। इस अयनांशको अहर्गणद्वारा

१. क्योंकि शङ्कुकोटि, छायाभुज और इन्हीं दोनोंके वर्गयोगका मूल छायाकर्ण कहलाता है।

साधित ग्रहमें जोड़कर क्रान्ति, छाया और चरखण्ड आदि बनाने चाहिये[1] ॥१३३-१३४॥

**शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।**
**लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा॥१३५॥**
**स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।**
**शेषा नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा॥१३६॥**
**शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम्।**
**कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णावहर्दले॥१३७॥**

(**लम्बांश और अक्षांश-साधन—**) शङ्कु (१२) और पलभाको पृथक्-पृथक् त्रिज्यासे गुणा करके उसमें पलकर्णसे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः 'लम्बज्या' और 'अक्षज्या' होती है। दोनोंके चाप बनानेसे 'लम्बांश' और 'अक्षांश' होते हैं। इनकी दिशा सर्वदा दक्षिण समझी जाती है[2] ॥१३५॥

(**सूर्य-ज्ञानसे मध्याह्न-छाया-साधन—**) अपने अक्षांश और सूर्यके क्रान्त्यंश दोनों एक दिशाकी ओर हों तो योग करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो दोनोंको अन्तर करनेसे शेष सूर्यका 'नतांश' होता है। उस 'नतांश' की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनावे। भुजज्या और त्रिज्याको पृथक्-पृथक् शङ्कुमान (१२) से गुणा करके उसमें कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः मध्याह्नकालमें छाया और छायाकर्णके मानका सूचक होती है[3] ॥१३६-१३७॥

**स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।**
**दिग्भेदे पक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता॥१३८॥**
**परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः।**
**कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात्तु लादौ भार्धसंयुतात्॥१३९॥**
**मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत्।**
**तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः॥१४०॥**

(**मध्याह्न-छायासे-सूर्यसाधन—**) अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्यके 'नतांश' दोनों एक दिशाके हों तो अन्तर करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे जो फल हो, वह सूर्यकी 'क्रान्ति' होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या' से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७)-से भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी 'भुजज्या' होती है। उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशिमें सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है[4]। कर्कादि ३ राशिमें हों तो उस चापको ६ राशिमें घटानेसे,

---

१. अयनांश-साधनका उदाहरण काल-साधनमें पहले बतलाया जा चुका है।

२. जैसे—१२ अङ्गुल शङ्कुको त्रिज्याका ३४३८ से गुणा कर गुणनफल ४१२५६ में पलकर्ण $१३+\frac{२}{५}=\frac{६७}{५}$ से भाग देनेपर लब्धि ३०७९ लम्बज्या हुई, इसकी चापकला ३८१४ में ६० से भाग देनेपर अंशादि ६३। ३४ लम्बांश हुआ। इसको ९० अंशमें घटानेसे २६। २६ अक्षांश हुआ।

३. यदि मध्याह्नकालिक राश्यादि ०।९।५१ सायन सूर्य है तो उस दिन गोरखपुरमें मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण क्या होगा?

उत्तर—सायन सूर्य ०।९।५१ की भुजकला ५९१ की ज्या ५८७ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा करके गुणनफल ८२००३९ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि सूर्यकी क्रान्तिज्या २३८ कलाका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। अतः इसके अंश बनानेसे ३।५८ यह सूर्यकी अंशादि क्रान्ति सूर्यके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरकी हुई। अतः अक्षांश २६।२६ और क्रान्त्यंश ३।५८ का अन्तर करनेसे २२।२८ यह नतांश हुआ। इसको ९० अंशमें घटानेसे नतांशकी कोटि ६७।३२ हुई। नतांशकी भुजज्या १३०८ और कोटिज्या ३१७८ हुई। भुजज्या १३०८ को १२ से गुणा कर गुणनफल १५६९६ में कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५ अङ्गुल मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण हुआ।

४. गोरखपुरमें सायन मेष-संक्रान्तिके बाद वैशाख कृष्णपक्षमें यदि मध्याह्नके समय १२ अङ्गुल शङ्कुकी छाया ५ अङ्गुल उत्तर दिशाकी है तो उस दिन राश्यादि स्पष्ट सूर्य क्या होगा?

उत्तर—छाया ५ के वर्ग २५ में शङ्कु १२ का वर्ग १४४ जोड़नेसे १६९ हुआ। इसका वर्गमूल १३ छाया-कर्ण हुआ। छाया ५ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफल ३४३८×५=१७१९० छाया कर्ण १३ का भाग देनेसे लब्धि १३२२ सूर्यकी नतज्या हुई। इसका चाप १३५८ हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे २२।३८ सूर्यका नतांश हुआ। यह उत्तर छाया होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ। अतः इसको गोरखपुरके अक्षांश २६।२६ में घटानेसे ३।४८ यह सूर्यकी क्रान्ति हुई, इसकी कला २२८ की ज्या भी इतनी ही हुई। इस क्रान्तिज्या २२८ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफलमें परमक्रान्तिज्या १३९७ से भाग देनेपर लब्धि ५६१ सूर्यकी भुजज्या हुई। इसकी चापकला ५६३ को अंशादि बनानेसे ०।९।२३ राश्यादि सूर्य हुआ, यही मेषादि ३ राशिके भीतर होनेके कारण उस दिन मध्याह्नकालिक सायनसूर्य हुआ।

तुलादि ३ राशिमें हों तो ६ राशिमें जोड़नेसे और मकरादि ३ राशिमें हों तो १२ राशिमें घटानेसे जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्नमें स्पष्ट सूर्य होता है। उस स्पष्ट सूर्यसे विपरीत क्रियाद्वारा मन्दफलसाधन कर बार-बार संस्कार करनेसे मध्यम सूर्यका ज्ञान होता है ॥ १३८—१४० ॥

**ग्रहोदयाप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।**
**चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥ १४१ ॥**

(**ग्रहोंके अहोरात्र-मान**— ) जिस राशिमें तत्काल ग्रह हो, उस राशिके उदयमानसे उस ग्रहकी गतिको गुणा करके उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध असुको 'अहोरात्रासु' (२१६००)-में जोड़नेपर उस ग्रहका अहोरात्रमान होता है। (असुसे पल और घड़ी बना लेनी चाहिये।)[1] ॥ १४१ ॥

**त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः।**
**क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक् ॥ १४२ ॥**
**स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः।**
**खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥ १४३ ॥**
**स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः।**
**व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥ १४४ ॥**
**उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः।**

**राशियोंके उदयमान**—१ राशि, २ राशि, ३ राशिकी ज्याको पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्तिकी कोटिज्या)-से गुणा करके उसमें अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियोंके चाप बनावे। उनमें प्रथम चाप मेषका उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चापको द्वितीय चापमें घटानेपर शेष वृषका उदयमान होता है एवं द्वितीय चापको तृतीय चापमें घटाकर जो शेष रहे, वह मिथुनका लङ्कोदयमान होता है। यथा—१६७० असु मेषका, १७९५ वृषका तथा १९३५ मिथुनका सिद्ध लङ्कोदयमान है[2]। इन तीनोंमें क्रमसे अपने देशीय तीनों चरखण्डोंको घटावे तो क्रमशः तीनों अपने देशके मेष आदि तीन राशियोंके उदयमान होते हैं। पुनः उन्हीं तीनों लङ्कोदयमानोंको उत्क्रमसे रखकर—इन तीनोंमें अपने देशके तीनों चरखण्डोंको उत्क्रमसे जोड़नेपर कर्क आदि ३ राशियोंके स्वदेशोदयमान होते हैं एवं मेषादि कन्यापर्यन्त ६

१. जैसे स्पष्ट सूर्य ०। ९। ५१। १५ हो, उसकी गतिकला ५८ हो तो उसको मेषके स्वदेशोदयमान १३१० असुसे गुणा करके गुणनफल ७५९८० में १८०० से भाग देनेपर लब्धि ४२ असु हुई। उसको अहोरात्रासु (२१६००) में जोड़नेसे २१६४२ असु सूर्यके अहोरात्रका प्रमाण हुआ। इसका पल बनानेसे ३६०७ अर्थात् नाक्षत्र अहोरात्रसे सूर्यका अहोरात्र ७ पल अधिक हुआ। इसी प्रकार सब ग्रहोंके अहोरात्रमान समझे।

२. राशियोंके लङ्कोदयमान-साधनका उदाहरण—एक राशि (१८०० कला)-की ज्या १७१९ उसकी द्युज्या ३३५१ तथा परमाल्पद्युज्या ३१३९ कला है तो एक राशिज्या १७१९ को परमाल्पद्युज्या ३१३९ से गुणा करके गुणनफल ५३९५९४१ में एक राशिकी द्युज्या ३३५१ से भाग देकर लब्धि एक राशि उदयज्या १६१० हुई। इसका चाप मेषका उदयासु स्वल्पान्तरसे १६७० हुआ। इसी प्रकार आगे अपनी-अपनी ज्या और द्युज्यासे साधन करके राशियोंके उदयासु लिखे गये हैं। यथा—

| | लङ्कोदयासु | | चरासु | | स्वदेशोदयासु | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मेष | १६७० | - | ३६० | = | १३१० | मीन |
| वृष | १७९५ | - | २८८ | = | १५०७ | कुम्भ |
| मिथुन | १९३५ | - | १२० | = | १८१५ | मकर |
| कर्क | १९३५ | + | १२० | = | ३०५५ | धनु |
| सिंह | १७९५ | + | २८८ | = | २०८३ | वृश्चिक |
| कन्या | १६७० | + | ३६० | = | २०३० | तुला |

ये उदयमान अनुसंख्यामें हैं। इनमें ६ के भाग देनेसे पलात्मक होते हैं। यथा—मेषोदयासु-१६७०, अतः मेषोदयपल= $\frac{१६७०}{६}$ =२७८ स्वल्पान्तरसे। एवं अन्य मान निम्नाङ्कित चित्रमें देखिये।

राशियोंके उदयमान सिद्ध होते हैं। पुनः ये ही उत्क्रमसे तुलादि ६ राशियोंके मान होते हैं[1] ॥ १४२—१४४ ½ ॥

**गतभोग्यासवः कार्याः सायनात् स्वेष्टभास्करात्॥ १४५ ॥**
**स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः।**
**अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून्प्रविशोधयेत्॥ १४६ ॥**
**तद्वदेवैष्यलग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात्।**
**शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्॥ १४७ ॥**
**भागयुक्तं च हीनं च व्ययनांशं तनुः कुजे।**

**लग्न-साधन**—इष्टकालिक सायनांश सूर्यके भुक्तांश और भोग्यांशद्वारा 'भुक्तासु' और 'भोग्यासु' का साधन करना चाहिये। (यथा—भुक्तांशको सायन सूर्यके स्वदेशोदयमानसे गुणा करके ३० का भाग देनेपर लब्धि 'भुक्तासु' और भोग्यांशको स्वदेशोदयमानसे गुणा करके उसमें ३० के द्वारा भाग देनेपर लब्धि 'भोग्यासु' होते हैं। इष्ट घटीके 'असु' बनाकर उसमें 'भोग्यासु' को घटावे, घटाकर जो शेष बचे, उसमें अग्रिम राशियोंमेंसे जितनेके स्वदेशोदयमान घटें, उतने घटावे। (अथवा) इसी प्रकार 'इष्टासु' में 'भुक्तासु' घटाकर शेषमें, गत राशियोंके उत्क्रमसे उनके जितने स्वदेशोदयमान घटें, घटावे। जिस राशितकका मान घट जाय, वहाँतक 'शुद्ध' और जिसका मान नहीं घटे, वह 'अशुद्ध' संज्ञक होती है। बचे हुए 'इष्टासु' को ३० से गुणा करके 'अशुद्ध' राशिके उदयमानसे भाग देकर लब्ध अंशादिको (भोग्य-क्रम-विधि हो तो) शुद्ध राशिसंख्यामें जोड़ने और (भुक्त-उत्क्रम-विधि हो तो) अशुद्ध राशिकी संख्यामें घटानेसे 'सायन लग्न' होता है। उसमें अयनांश घटानेसे फलकथनोपयुक्त उदयलग्न होता है[2] ॥१४५—१४७ ½ ॥

**प्राक् पश्चान्नतनाडीभिस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः ॥ १४८ ॥**
**भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्।**
**भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥ १४९ ॥**
**सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्।**

(मध्य-दशम लग्न-साधन—) इसी प्रकार पूर्व 'नतकालासु' से लङ्कोदयद्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्यमें घटानेसे तथा पश्चिम 'नतकालासु' और

---

१. उदाहरण—पलमान ६ हैं, वहाँ चरखण्ड-क्रमसे पलात्मक ६०। ४८। २० हुए। इनको क्रम-उत्क्रमसे पलात्मक लङ्कोदयमें घटाने और जोड़नेसे ६ पलभादेशीय (स्वदेशोदय)-मान हुए। चक्रमें देखिये—

| | लङ्कोदया | | चरखण्ड | | स्वदेशोदया | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| मे. | २७८ | - | ६० | = | २१८ | मी. |
| वृ. | २९९ | - | ४८ | = | २५१ | कुं. |
| मि. | ३२३ | - | २० | = | ३०३ | म. |
| क. | ३२३ | + | २० | = | ३४३ | ध. |
| सि. | २९९ | + | ४८ | = | ३४७ | वृ. |
| क. | २७८ | + | ६० | = | ३३८ | तु. |

२. जैसे—यदि कल्पित अयनांश १८। १० और सूर्य १। ५। ५२। ४० है तो उनका योग सायन सूर्य १। २४। २। ४० हुआ। इष्ट काल घड़ी-पल १०। २० है। अतः सूर्यके वृषराशि-भोग्यांश ५। ५७। २० और इष्ट कालासु ३७२० हुए। सूर्यके भोग्यांश ५। ५७। २० को वृषराशिके स्वोदयासु संख्या १५०७ से गुणा करनेपर ३७२०। ८५८९९। ३०१४० को ६० से सवर्णन करनेपर ८९७५। १। २० हुआ। इसमें ३० का भाग देनेसे लब्धि २९९। १०। ३ भोग्यासु हुई। इसको इष्टकालासु ३७२० में घटानेसे ३४२०। ४९। ५७ हुआ। इसमें वृषके परवर्ती मिथुनके स्वोदयासु १८१५ को घटानेसे शेष १६०५। ४९। ५७ हुआ। इसमें कर्कका स्वोदयासु-२०५५ नहीं घटता है; इसलिये कर्कराशि अशुद्ध और मिथुन शुद्ध संज्ञक हुआ। शेष असु १६०५। ४९। ५७ को ३० से गुणा करनेपर ४८१७४। ५८। ३० हुआ। इसमें अशुद्ध कर्कके स्वोदयमान २०५५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २३। २६। ३२ में शुद्धराशि (मिथुन) संख्या ३ जोड़नेसे ३। २३। २६। ३२ हुआ। इसमें अयनांश १८। १० को घटानेसे २। ५। १६। ३२ यह लग्न हुआ।

लग्न बनानेमें विशेषता यह है कि यदि सूर्योदयसे इष्टकालद्वारा लग्न बनाना हो तो सायन सूर्यके भोग्यांशद्वारा तथा इष्टकालको ६० घड़ीमें घटाकर शेषकालद्वारा बनाना हो तो सूर्यके भुक्तांशद्वारा ही उपर्युक्त विधिसे लग्न बनाना चाहिये।

लङ्कोदयद्वारा (त्रैराशिकसे) अंशादि साधन करके सूर्यमें जोड़नेसे मध्य (दशम=आकाशमध्य) लग्न होता है[1] ॥ १४८ $\frac{1}{2}$ ॥

(लग्न और स्पष्ट-सूर्यको जानकर इष्टकाल-साधन—) लग्न और सूर्य इन दोनोंमें जो ऊन (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यासु' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांशद्वारा 'भुक्तासु' साधनकर दोनोंको जोड़े तथा उसमें उन दोनों (लग्न और सूर्य)-के[2] बीचमें जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओंको जोड़े तो 'इष्टकालासु' होते हैं[3] ॥ १४९ $\frac{1}{2}$ ॥

**विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद्‌ग्रहो विधोः ॥ १५० ॥**
**तेंऽशाः शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यग्वर्कांशः शरोऽङ्गुलैः ।**
**अर्कं विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् ॥ १५१ ॥**
**छाद्यच्छादकमानार्धं शरोनं ग्राह्यवर्जितम् ।**
**तत् खच्छन्नं च मानैक्यार्धं शराढ्यं दशाहतम् ॥ १५२ ॥**
**छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वाङ्गोनं ग्लौवपुर्हृतम् ।**
**स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वंशसंमितैः ॥ १५३ ॥**
**इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्‌गृहात् ।**
**तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥ १५४ ॥**

(ग्रहण-साधन—) पर्वान्त[4] कालमें स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहुका साधन करे। सूर्यमें राहुको घटाकर जो शेष बचे, उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्रग्रहण[5]की सम्भावना समझे ॥१५०॥ उन भुजांशोंको ११ से गुणा कर ७ से भाग देनेपर लब्धि-अङ्क अङ्गुलादि 'शर' होता है ॥ १५० $\frac{1}{2}$ ॥

सूर्यको चन्द्रमा और चन्द्रमाको भूभा (पृथिवीकी छाया) छादित करती है। इसलिये सूर्यग्रहणमें सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छादक तथा चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा छाद्य, भूभा छादक (ग्रहणकर्त्री) है—ऐसा समझना चाहिये। अब छन्न (ग्रास) मान कहते हैं—छाद्य और छेदकके विम्बमानका योग करके उसके आधेमें 'शर' घटानेसे 'छन्न' (ग्रास) मान होता है। यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य)-से अधिक हो तो उसमें

---

१. उदाहरण—यदि पूर्व 'नतकालासु' ३७५० और 'सायनसूर्य' ६। ५। ४। १० है तो भुक्त-प्रकारसे और 'लङ्कोदय' द्वारा दशम लग्नका साधन इस प्रकार होगा—सूर्यके 'भुक्तांश' ५। ४। १० को तुलाराशिके 'लङ्कोदय' १६७० से गुणा करनेपर गुणनफल ८४६५ हुआ। इसमें ३० का भाग देनेसे भागफल २८२ सूर्यके भुक्तासु हुए। इनको 'नतकालासु' ३७५० में घटानेसे शेष ३४६८ रहा। उसमें सूर्यसे पीछेकी कन्याराशिके लङ्कोदयासु १७९५ को घटानेपर शेष १६७३ रहा। इसमें सिंहका लङ्कोदयासु १७९५ नहीं घटता है, अतः यह सिंह अशुद्ध संज्ञक हुआ। अब शेष असु १६७३ को ३० से गुणा करके गुणनफल ५०१९० में अशुद्ध उदयासु १७९५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २७। ५७। ३९ हुए। इनको अशुद्ध राशि-संख्या ५ में घटानेपर शेष ४। २। २। २१ सायन दशम लग्न हुआ।

२. यहाँ आगे रहनेवाला अधिक और पीछे रहनेवाला ऊन समझा जाता है। एवं दोनोंके अन्तर ६ राशिसे अल्पवाला ग्रहण करना चाहिये। यदि सूर्य अधिक रहे तो रात्रि शेष इष्टकाल समझना चाहिये।

३. उदाहरणार्थ प्रश्न—यदि सायनसूर्य १। २४। ४५। ० और सायन लग्न ३। ५। २०। ३० है तो इष्टकाल क्या होगा?

उत्तर—यहाँ लग्न अधिक है, इसलिये लग्नके भुक्तांश ५। २०। ३० को कर्कराशिके 'स्वदेशोदयासु' २०५५ से गुणा करनेपर गुणनफल १०९७७ हुए। उसमें ३० का भाग देनेपर ३६५। ५४=३६६ लग्नके 'भुक्तासु' हुए। तथा सूर्यके भोग्यांश ५। १५। ० को वृषराशिके 'स्वदेशोदयासु' १५०७ से गुणा कर गुणनफल ७९११ में ३० से भाग देनेपर लब्ध सूर्यके भोग्यासु २६४ हुए। लग्नके 'भुक्तासु' ३६६ और सूर्यके 'भोग्यासु' २६४ के योग ६३० में मध्यकी राशि मिथुनके 'स्वदेशोदयासु' १८१५ जोड़नेसे २४४५ 'इष्टकालासु' हुए। इनमें ६ का भाग देनेपर लब्धि पल ४०७। ३० हुए। इनमें ६० का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ६। ४७। ३० सूर्योदयसे इष्टकाल हुआ।

४. चन्द्रग्रहणमें पूर्णिमा और सूर्यग्रहणमें अमावास्या पर्व कहलाता है।

५. सूर्य और चन्द्रग्रहणका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—ग्रह जिस मार्गमें घूमता हुआ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, वह (मार्ग) उस ग्रहकी कक्षा कहलाता है। पृथ्वीसे सूर्यकी कक्षा दूर और चन्द्रकी कक्षा समीप है। इसलिये सूर्य और पृथ्वीके बीचमें ही चन्द्रमा घूमता रहता है।

जिस दिशामें सूर्य रहता है, उससे विरुद्ध या सामनेकी दिशामें पृथ्वीकी छाया रहती है। जिस प्रकार सूर्य घूमता है, उसी प्रकार उक्त छाया भी घूमती है और उसकी लंबाई चन्द्रकक्षासे आगेतक बढ़ी हुई होती है। पृथ्वी गोल होनेके कारण चन्द्रकक्षामें पृथ्वीकी छाया भी गोलाकार ही होती है। वह सूर्यसे सर्वदा ६ राशिपर ही घूमती रहती है।

छाद्यको घटाकर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिये[1]।

मानैक्यार्ध (छाद्य-छादकके बिम्ब-योगार्ध) में शर जोड़कर १० से गुणा करे। फिर ग्रासमानसे गुणा

चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमता हुआ जब सूर्यके साथ एक दक्षिणोत्तर रेखामें स्थित होता है, उस समय दर्शान्त (अमावास्याके अन्त और शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भकी संधि)-काल कहलाता है। तथा जब सूर्यसे चन्द्रमा ६ राशि आगे पहुँच जाता है, उस समयको पूर्णिमान्त काल कहते हैं।

सर्वग्रास चन्द्र-ग्रहणका दृश्य

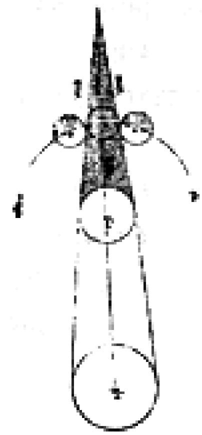

चन्द्रमाका बिम्ब जलमय है, उसके जिस भागपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, वह भाग तेजोयुक्त (उज्ज्वल) दीख पड़ता है। अतः उसके द्वारा रात्रिमें भी अन्धकारका निवारण होता है।

ऊपर कहा गया है कि सूर्यसे ६ राशिपर पृथ्वीकी छाया घूमती है और चन्द्रमाके सूर्यसे ६ राशिपर पहुँचनेपर पूर्णिमा होती है; इसलिये जिस पूर्णिमामें चन्द्रमा पृथ्वीकी छायासे अगल-बगल होकर चला जाता है, उसमें चन्द्रग्रहण नहीं होता है। तथा जिस पूर्णिमामें चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें पड़ जाता है, उस समय उसपर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ती हैं; अतः चन्द्रमा पूर्ण अदृश्य हो जाता है और वह 'सर्वग्रास' या 'खग्रास' 'चन्द्रग्रहण' कहलाता है। जिस पूर्णिमामें चन्द्रमाका कुछ ही भाग पृथ्वीकी छायामें पड़ता है, उस समय उतने ही भागके अदृश्य होनेके कारण उसे 'खण्डग्रहण' कहते हैं। इसीलिये चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको ही होता है।

(**सूर्यग्रहण—**) ऊपर बताया गया है कि चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्यके बीचमें घूमता है और सूर्यके समीप एक दक्षिणोत्तर रेखामें पड़ता है, उस दिन चन्द्रमाके ऊपरी भागमें सूर्यकी किरणें पड़ती हैं (नीचेके भागमें जिसे हम देखते हैं, नहीं)। यही कारण है कि अमावास्याके दिन हमें चन्द्रमाका दर्शन नहीं होता है। रात्रिमें सूर्यके साथ ही चन्द्रमा भी पृथ्वीके नीचे चला जाता है।

जिस अमावास्याको पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें चन्द्रमा आ जाता है, उस दिन उससे आच्छादित होकर सूर्यका बिम्ब अदृश्य हो जाता है; ठीक उसी तरह, जैसे मेघके खण्डसे आवृत होने पर वह अदृश्य होता है। इस प्रकार चन्द्रबिम्बसे जब सूर्यका सम्पूर्ण या न्यूनाधिक भाग अदृश्य होता है तो क्रमशः उसे 'सर्वग्रास' या 'खण्ड सूर्यग्रहण' कहते हैं।

खण्ड सूर्यग्रहणका दृश्य

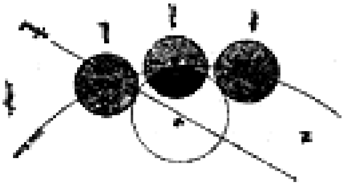

सूर्यग्रहण

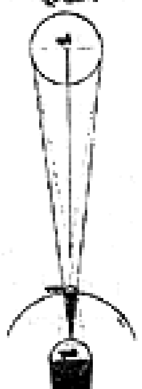

अमावास्यामें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीकी ओर होती है, उस छायामें जो भूभाग पड़ता है, उसके लिये सम्पूर्ण सूर्य-बिम्ब अदृश्य हो जाता है, अतः वहाँ सर्वग्रास सूर्यग्रहण होता है; अन्यत्र खण्ड-ग्रास। चित्र देखिये।

पुराणोंमें जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें राहु कारण बतलाया गया है, वह इस अभिप्रायसे है—अमृत-मन्थनके समय जब राहुका सिर काटकर अलग कर दिया गया, उस समय अमृत पीनेके कारण उसका मरण नहीं हुआ। वह एकसे दो हो गया। ब्रह्माजीने उन दोनोंमेंसे एक (राहु)-को चन्द्रमाकी छायामें और दूसरे (केतु)-को पृथ्वीकी छायामें रहनेके लिये स्थान दिया। अतः ग्रहण-समयमें राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाके समीप ही रहता है। अतः छायारूप राहु-केतुके द्वारा ही ग्रहणका वर्णन किया गया है।

१. मान लीजिये—पूर्णिमान्तकाल घट्यादि ४०। ४८ और उस समयका स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८। ०। १२। ६, चन्द्रमा २। ०। १२। १ तथा राहु ७। २८। २३। १८ है तो स्पष्ट सूर्य ८। ०। १२। ६ में राहु ७। २८। २३। १८ को घटानेसे ०। १। ४८। ४८ व्यगु हुआ; यह ३ राशिसे कम है, अतः इसका भुजांश इतना ही अर्थात् १। ४८। ४८ हुआ। यह १४ अंशसे कम है, इसलिये ग्रहणकी सम्भावना निश्चित हुई। व्यगुके भुजांश १। ४८। ४८। को ११ से गुणा करके गुणनफल १९। ५६। ४८ में ७ का भाग देनेपर भागफल २। ५०। 'शर' हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

यहाँ श्रीसनन्दन मुनिने चन्द्रादिके मध्यम बिम्ब प्रसिद्ध होनेसे स्पष्ट बिम्बका साधन-प्रकार नहीं कहा है। अतः सरलतापूर्वक समझनेके लिये चन्द्र, रवि और भूभा (पृथ्वीकी छाया) के बिम्ब-साधनका प्रकार यहाँ दिखलाया जाता है।

करके गुणनफलका जो मूल हो उसमें अपना षष्ठांश घटाकर शेषमें चन्द्र-बिम्बसे भाग देनेपर लब्धि-प्राप्त घटी आदिको स्थित्यर्ध[1] समझे। इस स्थित्यर्धको दो स्थानोंमें रखे। व्यगु (व्यग्वर्क—राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशिसे ऊन हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांशतुल्य पलको प्रथम स्थानगत स्थित्यर्धमें घटावे और द्वितीय स्थानवालेमें जोड़े। यदि व्यगु ६ या १२ से अधिक हो तो विपरीत क्रमसे (प्रथम स्थानमें जोड़ने और द्वितीय स्थानमें घटानेसे) स्पर्श और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं[2]॥ १५१—१५४॥

**ग्रासे नखाहते छाद्यमानाप्ते स्युर्विशोपकाः।**
**पूर्णान्तं मध्यमत्र स्याद्दर्शान्तेऽङ्कं त्रिभोनकम्॥ १५५॥**
**पृथक् तत्क्रान्त्यक्षभागसंस्कृतौ स्युर्नतांशकाः।**
**तद् द्विघ्नंशकृतिर्द्विघ्नी द्व्यूनार्धार्कयुता हरः॥ १५६॥**
**त्रिभोनाङ्कार्कविश्लेषांशाशोनघ्नाः पुरन्दराः।**
**हराप्ता लम्बनं स्वर्णं वित्रिभेऽर्काधिकोनके॥ १५७॥**
**विश्वघ्नलम्बनकलाढ्योनस्तु तिथिवद् व्यगुः।**
**शरोऽतो लम्बनं षड्घ्नं तल्लवाढ्योनवित्रिभात्॥ १५८॥**
**नतांशास्तद्दशांशोनघ्ना धृत्यस्तद्विवर्जितैः।**
**साष्टेन्देलिप्तैः षड्भिस्तु भक्ता नतिर्नतांशदिक्॥ १५९॥**
**तयोनाढ्यो हि भिन्नैकदिक् शरःस्फुटतां व्रजेत्।**
**ततश्छन्नस्थितिदले साध्ये स्थित्यर्धषड्वतिः॥ १६०॥**
**अंशास्तैर्वित्रिभं द्विष्ठं रहितं सहितं क्रमात्।**
**विधाय ताभ्यां संसाध्ये लम्बने पूर्ववत्तयोः॥ १६१॥**
**पूर्वोक्ते संस्कृते ताभ्यां स्थित्यर्द्धे भवतः स्फुटे।**
**ताभ्यां हीनयुतो मध्यदर्शः कालौ मुखान्तगौ॥ १६२॥**

(ग्रहणका विंशोपक (बिस्वा) फल—)

अङ्गुलादि ग्रासमानको २० से गुणा करके गुणनफलमें अङ्गुलात्मक छाद्यमानसे भाग दे, जो लब्धि आवे, वह विंशोपक फल होता है[3]।

---

गतिर्द्विघ्नीशाप्ताङ्गुलमुखतनुः स्यात् खररुचो
विधोर्भुक्तिर्वेदाद्रिभिरपहृता बिम्बमुदितम्।
नृपाश्वोना चान्द्रीगतिरपहृता लोचनकरै-
रदाढ्या भूभा स्यादिनगतिनगांशेन रहिता॥

(श्रीविश्वनाथ दैवज्ञ)

'सूर्यकी गतिको २ से गुणा करके गुणनफलमें ११ से भाग देनेपर जो लब्धि आवे, उतना ही सूर्यका अङ्गुलादि बिम्बमान होता है तथा चन्द्रमाकी गतिकलामें ७४ से भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतने अङ्गुलादि चन्द्रबिम्बका मान होता है। चन्द्रमाकी गतिमें ७१६ घटाकर शेषमें २२ से भाग देनेपर लब्धिको ३२ में जोड़े; फिर उसमें सूर्यगतिके सप्तमांशको घटानेसे भूभा (पृथ्वीकी छाया) होती है।'

यथा—स्पष्ट सूर्यगति ६१। ११ और चन्द्रगति ८२४। ५ है तो उक्त रीतिसे सूर्यगतिके द्विगुणित १२२। २२ में ११ से भाग देनेपर भागफल ११। ७ सूर्यबिम्ब हुआ। तथा चन्द्रगति ८२४। ५ में ७४ से भाग देनेपर भागफल ११। ८ चन्द्रबिम्ब हुआ। चन्द्रगति ८२४। ५ में ७१६ घटाकर शेष १०८। ५ में २२ से भाग देनेपर लब्धि ४। ५५ में ३२ जोड़नेसे ३६। ५५ हुआ; इसमें सूर्यगति ६१। ११ का सप्तमांश ८। ४४ घटानेसे शेष २८। ११ भूभाका बिम्ब हुआ। अब छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा)-के बिम्बके योग ११। ८+२८। ११=३९। १९ के आधे १९। ३९ में पूर्वसाधित शर २। ५० को घटानेसे शेष १६। ४९ ग्रासमान हुआ; यह छाद्य (चन्द्र) बिम्बसे अधिक है, अतः इसमें चन्द्रबिम्ब ११। ८ को घटानेसे शेष ५। ४१ खग्रास हुआ।

१. स्पर्शकालसे मोक्षकालका जो अन्तर है, उसे स्थिति कहते हैं। अतः उसका आधा मध्यम स्थित्यर्ध कहलाता है। स्पर्शकालसे मध्यकालतक स्पर्शस्थित्यर्ध और मध्यकालसे मोक्षकालतक मोक्षस्थित्यर्ध कहलाता है।

२. जैसे—छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा)-के बिम्बयोग ३९। १९ के आधे १९। ३९ में शर २। ५० को जोड़नेपर २२। २९ हुआ; इसको १० से गुणा करनेसे गुणनफल २२४। ५० को ग्रासमान १६। ४९ से गुणा करनेपर ३७८०। ५६। ५० हुआ। इसके मूल ६१। २९ में अपने ही षष्ठांश १०। १५ को घटानेपर शेष ५१। १४ में चन्द्रमाके बिम्ब ११। ८ का भाग दिया तो लब्धि घट्यादि पल ४। ३६ स्थित्यर्ध हुआ।

व्यगुभुजांश १। ४८। ४८ को २ से गुणा करनेपर गुणनफल ३। ३७। ३६ पल अर्थात् स्वल्पान्तरसे ४ पल हुए। इन पलोंको व्यगु (राहु घटे हुए सूर्य)-के ०-१२ राशिसे अधिक होनेके कारण स्थित्यर्ध ४। ३६ में जोड़नेसे स्पर्शस्थित्यर्ध ४। ४० और स्थित्यर्धमें ४ पल घटानेसे ४। ३२ मोक्षस्थित्यर्ध हुआ।

३. जैसे—ग्रासमान १६। ४९ को २० से गुणा करनेपर गुणनफल ३३६। २० में छाद्यमान ११। ८ से भाग दिया

( सूर्यग्रहणमें विशेष लम्बन-घटी-साधन— ) पर्वान्तकालमें ग्रहणका मध्य होता है। सूर्यग्रहणमें दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटानेसे 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांशके संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करनेसे 'नतांश' होता है। उसका २२ वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिये। यदि २ से कम हो तो उसीमें, यदि २ से अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेषके आधेको उसी (वर्ग)-में जोड़कर पुनः १२ में जोड़नेसे 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्यके अन्तरांशके दशमांशको १४ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हारसे भाग देनेपर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्यसे अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तकालमें इस लम्बनको जोड़ने-घटानेसे पृष्ठस्थानीय दर्शान्तकाल होता है॥ १५५—१५७॥

घट्यादि लम्बनको १३ से गुणा करनेपर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्कमें जोड़ या घटाकर 'शर' बनावे तो (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बनको ६ से गुणा करके गुणनफलको अंशादि मानकर वित्रिभमें जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांशके दशमांशको १८ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे; गुणनफलको ६ अंश १८ कलामें घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफलमें ही भाग देनेसे लब्धि अङ्गुलादि नतांशकी दिशाकी ही नति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनोंके संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग)-से स्पष्ट शर होता है। सूर्यग्रहणमें उसी शरसे और स्थित्यर्ध बनावे। स्थित्यर्धको ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफलको वित्रिभमें घटावे और दूसरे स्थानमें जोड़े। इन दोनों परसे पूर्वविधिसे पृथक् लम्बनसाधन करके क्रमशः पूर्वविधिसे साधित स्पर्श और मोक्षकालमें संस्कार करनेसे स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं[1]॥ १५८—१६२॥

तो लब्ध ग्रहणविंशोपक बल ३०। १३ हुआ। जब विंशोपक २० होता है तो ग्रहणका पुराणोक्त साधारण फल होता है। यदि विंशोपक २० से कम हो तो कथित फल बलके अनुसार अल्प और २० से अधिक हो तो कथित फल अधिक होता है।

१. उदाहरण—जहाँ दक्षिण अक्षांश २५। २६। ४२, स्पष्ट दर्शान्तकाल घड़ी-पल १३। ४, दर्शान्तकालिक स्पष्ट सूर्य ८। ५। २६। २५, स्पष्ट चन्द्रमा ८। ५। २६। २०, राहु २। ११। ४१। १८, स्पष्ट सूर्यगति ६१। १५ और स्पष्ट चन्द्रगति ७२६। ३० है तो उक्त घटी-पलको इष्ट मानकर लग्न बनानेसे ११। २। ४६ १७ लग्न हुआ। इसमें ३ राशि घटानेपर त्रिभोन लग्न (वित्रिभ) ८। २। ४६। १७ हुआ। पूर्वोक्त रीतिके अनुसार साधन करनेपर इसकी क्रान्ति २३। ३८। १० हुई; यह वित्रिभके दक्षिण गोलमें होनेके कारण दक्षिण दिशाकी हुई। अतः इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५। २६। ४२ में जोड़नेपर ४९। ४। ५२ नतांश हुए। उक्त नतांशके २२ वें भाग २। १३। ५१ का वर्ग करनेपर ४। ५८ हुआ, यह २ से अधिक है, इसलिये इसमें २ को घटानेपर शेष २। ५८ हुआ। इसके आधे १। २९ को उसी वर्ग ४। ५८ में जोड़नेसे ६। २७ हुआ। इसे १२ में जोड़नेपर १८। २७ 'हार' हुआ। तथा वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ और सूर्य ८। ५। २६। २५ के अन्तरांश २। ४०। ८ का दशमांश ०। १६ हुआ। इसको १४ में घटानेपर शेष १३। ४४ रहा। इसको उसी दशमांश ०। १६ से गुणा करनेपर गुणनफल ३। ३९ हुआ। इसमें हार १८। २७ का भाग देनेपर भागफल ०। ११ हुआ; यह (ग्यारह पल) लम्बन हुआ। सूर्यसे वित्रिभ अल्प होनेके कारण दर्शान्त घटी १३। ४ में इस लम्बन ११ पलको घटानेसे पृष्ठस्थानीय घट्यादि दर्शान्तकाल १२। ५३ हुआ।

अब घट्यादि ०। ११ लम्बनको १३ से गुणा किया तो गुणनफल २। २३ कलादि हुआ। उक्त लम्बनके ऋण होनेके कारण सूर्य ८। ५। २६। २५ में राहु २। ११। ४१। १८ का अन्तर करनेसे व्यग्वर्क ५। २३। ४५। ७ हुआ। इसमें २। २३ कलादिको घटानेपर ५। २३। ४२। ४४ पृष्ठस्थानीय व्यग्वर्क हुआ। इसको ६ राशिमें घटानेपर शेष ०। ६। १७। १६ यही भुजांश हुआ। इसको पूर्वोक्त शर-साधन-विधिके अनुसार ११ से गुणा करके ७ का भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ९। ५२ शर हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें (६ राशिसे कम) होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

फिर लम्बन ०। ११ को ६ से गुणा करनेपर गुणनफल अंशादि १। ६ को (ऋणलम्बन होनेके कारण) वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में घटानेपर ८। १। ४०। १७ हुआ। इससे क्रान्ति-साधन-विधिके अनुसार दक्षिण दिशाकी क्रान्ति २३। ३४। ३५। हुई। इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५। २६। ४२ में जोड़नेसे ४९। १। १७ दक्षिण दिशाका पृष्ठस्थानीय (स्पष्ट) नतांश हुआ। इस नतांशमें १० का भाग देनेपर लब्ध कलादि ४। ५४ को १८ घटानेसे शेष १३। ६ रहा। इसको उक्त दशमांश ४। ५४ से ही गुणा करनेपर ६४। ११ कलादि हुआ; इसके अंश १। ४। ११

**अर्का घना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशका:।**
**कालांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधो: ॥ १६३ ॥**
**दृष्ट्वा ह्यादौ खेटविम्बं दृगौच्यं लम्बमेक्ष्य च।**
**तल्लम्बपातविम्बान्तर्दृगौच्याप्तरविघ्नभा ॥ १६४ ॥**

(**ग्रहोंके उदयास्तकालांश—**) १२, १७, १३, ११, ९, १५ ये क्रमसे चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके कालांश हैं। अपने-अपने कालांशतुल्य सूर्यसे पीछे ग्रह होते हैं तो अस्त और कालांशतुल्य सूर्यसे आगे होते हैं तो उदय होता है। (अर्थात् ग्रह अपने-अपने कालांशके भीतर सूर्यसे पीछे या आगे जबतक रहते हैं, तबतक सूर्य सान्निध्यवश अस्त (अदृश्य) रहते हैं) ॥ १६३ ॥

(**ग्रहोंके प्रतिविम्बद्वारा छायासाधन—**) सम भूमिमें रखे हुए दर्पण आदिमें ग्रहोंके प्रतिविम्बको देखकर दृष्टिस्थानसे भूमिपर्यन्त लम्ब पातकर दृष्टिकी ऊँचाईका मान समझे। लम्बमूल और प्रतिबिम्बके अन्तर-प्रमाणको दृष्टिकी ऊँचाईसे भाग देकर लब्धिको १२ से गुणा करनेपर उस समय उस ग्रहकी छायाका प्रमाण होता है[1] ॥ १६४ ॥

**अस्ते सावयवा ज्ञेया गतैष्यास्तिथयो बुधै:।**
**शरेन्द्वासोत्तराशा सा संस्कृतार्कापमैर्विधो: ॥ १६५ ॥**
**षोडशघ्नतिथिर्हीना स्वघ्नतिथ्याक्षभाहृता।**
**व्यस्तेषु क्रान्तिभागैश्च द्विघ्नतिथ्या हृता स्फुटम् ॥ १६६ ॥**
**संस्कारदिक्कं वलनमङ्गुलाद्यं प्रजायते।**
**स्वेष्वंशोना: सितं तिथ्यो वलनाशोन्नतं विधो: ॥ १६७ ॥**
**शृङ्गमन्यन्नतं वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात्।**

(**चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—**) सूर्यास्त-समयमें सावयव गत और एष्य तिथिका साधन करे। उस सावयव तिथिको १६ से गुणा करके उसमें तिथिके वर्गको घटाकर शेषको स्वदेशीय पलभासे गुणा करे। गुणनफलमें १५ से भाग देकर लब्धि (फल)-की दिशा उत्तर समझे। उसमें सूर्यकी क्रान्तिका यथोक्त

को ६ अंश १८ कलामें घटानेपर ५। १३। ४९ हुआ। इससे उपर्युक्त गुणनफल ६४। ११ में भाग देनेपर लब्धि १२। १८ अङ्गुलादि नति हुई। दक्षिण नतांश होनेके कारण इसकी दिशा दक्षिण हुई और पूर्वसाधित अङ्गुलादि शर ९। ५२ यह उत्तर दिशाका है; अत: भिन्न दिशा होनेके कारण दोनोंका अन्तर २। २६ अङ्गुलादि स्पष्ट शर हुआ। इस स्पष्ट शरके द्वारा चन्द्रग्रहणकी भाँति ग्रासमान आदि साधन करनेके लिये सूर्यस्पष्ट गति ६१। १५ को २ से गुणा कर गुणनफलमें ११ का भाग देनेपर सूर्यविम्ब ११। ८ हुआ और चन्द्रस्पष्ट गति ७२६। ३० में ७४ का भाग देनेपर चन्द्रविम्ब ९। ४९ हुआ। इन दोनोंका योगका आधा किया तो १०। २८ हुआ, उसमें स्पष्ट शर २। २६ को घटानेपर शेष अङ्गुलादि ८। २ यह ग्रासमान हुआ।

अब स्थिति-घटी-साधन करनेके लिये सूर्य और चन्द्रके विम्बयोगार्ध १०। २८ में स्पष्ट शर २। २६ को जोड़नेपर योगफल १२। ५४ हुआ। इसको १० से गुणा करनेपर गुणनफल १२९। ० को ग्रासमान ८। २ से गुणा किया तो गुणनफल १०३६। १८ हुआ। इसके मूल ३२। ११ में इसीके षष्ठांश ५। २२ को घटानेपर शेष २६। ४९ में चन्द्रविम्ब ९। ४९ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि २। ४४ स्थिति-घटी हुई।

अब स्थिति-घटी २। ४४ को ६ से गुणा करके गुणनफल अंशादि १६। २४ को वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में घटानेसे ७। १६। २२। १७ स्पर्शकालिक वित्रिभ हुआ। तथा दर्शान्तकालकी गति ६१। १५ को स्थिति-घटी २। ४४ द्वारा गुणा करके गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर लब्धि २। ४७ को दर्शान्तकालिक सूर्य ८। ५। २६। २५ में घटानेपर स्पर्शकालिक सूर्य ८। ५। २३। ३८ हुआ। इन स्पर्शकालिक सूर्य और वित्रिभ लग्नके द्वारा पूर्वदर्शित विधिसे स्पर्शकालिक ऋणलम्बन १। १७ घट्यादि हुआ।

इसी प्रकार स्थिति-घटी २। ४४ को ६ से गुणा करनेपर अंशादि फल १६। २४ को वित्रिभ लग्न ८। २। ४६। १७ में जोड़नेसे मोक्षकालिक वित्रिभ लग्न ८। १९। १०। १७ हुआ। एवं सूर्यगति ६१। १५ को स्थिति-घटी २। ४४ से गुणा कर गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर भागफल २। ४७ को सूर्य ८। ५। २६। २५ में जोड़नेसे मोक्षकालिक स्पष्ट सूर्य ८। ५। २९। २२ हुआ। इन दोनों (वित्रिभ और सूर्य) के द्वारा पूर्वकथित विधिसे मोक्षकालिक धनलम्बन (सूर्यसे वित्रिभ अधिक होनेके कारण) घट्यादि ०। ५६ हुआ।

अब दर्शान्तकाल १३। ४ में स्थिति-घटी २। ४४ को घटानेसे १०। २० मध्यमस्पर्शकाल हुआ, इसमें स्पर्शकालिक ऋणलम्बन १। १७ को घटानेसे ९। ३ स्पष्ट (भूपृष्ठस्थानीय) स्पर्शकाल हुआ तथा दर्शान्तकालमें स्थिति-घटी जोड़नेपर मध्यम दर्शान्तकाल १५। ४८ हुआ। एवं इसमें मोक्षकालिक धनलम्बन ०। ५६ जोड़नेपर १६। ४४ स्पष्ट मोक्षकाल हुआ।

१. उदाहरण—यदि समभूमिसे लम्बमान (दृष्टिकी ऊँचाई) ७२ अङ्गुल और द्रष्टा तथा प्रतिविम्बका अन्तर भूमिमान ९६ अङ्गुल है, तो उक्त रीतिके अनुसार भूमिमान ९६ को दृष्टिकी ऊँचाई ७२ से भाग देकर १२ से गुणा करनेपर $\frac{९६\times१२}{७२}$ =१६ अङ्गुल छायाप्रमाण हुआ।

संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करे। तथा चन्द्रमाके शर और क्रान्तिका विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथिसे भाग देनेपर जितनी लब्धि हो, उतना अङ्गुल संस्कार-दिशाका वलन होता है। चन्द्रमासे जिस दिशामें सूर्य रहता है, वही संस्कारकी दिशा समझी जाती है। तिथिमें अपना पञ्चमांश घटानेसे शुक्ल (चन्द्रके श्वेत भाग)-का अङ्गुलादि मान होता है। वलनकी जो दिशा होती है, उस दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशामें नत होता है। तदनुसार परिलेख करना चाहिये[1] ॥ १६५—१६७ ½ ॥

**पञ्चर्त्वगाङ्कवशिखाः कर्णशेषहताः पृथक् ॥ १६८ ॥**
**प्रकृत्यार्काङ्कसिद्धाग्निभक्ताः लब्धोनसंयुताः।**
**त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि त्रिहृताः कुजात् ॥ १६९ ॥**
**ऋज्व्योरनृज्व्योर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम्।**
**वक्रर्ज्व्योर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ॥ १७० ॥**
**स्वनत्या संस्कृतौ स्वेषू दिक्साम्येऽन्येऽन्तरं युतिः।**
**याम्योदक्खेटविवरं मानैक्यार्धाल्पकं यदा ॥ १७१ ॥**
**तदा भेदो लम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत्।**

**( ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मङ्गलादि पाँच ग्रहोंके विम्बसाधन— )** मङ्गलादिके ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यमविम्बमानोंको क्रमसे मङ्गलादि ग्रहोंके कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्णके अन्तर)-से गुणा करके गुणनफलको २ स्थानोंमें रखे। एक स्थानमें क्रमसे मङ्गलादि ग्रहके २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धिको द्वितीय स्थानमें स्थित गुणनफलमें, यदि कर्ण त्रिज्यासे[2] अधिक हो तो घटावे, यदि त्रिज्यासे अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग देनेपर क्रमशः मङ्गलादि ग्रहोंके विम्ब-प्रमाण होते हैं[3]।

**( ग्रहोंकी युतिके गत-गम्य दिन-साधन— )** जिन दो ग्रहोंके युतिकालका ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों ग्रहोंकी अन्तर-कलामें दोनोंकी गत्यन्तर-कलासे भाग देना चाहिये। यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनोंकी गति-योगकलासे भाग देना चाहिये। फिर जो लब्धि आवे, वह ग्रहयुतिके गत या गम्य दिनादि है।[4]

**( ग्रहोंकी युतिमें भेद-ज्ञान— )** जिन दो ग्रहोंकी युति होती हो, उन दोनोंके अपनी-अपनी नतिसे

---

इस प्रकार रात्रिमें मङ्गलादि ग्रहोंकी छायाका प्रमाण समझा जाता है, जो ग्रहयुति आदिमें उपयुक्त होती है।

१. उदाहरण—शुक्लपक्षकी द्वितीयामें सायंकालिक चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये मान लीजिये उस समयकी सावयव (घड़ीसहित) तिथि २। ३०, सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १०, चन्द्रमाका उत्तर शर ५ और चन्द्रमाकी उत्तर क्रान्ति ६ हो तो कथित रीतिसे सावयव तिथि २। ३० को १६ से गुणा कर गुणनफल ४० में सावयव तिथिके वर्ग ६। १५ को घटानेसे शेष ३३। ४५ रहा; इसको पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल २०२। ३० में १५ से भाग देनेपर लब्धि १३। ३० यह उत्तर दिशाका फल हुआ। इसमें सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १० (एक दिशा होनेके कारण) जोड़नेसे २३। ३० हुआ। तथा (एक दिशा होनेके कारण) चन्द्रमाके उत्तर शर ५ और उत्तरक्रान्ति ६ इन दोनोंके योग ११ को उत्तर दिशाके फल १३। ३० में विपरीत संस्कार करने (घटाने)-से शेष २। ३० रहा। इसमें द्विगुणित तिथि २। ३०×२=५ से भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ०। ३० स्पष्ट वलन हुआ; यह चन्द्रमासे सूर्यकी दक्षिण दिशामें होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ। एवं सावयव तिथि २। ३० में अपना पञ्चमांश ०। ३० घटानेसे २। ० अङ्गुलादि शुक्लमान हुआ। इस प्रकार उस दिन दक्षिण दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत हुआ।

२. यहाँ त्रिज्याका प्रमाण ११ ग्रहण करना चाहिये।

३. जैसे—यदि मङ्गलका शीघ्रकर्ण १३ है तो त्रिज्या ११ और कर्ण १३ के अन्तर २ से मङ्गलके मध्यम विम्बमान ५ को गुणा करनेपर १० हुआ; इसमें २१ का भाग देकर भागफल ०। २९ को (त्रिज्यासे कर्णके अधिक होनेके कारण) गुणनफल १० में घटानेपर शेष ९। ३१ में ३ का भाग दिया तो फल अङ्गुलादि ३। १० मङ्गलका स्पष्ट विम्बमान हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंका भी जान लेना चाहिये।

४. जैसे—मङ्गल और शुक्रका युतिसमय जानना है तो कल्पना कीजिये कि उस दिन स्पष्ट मङ्गल ७। १५। २०। २५, मङ्गलकी स्पष्ट गति ४०। १२, स्पष्ट शुक्र ७। १०। ३०। २५ तथा शुक्रकी स्पष्ट गति ७०। १२ है तो यहाँ शीघ्र (अधिक) गतिवाला शुक्र मङ्गलसे अल्प (पीछे) है, अतः दोनोंकी युति भावी है—ऐसा निश्चित हुआ। ये दोनों मार्गी हों तो उक्त रीतिसे मङ्गल ७। १५। २०। २५ में शुक्र ७। १०। ३०। २५ को घटाकर शेष ०। ४। ५ कलामें शुक्रगति ७०। १२ और मङ्गलगति ४०। १२ के अन्तर ३० गत्यन्तर-कलासे भाग देनेपर लब्धि ०। ९। ४० गम्य दिनादि हुई अर्थात् इतने समयके बाद योग होनेवाला है।

संस्कृत शर (भूपृष्ठस्थानाभिप्रायिक शर) एक दिशाके हों तो अन्तर, यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे दोनों ग्रहोंका अन्तर (दक्षिणोत्तरान्तर) होता है। यह अन्तर यदि दोनोंके बिम्बमान-योगार्धसे अल्प हो तो उनके योगमें भेद (एकसे दूसरा आच्छादित) होता है। इसलिये इनमें नीचेवालेको छादक और ऊपरवालेको छाद्य मानकर सूर्यग्रहणके समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि साधन करना चाहिये[1] ॥ १६८—१७१ $\frac{1}{2}$ ॥

**एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।**
**तद्युते मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥ १७२ ॥**
**विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।**
**समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोर्युतौ ॥ १७३ ॥**
**भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधि संस्थयोः।**
**दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥ १७४ ॥**
**अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता।**
**यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥ १७५ ॥**
**न्यूना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च।**
**पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद् विशुद्ध्यति ॥ १७६ ॥**
**क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाभ्यस्ते परमापक्रमोद्धृते।**
**तच्चापान्तरमर्द्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥१७७ ॥**
**शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम्।**
**चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥ १७८ ॥**
**तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात्।**
**कर्मैतदसकृत्तावत्क्रान्ती यावत्समे तयोः ॥ १७९ ॥**

(**पाताधिकार—पातकी संज्ञा—**) जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक ही अयन (याम्यायन—दक्षिणायन अथवा सौम्यायन—उत्तरायण)-में हों तथा उन दोनोंके राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्तिसाम्य होनेपर वैधृति नामका पात कहलाता है। तथा जब दोनों भिन्न (पृथक्-पृथक्) अयनमें हों और दोनोंका योग ६ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्तिसाम्य होनेपर व्यतीपात नामक पात होता है।

जब सूर्य-चन्द्रका अन्तर चक्र (०) या ६ राशि हो, उस समयमें तात्कालिक अयनांशादिसे युक्त सूर्य और चन्द्रमाकी अपनी-अपनी क्रान्तिका साधन करे। यदि शर-संस्कृत चन्द्रमाकी क्रान्ति (स्पष्टा क्रान्ति) तात्कालिक सूर्यकी क्रान्तिसे अधिक हो तथा चन्द्रमा यदि विषम पदमें हो तो पातकालको गत (बीता हुआ) समझना चाहिये। यदि विषमपदस्थ चन्द्रमाकी शर-संस्कृत क्रान्तिसे अल्प हो तो पातकालको भावी (होनेवाला) समझना चाहिये। यदि चन्द्रमा समपदमें हो तो इससे विपरीत (सूर्यकी क्रान्तिसे चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति अधिक हो तो भावी, अल्प हो तो गत) पातकाल समझे। यदि स्पष्ट क्रान्ति बनानेमें चन्द्रमाके शरमें क्रान्ति घटायी जाय तो इस स्थितिमें चन्द्रमाके बिम्ब और स्थानमें पदकी भिन्नता होती है।

(**स्फुट-क्रान्ति-साम्य-ज्ञान-प्रकार—**) सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी 'क्रान्तिज्या' को त्रिज्यासे गुणा करके उसमें परम क्रान्तिज्यासे भाग देकर जो लब्धियाँ हों, उन दोनोंके चाप बनाये। उन दोनों चापोंका जो अन्तर हो उसको सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ न्यून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमामें जोड़े; गतपात हो तो घटावे। पुनः उपर्युक्त चापके अन्तर या उसके खण्डको सूर्यकी गतिसे गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रगतिसे भाग देकर जो लब्धि (कलादि) हो, उसको चन्द्रमाके समान ही सूर्यमें संस्कार करे (गम्यपात हो तो जोड़े, गतपात हो तो घटावे)। इसी प्रकार (सूर्य फलवत्-उक्त चापान्तरको चन्द्रपातकी गतिसे गुणा करके उसमें चन्द्रगतिसे भाग देकर) लब्धिरूप चन्द्रपातके कलादि फलको चन्द्रपात (राहु)-में विपरीत संस्कार करे (गतपातमें जोड़े, गम्य पातमें घटावे) तो पातकालासन्न

[1] जब दो ग्रहोंके क्रान्तिवृत्तमें एक ही समान (पूर्वापर अन्तरका अभाव) होता है, तब उन दोनोंकी युति (योग) समझी जाती है। ग्रहोंके इस प्रकार परस्पर योगसे शुभाशुभ फल संहितास्कन्धमें कहा गया है। इसीलिये ग्रहयुति-समयका ज्ञान आवश्यक है।

समयके सूर्य, चन्द्रमा और चन्द्रपात होते हैं। फिर इन तीनों (रवि, चन्द्र और चन्द्रपात) के द्वारा उपर्युक्त क्रियाको तबतक बार-बार करता रहे जबतक दोनोंकी क्रान्ति सम न हो जाय[१] ॥१७२—१७९॥

**क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ।**
**हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके॥ १८०॥**
**स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः।**
**षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः॥ १८१॥**

इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होनेपर पात समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त क्रियाद्वारा प्राप्त अंशादिसे युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमासे अल्प (पीछे) हो तो पातकालको 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकालको भावी समझे।

**(अर्धरात्रिसे गत, गम्य पातकालका ज्ञान—)** उपर्युक्त क्रियाद्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों—इन

---

१. यदि सायन सूर्य ५ । २६ । ४० । ० सायन चन्द्र ० । २ । ५ । ०, पात (राहु) ० । ५ । २५ । ०, सूर्यगति ६० । १५, चन्द्रगति ७८३ । १५ और राहु-गति ३ । ११ हैं तो चन्द्र ० । २ । ५ । ० और पात ० । ५ । २५ । ० के योग ० । ७ । ३० सपातचन्द्रकी भुजकला ४५० की ज्या ४४९ हुई। इसको चन्द्रमाके परम शर २७० से गुणा कर गुणनफल १२१२३० में त्रिज्या ३४३८से भाग देनेपर लब्धि चन्द्रमाकी शरकला ३६ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। केवल चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० की भुजज्या १२५ कलाको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १७४६२५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ५० चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। अतः चन्द्रमाके शर ३६ क्रान्ति ५० का योग करनेसे ८६ चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति हुई।

तथा राश्यादि सूर्य ५ । २६ । ४० । ० को ६ राशिमें घटानेमें भुज ० । ३ । २० । ० की कला २०० की ज्या इतनी ही हुई। इसको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २७९४०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही होनेके कारण यही सूर्यकी क्रान्ति हुई।

सूर्यकी क्रान्तिसे विषम (प्रथम) पदस्थित चन्द्रमाकी क्रान्ति अधिक है, इसलिये यहाँ गतपात निश्चित हुआ तथा सूर्य और चन्द्रमाके भिन्न अयन (चन्द्रमाके उत्तरायण और सूर्यके दक्षिणायन)-में होने एवं दोनोंके राश्यादियोग ६ राशि होनेके कारण इस क्रान्तिसाम्यका नाम व्यतीपात हुआ।

अब, चन्द्र-क्रान्तिज्या ८६ को त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २९५६६८ में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि २११ चन्द्रमाकी भुजज्या हुई; इसका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। एवं सूर्यकी क्रान्तिज्या ८१ को त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २०४७८ में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी भुजज्या १९२ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ।

सूर्य और चन्द्रमाके चापोंका अन्तर करनेसे (२११—१९२-) १९ कला हुई। इसके आधे (स्वल्पान्तरसे) १० को मध्यरात्रिकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० में घटानेसे पातासन्नकालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० हुआ। तथा उसी अन्तरार्धकला १० को सूर्यकी गति ६० । १५ से गुणा कर गुणनफल ६०२ । ३० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धिफल १ कलाको मध्यरात्रिकालिक सूर्य ५ । २६ । ४० में घटानेसे ५ । २६ । ३९ हुआ। एवं उसी अन्तरार्धकला १० को राहुकी गति ३ । ११ से गुणा कर गुणनफल ३१ । ५० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धि ० हुई। इसका विपरीत संस्कार करनेपर भी मध्यरात्रिकालिक राहुके तुल्य ही तत्कालीन राहु ० । ५ । २५ हुआ।

अब, पातासन्नकालिक चन्द्र ० । १ । ५५ । ०, सूर्य ५ । २६ । ३९ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० रहे। इनके द्वारा पुनः क्रान्ति-साधन किया जाता है। चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की भुजज्या ११५ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १६०६५५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ४६ चन्द्रक्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। तथा चन्द्र ० । १ । ५५ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० का योग करनेसे सपातचन्द्र ० । ७ । २० की भुजज्या ४४० को चन्द्रके परमशर २७० से गुणा कर गुणनफल ११८८०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) ३५ चन्द्रशरज्या हुई; इसका चाप बनानेसे इतना ही चन्द्रशर हुआ। चन्द्रशर ३५ को चन्द्रक्रान्ति ४६ में जोड़नेसे ८१ कला हुई, इसका अंश बनानेसे १ । २१ चन्द्रमाकी स्पष्टक्रान्ति हुई। एवं तत्कालीन सूर्य ५ । २६ । ३९ की भुजज्या २०१ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २८०७९७ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे १ । २१ सूर्यकी क्रान्ति हुई। अतः यहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंमें समता हुई।

दोनोंकी अन्तरकलाको ६० से गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रकी गति-कलासे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रिसे पीछे या आगे (गत पातमें पीछे, गम्य पातमें आगे) तक पातकालकी घड़ी समझी जाती है[1] ॥ १८०-१८१ ॥

**रवीन्द्वोर्मानयोगार्द्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्।**
**तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत्॥ १८२ ॥**
**पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्द्धवर्जितः।**
**तस्य सम्भवकालः स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः॥ १८३ ॥**
**आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः।**
**प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः॥ १८४ ॥**
**इत्येतद्गणिते किञ्चित्प्रोक्तं संक्षेपतो द्विज।**
**जातकं वच्मि समयाद्राशिसंज्ञापुरःसरम्॥ १८५ ॥**

(पातके स्थितिकाल, आरम्भ तथा अन्तकालका साधन—) सूर्य तथा चन्द्रमाके विम्बयोगार्धको ६० से गुणा करके गुणनफलमें सूर्य-चन्द्रकी गत्यन्तरकलासे भाग देकर जो लब्धि हो वह पातकी स्थित्यर्ध घड़ी होती है। इसको पातके स्पष्ट मध्यकालमें घटानेसे पातका आरम्भकाल होता है और जोड़नेसे अन्तकाल होता है[2]। पातके आरम्भकालसे अन्तकालतक जो मध्यका काल है, वह प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त दारुण (भयानक) होता है। जो सब कार्यमें निषिद्ध है। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने गणितस्कन्धमें संक्षेपसे कुछ (उपयोगी) विषयोंका प्रतिपादन किया है। अब (अगले अध्यायमें) राशियोंके संज्ञादि कथनपूर्वक जातकका वर्णन करूँगा॥ १८२—१८५ ॥

*॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे ज्यौतिषगणितवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥*

## त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका जातकस्कन्ध

**सनन्दनजी कहते हैं**—नारद! मेष आदि राशियाँ कालपुरुषके क्रमशः मस्तक, मुख, बाहु, हृदय, उदर, कटि, वस्ति (पेंडू), लिङ्ग, ऊरु, जानु, जङ्घा और दोनों चरण हैं॥ १ ॥ मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि तथा गुरु—ये क्रमशः मेष आदि राशियोंके अधीश्वर (स्वामी) हैं॥ २ ॥ विषम राशियोंमें पहले सूर्यकी, फिर चन्द्रमाकी होरा बीतती है तथा सम राशियोंमें पहले चन्द्रमाकी, फिर सूर्यकी होरा बीतती है। आदिके दश अंशतक उसी राशिका द्रेष्काण होता है और उस राशिके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं। ग्यारहसे बीसवें अंशतक उस राशिसे पाँचवीं राशिका द्रेष्काण होता है और उसके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं; इसी प्रकार अन्तिम दश अंश (अर्थात् २१ से ३० वें अंशतक) उस राशिसे नवम राशिका द्रेष्काण होता है और उसीके स्वामी उस द्रेष्काणके स्वामी कहे गये हैं॥ ३ ॥ विषम राशियोंमें पहले पाँच

१. क्रान्तिसाम्य (पात) काल-साधन—मध्यकालिक चन्द्रमा ०। २। ५। ० और स्थिरीकृत क्रान्तिसाम्य-(पात) कालिक चन्द्रमा ०। १। ५५। ० को अन्तरकला १० को ६०से गुणा कर गुणनफल ६०० में चन्द्रगति ७८३। १५ का भाग देनेपर (स्वल्पान्तरसे) लब्धि १ घड़ी हुई। इसको (गतपात होनेके कारण) मध्यरात्रि घड़ी ४५। १५ में घटानेसे शेष ४४। १५ पातका मध्यकाल हुआ।

२. क्रान्ति-साम्य-साधनमें कथित सूर्यकी गति ६०। १५ द्वारा सूर्यविम्ब १०। ५७ हुआ एवं चन्द्रगति ७८३। १५ द्वारा चन्द्रविम्ब १०। ३५ हुआ। इन दोनोंके योग २०। ९२ के आधे १०। ४६ को ६० से गुणा कर गुणनफल ६४६ में सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके अन्तर ७२३ से भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) १ घड़ी हुई; यह पातकालकी स्थित्यर्ध घड़ी हुई। इसको पातमध्यकाल ४४। १५ में घटानेसे शेष ४३। १५ आरम्भकाल एवं जोड़नेसे ४५। १५ पातका अन्तकाल हुआ।

अंशतक मङ्गल, फिर पाँच अंशतक शनि, फिर आठ अंशतक बृहस्पति, फिर सात अंशतक बुध और अन्तिम पाँच अंशतक शुक्र त्रिंशांशेश कहे गये हैं। सम राशियोंमें इसके विपरीत क्रमसे पहले पाँच अंशतक शुक्र, फिर सात अंशतक बुध, फिर आठ अंशतक बृहस्पति, फिर पाँच अंशतक शनि और अन्तिम पाँच अंशतक मङ्गल त्रिंशांशेश बताये गये हैं॥ ४॥ मेष आदि राशियोंके नवमांश मेष, मकर, तुला और कर्कसे प्रारम्भ होते हैं (यथा—मेष, सिंह, धनुके मेषसे; वृष, कन्या, मकरके मकरसे; मिथुन, तुला और कुम्भके तुलासे तथा कर्क, वृश्चिक और मीनके नवमांश कर्कसे चलते हैं।) $२\frac{१}{२}$ अंशके द्वादशांश होते हैं, जो अपनी राशिसे प्रारम्भ होकर अन्तिम राशिपर पूरे होते हैं और उन-उन राशियोंके स्वामी ही उन द्वादशांशोंके स्वामी कहे गये हैं। इस प्रकार ये राशि, होरा आदि षड्वर्ग[१] कहलाते हैं॥ ५॥

वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर—ये

---

१. गृह (राशि), होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश—ये षड्वर्ग कहे गये हैं। जिन राशियोंके जो स्वामी हैं, वे ही राशियाँ उन ग्रहोंके घर हैं। एक राशिमें ३० अंश होते हैं। उनमेंसे पंद्रह अंशकी एक होरा होती है। एक राशिमें दो होराएँ होती हैं। दश अंशका द्रेष्काण होता है, अतः एक राशिमें तीन द्रेष्काण व्यतीत होते हैं। $३\frac{१}{३}$ अंशका एक नवमांश होता है। राशिमें नौ नवमांश होते हैं। $२\frac{१}{२}$ अंशका एक द्वादशांश होता है; राशिमें बारह द्वादशांश होते हैं। एक-एक अंशका त्रिंशांश होता है, इसीलिये उसका यह नाम है।

### राशि-स्वामी-ज्ञानार्थ-चक्र

| राशि | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्वामी | मङ्गल | शुक्र | बुध | चन्द्र | सूर्य | बुध | शुक्र | मङ्गल | गुरु | शनि | शनि | गुरु |

### (राश्यर्ध) होरा-ज्ञानार्थ-चक्र

| होरा-अंश | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १—१५ तक | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र |
| १८—३० तक | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि | चन्द्र | रवि |

### (राशितृतीयांश) द्रेष्काण-ज्ञानार्थ-चक्र

| | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १—१० तक | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ सूर्य | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | राशि स्वामी |
| ११—२० तक | ५ सूर्य | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | राशि स्वामी |
| २१—३० तक | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ सूर्य | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | राशि स्वामी |

रात्रिसंज्ञक हैं अर्थात् रातमें बली माने गये हैं—ये पृष्ठभागसे उदय लेनेके कारण पृष्ठोदय कहलाते हैं (किंतु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियोंकी दिन संज्ञा है (वे दिनमें बली और शीर्षोदय माने

**राशियोंमें नवमांश-ज्ञानार्थ-चक्र**

| अंश-कला | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३। २० | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र |
| ६। ४० | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ रवि | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ रवि | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ रवि |
| १०। ० | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध |
| १३। २० | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र |
| १६। ४० | ५ सूर्य | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ सूर्य | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ सूर्य | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल |
| २०। ० | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु |
| २३। २० | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि | ७ शुक्र | ४ चन्द्र | १ मङ्गल | १० शनि |
| २६। ४० | ८ मङ्गल | ५ रवि | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ रवि | २ शुक्र | ११ शनि | ८ मङ्गल | ५ रवि | २ शुक्र | ११ शनि |
| ३०। ० तक | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु | ९ गुरु | ६ बुध | ३ बुध | १२ गुरु |

**राशियोंमें द्वादशांश-ज्ञानार्थ-चक्र**

| अंश-कला | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २। ३० | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु |
| ५। ० | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल |
| ७। ३० | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र |
| १०। ० | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध |
| १२। ३० | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र |
| १५। ० | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि |
| १७। ३० | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध |
| २०। ० | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र |
| २२। ३० | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल |
| २५। ० | १० शनि | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु |
| २७। ३० | ११ शनि | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि |
| ३०। ० | १२ गुरु | १ मङ्गल | २ शुक्र | ३ बुध | ४ चन्द्र | ५ रवि | ६ बुध | ७ शुक्र | ८ मङ्गल | ९ गुरु | १० शनि | ११ शनि |

गये हैं); मीन राशिको उभयोदय कहा गया है। मेष आदि राशियाँ क्रमसे क्रूर और सौम्य (अर्थात् मेष आदि विषम राशियाँ क्रूर और वृष आदि सम राशियाँ सौम्य) हैं ॥ ६ ॥ मेष आदि राशियाँ क्रमसे पुरुष, स्त्री और नपुंसक होती हैं (नवीन मतमें दो विभाग हैं, मेष आदि विषम राशियाँ पुरुष और वृष आदि सम राशियाँ स्त्री हैं)। इसी प्रकार मेष आदि राशियाँ क्रमशः चर, स्थिर और द्विस्वभावमें विभाजित हैं (अर्थात् मेष चर, वृष स्थिर और मिथुन द्विस्वभाव हैं, कर्क चर, सिंह स्थिर और कन्या द्विस्वभाव हैं। इसी क्रमसे शेष राशियोंको भी समझे)। मेष आदि राशियाँ पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं (यथा—मेष, सिंह, धनु पूर्वमें; वृष कन्या, मकर दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें स्थित हैं)[1]। ये सब अपनी-अपनी दिशामें रहती हैं ॥ ७ ॥ सूर्यका उच्च मेष, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मकर, बुधका कन्या, गुरुका कर्क, शुक्रका मीन तथा शनिका उच्च तुला है। सूर्यका मेषमें १० अंश, चन्द्रमाका वृषमें ३ अंश, मङ्गलका मकरमें २८ अंश, बुधका कन्यामें १५ अंश, गुरुका कर्कमें ५ अंश, शुक्रका मीनमें २७ अंश तथा शनिका तुलामें २० अंश उच्चांश (परमोच्च) है ॥ ८ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी जो उच्च राशियाँ कही गयी हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहोंका नीच स्थान है।

चरमें पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है। स्थिरमें मध्य (पाँचवाँ) नवमांश और द्विस्वभावमें अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है। तनु (लग्न) आदि बारह भाव हैं ॥ ९ ॥ सूर्यका सिंह, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, गुरुका धन, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ यह मूल त्रिकोण कहा गया है। चतुर्थ और अष्टभावका नाम चतुरस्र है। नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है ॥ १० ॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठका नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशमका नाम केन्द्र है। द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रमें बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्नमें,

विषम राशियोंमें त्रिंशांश—

| अंश | ५ | ५ | ८ | ७ | ५ |
|---|---|---|---|---|---|
| स्वामी | मङ्गल | शनि | गुरु | बुध | शुक्र |

सम राशियोंमें त्रिंशांश—

| अंश | ५ | ७ | ८ | ५ | ५ |
|---|---|---|---|---|---|
| स्वामी | शुक्र | बुध | गुरु | शनि | मङ्गल |

१. मेषादि राशियोंके रूप-गुण आदिका बोधक चक्र

| राशियाँ | मेष | वृष | मिथुन | कर्क | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ | मीन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अङ्गमें स्थान | मस्तक | मुख | भुज | हृदय | पेट | कमर | पेडू | लिङ्ग | ऊरु | जानु | जङ्घा | पैर |
| अधिपति | मङ्गल | शुक्र | बुध | चन्द्र | सूर्य | बुध | शुक्र | मङ्गल | गुरु | शनि | शनि | गुरु |
| बलका समय | रात्रि | रात्रि | रात्रि | रात्रि | दिन | दिन | दिन | दिन | रात्रि | रात्रि | दिन | दिन |
| उदय | पृष्ठोदय | पृष्ठोदय | शीर्षोदय | पृष्ठोदय | शीर्षोदय | शीर्षोदय | शीर्षोदय | शीर्षोदय | पृष्ठोदय | पृष्ठोदय | शीर्षोदय | उभयोदय |
| शील | क्रूर | सौम्य | क्रूर | सौम्य | क्रूर | सौम्य | क्रूर | सौम्य | क्रूर | सौम्य | क्रूर | सौम्य |
| पुं-स्त्रीत्व | पुरुष | स्त्री | पुरुष | स्त्री | पुरुष | स्त्री | पुरुष | स्त्री | पुरुष | स्त्री | पुरुष | स्त्री |
| स्वभाव | चर | स्थिर | द्विस्वभाव | चर | स्थिर | द्विस्वभाव | चर | स्थिर | द्विस्व० | चर | स्थिर | द्विस्व० |
| दिशा | पूर्व | दक्षिण | पश्चिम | उत्तर | पूर्व | दक्षिण | पश्चिम | उत्तर | पूर्व | दक्षिण | पश्चिम | उत्तर |
| द्विपदादि | चतुष्पद | चतुष्पद | द्विपद | जलकीट | चतुष्पद | द्विपद | द्विपद | कीट | १५ द्वि० / १५ च० | १५ च० / १५ जल | द्विपद | जलचर |
| वर्ण | रक्त | श्वेत | हरित | गुलाबी | धूम्र | गौर | चित्र | कृष्ण | पीत | पिङ्ग | भूरा | स्वच्छ |
| जाति | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र | ब्राह्मण | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र | ब्राह्मण | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र | ब्राह्मण |

जलचर चतुर्थमें, कीट सातवेंमें और पशु दसवेंमें बलवान् माने गये हैं) ॥ ११ ॥ केन्द्रके बादके स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं। उसके बादके ३, ६, ९, १२—ये आपोक्लिम कहलाते हैं। मेषका स्वरूप रक्तवर्ण, वृषका श्वेत, मिथुनका शुकके समान हरित, कर्कका पाटल (गुलाबी), सिंहका धूम्र, कन्याका पाण्डु (गौर), तुलाका चितकबरा, वृश्चिकका कृष्णवर्ण, धनुका पीत, मकरका पिङ्ग, कुम्भका बभ्रु (नेवले) के सदृश और मीनका स्वच्छ वर्ण है। इस प्रकार मेषसे लेकर सब राशियोंकी कान्तिका वर्णन किया गया है। सब राशियाँ स्वामीकी दिशाकी ओर झुकी रहती हैं। सूर्याश्रित राशिसे दूसरेका नाम 'वेशि' है ॥ १२-१३ ॥

(ग्रहोंके शील, गुण आदिका निरूपण—) सूर्यदेव कालपुरुषके आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल पराक्रम, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र काम और शनैश्चर दुःख हैं॥ १४ ॥ सूर्य-चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध राजकुमार, बृहस्पति तथा शुक्र मन्त्री और शनैश्चर सेवक या दूत हैं, यह ज्यौतिष शास्त्रके श्रेष्ठ विद्वानोंका मत है॥ १५ ॥ सूर्यादि ग्रहोंके वर्ण इस प्रकार हैं। सूर्यका ताम्र, चन्द्रमाका शुक्ल, मङ्गलका रक्त, बुधका हरित, बृहस्पतिका पीत, शुक्रका चित्र (चितकबरा) तथा शनैश्चरका काला है। अग्नि, जल, कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा—ये सूर्यादि ग्रहोंके स्वामी हैं॥ १६ ॥ सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर तथा ईशानकोणके स्वामी हैं। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल और शनि—ये पापग्रह हैं—इनसे युक्त होनेपर बुध भी पापग्रह हो जाता है॥ १७ ॥ बुध और शनि नपुंसक ग्रह हैं। शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं। शेष सभी (रवि, मङ्गल, गुरु) ग्रह पुरुष हैं। मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि—ये क्रमशः अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु—इन तत्त्वोंके स्वामी हैं॥ १८ ॥ शुक्र और गुरु ब्राह्मण वर्णके स्वामी हैं। भौम तथा रवि क्षत्रिय वर्णके स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्य वर्णके तथा बुध शूद्र वर्णके अधिपति हैं। शनि अन्त्यजोंके तथा राहु म्लेच्छोंके स्वामी हैं॥ १९ ॥ चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति सत्त्वगुणके, बुध और शुक्र रजोगुणके तथा मङ्गल और शनैश्चर तमोगुणके स्वामी हैं। सूर्य देवताओंके, चन्द्रमा जलके, मङ्गल अग्निके, बुध क्रीडाविहारके, बृहस्पति भूमिके, शुक्र कोषके, शनैश्चर शयनके तथा राहु ऊसरके स्वामी हैं॥ २० ॥ स्थूल (मोटे सूतसे बना हुआ), नवीन, अग्निसे जला हुआ, जलसे भीगा हुआ, मध्यम (न नया न पुराना), सुदृढ़ (मजबूत) तथा फटा हुआ, इस प्रकार क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंका वस्त्र है। ताम्र (ताँबा), मणि, सुवर्ण, काँसा, चाँदी, मोती और लोहा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके धातु हैं। शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये क्रमसे शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध तथा गुरुकी ऋतु हैं। लग्नमें जिस ग्रहका द्रेष्काण हो, उस ग्रहकी ऋतु समझी जाती है[1] ॥ २१—२२ ॥

---

१. सूर्यके द्रेष्काणसे ग्रीष्मऋतु समझी जाती है। सूर्य आदि ग्रहोंके जाति, शील आदिको निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

| ग्रह | सूर्य | चन्द्र | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जाति | क्षत्रिय | वैश्य | क्षत्रिय | शूद्र | ब्राह्मण | ब्राह्मण | अन्त्यज |
| शील | तीक्ष्ण | मृदु | क्रूर | मिश्र | सौम्य | सौम्य | क्रूर |
| पुं,स्त्री,नपुंसक | पुरुष | स्त्री | पुरुष | नपुंसक | पुरुष | स्त्री | नपुंसक |
| दिशा | पूर्व | वायव्य | दक्षिण | उत्तर | ऐशान्य | आग्नेय | पश्चिम |
| गृह | सिंह | कर्क | मेष-वृश्चिक | मिथुन-कन्या | धनु-मीन | वृष-तुला | मकर-कुम्भ |
| गुण | सत्त्व | सत्त्व | तम | रज | सत्त्व | रज | तम |
| स्थान | देवालय | जलाशय | अग्निशाला | क्रीडास्थान | भूमि | भण्डार-स्थान | शयन-स्थान |
| आत्मादि | आत्मा | मन | बल | वाणी | ज्ञान-सुख | कन्दर्प | दुःख |
| देवता | अग्नि | जल | कार्तिकेय | विष्णु | इन्द्र | इन्द्राणी | ब्रह्मा |
| द्रव्य | ताम्र | मणि | सुवर्ण | काँसा | चाँदी | मोती | लोहा |
| धातु | अस्थि | शोणित | मज्जा | त्वचा | वसा | वीर्य | स्नायु |
| अधिकार | राजा | राजा | सेनापति | युवराज | प्रधानमन्त्री | मन्त्री | भृत्य |

**( ग्रहोंकी दृष्टि— )** नारद! सभी ग्रह अपने-अपने आश्रितस्थानसे ३, १० स्थानको एक चरणसे; ५, ९ स्थानको दो चरणसे; ४, ८ स्थानको तीन चरणसे और सप्तम स्थानको चार चरणसे देखते हैं। किंतु ३, १० स्थानको शनि; ५, ९ को गुरु तथा ४, ८ को मङ्गल पूर्ण दृष्टिसे ही देखते हैं। अन्य ग्रह केवल सप्तम स्थानको ही पूर्ण दृष्टि (चारों चरणों) से देखते हैं॥ २३॥

**( ग्रहोंके कालमान— )** अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घड़ी), अहोरात्र, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंके कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसोंका मेल), मधुर, आम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला)—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके रस हैं॥ २४॥

**( ग्रहोंकी स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री— )** ग्रहोंके जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थानसे २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानोंके तथा अपने उच्च स्थानोंके स्वामी ग्रह मित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोणसे १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानोंके स्वामी शत्रु होते हैं।

**( मतान्तरसे ग्रह-मैत्री— )** सूर्यका बृहस्पति, चन्द्रके गुरु-बुध, मङ्गलके शुक्र-बुध, बुधके रविको छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरुके मङ्गलको छोड़कर सब ग्रह, शुक्रके चन्द्र-रविको छोड़कर अन्य सब ग्रह और शनिके मङ्गल-चन्द्र-रविको छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। यह मत अन्य विद्वानोंद्वारा स्वीकृत है।

**( ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री— )** उस-उस समयमें जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०— इन स्थानोंमें हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस प्रकार स्वाभाविक मैत्रीमें (मूल त्रिकोणसे जिन स्थानोंके स्वामीको मित्र कहा गया है—उनमें) दो स्थानोंके स्वामीको मित्र, एक स्थानके स्वामीको सम और अनुक्त स्थानके स्वामीको शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रुका विचार करके दोनोंके अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रुका निश्चय करना चाहिये[1]॥ २५—२७॥

---

१. यथा—दोनों प्रकारोंसे जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र, जो मित्र और सम हो वह मित्र, जो मित्र और शत्रु हो वह सम, जो शत्रु और सम हो वह शत्रु तथा जो दोनों प्रकारोंसे शत्रु हो वह अधिशत्रु, होता है। इस तरह ग्रहमैत्री पाँच प्रकारकी मानी गयी है।

ग्रहोंकी नैसर्गिक मैत्रीका बोधक चक्र

| ग्रह | सूर्य | चन्द्र | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मित्र | चं. मं. गु. | बु. सू. | चं. सू. गु. | शु. सू. | सू. मं. च. | बु. श. | शु. बु. |
| सम | बु. | मं. गु. शु. श. | शु. श. | मं. गु. श. | श. | मं. गु. | गु. |
| शत्रु | शु. श. | × | बु. | चं. | बु. शु. | सू. चं. | सू. चं. मं. |

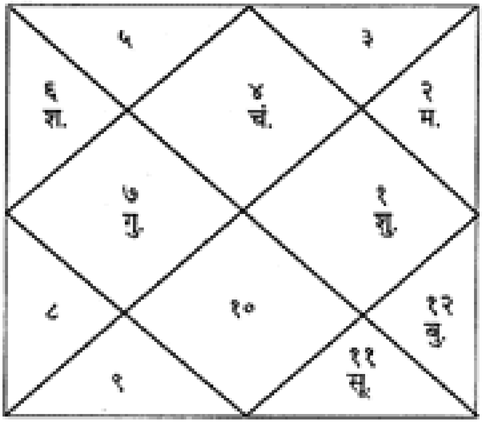


जैसे—इस कुण्डलीमें सूर्यसे द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थानमें क्रमशः बुध, शुक्र और मङ्गल हैं। इसलिये ये तीनों सूर्यके मित्र हुए अन्य ग्रह शत्रु हुए। इसी प्रकार चन्द्रमासे तृतीय, चतुर्थ, एकादश और दशम स्थानमें शनि, गुरु, शुक्र और मङ्गल हैं, इसलिये ये चारों चन्द्रमाके तात्कालिक मित्र हुए; अन्य ग्रह शत्रु हुए। इस तरह सब

( **ग्रहोंके बलका कथन—** ) अपने-अपने उच्च, मूल, त्रिकोण, गृह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न)में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव)-में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव)-में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव)-में दिक्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि)-में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमाके साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते हैं। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं। कृष्णपक्षमें पापग्रह और शुक्लपक्षमें शुभग्रह बली होते हैं। इस प्रकार विद्वानोंने ग्रहोंका कालसम्बन्धी बल माना है॥ ३०॥ शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा तथा रवि—ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। इस प्रकार यह ग्रहोंका नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल है॥ ३०½॥

( **वियोनि जन्म-ज्ञान—** ) (प्रश्न, आधान या जन्म-समयमें) यदि पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलवान् हों, नपुंसक (बुध, शनि) केन्द्रमें हों तथा लग्नपर शनि या बुधकी दृष्टि हो तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशिके द्वादशांशमें हो, उस राशिके सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी)-का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशिके द्वादशांशमें हो तब वियोनि प्राणियोंका जन्म समझना चाहिये। अथवा पापग्रह अपने नवमांशमें और शुभग्रह अन्य ग्रहोंके नवमांशमें हो तथा निर्बल वियोनि राशि लग्नमें हो तो भी विद्वान् पुरुष वियोनि या मानवेतर जीवके ही जन्मका प्रतिपादन करें॥ ३१-३३½॥

( **वियोनिके अङ्गोंमें राशिस्थान—** ) १ मस्तक, २ मुख, गला (गर्दन), ३ पैर, कंधा, ४ पीठ, ५ हृदय, ६ दोनों पार्श्व, ७ पेट, ८ गुदा-मार्ग, ९ पिछले पैर, १० लिङ्ग, ११ अण्डकोश, १२ चूतड़ तथा पुच्छ—इस प्रकार चतुष्पद आदि (पशु-

ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री चक्रमें देखिये—

तात्कालिक मैत्रीका बोधक चक्र

| ग्रह | सूर्य | चन्द्र | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मित्र | मं. बु. शु. | मं. गु. शु. श. | सू. चं. बु. शु. | सू. चं. मं.शु. | चं. श. | सू. मं. चं. बु. | चं. गु. |
| शत्रु | चं. गु. श. | सू. बु. | गु. श. | गु. श. | सू. मं. बु. शु. | गु. श. | सू. म. बु. शु. |

तात्कालिक और नैसर्गिक मैत्री-चक्र लिखकर उसमें पञ्चधा मैत्री इस प्रकार देखी जाती है। यथा—सूर्यका चन्द्रमा नैसर्गिक मित्र है तथा तात्कालिक शत्रु हुआ है, अतः चन्द्रमा सूर्यका सम हुआ। मङ्गल नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक मित्र है, अतः अधिमित्र हुआ। बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक मित्र है, अतः मित्र ही रहा। गुरु नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक शत्रु है, अतः सम हुआ। शुक्र नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र है, अतः सम हुआ। शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक भी शत्रु है, अतः शनि सूर्यका अधिशत्रु हुआ। इसी प्रकार इन दोनों चक्रोंसे सब ग्रहोंकी पञ्चधा मैत्री देखकर ही उन्हें परस्पर मित्र, शत्रु या सम समझना चाहिये।

पक्षी)-के अङ्गोंमें मेषादि राशियोंके स्थान हैं॥ ३४॥

**( वियोनि वर्ण-ज्ञान— )**-लग्नमें जिस ग्रहका योग हो उस ग्रहके समान और यदि किसीका योग न हो तो लग्नके नवमांश (राशि-राशिपति)-के समान वियोनिका वर्ण (श्याम, गौर आदि रंग) कहना चाहिये। बहुत-से ग्रहोंके योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हों या जितने बली हों, उनके सदृश वर्ण कहना चाहिये। लग्नके सप्तम भावमें ग्रह हो तो उस ग्रहके समान (उस ग्रहका जैसा वर्ण कहा गया है वैसा) चिह्न उस वियोनिके पीठ आदि अङ्गोंमें जानना चाहिये॥ ३५॥

**( पक्षिजन्म-ज्ञान— )** ग्रहयुत लग्नमें पक्षिद्रेष्कोण[१] हो अथवा बुधका नवमांश हो या चरराशिका नवमांश हो तथा उसपर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनोंकी दृष्टि हो तो क्रमशः शनि और चन्द्रमाकी दृष्टिसे स्थलचर और जलचर पक्षीका जन्म समझना चाहिये॥ ३६॥

**( वृक्षादि जन्म-ज्ञान— )** यदि लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये चारों निर्बल हों तो वृक्षोंका जन्म जानना चाहिये। स्थल या जल-सम्बन्धी वृक्षोंके भेद लग्नांशके अनुसार समझने चाहिये[२]। उस स्थल या जलचर नवांशका स्वामी लग्नसे जितने नवमांश आगे हो उतनी ही स्थल या जलसम्बन्धी वृक्षोंकी संख्या जाननी चाहिये॥ ३७-३८॥ यदि उक्त अंशके स्वामी सूर्य हों तो अन्तःसार (सखुआ, शीशम आदि), शनि हो तो दुर्भग (किसी उपयोगमें न आनेवाले कुर्कुस, फरहद आदि खोटे वृक्ष), चन्द्रमा हो तो दूधवाले वृक्ष, मङ्गल हो तो काँटेवाले, गुरु हो तो फलवान् (आम आदि), बुध हो तो विफल (जिसमें फल नहीं होते ऐसे) वृक्ष, शुक्र हो तो पुष्पके वृक्षों (गेंदा, गुलाब आदि)-का जन्म समझना चाहिये। चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि)-का भी जन्म समझना चाहिये। यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है। इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमें कुत्सित वृक्षका जन्म होता है। इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमांशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमांशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये॥ ३९-४०$\frac{१}{२}$॥

**( आधान-ज्ञान— )** प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है। जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति)-से देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट-उपचय[३] स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्ट हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है[४]।

---

१. पक्षिद्रेष्काणका वर्णन आगे (अन्तमें) किया जायगा।

२. सारांश यह कि जलचर-राशिका अंश हो तो जलके और स्थल-राशिका अंश हो तो स्थलके वृक्ष जानने चाहिये।

३. जन्मराशिसे ३। ६। १०। ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं।

४. आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है। इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं। जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है। यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके संयोगसे निश्चय ही सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है।

आधान-लग्नसे सप्तम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है॥ ४१-४२॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमांशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है॥ ४३॥ यदि सूर्यसे सप्तम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे सप्तममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं। सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं। अथवा इन (शनि-मङ्गल)-में एकसे युत और अन्यसे दृष्ट रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्ट हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है॥ ४४॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं। रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है। यदि पापग्रह बारहवें भावमें स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है। लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है। लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है। यदि लग्नमें मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है। गर्भाधानकालमें जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्राव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये॥ ४५—४९॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है॥ ५०॥ रवि, गुरु चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एवं विषम नवमांशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमें स्थित हों तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये। उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम-राशिमें हों तो विज्ञजनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये। अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमें हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वाँ संतान)-के जन्मकारक होते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनों प्रकारके ग्रह हों तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोंमें स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है॥ ५१—५३॥

क्रमशः विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा अथवा बुध और शनि एक-दूसरेको देखते हों, अथवा सम-राशिस्थ सूर्यको विषम-राशिस्थ मङ्गल देखता हो या विषम-सम राशिस्थ लग्न एवं चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा चन्द्रमा सम-राशि और लग्न विषम-राशिमें स्थित हो तथा उनपर मङ्गलकी दृष्टि हो अथवा लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—ये तीनों पुरुषराशिके नवमांशमें हों तो इन सब योगोंमें नपुंसकका जन्म होता है॥ ५४ १/२ ॥

शुक्र और चन्द्रमा सम-राशिमें हों तथा बुध, मङ्गल, लग्न और बृहस्पति विषम-राशिमें स्थित होकर पुरुषग्रहसे देखे जाते हों अथवा लग्न एवं चन्द्रमा सम-राशिमें हों या पूर्वोक्त बुध, मङ्गल, लग्न एवं गुरु सम-राशिमें हों तो ये यमल (जुड़वीं) संतानको जन्म देनेवाले होते हैं॥ ५५ १/२ ॥

यदि बुध अपने (मिथुन या कन्याके) नवमांशमें स्थित होकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्नको देखता हो तो गर्भमें तीन संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये। उनमें दो तो बुध-नवमांशके सदृश होंगे और एक लग्नांशके सदृश। यदि बुध और लग्न दोनों तुल्य नवमांशमें हों तो तीनों संतानोंको एक-सा ही समझना चाहिये[1] ॥ ५६ १/२ ॥

यदि धनु-राशिका अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंशमें बली ग्रह स्थित हों और बलवान् बुध या शनिसे देखे जाते हों, तो गर्भमें बहुत (तीनसे अधिक) संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये॥ ५७ १/२ ॥

**(गर्भमासोंके अधिपति—)** शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध, आधान-लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा[2]—ये गर्भाधानकालसे लेकर प्रसवपर्यन्त १० मासोंके क्रमशः स्वामी हैं। आधान-समयमें जो ग्रह बलवान् या निर्बल होता है, उसके मासमें उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल होता है॥ ५८ १/२ ॥ बुध त्रिकोण (५, ९)-में हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो गर्भस्थ शिशुके दो मुख, चार पैर और चार हाथ होते हैं। चन्द्रमा वृषमें हो और अन्य सब पापग्रह राशि-संधिमें हों तो बालक गूँगा होता है। यदि उक्त ग्रहोंपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह बालक अधिक दिनोंमें बोलता है॥ ५९-६०॥ मङ्गल और शनि यदि बुधकी राशि नवमांशमें हों तो शिशु गर्भमें ही दाँतसे युक्त होता है। चन्द्रमा कर्कराशिमें होकर लग्नमें हो तथा उसपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु कुबड़ा होता है। मीन राशि लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भका बालक पङ्गु होता है। पापग्रह और चन्द्रमा राशिसंधिमें हों और उनपर शुभ-ग्रहकी दृष्टि न हो तो गर्भस्थ शिशु जड (मूर्ख) होता है। मकरका अन्तिम अंश लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भका बच्चा वामन (बौना) होता है। पञ्चम तथा नवम लग्नके द्रेष्काणमें पापग्रह हो तो जातक क्रमशः पैर, मस्तक और हाथसे रहित होता है॥ ६१-६२॥

गर्भाधानके समय यदि सिंह लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा हों तथा उनपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन होता है। यदि शुभ और पापग्रह दोनोंकी दृष्टि हो तो आँखमें फूली होती है। यदि लग्नसे बारहवें भावमें चन्द्रमा हो तो बालकका वाम नेत्र और सूर्य हो तो दक्षिण नेत्र नष्ट होता है। ऊपर जो अशुभ योग कहे गये हैं, उनपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उन योगोंके फल पूर्ण नहीं होते हैं (ऐसी परिस्थितिमें देवाराधन एवं चिकित्सा आदि यत्नोंसे अशुभ फलका निवारण हो जाता है)॥ ६३ १/२ ॥

यदि आधानलग्नमें शनिका नवमांश हो और शनि सप्तम भावमें हो तो तीन वर्षपर प्रसव होता है। यदि इसी स्थितिमें चन्द्रमा हो (अर्थात् लग्नमें चन्द्रमाका नवमांश हो और चन्द्रमा सप्तम भावमें

---

१. अर्थात् या तो तीनों पुत्र हैं या तीनों कन्याएँ ही हैं, ऐसा समझे। अन्यथा बुध पुरुष नवमांशमें हो तो दो पुत्र और एक कन्या, स्त्री नवमांशमें हो तो दो कन्या और एक पुत्र समझे।

२. अन्य जातकग्रन्थोंमें ९, १० मासके स्वामी क्रमसे चन्द्र और सूर्य कहे गये हैं। यहाँ उससे विपरीत है।

स्थित हो) तो बारह वर्षपर प्रसव होता है। इन योगोंका विचार जन्मकालमें भी करना चाहिये ॥ ६४-६५ ॥ आधानकालमें जिस द्वादशांशमें चन्द्रमा हो, उससे उतनी ही संख्या आगे राशिमें चन्द्रमाके जानेपर बालकका जन्म होता है। द्वादशांशभुक्त अंशादिको दोसे गुणा करके उसमें ५ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि मानकी सूचक होती है[१] ॥ ६६-६७ ॥

(**जन्मज्ञान—**) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये। इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमें मध्य (दशम) भावसे आगे (११, १२)-में अथवा पीछे (९, ८)-में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये। (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये। पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २। ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वेष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये ॥ ६८—७० ॥

मुनिश्रेष्ठ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये। शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमें नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये। यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो

---

१. इस विषयको स्पष्ट समझनेके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। मान लीजिये, वैशाखकी पूर्णिमाको बृहस्पतिवारकी रातमें ग्यारह दण्ड शून्य पल (११। ०) गर्भाधानका समय है। तत्कालीन चन्द्रमाकी राशि ७, अंश ९, कला ३० और विकला १० है। यहाँ चन्द्रमा वृश्चिक राशिके चौथे द्वादशांशमें है। वृश्चिकमें चौथा द्वादशांश कुम्भ राशिका होता है, अत: कुम्भसे चतुर्थ राशि वृषमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा; ऐसा फल समझना चाहिये। किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष राशि होती है। उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है। अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९। ३०। १०)—(७। ३०)=(२। ०। १०)=(१२०। १०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया। "अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्' इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया। यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है। इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं; जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२। ३०)=(१५० कला)-में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८००\times१२०}{१५०}$=१२×१२०=१४४०। एक राशिमें नौ चरण होते हैं और चरणका कलामान २०० कला होता है, अत: चरण जाननेके लिये $\frac{१४४०}{२००}=\frac{७\times४०}{२००}$ (७ $\frac{१}{५}$)। यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृषराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा।

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९। १०। २५। ० है। इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है। मेषराशि रातमें बली होती है, अत: रातमें जन्म होगा। इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये। यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है। अत: त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला)-में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८। ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा? इस तरह $\frac{२८\times२५}{२००}$=३। ३० घट्यादि मान हुआ। अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा; ऐसा निश्चय हुआ। इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये।

अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये। यदि दो पापग्रह पापराशिमें स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हों तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमें बालकका जन्म समझना चाहिये। पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये। नारद! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं। यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है। तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढेमें बालकका जन्म समझना चाहिये। जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये। यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृहमें, सूर्य देखता हो तो राजगृह, देवालय और गोशालामें तथा बुध देखता हो तो चित्रशालामें बालकका जन्म समझना चाहिये॥ ७१—७९॥

यदि लग्नमें चरराशि हो तो मार्गमें लग्नराशिके कथित स्थानके[१] समान स्थानमें बालकका जन्म होता है। यदि लग्नमें स्थिर राशि हो तो स्वदेशके ही उक्त स्थानमें जन्म होता है तथा यदि लग्न-राशि अपने नवमांशमें हो तो स्वगृहमें ही वैसे स्थानमें जन्म होता है। मङ्गल और शनिसे त्रिकोण (५, ९)-में अथवा सप्तम भावमें चन्द्रमा हो तो जातकको माता त्याग देती है। यदि उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो त्यक्त होनेपर भी दीर्घायु होता है। पापग्रहसे दृष्ट चन्द्रमा यदि लग्नमें हो और मङ्गल सप्तम भावमें स्थित हो तो मातासे त्यक्त होनेपर जातक मर जाता है। अथवा पापदृष्ट चन्द्रमा यदि शनि-मङ्गलसे ११वें भावसे स्थित हो तो भी शिशुकी मृत्यु हो जाती है। यदि चन्द्रमा शुभग्रहसे देखा जाता हो तो बालक दूसरेके हाथमें जाकर सुखी होता है। यदि पापसे ही दृष्ट हो तो दूसरेके हाथमें जानेपर भी हीनायु होता है॥ ८०—८२॥

पितृसंज्ञक ग्रह बली हो तो पिताके घरमें और मातृसंज्ञक ग्रह बली हो तो माता (अर्थात् माता) के घरमें जन्म समझना चाहिये। मुने! यदि शुभग्रह नीच स्थानमें हो तो वृक्षादिके नीचे तृण-पत्रादिकी कुटीमें जन्म समझना चाहिये। शुभग्रह नीच स्थानमें हो और लग्न अथवा चन्द्रमापर एक स्थानस्थित शुभग्रहोंकी दृष्टि न हो तो निर्जन स्थानमें प्रसव होता है। यदि चन्द्रमा शनिकी राशिके नवमांशमें स्थित होकर चतुर्थ भावमें विद्यमान हो तथा शनिसे दृष्ट या युत हो तो प्रसवकालमें 'प्रसूतिका' का शयन पृथिवीपर समझना चाहिये। शीर्षोदय राशि लग्न हो तो शिरकी ओरसे तथा पृष्ठोदय राशि लग्न हो तो पृष्ठ (पैर)-की ओरसे शिशुका जन्म होता है। चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो तो माताके लिये कष्ट समझना चाहिये॥ ८३—८५ $\frac{1}{2}$ ॥

जन्मसमयमें सब ग्रहोंकी अपेक्षा शनि बलवान्

१. राशि-स्थान पहले दिये हुए राशिस्वरूप-बोधक चक्रमें देखिये।

हो तो सूतिका गृह पुराना, किंतु संस्कार किया हुआ समझना चाहिये। मङ्गल बली हो तो जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नया और सूर्य बली हो तो अधिक काष्ठसे युक्त होकर भी मजबूत नहीं होता। बुध बली हो तो प्रसवगृह बहुत चित्रोंसे युक्त, शुक्र बली हो तो चित्रोंसे युक्त नवीन और मनोहर तथा गुरु बली हो तो सूतिकाका गृह सुदृढ़ समझना चाहिये॥ ८६-८७॥

लग्नमें तुला, मेष, कर्क, वृश्चिक या कुम्भ हो तो (वास्तु भूमिमें) पूर्वभागमें; मिथुन, कन्या, धनु या मीन हो तो उत्तर भागमें, वृष हो तो पश्चिम भागमें तथा मकर या सिंह हो तो दक्षिण भागमें सूतिकाका घर समझना चाहिये॥ ८८॥

**( गृहराशियोंके स्थान— )** घरकी पूर्व आदि दिशाओंमें मेष आदि दो-दो राशियोंको और चारों कोणोंमें चारों द्विस्वभाव राशियोंको समझे। सूतिकागृहके समान ही सूतिकाके पलंगमें भी लग्न आदि भावोंको समझे। वहाँ ३, ६, ९ और १२ वें भावको क्रमश: चारों पायोंमें समझना चाहिये। चन्द्रमा और लग्नके बीचमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंकी[१] प्रसवकालमें उपस्थिति समझनी चाहिये। दृश्य चक्रार्धमें (सप्तम भावसे आगे लग्नतक) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंको घरसे बाहर समझे और अदृश्य चक्रार्धमें (लग्नसे आगे सप्तमपर्यन्त) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओंकी उपस्थिति घरके भीतर रहती है। बहुत-से आचार्यों और मुनियोंने इससे भिन्न मत प्रकट किया है। (अर्थात् दृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओंको घरके भीतर तथा अदृश्य चक्रार्धमें जितने ग्रह हों, उतनीको घरके बाहर कहा है)॥[२] ८९-९०॥

लग्नमें जो नवमांश हो, उसके स्वामी ग्रहके सदृश अथवा जन्मसमयमें जो ग्रह सबसे बली हो, उसके समान शिशुका शरीर समझना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा जिस नवमांशमें हो उस राशिके समान वर्ण (गौर आदि) समझना चाहिये। एवं द्रेष्काणवश लग्न आदि भावोंसे जातकके मस्तक आदि अङ्ग-विभाग जानना चाहिये। यथा—लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न मस्तक, २। १२ नेत्र, ३। ११ कान, ४। १० नाक, ५। ९ कपोल, ६। ८ हनु (ठुड्डी) और ७ (सप्तम) भाव मुख। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २। १२ कंधा, ३। ११ पसली, ४। १० हृदय, ५। ९ भुज, ६। ८ पेट और ७ नाभि। तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न बस्ति (नाभि और लिङ्गके मध्यका स्थान), २। १२ लिङ्ग, गुदमार्ग, ३। १२ अण्डकोश, ४। १० जाँघ, ५। ९ घुटना, ६। ८ पिण्डली और सप्तम भाव पैर समझना चाहिये॥ ९१—९३॥

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मशक आदि) समझना चाहिये। पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामें आगे चलकर व्रण होता है। शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमें पृथ्वी (मिट्टी)-के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमें काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है। जिस अङ्गकी राशिमें तीन पापग्रह

१. प्रसूता स्त्रीके पास रहकर उसे सहयोग देनेवाली स्त्रियोंको 'उपसूतिका' कहते हैं।

२. सप्तमसे आगे लग्नतक क्षितिजके ऊपर होनेसे दृश्य चक्रार्ध कहलाता है।

हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है। षष्ठ भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है। यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है। यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है॥ ९४—९६ १/२ ॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्र[1] है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं। पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमाका आकार गोल है; उनकी प्रकृतिमें वात और कफकी प्रधानता है, वे पण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर हैं। मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्तप्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है। बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है। बृहस्पतिकी अङ्गकान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं। शुक्रके अङ्ग और नेत्र सुन्दर हैं, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं। शनिका शरीर लम्बा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बड़े आलसी हैं॥ ९७—१०० ॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा—ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं॥ १०१ ॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है। दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हों तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है॥१०२-१०३॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमें हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हों तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमें स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है। शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमें और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है। क्षीण चन्द्रमा लग्नमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है। अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है। पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो मातासहित शिशुकी मृत्यु होती है। राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५, ९)-में हो अथवा लग्नमें चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है। राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोंकी मृत्यु होती है। इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमें स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है॥ १०४—१०९ ॥

---

१. जिसकी लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्र' कहलाती है।

**( आयुर्दायकथन— )** चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्रमें हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है। मीन लग्नमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है। लग्नेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है। चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्नेश लग्नमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है। केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्षकी आयु होती है। शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है। सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है। अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हों तो २४ वर्षकी आयु होती है। लग्नेश और अष्टमेश दोनों अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है। लग्नमें पापग्रहसहित बृहस्पति हों, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा अष्टममें कोई ग्रह न हो तो २२ वर्षकी आयु समझनी चाहिये। शनि नवम भाव या लग्नमें हो, शुक्र केन्द्रमें हो और चन्द्रमा १२ या ९ में हो तो १०० वर्षकी आयु होती है। बृहस्पति कर्कमें होकर केन्द्रमें हो अथवा बृहस्पति और शुक्र दोनों केन्द्रमें हों तो १०० वर्षकी आयु समझनी चाहिये। अष्टमेश लग्नमें हो और अष्टम भावमें शुभग्रह न हो तो ४० वर्षकी आयु होती है। लग्नेश अष्टम भावमें और अष्टमेश लग्नमें हों तो ५ वर्षकी आयु होती है। शुक्र और बृहस्पति एक राशिमें हों अथवा बुध और चन्द्रमा लग्न या अष्टम भावमें हों तो ५० वर्षकी आयु होती है॥ ११०—११८॥

मुने! मैंने इस प्रकार ग्रहयोग-सम्बन्धसे आयुर्दायका प्रमाण कहा है। अब गणितद्वारा स्पष्टायुर्दायका वर्णन करता हूँ। (सूर्य, चन्द्रमा और लग्नमेंसे) यदि सूर्य अधिक बली हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु और लग्न बली हो तो अंशायुका साधन करना चाहिये। उसका साधन-प्रकार मैं बतलाता[1] हूँ॥ ११९½॥

**( पिण्डायु और निसर्गायुका[2] साधन— )** सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने उच्चमें हों तो क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष पिण्डायुके प्रमाण होते हैं तथा २०, १, २, ९, १८, २०, ५० ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके निसर्गायुर्दायके प्रमाण होते हैं॥ १२०-१२१॥

पिण्डायु और निसर्गायुमें आयु-साधन करना हो तो राश्यादि ग्रहमें अपने उच्चको घटाना चाहिये। यदि वह ६ राशिसे अल्प हो तो उसको १२ राशिमें घटाकर ग्रहण करें। उसके अंश बनानेसे वह आयुर्दाय-साधनमें उपयोगी होता है। जो ग्रह शत्रुके गृहमें हो उसके अंशोंमें उसीका तृतीयांश घटावे। यदि वह ग्रह वक्रगति न हो तभी ऐसा करना चाहिये। (यदि ग्रह वक्रगति हो तो शत्रुगृहमें रहनेपर भी तृतीयांश नहीं घटाना चाहिये) तथा शनि और शुक्रको छोड़कर अन्य ग्रह अस्त

---

१-'पिण्डायु' वह है, जिसमें उच्च और नीच स्थानमें आयुके पिण्ड (मान-संख्या)-का निर्देश किया हुआ है, उसके द्वारा इष्टस्थानस्थित ग्रहसे आयुका साधन किया जाता है।

२-'निसर्गायु' वह है, जो ग्रहोंके निसर्ग (स्वभाव)-से ही सिद्ध है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

हों तो उनके अंशोंमें आधा घटा देना चाहिये। (शनि और शुक्र अस्त हों तो भी उनके अंशोंमें आधा नहीं घटाना चाहिये।) यदि किसी ग्रहमें दोनों हानि प्राप्त हो (अर्थात् वह शत्रुगृहमें हो और अस्त भी हो) तो उसमें अधिक हानिमात्र करें (अर्थात् केवल आधा घटावे, तृतीयांश नहीं)। यदि लग्नमें पापग्रह हो तो उसकी राशिको छोड़कर केवल अंशादिसे आयुर्दायके अंशको गुणा करके गुणनफलमें ३६० का भाग देकर लब्ध अंशादिको पूर्वोक्त अंशमें घटावे। इस प्रकार पापग्रहके समस्त लब्धांश घटावे। यदि उसमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो लब्धांशका आधा घटाना चाहिये। इस तरह आगे बताये जानेवाले प्रकारसे आयुर्दाय-साधन योग्य स्पष्ट अंश उपलब्ध होते हैं॥ १२२—१२५॥

**( पिण्डायु-साधन— )** उन स्पष्टांशोंको अपने-अपने पूर्वोक्त गुणक (उच्चस्थ वर्ष-संख्या १९ आदि)-से गुणा करके गुणनफलमें ३६० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होती है। शेषको १२ से गुणा करके ३६० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होती है। पुनः शेषको ३० से गुणा करके ३६० के द्वारा भाग देनेपर लब्धि दिन-संख्या होगी। फिर शेषको ६० से गुणा कर ३६० से भाग देनेपर लब्धि घटी एवं पलादि रूप होगी[1] ॥ १२६-१२७॥

**( लग्नायु-साधन— )** लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादिको कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्धि दिनादिकी सूचक होगी[2] ॥१२८½॥

**( अंशायुर्दाय[3]-साधन— )** लग्नसहित ग्रहोंके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर

---

१. यदि लग्न-राश्यादि ३। १५। २०। ३० और स्पष्ट सूर्य १०। १५। १०। २० है तो उपर्युक्त रीतिके अनुसार सूर्यकी राश्यादिमें सूर्यकी उच्च राश्यादि ०। १० को घटानेपर १०। ५। १०। २० रहा। यह ६ राशिसे अधिक है, इसलिये इसीको अंशात्मक बनानेसे ३०५। १०। २० हुआ। सूर्य शत्रुके घरमें नहीं है, इसलिये इसमें संस्कार-विशेष न करके इसी अंशादिको सूर्यके उच्चस्थानीय आयुमान १९ से गुणा करनेपर गुणनफल ५७९८। १६। २० में ३६० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष १६ हुए। शेष ३८। १६। २० को १२ से गुणा कर गुणनफल ४५९। १६। ० में ३६० का भाग देनेपर लब्ध मास १ हुआ। मास-शेष ९९। १६ को ३० से गुणा करनेपर गुणनफल २९७६ में ३६० का भाग देनेपर लब्ध दिन ८ हुए। शेष ९६ को ६० से गुणा करके गुणनफल ५७६० में ३६० का भाग देनेपर लब्धि घड़ी १६ हुई; शेष ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६। १। ८। १६। ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

**ग्रहोंका उच्चादिबोधक चक्र**

| ग्रह | सूर्य | चन्द्र | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उच्चराशि | ० | १ | ९ | ५ | ३ | ११ | ६ |
| " अंश | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |
| नीचराशि | ६ | ७ | ३ | ११ | ९ | ५ | ० |
| " अंश | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |
| आयु-पिण्ड | १९ | २५ | १५ | १२ | १५ | २१ | २० |

२. लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५। २०। ३० को कलात्मक बनानेसे ९२०। ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२०। ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६। ० में २००का भाग देनेसे लब्ध मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्ध दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४। ७। ६। ५४। ० हुआ।

३. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश)-द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें २००का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे[१]।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशिसंख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल भी जोड़े तो लग्नायु स्पष्ट होती है[२]। यह क्रिया पिण्डायु और निसर्गायुमें नहीं की जाती है॥ १२९—१३५ $\frac{1}{2}$ ॥

**( दशा-निरूपण— )** लग्न, सूर्य और चन्द्रमा— इन तीनोंमें जो अधिक बली है, प्रथम उसीकी दशा होती है। फिर उससे केन्द्रस्थित ग्रहोंकी, तदनन्तर 'पणफर' स्थित ग्रहोंकी, तत्पश्चात् 'आपोक्लिम' स्थित ग्रहोंकी दशा होती है। केन्द्रादि-स्थित ग्रहोंमें बलके अनुसार ही पूर्व-पूर्व दशा होती है। एक स्थानमें स्थित दो या तीन ग्रहोंमें यदि बलकी समानता हो तो उनमें जिसकी अधिक आयु हो उसकी प्रथम दशा होती है। आयुके वर्षादिमें भी समता हो तो जिस ग्रहका सूर्य-सान्निध्यसे प्रथम उदय हुआ हो, उसकी

---

१. अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १०। १५। १०। २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५। १०। २० में ४० का भाग देनेपर शेष ३५। १०। २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १०। १५। १०। २० लग्न ३। १५। २०। ३० में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेष ५। ०। १०। १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेषके अंशादि १५०। १०। १० से ३० में भाग देनेपर लब्ध अंश ० हुआ। शेष ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८०० में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८। ८। १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८। १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ०। ११। १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ०। ४८। १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अत: इस गुणकसे आयुसाधनोपयोगी अंशादि ३५। १०। २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८। ८। ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८। ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ८ हुए। शेष ८८। ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २०० का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८। ५। ९। ५५। ४८ हुआ।

२. लग्नका अंशायु-साधन—लग्न ३। १५। २०। ३० के अंशादि बनानेसे १०५। २०। ३० हुए। इनमें ४० का भाग देनेपर बचे हुए २५। २०। ३० को ३०से गुणा करके गुणनफल ७६। १। ३० में १० का भाग दिया तो लब्ध ७ वर्ष हुए। शेष ६। १। ३० को १२से गुणा करके गुणनफल ७२। १८। ० में १० का भाग देनेपर लब्ध ७ मास हुए। मास-शेष २। १८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ६९। ० में १० का भाग देनेपर लब्ध ६ दिन हुए। शेष ९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ५४० में १० का भाग देनेपर लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नका अंशायुर्दायमान वर्षादि ७। ७। ६। ५४। ० हुआ।

प्रथम दशा होती है॥१३६-१३७॥

**( अन्तर्दशा-कथन— )** दशापति पूर्णदशाका पाचक होता है, तथापि उसके साथ रहनेवाला ग्रह आधे (१/२) का, दशापतिसे त्रिकोण (५, ९)-में रहनेवाला तृतीयांश (१/३) का, सप्तममें रहनेवाला सप्तमांश (१/७) का, चतुरस्त्र (४। ८)-में रहनेवाला चतुर्थांश (१/४) अन्तर्दशाका पाचक होता है। इससे सिद्ध है कि इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अन्तर्दशा नहीं होती हैं[१]॥ १३८-॥

**( अन्तर्दशा-साधनके गुणक— )** मूल दशापतिका ८४, उसके साथ रहनेवालेका ४२, त्रिकोणमें रहनेवालेका २८, सप्तममें रहनेवालेका १२ तथा चतुर्थ-अष्टममें रहनेवालेका २१ गुणक कहा गया है। वर्षादि रूप दशा-प्रमाणको अपने-अपने गुणकसे गुणा करके सब गुणकोंके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह वर्ष होता है। शेषको १२, ३० आदिसे गुणा करके गुणनफलमें गुणकके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह मास-दिन आदिका सूचक होती हैं। नारदजी! इसी प्रकार अन्तर्दशामें उपदशाके मान समझने चाहिये॥ १३९—१४१ १/२॥

**( दशाफल— )** दशारम्भ-कालमें यदि चन्द्रमा दशापतिके मित्रकी राशि, स्वोच्च, स्वराशि या दशापतिसे १, ४, ७, ३, १०, ११ में शुभ स्थानमें हो तो जिस भावमें चन्द्रमा हो, उस भावकी विशेषरूपसे पुष्टि करता हुआ शुभ फल देता है। इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें हो तो उस भावका नाशक होता है॥ १४२-१४३॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोंमें जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एवं आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामें प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल)-को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न

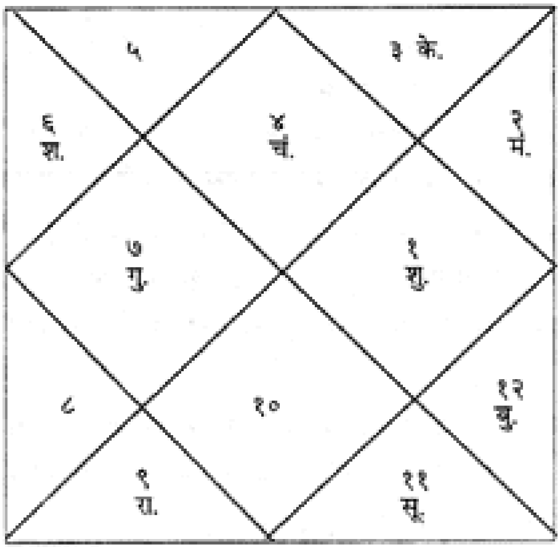


१. यहाँ लग्न, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनोंमें लग्न बली है, इसलिये प्रथम दशा लग्नकी होगी; फिर उससे केन्द्रादिस्थित ग्रहोंकी। तथा लग्नकी दशामें प्रथम अन्तर्दशा लग्नकी, आगे फिर बलक्रमसे शुक्र और बुधकी अन्तर्दशा होगी। यहाँ दशापति लग्न है, इसलिये इसके गुणकाङ्क ८४ से दशावर्षादि ११। १। ११ को गुणा कर गुणनफल ९३२। ६। २४ में गुणकयोग १८७ का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १८५। ६। २४ को १२ से गुणा कर गुणनफल २२२६। ९। १८ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध ११ मास हुए। शेष १६९। ९। १८ को ३० से गुणा कर गुणनफल ५०९४ में १८७ का भाग देनेपर लब्ध २७ दिन हुए। शेष ४३ को ६० से गुणा कर गुणनफल २५८० में १८७ का भाग देनेपर लब्धि १३ घड़ी हुई। शेष १४९ को ६० से गुणा कर गुणनफल ८९४० में १८७ का भाग देनेसे लब्ध ४७ पल हुए। इस प्रकार लब्ध वर्षादि ४। ११। २७। १३। ४७ यह लग्नकी दशामें लग्नकी अर्न्तदशाका मान हुआ।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके भी अपने-अपने गुणकसे दशामानको गुणा करके गुणनफलमें गुणकयोगका भाग देकर अन्तर्दशाका मान साधन करना चाहिये।

या चन्द्रमासे १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये॥ १४४—१४८॥

**( लग्न-दशा-फल— )** चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमें क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है॥ १४९-१५०॥

**( अष्टक-वर्ग-कथन— )** सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १। २। १०। ४। ८। ११। ९। ७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमें रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७। १२। ६ में, गुरुसे ९। ५। ११। ६ में, चन्द्रमासे १०। ३। ११। ६ में, बुधसे इन्हीं १०। ३। ११। ६ स्थानोंमें और १२। ५। ९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३। ६। १०। ११। १२। ४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है॥ १५१-१५२॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५३-१५४॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५५-१५६॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासे ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५७-१५८॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२में; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९। ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है॥ १५९-१६०॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३,

४, ५, ११, ८, ९)-में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमें शुभ होता है॥ १६१-१६२॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें; सूर्यसे १, ४, ७, १०, ११, ८, २ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १, ४ में; बुधसे ९, ८, ११, ६, १०, १२ में; चन्द्रमासे ११, ३, ६ में; शुक्रसे ६, ११, १२ में और गुरुसे ५, ११, ६ स्थानोंमें शुभ होता है॥ १६३-१६४॥

उपर्युक्त स्थानोंमें ग्रह रेखा-प्रद और अनुक्त स्थानोंमें बिन्दुप्रद होते हैं[१]। जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे वृद्धि या उपचय स्थान (३, ६, १०, ११) में हों, या अपने मित्रगृहमें, उच्च स्थानमें तथा स्वराशिमें स्थित हों, उनके द्वारा शुभ फलकी अधिकता होती है और इनसे भिन्न स्थानोंमें जो ग्रह हों, उनके द्वारा अशुभ फलोंकी अधिकता होती है॥ १६५॥

(एकादि रेखावाले स्थानका फल—) उक्त प्रकारसे जिस स्थानमें एक रेखा हो, वहाँ ग्रहके जानेपर कष्ट होता है। दो रेखावाले स्थानमें जानेसे धनका नाश होता है। तीन रेखावालेमें जानेसे क्लेश होता है। चार रेखावाले स्थानमें ग्रहके पहुँचनेसे मध्यम फल होता है (शुभ-अशुभ फलकी तुल्यता होती है)। पाँच रेखावाले स्थानमें सुखकी प्राप्ति, छः रेखावालेमें धनका लाभ, सात रेखावाले स्थानमें सुख तथा आठ रेखावाले स्थानमें चारवश ग्रहके जानेपर अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है॥ १६६॥

(आजीविका-कथन—) जन्मकालिक लग्न और चन्द्रमासे १०वें स्थानमें यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो क्रमसे पिता-माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री और नौकरके द्वारा धनका लाभ होता है। जन्मलग्न, जन्मकालिक चन्द्र तथा जन्मकालिक सूर्य—इन तीनोंसे दशम स्थानके स्वामी जिस नवमांशमें हों,

१. बालकके जन्मकालमें जो ग्रहस्थिति है, उसमें ग्रहकी निजाश्रित राशिसे विचार करके इस प्रकार रेखा और बिन्दुका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् इस तरह रेखा और बिन्दु लगानेसे जिस स्थानमें अधिक रेखाकी संख्या हो, उस स्थानमें चारवश ग्रहके जानेसे शुभ फल होता है और जिसमें बिन्दुकी संख्या अधिक हो, उस स्थानमें ग्रहके जानेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र देखिये—

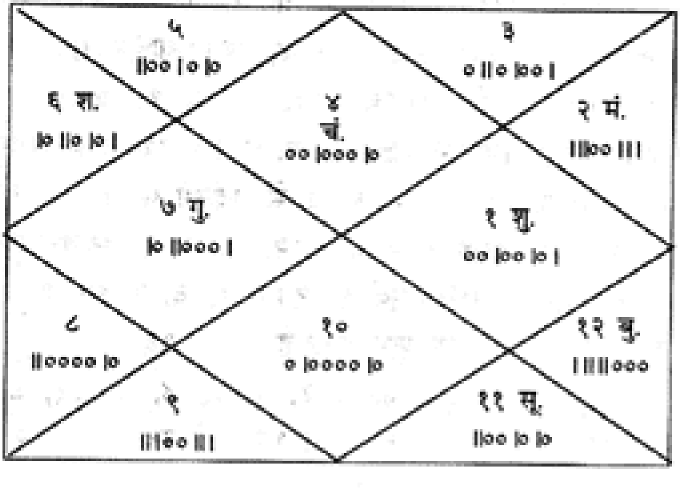


यहाँ रेखा और बिन्दु लगाकर सूर्यका अष्टकवर्ग-चक्र अङ्कित किया गया है। इसमें वृष, कन्या, धनु और मीनमें रेखा अधिक होनेके कारण ये राशियाँ शुभ हैं तथा मिथुन, सिंह, तुला और कुम्भमें रेखा और बिन्दु तुल्य होनेके कारण ये मध्यम हैं एवं शेष कर्क, वृश्चिक, मकर और मेष—ये अधिक बिन्दु होनेके कारण अशुभ हैं।

उस नवमांशके अधिपतिकी वृत्तिसे आजीविका समझनी चाहिये। यथा—उक्त दशम स्थानोंके स्वामी सूर्यके नवमांशमें हों तो तृण (पत्र-पुष्पादि), सुवर्ण, औषध, ऊन (ऊनी वस्त्र) तथा रेशम आदिसे जीविका समझे। चन्द्रमाके नवमांशमें हों तो खेती, जलज (मोती, मूँगा, शङ्ख, सीप आदि) और स्त्रीके द्वारा जीविका चलती है। मङ्गलके नवमांश हों तो धातु, अस्त्र-शस्त्र और साहससे जीवन-निर्वाह होता है। बुधके नवमांशमें हों तो काव्य, शिल्पकलादिसे, गुरुके नवमांशमें हों तो देवता और ब्राह्मणोंके द्वारा तथा लोहा-सोना आदिके खानसे, शुक्रके नवमांशमें हों तो चाँदी, गौ तथा रत्न आदिसे और शनिके नवमांशमें हों तो परपीड़न, परिश्रम और नीच कर्मद्वारा धनकी प्राप्ति होती है॥ १६७—१६९॥

(राजयोगका वर्णन—) शनि, सूर्य, गुरु और मङ्गल—ये चारों यदि अपने-अपने उच्चमें हों और इन्हींमें कोई एक लग्नमें हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते हैं। मङ्गल अपने उच्चमें हो, रवि और चन्द्रमा धनराशिमें हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष)-का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तम भावमें हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन)-में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है॥ १७०-१७१॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हो, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमें हो तो इन दोनों लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु राजा होते हैं। उच्चस्थ[1] मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १०वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमें शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमें क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है॥ १७२-१७३॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमें स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनों ११वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमें हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमें हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चम भावमें, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हों तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है॥ १७४—१७६॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह—ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है॥ १७७॥ मुनीश्वर! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायँगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा

१. पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलको लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।) ॥ १७८ ॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोणमें हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने! शुक्र अपनी राशिमें होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवम भावमें रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११वें भावमें विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमें स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवम भावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थ भावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११ वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है॥ १७९—१८३ ॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है॥ १८४-१८५$\frac{1}{2}$ ॥

(**नाभस**[1] **योग-कथन—**) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानोंमें ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक योग होता है। केवल लग्न और सप्तम दो ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शकट' योग होता है। दशम और चतुर्थमें ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'विहग' (पक्षी) योग होता है। ५, ९ और लग्न—इन तीन ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शृङ्गाटक' योग होता है। इसी प्रकार यदि लग्न भिन्न स्थानसे त्रिकोण स्थानोंमें ही सब ग्रह हों तो 'हल' नामक योग होता है॥ १८६-१८७ ॥ लग्न और सप्तममें सब शुभ ग्रह हों अथवा चतुर्थ-दशममें सब पापग्रह हों तो दोनों स्थितियोंमें 'वज्र' योग होता है। इसके विपरीत यदि लग्न, सप्तममें सब पापग्रह अथवा चतुर्थ, दशममें सब शुभग्रह हों तो 'यव' योग होता है। यदि चारों केन्द्रोंमें सब (शुभ और पाप)-ग्रह मिलकर बैठे हों तो 'कमल' योग होता है और केन्द्रस्थानसे बाहर (चारों पणफर अथवा चारों आपोक्लिमस्थानोंमें) ही सब ग्रह स्थित हों तो 'वापी' नामक योग होता है ॥१८८॥ लग्नसे लगातार ४ स्थान (१, २, ३, ४) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'यूप' योग होता है। चतुर्थसे चार स्थान (४, ५, ६, ७)-में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'शर' योग होता है। सप्तमसे ४ स्थान (७, ८, ९, १०)-में ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'शक्ति' योग होता है और दशमसे

१. नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

४ स्थान (१०, ११, १२, १)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'दण्ड' योग होता है॥ १८९॥ लग्नसे क्रमशः सात स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ६, ७)-में सब ग्रह हों तो 'नौका' योग, चतुर्थ भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह हों तो 'कूट' योग, सप्तम भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह विद्यमान हों तो 'छत्र' योग और दशमसे आरम्भ करके सात स्थानोंमें सब ग्रह स्थित हों तो 'चाप' नामक योग होता है। इसी प्रकार केन्द्रभिन्न स्थानसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'अर्धचन्द्र' नामक योग होता है॥ १९०॥

लग्नसे आरम्भ करके एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः (१, ३, ५, ७, ९ और ११ इन) ६ स्थानोंमें ही सब ग्रह स्थित हों तो 'चक्र' नामक योग होता है और द्वितीय भावसे लेकर एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः ६ स्थानों (२, ४, ६, ८, १०, १२)-में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'समुद्र' नामक योग होता है।

७ से १ स्थानतकमें सब ग्रहोंके रहनेपर क्रमशः वीणा आदि नामवाले ७ योग होते हैं। जैसे—७ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'वीणा', ६ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'दाम', ५ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'पाश', ४ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'क्षेत्र', ३ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शूल', २ स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'युग' और एक ही स्थानमें सब ग्रह हों तो 'गोल' नामक योग होता है। सब ग्रह चरराशिमें हों तो 'रज्जु', स्थिर राशिमें हों तो 'मुसल' और द्विस्वभावमें हों तो 'नल' नामक योग होता है। सब शुभग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'माला' और सब पापग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो 'सर्प' नामक योग होता है॥ १९१—१९३॥

(इन योगोंमें जन्म लेनेवालोंके फल—)

रज्जुयोगमें जन्म लेनेवाला बालक ईर्ष्यावान् और राह चलने (यात्रा करने या घूमने-फिरने)-की इच्छावाला होता है। मुसलयोगमें उत्पन्न शिशु धन और मानसे युक्त होता है। नलयोगमें उत्पन्न पुरुष अङ्गहीन, स्थिरबुद्धि और धनी होता है। मालायोगमें पैदा हुआ मानव भोगी होता है तथा सर्पयोगमें उत्पन्न पुरुष दुःखसे पीड़ित होता है॥ १९४॥ वीणायोगमें जिसका जन्म हुआ हो, वह मनुष्य सब कार्योंमें निपुण तथा सङ्गीत और नृत्यमें रुचि रखनेवाला होता है। दामयोगमें उत्पन्न मनुष्य दाता और धनाढ्य होता है। पाशयोगमें उत्पन्न धनवान् और सुशील होता है। केदार (क्षेत्र)-योगमें पैदा हुआ खेतीसे जीविका चलानेवाला होता है तथा शूलयोगमें उत्पन्न पुरुष शूरवीर, शस्त्रसे आघात न पानेवाला और अधन (धनहीन) होता है। युगयोगमें जन्म लेनेवाला पाखण्डी तथा गोलयोगमें उत्पन्न मनुष्य मलिन और निर्धन होता है॥ १९५-१९६॥

चक्रयोगमें जन्म लेनेवाले पुरुषके चरणोंमें राजा लोग भी मस्तक झुकाते हैं। समुद्रयोगमें उत्पन्न पुरुष राजोचित भोगोंसे सम्पन्न होता है। अर्धचन्द्रमें पैदा हुआ बालक सुन्दर शरीरवाला तथा चापयोगमें उत्पन्न शिशु सुखी और शूरवीर होता है॥ १९७॥ छत्रयोगमें उत्पन्न मनुष्य मित्रोंका उपकार करनेवाला तथा कूटयोगमें उत्पन्न मिथ्याभाषी और जेलका मालिक होता है। नौकायोगमें उत्पन्न पुरुष निश्चय ही यशस्वी और सुखी होता है। यूपयोगमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दानी, यज्ञ करनेवाला और आत्मवान् (मनस्वी और जितात्मा) होता है। शरयोगमें उत्पन्न मनुष्य दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है॥ १९८-१९९॥

(**चन्द्रयोगका कथन—**) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२,१२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हों तो) 'केमद्रुम' योग होता है॥ २००॥

(**उक्त योगोंका फल—**) 'सुनफा' योगमें जन्म लेनेवाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। 'अनफा' योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। 'दुरुधरा' योगमें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुःखी, नीच और निर्धन होता है॥ २०१-२०२॥

(**द्विग्रहयोगफल—**) मुने! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है। मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि)-के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है॥ २०३-२०४॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है। बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है। मुने! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीते-जी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो॥ २०५-२०६॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है। गुरुसे युक्त हो तो नगरका मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है॥ २०७॥

नारद! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है। शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है॥ २०८॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घड़ा बनानेवाला (कुम्हार) होता है। शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है॥ २०९॥

(**प्रव्रज्यायोग—**) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु, (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अह्री (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है। जन्मराशीशको

यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करनेवाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है॥ २१०—२१३॥

( अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल— ) अश्विनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है। भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है। कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिताहारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है। रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आर्द्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्यमें कवि और सुखी होता है॥ २१४-२१५॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच और खान-पानका विचार न रखनेवाला होता है। मघामें भोगी, धनी तथा देवादिका भक्त होता है। पूर्वा फाल्गुनीमें दाता और प्रियवक्ता होता है। उत्तरा फाल्गुनीमें धनी और भोगी; हस्तमें चोरस्वभाव, ढीठ और निर्लज्ज तथा चित्रामें नाना प्रकारके वस्त्र धारण करनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त होता है। स्वातीमें जन्म लेनेवाला मनुष्य धर्मात्मा और दयालु होता है। विशाखामें लोभी, चतुर और क्रोधी; अनुराधामें भ्रमणशील और विदेशवासी; ज्येष्ठामें धर्मात्मा और संतोषी तथा मूलमें धनीमानी और सुखी होता है। पूर्वाषाढ़में मानी, सुखी और हृष्ट; उत्तराषाढ़में विनयी और धर्मात्मा; श्रवणमें धनी, सुखी और लोकमें विख्यात तथा धनिष्ठामें दानी, शूरवीर और धनवान् होता है। शतभिषामें शत्रुको जीतनेवाला और व्यसनमें आसक्त; पूर्वभाद्रपदमें स्त्रीके वशीभूत और धनवान्; उत्तर-भाद्रपदमें वक्ता, सुखी और सुन्दर तथा रेवतीमें जन्म लेनेवाला शूरवीर, धनवान् और पवित्र हृदयवाला होता है॥ २१६—२२०॥

( मेषादि चन्द्रराशिमें जन्मका फल— ) मेषराशिमें जन्म लेनेवाला कामी, शूरवीर और कृतज्ञ; वृषमें सुन्दर, दानी और क्षमावान्; मिथुनमें स्त्रीभोगासक्त, द्यूतविद्याको जाननेवाला तथा कर्कराशिमें स्त्रीके वशीभूत और छोटे शरीरवाला होता है। सिंहराशिमें स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और सुखी होता है। कन्याराशिमें धर्मात्मा, कोमल शरीरवाला तथा सुबुद्धि होता है। तुलाराशिमें उत्पन्न पुरुष पण्डित, ऊँचे कदवाला और धनवान् होता है। वृश्चिकराशिमें जन्म लेनेवाला रोगी, लोकमें पूज्य और क्षत (आघात)-युक्त होता है। धनुमें जन्म लेनेवाला कवि, शिल्पज्ञ और धनवान्; मकरमें कार्य करनेमें अनुत्साही, व्यर्थ घूमनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त; कुम्भमें परस्त्री और परधन हरण करनेके स्वभाववाला तथा मीनमें धनु-सदृश (कवि और शिल्पज्ञ) होता है॥ २२१—२२३॥

यदि चन्द्रमाकी राशि बली हो तथा राशिका स्वामी और चन्द्रमा दोनों बलवान् हों तो ऊपर कहे हुए फल पूर्णरूपसे संघटित होते हैं—ऐसा समझना चाहिये। अन्यथा विपरीत फल (अर्थात् निर्बल हो तो फलका अभाव या बलके अनुसार फलमें भी तारतम्य) जानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी राशिके अनुसार फलका विचार करना चाहिये॥ २२४॥

( सूर्यादि ग्रह-राशि-फल— ) सूर्य यदि मेष-राशिमें हो तो जातक लोकमें विख्यात होता है। वृषमें हो तो स्त्रीका द्वेषी, मिथुनमें हो तो धनवान्, कर्कमें हो तो उग्र स्वभाववाला, सिंहमें हो तो मूर्ख, कन्यामें हो तो कवि, तुलामें हो तो कलवार,

वृश्चिकमें हो तो धनवान्, धनुमें हो तो लोकपूज्य, मकरमें हो तो लोभी, कुम्भमें हो तो निर्धन और मीनमें हो तो जातक सुखसे रहित होता है॥ २२५॥

मङ्गल यदि सिंहमें हो तो जातक निर्धन, कर्कमें हो तो धनवान्, स्वराशि (मेष, वृश्चिक)-में हो तो भ्रमणशील, बुधराशि (कन्या-मिथुन)-में हो तो कृतज्ञ, गुरुराशि (धनु-मीन)-में हो तो विख्यात, शुक्रराशि (वृष-तुला)-में हो तो परस्त्रीमें आसक्त, मकरमें हो तो बहुत पुत्र और धनवाला तथा कुम्भमें हो तो दु:खी, दुष्ट और मिथ्यास्वभाववाला होता है॥ २२६½॥

बुध यदि सूर्यकी राशि (सिंह)-में हो तो स्त्रीका द्वेषी, चन्द्रराशि (कर्क)-में हो तो अपने परिजनोंका द्वेषी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्धन और सत्त्वहीन, अपनी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो बुद्धिमान् और धनवान्, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मान और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो पुत्र और स्त्रीसे सम्पन्न तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो ऋणी होता है॥ २२७½॥

गुरु यदि सिंहमें हो तो सेनापति, कर्कमें हो तो स्त्री-पुत्रादिसे युक्त एवं धनी, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो धनी और क्षमाशील, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो वस्त्रादि विभवसे युक्त, अपनी राशि (धनु-मीन)-में हो तो मण्डल (जिला)-का मालिक, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनी और सुखी तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो मकरमें ऋणवान् और कुम्भमें धनवान् होता है॥ २२८½॥

शुक्र सिंहमें हो तो जातक स्त्रीद्वारा धन-लाभ करनेवाला, कर्कमें हो तो घमण्ड और शोकसे युक्त, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो बन्धुओंसे द्वेष रखनेवाला, बुधकी राशि (मिथुन-कर्क)-में हो तो धनी और पापस्वभाव, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो धनी और पण्डित, अपनी राशि (वृष-तुला)-में हो तो धनवान् और क्षमावान् तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो स्त्रीसे पराजित होता है॥ २२९½॥

शनि यदि सिंहमें हो तो पुत्र और धनसे रहित, कर्कमें हो तो धन और संतानसे हीन, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या)-में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धनु-मीन)-में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला)-में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ)-में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है॥ २३०½॥

**(चन्द्रपर दृष्टिका फल—)** मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर-स्वभाव तथा निर्धन[1] होता है॥ २३१॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है। मिथुनराशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क)-में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ

---

१. मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये।

चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्यौतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि)-की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र)-की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल)-की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है॥ २३२—२३४॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल)-की दृष्टि हो तो जातक दम्भी और शठ होता है॥ २३५॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है। कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये। मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)-की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों)-की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये।)॥ २३६॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामें स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण)-में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है। प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। मङ्गलके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः[1] ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है। बुधके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह)-में स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय,

१. सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार छः ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार छः ग्रह समझने चाहिये।

रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री, धर्मात्मा तथा धर्मशील होता है। शनिके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी हो तो जातक क्रमशः अल्पसंतति, दुःखी, अभिमानी, अपने कार्यमें तत्पर, दुष्ट स्त्रीका पति तथा कृपण होता है। जिस प्रकार मेषादि राशि या उसके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंके दृष्टि-फल कहे गये हैं, इसी प्रकार मेषादि राशि या नवमांशमें स्थित सूर्यपर चन्द्रादि ग्रहोंकी दृष्टिसे भी प्राप्त होनेवाले फल समझने चाहिये॥ २३७—२४३॥

**( फलोंमें न्यूनाधिक्य— )** चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो पूर्वोक्त शुभ फल पूर्ण, अपने नवमांशमें हो तो मध्यम (आधा) और अन्य नवमांशमें हो तो अल्प समझना चाहिये। (इसीसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अशुभ फल कहे गये हैं, वे भी विपरीत दशामें विपरीत होते हैं अर्थात् वर्गोत्तममें चन्द्रमा हो तो अशुभ फल अल्प, अपने नवमांशमें हो तो आधा और अन्य नवमांशमें हो तो पूर्ण होते हैं।) राशि और नवमांशके फलोंमें भिन्नता होनेपर यदि नवमांशका स्वामी बली हो तो वह राशिफलको रोककर ही फल देता है॥ २४४½॥

**( द्वादश भावगत ग्रहोंके फल— )** सूर्य यदि लग्नमें हो तो शिशु शूरवीर, दीर्घसूत्री (देरसे काम करनेके स्वभाववाला), दुर्बल दृष्टिवाला और निर्दय होता है। यदि मेषमें रहकर लग्नमें हो तो धनवान् और नेत्ररोगी होता है और सिंह लग्नमें हो तो राज्यन्ध (रतौंधीवाला), तुलालग्नमें हो तो अंधा और निर्धन होता है। कर्क लग्नमें हो तो जातककी आँखमें फूली होती है।

द्वितीय भावमें सूर्य हो तो बालक बहुत धनी, राजदण्ड पानेवाला और मुखका रोगी होता है। तृतीय स्थानमें हो तो पण्डित और पराक्रमी होता है। चतुर्थ स्थानमें सूर्य हो तो सुखहीन और पीड़ायुक्त होता है। सूर्य पञ्चम भावमें हो तो मनुष्य धनहीन और पुत्रहीन होता है। षष्ठ भावमें हो तो बलवान् और शत्रुओंको जीतनेवाला होता है। सप्तम भावमें स्थित हो तो मनुष्य अपनी स्त्रीसे पराजित होता है। अष्टम भावमें हो तो उसके पुत्र थोड़े होते हैं और उसे दिखायी भी कम ही देता है। नवम भावमें हो तो जातक पुत्रवान्, धनवान् और सुखी होता है। दशम भावमें हो तो विद्वान् और पराक्रमी तथा एकादश भावमें हो तो अधिक धनवान् और मानी होता है। यदि द्वादश भावमें सूर्य हो तो उत्पन्न बालक नीच और धनहीन होता है॥ २४५—२४९॥

चन्द्रमा यदि मेष लग्नमें हो तो जातक गूँगा, बहिरा, अंधा और दूसरोंका दास होता है। वृष लग्नमें हो तो वह धनी होता है। द्वितीय भावमें हो तो विद्वान् और धनवान्, तृतीय भावमें हो तो हिंसाके स्वभाववाला, चतुर्थ स्थानमें हो तो उस भावके लिये कहे हुए फलों (सुख, गृहादि)-से सम्पन्न, पञ्चम भावमें हो तो कन्यारूप संतानवाला और आलसी होता है। छठे भावमें हो तो बालक मन्दाग्निका रोगी होता है, उसे अभीष्ट भोग बहुत कम मिलते हैं तथा वह उग्र स्वभावका होता है। सप्तम भावमें हो तो जातक ईर्ष्यावान् और अत्यन्त कामी होता है। अष्टम भावमें हो तो रोगसे पीड़ित, नवम भावमें हो तो मित्र और धनसे युक्त, दशम भावमें हो तो धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धनवान् होता है। एकादश भावमें हो तो उत्पन्न शिशु विख्यात, बुद्धिमान् और धनवान् होता है तथा द्वादश भावमें हो तो जातक क्षुद्र और अङ्गहीन होता है॥ २५०—२५२½॥

मङ्गल लग्नमें हो तो उत्पन्न शिशु क्षत शरीरवाला

होता है। द्वितीय भावमें हो तो वह कदन्न[1] भोजी तथा नवम भावमें हो तो पापस्वभाव होता है। इनसे भिन्न (३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२) स्थानोंमें यदि मङ्गल हो तो उसके फल सूर्यके समान ही होते हैं॥ २५३½ ॥

बुध लग्नमें हो तो जातक पण्डित होता है। द्वितीय भावमें हो तो शिशु धनवान्, तृतीय भावमें हो तो दुष्ट स्वभाव, चतुर्थ भावमें हो तो पण्डित, पञ्चम भावमें हो तो राजमन्त्री, षष्ठ भावमें हो तो शत्रुहीन, सप्तममें हो तो धर्मज्ञाता, अष्टम भावमें हो तो विख्यात गुणवाला और शेष (९, १०, ११, १२) भावोंमें हो तो जैसे सूर्यके फल कहे गये हैं, वैसे ही उसके फल भी समझने चाहिये॥ २५४½ ॥

बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भावमें हो तो प्रियभाषी, तृतीय भावमें हो तो कृपण, चतुर्थमें हो तो सुखी, पञ्चममें हो तो विज्ञ, षष्ठममें हो तो शत्रुरहित, सप्तममें हो तो सम्पत्तियुक्त, अष्टममें हो तो नीच स्वभाववाला, नवममें हो तो तपस्वी, दशममें हो तो धनवान्, एकादशमें हो तो नित्य लाभ करनेवाला और द्वादशमें हो तो दुष्ट हृदयवाला होता है॥ २५५ ½ ॥ शुक्र लग्नमें हो तो जातक कामी और सुखी, सप्तम भावमें हो तो कामी तथा पञ्चम भावमें हो तो सुखी होता है और अन्य भावों (२, ३, ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२)- में हो तो वह उत्पन्न बालकको बृहस्पतिके समान ही फल देता है॥ २५६½ ॥

शनि लग्नमें हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, मलिन, बाल्यावस्थामें रोगी और आलसी होता है। किंतु यदि अपनी राशि (मकर-कुम्भ) या अपने उच्च (तुला)में हो तो जातक भूपति, ग्रामपति, पण्डित और सुन्दर शरीरवाला होता है। अन्य (द्वितीय आदि) भावोंमें सूर्यके समान ही शनिके भी फल होते हैं॥ २५७-२५८ ॥

**( फलमें न्यूनाधिकत्व— )** शुभग्रह यदि अपने उच्चमें हों तो पूर्णरूपसे उपर्युक्त फल प्राप्त होता है। यदि अपने मूल त्रिकोणमें हो तो तीन चरण, अपनी राशिमें हो तो आधा, मित्रके गृहमें हो तो एक चरण तथा शत्रुकी राशिमें हो तो उससे भी कम फल प्राप्त होता है और नीचमें या अस्त हो तो कुछ भी फल नहीं होता है। (इस प्रकार शुभ ग्रहके फल कहनेसे सिद्ध होता है कि पापग्रहका फल इसके विपरीत होता है। अर्थात् पापग्रह नीचमें या अस्त हो तो पूर्ण फल, शत्रु-राशिमें तीन चरण, मित्र-राशिमें आधा, अपनी राशिमें एक चरण, अपने मूल त्रिकोणमें उससे भी अल्प और अपने उच्चमें हो तो अपना कुछ भी फल नहीं देता है)॥ २५९ ½ ॥

**( स्वराशिस्थ ग्रहफल— )** यदि अपनी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक अपने पिताके सदृश धनवान् और यशस्वी होता है। दो ग्रह अपनी राशिमें हों तो बालक अपने कुलमें श्रेष्ठ, तीन ग्रह हों तो बन्धुओंमें माननीय, चार ग्रह हों तो विशेष धनवान्, पाँच ग्रह हों तो सुखी, छः ग्रह हों तो भोगी और यदि सातों ग्रह अपनी राशिमें स्थित हों तो जातक राजा होता है॥ २६० ½ ॥

यदि अपने मित्रकी राशिमें एक ग्रह हो तो जातक दूसरेके धनसे पालित, दो ग्रह हों तो मित्रोंके द्वारा पोषित और तीन ग्रह हों तो वह अपने बन्धुओंके द्वारा पालित होता है। यदि चार ग्रह मित्रराशिमें हों तो बालक अपने बाहुबलसे जीवननिर्वाह करता है। पाँच ग्रह हों तो बहुत लोगोंका पालन करनेवाला होता है। छः ग्रह हों तो सेनापति और सातों ग्रह मित्रराशिमें हों तो जातक राजा होता है॥ २६१ ½ ॥

पापग्रह यदि विषम राशि और सूर्यकी होरा

१. कोदो, मडुआ आदि निम्नश्रेणीके अन्नको कदन्न (कु+अन्न) कहते हैं।

(राश्यर्ध)-में हों तो जातक लोकमें विख्यात, महान् उद्योगी, अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान्, धनवान् और बलवान् होता है। तथा शुभग्रह यदि समराशि और चन्द्रमाकी होरामें हों तो जातक कान्तिमान्, मृदु (कोमल) शरीरवाला, भाग्यवान्, भोगी और बुद्धिमान् होता है। यदि पापग्रह समराशि और सूर्यकी होरामें हों तो पूर्वोक्त फल मध्यम (आधा) होता है। एवं शुभ यदि विषमराशि और सूर्यकी होरामें हों तो ऊपर कहे हुए फल नहीं प्राप्त होते हैं॥ २६२—२६४॥

चन्द्रमा यदि अपने या अपने मित्रके द्रेष्काणमें हो तो जातक सुन्दर स्वरूपवाला और गुणवान् होता है। अन्य द्रेष्काणमें हो तो उस द्रेष्काणकी राशि और द्रेष्काणपतिके सदृश ही फल प्राप्त होता है। (सारांश यह है कि उस द्रेष्काणका स्वामी यदि चन्द्रमाका मित्र हो तो तीन चरण फल मिलता है, सम हो तो दो चरण (आधा) फल मिलता है तथा शत्रु हो तो एक चरण फल होता है।) यदि सर्प द्रेष्काण[1], शस्त्र द्रेष्काण, चतुष्पद द्रेष्काण और पक्षी द्रेष्काणमें चन्द्रमा हो तो जातक क्रमशः उग्र-स्वभाव, हिंसाके स्वभाववाला, गुरुकी शय्यापर बैठनेवाला और भ्रमणशील होता है॥ २६५-२६६ $\frac{1}{2}$॥

(लग्ननवमांश राशिफल—) लग्नमें मेषका नवमांश हो तो जातक चोरस्वभाव, वृष-नवमांश हो तो भोगी, मिथुन-नवमांश हो तो धनी, कर्क-नवमांश हो तो बुद्धिमान्, सिंह-नवमांश हो तो राजा, कन्या-नवमांश हो तो नपुंसक, तुला-नवमांश हो तो शत्रुको जीतनेवाला, वृश्चिक-नवमांश हो तो बेगारी करनेवाला, धनुका नवमांश हो तो दासकर्म करनेवाला, मकर-नवमांश हो तो पापस्वभाव, कुम्भ-नवमांश हो तो हिंसाके स्वभाववाला और मीन-नवमांश लग्नमें हो तो बुद्धिहीन होता है। किंतु यदि वर्गोत्तम नवमांश (अर्थात् जो राशि हो उसीका नवमांश भी) हो तो वह जातक इन (चोरस्वभाव आदि सब)-का शासक होता है। (जैसे मेष-नवमांशमें उत्पन्न मनुष्य चोरस्वभाव होता है, किंतु यदि मेष राशिमें मेषका नवमांश हो तो वह चोरस्वभाववालोंका शासक होता है, इत्यादि।) इसी प्रकार मेषादि राशियोंके द्वादशांशमें मेषादि राशियोंके समान फल प्राप्त होते हैं॥ २६७-२६८॥

(मङ्गल आदि ग्रहोंके त्रिंशांशफल—) मङ्गल अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक स्त्री, बल, आभूषण तथा परिजनादिसे सम्पन्न, साहसी और तेजस्वी होता है। शनि अपने त्रिंशांशमें हो तो रोगी, स्त्रीके प्रति कुटिल, परस्त्रीमें आसक्त, दुःखी, वस्त्रादि आवश्यक सामग्रीसे सम्पन्न, किंतु मलिन होता है। गुरु अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक सुखी, बुद्धिमान्, धनी, कीर्तिमान्, तेजस्वी, लोकमें मान्य, रोगहीन, उद्यमी और भोगी होता है। बुध अपने त्रिंशांशमें हो तो मनुष्य मेधावी, कलाकुशल, काव्य और शिल्पविद्याका ज्ञाता, विवादी, कपटी, शास्त्रतत्त्वज्ञ तथा साहसी होता है। शुक्र अपने त्रिंशांशमें हो तो जातक अधिक संतान, सुख, आरोग्य, सौन्दर्य और धनसे युक्त, मनोहर शरीरवाला तथा अजितेन्द्रिय होता है॥ २६९—२७३॥

(सूर्य-चन्द्र-फल—) मङ्गलके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक शूरवीर, चन्द्रमा हो तो दीर्घसूत्री, बुधके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो जातक कुटिल और चन्द्रमा हो तो हिंसाके स्वभाववाला होता है। गुरुके त्रिंशांशमें रवि हो तो गुणी और चन्द्रमा हो तो भी गुणी होता है। शुक्रके त्रिंशांशमें सूर्य हो तो बालक सुखी और चन्द्रमा हो तो विद्वान् होता है। शनिके त्रिंशांशमें रवि हो तो सुन्दर शरीरवाला

१. द्रेष्काणनिरूपणमें देखिये।

तथा चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है॥ २७४॥

(**कारक ग्रह—**) अपने-अपने मूल त्रिकोण, स्वराशि या स्वोच्चमें स्थित ग्रह यदि केन्द्रमें हों तो वे सब परस्पर कारक (शुभफलदायक)होते हैं, उनमें दशम स्थानमें रहनेवाला सबसे बढ़कर कारक होता है॥ २७५॥

(**शुभजन्मलक्षण—**) लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो या वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें शुभग्रह हो अथवा केन्द्रोंमें कारक ग्रह हों तो जन्म शुभप्रद होता है। अर्थात् इस स्थितिमें जन्म लेनेवाला बालक सुखी और यशस्वी होता है॥ २७६॥ गुरु, जन्मराशि और जन्म-लग्नेश ये सभी या इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हो तो जीवनके मध्यभागमें सुखप्रद होते हैं।[१] तथा पृष्ठोदय राशिमें रहनेवाला ग्रह वयस्‌के अन्तमें, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह वयस्‌के मध्यमें और शीर्षोदय राशिस्थ ग्रह पूर्ववयस्‌में अपने-अपने फल देते हैं॥ २७७॥

(**ग्रहगोचरफलसमय—**) सूर्य और मङ्गल ये दोनों राशिमें प्रवेश करते ही अपने राशि-सम्बन्धी (गोचर) फल देते हैं। शुक्र और बृहस्पति राशिके मध्यमें जानेपर और चन्द्रमा तथा शनि ये दोनों राशिके अन्तिम तृतीयांशमें पहुँचनेपर अपने शुभ या अशुभ गोचर फल देते हैं। तथा बुध सर्वदा (आदि, मध्य, अन्तमें) अपने शुभाशुभ फलको देता है॥ २७८॥

(**शुभाशुभ योग—**) लग्न या चन्द्रमासे पञ्चम और सप्तम भाव शुभग्रह और अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट हों तो जातकको उन दोनों (पुत्र और स्त्री)-का सुख सुलभ होता है, अन्यथा नहीं। तथा कन्या लग्नमें रवि और मीन लग्नमें शनि हो तो ये दोनों स्त्रीका नाश करनेवाले होते हैं। इसी प्रकार पञ्चम भाव (मेष-वृश्चिकसे अतिरिक्त राशि)-में मङ्गल हो तो पुत्रका नाश करनेवाला होता है। यदि शुक्रसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)-में पापग्रह हों अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें शुक्र हों, उनपर शुभग्रहका योग या दृष्टि नहीं हो तो उस जातककी स्त्रीका मरण अग्निसे या गिरनेसे होता है। लग्नसे १२, ६ भावोंमें चन्द्रमा और सूर्य हों तो वह स्त्रीसहित[२] एक नेत्रवाले (काण) पुरुषको जन्म देता है। ऐसा मुनियोंने कहा है। लग्नसे सप्तम या नवम, पञ्चममें शुक्र और सूर्य दोनों हों तो उस जातककी स्त्री विकल (अङ्गहीना) होती है॥ २७९—२८२॥

शनि लग्नमें और शुक्र सप्तम भावमें राशिसन्धि (कर्क, वृश्चिक, मीनके अन्तिमांश) में हों तो वह जातक वन्ध्या स्त्रीका पति होता है। यदि पञ्चम भाव शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट न हो, लग्नसे १२, ७में और लग्नमें यदि पापग्रह हों तथा पञ्चम भावमें क्षीण चन्द्रमा स्थित हों तो वह पुरुष पुत्र और स्त्रीसे रहित होता है। शनिके वर्ग (राशि-नवांश)-में शुक्र सप्तम भावमें हो और शनिसे दृष्ट हो तो वह जातक परस्त्रीमें आसक्त होता है। यदि वे दोनों (शनि और शुक्र) चन्द्रमाके साथ हों तो वह स्वयं परस्त्रीमें आसक्त और उसकी पत्नी परपुरुषमें आसक्त होती है॥ २८३-२८४½॥

शुक्र और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें हों तो जातक स्त्रीहीन अथवा पुत्रहीन होता है। पुरुष और स्त्री ग्रह सप्तम भावमें हों और उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो पति-पत्नी दोनों परिणताङ्ग (परमायुर्दाय भोगकर वृद्धावस्थातक जीनेवाले)

---

१. आशय यह है कि पूर्वकेन्द्र (१ लग्न) में हों तो वयस्‌के आरम्भमें, मध्यकेन्द्र (४, १०)-में हों तो मध्य वयस् (युवावस्था)में, यदि पश्चिम केन्द्र (७)में हों तो अंतिम वयस्‌में सुखप्रद होते हैं। इससे सिद्ध है कि जिसके जन्म-समयमें तीन केन्द्रोंमें शुभग्रह हों, वह जीवनपर्यन्त सुखी रहता है।

२. सारांश यह कि पुरुष तो काना होता ही है, उसे स्त्री भी कानी ही मिलती है।

होते हैं। दशम, सप्तम और चतुर्थ भावमें क्रमशः चन्द्रमा, शुक्र और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमें रहकर शनिसे दृष्ट हों तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनों सप्तम भावमें स्थित हों और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुप्त रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोंके बीचमें रहकर लग्नमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार)-से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्नमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीड़ित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्नमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्नमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीड़ित होता है॥ २८५—२९३ $\frac{१}{२}$ ॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमें पापग्रह हों तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पड़ता है)। लग्नमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्न हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्न हो तो बिना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्नमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष)-युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्ट हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्ट हो तो श्रेष्ठ दोसे दृष्ट हो तो मध्यम और तीनोंसे दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है॥ २९४—२९६॥

**(स्त्रीजातककी विशेषता—)** ऊपर कहे हुए पुरुष जातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हों, वे वैसे योगमें उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हों, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्न और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार सप्तम भावसे करना चाहिये॥ २९७ $\frac{१}{२}$ ॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव)-से

युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोंपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाववाली और गुणहीना होती है॥ २९८ $\frac{1}{2}$ ॥

लग्न और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक)-में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू[1] (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्र-राशि (कर्क)-में स्थित लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी स्वेच्छाचारिणी, शनिका हो तो पतिके लिये घातक, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो शिल्पकला जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो नीच स्वभाववाली होती है। सिंहराशिस्थ लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो पुरुषके समान आचरण करनेवाली, शनिका हो तो कुलटा स्वभाववाली, गुरुका हो तो रानी, बुधका हो तो पुरुषसदृश बुद्धिवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो अगम्यगामिनी होती है। गुरुराशि (धनु-मीन)-स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी गुणवती, शनिका हो तो भोगोंमें अल्प आसक्तिवाली, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो ज्ञानवती और शुक्रका त्रिंशांश हो तो पतिव्रता होती है। शनिराशि (मकर-कुम्भ) स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो स्त्री दासी, शनिका हो तो नीच पुरुषमें आसक्त, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो दुष्ट-स्वभाववाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो संतान-हीना होती है। इस प्रकार लग्न और चन्द्राश्रित राशियोंके फल ग्रहोंके बलके अनुसार न्यून या अधिक समझने चाहिये॥ २९९ $\frac{1}{2}$—३०४॥

शुक्र और शनि ये दोनों परस्पर नवमांशमें (शुक्रके नवमांशमें शनि और शनिके नवमांशमें शुक्र) हों अथवा शुक्रराशि (वृष-तुला) लग्नमें कुम्भका नवमांश हो तो इन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाली स्त्री कामाग्निसे संतप्त हो स्त्रियोंसे भी क्रीड़ा करती है॥ ३०५॥

**(पतिभाव—)** स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तम भावमें कोई ग्रह नहीं हो तो उसका पति कुत्सित होता है। सप्तम स्थान निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो उस स्त्रीका पति नपुंसक होता है। सप्तम स्थानमें बुध और शनि हों तो भी पति नपुंसक होता है। यदि सप्तम भावमें चरराशि हो तो उसका पति परदेशवासी होता है। सप्तम भावमें सूर्य हो तो उस स्त्रीको पति त्याग देता है। मङ्गल हो तो वह स्त्री बालविधवा होती है। शनि सप्तम भावमें पापग्रहसे दृष्ट हो तो वह स्त्री कन्या (अविवाहिता) रहकर ही वृद्धावस्थाको प्राप्त होती है॥ ३०६-३०७॥

१. 'पुनर्भू' कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शूद्रकुलमें होता है; क्योंकि शूद्रजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

यदि सप्तम भावमें एकसे अधिक पापग्रह हो तो भी स्त्री विधवा होती है, शुभ और पाप दोनों हों तो वह पुनर्भू होती है। यदि सप्तम भावमें पापग्रह निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो भी स्त्री अपने पतिद्वारा त्याग दी जाती है, अन्यथा शुभग्रहकी दृष्टि होनेपर वह पतिप्रिया होती है॥ ३०८॥

मङ्गलके नवमांशमें शुक्र और शुक्रके नवमांशमें मङ्गल हो तो वह स्त्री परपुरुषमें आसक्त होती है। इस योगमें चन्द्रमा यदि सप्तम भावमें हो तो वह अपने पतिकी आज्ञासे कार्य करती है॥ ३०९॥

यदि चन्द्रमा और शुक्रसे संयुक्त शनि एवं मङ्गलकी राशि (मकर, कुम्भ, मेष और वृश्चिक) लग्नमें हों तो वह स्त्री कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि उक्त लग्नपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो वह स्त्री अपनी मातासहित कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि सप्तम भावमें मङ्गलका नवमांश हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो वह नारी रोगयुक्त योनिवाली होती है। यदि सप्तम भावमें शुभग्रहका नवमांश हो तब तो वह पतिकी प्यारी होती है। शनिकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम भावमें मङ्गलकी राशि या नवमांश हो तो उसका पति स्त्रीलोलुप और क्रोधी होता है। बुधकी राशि या नवमांश हो तो विद्वान् और सब कार्यमें निपुण होता है। गुरुकी राशि या नवमांश हो तो जितेन्द्रिय और गुणी होता है। चन्द्रमाकी राशि या नवमांश हो तो कामी और कोमल होता है। शुक्रकी राशि या नवमांश हो तो भाग्यवान् तथा मनोहर स्वरूपवाला होता है। सूर्यकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति अत्यन्त कोमल और अधिक कार्य करनेवाला होता है॥ ३१०—३१२ $\frac{1}{2}$ ॥

शुक्र और चन्द्रमा लग्नमें हों तो वह स्त्री सुख तथा ईर्ष्यावाली होती है। यदि बुध और चन्द्रमा लग्नमें हों तो कलाओंको जाननेवाली तथा सुख और गुणोंसे युक्त होती है। शुक्र और बुध लग्नमें हों तो सौभाग्यवती, कलाओंको जाननेवाली और अत्यन्त सुन्दरी होती है। लग्नमें तीन शुभग्रह हों तो वह अनेक प्रकारके सुख, धन और गुणोंसे युक्त होती है॥ ३१३-३१४ $\frac{1}{2}$ ॥

पापग्रह अष्टम भावमें हो तो वह स्त्री अष्टमेश जिस ग्रहके नवमांशमें हो उस ग्रहके पूर्वकथित बाल्य आदि वयस्में विधवा होती है। यदि द्वितीय भावमें शुभग्रह हों तो वह स्त्री स्वयं ही स्वामीके सम्मुख मृत्युको प्राप्त होती है। कन्या, वृश्चिक, सिंह या वृष राशिमें चन्द्रमा हो तो स्त्री थोड़ी संततिवाली होती है। यदि शनि मध्यम बली तथा चन्द्रमा, शुक्र और बुध ये तीनों निर्बल हों तथा शेष ग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु) सबल होकर विषम राशि-लग्नमें हों तो वह स्त्री कुरूपा होती है॥ ३१५—३१७॥

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है॥ ३१८॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये॥ ३१९॥

**( निर्याण ( मृत्यु ) विचार— )** लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात)-के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष)-का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि)-में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममें सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो

जलसे; मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्याससे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है॥ ३२०—३२२॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है॥ ३२३-३२४॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ)-में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर सप्तम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमें क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९ लग्न और ५ भावोंमें हों तो मुद्गर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमें क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल—ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन)-के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)-में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्ठाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि)-रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है॥ ३२५—३३५॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो, उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो, वह अपने गुणोंसे (पूर्वोक्त अग्निशस्त्रादिद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो

नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समान स्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमें, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशोंमें जितने समय हों[1], उतने समयतक मरणकालमें मोह होता है। यदि उसपर अपने स्वामीकी दृष्टि हो तो उससे द्विगुणित और शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उससे त्रिगुणित समयपर्यन्त मोह होता है। इस विषयकी अन्य बातें अपनी बुद्धिसे विचारकर समझनी चाहिये॥ ३३६-३३७ $\frac{1}{2}$॥

**( शव-परिणाम— )** अष्टम स्थानमें जिस प्रकारका द्रेष्काण हो उसके अनुसार देहधारीकी मृत्यु और उसके शवके परिणामपर विचार करना चाहिये। यथा—अग्नि (पापग्रह)-का द्रेष्काण हो तो मृत्युके बाद उसका शव जलाकर भस्म किया जाता है। जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जलमें फेंका जानेपर वह वहीं गल जाता है। यदि सौम्य द्रेष्काण पापग्रहसे युक्त या पाप द्रेष्काण शुभग्रहसे युक्त हो तो मुर्दा न जलाया जाता है, न जलमें गलाया जाता है, अपितु सूर्यकिरण और हवासे सूख जाता है। यदि सर्प द्रेष्काण[2] अष्टम भावमें हो तो उस मुर्देको गीदड़ और कौए आदि नोंचकर खाते हैं॥ ३३८ $\frac{1}{2}$॥

**( पूर्वजन्मस्थिति— )** सूर्य और चन्द्रमामें जो अधिक बलवान् हो, वह जिस द्रेष्काणमें स्थित हो उस द्रेष्काणके स्वामीके अनुसार पूर्वजन्मकी स्थिति समझी जाती है। यथा—उक्त द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवलोकमें था। चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह पितृलोकमें था। सूर्य या मङ्गल द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह जातक पहले जन्ममें भी मर्त्यलोकमें ही था और शनि या बुध हो तो वह पहले नरकलोकमें रहा है—ऐसा समझना चाहिये। यदि उक्त द्रेष्काणका स्वामी अपने उच्चमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवादि लोकमें श्रेष्ठ था। यदि उच्च और नीचके मध्यमें हो तो उस लोकमें उसकी मध्यम स्थिति थी और यदि अपने नीचमें हो तो वह उस लोकमें निम्नकोटिकी अवस्थामें था—ऐसा उच्च और नीच स्थानके तारतम्यसे समझना चाहिये।

**( गति—भावी जन्मकी स्थिति— )** षष्ठ और अष्टम भावके द्रेष्काणोंके स्वामीमेंसे जो अधिक बली हो, मरनेके बाद जातक उसी ग्रहके (पूर्वदर्शित) लोकमें जाता है तथा सप्तम स्थानमें स्थित ग्रह बली हो तो वह अपने लोकमें ले जाता है।

**( मोक्षयोग— )** यदि बृहस्पति अपने उच्चमें होकर ६, १, ४, ७, ८, १० अथवा १२ में शुभग्रहके नवमांशमें हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मरण होनेपर मनुष्यका मोक्ष होता है। यह योग जन्म और मरण दोनों कालोंसे देखना चाहिये॥ ३३९—३४१ $\frac{1}{2}$॥

**( अज्ञात जन्म-समयको जाननेका प्रकार— )** जिस व्यक्तिके आधान या जन्मका समय अज्ञात हो, उसके प्रश्न-लग्नसे जन्म-समय समझना चाहिये। प्रश्न-लग्नके पूर्वार्ध (१५ अंशतक)-में उत्तरायण और उत्तरार्ध (१५ अंशके बाद)-में दक्षिणायन जन्मका समय समझना चाहिये। त्र्यंश (द्रेष्काण) द्वारा क्रमशः लग्न, ५, ९ राशिमें गुरु समझकर फिर प्रश्नकर्ताके वयस्‌के अनुसार वर्षमानकी कल्पना करनी चाहिये[3]। लग्नमें सूर्य हो तो ग्रीष्मऋतु, अन्यथा अन्य ग्रहोंके ऋतुका वर्णन

१. ३० अंशोंमें मध्यममानसे दो घंटा (५ घटी) समय होता है; उसी अनुपातसे समय समझना चाहिये।

२. आगे (पृष्ठ ३१६ में) द्रेष्काणके स्वरूप देखिये।

३. अर्थात् लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रश्नकर्ताके जन्म-समयमें लग्नराशिमें ही गुरु था, द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ५वीं राशिमें, तृतीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ९वीं राशिमें जन्मकालीन गुरुकी स्थिति समझे। फिर वर्तमान समयमें गुरुकी राशितक गिनकर वर्ष-संख्या बनावे। इस प्रकार संख्या १२ से कम ही होगी। इतने वर्षका वयस् यदि प्रश्नकर्ताके अनुमानसे

पहले किया जा चुका है। अयन और ऋतुमें भिन्नता हो तो चन्द्रमा, बुध और गुरुकी ऋतुओंके स्थानमें क्रमसे शुक्र, मङ्गल, शनिकी ऋतु परिवर्तित करके समझना चाहिये तथा ऋतु सर्वथा सूर्यकी राशिसे ही (सौरमाससे ही) ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार अयन और ऋतुके ज्ञान होनेपर लग्नके द्रेष्काणमें पूर्वार्ध हो तो ऋतुका प्रथम मास, उत्तरार्ध हो तो द्वितीय मास समझना चाहिये तथा द्रेष्काणके पूर्वार्ध या उत्तरार्धके भुक्तांशोंसे अनुपात[1] द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि)का ज्ञान करना चाहिये ॥ ३४२—३४४$\frac{1}{2}$ ॥

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न लग्नमें दिनसंज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिनसंज्ञक राशिमें रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात[2] द्वारा इष्ट घट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जम-लग्न कहना चाहिये।

---

ठीक हो तो ठीक माने, नहीं तो उस संख्यामें १२ जोड़ता जाय। जब प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्ष-संख्याका अनुमान हो जाय तो उस संख्याको वर्तमान संवत्‌में घटानेसे प्रश्नकर्ताका जन्मसंवत् होगा। उस संवत्‌में गुरु उस राशिमें मिलेगा ही, चाहे १ वर्ष आगे मिले या पीछे। जहाँ उस राशिमें गुरु मिले, वही प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत्सर समझना चाहिये। फिर उक्त रीतिसे अयनका ज्ञान करना चाहिये।

१. अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)-में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणार्धांशकी कलामें क्या होंगी?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९ वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २। १४। ४५ है और बृहस्पति-राश्यादि १। १८। २। ५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अतः लग्न (मिथुन)- से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्म-समयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न-समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-संख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परंतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस संवत्‌के पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अतः जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अतः वसन्त ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त ऋतुका प्रथम मास (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४। ४५। ० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८। ३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अतः मेषसे ११ वीं राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११। २८। ३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११ शुक्रवारको मिलता है, अतः प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और संवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११। २८। १५। २० तथा सूर्यकी गति ५८। ४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११। २८। ३०। ० और उदयकालिक सूर्य ११। २८। १५। २० के अन्तर १४। ४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८। ४५ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि १४। ५९ हुई। यह जन्म सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्म-पत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

२. यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रिमानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमें क्या?

(**जन्म-राशि-ज्ञान—**) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये॥ ३४५-३४६॥

(**प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान—**) प्रश्नलग्नमें वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन)-मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणनफलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हो तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस प्रणालीमें विशेषता यह है कि उक्त रीतिसे आयी हुई संख्यामें कभी ९ जोड़कर और कभी ९ घटाकर नक्षत्र लिया जाता है।[1] तथा उक्त ध्रुवपिण्डको १० से गुणा करके गुणनफलसे वर्ष, ऋतु और मास समझे[2]। पक्ष और तिथि जाननी हो तो ध्रुवपिण्डको ८ से गुणा करके २ से भाग देकर एक शेष हो तो शुक्लपक्ष और दो शेष हो तो कृष्णपक्ष समझे। इसमें भी ९ जोड़ या घटाकर ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् गुणनफलमें ९ जोड़ या ९ घटाकर भाग देना चाहिये। इसी प्रकार पक्षज्ञान होनेपर गुणनफलमें ही १५ से भाग देकर शेषके अनुसार प्रतिपदा आदि तिथि समझे तथा अहोरात्र जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ७ से गुणा करके दोसे भाग देकर एक शेष हो तो दिन और दो शेष हो तो रात्रि समझे। लग्न-नवांश, इष्ट-घड़ी तथा होरा जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ५ से गुणा करके अपने-अपने विकल्पसे (अर्थात् लग्न जाननेके लिये १२से, इष्ट घड़ी[3] जाननेके लिये ६० से (अथवा

---

१. ९ जोड़ने-घटानेका नियम यह है कि प्रश्नलग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो ९ जोड़कर, तीसरा द्रेष्काण हो तो ९ घटाकर तथा मध्य द्रेष्काण हो तो यथाप्राप्त नक्षत्र ग्रहण करे।

२. यथा—गुणनफलमें १२० का भाग देकर शेष तुल्य वर्ष तथा इसी गुणनफलमें ६ का भाग देकर शेषके अनुसार शिशिरादि ऋतु जाने एवं मास जानना हो तो गुणनफलमें १२ से भाग देकर शेष तुल्य चैत्रादि मास समझे। यदि ऋतुज्ञान होनेपर मास जानना हो तो उक्त गुणनफलमें दोसे भाग देकर एक शेषमें प्रथम और दो शेषमें द्वितीय मास समझे।

३. जैसे—संवत् २०१० चैत्र शुक्ला ५ गुरुवारको अनुमानतः ३० वर्षकी अवस्थावाले किसी पुरुषने अपना अज्ञात जन्म-समय जाननेके लिये प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-(वृष) राश्यादि १।५।२९ है और लग्नमें कोई ग्रह नहीं है तो लग्न-राश्यादिकी २१२९ कलाको वृषलग्नके गुणकाङ्क १० से गुणा करनेपर २१२९० यह ध्रुवपिण्ड हुआ। लग्नमें कोई ग्रह नहीं है, अतः दूसरा गुणक नहीं प्राप्त हुआ। अब प्रश्नकर्ताकी गत वर्ष-संख्या जाननेके लिये ध्रुवपिण्डको फिर १० से गुणा करके गुणनफल २१२९०० में १२० का भाग देनेसे शेष २० वर्ष-संख्या हुई; परंतु यह संख्या अनुमानसे कुछ न्यून है, अतः लग्नमें प्रथम द्रेष्काण होनेके कारण आगत शेषमें ९ जोड़नेसे २९ हुआ। यही सम्भावित वर्ष होनेके कारण प्रश्नकर्ताके जन्मसे गत वर्ष हुए। इस संख्याको वर्तमान संवत् २०१० में घटानेपर शेष १९८१ यह प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत् हुआ। पुनः मास जाननेके लिये दशगुणित ध्रुवपिण्डमें ९ जोड़ा गया तो २१२९०९ हुआ। इसमें १२ का भाग देनेसे शेष ५ रहा। अतः चैत्रसे पाँचवाँ श्रावण जन्म-मास हुआ। पक्ष जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ८ से गुणा कर गुणनफल १७०३२० में ९ जोड़कर २ का भाग देनेसे १ शेष रहनेके कारण शुक्लपक्ष हुआ। तिथि जाननेके लिये उसी अष्टगुणित एवं नवयुत ध्रुवपिण्ड १७०३२९ में १५ का भाग देनेपर शेष ८ रहा, अतः चतुर्थी तिथि हुई। इष्ट घड़ी जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ५ से गुणाकर गुणनफलमें ९ जोड़कर योगफल १०६४५९ में ६० का भाग देनेपर शेष १९ रहा। वही इष्ट घड़ी हुई। इस प्रकार संवत् १९८१ श्रावण शुक्ला ४ की गतघटी १९ (घड़ी बीतनेपर) प्रश्नकर्ताका जन्म-समय निश्चित हुआ।

दिन या रात्रिका ज्ञान होनेपर दिनमान या रात्रिमान-घटीसे), नवमांशके लिये ९ से तथा होराके लिये २ से भाग देकर शेषद्वारा सबका ज्ञान करना चाहिये। इस प्रकार जिनके जन्म-समय आदिका ज्ञान न हो उनके लिये इन सब बातोंका विचार करना चाहिये॥ ३४७—३५०॥

**( द्रेष्काणका स्वरूप— )** हाथमें फरसा लिये हुए काले रंगका पुरुष, जिसकी आँखें लाल हों और जो सब जीवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, मेषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। प्याससे पीडित एक पैरसे चलनेवाला, घोड़ेके समान मुख, लाल वस्त्रधारी और घड़ेके समान आकार—यह मेषके द्वितीय द्रेष्काणका स्वरूप है। कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लाल वस्त्रधारी और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाला—यह मेषके तृतीय द्रेष्काणका स्वरूप है। भूख और प्याससे पीड़ित, कटे-छँटे घुँघराले केश तथा दूधके समान धवल वस्त्र—यह वृषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। मलिनशरीर, भूखसे पीडित, बकरेके समान मुख और कृषि आदि कार्योंमें कुशल—यह वृषके दूसरे द्रेष्काणका रूप है। हाथीके समान विशालकाय, शरभ[1]के समान पैर, पिङ्गल वर्ण और व्याकुल चित्त—यह वृषके तीसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। सुईसे सीने-पिरोनेका काम करनेवाली, रूपवती, सुशीला तथा संतानहीना नारी, जिसने हाथको ऊपर उठा रखा है, मिथुनका प्रथम द्रेष्काण है। कवच और धनुष धारण किये हुए उपवनमें क्रीडा करनेकी इच्छासे उपस्थित गरुडसदृश मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रत्नोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेशजीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमें यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है॥ ३५१—३५६॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखनेवाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देवमन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है॥ ३५७—३५९॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ोंकी कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ

१. पुराणोंमें शरभके आठ पैर कहे गये हैं और उसे व्याघ्र-सिंहसे भी अधिक बलिष्ठ एवं भयङ्कर बताया गया है; परंतु यह अब कहीं उपलब्ध नहीं होता। शरभका दूसरा अर्थ ऊँट भी है।

विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टवाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है, यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिकका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६०—३६२॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमें धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञोंकी रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका द्रेष्काण है। चम्पापुरुषके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्रके रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पापुष्पके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रोंवाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है॥ ३६३—३६६॥ गीधके समान मुख, तेल, घी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किरीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमें नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढेके समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणांशके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो—॥ ३६७—३७०॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

## त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन)

**सनन्दनजी बोले**—नारदजी! चैत्रादि मासोंमें क्रमशः मेषादि राशियोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होती है[1]। चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भमें जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्षका राजा होता है। सूर्यके मेषराशि-प्रवेशके समय जो वार हो, वह सेनापति (या मन्त्री) होता है। कर्क राशिकी संक्रान्तिके समय जो वार हो, वह सस्य (धान्य)-का अधिपति होता है। उक्त वर्ष आदिका

१. जैसे मेषमें सूर्यके रहते जो अमावास्या होती है, वहाँ चैत्रकी समाप्ति समझी जाती है एवं वृषादिके सूर्यमें वैशाखादि मास समझना चाहिये।

अधिपति यदि सूर्य हो तो वह मध्यम (शुभ और अशुभ दोनों) फल देता है। चन्द्रमा हो तो उत्तम फल देता है। मङ्गल अधिपति हो तो अनिष्ट (अशुभ) फल देनेवाला होता है। बुध, गुरु और शुक्र—ये तीनों अति उत्तम (शुभ) फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। शनि अधिपति हो तो अशुभ फल होता है। इन ग्रहोंके बलाबल देखकर तदनुसार इनके न्यून या पूर्ण फल समझने चाहिये॥ १—३॥

(धूमकेतु—पुच्छलतारा आदिके फल—) यदि कदाचित् कहींसे सूर्य-मण्डलमें दण्ड (लाठी), कबन्ध (मस्तकहीन शरीर) कौआ या कीलके आकारवाले केतु (चिह्न) देखनेमें आवे, तो वहाँ व्याधि, भ्रान्ति तथा चोरोंके उपद्रवसे धनका नाश होता है। छत्र, ध्वज, पताका या सजल मेघखण्ड-सदृश अथवा स्फुलिङ्ग (अग्निकण) सहित धूम सूर्यमण्डलमें दीख पड़े, तो उस देशका नाश होता है। शुक्ल, लाल, पीला अथवा काला सूर्यमण्डल दीखनेमें आवे, तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंको पीड़ा होती है। मुनिवर! यदि दो, तीन या चार प्रकारके रंग सूर्यमण्डलमें दीख पड़ें, तो राजाओंका नाश होता है। यदि सूर्यकी ऊर्ध्वगामिनी किरण लाल रंगकी दीख पड़े, तो सेनापतिका नाश होता है। यदि उसका पीला वर्ण हो तो राजकुमारका, श्वेत वर्ण हो तो राजपुरोहितका तथा उसके अनेक वर्ण हों तो प्रजाजनोंका नाश होता है। इसी तरह धूम्र वर्ण हो तो राजाका और पिशङ्ग (कपिल) वर्ण हो तो मेघका नाश होता है। यदि सूर्यकी उक्त किरणें नीचेकी ओर हों, तो संसारका नाश होता है॥ ४—७ १/२॥

सूर्य शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन)-में ताँबेके समान (लाल) दीख पड़े, तो संसारके लिये शुभ (कल्याणकारी) होता है। ऐसे ही वसन्त (चैत्र-वैशाख)-में कुंकुमवर्ण, ग्रीष्ममें पाण्डु (श्वेत-पीत-मिश्रित)-वर्ण, वर्षामें अनेक वर्ण, शरद्-ऋतुमें कमलवर्ण तथा हेमन्तमें रक्तवर्णका सूर्यबिम्ब दिखायी दे, तो उसे शुभप्रद समझना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ नारद! यदि शीतकालमें (अगहनसे फाल्गुनतक) सूर्यका बिम्ब पीला, वर्षामें (श्रावणसे कार्तिकतक) श्वेत (उजला) तथा ग्रीष्ममें (चैत्रसे आषाढ़तक) लाल रंगका दीख पड़े, तो क्रमसे रोग, अवर्षण तथा भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि कदाचित् सूर्यका आधा बिम्ब इन्द्रधनुषके सदृश दीख पड़े तो राजाओंमें परस्पर विरोध बढ़ता है। खरगोशके रक्तके सदृश सूर्यका वर्ण हो तो शीघ्र ही राजाओंमें महायुद्ध प्रारम्भ होता है। यदि सूर्यका वर्ण मोरकी पाँखके समान हो, तो वहाँ बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं होती है। यदि सूर्य कभी चन्द्रमाके समान दिखायी दे, तो वहाँके राजाको जीतकर दूसरा राजा राज्य करता है। यदि सूर्य श्याम रंगका दीख पड़े तो कीड़ोंका भय होता है। भस्म समान दीख पड़े तो समूचे राज्यपर भय उपस्थित होता है और यदि सूर्यमण्डलमें छिद्र दिखायी दे, तो वहाँके सबसे बड़े सम्राट्की मृत्यु होती है। कलशके समान आकारवाला सूर्य देशमें भूखमरीका भय उपस्थित करता है। तोरण-सदृश आकारवाला सूर्य ग्राम तथा नगरोंका नाशक होता है। छत्राकार सूर्य उदित हो तो देशका नाश और सूर्य-बिम्ब खण्डित दीख पड़े तो राजाका नाश होता है॥ ८—१४॥

यदि सूर्योदय या सूर्यास्तके समय बिजलीकी गड़गड़ाहट और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो राजाका नाश या राजाओंमें परस्पर युद्ध होता है। यदि पंद्रह या साढ़े सात दिनतक दिनमें सूर्यपर तथा रातमें चन्द्रमापर परिवेष (मण्डल) हो अथवा उदय और अस्त-समयमें वह अत्यन्त रक्तवर्णका दिखायी दे, तो राजाका परिवर्तन होता

है॥ १५-१६॥ उदय या अस्तके समय यदि सूर्य शस्त्रके समान आकारवाले या गदहे, ऊँट आदिके सदृश अशुभ आकारवाले मेघसे खण्डित-सा प्रतीत हो तो राजाओंमें युद्ध होता है॥ १७॥

(**चन्द्रशृङ्गोन्नति-फल—**) मीन तथा मेष राशिमें यदि (द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमें यदि शृङ्ग शरसदृश हो तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामें यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो तो उस मासमें पृथ्वीपर दुर्भिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं॥ १८-१९½॥

पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो[1] तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामें यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ)-प्रद होता है। रेवतीसे मृगशिरापर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है॥ २०—२२½॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धैकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं[2]। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामें हानि (कमी) हो तो प्रजाके कार्योंमें हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है[3]। समतामें समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका विम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुभिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो तो शस्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा विम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि)-से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है॥ २३—२६½॥

(**भौम-चार-फल—**) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्रमें

१. दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

२. राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परंतु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छः नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छः नक्षत्रोंमें आगे बढ़ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला है, जो स्वल्पान्तरसे ४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमशः इन्हें ही 'अनागत' और 'गतयोगी' कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमांशमें ही पड़ते हैं; अतः इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

३. प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमें मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्वमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पंद्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढ़ाता है। सत्रहवें या अट्ठारहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्भिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढ़में वक्र हो तथा रोहिणीमें अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमें वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है॥ २७—३३॥

मङ्गल जिस दिशामें उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मघा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शस्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन करके चले तो दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग लानेवाला होता है। उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, मूल, श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रोंके बीचमें तथा रोहिणीके दक्षिण होकर मङ्गल चले तो अनावृष्टिकारक होता है। मङ्गल सब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चले तो शुभप्रद है और दक्षिण होकर चले तो अशुभ फल देनेवाला तथा प्रजामें कलह उत्पन्न करनेवाला होता है॥ ३४—३७ $\frac{1}{2}$॥

(बुध-चार-फल—) यदि कदाचित् आँधी, मेघ आदि उत्पात न होनेपर (शुद्ध आकाशमें) भी बुधका उदय देखनेमें न आवे तो अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओंमें युद्धकी सम्भावना समझनी चाहिये। धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़, मृगशिरा और रोहिणीमें चलता हुआ बुध यदि उन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो वह लोकमें बाधा और अनावृष्टि आदिके द्वारा भयकारी होता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुध दृश्य हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग तथा अनावृष्टि आदिका भय उपस्थित करनेवाला होता है। हस्तसे छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा) नक्षत्रोंमें बुधके रहनेसे लोकमें कल्याण, सुभिक्ष तथा आरोग्य होता है। उत्तर भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका और भरणीमें विचरनेवाला बुध वैद्य, घोड़े और व्यापारियोंका नाश करनेवाला होता है। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपदमें विचरता हुआ बुध यदि इन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो क्षुधा, शस्त्र, अग्नि और चोरोंसे प्राणियोंको भय प्राप्त होता है॥ ३८—४३ $\frac{1}{2}$॥

भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति 'प्राकृतिकी' कही गयी है। आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति 'मिश्रा' मानी गयी है। पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, पुष्य और पुनर्वसु—इनमें बुधकी 'संक्षिप्ता' गति कही गयी। पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती और अश्विनी—इनमें बुधकी 'तीक्ष्णा' गति होती है। उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और मूलमें उनकी 'योगान्तिका' गति मानी गयी है। श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषामें 'घोरा' गति और विशाखा, अनुराधा तथा हस्त—इन नक्षत्रोंमें बुधकी 'पाप' संज्ञक गति होती है। इन प्राकृत आदि सात

प्रकारकी गतियोंमें उदित होनेपर जितने दिनतक बुध दृश्य रहता है, उतने ही दिन उनमें अस्त होनेपर अदृश्य रहता है। उन दिनोंकी संख्या क्रमसे ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ है। बुध जब प्राकृत गतिमें रहता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष (अन्न-वस्त्र आदिकी वृद्धि) करता है। मिश्र और संक्षिप्त गतिमें मध्यम फल देता है तथा अन्य गतियोंमें अनावृष्टि (दुर्भिक्ष)-कारक होता है। वैशाख, श्रावण, पौष और आषाढ़में उदित होनेपर बुध पापरूप फल देता है और अन्य मासोंमें उदित होनेपर वह शुभ फल देता है। आश्विन और कार्तिकमें बुधका उदय हो तो शस्त्र, दुर्भिक्ष और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदित हुए बुधकी कान्ति चाँदी अथवा स्फटिकके समान स्वच्छ हो तो वह श्रेष्ठ फल देनेवाला होता है॥ ४४—५२॥

(**बृहस्पति-चार-फल—**) कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रोंके आश्रयसे कार्तिक आदि मास होते हैं; परंतु अन्तिम (आश्विन), पञ्चम (फाल्गुन) और एकादश (भाद्रपद)—ये तीन नक्षत्रोंसे पूर्ण होते हैं[1]। इसी प्रकार बृहस्पतिका जिन नक्षत्रोंमें उदय होता है, उन नक्षत्रोंसे (मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमें कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आषाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये॥ ५३—५५$\frac{1}{2}$॥

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका विम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र[2]का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके

---

१. कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें पूर्णिमा होनेसे मासोंके कार्तिक आदि नाम होते हैं। नीचे चक्रमें देखिये—

| कार्तिक | मार्गशीर्ष | पौष | माघ | फाल्गुन | चैत्र | वैशाख | ज्येष्ठ | आषाढ़ | श्रावण | भाद्रपद | आश्विन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृत्तिका<br>रोहिणी | मृगशिरा<br>आर्द्रा | पुनर्वसु<br>पुष्य | आश्लेषा<br>मघा | पूर्वाफाल्गुनी<br>उत्तराफाल्गुनी<br>हस्त | चित्रा<br>स्वाती | विशाखा<br>अनुराधा | ज्येष्ठा<br>मूल | पूर्वाषाढ़<br>उत्तराषाढ़ | श्रवण<br>धनिष्ठा | शतभिषा<br>पूर्व भाद्रपद<br>उत्तर भाद्रपद | रेवती<br>अश्विनी<br>भरणी |
| २ | २ | २ | २ | ३ | २ | २ | २ | २ | २ | ३ | ३ |

२. जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृषासे पीड़ा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं॥ ५६—६१ ॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामें आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोंको पीड़ा, गौओंको सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोगभय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है॥ ६२—६४ ॥

(शुक्र-चार-फल—) शुक्रके तीन मार्ग हैं—सौम्य (उत्तरा), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमें बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं[1]॥ ६५-६६ ॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फस्ल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टिकारक तथा शुभप्रद होता है। स्वातीसे तीन नक्षत्रतक जब शुक्र रहता है तब पश्चिम दिशा (देश)-में मेघ सुवृष्टिकारक और शुभदायक होता है। शेष सब नक्षत्रोंमें उसका फल विपरीत (अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करनेवाला) होता है। शुक्र जब बुधके साथ रहता है तो सुवृष्टिकारक होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्यामें यदि शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होती है। गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशिमें हों तथा एक पूर्व वीथीमें और दूसरा पश्चिम वीथीमें

१. शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

| मार्ग | सौम्य १ | | मध्यम २ | | | | याम्य ३ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | अश्विनी<br>भरणी<br>कृत्तिका | रोहिणी<br>मृगशिरा<br>आर्द्रा | पुनर्वसु<br>पुष्य<br>आश्लेषा | मघा<br>पूर्वाफाल्गुनी<br>उत्तराफाल्गुनी | हस्त<br>चित्रा<br>स्वाती | विशाखा<br>अनुराधा<br>ज्येष्ठा | मूल<br>पूर्वाषाढ़<br>उत्तराषाढ़ | श्रवण<br>धनिष्ठा<br>शतभिषा | पूर्वभाद्रपद<br>उत्तर भाद्रपद<br>रेवती |
| वीथी | १<br>नाग | २<br>इभ | ३<br>ऐरावत | ४<br>वृष | ५<br>उष्ट्र | ६<br>खर | ७<br>मृग | ८<br>अज | ९<br>दहन |

विद्यमान हो तो वे दोनों देशमें अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष लानेवाले और राजाओंमें परस्पर युद्ध करानेवाले होते हैं। मङ्गल, बुध, गुरु और शनि यदि शुक्रसे आगे होते हैं तो युद्ध, अतिवायु, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि करनेवाले होते हैं॥ ६७—७२॥ पूर्वाषाढ़, अनुराधा, उत्तरा फाल्गुनी, आश्लेषा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें शुक्र हो तो वह सुभिक्षकारक होता है। मूलमें हो तो शस्त्रभय और अनावृष्टि देनेवाला होता है। उत्तर भाद्रपद और रेवतीमें शुक्रके रहनेपर भय प्राप्त होता है॥ ७३॥

(शनि-चार-फल—) श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वा फाल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें विचरनेवाला शनि मनुष्योंके लिये सुभिक्ष, आरोग्य तथा खेतीकी उपज बढ़ानेवाला होता है॥ ७४॥ जन्मनक्षत्रसे प्रारम्भ करके मनुष्याकृति शनि-चक्रके मुखमें एक, गुदामें दो, सिरमें तीन, नेत्रोंमें दो, हृदयमें पाँच, बायें हाथमें चार, बायें पैरमें तीन, दक्षिण पादमें तीन तथा दक्षिण हाथमें चार—इस तरह नक्षत्रोंकी स्थापना करे। शनिका वर्तमान नक्षत्र जिस अङ्गमें पड़े, उसका फल निम्नलिखितरूपसे जानना चाहिये। शनि-नक्षत्र मुखमें हो तो रोग, गुदामें हो तो लाभ, सिरमें हो तो हानि, नेत्रमें हो तो लाभ, हृदयमें हो तो सुख, बायें हाथमें हो तो बन्धन, बायें पैरमें हो तो परिश्रम, दाहिने पैरमें हो तो श्रेष्ठ यात्रा और दाहिने हाथमें हो तो धन-लाभ होता है। इस प्रकार क्रमशः फल कहे गये हैं॥ ७५—७७॥ बहुधा वक्रगामी होनेपर शनि इन फलोंकी प्राप्ति कराता ही है। यदि वह सम मार्गपर हो तो फल भी मध्यम होता है और यदि वह शीघ्रगति हो तो उत्तम फल प्राप्त होते हैं॥ ७८॥

(राहु-चार-फल—) भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे राहुका मस्तक काट दिया तो भी अमृत पी लेनेके कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई; अतः उसे ग्रहके पदपर प्रतिष्ठित कर लिया गया॥ ७९॥ वह ब्रह्माजीके वरसे सम्पूर्ण पर्वों (पूर्णिमा और अमावास्या)-के समय चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा देता है; किंतु 'शर' तथा 'अवनति' अधिक होनेके कारण वह उन दोनोंसे दूर ही रहता है॥ ८०॥ एक सूर्यग्रहणके बाद दूसरे सूर्यग्रहणका तथा एक चन्द्रग्रहणके बाद दूसरे चन्द्रग्रहणका विचार छः मासपर पुनः कर लेना चाहिये। प्रति छः मासपर क्रमशः ब्रह्मादि सात देवता पर्वेश (ग्रहणके अधिपति) होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम। ब्राह्मपर्वमें ग्रहण होनेपर पशु, धान्य और द्विजोंकी वृद्धि होती है॥ ८१-८२॥ चन्द्रपर्वमें ग्रहण हो तो भी ऐसा ही फल होता है; विशेषता इतनी ही है कि लोगोंको कफसे पीड़ा होती है। इन्द्रपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंमें विरोध, जगत्‌में दुःख तथा खेती-बारीका नाश होता है। वारुणपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंका अकल्याण और प्रजाजनोंका कल्याण होता है॥ ८३-८४॥ अग्निपर्वमें ग्रहण हो तो वृष्टि, धान्यवृद्धि तथा कल्याणकी प्राप्ति होती है और यमपर्वमें ग्रहण होनेपर वर्षाका अभाव, खेतीकी हानि तथा दुर्भिक्षरूप फल प्राप्त होते हैं॥ ८५॥ वेलाहीन समयमें अर्थात् वेलासे पहले ग्रहण हो तो खेतीकी हानि तथा राजाओंको दारुण भय प्राप्त होता है और 'अतिवेल' कालमें अर्थात् वेला बिताकर ग्रहण हो[१] तो फूलोंकी हानि होती है,

१. गणितसे ग्रहणका जो समय प्राप्त होता हो उससे पहले ग्रहण होना 'वेलाहीन' है और उसे बिताकर जो ग्रहण होता है, वह 'अतिवेल' कहलाता है।

जगत्‌में भय होता है और खेती चौपट हो जाती है॥ ८६॥ जब एक ही मासमें चन्द्रमा-सूर्य—दोनोंका ग्रहण हो तो राजाओंमें विरोध होता है तथा धन और वृष्टिका विनाश होता है॥ ८७॥ ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा और सूर्यका उदय अथवा अस्त हो तो वे राजाओं और धान्योंका विनाश करनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा और सूर्यका सर्वग्रास ग्रहण हो तो वे भूखमरी, रोग तथा अग्निका भय उपस्थित करनेवाले होते हैं॥ ८८॥ उत्तरायणमें ग्रहण हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी हानि होती है तथा दक्षिणायनमें ग्रहण होनेपर अन्य वर्णके लोगोंको हानि पहुँचती है। सूर्य या चन्द्रमाके विम्बके उत्तर, पूर्व आदि भागमें यदि राहुका दर्शन हो (स्पर्श देखनेमें आवे) तो वह क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको हानि पहुँचाता है॥ ८९॥ इसी तरह ग्रहणके समय ग्रासके और मोक्षके भी दस-दस भेद होते हैं; जिनकी सूक्ष्म गतिको देवता भी नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है॥ ९०॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति)-पर विचार करना चाहिये। जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल)-को हम देख और जान सकें॥ ९१॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसंधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है॥ ९२॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं। वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमें यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अङ्कुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं। साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्रके साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं॥ ९३-९४॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। जितने दिनोंतक आकाशमें विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियोंको विविध फल देनेवाले होते हैं॥ ९५-९६॥ ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है। शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है॥ ९७॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है। दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है॥ ९८॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओंको हानि होती है॥ ९९॥ पलाश, बिम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है॥ १००॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं॥ १०१॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है॥ १०२॥ यदि ईशानकोणमें श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एवं कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं॥ १०३॥ गुरुसम्बन्धी

केतुओंकी विकच संज्ञा है। वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्ट साधक माने गये हैं। उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्णवाले बुधसम्बन्धी केतु हों तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं॥ १०४॥ कुङ्कुनामसे प्रसिद्ध मङ्गल-सम्बन्धी केतु लाल रंगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्टदायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं॥ १०५॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं। रीछके समान रंगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं॥ १०६॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है॥ १०७॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है। संध्याकालमें मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है॥ १०८॥

(**कालमान—**) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं॥ १०९॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है। किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा॥ ११०॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये। वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है॥ १११॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है॥ ११२-११३॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनोंका उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर होते हैं॥ ११४॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत्, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये साठ संवत्सर जानने चाहिये। ये सभी अपने नामके अनुरूप फल देनेवाले हैं। पाँच वर्षोंका युग होता है। इस तरह साठ संवत्सरोंमें बारह युग होते हैं॥ ११५—१२१॥ उन युगोंके स्वामी क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्रमा, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार तथा भग। इसी प्रकार युगके भीतर जो पाँच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा और शिव हैं॥ १२२-१२३॥

संवत्सरके राजा, मन्त्री तथा धान्येशरूप ग्रहोंके बलाबलका विचार करके तथा उनकी तात्कालिक स्थितिको भी भलीभाँति जानकर संवत्सरका फल समझना चाहिये॥ १२४॥ मकरादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे सौम्यायन (उत्तरायण) होता है। वह देवताओंका दिन और कर्कादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे दक्षिणायन होता है, वह देवताओंकी रात्रि है॥ १२५॥ गृहप्रवेश,

विवाह, प्रतिष्ठा तथा यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म माघ आदि उत्तरायणके मासोंमें करने चाहिये॥ १२६॥ दक्षिणायनमें उक्त कार्य गर्हित (त्याज्य) माना गया है, अत्यन्त आवश्यकता हो तो उस समय पूजा आदि यत्न करनेसे शुभ होता है[1]। माघसे दो-दो मासोंकी शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं॥ १२७॥ मकरसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएँ उत्तरायणमें होती हैं और कर्कसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायनमें होती हैं॥ १२८॥ शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक 'चान्द्र मास' होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक 'सौर मास' होता है। तीस दिनोंका एक 'सावन मास' होता है और चन्द्रमाद्वारा सब नक्षत्रोंके उपभोगमें जितने दिन लगते हैं, उतने अर्थात् २७ दिनोंका एक 'नाक्षत्र मास' होता है॥ १२९॥ मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, उर्ज, सहाः, सहस्य, तप और तपस्य—ये चैत्रादि बारह मासोंकी संज्ञाएँ हैं। जिस मासकी पौर्णमासी जिस नक्षत्रसे युक्त हो, उस नक्षत्रके नामसे ही उस मासका नामकरण होता है। (जैसे जिस मासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रसे युक्त होती है, उस मासका नाम 'चैत्र' होता है और वह पौर्णमासी भी उसी नामसे विख्यात होती है, जैसे चैत्री, वैशाखी आदि।) प्रत्येक मासके दो पक्ष क्रमशः देवपक्ष और पितृपक्ष हैं, अन्य विद्वान् उन्हें शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष कहते हैं॥ १३०—१३२॥ वे दोनों पक्ष शुभाशुभ कार्योंमें सदा उपयुक्त माने जाते हैं। ब्रह्मा, अग्नि, विरञ्चि, विष्णु, गौरी, गणेश, यम, सर्प, चन्द्रमा, कार्तिकेय, सूर्य, इन्द्र, महेन्द्र, वासव, नाग, दुर्गा, दण्डधर, शिव, विष्णु, हरि, रवि, काम, शंकर, कलाधर, यम, चन्द्रमा (विष्णु, काम और शिव)—ये सब शुक्ल प्रतिपदासे लेकर क्रमशः उनतीस तिथियोंके स्वामी होते हैं। अमावास्या नामक तिथिके स्वामी पितर माने गये हैं।

**( तिथियोंकी नन्दादि पाँच संज्ञा— )** प्रतिपदा आदि तिथियोंकी क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा—ये पाँच संज्ञाएँ मानी गयी हैं। पंद्रह तिथियोंमें इनकी तीन आवृत्ति करके इनका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। शुक्लपक्षमें प्रथम आवृत्तिकी (१, २, ३, ४, ५—ये) तिथियाँ अधम द्वितीय आवृत्तिकी (६, ७, ८, ९, १०—ये) तिथियाँ मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी (११, १२, १३, १४, १५—ये) तिथियाँ शुभ होती हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्षकी प्रथम आवृत्तिकी नन्दादि तिथियाँ इष्ट (शुभ), द्वितीय आवृत्तिकी मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी अनिष्टप्रद (अधम) होती हैं। दोनों पक्षोंकी ८, १२, ६, ४, ९, १४—ये तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गयी हैं। इन्हें अत्यन्त रूक्ष कहा गया है। इनमें क्रमशः आरम्भकी ४, १४, ९, ९, २५ और ५ घड़ियाँ सब शुभ कार्योंमें त्याग देने योग्य हैं। अमावास्या और नवमीको छोड़कर अन्य सब विषम तिथियाँ (३, ५, ७, ११, १३) सब कार्योंमें प्रशस्त हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदा मध्यम है (कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा शुभ है)।

षष्ठीमें तैल, अष्टमीमें मांस[2] चतुर्दशीमें क्षौर एवं पूर्णिमा और अमावास्यामें स्त्रीका सेवन त्याग दे।

---

१. 'मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदाः।'

'कुछ विद्वान् अगहनमें भी विवाह होना ठीक मानते हैं' इस मान्यताके अनुसार 'अगहन' में दक्षिणायन होनेपर भी विवाह हो सकता है।

२. मांस तो सबके लिये सदा ही त्याज्य है, किंतु जो मांसाहारी हैं उन्हें भी अष्टमीको तो मांस त्याग ही देना चाहिये।

अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी—इन तिथियोंमें कभी दातौन नहीं करना चाहिये। व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि और मङ्गलवार तथा षष्ठी तिथि और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन)-का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है॥ १३३—१४४½ ॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो (अर्थात् जिसमें रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमें चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है[1] ॥ १४५-१४६ ॥

**( युगादि तिथियाँ— )** कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं) ॥ १४७-१४८ ॥

**( मन्वादि तिथियाँ— )** कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध)-में अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं॥ १४९—१५१½ ॥

**( गजच्छाया-योग— )** भादोंके[2] कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मघामें हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोंके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ १५२½ ॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमें स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह 'अखण्ड तिथि' कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह 'खण्ड तिथि' कही जाती है॥ १५३½-१५४ ॥

**( क्षणतिथिकथन— )** प्रत्येक तिथिमें तिथि-मानका पंद्रहवाँ भाग 'क्षणतिथि' कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण

१. अमावास्या प्रायः दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी 'सिनीवाली' और दूसरे दिनकी 'कुहू' होती है। चतुर्दशीयुक्ता अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

२. 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

करण) होता है[१] ॥ १५५ $\frac{१}{२}$ ॥

**( वारप्रकरण— )** रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

**( वारोंमें तेल लगानेका फल— )** जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ १५६—१५८ ॥

**( रवि आदि वारोंका आरम्भकाल— )** जिस समय लङ्कामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्कोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमें सूर्योदय हुआ करता है[२] ॥ १५९ ॥ जो ग्रह बलवान् होता है, उसके वारमें जो कोई भी कार्य किया जाता है, वह सिद्ध हुआ करता है; किंतु जो ग्रह बलहीन (जातक-अध्यायमें कहे हुए बलसे रहित) होता है, उसके वारमें बहुत यत्न करनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ १६० ॥ सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें शुभप्रद होते हैं, अन्य वार (शनि, रवि और मङ्गल) क्रूर कर्ममें इष्टसिद्धिदायक होते हैं ॥ १६१ ॥

सूर्यका वर्ण लाल है, चन्द्रमा गौर वर्णके हैं, मङ्गल अधिक लाल हैं, बुधकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है, गुरुका वर्ण सुवर्णके सदृश पीत है, शुक्र श्वेत और शनि कृष्ण वर्णके हैं; इसलिये उन ग्रहोंके वारोंमें इनके गुण और वर्णके अनुरूप कार्य ही सिद्ध एवं हितकर होते हैं।

**( निन्द्य मुहूर्त— )** रविवारसे आरम्भ करके— रविमें ७, ५, ४; सोममें ६, ४, ७; मङ्गलमें ५, ३, २; बुधमें ४, २, ५; गुरुवारमें ३, १, ८; शुक्रवारमें २, ७, ३ और शनिमें १, ६, ८—ये प्रहरार्ध क्रमशः कुलिक, उपकुलिक और वारवेला कहे गये हैं। इनका मान आधे पहरका समझना चाहिये ॥ १६२—१६५ ॥

**( प्रत्येक वारमें क्षणवार-कथन— )** जिस वारमें क्षणवार जानना हो उस वारमें प्रथम क्षणवार उसी वारपतिका होता है। उससे छठे वारेशका द्वितीय, उससे भी छठेका तृतीय, इस प्रकार छठे-छठेके क्रमसे दिन-रातमें २४ क्षणवार (कालहोरा या होरा) होते हैं। एक-एक क्षणवारका मान ढाई-ढाई घटी

---

१. जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती है। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

२. इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

(या १ घंटा) है[1] ॥ १६६-१६७ ॥

**( क्षणवारका प्रयोजन— )** जिस वारमें जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ-अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७½ ॥

**( नक्षत्राधिपति-कथन— )** १ दस्र (अश्विनीकुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८—१७० ॥

**( नक्षत्रोंके मुख— )** पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं। इनमें बिलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूतसाधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१-१७२ ॥

---

१. दिन-रातमें होरा जाननेका चक्र—

| होरा | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
| २ | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु |
| ३ | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल |
| ४ | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि |
| ५ | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र |
| ६ | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध |
| ७ | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम |
| ८ | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
| ९ | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु |
| १० | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल |
| ११ | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि |
| १२ | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र |
| १३ | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध |
| १४ | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम |
| १५ | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
| १६ | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु |
| १७ | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल |
| १८ | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि |
| १९ | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र |
| २० | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध |
| २१ | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम |
| २२ | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
| २३ | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु |
| २४ | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | रवि | सोम | मङ्गल |

क्षणवार (होरेश) जाननेका प्रकार यह है कि जिस दिन होरेश (क्षणवार)-का विचार करना हो, उस दिनका प्रथम घंटा उसी दिनका क्षणवार होता है। इससे आगे उससे छठे-छठे दिनका क्षणवार समझे। जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये।

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये॥ १७३-१७४॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं॥ १७५-१७६॥

**(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा—)** रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं। विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं। धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं। मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं। मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं। ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये)॥ १७७-१७८ $\frac{१}{२}$॥

**(कर्णवेध-मुहूर्त—)** चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध हितकर होता है।

**(हाथी और घोड़े सम्बन्धी कार्य—)** अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये॥ १७९-१८१॥

**(अन्य पशुकृत्य—)** चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है। परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओंका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये॥ १८२॥

**(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—)** मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है। सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल)-में रहते हैं। इनमें प्रथम बार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है। उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं। इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है। उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है। तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमें हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है। उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं॥ १८३—१८५॥

**(बीज-वपन—)** मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है। इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमें रहते हैं। इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है। उससे आगेके तीन नक्षत्र गलेमें रहते हैं, उनमें बीज-वपनसे जलकी अल्पता होती है। उससे आगेके बारह नक्षत्र उदरमें रहते हैं, उनमें बीज बोनेसे धान्यकी वृद्धि होती है। उससे आगेके चार नक्षत्र लाङ्गलमें

रहते हैं, इनमें निस्तण्डुलत्व होता है (अर्थात् धानमें दाने नहीं लगते, केवल भूसीमात्र रह जाती है)। उससे आगेके पाँच नक्षत्र नाभिमें रहते हैं, इनमें प्रथम बीज-वपनसे अग्निभय प्राप्त होता है। इस चक्रका विचार बीज-वपनमें अवश्य करना चाहिये ॥ १८६—१८८ ॥

**( रोगविमुक्तका स्नान— )** स्थिरसंज्ञक, पुनर्वसु, आश्लेषा, रेवती, मघा और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें तथा सोम और शुक्रके दिन रोगमुक्त पुरुषको पहले-पहल स्नान नहीं करना चाहिये ॥ १८९ ॥

**( नृत्यारम्भ— )** उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती—इन नक्षत्रोंमें नृत्यारम्भ (नाट्य-विद्याका प्रारम्भ) उत्तम कहा गया है ॥ १९० ॥

रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वार्धयोगी, आर्द्रासे बारह नक्षत्र मध्ययोगी और धनिष्ठासे नौ नक्षत्र परार्धयोगी हैं। इनमेंसे पूर्वयोगीमें यदि वर और कन्या—दोनोंके नक्षत्र पड़ते हों तो स्त्रीका स्वामीमें अधिक प्रेम होता है। मध्ययोगीमें हों तो दोनोंमें परस्पर समान प्रेम होता है और परार्धयोगीमें दोनोंके नक्षत्र हों तो स्त्रीमें पतिका अधिक प्रेम होता है ॥ १९१ $\frac{१}{२}$ ॥

**( बृहत्, सम और अधम नक्षत्र— )** शतभिषा, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, भरणी और ज्येष्ठा—ये छः नक्षत्र जघन्य (अधम) कहे गये हैं। ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और विशाखा—ये नक्षत्र बृहत् (श्रेष्ठ) कहलाते हैं तथा अन्य नक्षत्र समसंज्ञक हैं। इनका विंशोपक मान क्रमशः ३०, ९० और ६० घड़ी कहा गया है[1] ॥१९२-१९३॥ यदि द्वितीया तिथिको बृहत्संज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो अन्नका भाव सस्ता होता है। समसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रदर्शन हो तो अन्नादिके भावमें समता होती है और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो उस महीनेमें अन्नका भाव महँगा हो जाता है ॥ १९३ $\frac{१}{२}$ ॥

**( यात्रा करनेवालेको जय तथा पराजय देनेवाले नक्षत्र— )** अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मूल, चित्रा, श्रवण, तीनों उत्तरा, पूर्वाफाल्गुनी, मघा, विशाखा, धनिष्ठा[2]—इतने नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। रोहिणी, ज्येष्ठा[3], पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्व भाद्रपद, भरणी और आश्लेषा—ये नक्षत्र अकुलसंज्ञक हैं। शेष नक्षत्र कुलाकुलसंज्ञक हैं। इनमें कुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें विजयकी इच्छासे यात्रा करनेवाले राजाकी पराजय होती है। अकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वह निश्चय ही शत्रुपर विजय प्राप्त करता है और कुलाकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें युद्धार्थ यात्रा करनेपर शत्रुओंके साथ सन्धि होती है। अथवा यदि युद्ध हुआ तो भी दोनोंमें समानता सिद्ध होती है (किसी एक पक्षकी हार या जीत नहीं होती) ॥ १९४-१९७ $\frac{१}{२}$ ॥

**( त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग— )** रवि, शनि या मङ्गलवारमें भद्रा, (२, ७, १२) तिथि तथा विषम चरणवाले नक्षत्र (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) हों तो (इन तीनोंके संयोगसे) 'त्रिपुष्कर' नामक योग होता है। तथा उन्हीं रवि, शनि और मङ्गलवार एवं भद्रा तिथियोंमें दो चरणवाले नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) हों तो 'द्विपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्करयोग त्रिगुणित (तीन गुने) और

१. वास्तवमें किसी भी नक्षत्रका ५६ घटीसे कम और ६६ घटीसे अधिक काल-मान नहीं होता। यहाँ जो 'बृहत्' संज्ञक नक्षत्रोंका ९० घटी (४५ मुहूर्त), समसंज्ञक नक्षत्रोंका ६० घटी (३० मुहूर्त) और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रोंका ३० घटी (१५ मुहूर्त) समय बताया गया है, वह क्रमशः सस्ती, समता और महँगीका सूचक है।

२-३. अन्य संहितामें धनिष्ठा नक्षत्र अकुलगणमें, ज्येष्ठा कुलगणमें और मूल कुलाकुलगणमें लिया गया है।

द्विपुष्करयोग द्विगुणित (दुगुने) लाभ और हानिको देनेवाले हैं। अतः इनमें किसी वस्तुकी हानि हो तो उस दोषकी शान्तिके लिये तीन गोदान या तीन गौओंका मूल्य तथा द्विपुष्कर दोषकी शान्तिके लिये दो गोदान या दो गौओंका मूल्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इससे उक्त (तिथि, वार और) नक्षत्र-सम्बन्धी दोषका निवारण हो जाता है॥ १९८-१९$\frac{१}{२}$॥

**( पुष्य नक्षत्रकी प्रशंसा- )** पापग्रहसे विद्ध या युक्त होनेपर भी पुष्य नक्षत्र बलवान् होता है और विवाह छोड़कर वह सब शुभ कर्मोंमें अभीष्ट फल देनेवाला है॥ २०$\frac{१}{२}$॥

**( नक्षत्रोंमें योग-ताराओंकी संख्या— )** अश्विनी आदि (अभिजित्‌सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंमें क्रमशः ३, ३, ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ और ३२ योगताराएँ होती हैं। अपने-अपने आकाशीय विभागमें जो अनेक ताराओंका पुञ्ज होता है, उसमें जो अत्यन्त उद्दीप्त (चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं॥ २०१—२०३॥

**( नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति— )** जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्यसे पीपल, आश्लेषासे नागकेसर, मघासे बरगद, पूर्वाफाल्गुनीसे पलाश, उत्तराफाल्गुनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कत (जिसकी लकड़ीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्टिवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वाषाढ़से वञ्जुल (अशोक), उत्तराषाढ़से कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठासे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं॥ २०४—२१०॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्र-सम्बन्धी वृक्षका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये॥ २११$\frac{१}{२}$॥

**( योगोंके स्वामी— )** यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं॥ २१२$\frac{१}{२}$॥

**( निन्द्य योग— )** वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्ध और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याघात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घड़ी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

**( खार्जूरचक्र— )** इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल)-में क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक)-के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके ऊपर तेरह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह 'खार्जूरचक्र' कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल'

दोष कहलाता है, जो शुभकार्यमें त्याज्य है, परंतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजित्‌में हो तो वेध-दोष नहीं होता है॥ २१३—२१७ $\frac{१}{२}$ ॥

**( प्रत्येक योगमें अन्तर्भोग— )** १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं॥ २१८ $\frac{१}{२}$ ॥

**( करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग— )** इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता, क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामें वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है॥ २१९—२२० $\frac{१}{२}$ ॥

**( विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल— )** विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमें चार, कटिमें छः और पुच्छमें तीन घड़ियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमें उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमें पतन तथा पुच्छकी घड़ीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद॥ २२१—२२३॥

**( मुहूर्त-कथन— )** दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमें शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमें क्षण-नक्षत्रका विचार करें[१]॥ २२४—२२६ $\frac{१}{२}$ ॥

**( वारोंमें निन्द्य मुहूर्त— )** रविवारको अर्यमा, सोमवारको ब्राह्म तथा राक्षस, मङ्गलवारको पितर और अग्नि, बुधवारको अभिजित्, गुरुवारको राक्षस और जल, शुक्रवारको ब्राह्म और पितर तथा शनिवारको शिव और सर्प मुहूर्त निन्द्य माने गये हैं; इसलिये इन्हें शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये॥ २२७-२२८॥

**( मुहूर्तका विशेष प्रयोजन— )** जिस-जिस नक्षत्रमें यात्रा आदि जो-जो कर्म शुभ या अशुभ कहे गये हैं; वे कार्य उस-उस नक्षत्रके स्वामीके मुहूर्तमें भी शुभ या अशुभ होते हैं। ऐसा समझकर उस मुहूर्तमें सदा वैसे कार्य करने या त्याग देने चाहिये॥ २२९॥

**( भूकम्पादि संज्ञाओंसे युक्त नक्षत्र— )** सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे सातवें नक्षत्रकी भूकम्प, पाँचवेंकी विद्युत्, आठवेंकी शूल, दसवेंकी अशनि, अठारहवेंकी केतु, पंद्रहवेंकी दण्ड, उन्नीसवेंकी उल्का, चौदहवेंकी निर्घातपात, इक्कीसवेंकी मोह, बाईसवेंकी निर्घात, तेईसवेंकी कम्प, चौबीसवेंकी कुलिश तथा पचीसवेंकी परिवेष संज्ञा समझनी चाहिये; इन संज्ञाओंसे युक्त चन्द्र-नक्षत्रोंमें शुभ कर्म नहीं करने चाहिये॥ २३०—२३२ $\frac{१}{२}$ ॥

सूर्यके नक्षत्रसे आश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा,

---

१. उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घड़ीका है तो १६ घड़ीके बाद १८ घड़ीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी)-को क्षण-नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त 'ब्राह्म' या 'रौहिण' कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

रेवती तथा श्रवणतकको जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे चन्द्र-नक्षत्रतककी संख्या हो तो उसपर दुष्टयोगका सम्पात अर्थात् रुद्रके प्रचण्ड अस्त्रका प्रहार होता है। अतः उसका नाम 'चण्डीशचण्डायुध' योग है। उसमें शुभ कर्म नहीं करना चाहिये॥ २३३-२३४ $\frac{1}{2}$॥

**( क्रकचयोग— )** प्रतिपदादि तिथिकी तथा रवि आदि वारकी संख्या मिलानेसे यदि १३ हो तो वह क्रकचयोग होता है जो शुभ कार्यमें अत्यन्त निन्दित माना गया है॥ २३५ - ॥

**( संवर्तयोग— )** रविवारको सप्तमी और बुधवारको प्रतिपदा हो तो 'संवर्तयोग' जानना चाहिये। यह शुभ कार्यको नष्ट करनेवाला है॥ २३६ $\frac{1}{2}$॥

( आनन्दादि योग— ) १ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सुधाकर (सौम्य), ६ ध्वाङ्क्ष, ७ केतु, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ अन्तक (गद), २४ कुञ्जर (मातङ्ग), २५ राक्षस, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ वर्धमान—ये क्रमशः पठित २८ योग अपने-अपने नामके समान ही फल देनेवाले कहे गये हैं।

**( इन योगोंको जाननेकी रीति— )** रविवारको अश्विनी नक्षत्रसे, सोमवारको मृगशिरासे, मङ्गलवारको आश्लेषासे, बुधवारको हस्तसे, गुरुवारको अनुराधासे, शुक्रवारको उत्तराषाढ़से और शनिवारको शतभिषासे आरम्भ करके उस दिनके नक्षत्रतक गणना करनेपर जो संख्या हो, उसी संख्यावाला योग उस दिन होगा[1] ॥ २३७—२४१ ॥

**( सिद्धियोग— )** रविवारको हस्त, सोमवारको मृगशिरा, मङ्गलवारको अश्विनी, बुधवारको अनुराधा, बृहस्पतिवारको पुष्य, शुक्रवारको रेवती और शनिवारको रोहिणी हो तो सिद्धियोग होता है॥ २४२ $\frac{1}{2}$॥

रवि और मङ्गलवारको नन्दा (१। ६। ११), शुक्र और सोमवारको भद्रा (२। ७। १२), बुधवारको जया (३। ८। १३), गुरुवारको रिक्ता (४। ९। १४) और शनिवारको पूर्णा (५। १०। १५) हो तो मृत्युयोग[2] होता है। अतः इसमें शुभ कर्म न करे॥ २४३ $\frac{1}{2}$॥

**( सिद्धयोग— )** शुक्रवारको नन्दा, बुधवारको भद्रा, मङ्गलवारको जया, शनिवारको रिक्ता और गुरुवारको पूर्णा तिथि हो तो 'सिद्धयोग' कहा गया है॥ २४४ $\frac{1}{2}$॥

**( दग्धयोग— )** सोमवारको एकादशी, गुरुवारको षष्ठी, बुधवारको तृतीया, शुक्रवारको अष्टमी, शनिवारको नवमी तथा मङ्गलवारको पञ्चमी तिथि हो तो 'दग्धयोग' कहा गया है॥ २४५-२४६॥

**( ग्रहोंके जन्मनक्षत्र— )** रविवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मङ्गलवारको उत्तराषाढ़, बुधवारको धनिष्ठा, गुरुवारको उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवारको ज्येष्ठा और शनिवारको रेवती—ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके जन्मनक्षत्र होनेके कारण शुभ कार्यके विनाशक होते हैं॥ २४७ $\frac{1}{2}$॥

यदि रवि आदि वारोंमें विशाखा आदि चार-चार नक्षत्र हों अर्थात् रविवारको विशाखासे, सोमको पूर्वाषाढ़से, मङ्गलको धनिष्ठसे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यसे और शनिको उत्तरा फाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं॥ २४८ $\frac{1}{2}$॥

---

१. संक्षिप्त उदाहरण—जैसे रविवारको अश्विनी हो तो आनन्द, भरणी हो तो कालदण्ड इत्यादि। सोमवारको मृगशिरा हो तो आनन्द, आर्द्रा हो तो कालदण्ड। ऐसे ही मङ्गलादि वारोंमें कथित आश्लेषादिसे गिनकर योगोंका निश्चय करना चाहिये।

२. अन्य संहिताओंमें इसका नाम मृत्युयोग आया है, इसलिये वैसा लिखा गया है। मूलमें कोई संज्ञा न देकर इन्हें अशुभ बताया है और इनमें शुभ कर्मको त्याज्य कहा है।

(परिहार—) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणोंके देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद हैं॥ २४९ १/२ ॥

(सूर्यसंक्रान्तिकथन—) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारों वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं। यदि सूर्यकी संक्रान्ति पूर्वाह्णमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है। मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्णमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदय-समयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आश्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) को हानि पहुँचाती है॥ २५०-२५३ १/२ ॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है। रात्रिमें मेष-संक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है॥ २५४ १/२ ॥

(करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—) बव आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बव आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं॥ २५५—२५७ १/२ ॥

(सूर्यकी स्थिति—) बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन कारणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षाके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका अनिष्ट होता है॥ २५८—२६० १/२ ॥

**नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ**—रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोंको क्रमशः अन्ध, मन्दनेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे[1]।

---

१. नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अन्धाक्ष | रोहिणी | पुष्य | उत्तरा फाल्गुनी | विशाखा | पूर्वाषाढ़ | धनिष्ठा | रेवती |
| मन्दाक्ष | मृगशिरा | आश्लेषा | हस्त | अनुराधा | उत्तराषाढ़ | शतभिषा | अश्विनी |
| मध्याक्ष | आर्द्रा | मघा | चित्रा | ज्येष्ठा | अभिजित् | पूर्व भाद्रपद | भरणी |
| सुलोचन | पुनर्वसु | पूर्वा फाल्गुनी | स्वाती | मूल | श्रवण | उत्तर भाद्रपद | कृत्तिका |

( संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा— ) स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ)-में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु और मीन)-में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है॥ २६१—२६३ $\frac{1}{2}$॥

( पुण्यकाल— ) याम्यायन और स्थिर राशियोंकी (विष्णुपद) संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालसे पूर्व १६ घड़ी, द्विस्वभाव राशियोंकी षडशीतिमुखा और सौम्यायन-संक्रान्तिमें संक्रान्तिकालके पश्चात् १६ घड़ी तथा विषुवत् (मेष, तुला) संक्रान्तिमें मध्य (संक्रान्ति-कालसे ८ पूर्व और ८ पश्चात्)-की १६ घड़ीका समय पुण्यदायक होता है॥ २६४॥

सूर्योदयसे पूर्वकी तीन घड़ी प्रातः-संध्या तथा सूर्यास्तके बादकी तीन घड़ी सायं-संध्या कहलाती है। यदि सायं-सध्यामें याम्यायन या सौम्यायन कोई संक्रान्ति हो तो पूर्व दिनमें और प्रातः-संध्यामें संक्रान्ति हो तो पर दिनमें सूर्योदयके बाद पुण्यकाल होता है॥ २६५॥

जब सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उस समय प्रत्येक मनुष्यके लिये जैसा शुभ या अशुभ चन्द्रमा होता है, उसीके अनुसार इस महीनेमें मनुष्योंको चन्द्रमाका शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है॥ २६६॥ किसी संक्रान्तिके बाद सूर्य जितने अंश भोगकर उस संक्रान्तिके आगे अयनसंक्रान्ति करे, उतने समयतक संक्रान्ति या ग्रहणका जो नक्षत्र हो, वह तथा उसके आगे-पीछेवाले दोनों नक्षत्र उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें अशुभ होते हैं। संक्रान्ति या ग्रहणजनित अनिष्ट फलों (दोषों)-की शान्तिके लिये तिलोंकी ढेरीपर तीन त्रिशूलवाला त्रिकोण-चक्र लिखे और उसपर यथाशक्ति सुवर्ण रखकर ब्राह्मणोंको दान दे॥ २६७—२६९॥

( ग्रह-गोचर— ) ताराके बलसे चन्द्रमा बली होता है और चन्द्रमाके बली होनेपर सूर्य बली हो जाता है तथा संक्रमणकारी सूर्यके बली होनेसे अन्य सब ग्रह भी बली समझे जाते हैं[1]॥ २७०॥

मुनीश्वर! अपनी जन्मराशियोंसे ३, ११, १०, ६ स्थानमें सूर्य शुभ होता है; परंतु यदि क्रमशः जन्मराशिसे ही ९, ५, ४ तथा १२ वें स्थानमें स्थित शनिके अतिरिक्त अन्य ग्रहोंसे वह विद्ध न हो तभी शुभ होता है[2]। इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मराशिसे ७, ६, ११, १, १० तथा ३ में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः २, १२, ८, ५, ४ और ९ वेंमें स्थित बुधसे भिन्न ग्रहोंसे विद्ध न हों। मङ्गल जन्मराशिसे ३, ११, ६ में शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५ तथा ९ वें स्थानमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों। शनि भी अपनी जन्मराशिसे इन्हीं ३, ११, ६ स्थानोंमें शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५, ९ स्थानोंमें स्थित सूर्यके सिवा अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हों। बुध अपनी जन्मराशिसे २, ४, ६, ८, १० और ११ स्थानोंमें शुभ हों; यदि क्रमशः ५, ३, ९, १, ८ और १२ स्थानोंमें स्थित चन्द्रमाके सिवा

१. भाव यह है कि तारा और ग्रहके बलको देखकर किसी कार्यको आरम्भ करनेका आदेश है। यदि अपनी तारा बलवती हो तो निर्बल चन्द्रमा भी बली माना जाता है तथा रविशुद्धि-विचारसे यदि अपने चन्द्रमा बली हों तो निर्बल सूर्य भी बली हो जाते हैं एवं सूर्यके बली होनेपर अन्य ग्रह अनिष्ट भी हो तो इष्टसाधक हो जाते हैं। इसलिये इन्हीं तीनों (तारा, चन्द्रमा तथा रवि) के बल देखे जाते हैं।

२. सब ग्रहोंके जितने शुभ स्थान कहे गये हैं, क्रमशः उतने ही उनके वेध-स्थान भी कहे गये हैं। जैसे सूर्य तीसरेमें शुभ होता है; किंतु यदि नवेंमें कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाता है; इसी प्रकार अन्य शुभ-स्थान और वेध-स्थान समझने चाहिये।

अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। मुनीश्वर! गुरु जन्मराशिसे २, ११, ९, ५ और ७ इन स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः १२, ८, १०, ४ और ३ स्थानोंमें स्थित अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। इसी प्रकार शुक्र भी जन्मराशिसे १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२ तथा ११ स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों[१] ॥ २७१—२७६ ॥

जो ग्रह गोचरमें वेधयुक्त हो जाता है, वह शुभ या अशुभ फलको नहीं देता; इसलिये वेधका विचार करके ही शुभ या अशुभ फल समझना चाहिये ॥ २७७ ॥ वामवेध होने (वेध-स्थानमें ग्रह और शुभ स्थानमें अन्य ग्रहके होने)-से दुष्ट (अशुभ) ग्रह भी शुभकारक हो जाता है। यदि दुष्ट ग्रह भी शुभग्रहसे दृष्ट हो तो शुभकारक हो जाता है तथा शुभप्रद ग्रह भी पापग्रहसे दृष्ट हो तो अनिष्ट फल देता है। शुभ और पाप दोनों ग्रह यदि अपने शत्रुसे देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमें हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ २७८—२८०$\frac{१}{२}$ ॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूँगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिये ॥ २८१-२८२ ॥

**( चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता— )** शुक्लपक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते हैं, उसके लिये शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्णपक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमें २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो ॥ २८३-२८४ ॥

**( तारा-विचार— )** अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती हैं। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९ से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती हैं। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्णपक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बलवान् होता है ॥ २८५—२८७ ॥

**( चन्द्रमाकी अवस्था— )** प्रत्येक राशिमें चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

---

१. भाव यह है कि ऊपर जो ग्रहोंके शुभ और वेध-स्थान कहे गये हैं, उनमें मनुष्योंको अपनी-अपनी जन्मराशिसे शुभ स्थानोंमें ग्रहोंके जानेसे शुभ फल और वेध-स्थानमें जानेसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं। विशेषता यह है कि शुभ स्थानमें जानेपर भी यदि उन ग्रहोंके वेध-स्थानोंमें कोई अन्य ग्रह हो तो वे शुभ नहीं होते हैं, तथा शुभ और वेध-स्थानोंसे भिन्न स्थानमें रहनेपर ग्रह मध्यम फल देनेवाले होते हैं। इसी बातको संक्षेपमें आगे कहते हैं।

(**अवस्थाका ज्ञान—**) अभीष्ट दिनमें गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमें पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोंमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुप्ति, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती हैं[१]। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती हैं॥ २८८-२८९॥

(**मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य—**) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं॥ २९०॥ वृष लग्नमें विवाह मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं॥ २९१॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध संश्रव (कीर्ति साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये॥ २९२॥ कर्क लग्नमें वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये॥ २९३॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं॥ २९४॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये॥ २९५॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते हैं॥ २९६॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर कर्मोंका आरम्भ करना चाहिये॥ २९७॥ धनु लग्नमें उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्वकृत्य, गजकृत्य, शिल्पकला तथा चर, स्थिर और मिश्रित कार्योंको करना चाहिये॥ २९८॥ मकर लग्नमें धनुष बनाना, उसमें प्रत्यञ्चा बाँधना, बाण छोड़ना, अस्त्र बनाना और चलाना, कृषि, गोपालन, अश्वकृत्य, गजकृत्य तथा पशुओंका क्रय-विक्रय और दास आदिकी नियुक्ति—ये सब कार्य करने चाहिये॥ २९९॥ कुम्भ लग्नमें कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्पकर्म, कला आदि, जलपात्र (कलश आदि) तथा अस्त्र-शस्त्रका निर्माण आदि कार्य करना चाहिये॥ ३००॥ मीन लग्नमें उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशयकी प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, भूषण, जलपात्रनिर्माण तथा अश्वसम्बन्धी कृत्य शुभ होते हैं॥ ३०१॥

इस प्रकार मेषादि लग्नोंके शुद्ध (शुभ स्वामीसे युक्त या दृष्ट) रहनेसे शुभ कार्य सिद्ध होते हैं। पापग्रहसे युक्त या दृष्ट लग्न हो तो उसमें केवल क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं, शुभ कर्म नहीं॥ ३०२॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला और

---

१. जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

धनु—ये शुभग्रहकी राशि होनेके कारण शुभ हैं तथा अन्य (मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—ये) पापराशियाँ हैं॥ ३०३॥ लग्नपर जैसे (शुभ या अशुभ) ग्रहोंका योग या दृष्टि हो उसके अनुसार ही लग्न अपना फल देता है। यदि लग्नमें ग्रहके योग या दृष्टिका अभाव हो तो लग्न अपने स्वभावके अनुकूल फल देता है॥ ३०४॥ किसी लग्नके आरम्भमें कार्यका आरम्भ होनेपर उसका पूर्ण फल मिलता है। लग्नके मध्यमें मध्यम और अन्तमें अल्प फल प्राप्त होता है। यह बात सब लग्नोंमें समझनी चाहिये॥ ३०५॥ कार्यकर्ताके लिये सर्वत्र पहले लग्नबल, उसके बाद चन्द्रबल देखना चाहिये। चन्द्रमा यदि बली हो और सप्तम भावमें स्थित हो तो सब ग्रह बलवान् समझे जाते हैं॥ ३०६॥ चन्द्रमाका बल आधार और अन्य ग्रहोंके बल आधेय हैं। आधारके बलपर ही आधेय स्थिर रहता है॥ ३०७॥ यदि चन्द्रमा शुभदायक हो तो सब ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। यदि चन्द्रमा अशुभ हो तो अन्य सब ग्रह भी अशुभ फल देनेवाले हो जाते हैं। लेकिन धन-स्थानके स्वामीको छोड़कर ही यह नियम लागू होता है; क्योंकि यदि धनेश शुभ हो तो वह चन्द्रमाके अशुभ होनेपर भी अपने शुभ फलको ही देता है॥ ३०८॥

लग्नके जितने अंश उदित हो गये (क्षितिजसे ऊपर आ गये) हों, उनमें जो ग्रह हो वह लग्नके फलको देता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि लग्नके जितने भावांश हों, उनके भीतर रहनेवाला ग्रह लग्नभावका फल देता है तथा उससे आगे-पीछे हो तो लग्नराशिमें रहता हुआ भी आगे-पीछेके भावका फल देता है। लग्नके कथित अंशसे जो ग्रह आगे बढ़ जाता है, वह द्वितीय भावका फल देता है। इस प्रकार सब भावोंमें ग्रहोंकी स्थिति और फलकी कल्पना करनी चाहिये। सब गुणोंसे युक्त लग्न तो थोड़े दिनोंमें नहीं मिल सकता; अतः स्वल्प दोष और अधिक गुणोंसे युक्त लग्नको ही सब कार्योंमें सर्वदा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि अधिक दोषोंसे युक्त कालको ब्रह्माजी भी शुद्ध नहीं कर सकते; इसलिये थोड़े दोषसे युक्त होनेपर भी अधिक गुणवाला लग्न-काल हितकर होता है॥ ३०९—३११ $\frac{१}{२}$ ॥

**( स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन— )** अमावास्या, रिक्ता (४, ९, १४), ८, ६, १२ और प्रतिपदा—इन तिथियोंमें परिघ योगके पूर्वार्धमें, व्यतीपात और वैधृतिमें, संध्याके समय, सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें तथा विष्टि (भद्रा)-में स्त्रीका प्रथम मासिकधर्म अशुभ होता है। रवि आदि वारोंमें प्रथम रजोदर्शन हो तो वह स्त्री क्रमशः रोगयुक्ता, पतिकी प्रिया, दुःखयुक्ता, पुत्रवती, भोगवती, पतिव्रता एवं क्लेशयुक्त होती है॥ ३१२—३१४॥ भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद—ये नक्षत्र तथा चैत्र, कार्तिक, आषाढ़ और पौष—ये मास प्रथम मासिकधर्ममें अनिष्टकारक कहे गये हैं। भद्रा, सूर्यकी संक्रान्ति, निद्रा-अवस्था—रात्रिकाल, सूर्यग्रहण तथा चन्द्र-ग्रहण—ये सब प्रथम मासिकधर्ममें शुभ नहीं हैं। अशुभ योग, निन्द्य नक्षत्र तथा निन्दित दिनमें प्रथम मासिकधर्म हो तो वह स्त्री कुलटा स्वभाववाली होती है॥ ३१५-३१६॥ इसलिये इन सब दोषोंकी शान्तिके लिये विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह तिल, घृत और दूर्वासे गायत्री-मन्त्रद्वारा १०८ बार आहुति करे तथा सुवर्णदान, गोदान एवं तिलदान करे॥ ३१७॥

**( गर्भाधान-संस्कार— )** मासिकधर्मके आरम्भसे चार रात्रियाँ गर्भाधानमें त्याज्य हैं। सम रात्रियोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषम नवमांशमें हो, लग्नपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल तथा बृहस्पति)-की

दृष्टि हो तो पुत्रार्थी पुरुष सम (२, ४, ६, ८, १०, १२) तिथियोंमें, रेवती, मूल, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें उपवीती और अनग्र (सवस्त्र) होकर स्त्रीका सङ्ग करे॥ ३१८-३१९ ॥

**( पुंसवन और सीमन्तोन्नयन— )** प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९, १० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये॥ ३२०—३२४ ॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है॥ ३२५ ॥

**( जातकर्म और नामकर्म— )** जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके वार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र)-में पिता और बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्न और शुभ नवांशमें, लग्नसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये॥ ३२६—३२९ $\frac{१}{२}$ ॥

**( अन्न-प्राशन— )** बालकोंका जन्मसे ६वें या ८ वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्नसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्नमें, लग्नपर शुभग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्नसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्न-समयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है॥ ३३०—३३४ ॥

**( चूडाकरण— )** बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके

पट्टबन्धन, बालकोंके चूडाकरण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्मराशि या जन्मलग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्नसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है॥ ३३५—३३९ $\frac{1}{2}$ ॥

(**सामान्य क्षौर-कर्म—**) तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो, उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर करानेके बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५ वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण)-में क्षौर कराना शुभ होता है॥ ३४०-३४१ $\frac{1}{2}$ ॥

(**क्षौरकर्ममें विशेष—**) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके अवसरपर निषिद्ध नक्षत्र, वार एवं तिथि आदिमें भी क्षौर कराना शुभप्रद कहा गया है। समस्त मङ्गल कार्योंमें, मङ्गलार्थ इष्ट देवताके समीप क्षुरोंको अर्पण करना चाहिये[1] ॥ ३४२-३४३ ॥

(**उपनयन—**) जिस दिन उपनयनका मुहूर्त स्थिर हो, उससे पूर्व ९ वें, ७ वें, ५ वें या तीसरे दिन उपनयनके लिये विहित नक्षत्र (या उस नक्षत्रके मुहूर्त)-में शुभ वार और शुभ लग्नमें अपने घरोंको चँदोवा, पताका और तोरण आदिसे अच्छी तरह अलंकृत करके, ब्राह्मणोंद्वारा आशीर्वचन, पुण्याहवाचन आदि पुण्य कार्य कराकर, सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ, माङ्गलिक बाजा बजवाते और मङ्गलगान करते-कराते हुए घरसे पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)-में जाकर पवित्र स्थानसे चिकनी मिट्टी खोदकर ले ले और पुनः उसी प्रकार गीत-वाद्यके साथ घर लौट आवे। वहाँ मिट्टी या बाँसके बर्तनमें उस मिट्टीको रखकर उसमें अनेक वस्तुओंसे युक्त और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित पवित्र जल डाले। (इसी प्रकार और भी अपने कुलके अनुरूप आचारका पालन करे) ॥ ३४४—३४७ ॥ गर्भाधान अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण-बालकोंका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय बालकोंका और बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकोंका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होना चाहिये॥ ३४८ ॥ जन्मसे पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करनेपर बालक वेद-शास्त्र-विशारद तथा श्रीसम्पन्न होता है। इसलिये उसमें ब्राह्मण-बालकका उपनयन-संस्कार करना चाहिये॥ ३४९ ॥ शुक्र और बृहस्पति निर्बल हों तब भी वे बालकके लिये शुभदायक होते हैं। अतः शास्त्रोक्त वर्षमें उपनयनसंस्कार अवश्य करना चाहिये। शास्त्रने जिस वर्षमें उपनयनकी आज्ञा नहीं दी है, उसमें वह संस्कार नहीं करना चाहिये॥ ३५० ॥ गुरु, शुक्र तथा अपने वेदकी शाखाके स्वामी—ये दृश्य हों—अस्त न हुए हों तो उत्तरायणमें उपनयनसंस्कार करना उचित है। बृहस्पति, शुक्र, मङ्गल और बुध—ये क्रमशः ऋक्, यजुः, साम

१. चूडाकरण या उपनयनमें क्षुरसे ही कार्य होता है, इसलिये उसके रक्षार्थ लोग अपने-अपने कुलदेवताके पास क्षुरको समर्पण करते हैं।

और अथर्ववेदके अधिपति हैं ॥ ३५१ ॥ शरद्, ग्रीष्म और वसन्त—ये व्युत्क्रमसे द्विजातियोंके उपनयनका मुख्य काल हैं अर्थात् शरद् ऋतु वैश्योंके, ग्रीष्म क्षत्रियोंके और वसन्त ब्राह्मणोंके उपनयनका मुख्य काल है। माघ आदि पाँच महीनोंमें उन सबके लिये उपनयनका साधारण काल है ॥ ३५२ ॥ माघ मासमें जिसका उपनयन हो वह अपने कुलोचित आचार तथा धर्मका ज्ञाता होता है। फाल्गुनमें यज्ञोपवीत धारण करनेवाला पुरुष विधिज्ञ तथा धनवान् होता है। चैत्रमें उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी वेद-वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् होता है ॥ ३५३ ॥ वैशाख मासमें जिसका उपनयन हो, वह धनवान तथा वेद, शास्त्र एवं विविध विद्याओंमें निपुण होता है और ज्येष्ठमें यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ और बलवान् होता है ॥ ३५४ ॥

शुक्लपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, दशमी और सप्तमी तिथियाँ यज्ञोपवीतसंस्कारके लिये ग्राह्य हैं। एकादशी, षष्ठी और द्वादशी—ये तिथियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। शेष तिथियोंको मध्यम माना गया है। कृष्णपक्षमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ग्राह्य हैं। अन्य तिथियाँ अत्यन्त निन्दित हैं॥ ३५५-३५६ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी—ये नक्षत्र उपनयन-संस्कारके लिये उत्तम हैं ॥ ३५७ ॥ जन्मनक्षत्रसे दसवाँ 'कर्म' संज्ञक है, सोलहवाँ 'संघात' नक्षत्र है, अठारहवाँ 'समुदय' नक्षत्र है, तेईसवाँ 'विनाश' कारक है और पचीसवाँ 'मानस' है। इनमें शुभ कर्म नहीं आरम्भ करने चाहिये। गुरु, बुध और शुक्र—इन तीनोंके वार उपनयनमें प्रशस्त हैं। सोमवार और रविवार ये मध्यम माने गये हैं। शेष दो वार मङ्गल और शनैश्चर निन्दित हैं। दिनके तीन भाग करके उसके आदि भागमें देव-सम्बन्धी कर्म (यज्ञ-पूजनादि) करने चाहिये ॥ ३५८—३६० ॥ द्वितीय भागमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करनेका विधान है और तृतीय भागमें पैतृक कर्म (श्राद्ध-तर्पणादि)-का अनुष्ठान करना चाहिये। गुरु, शुक्र और अपनी वैदिक शाखाके अधिपति अपनी नीच राशिमें या उसके किसी अंशमें हों अथवा अपने शत्रुकी राशिमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज कला और शीलसे रहित होता है। इसी प्रकार अपनी शाखाके अधिपति, गुरु एवं शुक्र यदि अपने अधिशत्रु-गृहमें या उसके किसी अंशमें स्थित हों तो ब्रह्मचर्यव्रत (यज्ञोपवीत) ग्रहण करनेवाला द्विज महापातकी होता है। गुरु, शुक्र एवं अपनी शाखाके अधिपति ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या उसके किसी अंशमें हों, अपनी राशि या उसके किसी अंशमें हों अथवा केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९)-में स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है ॥ ३६१—३६४ ॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है ॥ ३६५ ॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है ॥ ३६६ ॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्न हो—ये तीन बातें उपनयन-संस्कारमें दुर्लभ हैं ॥ ३६७ ॥ उसके चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें

अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुःखी रहता है॥ ३६८॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमें विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है॥ ३६९॥ शुभ लग्न हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्नस्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं॥ ३७०—३७२॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत)-में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है॥ ३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होनेपर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है॥ ३७४॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है॥ ३७५॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्नमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है॥ ३७६॥ यदि सूर्य केन्द्रस्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकोंके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्न उपनयनमें शुभदायक होता है॥ ३७७॥ वसन्त ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये॥ ३७८॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं॥ ३७९॥

(**क्षुरिका-बन्धनकर्म—**) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिका-बन्धन कर्मका वर्णन करूँगा, जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जबकि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें न होकर लग्नमें स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये॥ ३८०—३८३॥ पहले देवताओंके समीप क्षुरिका (कटार)-की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्नमें अपनी कटिमें बाँधे॥ ३८४॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है॥ ३८५॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका

नाश होता है। खड्ग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने॥ ३८६-३८७॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं॥ ३८८॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति॥ ३८९॥

छुरी या तलवारमें यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग[1]में नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आयके मध्यभागमें तथा कुक्कुर और काक-आयके अन्तिम भागमें एवं धूम्र और गर्दभ आयके अन्तिम भागमें नष्ट हो जाय तो शुभ नहीं होता है। (अतः ऐसी छुरी या तलवारका परित्याग कर देना चाहिये; यह बात अर्थतः सिद्ध होती है)॥ ३९०$\frac{1}{2}$॥

(**समावर्तन—**) उत्तरायणमें जब गुरु और शुक्र दोनों उदित हों, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी—ये नक्षत्र हों तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारमेंसे कोई वार हो तो इन्हीं रवि आदि पाँच ग्रहोंकी राशि, लग्न और नवमांशमें, प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावास्या, तथा सप्तमीसे तीन तिथि—इन सब तिथियोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके घरको लौटनेवाले जितेन्द्रिय द्विजकुमारका समावर्तन-संस्कार (मुण्डन-हवन आदि) करना चाहिये॥ ३९१—३९३$\frac{1}{2}$॥

(**विवाहकथन—**) विप्रवर! सब आश्रमोंमें यह गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। उसमें भी जब सुशीला धर्मपत्नी प्राप्त हो तभी सुख होता है। स्त्रीको सुशीलताकी प्राप्ति तभी होती है, जब विवाहकालिक लग्न शुभ हो। इसलिये मैं साक्षात् ब्रह्माजीद्वारा कथित लग्न-शुद्धिको विचार करके कहता हूँ॥ ३९४-३९५$\frac{1}{2}$॥

प्रथमतः कन्यादान करनेवालोंको चाहिये कि वे किसी शुभ दिनको अपनी अञ्जलिमें पान, फूल, फल और द्रव्य आदि लेकर ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञाता समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, प्रसन्नचित्त तथा सुखपूर्वक बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मणके समीप जाय और उन्हें देवताके समान मानकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपनी कन्याके विवाह-लग्नके विषयमें पूछे॥ ३९६-३९७॥

(ज्यौतिषीको चाहिये कि उस समय लग्न और ग्रह स्पष्ट करके देखे—) यदि प्रश्नलग्नमें पापग्रह हो या लग्नसे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जिसके लिये प्रश्न किया गया है, उस कन्या और वरको ८ वर्षके भीतर ही घातक अरिष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिये। यदि लग्नमें चन्द्रमा और उससे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो ८ वर्षके भीतर ही उस कन्याके पतिको घातक कष्ट प्राप्त होगा—ऐसा समझे। यदि लग्नसे पञ्चम भावमें पापग्रह हो और वह नीचराशिमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो वह कन्या कुलटा स्वभाववाली अथवा मृतवत्सा होती है, इसमें संशय नहीं है॥ ३९८—४००॥ यदि प्रश्नलग्नसे ३, ५, ७, ११ और १० वें भावमें चन्द्रमा हो तथा उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो समझना चाहिये कि उस कन्याको शीघ्र ही पतिकी प्राप्ति होगी॥ ४०१॥ यदि प्रश्नलग्नमें तुला, वृष या कर्क राशि हो तथा वह शुक्र और चन्द्रमासे युक्त हो तो विवाहके विषयमें प्रश्न करनेपर वरके लिये कन्या (पत्नी) लाभ होता है अथवा सम राशि लग्न हो, उसमें समराशिका ही द्रेष्काण हो और सम राशिका नवमांश तथा उसपर चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि हो तो वरको पत्नीकी प्राप्ति होती है॥ ४०२-४०३॥

---

१. छुरी या तलवारकी मुट्ठीकी ओर पूर्व और अग्रकी ओर अन्त समझना चाहिये।

इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्नमें पुरुषराशि और पुरुषराशिका नवमांश हो तथा उसपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु)-की दृष्टि हो तो जिनके लिये प्रश्न किया गया है, उन कन्याओंको पतिकी प्राप्ति होती है॥ ४०४॥

यदि प्रश्नसमयमें कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा सम राशिमें होकर लग्नसे छठे या आठवें भावमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो (निकट भविष्यमें) विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाता है॥ ४०५॥ यदि प्रश्नकालमें शुभ निमित्त और शुभ शकुन देखने-सुननेमें आवें तो वर-कन्याके लिये शुभ होता है तथा यदि निमित्त एवं शकुन आदि अशुभ हों तो अशुभ फल होता है॥ ४०६॥

**( कन्या-वरण— )** पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण)-से शुद्ध दिनमें यदि वर और कन्याके चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हों तो विवाहके लिये विहित नक्षत्र या उसके मुहूर्तमें वरको चाहिये कि अपने कुलके श्रेष्ठ जनोंके साथ गीत, वाद्यकी ध्वनि और ब्राह्मणोंके आशीर्वचन (शान्ति-मन्त्रपाठ) आदिसे युक्त होकर विविध आभूषण, शुभ वस्त्र, फूल, फल, पान, अक्षत, चन्दन और सुगन्धादि लेकर कन्याके घरमें जाय और विनीत भावसे कन्याका वरण करे। (कन्याका वरण वरके बड़े भाई अथवा गुरुजनको करना चाहिये।) उसके बाद कन्याका पिता प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वरको कन्यादान करे॥ ४०७—४०९॥

कन्याके पिताको चाहिये कि अपनी कन्यासे श्रेष्ठ, कुल, शील, वयस्, रूप, धन और विद्यासे युक्त वरको वरके वयस्से छोटी रूपवती अपनी कन्या दे। कन्यादानसे पूर्व सब गुणोंकी आश्रयभूता, तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी, दिव्य गन्ध, माला और वस्त्रसे सुशोभित, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा सब आभूषणोंसे मण्डित, अमूल्य मणिमालाओंसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, सहस्रों दिव्य सहेलियोंसे सुसेविता सर्वगुणसम्पन्ना शची (इन्द्राणी)-देवीकी पूजा करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि! हे इन्द्राणि! हे देवेन्द्रप्रियभामिनि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे॥ ४१०—४१४॥

**( कन्या-वरकी वर्षशुद्धि— )** कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है। इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है॥ ४१५॥

**( विवाहविहित मास— )** माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं। अन्य मास निन्दित हैं॥ ४१६॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आर्द्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें, तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये। बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हों तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये॥ ४१७-७१८॥

**( गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व— )** शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिन तक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे

पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है॥ ४१९॥

तबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्था[1]में हों तबतक तथा भगवान्के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन)-में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये॥ ४२०॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म-तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है। यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है॥ ४२१-४२२॥

(**विवाहमें वर्ज्य—**) भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है। यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं। यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं। संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं॥ ४२३-४२४॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं॥ ४२५॥

(**विहित नक्षत्र—**) रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है॥ ४२६॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२७॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है[2]। इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है। अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये। प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये। उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि)-के बल देखे। तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं। इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है। मुहूर्तसे भी लग्न, लग्नसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश[3] बली होता है। इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये॥ ४२८—४३१॥

विवाहमें शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट होनेपर सब राशि प्रशस्त हैं। चन्द्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र आदि पाँच ग्रह जिस राशिके इष्ट हों, वह लग्न शुभप्रद होता है। यदि चार ग्रह भी बली हों तो भी उन्हें शुभप्रद ही समझना चाहिये॥ ४३२-४३३॥

मुने! जामित्र (लग्नसे सप्तम स्थान) शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो तथा लग्न इक्कीस दोषोंसे रहित हो तो उसे विवाहमें ग्रहण करना चाहिये। अब मैं

---

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है।

२. अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्ग-बल तीनके बराबर है।

३. जातक अध्यायमें देखिये। अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये। यदि लग्नराशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्नको भी प्रशस्त समझना चाहिये।

उन इक्कीस दोषोंके नाम, स्वरूप और फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, सुनो— ॥ ४३४ $\frac{1}{2}$ ॥

**( विवाहके इक्कीस दोष— )** पञ्चाङ्ग-शुद्धिका न होना, यह प्रथम दोष कहा गया है। उदयास्तकी शुद्धिका न होना २, उस दिन सूर्यकी संक्रान्तिका होना ३, पापग्रहका षड्वर्गमें रहना ४, लग्नसे छठे भावमें शुक्रकी स्थिति ५, अष्टममें मङ्गलका रहना ६, गण्डान्त होना ७, कर्तरीयोग ८, बारहवें, छठे और आठवें चन्द्रमाका होना तथा चन्द्रमाके साथ किसी अन्य ग्रहका होना ९, वर-कन्याकी जन्मराशिसे अष्टम राशि लग्न हो या दैनिक चन्द्रराशि हो १०, विषघटी ११, दुर्मुहूर्त १२, वार-दोष १३, खार्जूर १४, नक्षत्रैकचरण १५, ग्रहण और उत्पातके नक्षत्र १६, पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र १७, पापसे युक्त नक्षत्र १८, पापग्रहका नवमांश १९, महापात २० और वैधृति २१—विवाहमें ये २१ दोष कहे गये हैं ॥ ४३५—४३८ $\frac{1}{2}$ ॥

मुने! तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन पाँचोंका मेल 'पञ्चाङ्ग' कहलाता है। उसकी शुद्धि 'पञ्चाङ्ग'शुद्धि कहलाती है। जिस दिन पञ्चाङ्गके दोष हों, उस दिन विवाहलग्न बनाना निरर्थक है। इस प्रकारका लग्न यदि पाँच इष्ट ग्रहोंसे युक्त हो तो भी उसको विषमिश्रित दूधके समान त्याग देना चाहिये ॥ ४३९-४४० $\frac{1}{2}$ ॥ लग्न या उसके नवमांश अपने-अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट न हों अथवा परस्पर (लग्नेशसे नवमांश और नवमांशपतिसे लग्नेश) युक्त या दृष्ट न हों अथवा अपने स्वामीके शुभग्रह मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो वरके लिये घातक होते हैं[1]। इसी प्रकार लग्नसे सप्तम और उसके नवमांशमें भी ये दोनों यदि अपने-अपने स्वामीसे अथवा परस्पर युक्त या दृष्ट नहीं हों या अपने-अपने स्वामीके शुभ मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो उस दशामें विवाह होनेपर वह वधूके लिये घातक है ॥ ४४१-४४२ $\frac{1}{2}$ ॥

सूर्यकी संक्रान्तिके समयसे पूर्व और पश्चात् सोलह-सोलह घड़ी विवाह आदि शुभ कार्योंमें त्याज्य है। लग्नका षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश) शुभ हो तो विवाह, देवप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें श्रेष्ठ माना गया है ॥ ४४३-४४४ ॥

लग्नसे छठे स्थानमें शुक्र हो तो वह 'भृगुषष्ठ' नामक दोष कहलाता है। उच्चस्थ और शुभ ग्रहसे युक्त होनेपर भी उस लग्नको सदा त्याग देना चाहिये। लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल हो तो यह 'भौम महादोष' कहलाता है। यदि मङ्गल उच्चमें हो और तीन शुभ ग्रह लग्नमें हों तो इस लग्नका त्याग नहीं करना चाहिये (अर्थात् ऐसी स्थितिमें अष्टम मङ्गलका दोष नष्ट हो जाता है) ॥ ४४५-४४६ ॥

**( गण्डान्त-दोष— )** पूर्णा (५, १०, १५) तिथियोंके अन्त और नन्दा (१, ६, ११) तिथियोंकी आदिकी सन्धिमें दो घड़ी 'तिथिगण्डान्त-दोष' कहलाता है। यह जन्म, यात्रा, उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें घातक कहा गया है ॥ ४४७ ॥ कर्क लग्नके अन्त और सिंह लग्नके आदिकी सन्धिमें, वृश्चिक और धनुकी सन्धिमें तथा मीन और मेष लग्नकी सन्धिमें आधा घड़ी 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है। यह भी घातक होता है ॥ ४४८ ॥ आश्लेषाके अन्तका चतुर्थ चरण और मघाका प्रथम चरण तथा ज्येष्ठाके अन्तकी १६ घड़ी और मूलका प्रथम चरण एवं रेवती नक्षत्रके अन्तकी ग्यारह घड़ी और अश्विनीका प्रथम चरण—इस प्रकार इन दो-दो नक्षत्रोंकी सन्धिका काल

१. यहाँ घातक शब्द अशुभ-सूचक समझना चाहिये अर्थात् ऐसे लग्नमें वरको अशुभ फल प्राप्त होता है।

'नक्षत्रगण्डान्त' कहलाता है। ये तीनों प्रकारके गण्डान्त महाक्रूर होते हैं॥ ४४७—४४९ १/२॥

( **कर्तरीदोष—** ) लग्नसे बारहवें मार्गी और द्वितीयमें वक्री दोनों पापग्रह हों तो लग्नमें आगे-पीछे दोनों ओरसे जानेके कारण यह 'कर्तरीदोष' कहलाता है। इसमें विवाह होनेसे यह कर्तरीदोष वर-वधू दोनोंके गलेपर छुरी चलानेवाला (उनका अनिष्ट करनेवाला) होता है। ऐसे कर्तरीदोषसे युक्त लग्नका परित्याग कर देना चाहिये॥ ४५०-४५१॥

( **लग्न-दोष—** ) यदि लग्नसे छठे, आठवें तथा बारहवेंमें चन्द्रमा हो तो यह 'लग्नदोष' कहलाता है। ऐसा लग्न शुभग्रहों तथा अन्य सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेपर भी दोषयुक्त होता है। वह लग्न बृहस्पति और शुक्रसे युक्त हो तथा चन्द्रमा उच्च, नीच, मित्र या शत्रुराशिमें (कहीं भी) हो, तो भी यत्नपूर्वक त्याग देने योग्य है, क्योंकि यह सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये 'घातक' कहा गया है॥ ४५२-४५३ १/२॥

( **सग्रहदोष—** ) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतान-हानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रव्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है॥ ४५४—४५७॥

( **पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—** ) मुने! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोंसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमें चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमें अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है॥ ४५८-४५९ १/२॥

( **अष्टमराशि लग्नदोष—** ) वर या वधूके जन्मलग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमें पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये॥ ४६०-४६१ १/२॥

( **द्वादश राशिदोष** ) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाह-लग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांशको और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये॥ ४६२ १/२॥

( **जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—** ) जन्म-राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह-लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं॥ ४६३ १/२॥

( **विषघटी ध्रुवाङ्क—** ) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १३, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वाफाल्गुनीका २०, उत्तराफाल्गुनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढ़का २४, उत्तराषाढ़का २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोंके अपने-अपने

ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका त्याग करना चाहिये[१] ॥ ४६४—४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥ ४६९ ॥ रवि आदि दिनोंमें जो-जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोंसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश)-से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास)-तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चगव्यके समान त्याग देना चाहिये; परंतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२—४७४ ॥

(**विहित नवमांश—**) वृष, तुला, मिथुन, कन्या और धनुका उत्तरार्ध तथा इन राशियोंके नवमांश विवाहलग्नमें शुभप्रद हैं। किसी भी लग्नमें अन्तिम नवमांश यदि वर्गोत्तम हो तभी उसे शुभप्रद समझना चाहिये[२]। अन्यथा विवाह-लग्नका अन्तिम नवमांश (२६ अंश ४० कलाके बाद) अशुभ होता है। यहाँ अन्य नवमांश नहीं ग्रहण करने चाहिये; क्योंकि वे 'कुनवांश' कहलाते हैं। लग्नमें कुनवांश हो तो अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वह त्याज्य है। जिस दिन महापात (सूर्य-चन्द्रमाका क्रान्ति-साम्य) हो, वह दिन भी शुभ कार्यमें छोड़ देने योग्य है; क्योंकि वह अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये घातक होता है। इन दोषोंसे भिन्न विद्युत्, नीहार (कुहरा) और वृष्टि आदि दोष, जिनका अभी वर्णन नहीं किया गया है, 'स्वल्पदोष' कहलाते हैं ॥ ४७५—४७८ ॥

(**लघुदोष—**) विद्युत, नीहार, वृष्टि, प्रतिसूर्य (दो सूर्य-सा दीखना), परिवेष (घेरा), इन्द्रधनुष, घनगर्जन, लत्ता, उपग्रह[३], पात, मासदग्ध[४] तिथि, दग्ध, अन्ध, बधिर तथा पङ्गु—इन राशियोंके लग्न[५],

---

१. विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पंद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी' का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पंद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपात निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पंद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

२. किसी भी राशिमें अपना ही नवमांश हो तो वह वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे मेषमें मेषका नवमांश तथा वृषमें वृषका नवमांश इत्यादि।

३. सूर्य जिस नक्षत्रमें वर्तमान हो, उससे ५, ७, ८, १०, १४, १५, १८, १९, २१, २२, २३, २४, २५—इन संख्याओंके किसी भी नक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो 'उपग्रहदोष' कहलाता है।

४. सूर्य यदि धनु या मीनमें हो तो द्वितीया, वृष या कुम्भमें हो तो चतुर्थी, कर्क या मेषमें हो तो षष्ठी, कन्या या मिथुनमें हो तो अष्टमी, सिंह या वृश्चिकमें हो तो दशमी तथा तुला या मकरमें हो तो द्वादशी 'दग्ध तिथि' कहलाती है।

५. कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और कर्क—ये क्रमशः चैत्र आदि मासोंमें 'दग्ध राशियाँ' हैं।

तुला और वृश्चिक—ये दोनों केवल दिनमें तथा धनु और मकर—ये दोनों केवल रात्रिमें 'बधिर' होते हैं। एवं मेष, वृष और सिंह—ये तीनों दिनमें तथा मिथुन, कर्क, कन्या—ये तीनों रात्रिमें 'अन्ध' होते हैं।

दिनमें कुम्भ और रात्रिमें मीन 'पङ्गु' होते हैं।

एवं छोटे-छोटे और भी अनेक दोष हैं; अब उनकी व्यवस्थाका प्रतिपादन किया जाता है॥ ४७९-४८०॥

विद्युत् (बिजली), नीहार (कुहरा या पाला), वृष्टि (वर्षा)—ये यदि असमयमें हों तभी दोष समझे जाते हैं। यदि समयपर हों (जैसे जाड़ेके दिनमें पाला पड़े, वर्षा ऋतुमें वर्षा हो तथा सघन मेघमें बिजली चमके, तो सब शुभ ही समझे जाते हैं॥ ४८१॥ यदि बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हों तो इन सब दोषोंको नष्ट कर देते हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ४८२॥

**(पञ्चशलाका-वेध—)** पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर दो-दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने)-से पञ्चशलाका-चक्र[1] बनता है। इस चक्रके ईशान कोणवाली दूसरी रेखामें कृत्तिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिण-क्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्‌सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे। जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध[2] समझा जाता है॥ ४८३ $\frac{1}{2}$॥

**(लत्तादोष—)** सूर्य आदि[3] ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे[4] १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा ९ वें दैनिक नक्षत्रको लातोंसे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम 'लत्तादोष' है।

**(पातदोष—)** सूर्य जिस नक्षत्रमें हों उससे आश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे दिन-नक्षत्रतक गिननेसे संख्या हो तो वह नक्षत्र पातदोषसे दूषित समझा जाता है॥ ४८४-४८५ $\frac{1}{2}$॥

**(परिहार—)** सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), वङ्ग (बङ्गाल), बाह्लिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य हैं; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं॥ ४८६-४८७॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य)में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं॥ ४८८॥ पङ्गु, अन्ध, काण, लग्न तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (बङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें निन्दित नहीं हैं॥ ४८९॥

**(विशेष—)** अधिक दोषोंसे दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमें थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये॥ ४९०॥

**(वेदी और मण्डप-)** इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्नका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्न हो। वहाँ चारों तरफ

---

१. पञ्चशलाकाचक्र—

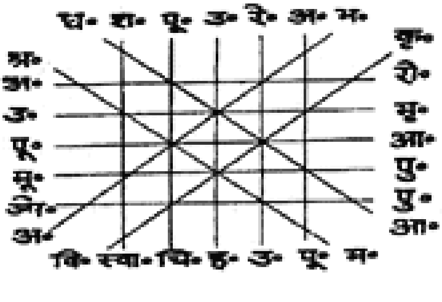


२. जैसे—श्रवणमें कोई ग्रह हो तो मघा नक्षत्र विद्ध समझा जायगा।

३. सूर्य, पूर्ण चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु।

४. इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्ण चन्द्र पीछे, फिर मङ्गल आगे और बुध पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं। ऐसा ही क्रम आगे भी समझना चाहिये।

कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माङ्गलिक चित्रयुक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके शृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माङ्गलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदयको आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे॥ ४९१—४९५॥

**( वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान— )** आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ४९६॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है॥ ४९७ $\frac{१}{२}$॥

**( स्त्रीदूर दोष— )** कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों)-के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक)-के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक)-के भीतर हो तो उन दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है॥ ४९८ $\frac{१}{२}$॥

**( गणविचार— )** पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा—ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षसगण हैं॥ ४९९—५०१॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षसगण और दूसरेका देवगण या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है॥ ५०२॥

**( राशिकूट— )** वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्यामें हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमें परस्पर प्रेम होता है॥ ५०३॥

**( परिहार— )** द्विद्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९, ५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षडष्टक (६, ८)-में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है॥ ५०४॥

**( योनिकूट— )** १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे लेकर रेवतीतक (अभिजित्‌सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं॥ ५०५-५०६॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल

और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमें तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है ॥ ५०७ ॥

(**वर्णकूट—**) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हैं[१]। (एक वर्णके वर और वधूमें तो विवाह स्वयंसिद्ध है ही) पुरुष-राशिके वर्णसे स्त्री-राशिका वर्ण हीन हो तो भी विवाह शुभ माना गया है। इससे विपरीत (अर्थात् पुरुषराशिके वर्णसे स्त्रीराशिका वर्ण श्रेष्ठ) हो तो अशुभ समझना चाहिये ॥ ५०८ ॥

(**नाडीविचार—**) चार चरणवाले नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, श्रवण, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद, रेवती—इन)-में उत्पन्न कन्याके लिये अश्विनीसे आरम्भ करके रेवतीतक तीन पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम[२] से गिनकर नाड़ी समझे। तीन चरणवाले (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याके लिये कृत्तिकासे लेकर भरणीतक क्रम-उत्क्रम[३] से चार पर्वोंपर गिनकर नाड़ीका ज्ञान प्राप्त करे तथा दो चरणोंवाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याकी नाड़ी जाननेके लिये मृगशिरासे लेकर रोहिणीतक पाँच पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम[४]से गिने। यदि वर और वधू दोनोंके नक्षत्र एक पर्वपर पड़ें तो वे उनके लिये घातक हैं और भिन्न पर्वोंपर पड़ें तो उन्हें शुभ समझना चाहिये ॥ ५०९ ½ ॥

---

१. राशियोंके वर्णको स्पष्ट समझनेके लिये यह कोष्ठ देखें—

| | | | |
|---|---|---|---|
| मीन | मेष | वृष | मिथुन |
| कर्क | सिंह | कन्या | तुला |
| वृश्चिक | धनु | मकर | कुम्भ |
| ब्राह्मण | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र |

२. त्रिनाडी—

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | अश्विनी | आर्द्रा | पुनर्वसु | उत्तराफाल्गुनी | हस्त | ज्येष्ठा | मूल | शतभिषा | पूर्व भाद्रपद |
| २ | भरणी | मृगशिरा | पुष्य | पूर्वाफाल्गुनी | चित्रा | अनुराधा | पूर्वाषाढ़ | धनिष्ठा | उत्तर भाद्रपद |
| ३ | कृत्तिका | रोहिणी | आश्लेषा | मघा | स्वाती | विशाखा | उत्तराषाढ़ | श्रवण | रेवती |

३. चतुर्नाडी—

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | कृत्तिका | मघा | पूर्वाफाल्गुनी | ज्येष्ठा | मूल | उत्तर भाद्रपद | रेवती |
| २ | रोहिणी | आश्लेषा | उत्तराफाल्गुनी | अनुराधा | पूर्वाषाढ़ | पूर्व भाद्रपद | अश्विनी |
| ३ | मृगशिरा | पुष्य | हस्त | विशाखा | उत्तराषाढ़ | शतभिषा | भरणी |
| ४ | आर्द्रा | पुनर्वसु | चित्रा | स्वाती | श्रवण | धनिष्ठा | × |

४. पञ्चनाडी—

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | मृगशिरा | चित्रा | स्वाती | शतभिषा | पूर्व भाद्रपद | × |
| २ | आर्द्रा | हस्त | विशाखा | धनिष्ठा | उत्तर भाद्रपद | × |
| ३ | पुनर्वसु | उत्तराफाल्गुनी | अनुराधा | श्रवण | रेवती | × |
| ४ | पुष्य | पूर्वाफाल्गुनी | ज्येष्ठा | उत्तराषाढ़ | अश्विनी | रोहिणी |
| ५ | आश्लेषा | मघा | मूल | पूर्वाषाढ़ | भरणी | कृत्तिका |

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाडी आदिका वर्णन किया गया है, उन सबको सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

| नक्षत्र | अ. | भ. | कृ. | रो. | मृ. | आ. | पु. | पु. | आश्ले. | म. | पू.फा. | उ.फा. | ह. | चि. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चरण | चू.चे.<br>चो.ला. | ली.लू.<br>ले.लो. | अ.इ.<br>उ.ए. | ओ.वा.<br>वी.वू. | वे.वो.<br>का.की. | कु.घ.<br>ङ.छ. | के.को.<br>हा.ही. | हू.हे.<br>हो.डा. | डी.डू.<br>डे.डो. | मा.मी.<br>मू.मे. | मो.टा.<br>टी.टू. | टे.टो.<br>पा.पी. | पू.ष.<br>ण.ठ. | पे.पो.<br>रा.री. |
| राशि | मे. | मे. | मे.१<br>वृ.३ | वृ. | वृ.२<br>मि.२ | मि. | मि.३<br>क.१ | क. | क. | सिं. | सिं. | सिं.१<br>क.३ | क. | क.२<br>तु.२ |
| वर्ण | क्ष. | क्ष. | क्ष.१<br>वै.३ | वै. | वै.२<br>शू.२ | शू. | शू.३<br>ब्रा.१ | ब्रा. | ब्रा. | क्ष. | क्ष. | क्ष.१<br>वै.३ | वै. | वै.२<br>शू.२ |
| वश्य | च. | च. | च. | च. | च.२<br>न.२ | न. | न.३<br>ज.१ | ज. | ज. | व. | व. | व.१<br>न.३ | न. | न. |
| योनि | अश्व. | गज. | छाग. | सर्प. | सर्प. | श्वान. | मार्जार. | छाग. | मार्जार. | मूषक. | मूषक. | गौ. | महिष. | व्याघ्र. |
| राशीश | मं. | मं. | मं.१<br>शु.३ | शु. | शु.२<br>बु.२ | बु. | बु.३<br>चं.१ | चं. | चं. | सू. | सू. | सू.१<br>बु.३ | बु. | बु.२<br>शु.२ |
| गण | दे. | म. | रा. | म. | दे. | म. | दे. | दे. | रा. | रा. | म. | म. | दे. | रा. |
| नाड़ी | आ. | म. | अं. | अं. | म. | आ. | आ. | म. | अं. | अं. | म. | आ. | आ. | म. |

| नक्षत्र | स्वा. | वि. | अ. | ज्ये. | मू. | पू.षा. | उ.षा. | श्र. | ध. | श. | पू.भा. | उ.भा. | रे. | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चरण | रू.रे.<br>रो.ता. | ती.तू.<br>ते.तो. | ना.नी.<br>नू.ने. | नो.या.<br>यी.यू. | ये.यो.<br>भा.भी. | भू. ध<br>फ.ढ. | भे.भो.<br>जा.जी. | खी.खू.<br>खे.खो. | गा.गी.<br>गू.गे. | गो.सा.<br>सी.सू. | से.सो<br>दा.दी. | दू.थ.<br>झ.ञ. | दे.दो.<br>चा.ची. | |
| राशि | तु. | तु.३<br>वृ.१ | वृ. | वृ. | ध. | ध. | ध.१<br>म.३ | म. | म.२<br>कुं.२ | कुं. | कुं.३<br>मी.१ | मी. | मी. | |
| वर्ण | शू. | शू.३<br>ब्रा.१ | ब्रा. | ब्रा. | क्ष. | क्ष. | क्ष.१<br>वै.३ | वै. | वै.२<br>शू. २ | शू. | शू.३<br>ब्रा.१ | ब्रा. | ब्रा. | |
| वश्य | न. | न.३<br>की.१ | की. | की. | न. | ॥न.<br>३॥च. | च. | १॥च.<br>२॥जा. | ज.२<br>न.२ | न. | न. ३<br>ज.१ | ज. | ज. | |
| योनि | महिष. | व्याघ्र. | मृग. | मृग | श्वान. | वानर. | नकुल. | वानर. | सिंह. | अश्व. | सिंह. | गौ. | गज. | |
| राशीश | शु. | शु.३<br>मं.१ | मं. | मं. | बृ. | बृ. | बृ.१<br>शु.३ | श. | श. | श. | श.३<br>बृ.१ | बृ. | बृ. | |
| गण | दे. | रा. | दे. | रा. | रा. | म. | म. | दे. | रा. | रा. | म. | म. | दे. | |
| नाड़ी | अं. | अं. | म. | आ. | आ. | म. | अं. | अं. | म. | आ. | आ. | म. | अं. | |

**६ गणगुण। वर**

| | | दे. | म. | रा. |
|---|---|---|---|---|
| कन्या | देव | ६ | ५ | १ |
| | मनुष्य | ६ | ६ | ० |
| | राक्षस | ० | ० | ६ |

**८ नाडी-गुण। वर**

| | | आ. | म. | अं. |
|---|---|---|---|---|
| कन्या | आदि | ० | ८ | ८ |
| | मध्य | ८ | ० | ८ |
| | अन्त | ८ | ८ | ० |

**७ भकूटगुण**

| | मे. | वृ. | मि. | क. | सिं. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मे. | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० |
| वृ. | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ |
| मि. | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ |
| क. | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० |
| सिं. | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० |
| क. | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ |
| तु. | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० | ० |
| वृ. | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ | ० |
| ध. | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ | ७ |
| म. | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० | ७ |
| कुं. | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ | ० |
| मी. | ० | ७ | ७ | ० | ० | ७ | ० | ० | ७ | ७ | ० | ७ |

**३ तारागुण। वर**

| | | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कन्या | १ | ३ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |
| | २ | ३ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |
| | ३ | १॥ | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | १॥ |
| | ४ | ३ | ३ | १ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |
| | ५ | १॥ | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | १॥ |
| | ६ | ३ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |
| | ७ | १॥ | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | ० | १॥ | १॥ |
| | ८ | ३ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |
| | ९ | ३ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | १॥ | ३ | ३ |

**५ ग्रहमैत्रीगुण। वर**

| | | सू. | चं. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कन्या | सूर्य | ५ | ५ | ५ | ४ | ५ | ० | ० |
| | चन्द्र | ५ | ५ | ४ | १ | ४ | ॥ | ॥ |
| | मङ्गल | ५ | ४ | ५ | ॥ | ५ | ३ | ॥ |
| | बुध | ४ | १ | ॥ | ५ | ॥ | ५ | ४ |
| | गुरु | ५ | ४ | ५ | ॥ | ५ | ॥ | ३ |
| | शुक्र | ० | ॥ | ३ | ५ | ॥ | ५ | ५ |
| | शनि | ० | ॥ | ॥ | ४ | ३ | ५ | ५ |

**४ योनिगुण। वर**

| | अश्व | गज | मेष | सर्प | श्वान | मार्जार | मूषक | गौ | महिष | व्याघ्र | मृग | वानर | नकुल | सिंह |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अश्व | ४ | २ | ३ | २ | २ | ३ | ३ | २ | ० | १ | ३ | २ | २ | १ |
| गज | २ | ४ | ३ | २ | २ | ३ | ३ | ३ | ३ | १ | ३ | २ | २ | ० |
| मेष | ३ | ३ | ४ | २ | २ | ३ | ३ | ३ | ३ | १ | ३ | ० | १ | १ |
| सर्प | २ | २ | २ | ४ | २ | १ | १ | २ | २ | २ | २ | १ | ० | २ |
| श्वान | २ | २ | २ | २ | ४ | १ | १ | २ | २ | २ | ० | २ | २ | २ |
| मार्जार | ३ | ३ | ३ | १ | १ | ४ | ० | ३ | ३ | २ | ३ | २ | २ | २ |
| मूषक | ३ | २ | २ | १ | २ | ० | ४ | ३ | ३ | २ | ३ | २ | १ | २ |
| गौ | २ | ३ | ३ | २ | २ | ३ | ३ | ४ | ३ | ० | ३ | २ | २ | १ |
| महिष | ० | ३ | ३ | २ | २ | ३ | ३ | ३ | ४ | १ | ३ | २ | २ | १ |
| व्याघ्र | १ | १ | १ | २ | २ | २ | २ | ० | १ | ४ | १ | २ | २ | ३ |
| मृग | ३ | ३ | ३ | २ | ० | ३ | ३ | ३ | ३ | १ | ४ | २ | २ | १ |
| वानर | २ | २ | ० | १ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | ४ | २ | २ |
| नकुल | २ | २ | २ | ० | २ | २ | १ | २ | २ | २ | २ | २ | ४ | २ |
| सिंह | १ | ० | १ | २ | २ | २ | २ | १ | १ | ३ | १ | २ | २ | ४ |

**१ विवाहमें वर्णगुण। वर**

| | | ब्रा० | क्ष. | वै. | शू. |
|---|---|---|---|---|---|
| कन्या | ब्राह्मण | १ | ० | ० | ० |
| | क्षत्रिय | १ | १ | ० | ० |
| | वैश्य | १ | १ | १ | ० |
| | शूद्र | १ | १ | १ | १ |

**२ वश्यगुण। वर**

| | | च० | मा. | ज. | व. | की. |
|---|---|---|---|---|---|---|
| कन्या | चतुष्पद | २ | १ | १ | ० | १ |
| | मानव | १ | २ | ॥ | ० | १ |
| | जलचर | १ | ॥ | २ | १ | १ |
| | वनचर | ० | ० | १ | २ | ० |
| | कीट | १ | १ | १ | ० | २ |

जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्र-सम्बन्धी आठ प्रकारके कूटद्वारा वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्म-लग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पत्नीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं। यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है। उदाहरणके लिये—

वरकी कुण्डली

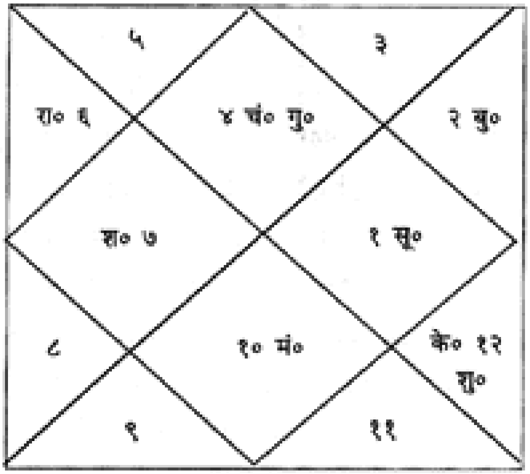


पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म

कन्याकी कुण्डली

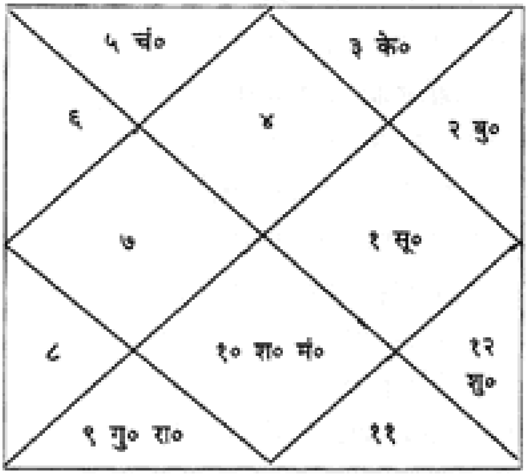


पूर्वाफाल्गुनीके प्रथम चरणमें जन्म

यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४ थे और ७वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

| | वर | कन्या | गुण |
|---|---|---|---|
| १ वर्ण— | ब्राह्मण | क्षत्रिय | १ |
| २ वश्य— | जलचर | वनचर | ० |
| ३ तारा— | ५ | ६ | १॥ |
| ४ योनि— | मार्जार | मूषक | ० |
| ५ ग्रह (राशीश)— | चन्द्र | सूर्य | ५ |
| ६ गण— | देव | मनुष्य | ६ |
| ७ भकूट— | २ | १२ | ० |
| ८ नाड़ी— | १ | २ | ८ |
| | | | गुणोंका योग=२१॥ |

इस तरह नक्षत्रमेलापकमें भी गुणोंका योग २१॥ है। अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये।

**( विवाहोंके भेद— )** ऊपर बताये हुए शुभ समयमें (१) प्राजापत्य, (२) ब्राह्म, (३) दैव और (४) आर्ष—ये चार प्रकारके विवाह करने चाहिये। ये ही चारों विवाह उपर्युक्त फल देनेवाले होते हैं। इससे अतिरिक्त जो गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाह हैं, वे तो सब समय समान ही फल देनेवाले होते हैं॥ ५१०-५११॥

**( अभिजित् और गोधूलि लग्न— )** सूर्योदय-कालमें जो लग्न रहता है, उससे चतुर्थ लग्नका नाम अभिजित् है और सातवाँ गोधूलि-लग्न कहलाता है। ये दोनों विवाहमें पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाले होते हैं॥ ५१२॥ पूर्व तथा कलिङ्ग देशवासियोंके लिये गोधूलि-लग्न प्रधान है और अभिजित्-लग्न तो सब देशोंके लिये मुख्य कहा गया है, क्योंकि वह सब दोषोंका नाश करनेवाला है॥ ५१३॥

**( अभिजित्-प्रशंसा— )** सूर्यके मध्य आकाशमें जानेपर अभिजित् मुहूर्त होता है, वह समस्त दोषोंको नष्ट कर देता है, ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था॥ ५१४॥

पुत्रका विवाह करनेके बाद छः मासोंके भीतर पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक पुत्र या पुत्रीका विवाह करनेके बाद दूसरे पुत्रका उपनयन भी नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार एक मङ्गल कार्य करनेके बाद छः मासोंके भीतर दूसरा मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिये। एक गर्भसे उत्पन्न दो कन्याओंका विवाह यदि छः मासके भीतर हो तो निश्चय ही तीन वर्षके भीतर उनमेंसे एक विधवा होती है॥ ५१५-५१६॥ अपने पुत्रके साथ जिसकी पुत्रीका विवाह हो, फिर उसके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करना 'प्रत्युद्वाह' कहलाता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये तथा किसी एक ही वरको अपनी दो कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदर वरोंको दो सहोदरा कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदरोंका एक ही दिन (एक साथ) विवाह या मुण्डन नहीं करना चाहिये॥ ५१७ १/२॥

**( गण्डान्त-दोष— )** पूर्वकथित गण्डान्तमें यदि दिनमें बालकका जन्म हो तो वह पिताका, रात्रिमें जन्म हो तो माताका और संध्या (सायं या प्रातः) कालमें जन्म हो तो वह अपने शरीरके लिये घातक होता है। गण्डका यह परिणाम अन्यथा नहीं होता है। मूलमें उत्पन्न होनेवाली संतान पुत्र हो या कन्या, श्वशुरके लिये घातक होती है, किंतु मूलके चतुर्थ चरणमें जन्म लेनेवाला बालक श्वशुरका नाश नहीं करता है तथा आश्लेषाके प्रथम चरणमें जन्म लेनेवाला बालक भी पिताका या श्वशुरका विनाश करनेवाला नहीं होता है। ज्येष्ठाके अन्तिम चरणमें उत्पन्न बालक ही श्वशुरके लिये घातक होता है, कन्या नहीं। किसी प्रकार पूर्वाषाढ़ या मूलमें उत्पन्न कन्या भी माता या पिताका नाश करनेवाली नहीं होती है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न कन्या अपने पतिके बड़े भाईके लिये और विशाखामें जन्म लेनेवाली कन्या अपने देवरके लिये घातक होती है॥ ५१८—५२१॥

**( वधू-प्रवेश— )** विवाहके दिनसे ६, ८, १० और ७वें दिनमें वधू-प्रवेश (पतिगृहमें प्रथम प्रवेश) हो तो वह सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला होता है। द्वितीय वर्ष, जन्म-राशि, जन्म-लग्न और जन्म-दिनको छोड़कर अन्य समयमें सम्मुख शुक्र रहनेपर भी वैवाहिक यात्रा (वधू-प्रवेश) शुभ होती है॥ ५२२-५२३॥

**( देव-प्रतिष्ठा— )** उत्तरायणमें, बृहस्पति और शुक्र उदित हों तो चैत्रको छोड़कर माघ आदि पाँच मासोंके शुक्लपक्षमें और कृष्णपक्षमें भी आरम्भसे आठ दिनतक सब देवताओंकी स्थापना शुभदायक होती है। जिस देवताकी जो तिथि है,

उसमें उस देवताकी और २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३ तथा पूर्णिमा—इन तिथियोंमें सब देवताओंकी स्थापना शुभ होती है। तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, शतभिषा, श्रवण, अनुराधा और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें तथा मङ्गलवारको छोड़कर अन्य वारोंमें देव-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। स्थापना करनेवाले (यजमान)-के लिये सूर्य, तारा और चन्द्रमा बलवान् हों, उस दिनके पूर्वाह्णमें, शुभ समय, शुभ लग्न और शुभ नवमांशमें तथा यजमानकी जन्मराशिसे अष्टम राशिको छोड़कर अन्य लग्नोंमें देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है॥ ५२४—५२९॥

मेष आदि सब राशियाँ शुभ ग्रहसे युक्त या दृष्ट हों तो देवस्थापनके लिये श्रेष्ठ समझी जाती हैं। प्रत्येक कार्यमें पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) शुभ होने चाहिये और लग्नसे अष्टम स्थान भी शुभ (ग्रहवर्जित) होना आवश्यक है॥ ५३०॥ (१) लग्नमें चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, राहु, केतु और शनि कर्ताके लिये घातक होते हैं। अन्य (बुध, गुरु और शुक्र) लग्नमें धन, धान्य और सब सुखोंको देनेवाले होते हैं। (२) द्वितीय भावमें पापग्रह अनिष्ट फल देनेवाले और शुभग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढ़ानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभग्रह शुभफल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभग्रह शत्रुको बढ़ानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)-के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हों तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभग्रह सुयशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च)-को बढ़ानेवाले होते हैं॥ ५३१—५३६॥

**(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात—)** प्रतिष्ठा करानेवाले पुरोहित (या आचार्य)-को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुभ उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करानेवालों)-का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान)-के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ॥ ५३७—५३९॥

**(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें—)** गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि)-की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद)-के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई)-के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मांसकी-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँकी मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कड़ुवा (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्त हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करनेयोग्य समझना चाहिये॥ ५४०-५४१॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें

प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है॥ ५४२॥

(गृहभूमि-परीक्षा—) जिस स्थानमें घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनीसे कनिष्ठा अंगुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये॥ ५४३॥ अथवा उसी प्रकार अरत्निके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रात:काल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड़ गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी॥ ५४४॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्‌साधन (दिशाओंका ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशाङ्गुल शङ्कु (बारह विभाग या पर्वसे युक्त एक सीधी लकड़ी)-की स्थापना करे और दिक्‌साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कर्ताके नामके अनुसार षड्‌वर्ग शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निम्नाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १- हानि, २- निर्धनता, ३- धनलाभ, ४- राजसम्मान, ५- बहुत धन, ६- अति चोरी, ७- अति क्रोध तथा ८- भय—ये क्रमश: आठ द्वारोंके फल हैं। दक्षिण दिशामें क्रमश: १- मरण, २- बन्धन, ३- भय, ४- धनलाभ, ५- धनवृद्धि, ६- निर्भयता, ७- व्याधिभय तथा ८- निर्बलता—ये (पूर्वसे पश्चिमतकके) आठ द्वारोंके फल हैं। पश्चिम दिशामें क्रमश: १- पुत्रहानि, २- शत्रुवृद्धि, ३- लक्ष्मीप्राप्ति, ४- धनलाभ, ५- सौभाग्य, ६- अति दौर्भाग्य, ७- दु:ख तथा ८- शोक—ये दक्षिणसे उत्तरतकके आठ द्वारोंके फल हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशामें (पश्चिमसे पूर्वतक) १- स्त्री-हानि, २- निर्बलता, ३- हानि, ४- धान्यलाभ, ५- धनागम, ६-सम्पत्ति-वृद्धि, ७- भय तथा ८- रोग—ये क्रमश: आठ द्वारोंके फल हैं॥ ५४५—५५२॥

इसी तरह पूर्व आदि दिशाओंके गृहादिमें भी द्वार और उसके फल समझने चाहिये। द्वारका जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उससे दुगुनी ऊँची किवाड़ें बनाकर उन्हें घरमें (चहारदीवारीके) दक्षिण या पश्चिम भागमें लगावे॥ ५५३॥ चहारदीवारीके भीतर जितनी भूमि हो, उसके इक्यासी पद (समान खण्ड) बनावे। उनके बीचके नौ खण्डोंमें ब्रह्माका स्थान समझे। यह गृहनिर्माणमें अत्यन्त निन्दित है। चहारदीवारीसे मिले हुए जो चारों ओरके ३२ भाग हैं, वे पिशाचांश कहलाते हैं। उनमें घर बनाना दु:ख, शोक और भय देनेवाला होता है। शेष अंशों (पदों)-में घर बनाये जायँ तो पुत्र, पौत्र और धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं॥ ५५४-५५५ $\frac{1}{2}$॥

वास्तुभूमिकी दिशा-विदिशाओंको रेखा वास्तुकी शिरा कहलाती है। एवं ब्रह्मभाग, पिशाचभाग तथा शिराका जहाँ-जहाँ योग हो, वहाँ-वहाँ वास्तुकी मर्मसन्धि समझनी चाहिये। वह मर्मसन्धि गृहारम्भ तथा गृह-प्रवेशमें अनिष्टकारक समझी जाती है॥ ५५६-५५७ $\frac{1}{2}$॥

(गृहारम्भमें प्रशस्त मास—) मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक—ये मास गृहारम्भमें पुत्र, आरोग्य और धन देनेवाले होते हैं॥ ५५८ $\frac{1}{2}$॥

**( दिशाओंमें वर्ग और वर्गेश— )** पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमश: अकारादि आठ वर्ग होते हैं। इन दिशावर्गोंके क्रमश: गरुड, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज और शशक (खरगोश)—ये योनियाँ होती हैं। इन योनि-वर्गोंमें अपने पाँचवें वर्गवाले परस्पर शत्रु होते हैं[1] ॥ ५५९-५६० ॥

(जिस ग्राममें या जिस दिशामें घर बनाना हो, वह साध्य तथा घर बनानेवाला साधक, कर्ता और भर्ता आदि कहलाता है। इसको ध्यानमें रखना चाहिये।) साध्य (ग्राम)-की वर्ग-संख्याको लिखकर, उसके पीछे (बायें भागमें) साधककी वर्ग-संख्या लिखे। उसमें आठका भाग देकर जो शेष बचे, वह साधकका धन होता है। इसके विपरीत विधिसे (अर्थात् साधककी वर्ग-संख्याके बायें भागमें साध्यकी वर्ग-संख्या रखकर जो संख्या बने, उसमें आठसे भाग देकर शेष) साधकका ऋण होता है। इस प्रकार ऋणकी संख्या अल्प और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)[2] ॥ ५६१(क-ख) ॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्र साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

**( वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन— )** वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है। उस (पद)-को (६ स्थानोंमें

---

१. दिशा और वर्ग जाननेका चक्र, यथा—

| | | पूर्व १ | | |
|---|---|---|---|---|
| ८ ईशान | शवर्ग शशक | अवर्ग गरुड | कवर्ग मार्जार | अग्नि २ |
| ७ उत्तर | यवर्ग गज | | चवर्ग सिंह | दक्षिण ३ |
| ६ वायु | पवर्ग मूषक | तवर्ग सर्प | टवर्ग श्वान | नैर्ऋत्य ४ |
| | | पश्चिम ५ ४ | | |

उदाहरण—अवर्ग ( अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ)-की पूर्व दिशा और गरुडयोनि है। वहाँसे क्रमश: दिशा गिननेपर पाँचवीं दिशा (पश्चिम)-में तवर्ग और सर्प इस अवर्ग एवं गरुडका शत्रु है। इस प्रकार परस्पर सम्मुख दिशामें शत्रुता होती है। इसी तरह कवर्ग (क ख ग घ ङ)-की दिशा अग्निकोण और योनि मार्जार (बिलाव) है। चवर्ग (च छ ज झ ञ)-की दक्षिण दिशा और सिंह योनि है। टवर्ग (ट ठ ड ढ ण)-की नैर्ऋत्य दिशा और श्वान योनि है। तवर्ग (त थ द ध न)-की पश्चिम दिशा और सर्प योनि है। पवर्ग (प फ ब भ म)-की वायुकोण दिशा और मूषक (चूहा) योनि है। यवर्ग (य र ल व)-की उत्तर दिशा और गज (हाथी) योनि है। शवर्ग (श ष स ह)-की ईशान दिशा और शशक (खरगोश) योनि है। इसका प्रयोजन यह है कि अपने-अपने नामके आदि अक्षरसे अपना वर्ग समझकर दिशा और योनिका ज्ञान करे। शत्रु-दिशामें अपने रहनेके लिये घर न बनावे। अर्थात् उस दिशाके घरमें स्वयं वास न करे तथा शत्रुवर्गवाले गाँवमें जाकर वास न करे इत्यादि। इसके सिवा, विशेष प्रयोजन मूलमें कहे गये हैं।

२. उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा? तो साध्य (गोरखपुर)-की वर्ग-संख्या २ के बायें भागमें साधक (जयनारायण)-की वर्ग-संख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण)-का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्ग-संख्या २३को रखकर इसमें ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा। यह साधक (जयनारायण)-का ऋण हुआ। यहाँ ऋण ७ से धन अधिक है; अत: जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ। तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होता रहेगा।

रखकर) क्रमश: ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमश: १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे। फिर जो शेष बचें, वे क्रमश: धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं। धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है। यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है। घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमें ९ से भाग दे। फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है। ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है। घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनहानि होती है; ९, ५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये। सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है। अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है[१] ॥ ५६३—५६७ ॥

**( वास्तुपुरुषकी स्थिति— )** भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमश: पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं। जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामें घरका दरवाजा बनाना चाहिये। मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं। किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमें द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढेमें स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घरके भीतर संग्रह करके रखे। घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमें वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है। उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तुपुरुषके पुच्छभागकी ओर) कुक्षि रहती है। उसमें शङ्कुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१-५७२ ॥

**( शङ्कुप्रमाण— )** खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शाखू), युगपत्र (कचनार) रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि वृक्षोंसे किसीकी लकड़ीसे शङ्कु बनता है। ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमश: २४, २३, २० और १६ अङ्गुलके शङ्कु होने चाहिये। उस शङ्कुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमें बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है। इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शङ्कु शुभ दिनमें बनावे। उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित[२] भूमि (गृहक्षेत्र)-में मृदु, ध्रुव क्षिप्रसंज्ञक

१. उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ। इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ। इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ। फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ। इसमें ८से भाग देकर शेष ५ ऋण हुआ। पुन: पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ। इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ। इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ। फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ। पुन: पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ। इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ। यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ। इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये; इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो।

२. पूर्वोक्त आय और षड्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है।

नक्षत्रोंमें, अमावास्या और रिक्ताको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, रविवार, मङ्गलवार तथा चर लग्नको छोड़कर अन्य वारों और अन्य (स्थिर या द्विस्वभाव) लग्नोंमें, जब पापग्रह लग्नमें न हो, अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो; शुभ राशि लग्न हो और उसमें शुभ नवमांश हो, उस लग्नमें शुभग्रहका संयोग या दृष्टि हो; ऐसे समय (सुलग्न)-में ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराते हुए माङ्गलिक वाद्य और सौभाग्यवती स्त्रियोंके मङ्गलगीत आदिके साथ मुहूर्त बतानेवाले दैवज्ञ (ज्योतिषके विद्वान् ब्राह्मण) के पूजन (सत्कार)-पूर्वक कुक्षिस्थानमें शङ्कुकी स्थापना करे। लग्नसे केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह तथा ३, ६, ११ में पापग्रह और चन्द्रमा हो तो यह शङ्कुस्थापन श्रेष्ठ है॥ ५७३—५७९ $\frac{१}{२}$ ॥

घरके छः भेद होते हैं—१- एकशाला, २- द्विशाला, ३- त्रिशाला, ४- चतुश्शाला, ५- सप्तशाला तथा ६- दशशाला। इन छहों शालाओंमेंसे प्रत्येकके १६ भेद होते हैं। उन सब भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१- ध्रुव, २- धान्य, ३- जय, ४- नन्द, ५- खर, ६- कान्त, ७- मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ शत्रुद, १२ स्वर्णद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल और १६ वाँ विजय नामक गृह होता है। चार अक्षरोंके प्रस्तारके भेदसे क्रमशः इन गृहोंकी गणना करनी चाहिये॥ ५८०—५८२ $\frac{१}{२}$ ॥

(प्रस्तारभेद—) प्रथम ४ गुरु (ऽ) चिह्न लिखकर उनमें प्रथम गुरुके नीचे लघु (।) चिह्न लिखे। फिर आगे जैसा ऊपर हो उसी प्रकारके गुरु या लघु चिह्न लिखना चाहिये। फिर उसके नीचे (तीसरी पङ्क्तिमें) प्रथम गुरु चिह्नके नीचे लघु चिह्न लिखकर आगे (दाहिने भागमें) जैसे ऊपर गुरु या लघु हो वैसा ही चिह्न लिखे तथा पीछे (बायें भागमें) गुरु चिह्नसे पूरा करे। इसी प्रकार पुनः-पुनः तबतक लिखता जाय जबतक कि पंक्ति (प्रस्तार)-में सब चिह्न लघु न हो जाय। इस प्रकार चार दिशा होनेके कारण ४ अक्षरोंसे १६ भेद होते हैं। प्रत्येक भेदमें चारों चिह्नोंको प्रदक्षिणक्रमसे पूर्व आदि दिशा समझकर जहाँ-जहाँ लघु चिह्न पड़े, वहाँ-वहाँ घरका द्वार और अलिन्द (द्वारके आगेका भाग-चबूतरा) बनाना चाहिये। इस प्रकार पूर्वादि दिशाओंमें अलिन्दके भेदोंसे १६ प्रकारके घर होते हैं[१]॥ ५८३-५८४ $\frac{१}{२}$ ॥

१. प्रस्तारस्वरूप—

| संख्या | स्वरूप | | | | नाम | द्वारकी दिशा |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | पूर्व, | दक्षिण, | पश्चिम, | उत्तर | | |
| १ | ऽ | ऽ | ऽ | ऽ | ध्रुव | ऊर्ध्व (ऊपर) |
| २ | । | ऽ | ऽ | ऽ | धान्य | पूर्व |
| ३ | ऽ | । | ऽ | ऽ | जय | दक्षिण |
| ४ | । | । | ऽ | ऽ | नन्द | पूर्व-दक्षिण |
| ५ | ऽ | ऽ | । | ऽ | खर | पश्चिम |
| ६ | । | ऽ | । | ऽ | कान्त | पूर्व-पश्चिम |
| ७ | ऽ | । | । | ऽ | मनोरम | दक्षिण-पश्चिम |
| ८ | । | । | । | ऽ | सुमुख | पूर्व-दक्षिण-पश्चिम |
| ९ | ऽ | ऽ | ऽ | । | दुर्मुख | उत्तर |
| १० | । | ऽ | ऽ | । | क्रूर | पूर्व-उत्तर |
| ११ | ऽ | । | ऽ | । | शत्रुद | दक्षिण-उत्तर |
| १२ | । | । | ऽ | । | स्वर्णद | पूर्व-दक्षिण-उत्तर |
| १३ | ऽ | ऽ | । | । | क्षय | पश्चिम-उत्तर |
| १४ | । | ऽ | । | । | आक्रन्द | पूर्व-पश्चिम-उत्तर |
| १५ | ऽ | । | । | । | विपुल | दक्षिण-पश्चिम-उत्तर |
| १६ | । | । | । | । | विजय | पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर |

वास्तुभूमिकी पूर्वदिशामें स्नानगृह, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह, नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायुकोणमें धन-धान्यादि रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें जलका गृह (स्थान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो घरोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने)-का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यासका, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये॥ ५८५—५८८ १/२ ॥

**( आयोंके नाम और दिशा— )** पूर्वादि आठ दिशाओंमें क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृक्ष, खर (गदहा), गज और ध्वांक्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं॥ ५८९ १/२ ॥

**( घरके समीप निन्द्य वृक्ष— )** पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं॥ ५९०-५९१ १/२ ॥

**( गृह-प्रमाण- )** घरके स्तम्भ (खम्भे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि)-में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह)-के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-पाञ्चाल, २-वैदेह, ३-कौरव, ४-कुजन्यक[1], ५-मागध, ६-शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिकमान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये[2]॥ ५९२—५९८ ॥

**( घरमें प्रशस्त आय— )** ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये॥ ५९९ १/२ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल)-पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस

१. मूलमें 'कुजन्यकम्' पाठ है; परंतु कुजन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुब्जकम्' के स्थानमें 'कुब्जकन्यकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुजन्यकम्' हो गया है।

२. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये।

प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि (अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त, ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत[1] १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा[2] २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२,—ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें (४५) ब्रह्माजीको स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति—ये पाँच देव एकपद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणोंके पाँच-पाँच देवता भी एक-पदके भागी हैं। अन्य जो बाह्य-पङ्क्तिके (जयन्त, इन्द्र आदि) बीस देवता हैं, वे सब द्विपद दो-दो पदोंके भागी) हैं तथा ब्राह्मसे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें जो अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार देवता हैं, वे त्रिपद (तीन-तीन पदोंके भागी) हैं, अतः वास्तु-विधिके ज्ञाता विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्रह्माजीसहित इन एकपद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओंका वास्तुमन्त्रोंद्वारा दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करे। अथवा ब्राह्ममन्त्रसे आवाहनादि षोडश (या पञ्च) उपचारोंद्वारा उन्हें दो श्वेत वस्त्र समर्पित करे[3] ॥ ६००—६१३ ॥ नैवेद्यमें तीन प्रकारके

१-२. अन्य संहितामें १२ वाँ बृहत्क्षत; २४ वाँ पापयक्ष्मा कहा गया है।

३. एकाशीतिपद वास्तुचक्र—

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शिखी १ | पर्जन्य २ | जयन्त ३ | इन्द्र ४ | सूर्य ५ | सत्य ६ | भृश ७ | आकाश ८ | वायु ९ |
| दिति ३२ | आप ३३ | जयन्त | इन्द्र | सूर्य | सत्य | भृश | सावित्र ३४ | पूषा १० |
| अदिति ३१ | अदिति | ४४ आपवत्स | अर्यमा | ३७ अर्यमा | अर्यमा | ३८ सविता | वितथ | वितथ ११ |
| सर्प ३० | सर्प | पृथ्वीधर | | | | विवस्वान् | गृहक्षत | गृहक्षत १२ |
| सोम २९ | सोम | पृथ्वीधर ४३ | | ४५ ब्रह्मा | | विवस्वान् ३९ | यम | यम १३ |
| भल्लाटक २८ | भल्लाटक | पृथ्वीधर | | | | विवस्वान् | गन्धर्व | गन्धर्व १४ |
| मुख्य २७ | मुख्य | राजयक्ष्मा ४२ | मित्र | मित्र ४१ | मित्र | विबुधाधिप ४० | भृङ्ग | भृङ्ग १५ |
| अहि २६ | रुद्र ३६ | शेष | असुर | वरुण | पुष्पदन्त | सुग्रीव | जय ३५ | मृग १६ |
| रोग २५ | राजयक्ष्मा २४ | शेष २३ | असुर २२ | वरुण २१ | पुष्पदन्त २० | सुग्रीव १९ | दौवारिक १८ | पितर १७ |

(भक्ष्य, भोज्य, लेह्य) अन्न माङ्गलिक गीत और वाद्यके साथ अर्पण करे। अन्तमें ताम्बूल (पान-सोपारी) अर्पण करके वास्तुपुरुषकी इस प्रकार प्रार्थना करे॥ ६१४॥

**वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत प्रभो।**
**मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥**

'भूमिशय्यापर शयन करनेवाले वास्तुपुरुष! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे घरको धन-धान्य आदिसे सम्पन्न कीजिये।'

इस प्रकार प्रार्थना करके देवताके समक्ष पूजा करानेवाले (पुरोहित)-को यथाशक्ति दक्षिणा दे तथा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा दे। जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृहप्रवेशके समय इस विधिसे वास्तुपूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है। जो मनुष्य वास्तुपूजा न करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है॥ ६१५—६१८॥

जिसमें किंवाड़ें न लगी हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदिको भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है॥ ६१९॥

**( यात्रा-प्रकरण— )** अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करानेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर[1] न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्नलग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है॥ ६२०-६२१॥

**( यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ— )** षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है॥ ६२२॥

**( विहित नक्षत्र— )** अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है॥ ६२३॥

**( दिशाशूल— )** शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे॥ ६२४॥ ज्येष्ठा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराफाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं।

**( सर्वदिग्गमन नक्षत्र— )** अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं॥ ६२५॥

**( दिग्द्वार-नक्षत्र— )** कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं। तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता

---

१. जैसे घुण (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उससे कहीं अकारादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं, वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं।

है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो[१] ॥ ६२६ ॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

**( दिशाओंकी राशियाँ— )** पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं[२] ॥ ६२७ ॥

**( ललाटिकयोग— )** जिस दिशामें यात्रा करनी हो, उस दिशाका स्वामी ललाटगत (सामने) हो तो यात्रा करनेवाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशामें यात्रा करनेवालेको लग्नमें यदि सूर्य हो तो वह ललाटगत माना जाता है। यदि शुक्र लग्नसे ग्यारहवें या बारहवें स्थानमें हों तो अग्निकोणमें यात्रा करनेसे, मङ्गल दशम भावमें हो तो दक्षिणयात्रा करनेसे, राहु नवें और आठवें भावमें हो तो नर्ऋत्य कोणकी यात्रासे, शनि सप्तम भावमें हो तो पश्चिम-यात्रासे, चन्द्रमा पाँचवें और छठे भावमें हो तो वायुकोणकी यात्रासे, बुध चतुर्थ भावमें हो तो उत्तरकी यात्रासे, गुरु तीसरे और दूसरे भावमें हो तो ईशानकोणकी यात्रा करनेसे ललाटगत होते हैं। जो मनुष्य जीवनकी इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोगको त्यागकर यात्रा करे ॥ ६२८—६३२ ॥

लग्नमें वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाओंकी पराजय होती है ॥ ६३३ ॥

जब जिस अयन[३] में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उस समय उस दिशाकी यात्रा शुभ फल देनेवाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयनमें हों तो जिस अयनमें सूर्य हों उधर दिनमें तथा जिस अयनमें चन्द्रमा हों उधर रात्रिमें यात्रा शुभ होती

---

१. पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)

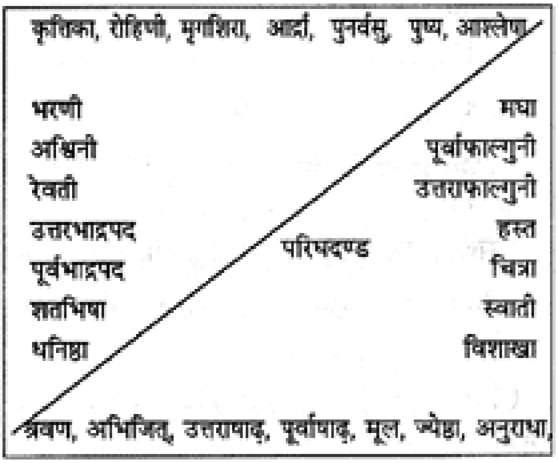


२. दिग्राशिबोधक चक्र—

(पूर्व)

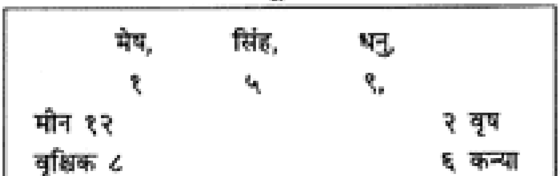


३. मकरसे ६ राशि उत्तरायण है। इनमें सूर्य-चन्द्रमा हों तो उत्तरकी यात्रा शुभ होती है, क्योंकि दोनों सम्मुख होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा दाहिने भागमें पड़ें तो भी यात्रा शुभ हो सकती है। इसलिये उस समय पश्चिम-यात्रा भी शुभ ही समझनी चाहिये एवं कर्कसे छः राशि दक्षिणायन समझें।

है। अन्यथा यात्रा करनेसे यात्रीकी पराजय होती है॥ ६३४॥

(शुक्रदोष—) शुक्र अस्त हों तो यात्रामें हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो तो यात्रा करनेसे पराजय होती है। सम्मुख शुक्रके दोषको कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किंतु वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम—इन पाँच गोत्रवालोंको सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। यदि एक ग्रामके भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाहमें जाना हो या दुर्भिक्ष होनेपर अथवा राजाओंमें युद्ध होनेपर तथा राजा या ब्राह्मणोंका कोप होनेपर कहीं जाना पड़े तो इन अवस्थाओंमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। शुक्र यदि नीच राशिमें या शत्रुराशिमें अथवा वक्रगति या पराजित[१] हो तो यात्रा करनेवालोंकी पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्चराशि (मीन)-में हो तो यात्रामें विजय होती है॥ ६३५—६३८)

अपने जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या लग्नमें तथा शत्रुकी राशिसे छठी राशिमें या लग्नमें अथवा इन सबोंके स्वामी जिस राशिमें हों, उस लग्न या राशिमें यात्रा करनेवालेकी मृत्यु होती है। परंतु यदि जन्मलग्नराशिपति और अष्टम राशिपतिमें परस्पर मैत्री हो तो उक्त अष्टमराशिजन्य दोष स्वयं नष्ट हो जाता है॥ ६३९-६४०॥

द्विस्वभाव लग्न यदि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो तो यात्रामें पराजय होती है तथा स्थिर राशि पापग्रहसे युक्त न हो तो वह यात्रालग्नमें अशुभ है। यदि स्थिर राशिलग्नमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो शुभ फल होता है॥ ६४१॥

धनिष्ठा नक्षत्रके उत्तरार्धसे आरम्भ करके (रेवतीपर्यन्त) पाँच नक्षत्रोंमें गृहार्थ तृण-काष्ठोंका संग्रह, दक्षिणकी यात्रा, शय्या (तकिया, पलङ्ग आदि)-का बनाना, घरको छवाना आदि कार्य नहीं करने चाहिये॥ ६४२॥

यदि यात्रालग्नमें जन्मलग्न, जन्मराशि या इन दोनोंके स्वामी हों अथवा जन्मलग्न या जन्मराशिसे ३, ६, ११, १० वीं राशि हो तो शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४३॥

यदि शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ) तथा दिग्द्वार (यात्राकी दिशा)-की राशि लग्नमें हो अथवा किसी भी लग्नमें शुभग्रहके वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंका नाश होता है॥ ६४४॥

शत्रुके जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या उन दोनोंके स्वामी जिस राशिमें हों वह राशि यात्रालग्नमें हो तो शत्रुका नाश होता है॥ ६४५॥

मीन लग्नमें या लग्नगत मीनके नवमांशमें यात्रा करनेसे मार्ग (रास्ता) टेढ़ा हो जाता है। (अर्थात् बहुत घूमना पड़ता है।) तथा कुम्भलग्न और लग्नगत कुम्भका नवमांश भी यात्रामें अत्यन्त निन्दित है॥ ६४६॥

जलचर राशि (कर्क, मीन) या जलचर राशिका नवमांश लग्नमें हो तो नौकाद्वारा नदी-नद आदि मार्गसे यात्रा शुभ होती है॥ ६४६ $\frac{1}{2}$॥

(**लग्नभावोंकी संज्ञा—**) १- मूर्ति (तन), २- कोष (धन), ३- धन्वी (पराक्रम, भ्राता), ४- वाहन (सवारी, माता), ५- मन्त्र (विद्या, संतान), ६- शत्रु (रोग, मामा), ७- मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी), ८- आयु (मृत्यु), ९- मन (अन्तःकरण, भाग्य), १०- व्यापार (व्यवसाय, पिता), ११- प्राप्ति (लाभ), १२- अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी संज्ञाएँ हैं॥ ६४७-६४८॥

---

१. जब मङ्गलादि ग्रहोंमें किन्हीं दो ग्रहोंकी एक राशिमें अंशकला बराबर हो तो दोनोंमें युद्ध समझा जाता है। उन दोनोंमें जो उत्तर रहता है, वह विजयी तथा दक्षिण रहनेवाला पराजित होता है।

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब भावोंमें जानेसे भावफलको नष्ट कर देते हैं[1]। तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे इन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भावफल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म)-को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग)-को नष्ट करते हैं॥ ६४९॥ शुभ ग्रहोंमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

**( अभिजित्-प्रशंसा— )** अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल-१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त)-में पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है॥ ६५०-६५१॥

**( यात्रा-योग— )** लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों)-को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्तबलसे इष्टसिद्धि होती है। तत्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है॥ ६५२ $\frac{1}{2}$॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो 'योग' कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (९, ५)-में हों तो योगधियोग कहलाता है॥ ६५३ $\frac{1}{2}$॥ योगमें यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमें यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है॥ ६५४ $\frac{1}{2}$॥ लग्नसे दसवें स्थामें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमें शनि और लग्नमें सूर्य हों तो इस समयमें यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है॥ ६५५ $\frac{1}{2}$॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं॥ ६५६ $\frac{1}{2}$॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमें यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है॥ ६५७ $\frac{1}{2}$॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह॥ ६५८ $\frac{1}{2}$॥

अपने उच्च (मीन)-में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष)-का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था॥ ६५९ $\frac{1}{2}$) यदि यात्राके समय शुभग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है॥ ६६० $\frac{1}{2}$॥ गुरु, रवि और

---

१. जैसे पापग्रह लग्न (तनुभाव)-में रहता है तो शरीरमें कष्ट-पीड़ा देता है तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु जब तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है ॥ ६६१ १/२ ॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११ में पापग्रह हों और शुभ-ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है ॥ ६६२ १/२ ॥ अपने उच्च (कर्क)-में स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ६६३ १/२ ॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६ १/२ ॥ गुरु लग्नमें और शुक्र किसी केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो यात्री नरेश अपने शत्रुओंको वैसे ही भस्म कर देता है, जैसे वनको दावानल ॥ ६६५ १/२ ॥ यदि बुध लग्नमें और अन्य शुभग्रह किसी केन्द्रमें हों तथा नक्षत्र भी अनुकूल हो तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको वैसे ही सोख लेता है, जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म-ऋतुमें क्षुद्र नदियोंको सोख लेती है ॥ ६६६ १/२ ॥ सम्पूर्ण शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अन्धकारको सूर्यकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६७ १/२ ॥

शुभग्रह यदि अपनी राशिमें स्थित होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०), त्रिकोण (५, ९) तथा आय (११) भावमें हो तो यात्रा करनेवाला राजा रूईको अग्निके समान अपने शत्रुओंको जलाकर भस्म कर देता है ॥ ६६८ १/२) चन्द्रमा दसवें भावमें और बृहस्पति केन्द्रमें हों तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रणवसहित पञ्चाक्षर-मन्त्र ( **ॐ नमः शिवाय** ) पाप-समूहका नाश कर देता है ॥ ६६९ १/२ ॥ अकेला शुक्र भी यदि वर्गोत्तम नवमांशगत लग्नमें स्थित हो तो उसमें भी यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे पापोंको श्रीभगवान्का स्मरण ॥ ६७० १/२ ॥ शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार सपरिवार नष्ट करता है, जैसे इन्द्र पर्वतोंको ॥ ६७१ १/२ ॥ बृहस्पति अथवा शुक्र अपने मित्रकी राशिमें होकर केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो ऐसे समयमें यात्रा करनेवाला भूपाल सर्पोंको गरुड़के समान अपने शत्रुओंको अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ६७२ १/२ ॥ यदि एक भी शुभग्रह वर्गोत्तम नवमांशमें स्थित होकर केन्द्रमें हो तो यात्रा करने-वाला नरेश पाप-समूहोंको गङ्गाजीके समान अपने शत्रुओंको क्षणभरमें नष्ट कर देता है ॥ ६७३ १/२ ॥ जो राजा शत्रुओंको जीतनेके लिये उपर्युक्त राजयोगोंमें यात्रा करता है, उसका कोपानल शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे शान्त होता है ॥ ६७४ १/२ ॥ आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि 'विजया' कहलाती है। उसमें जो यात्रा करता है, उसे अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है अथवा शत्रुओंसे सन्धि (मेल) हो जाती है। किसी भी दशामें उसकी पराजय नहीं होती है ॥ ६७५ १/२ ॥

**( मनोजय-प्रशंसा— )** यात्रा आदि सभी कार्योंमें निमित्त और शकुन आदि (लग्न एवं ग्रहयोग)-की अपेक्षा भी मनोजय (मनको वशमें तथा प्रसन्न रखना) प्रबल है। इसलिये मनस्वी पुरुषोंके लिये यत्नपूर्वक फलसिद्धिमें मनोजय ही प्रधान कारण होता है ॥ ६७६ १/२ ॥

**( यात्रामें प्रतिबन्ध— )** यदि घरमें उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो तो जीवनकी इच्छा रखनेवालोंको बिना उत्सवको समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ६७७$\frac{1}{2}$)

**( यात्रामें अपशकुन— )** यात्राके समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहोंमें लड़ाई हो, स्त्रीसे कलह हो या स्त्रीका मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीरसे खिसककर गिर पड़े, किसीपर क्रोध हो जाय या मुखसे दुर्वचन कहा गया हो तो उस दशामें राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ६७८$\frac{1}{2}$ ॥

**( दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद[1]— )** यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशाकी यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशाको जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशाकी यात्रा करे तो निश्चय ही वह शत्रुओंपर विजय पाता है। रविवारको सज्जिका (मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही), सोमवारको खीर, मङ्गलवारको काँजी, बुधवारको दूध, गुरुवारको दही, शुक्रवारको दूध तथा शनिवारको तिल और भात खाकर यात्रा करे तो शत्रुओंको जीत लेता है। अश्विनीमें कुल्माष (उड़दका एक भेद), भरणीमें तिल, कृत्तिकामें उड़द, रोहिणीमें गायका दही, मृगशिरामें गायका घी, आर्द्रामें गायका दूध, आश्लेषामें खीर, मघामें नीलकण्ठका दर्शन, हस्तमें षाष्टिक्य (साठी धान्य)-के चावलका भात, चित्रामें प्रियङ्गु (कँगनी), स्वातीमें अपूप (मालपूआ), अनुराधामें फल (आम, केला आदि), उत्तराषाढ़में शाल्य (अगहनी धानका चावल), अभिजित्‌में हविष्य, श्रवणमें कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठामें मूँग, शतभिषामें जौका आटा, उत्तरभाद्रपदमें खिचड़ी तथा रेवतीमें दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या नरयान (पालकी)-पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है॥ ६७९—६८४॥

**( यात्राविधि— )** प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रङ्गवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्‌पालोंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये॥ ६८५$\frac{1}{2}$ ॥

**( दिक्‌पालोंके स्वरूपका ध्यान— )** (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शचीदेवीके साथ ऐरावतपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं। उनके हाथमें वज्र है। उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं। वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहादेवीके प्रियतम हैं तथा स्रुक्‌-स्रुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं। (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है। उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ़ हैं। उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है। वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं। (४ नैर्ऋत्यकोणके अधिपति) निर्ऋतिका वर्ण नील है। वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार

१. दोहद—जिसे जिस वस्तुकी विशेष चाह होती है, जिसकी प्राप्तिसे मन प्रसन्न हो जाता है, वह उसका 'दोहद' कहलाता है। पूर्व दिशाकी अधिष्ठात्रीदेवी चाहती है कि लोग घृतमिश्रित अन्न खायँ। रविवारका अधिपति चाहता है कि लोग रसाला (सिखरन—मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही) खायँ इत्यादि। इसी प्रकार अन्य वारादिमें भी जानना चाहिये। दोहद-भक्षण करनेसे उस वार आदिका दोष नष्ट हो जाता है।

लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है। उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है। (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है। वे नागपाश धारण करते हैं। ग्राह उनका वाहन है। वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ़ हैं। अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं। उनकी दो भूजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं। इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे। (७ उत्तर दिशाके स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं। वे हाथमें कलश धारण करते हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है। वे चित्रलेखादेवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं। (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ़ हैं। वे सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये)॥ ६८६—६९३$\frac{1}{2}$॥

**( प्रस्थानविधि— )** यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो, उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे। अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्गी)-से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे। अन्य (राज-मन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे॥ ६९४—६९६$\frac{1}{2}$॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ६९७$\frac{1}{2}$॥

**( शकुन— )** यात्राकालमें रला नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है। छछुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं। कोयला, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं। काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है॥ ६९८—७००॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है। वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है॥ ७०१॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन दें तो सब अशुभ ही समझना चाहिये। यात्राकालमें रोदन शब्दरहित कोई शव (मुर्दा) सामने दीख पड़े तो यात्राके उद्देश्यकी सिद्धि होती है। परंतु लौटकर घर आने तथा नवीन गृहमें प्रवेश करनेके समय यदि रोदन शब्दके साथ मुर्दा दीख पड़े तो वह घातक होता है॥ ७०२-७०३॥

**( अपशकुन— )** यात्राके समय पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषध आदि खाकर वमन (उलटी) करनेवाला, शरीरमें तेल लगानेवाला, वसा, हड्डी, चर्म, अङ्गार (ज्वालारहित अग्नि), दीर्घ रोगी, गुड़, कपास (रूई), नमक, प्रश्न (पूछने या टोकनेका शब्द), तृण, गिरगिट, बन्ध्या स्त्री, कुबड़ा, गेरुआ वस्त्रधारी, खुले केशवाला, भूखा तथा नंगा—ये सब सामने उपस्थित हो जायँ तो अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है॥ ७०४-७०५॥

**( शुभ शकुन— )** प्रज्वलित अग्नि, सुन्दर घोड़ा, राजसिंहासन, सुन्दरी स्त्री, चन्दन आदिकी सुगन्ध, फूल, अक्षत, छत्र, चामर, डोली या पालकी, राजा, खाद्य पदार्थ, ईख, फल, चिकनी मिट्टी, अन्न, शहद, घृत, दही, गोबर, चूना, धुला हुआ वस्त्र, शङ्ख, श्वेत बैल, ध्वजा, सौभाग्यवती स्त्री, भरा हुआ कलश, रत्न (हीरा, मोती आदि), भृङ्गार (गडुआ), गौ, ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदङ्ग, दुन्दुभि, घण्टा तथा वीणा (बाँसुरी) आदि वाद्योंके शब्द, वेदमन्त्र एवं मङ्गल गीत आदिके शब्द—ये सब यात्राके समय यदि देखने या सुननेमें आवें तो यात्रा करनेवाले लोगोंके सब कार्य सिद्ध करते हैं॥ ७०६—७०९॥

**( अपशकुन-परिहार— )** यात्राके समय प्रथम बार अपशकुन हो तो खड़ा होकर इष्टदेवका स्मरण करके फिर चले। दूसरा अपशकुन हो तो ब्राह्मणोंकी पूजा (वस्त्र, द्रव्य आदिसे उनका सत्कार) करके चले। यदि तीसरी बार अपशकुन हो जाय तो यात्रा स्थगित कर देनी चाहिये॥ ७१०॥

**( छींकके फल— )** यात्राके समय सभी दिशाओंकी छींक निन्दित है। गौकी छींक घातक होती है, किंतु बालक, वृद्ध, रोगी या कफवाले मनुष्यकी छींक निष्फल होती है॥ ७११॥

परस्त्रियोंका स्पर्श करनेवाला तथा ब्राह्मण और देवताके धनका अपहरण करनेवाला तथा अपने छोड़े हुए हाथी और घोड़ेको बाँध लेनेवाला, शत्रु यदि सामने आ जाय तो राजा उसे अवश्य मार डाले; परंतु स्त्रियों तथा शस्त्रहीन मनुष्योंपर कदापि हाथ न उठावे॥ ७१२॥

**( गृह-प्रवेश— )** नये घरमें प्रथम बार प्रवेश करना हो तो उत्तरायणके शुभ मुहूर्तमें करे। पहले दिन विधिपूर्वक वास्तु-पूजा और बलि (नैवेद्य) अर्पण करके गृहमें प्रवेश करना चाहिये॥ ७१३॥

**( गृह-प्रवेशमें विहित मास— )** माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें गृहप्रवेश श्रेष्ठ होता है। तथा अगहन और कार्तिक इन दो मासोंमें मध्यम होता है।

**( विहित नक्षत्र— )** मृगशिरा, पुष्य, रेवती, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा और स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रोंमें बृहस्पति और शुक्र दोनों उदित हों तब रवि और मङ्गलको छोड़कर अन्य वारोंमें रिक्ता (४, ९, १४) तथा अमावास्या छोड़कर अन्य तिथियोंमें दिन या रात्रिके समय गृहप्रवेश शुभप्रद होता है। चन्द्रबल और ताराबलसहित उपद्रवरहित दिनके पूर्वाह्ण भागमें स्थिर राशिके नवमांशयुक्त स्थिर लग्नमें जब लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो, शुभग्रह त्रिकोण या केन्द्रमें हों, पापग्रह ३, ६, ११ भावोंमें हों और चन्द्रमा लग्न, १२, ८, ६ इनसे भिन्न स्थानोंमें हों, तब गृह-प्रवेश करनेवाले यजमानकी जन्मराशि, जन्मलग्न या इन दोनोंसे उपचय (३, ६, १०, ११ वाँ) राशिके गृह-प्रवेश लग्नमें विद्यमान होनेपर सब प्रकारके सुख और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। अन्यथा इससे विपरीत समयमें गृह-प्रवेश किया जाय तो शोक और निर्धनता प्राप्त होती है॥ ७१४—७१९॥

**( प्रवेश-विधि— )** जिस नूतन गृहमें प्रवेश करना हो, उसको चित्र आदिसे सजाकर तथा

पुष्प-तोरण आदिसे अलंकृत करके वेद-ध्वनि, शान्तिपाठ, सौभाग्यवती स्त्रियोंके माङ्गलिक गीत तथा वाद्य आदिके शब्दोंके साथ सूर्यको वाम भागमें रखकर जलसे भरे हुए कलशको आगे करके उसमें प्रवेश करना चाहिये॥ ७२०॥

(**वृष्टि-विचार—**) वर्षा-प्रवेश (आर्द्रा नक्षत्रमें सूर्यके प्रवेश)-के समय यदि शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा जलचर राशिमें या लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०)-में स्थित होकर शुभग्रहसे देखे जाते हों तो अधिक वृष्टि होती है। यदि उस समय चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि हो तो दीर्घकालमें अल्पवृष्टि समझनी चाहिये। (इससे सिद्ध होता है कि यदि चन्द्रमापर पाप और शुभ दोनों ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है।) जिस प्रकार चन्द्रमासे फल कहा गया है, उसी प्रकार उस समय शुक्रसे भी समझना चाहिये। (अर्थात् सूर्यके आर्द्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये)॥ ७२१-७२२॥

वर्षाकालमें आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमें अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है॥ ७२३॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमें स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है। किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र)-के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है॥ ७२४॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा)-में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये॥ ७२५॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पड़ते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है॥ ७२६॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक)-में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है। उदय या अस्तके समय यदि आर्द्रामें सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है॥ ७२७॥

यदि सूर्यका आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)-की वृद्धि होती है। यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है। यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हों तो ईति (खेतीके टिड्डी आदि सब उपद्रव)-का नाश होता है॥ ७२८-७२९॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हों तो आर्द्रासे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है॥ ७३०॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा)-तक वर्षा नहीं होती है। सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमें अभिन्न हो एवं कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है॥ ७३१ $\frac{१}{२}$॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है। अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है। वर्षाकाल (चातुर्मास्य)-में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्रासे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है। चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामें बिजली

दीख पड़े या मेढकोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है। पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है। बिलाव अपने नाखूनोंसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कांसी आदि)-में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षाके सूचक चिह्न हैं।

चींटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगुनू दीख पड़ें तथा सर्पोंका वृक्षपर चढ़ना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं।

उदय या अस्त-समयमें यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है॥ ७३२—७३८$\frac{1}{2}$॥

**( पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग— )** कूर्मदेवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोंमें इस भारत भूमिके नौ विभाग करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिणक्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों)-को समझे। अन्तर्वेदी (मध्यभाग)-में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्मभगवान्‌का नाभिमण्डल है। मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं। स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं। अवन्ती, द्रविड और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं। गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्र देश—ये सब देश दोनों अगले पैर हैं। सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं। पुलिन्द चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं। कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं। खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, वाह्लीक और काम्बोज—ये दोनों हाथ हैं॥ ७३९—७४४॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे। जिस अङ्गके नक्षत्रमें पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोंमें शुभग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं॥ ७४५॥

**( मूर्ति-प्रतिमा-विकार— )** देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गावे, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या जलका वमन करे, अधोमुख हो जाय, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चली जाय तथा इसी तरहकी अनेक अद्भुत बातें दीख पड़ें तो यह प्रतिमा-विकार कहलाता है। यह विकार अशुभ फलका सूचक होता है।

**( विविध विकार— )** यदि आकाशमें गन्धर्वनगर (ग्रामके समान आकार), दिनमें ताराओंका दर्शन, उल्कापतन, काष्ठ, तृण और शोणितकी वर्षा, गन्धर्वोंका दर्शन, दिग्दाह, दिशाओंमें धूम छा जाना, दिन या रात्रिमें भूकम्प होना, बिना आगके स्फुलिङ्ग (अङ्गार) दीखना, बिना लकड़ीके आगका जलना, रात्रिमें इन्द्रधनुष या परिवेष (घेरा) दीखना पर्वत या वृक्षादिके ऊपर उजला कौआ दिखायी देना तथा आगकी चिनगारियोंका प्रकट होना आदि बातें दिखायी देने लगें, गौ, हाथी और घोड़ोंके दो या तीन मस्तकवाला बच्चा पैदा हो, प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओंमें अरुणोदय-सा प्रतीत हो, गाँवमें गीदड़ोंका दिनमें बास हो, धूम-केतुओंका दर्शन होने लगे तथा रात्रिमें कौओंका और दिनमें कबूतरोंका क्रन्दन हो तो ये भयंकर उत्पात हैं। वृक्षोंमें बिना समयके फूल या फल दीख पड़ें तो उस वृक्षको काट देना चाहिये और उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। इस प्रकारके और भी जो बड़े-बड़े उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्थान (देश या ग्राम)-का नाश करनेवाले होते हैं। कितने ही उत्पात घातक होते हैं; कितने ही शत्रुओंसे भय उपस्थित करते हैं। कितने ही उत्पातोंसे भय, यश, मृत्यु, हानि, कीर्ति, सुख-दुःख और

ऐश्वर्यकी भी प्राप्ति होती है। यदि वल्मीक (दीमककी मिट्टीके ढेर)-पर शहद दीख पड़े तो धनकी हानि होती है। द्विजश्रेष्ठ! इस तरहके सभी उत्पातोंमें यत्नपूर्वक कल्पोक्त विधिसे शान्ति अवश्य कर लेनी चाहिये। नारदजी! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने ज्यौतिषशास्त्रका वर्णन किया है। अब वेदके छहों अङ्गोंमें श्रेष्ठ छन्दःशास्त्रका परिचय देता हूँ॥ ७४६—७५८॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५६)

## छन्दःशास्त्रका संक्षिप्त परिचय[1]

**सनन्दनजी कहते हैं**—नारद! छन्द दो प्रकारके बताये जाते हैं—वैदिक[2] और लौकिक[3]। मात्रा और वर्णके भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुनः दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक[4] छन्द और वर्णिक[5] छन्द)॥ १॥ छन्दःशास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है॥ २॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों उसे मगण (ऽऽऽ) कहा गया है। जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (।ऽऽ) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (ऽ।ऽ) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (।।ऽ) है॥ ३॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (ऽऽ।) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (।ऽ।) और

१. शास्त्रकारोंने द्विजातियोंके लिये छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययनका आदेश दिया है। उन्हीं अङ्गोंमेंसे छन्द भी एक अङ्ग है। इसे वेदका चरण माना गया है—'छन्दः पादौ तु वेदस्य।' (पा० शि० ४१) 'अनुष्टुभा यजति, बृहत्या गायति, गायत्र्या स्तौति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (अनुष्टुप्‌से यजन करे, बृहती छन्दद्वारा गान करे, गायत्री छन्दसे स्तुति करे) इत्यादि विधियोंका श्रवण होनेसे छन्दका ज्ञान परम आवश्यक सिद्ध होता है। छन्द न जाननेसे प्रत्यवाय भी होता है; जैसा कि छान्दोग ब्राह्मणका वचन है—'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) ( जो ऋषि, छन्द, देवता तथा विनियोगको जाने बिना ब्राह्मणमन्त्रसे यज्ञ कराता और शिष्योंको पढ़ाता है, वह ठूँठे काठके समान हो जाता है, नरकमें गिरता है, वेदोक्त आयुका पूरा उपभोग न करके बीचमें ही मृत्युको प्राप्त होता है अथवा महान् पापका भागी होता है। उसके किये हुए समस्त वेदपाठ यातयाम (प्रभाव-शून्य व्यर्थ) हो जाते हैं); इसलिये छन्दका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। इसीके लिये इस छन्दःशास्त्रका आरम्भ हुआ है।

२. वेदमन्त्रोंमें जो गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप् आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनको वैदिक छन्द कहते हैं। यथा—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

—यह गायत्री छन्द है।

३. इतिहास, पुराण, काव्य आदिके पद्योंमें प्रयुक्त जो छन्द हैं, वे लौकिक कहे गये हैं। यथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—यह 'श्लोक अनुष्टुप् छन्द है।

४. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको 'मात्रिक' कहते हैं। जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पन्द्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं। आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो 'गीति' और उत्तरार्ध-सदृश पूर्वार्ध हो तो 'उपगीति' छन्द होते हैं।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलीलं वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः। स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः॥

५. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको 'वर्णिक' कहते हैं। यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासाः। चित्ते चिदानन्दमयं तमोघ्नममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्तः॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजाति नामक छन्द है।

जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (ऽ॥) है। मुने! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (॥।) कहा गया है। तीन अक्षरोंके समुदायका नाम गण है[१]॥४॥ आर्या आदि छन्दोंमें चार मात्रावाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघुवाले गणसे युक्त हैं[२]। यदि लघु अक्षरसे परे संयोग, विसर्ग और अनुस्वार हो तो वह लघुकी दीर्घताका बोधक होता है[३]। इस छन्दःशास्त्रमें 'ग' का अर्थ गुरु या दीर्घ माना गया है और 'ल' का अर्थ लघु समझा जाता है। पद्य या श्लोकके एक चौथाई भागको पाद कहते हैं। विच्छेद या विरामका नाम 'यति' है॥५-६॥ नारद! वृत्त (छन्द)-के तीन भेद माने गये हैं— सम वृत्त, अर्धसम वृत्त तथा विषम वृत्त। जिसके चारों चरणोंमें समान लक्षण लक्षित होता हो, वह सम वृत्त[४] कहलाता है॥७॥ जिसके प्रथम और तीसरे चरणोंमें एवं दूसरे तथा चौथे चरणोंमें

---

१. गणोंके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाननी चाहिये—

| गणनाम | मगण | यगण | रगण | सगण | तगण | जगण | भगण | नगण |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्वरूप | ऽऽऽ | ।ऽऽ | ऽ।ऽ | ।।ऽ | ऽऽ। | ।ऽ। | ऽ।। | ।।। |
| देवता | पृथ्वी | जल | अग्नि | वायु | आकाश | सूर्य | चन्द्रमा | स्वर्ग |
| फल | लक्ष्मी-वृद्धि | वृद्धि या अभ्युदय | विनाश | भ्रमण | धन-नाश | रोग | सुयश | आयु |
| मित्रआदि संज्ञाएँ | मित्र | भृत्य | शत्रु | शत्रु | उदासीन | उदासीन | भृत्य | मित्र |

यदि काव्यमें ऐसे छन्दको चुना गया, जो जगण आदि अनिष्टकारी गणोंसे संयुक्त हो तो उसकी शान्तिके लिये प्रारम्भमें भगवद्वाचक एवं देवतावाचक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये; जैसा कि भामहका वचन है—

देवतावाचकाः शब्द ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा॥ (पिङ्गलसूत्रकी हलायुध-वृत्तिसे उद्धृत)

'जो देवतावाचक और मङ्गलादिवाचक शब्द हैं, वे सब लिपिदोष या गणदोषसे भी निन्दित नहीं होते।' (उनके द्वारा उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है।)

२. यथा—

| | सर्वगुरु | अन्त्यगुरु | मध्यगुरु | आदिगुरु | चतुर्लघु |
|---|---|---|---|---|---|
| | ऽऽ | ।।ऽ | ।ऽ। | ऽ।। | ।।।। |
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ |

इन भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—कर्ण, करतल, पयोधर, वसुचरण और विप्र।

३. जैसे—रामं। रामः। रामस्य। यहाँ 'राम' शब्दके 'म' में ह्रस्व अकार है, तथापि उसमें अनुस्वार और विसर्गका सम्बन्ध होनेसे वह दीर्घ ही माना जाता है। इसी प्रकार 'स्य' यह संयुक्त अक्षर परे होनेसे 'रामस्य' में मकारके परवर्ती अकारको दीर्घ समझा जाता है। पादके अन्तमें जो लघु अक्षर हो, वह भी विकल्पसे 'गुरु' माना जाता है।

४. सम वृत्तका उदाहरण—

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥

(इस 'शिखरिणी' छन्दके चारों चरणोंमें एक समान ह्रस्व-दीर्घवाले सत्रह-सत्रह अक्षर हैं।)

समान लक्षण हों, वह अर्धसम[1] वृत्त है। जिसके चारों चरणोंमें एक-दूसरेसे भिन्न लक्षण लक्षित होते हों, वह विषम[2] वृत्त है ॥ ८ ॥ एक अक्षरके पादसे आरम्भ करके एक-एक अक्षर बढ़ाते हुए जबतक छब्बीस अक्षरका पाद पूरा हो तबतक पृथक्-पृथक् छन्द बनते हैं। छब्बीस अक्षरसे अधिकका चरण होनेपर चण्डवृष्टिप्रपात आदि दण्डक[3] बनते हैं। तीन या छः पादोंसे गाथा[4] होती है। अब क्रमशः एकसे छब्बीस अक्षरतकके पादवाले छन्दोंकी संज्ञा सुनो ॥ ९-१० ॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टिधृति, विधृति (या अतिधृति), कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति[5] ॥ ११—१३ ॥

---

१. अर्धसम वृत्तका उदाहरण—

IIIIIIS IS ISS IIIS IIS IS ISS

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने। वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥

यह 'पुष्पिताग्रा' छन्द है। इसके प्रथम और तृतीय चरण एक समान लक्षणवाले बारह-बारह अक्षरके हैं। उनमें २ नगण, १ रगण और १ यगण हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें एक-से लक्षणवाले तेरह-तेरह अक्षर हैं। इनमें १ नगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु हैं।

अर्धसम वृत्तोंमें 'पुष्पिताग्रा' के अतिरिक्त हरिणप्लुता तथा वैतालीय या वियोगिनी आदि और भी अनेक छन्द होते हैं। वैतालीय अथवा वियोगिनीके प्रथम और तृतीय चरणोंमें २ सगण, १ जगण और १ गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें १ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

IISI ISISI S IISS IISI SIS

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥

'हरिणप्लुता' (में विषम पादोंमें ३ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं और सम पादोंमें १ नगण, २ भगण और १ रगण होते हैं। इसके दूसरे, चौथे पाद द्रुतविलम्बितके ही समान हैं।)

उदाहरण—

IIS IIS IIS IS IIIS IIS IIS IS

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता वलिमनोज्ञतटा तरणेः सुता।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मनः ॥

२. विषम वृत्तका उदाहरण—

नलिनेक्षणं शशिमुखं च रुचिरदशनं घनच्छविम्। चारुचरणकमलं कमलाञ्छितमाव्रज व्रजमहेन्द्रनन्दनम् ॥

(—इस 'उद्गता' नामक छन्दमें चारों चरणोंके भिन्न-भिन्न लक्षण हैं। इसके प्रथम पादमें स, ज, स, ल; २ में न, स, ज, ग; ३ में भ, न, ज, ल, ग और ४ में स, ज, स, ज, ग होते हैं।)

३. छब्बीस अक्षरोंसे अधिकका एक-एक चरण होनेपर जो छन्द बनता है उसे, 'दण्डक' कहते हैं। सत्ताईस अक्षरोंके दण्डकका नाम 'चण्डवृष्टिप्रपात' है। इसमें दो 'नगण' और सात 'रगण' होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

इह हि भवति दण्डकारण्यदेशे स्थितिः पुण्यभाजां मुनीनां मनोहारिणी
त्रिदशविजयिवीर्यदृप्यद्दशग्रीवलक्ष्मीविरामेण रामेण संसेविते।
जनकयजनभूमिसम्भूतसीमन्तिनीसीमसीतापदस्पर्शपूताश्रमे
भुवननमितपादपद्माभिधानाम्बिकातीर्थयात्रागतानेकसिद्धाकुले ॥

४. आचार्य पिङ्गलके मतमें पिङ्गल सूत्रोंमें जिनके नामका उल्लेख नहीं हुआ है, ऐसे छन्दोंकी 'गाथा' संज्ञा है। यहाँ मूलमें तीन पाद या छः पादके छन्दोंको 'गाथा' कहा गया है। अतः उसके किसी विशेष लक्षण या उदाहरणका उल्लेख नहीं किया गया।

५. (१) जिसके प्रत्येक चरणमें एक-एक अक्षर हो, उस छन्दका नाम 'उक्ता' है। इसके दो भेद होते हैं। पहला गुरु अक्षरोंसे बनता है, दूसरा लघु अक्षरोंसे। गुरु अक्षरोंसे जो छन्द बनता है, उसका नाम पिङ्गलाचार्यने 'श्री' रखा है। उदाहरण—'विष्णुं वन्दे।' लघु अक्षरोंवाले उक्ता छन्दका उदाहरण 'हरिरिह' समझना चाहिये।

(२) जिसके प्रत्येक चरणमें दो-दो अक्षरोंकी संयोजना हो, वह 'अत्युक्ता' नामक छन्द है। प्रस्तारसे इसके चार भेद हो सकते हैं। यहाँ विस्तार-भयसे केवल एक प्रथम भेद 'स्त्री' का उदाहरण दिया जाता है। दो गुरु अक्षरोंवाले चार पदोंसे जो छन्द बनता है, उसको 'स्त्री' कहते हैं।

उदाहरण—

SS

'अन्यस्त्रीभिः सङ्गस्त्याज्यः।'

(३) तीन-तीन अक्षरोंके चार पादोंसे 'मध्या' नामक छन्द बनता है। प्रस्तारसे उसके भेदोंकी संख्या आठ होती है। इसके प्रथम भेदका, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, आचार्य पिङ्गलने 'नारी' नाम नियत किया है।

उदाहरण—

ऽऽऽ

१-'सर्वासां नारीणाम्। भर्ता स्यादाराध्यः॥'

ऽ।ऽ

२-'प्राणतः प्रेयसी। राधिका श्रीपतेः॥'

यह दूसरा उदाहरण मध्याका तृतीय भेद है। इसे 'मृगी' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरणमें एक-एक रगण होता है।

(४) चार-चार अक्षरोंके चार पादवाले छन्द-समूहका नाम 'प्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके सोलह भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम 'कन्या' है। उदाहरण पढ़िये—

ऽ ऽ ऽ ऽ

भास्वत्कन्या सैका धन्या। यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत्॥

(५) पाँच-पाँच अक्षरके चार पादवाले छन्दसमुदायका नाम 'सुप्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके बत्तीस भेद होते हैं। इनमें सातवाँ भेद 'पंक्ति' है, उसे यहाँ बतलाया जाता है। भगण तथा दो गुरु अक्षरोंसे पंक्ति छन्दकी सिद्धि होती है।

उदाहरण—

ऽ।। ऽ ऽ

कृष्णसनाथा तर्णकपंक्तिः। यामुनकच्छे चारु चचार॥

(६) जिसके चारों चरणोंमें छः-छः अक्षर हों, उस छन्द-समूहका नाम गायत्री है। प्रस्तारसे इसके चौंसठ भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम विद्युल्लेखा, तेरहवें भेदका नाम तनुमध्या, सोलहवेंका नाम शशिवदना तथा उन्तीसवेंका नाम वसुमती है। यहाँ केवल इन्हीं चरणोंका उल्लेख किया जाता है। दो मगण (ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ) होनेसे विद्युल्लेखा, एक तगण (ऽऽ।) और एक यगण (। ऽ ऽ) होनेसे तनुमध्या, एक नगण (।।।) और एक यगण (। ऽ ऽ) होनेसे शशिवदना तथा एक तगण (ऽ ऽ ।) और एक सगण (।।ऽ) होनेसे वसुमती नामक छन्द बनता है। उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

'विद्युल्लेखा'—

ऽऽऽऽऽऽ

गोगोपीगोपानां प्रेयांसं प्राणेशम्। विद्युल्लेखावस्त्रं वन्देऽहं गोविन्दम्॥

'तनुमध्या'—

ऽ ऽ ।।ऽऽ

प्रीत्या प्रतिवेलं नानाविधखेलम्। सेवे गततन्द्रं वृन्दावनचन्द्रम्॥

'शशिवदना'—

।।।।ऽऽ

परममुदारं विपिनविहारम्। भज प्रतिपालं व्रजपतिबालम्॥

'वसुमती'—

ऽ ऽ । । । ऽ

भक्तार्तिकदनं संसिद्धिसदनम्। नौमीन्दुवदनं गोविन्दमधुना॥

(७) सात-सात अक्षरोंके चार पादवाले छन्दसमुदायको 'उष्णिक्' कहा गया है, प्रस्तारसे इसके एक सौ अट्ठाईस भेद होते हैं। इनमेंसे पचीसवाँ भेद 'मदलेखा' और तीसवाँ भेद 'कुमारललिता' के नामसे प्रसिद्ध है। मगण, सगण तथा एक गुरु—इन सात अक्षरोंसे 'मदलेखा' तथा जगण, सगण और एक गुरुसे 'कुमारललिता' छन्दकी सिद्धि होती है। प्रथमका उदाहरण यों है—

ऽऽ ऽ।।ऽऽ ऽऽऽ। । ऽऽ

रङ्गे बाहुविरुग्णाद् दन्तीन्द्रान्मदलेखा। लग्नाभून्मुरशत्रौ कस्तूरीरसचर्चा॥

(८) आठ अक्षरवाले चार पदोंसे जो छन्द बनते हैं, उनकी जातिवाचक संज्ञा 'अनुष्टुप्' है। प्रस्तारसे अनुष्टुप्के दो सौ छप्पन भेद होते हैं। इसके विद्युन्माला, माणवकाक्रीड, चित्रपदा, हंसरुत, प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी, समानिका, श्लोक तथा वितान आदि अनेक भेद-प्रभेद हैं। श्लोक-छन्दके प्रत्येक चरणमें छठा अक्षर गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। प्रथम और तृतीय चरणोंमें सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है तथा द्वितीय तथा चतुर्थ चरणोंमें वह ह्रस्व हुआ करता है। शेष अक्षरोंका विशेष नियम न होनेसे इस श्लोक-छन्दके भी बहुत-से अवान्तर भेद हो जाते हैं। उपर्युक्त छन्दोंमें विद्युन्माला अनुष्टुप्का प्रथम भेद है; क्योंकि

उसमें सभी अक्षर गुरु होते हैं। इसमें चार-चार अक्षरोंपर विराम होता है। प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी छियासीवाँ भेद है। इसमें जगण, रगण १ लघु तथा १ गुरु होते हैं। प्रमाणिका और समानिकाके सिवा अनुष्टुप्के जितने भेद हैं, वे सब वितानके अन्तर्गत माने जाते हैं। यहाँ विद्युन्माला, नगस्वरूपिणी, श्लोक (अनुष्टुप्) तथा माणवकाक्रीडका एक-एक उदाहरण दिया जाता है—

'विद्युन्माला'—

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

विद्युन्मालालोलान् भोगान् मुक्त्वा मुक्तौ यत्नं कुर्यात्। ध्यानोत्पन्नं निःसामान्यं सौख्यं भोक्तुं यद्याकाङ्क्षेत्॥

'नगस्वरूपिणी'—

शिवताण्डवस्तोत्र 'नगस्वरूपिणी' छन्दमें ही लिखा गया है। उसके एक-एक पद्यमें दो-दो नगस्वरूपिणी छन्द आ गये हैं। कुछ लोग उस संयुक्तछन्दको 'पञ्चचामर' आदि नाम देते हैं। इसमें ज. र. ज. र. ज. और १ गुरु होते हैं। उदाहरण यह है—

। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ

जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि।

धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥

'श्लोक' —

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

माणवकाक्रीडमें भगण, तगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं।

जैसे—

ऽ।। ऽ ऽ।।ऽ

आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम्। स्याद् गुरु चेत् तत् कथितं माणवकाक्रीडमिदम्॥

(९) नौ-नौ अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दसमूहका नाम 'बृहती' है। प्रस्तारसे इसके पाँच सौ बारह भेद होते हैं। इसके 'हलमुखी' (१ रगण १ नगण १ सगण) तथा 'भुजङ्गशिशुभृता' (२ नगण १ भगण) भेद यहाँ बतलाये जाते हैं। इनमें एक तो २५१ वाँ भेद है और दूसरा ६४ वाँ। उदाहरण क्रमशः यों हैं—

ऽ । ऽ।। ।।। ऽ

१—हस्तयोर्मधुरमुरलीं धारयन्नधरशयने। सन्निवेश्य रवममृतं संसृजञ्जयति स हरिः॥

।।।। ।। ऽऽऽ

२—प्रणमत नयनारामं विकचकुवलयश्यामम्। अघहरयमुनानीरे भुजगशिरसि नृत्यन्तम्॥

(१०) दस अक्षरके पादवाले छन्द-समुदायको 'पङ्क्ति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १०२४ भेद होते हैं। इसके शुद्धविराट्, पणव, रुक्मवती, मयूरसारिणी, मत्ता, मनोरमा, हंसी, उपस्थिता तथा चम्पकमाला आदि अनेक अवान्तर भेद हैं। शुद्धविराट् पङ्क्तिका ३८५ वाँ भेद है। यहाँ शुद्धविराट् (मगण, सगण, जगण, १ गुरु) तथा चम्पकमालाके उदाहरण दिये जाते हैं—

ऽऽ ऽ।। ऽ। ऽ।ऽ

विश्वं तिष्ठति कुक्षिकोटरे वक्त्रे यस्य सरस्वती सदा।

सर्वेषां प्रपितामहो गुरुर्ब्रह्मा शुद्धविराट् पुनातु नः॥

'चम्पकमाला' के प्रत्येक पादमें भगण, मगण, सगण और एक गुरु होते हैं तथा पाँच-पाँच अक्षरोंपर विराम होता है। प्रत्येक चरणमें इसके अन्तिम अक्षरको कम कर देनेसे 'मणिबन्ध' छन्द हो जाता है।

उदाहरण—

ऽ। ।ऽ ऽऽ।। ऽऽ

सौम्य गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्।

इन्द्रियबाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला॥

(११) ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार चरणोंसे जिस छन्दसमुदायकी सिद्धि होती है, उसका नाम त्रिष्टुप् है। प्रस्तारसे इसके २०४८ भेद होते हैं। त्रिष्टुप्के ही अनेक अवान्तर भेद इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता और स्वागता आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिष्टुप्के किस संख्यावाले भेद हैं? इसका ज्ञान मूलोक्त रीतिसे कर लेना चाहिये। यहाँ उक्त सात छन्दोंके लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इनके प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) 'इन्द्रवज्रा छन्द'—(में २ तगण, १ जगण और २ गुरु होते हैं—)

SS। SS ।। S। SS

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(२) '<u>उपेन्द्रवज्रा</u>'— (-में १ जगण, १ तगण, १ जगण और दो गुरु होते हैं।) इन्द्रवज्राके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर ह्रस्व हो जाय तो उपेन्द्रवज्रा-छन्द बन जाता है।

। S। SS । ।S ।SS

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

(३) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा—दोनोंके मेलसे जो छन्द बनता है, उसका नाम '<u>उपजाति</u>' है। उपजातिमें कोई चरण या पाद इन्द्रवज्राका होता है, तो कोई उपेन्द्रवज्राका। प्रस्तारवश उपजातिके चौदह भेद होते हैं। उन भेदोंके नाम इस प्रकार हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि तथा बुद्धि। इनका स्वरूप निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | इ. | इ. | इ. | इ. | शुद्धा | इन्द्रवज्रा |
| २ | उ. | इ. | इ. | इ. | १ उपजाति | कीर्ति |
| ३ | इ. | उ. | इ. | इ. | २ | वाणी |
| ४ | उ. | उ. | इ. | इ. | ३ | माला |
| ५ | इ. | इ. | उ. | इ. | ४ | शाला |
| ६ | उ. | इ. | उ. | इ. | ५ | हंसी |
| ७ | इ. | उ. | उ. | इ. | ६ | माया |
| ८ | उ. | उ. | उ. | इ. | ७ | जाया |
| ९ | इ. | इ. | इ. | उ. | ८ | बाला |
| १० | उ. | इ. | इ. | उ. | ९ | आर्द्रा |
| ११ | इ. | उ. | इ. | उ. | १० | भद्रा |
| १२ | उ. | उ. | इ. | उ. | ११ | प्रेमा |
| १३ | इ. | इ. | उ. | उ. | १२ | रामा |
| १४ | उ. | इ. | उ. | उ. | १३ | ऋद्धिः |
| १५ | इ. | उ. | उ. | उ. | १४ | बुद्धिः |
| १६ | उ. | उ. | उ. | उ. | शुद्धा | उपेन्द्रवज्रा |

उदाहरण—

S S । SS ।।S। SS

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

पूर्वोक्त चक्रके अनुसार यह 'उपजाति' का बुद्धि नामक भेद है। इसीको विपरीतपूर्वा और आख्यानकी भी कहते हैं। इसमें पहला चरण इन्द्रवज्राका और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्राके हैं। जहाँ आदिसे तीन इन्द्रवज्राके और शेष (चौथा) उपेन्द्रवज्राका चरण हो, वहाँ 'बाला' नामक उपजाति होती है।

यथा—

SS । SS ।। S। S S

वन्द्यः स पुंसां त्रिदशाभिनन्द्यः
कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभिः।
संसारसारत्वमुपैति यस्य
परोपकाराभरणं शरीरम्॥

(४) 'दोधकवृत्त' (-में तीन भगण और दो गुरु होते हैं—)

S।। S।। S।। SS

दोधकमर्थविरोधकमुग्रं
स्त्रीचपलं युधि कातरचित्तम्।
स्वार्थपरं मतिहीनममात्यं
मुञ्चति यो नृपतिः स सुखी स्यात्॥

'<u>शालिनी</u>'— (-में मगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

SS SSS S। SS। SS

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।

सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः॥

'रथोद्धता'—(-में रगण, नगण, रगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

ऽ।ऽ। ।।ऽ ।ऽ ।ऽ

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।

पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

'स्वागता'—(-में रगण, नगण, भगण, दो गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ऽ ऽ

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम्।

नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार॥

इनके सिवा सुमुखी, वातोर्मी, श्रीभ्रमर-विलसित, वृन्ता, भद्रिका, श्येनिका, मौक्तिकमाला तथा उपस्थिता आदि और भी अनेक छन्द हैं। इनके लक्षण, उदाहरण अन्यत्र देखने चाहिये।

(१२) जिसके चारों चरण बारह-बारह अक्षरोंसे बनते हैं, उस छन्दसमुदायका नाम 'जगती' है। प्रस्तारसे इसके ४०९६ भेद होते हैं। इसके भेदोंमेंसे केवल वंशस्थ, इन्द्रवंशा, द्रुतविलम्बित, तोटक, भुजङ्गप्रयात, स्रग्विणी, प्रमिताक्षरा और वैश्वदेवी छन्दोंके ही लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

'वंशस्थ'—(-में जगण, तगण, जगण तथा रगण—ये चार गण होते हैं। पादके अन्तमें यति है।)

उदाहरण—

।ऽ।ऽऽ ।।ऽ।ऽ।ऽ

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।

सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

'इन्द्रवंशा'—(-में तगण, तगण, जगण तथा रगण प्रयुक्त होते हैं तथा पादान्तमें यति या विराम है। वंशस्थके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर गुरु कर दिया जाय तो वह इन्द्रवंशा छन्द हो जाता है।)

उदाहरण—

ऽ ऽ।ऽ ऽ।।ऽ ।ऽ।ऽ

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

वंशस्थ और इन्द्रवंशाके चरणोंके मेलसे भी चौदह प्रकारकी 'उपजाति' बनती है। पूर्वोक्त चक्रमें 'उ' के स्थानमें 'वं' लिख दिया जाय तो वह इन्द्रवंशा तथा वंशस्थकी उपजातिका प्रस्तार-चक्र हो जायगा। इन चौदह उपजातियोंके नाम इस प्रकार हैं—१- वैरासिकी, २- रताख्यानकी, ३- इन्दुमा, ४- पुष्टिदा, ५- उपमेया अथवा रामणीयक, ६- सौरभेयी, ७- शीलातुरा, ८- वासन्तिका, ९- मन्दहासा, १०- शिशिरा, ११- वैधात्री, १२- शङ्खचूडा, १३- रमणा तथा १४- कुमारी। इन सबके उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें उपलब्ध होते हैं। यहाँ प्रथम उपजातिका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें प्रथम चरण वंशस्थका और शेष तीन चरण इन्द्रवंशाके हैं।

। ऽ।ऽऽ।।ऽ।ऽ।ऽ

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।

येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

'द्रुतविलम्बित' (-में नगण, भगण, भगण, रगण—ये चार गण होते हैं। पादान्तमें यति होती है।)

उदाहरण—

।।। ऽ।ऽ।।ऽ ।ऽ

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

'तोटकवृत्त'—(में चार सगण होते हैं और पादान्तमें विराम हुआ करता है—)

उदाहरण—

।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्। हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

'भुजङ्गप्रयात'—(-में चार यगण और पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

।ऽ ऽ।ऽऽ।ऽऽ।ऽऽ

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः।

तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः॥

'स्रग्विणी'—(में चार रगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

ऽ।ऽ ऽ।ऽऽ। ऽऽ ।ऽ

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः।

त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः॥

'प्रमिताक्षरा—(-में सगण, जगण, सगण, सगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

।।ऽ ।ऽ ।।।ऽ ।।ऽ

परिशुद्धवाक्यरचनातिशयं परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम्।

प्रमिताक्षरापि विपुलार्थवती कविभारती हरति मे हृदयम्॥

'वैश्वदेवी'—(में २ मगण और २ यगण होते हैं तथा पाँचवें, सातवें अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदहारण—

ऽऽऽऽऽ ऽ ।ऽऽ।ऽऽ

अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणामद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च भक्त्या।

तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते भ्रातः सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी॥

उपर्युक्त छन्दोंके अतिरिक्त बृहतीके अन्य भेद पुट, जलोद्धतगति, नत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, कान्तोत्पीडा, वाहिनी, नवमालिनी, चन्द्रवर्त्म, प्रमुदितवदना, प्रियंवदा, मणिमाला, ललिता, मोहितोज्ज्वला, जलधरमाला, प्रभा, मालती तथा अभिनव तामरस आदिके भी लक्षण और उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें मिलते हैं।

(१३) तेरह-तेरह अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्द-समूहका नाम 'अतिजगती' है। प्रस्तारसे इसके ८१९२ भेद होते हैं। अतिजगतीके भेदोंमें ही एक 'प्रहर्षिणी' नामक भेद है। इसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होते हैं। तीन तथा दस अक्षरोंपर यति होती है।

उदाहरण—

ऽऽऽ ।।।।ऽ ।ऽ ।ऽऽ

जागर्ति प्रसभविपाकसंविधात्री श्रीविष्णोर्ललितकपोलजा नदी चेत्।

संकीर्णं यदि भवितास्ति को विषादः संवादः सकलजगत्पितामहेन॥

इसके सिवा क्षमा, अतिरुचिरा मत्तमयूर, गौरी, मञ्जुभाषिणी और चन्द्रिका आदि भेद भी ग्रन्थान्तरोंमें वर्णित हैं। उनके उदाहरण वहीं देखने चाहिये।

(१४) चौदह-चौदह अक्षरोंके चार पादोंवाले छन्दसमुदायको 'शक्वरी' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १६३८४ भेद होते हैं। इसके भेदोंमें वसन्ततिलका नामक छन्द यहाँ बतलाया जाता है। इसमें तगण, भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है। वसन्ततिलकाको ही कुछ विद्वान् 'सिंहोन्नता' और 'उद्धर्षिणी' भी कहते हैं।

उदाहरण—

S SISIIIS IISISS

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

इसके सिवा असंबाधा, अपराजिता तथा प्रहरणकलिता आदि और भी अनेक भेद हैं। उनमेंसे प्रहरणकलिताका उदाहरण यहाँ दिया जाता है, प्रहरणकलितामें २ नगण, १ भगण, १ नगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होता है।

यथा—

IIIIIISIIIIIIS

सुरमुनिमनुजैरुपचितचरणां रिपुभयचकितत्रिभुवनशरणाम्।

प्रणमत महिषासुरवधकुपितां प्रहरणकलितां पशुपतिदयिताम्॥

(१५) पंद्रह-पंद्रह अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंका नाम '<u>अतिशक्वरी</u>' है। प्रस्तारसे इसके ३२७६८ भेद होते हैं। इन भेदोंमें चन्द्रावर्ता और मालिनी—ये दो ही यहाँ बताये जाते हैं। ४ नगण और १ सगणसे 'चन्द्रावर्ता' छन्द बनता है। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम है। यदि छः और नौ अक्षरोंपर विराम हो तो इसका नाम 'माला' होता है। इसी तरह आठ और सात अक्षरोंपर विराम होनेसे उसकी 'मणिनिकर' संज्ञा होती है। चन्द्रावर्ताका उदाहरण इस प्रकार है—

IIIIIIIIIIIIIIS

पटुजवपवनचलितजललहरीतरलितविहगनिचयरवमुखरम्।

विकसितकमलसुरभिशुचिसलिलं प्रविशति हरिरिह शरदि शुभसरः॥

'<u>मालिनी</u>'—(-में २ नगण, १ मगण और २ यगण होते हैं। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

IIIIIIS S SIS SISS

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

(१६) सोलह-सोलह अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायक नाम '<u>अष्टि</u>' है। प्रस्तारसे इसके भेदोंकी संख्या ६५५३६ होती है। इसके भेदोंमें दोके लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। एकका नाम है <u>ऋषभगजविलासित</u> और दूसरेका नाम है <u>वाणिनी</u>। ऋषभगजविलासितमें भगण, रगण, तीन नगण तथा एक गुरु होते हैं। सात, नौ अक्षरोंपर विराम होता है।

S IISISI IIIIIIIIS

यो हरिरुच्चखान खरतरनखशिखरैर्दुर्जयदैत्यसिंहसुविकटहृदयतटम्।

किं न्विह चित्रमेष यदखिलमपहतवान् कंसनिदेशदृप्यदृषभगजविलसितम्॥

'<u>वाणिनी</u>'— (में नगण, जगण, भगण, जगण, रगण तथा १ गुरु होते हैं—)

उदाहरण—

III ISISI II SI SISS

स्फुरतु ममाननेऽद्य न नु वाणि नीतिरम्यं तव चरणप्रसादपरिपाकतः कवित्वम्।

भवजलराशिपारकरणक्षमं मुकुन्दं सततमहं स्तवैः स्वरचितैः स्तवानि नित्यम्॥

(१७) सत्रह-सत्रह अक्षरोंके चार चरणोंवाले छन्दसमूहका नाम '<u>अत्यष्टि</u>' है। प्रस्तारसे इसकी संख्या १३१०७२ होती है। इसके भेदोंमेंसे केवल हरिणी, पृथ्वी, वंशपत्रपतित, मन्दाक्रान्ता और शिखरिणीके लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

'<u>हरिणी</u>' (के प्रत्येक चरणमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु तथा एक गुरु होते हैं। ६, ४, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

I IIIIS SS SSIS IISIS

न समरसनाः काले भोगाश्चलं धनयौवनं कुरुत सुकृतं यावन्नेयं तनुः प्रविशीर्यते।

किमपि कलना कालस्येयं प्रधावति सत्वरा तरुणहरिणीसंत्रस्तेव प्लवप्रविसारिणी॥

'<u>पृथ्वी</u>' (के प्रत्येक पादमें जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। आठ-नौ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

IS IIISISIIIS ISS IS

हताः समितिशत्रवस्त्रिभुवने प्रकीर्णं यशः कृतश्च गुणिनां गृहे निरवधिर्महानुत्सवः।

त्वया कृतपरिग्रहे रघुपतेऽद्य सिंहासने नितान्तनिरवग्रहा फलवती च पृथ्वी कृता॥

'वंशपत्रपतित' (में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं। दस-सात अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

SI ISI SI IIS II IIIIS

अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं यदि परदिवसे मित्र विधेयमस्ति भवतः किमु चिरयसि तत्।
जीवितमल्पकालकलनालघुतरतरलं नश्यति वंशपत्रपतितं हिमसलिलमिव॥

'मन्दाक्रान्ता' (में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं। ४, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है। (इसके प्रत्येक चरणके अन्तिम सात अक्षर कम कर देनेपर 'हंसी' छन्द बन जाता है।)

उदाहरण—

SSSS IIIIIS SIS SISS

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः॥

'शिखरिणी' (-में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं तथा ६, ११ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

ISS SS S IIIIIS SIIIS

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

(१८) अठारह-अठारह अक्षरोंके चार चरणोंसे बननेवाले छन्द-समूहकी संज्ञा 'धृति' कही गयी है। प्रस्तारसे इसके २६२१४४ भेद होते हैं। उनमेंसे एक ही भेद 'कुसुमितलतावेल्लिता' नामक छन्दका लक्षण और उदाहरण दिया जाता है। इसमें मगण, तगण, नगण और तीन यगण होते हैं। ५, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

SSSSS IIIIISSISSISS

धन्यानामेताः कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षाः सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्यः।
मध्वादौ माद्यन्मधुकरकुलोद्गीतझङ्कारम्या ग्रामान्तःस्रोतःपरिसरभुवः प्रीतिमुत्पादयन्ति॥

(१९) उन्नीस-उन्नीस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायको 'विधृति' या 'अतिधृति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ५२४२८८ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'शार्दूलविक्रीडित' नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु होते हैं तथा बारह और सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

SSS IISISIIIS SSI SS IS

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

(२०) बीस-बीस अक्षरोंके चार पादोंसे निष्पन्न होनेवाले छन्दसमूहका नाम 'कृति' है। प्रस्तारसे इसके १०४८५७६ भेद होते हैं। उनमेंसे २के लक्षण और उदाहरण यहाँ बतलाये जाते हैं। पहलेका सुवदना और दूसरेका नाम 'वृत्त' है। सुवदनामें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। ७, ७, ६ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S SSSISS II IIII SSSIIIS

या पीनोद्गाढतुङ्गस्तनजघनघनाभोगालसगतिर्यस्याः कर्णावतंसोत्पलरुचिजयिनी दीर्घे च नयने।
श्यामा सीमन्तिनीनां तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने प्रयत्नं पार्वती मे भवतु भगवती स्नेहात्सुवदना॥

'वृत्त' (में एक गुरु, एक लघुके क्रमसे २० अक्षर होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।)

उदाहरण—

SISISISI SI SIS ISISISI

जन्तुमात्रदुःखकारि कर्म निर्मितं भवत्यनर्थहेतु तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तमं सुखं लभस्व।
विद्धि बुद्धिपूर्वकं ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मनां हिताय॥

(२१) इक्कीस-इक्कीस अक्षरोंके चार पादोंमें पूर्ण होनेवाले छन्दोंकी जातिवाचक संज्ञा 'प्रकृति' है। प्रस्तारसे इसके २०९७१५२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेद 'स्रग्धरा' के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण

होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

SSS S I SS I I I I I I S S I S S I S S

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।

क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥

(२२) बाईस-बाईस अक्षरोंके चार पादोंसे परिपूर्ण होनेवाले छन्दोंका नाम '<u>आकृति</u>' है। प्रस्तारसे इसकी भेद-संख्या ४१९४३०४ होती है। इसके एक भेद 'भद्रक'का उदाहरण यहाँ दिया जाता है। भद्रकके प्रत्येक पादमें भगण, रगण, नगण, रगण, नगण, रगण, नगण, एक गुरु होते हैं। दस, बारह अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S I I S I S I I I S I S I I I S I S I I I S

भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भव ये भवन्तमभवं भक्तिभावनम्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः।

ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं मर्त्यभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरसुराङ्गनावलीपरिवृताः॥

(२३) तेईस-तेईस अक्षरोंके चार-चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दसमुदायको '<u>विकृति</u>' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके८३८८६०८ भेद होते हैं। इनमें '<u>अश्वललित</u>' और '<u>मत्ताक्रीडा</u>' नामक दो छन्दोंके उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। प्रत्येक पादमें नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, १ लघु १ गुरु होनेसे '<u>अश्वललित</u>' छन्द होता है।

उदाहरण—

I I I I S I S I I I S I S I I I S I S I I I S

पवनविधूतवीचिचपलं विलोकयति जीवितं तनुभृतां वपुरपि हीयमानमनिशं जरावनितया वशीकृतमिदम्।

सपदि निपीडनव्यतिकरं यमादिव नराधिपान्नरपशुः परवनितामवेक्ष्य कुरुते तथापि हतबुद्धिरश्वललितम्॥

'<u>मत्ताक्रीडा</u>' (में २ मगण, १ तगण, ४ नगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। आठ और पंद्रह अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

SS SS SSSS I I I I I I I I I I I I I I S

वन्दे देवं श्रीगोविन्दं प्रणयपरवशमतिकरुणहृदयं मात्रा बद्धं दाम्ना साम्ना स्तुतमपि सुतमिव निजमिह सभयम्।

हन्तुं याऽऽगात्तस्यै मातुर्व्यतरदतुलनिजगतिमतिविमलां गां गोपीगोपान् योऽगोपायदिह विधुतगिरिरुपचितवत्सलः॥

(२४) चौबीस-चौबीस अक्षरोंके चार चरणोंसे जो छन्द बनते हैं, उनका नाम '<u>संकृति</u>' है। प्रस्तारसे इसके १६७७७२१६ भेद होते हैं। इनमें '<u>तन्वी</u>' नामक छन्दका उदाहरण दिया जाता है। उसमें भगण, तगण, नगण, सगण, २ भगण, नगण, यगण होते हैं। ५, ७, १२ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S I I S S I I I I I S S I I S I I I I I S S

नाथ तवाहं तव पदकमलं सेवितुमेव मनसि मम कामो नाम सुधासोदरमतिमधुरं मे रसना रसयतु नितरां वै।

प्रेमिजना ये प्रभुगुणरसिकास्तेषु सदैव भवतु मम वासो देव दयां दर्शय वस हृदये त्वां न विनेह जगति मम बन्धुः॥

(२५) पच्चीस-पच्चीस अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्दोंको '<u>अतिकृति</u>' या '<u>अभिकृति</u>' कहते हैं। प्रस्तारसे इनके ३३५५४४३२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक भेदका नाम '<u>क्रौञ्चपदा</u>' है। उसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण, सगण, भगण, ४ नगण तथा १ गुरु होते हैं। ५, ५, ८, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

S I I S S S I I S S I I I I I I I I I I I I I S

माधव भक्तिं देहविभक्तिं तव चरणयुगलशरणमुपगतः संहर पापं दर्शितशापं निजगुणगणरतिमुपनय नितराम्।

मोहन रूपं रम्यमनूपं प्रकटय शमय विषयविषमनिशं वादय वंशीं मानसदंशी तिमिनिभहृदयविहितवरबडिशाम्॥

(२६) छब्बीस-छब्बीस अक्षरोंके चार चरणोंसे जो छन्द बनते हैं, उनकी <u>जातिवाचक संज्ञा</u> '<u>उत्कृति</u>' है। प्रस्तारसे इसके ६७१०८८६४ भेद होते हैं। इनमेंसे दो भेद बताये जाते हैं। एकका नाम '<u>भुजङ्गविजृम्भित</u>' और दूसरेका '<u>अपवाह</u>' है।

'भुजङ्गविजृम्भित'— (में २ मगण, १ तगण, ३ नगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। ८, ११, ७ अक्षरोंपर विराम होता है।)

ये छन्दोंकी संज्ञाएँ हैं, प्रस्तारसे[1] इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षरवाले पादमें प्रथम गुरुके नीचे लघु लिखना चाहिये, फिर दाहिनी ओरकी पङ्क्तिको ऊपरकी पङ्क्तिके समान भर दे। तात्पर्य यह कि शेष स्थानोंमें ऊपरके अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रियाको बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओरके शेष स्थानमें गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक कि सभी लघु अक्षरोंकी प्राप्ति न हो जाय। इसे 'प्रस्तार' कहा गया है[2]॥ १४-१५॥ (प्रस्तार नष्ट हो जानेपर यदि उसके किसी भेदका स्वरूप जानना हो तो उसे जाननेकी विधिको 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अङ्क सम है तो उसके लिये एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिये पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अङ्क विषम हो तो उसके लिये एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिये भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक अभीष्ट अक्षरोंका पाद प्राप्त न हो जाय[3]। (प्रस्तारके किसी भेदका स्वरूप तो ज्ञात हो; किंतु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जाननेकी विधिको 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्टमें गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षरपर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरोंपर दूने अङ्क लिखता जाय; फिर लघुके ऊपर जो अङ्क हों, उन्हें जोड़कर उसमें

---

उदाहरण—

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । । । । । । । ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ

हेलोदञ्चन्न्यञ्चत्पादप्रकटविकटनटनभरो रणत्करतालकः चारुप्रेङ्खच्चूडाबर्हः श्रुतितरलनवकिसलयस्तरङ्गितहारधृत्।
त्रस्यन्नागस्त्रीभिर्भक्त्या मुकुलितकरकमलयुगं कृतस्तुतिरच्युतः पायाद् वस्छिन्दन् कालिन्दीह्रदकृतनिजवसतिबृहद् भुजङ्गविजृम्भितम्॥

'अपवाह' (-के प्रत्येक पादमें १ मगण, ६ नगण, १ सगण, २ गुरु होते हैं। ९, ६, ६, ५ अक्षरोंपर विराम होता है।)

उदाहरण—

ऽऽऽ । । । । । । । । । । । । । । । । । । । । । ऽ ऽ ऽ

श्रीकण्ठं त्रिपुरदहनममृतकिरणशकललसितशिरसं रुद्रं भूतेशं हतमुनिमखमखिलभुवननमितचरणयुगमीशानम्।
सर्वज्ञं वृषभगमनमहिपतिकृतवलयरुचिकरमाराध्यं तं वन्दे भवभयभिदमभिमतफलवितरणगुरुमुमया युक्तम्॥

१. छन्दःशास्त्रमें छः प्रत्यय होते हैं—१- प्रस्तार, २- नष्ट, ३- उद्दिष्ट, ४- एकद्व्यादिलगक्रिया, ५- संख्यान और छठा अध्वयोग। प्रस्तारका अर्थ फैलाव; अमुक संख्यायुक्त अक्षरोंसे बने हुए पादवाले छन्दके कितने और कौन-कौनसे भेद हो सकते हैं? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम प्रस्तार है। नष्ट आदिका स्वरूप आगे बतायेंगे।

२. उदाहरणके लिये चार अक्षरके पादवाले छन्दका मूलोक्त रीतिसे प्रस्तार अङ्कित किया जाता है—

| | |
|---|---|
| १—ऽऽऽऽ | ९—ऽऽऽ। |
| २—।ऽऽऽ | १०—।ऽऽ। |
| ३—ऽ।ऽऽ | ११—ऽ।ऽ। |
| ४—।।ऽऽ | १२—।।ऽ। |
| ५—ऽऽ।ऽ | १३—ऽऽ।। |
| ६—।ऽ।ऽ | १४—।ऽ।। |
| ७—ऽ।।ऽ | १५—ऽ।।। |
| ८—।।।ऽ | १६—।।।। |

३. जैसे किसीके द्वारा पूछा जाय कि चार अक्षरके पादवाले छन्दका छठा भेद क्या है? तो इसमें छठा अङ्क सम है; अतः उसके लिये प्रथम एक लघु होगा (।), फिर छः का आधा करनेपर तीन विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (ऽ) लिखा। अब तीनमें एक जोड़कर आधा किया तो दो सम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये फिर एक लघु (।) लिखा। उस दोका आधा किया तो एक विषम अङ्क हुआ; अतः उसके लिये एक गुरु (ऽ) लिखा। सब मिलकर (।ऽ।ऽ) ऐसा हुआ। अतः चार अक्षरवाले छन्दके छठे भेदमें प्रत्येक पादमें प्रथम अक्षर लघु, दूसरा गुरु, तीसरा लघु और चौथा गुरु होगा।

एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूपकी संख्या बतावे। ऐसा पुराणवेत्ता विद्वानोंका कथन है[१]। (अमुक छन्दके प्रस्तारमें एक गुरुवाले या एक लघुवाले, दो लघुवाले या दो गुरुवाले, तीन लघुवाले या तीन गुरुवाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जाननेकी जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्व्यादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्दके अक्षरोंकी जो संख्या हो, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकाङ्क ऊपर-नीचेके क्रमसे लिखे। उन एकाङ्कोंको ऊपरकी अन्य पङ्क्तिमें जोड़ दे; किंतु अन्त्यके समीपवर्ती अङ्कको न जोड़े और ऊपरके एक-एक अङ्कको त्याग दे। ऊपरके सर्व गुरुवाले पहले भेदसे नीचेतक गिने। इस रीतिसे प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर ध्यान देनेसे सबसे नीचेका सर्वलघु, उसके ऊपरका एक लघु, तीसरा भेद द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार 'एकद्व्यादिलगक्रिया' जाननी चाहिये।[२] लगक्रियाके अङ्कोंको जोड़ देनेसे उस छन्दके प्रस्तारकी पूरी संख्या ज्ञात हो जाती है। यही संख्यान प्रत्यय कहलाता है, अथवा उद्दिष्टपर दिये हुए अङ्कोंको जोड़कर उसमें एकका योग कर दिया जाय तो वह भी प्रस्तारकी पूरी संख्याको प्रकट कर देता है[३]। छन्दके प्रस्तारको अङ्कित करनेके लिये जो स्थानका नियमन किया जाता है, उसे अध्वयोग प्रत्यय कहते हैं। प्रस्तारकी जो संख्या है, उसे दूना करके एक घटा देनेसे जो अङ्क आता है, उतने ही अंगुलका उसके प्रस्तारके लिये अध्वा या स्थान कहा गया है॥ १६—२०॥ मुने! यह छन्दोंका किंचित् लक्षण बताया गया है। प्रस्तारद्वारा प्रतिपादित होनेवाले उनके भेद-प्रभेदोंकी संख्या अनन्त है॥ २१॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५७)

---

१-जैसे कोई पूछे कि चार अक्षरके पादवाले छन्दमें जहाँ प्रथम तीन गुरु और अन्तमें एक लघु हो तो उसकी संख्या क्या है अर्थात् वह उस छन्दका कौन-सा भेद है? इसको जाननेके लिये पहले उद्दिष्टके गुरु-लघुको निम्नाङ्कित रीतिसे अङ्कित करके उनके ऊपर क्रमशः द्विगुण अङ्क स्थापित करे—

१ २ ४ ८

ऽ ऽ ऽ ।

तत्पश्चात् केवल लघुके अङ्क ८ में एक और जोड़ दिया गया तो ९ हुआ। यही उद्दिष्टकी संख्या है। अर्थात् यह उस छन्दका नवाँ भेद है।

२. निम्नाङ्कित कोष्ठकसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

अर्थात् चार अक्षरवाले छन्दके प्रस्तारमें ४ लघुवाला १ भेद, एक गुरु तीन लघुवाला ४ भेद, २ गुरु और दो लघुवाला ६ भेद, तीन गुरु और १ लघुवाला ४ भेद और चार गुरुवाला १ भेद होगा।

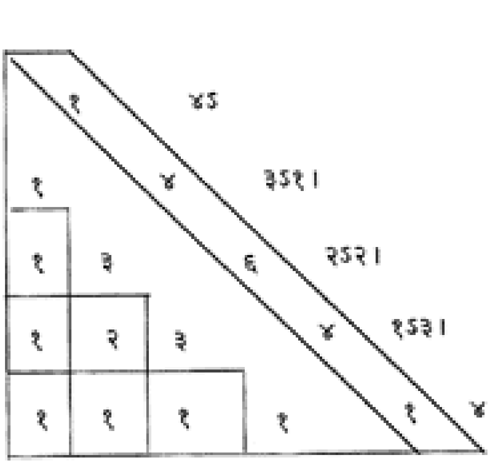


३. यथा—चार अक्षरके प्रस्तारमें लगक्रियाके अङ्क १+४+६+४+१ होते हैं, इनका योग सोलह होता है। अतः चार अक्षरके पादवाले छन्दके सोलह भेद होंगे अथवा उद्दिष्टके अङ्क हैं १+२+४+८ इसका योग हुआ १५, इनमें एकका योग करनेसे प्रस्तार संख्या १६ प्रकट हो जाती है।

## शुकदेवजीका मिथिलागमन, राजभवनमें युवतियोंद्वारा उनकी सेवा, राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका सत्कार और शुकदेवजीके साथ उनका मोक्षविषयक संवाद

**श्रीसनन्दनजीने कहा**—नारदजी! एक दिन मोक्ष-धर्मका ही विचार करते हुए शुकदेवजी पिता व्यासदेवके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'भगवन्! आप मोक्ष-धर्ममें निपुण हैं, अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे मनको परम शान्ति प्राप्त हो।' मुने! पुत्रकी यह बात सुनकर महर्षि व्यासने उनसे कहा—'वत्स! नाना प्रकारके धर्मोंका भी तत्त्व समझो और मोक्षशास्त्रका अध्ययन करो।' तब शुकने पिताकी आज्ञासे सम्पूर्ण योगशास्त्र और कपिलप्रोक्त सांख्यशास्त्रका अध्ययन किया। जब व्यासजीने समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शक्तिमान् तथा मोक्षशास्त्रमें कुशल हो गया है, तब उन्होंने कहा—'बेटा! अब तुम मिथिलानरेश जनकके समीप जाओ, राजा जनक तुम्हें मोक्षतत्त्व पूर्णरूपसे बतलायेंगे।' पिताके आदेशसे शुकदेवजी धर्मकी निष्ठा और मोक्षके परम आश्रयके सम्बन्धमें प्रश्न करनेके लिये मिथिलापति राजा जनकके पास जाने लगे। जाते समय व्यासजीने फिर कहा—'वत्स! जिस मार्गमें साधारण मनुष्य चलते हों, उसीसे तुम भी यात्रा करना। मनमें विस्मय अथवा अभिमानको स्थान न देना। अपनी योगशक्तिके प्रभावसे अन्तरिक्षमार्गद्वारा कदापि यात्रा न करना। सरल भावसे ही वहाँ जाना। मार्गमें सुख-सुविधा न देखना, विशेष व्यक्तियों या स्थानोंकी खोज न करना; क्योंकि वे आसक्ति बढ़ानेवाले होते हैं। 'राजा जनक शिष्य और यजमान हैं'—ऐसा समझकर उनके सामने अहंकार न प्रकट करना। उनके वशमें रहना। वे तुम्हारे संदेहका निवारण करेंगे। राजा जनक धर्ममें निपुण तथा मोक्षशास्त्रमें कुशल हैं। वे मेरे शिष्य हैं, तो भी तुम्हारे लिये जो आज्ञा दें, उसका निस्संदिग्ध होकर पालन करना।'

पिताके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिला गये। यद्यपि समुद्रोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको वे आकाशमार्गसे ही लाँघ सकते थे, तथापि पैदल ही गये। महामुनि शुक विदेहनगरमें पहुँचे। पहले राजद्वारपर पहुँचते ही द्वारपालोंने उन्हें भीतर जानेसे रोका; किंतु इससे उनके मनमें कोई ग्लानि नहीं हुई। नारदजी! महायोगी शुक भूख-प्याससे रहित हो वहीं धूपमें जा बैठे और ध्यानमें स्थित हो गये। उन द्वारपालोंमेंसे एकको अपने व्यवहारपर बड़ा शोक हुआ। उसने देखा, शुकदेवजी दोपहरके सूर्यकी भाँति यहाँ स्थित हो रहे हैं, तब हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनका पूजन एवं सत्कार करके राजमहलकी दूसरी कक्षामें उनका प्रवेश कराया। वहाँ चैत्ररथ वनके समान एक विशाल उपवन था, जिसका सम्बन्ध अन्तःपुरसे था। वह वन बड़ा रमणीय था। द्वारपालने शुकदेवजीको सारा उपवन दिखाकर एक सुन्दर आसनपर बिठाया तथा राजा जनकको इसकी सूचना दी। मुनिश्रेष्ठ! राजाने जब सुना कि शुकदेवजी मेरे पास आये हैं तो उनके हार्दिक भावको समझनेके उद्देश्यसे उनकी सेवाके लिये बहुत-सी युवतियोंको नियुक्त किया। उन सबके वेश बड़े मनोहर थे। वे सब-की-सब तरुणी और देखनेमें मनको प्रिय लगनेवाली थीं। उन्होंने लाल रंगके महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण

कर रखे थे। उनके अङ्गोंमें तपाये हुए शुद्ध सुवर्णके आभूषण चमक रहे थे। वे बातचीतमें

बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओंमें कुशल थीं। उनकी संख्या पचाससे अधिक थी। उन सबने शुकदेवजीके लिये पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और कालके अनुसार प्राप्त हुआ उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें तृप्त किया। नारदजी! जब वे भोजन कर चुके तो उनमेंसे एक-एक युवतीने शुकदेवजीको अपने साथ लेकर उन्हें वह अन्तःपुरका वन दिखलाया। फिर मनके भावोंको समझनेवाली वे सब युवतियाँ हँसती, गाती हुई उदारचित्तवाले शुकदेव मुनिकी परिचर्या करने लगीं। शुकदेवमुनिका अन्तःकरण परम शुद्ध था। वे क्रोध और इन्द्रियोंको जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे। उनके मनमें न हर्ष होता था, न क्रोध। संध्याका समय होनेपर शुकदेवजीने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की। फिर वे पवित्र आसनपर बैठे और उसी मोक्ष-धर्मके विषयमें विचार करने लगे। रातके पहले पहरमें वे ध्यान लगाये बैठे रहे। दूसरे और तीसरे पहरमें भगवान् शुकने न्यायपूर्वक निद्राको स्वीकार किया। फिर प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया। तदनन्तर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी परम बुद्धिमान् शुक पुनः ध्यानमें ही लग गये। नारदजी! इसी विधिसे उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुलमें व्यतीत की।

द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक पुरोहित तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको आगे करके मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये गुरुपुत्र शुकदेवजीके समीप गये। उन्होंने सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित एक महान् सिंहासन लेकर गुरुपुत्र शुकदेवजीको अर्पित किया। व्यासनन्दन शुक जब उस आसनपर विराजमान हुए, तब राजाने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्यसहित गाय निवेदन की। महातेजस्वी द्विजोत्तम शुकने मन्त्रोच्चारणपूर्वक की हुई उस पूजाको स्वीकार करके राजाका कुशल-मङ्गल पूछा। राजाका हृदय और परिजन सभी उदार थे। वे भी गुरुपुत्रसे कुशल-समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले भूमिपर बैठे। तत्पश्चात्

व्यासनन्दन शुकसे कुशल-मङ्गल पूछकर विधिज्ञ राजाने प्रश्न किया—'ब्रह्मन्! किसलिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है?'

**शुकदेवजी बोले**—राजन्! आपका कल्याण हो! पिताजीने मुझसे कहा है कि 'मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्ष-धर्मके तत्त्वको जाननेमें कुशल हैं। तुम उन्हींके पास जाओ। तुम्हारे हृदयमें प्रवृत्ति या निवृत्तिके विषयमें जो भी संदेह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे। इसमें संशय नहीं है।' अत: मैं पिताजीकी आज्ञासे आपके समीप अपना हार्दिक संशय मिटानेके लिये यहाँ आया हूँ। आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। मुझे यथावत् उपदेश देनेकी कृपा करें। ब्राह्मणका इस जगत्में क्या कर्तव्य है? तथा मोक्षका स्वरूप कैसा है? उसे ज्ञान या तपस्या किस साधनसे प्राप्त करना चाहिये?

**राजा जनकने कहा**—ब्रह्मन्! इस जगत्में जन्मसे लेकर जीवनपर्यन्त ब्राह्मणका जो कर्तव्य है, वह बतलाता हूँ, सुनो—तात! उपनयन-संस्कारके पश्चात् ब्राह्मण-बालकको वेदोंके स्वाध्यायमें लग जाना चाहिये। वह तपस्या, गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न रहे। होम तथा श्राद्ध-तर्पणद्वारा देवताओं और पितरोंके ऋणसे मुक्त हो। किसीकी निन्दा न करे। सम्पूर्ण वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा दे, फिर उनकी आज्ञा लेकर द्विजबालक अपने घरको लौटे। समावर्तन-संस्कारके पश्चात् गुरुकुलसे लौटा हुआ ब्राह्मणकुमार विवाह करके अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखते हुए गृहस्थ-आश्रममें निवास करे। किसीके दोष न देखे। न्यायपूर्वक बर्ताव करे। अग्निकी स्थापना करके प्रतिदिन आदरपूर्वक अग्निहोत्र करे। पुत्र और पौत्रोंकी उत्पत्ति हो जानेपर वानप्रस्थ-आश्रममें रहे और पहलेकी स्थापित अग्निका ही विधिपूर्वक आहुतिद्वारा पूजन करे। वानप्रस्थीको भी अतिथि-सेवामें प्रेम रखना चाहिये। तदनन्तर धर्मज्ञ पुरुष वनमें न्यायपूर्वक सम्पूर्ण अग्नियोंको (भावनाद्वारा) अपने भीतर ही लीन करके वीतराग हो ब्रह्मचिन्तनपरायण संन्यास-आश्रममें निवास करे और शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको धैर्यपूर्वक सहन करे।

**शुकदेवजीने पूछा**—राजन्! यदि किसीको ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही सनातन ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो जाय और हृदयके राग-द्वेष आदि द्वन्द्व दूर हो गये हों तो भी उसके लिये क्या शेष तीन आश्रमोंमें निवास करना अत्यन्त आवश्यक है? इस संदेहके विषयमें मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

**राजा जनकने कहा**—ब्रह्मन्! जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी उपलब्धि भी नहीं होती। गुरु इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। लोककी धार्मिक मर्यादाका उच्छेद न हो और कर्मानुष्ठानकी परम्पराका भी नाश न होने पावे, इसके लिये पहलेके विद्वान् चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करते थे। इस प्रकार क्रमश: अनेक प्रकारके सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मोंकी आसक्तिका त्याग हो जानेपर यहीं मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अनेक जन्मोंसे सत्कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, तब शुद्ध अन्त:करणवाला पुरुष प्रथम आश्रममें ही उत्तम मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे पाकर जब ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही तत्त्वका साक्षात्कार एवं मुक्ति सुलभ हो जाय तब परमात्माको चाहनेवाले जीवन्मुक्त विद्वान्के लिये शेष तीनों आश्रमोंमें जानेकी क्या आवश्यकता

है। विद्वान‍्को चाहिये कि वह राजस और तामस दोषोंका परित्याग कर दे और सात्त्विक मार्गका आश्रय लेकर बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतोंको अपनेमें और अपनेको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित देखता है, वह संसारमें रहकर भी उसके दोषोंसे लिप्त नहीं होता और अक्षय पदको प्राप्त कर लेता है। तात! इस विषयमें राजा ययातिकी कही हुई गाथा सुनो—

जिसे मोक्ष-शास्त्रमें निपुण विद्वान् द्विज सदा धारण किये हुए हैं, अपने भीतर ही उस आत्मज्योतिका प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर समान रूपसे स्थित है। समाधिमें अपने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करनेवाला पुरुष उसको स्वयं देख सकता है। जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं किसी दूसरे प्राणीसे भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेषसे रहित हो गया है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीकी बुराई नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोहमें डालनेवाली ईर्ष्या, काम और लोभका त्याग करके पुरुष अपने आपको तपमें लगा देता है, उस समय उसे ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। जब सुनने और देखने योग्य विषयोंमें तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर मनुष्यका समानभाव हो जाय और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व उसके चित्तपर प्रभाव न डाल सकें, तब वह ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। जिस समय निन्दा-स्तुति, लोहा-सोना, सुख-दुःख, सर्दी-गरमी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरणमें समान दृष्टि हो जाती है, उस समय मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, उसी प्रकार संन्यासीको मनके द्वारा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये[१]। जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकारसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे आत्माका दर्शन हो सकता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपमें दिखायी देती हैं। इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षाके कारण विषयोंसे परे हो गये हैं। उन्हीं महामुनि गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं। किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। ब्रह्मन्! आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; साथ ही आपमें लोलुपता भी नहीं है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमें कोई अन्तर नहीं समझते! आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी। आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न

१. न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः। यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
संयोज्य तपसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम्। त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम्। समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति। काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्। जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः। तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥
(ना० पूर्व० ५९। २९—३५)

तो बन्धुओंके प्रति आपकी आसक्ति है, न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टिमें अपनी निन्दा और स्तुति एक-सी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्षमार्ग)-पर स्थित मानते हैं। विप्रवर! इस लोकमें ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है, उसीमें आपकी स्थिति है।

**सनन्दनजी कहते हैं**—नारद! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ़ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीको देखा, जो पैल आदि शिष्योंको वैदिकसंहिता पढ़ा रहे थे। शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेव अपनी दिव्य प्रभासे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर बड़े आदरसे पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उदार-बुद्धि शुकने राजा जनकके साथ जो मोक्षसाधनविषयक संवाद हुआ था, वह सब अपने पिताको बताया। उसे सुनकर वेदोंका विस्तार करनेवाले व्यासजीने हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और अपने पास बिठाया। तत्पश्चात् पैल आदि ब्राह्मण व्यासजीसे वेदोंका अध्ययन करके उस शैलशिखरसे पृथ्वीपर आये और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेके कार्यमें संलग्न हो गये।

## व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना तथा सनत्कुमारका शुकको ज्ञानोपदेश

**सनन्दजी कहते हैं**—नारदजी! जब पैल आदि ब्राह्मण पर्वतसे नीचे उतर आये, तब पुत्रसहित परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास एकान्तमें मौनभावसे ध्यान लगाकर बैठ गये। उस समय आकाशवाणीने पुत्रसहित व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'वसिष्ठ-कुलमें उत्पन्न महर्षि व्यास! इस समय वेद-ध्वनि क्यों नहीं हो रही है? तुम अकेले कुछ चिन्तन करते हुए-से चुपचाप ध्यान लगाये क्यों बैठे हो? इस समय वेदोच्चारणकी ध्वनिसे रहित होकर यह पर्वत सुशोभित नहीं हो रहा है। अतः भगवन्! अपने वेदज्ञ पुत्रके साथ परम प्रसन्नचित्त हो सदा वेदोंका स्वाध्याय करो।' आकाशवाणीद्वारा उच्चारित यह वचन सुनकर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीके साथ वेदोंकी आवृत्ति आरम्भ कर दी। द्विजश्रेष्ठ! वे दोनों पिता-पुत्र दीर्घकालतक वेदोंका पारायण करते रहे। इसी बीचमें एक दिन समुद्री हवासे प्रेरित होकर बड़े जोरकी आँधी उठी। इसे अनध्यायका हेतु समझकर व्यासजीने पुत्रको वेदोंके स्वाध्यायसे रोक दिया। तब उन्होंने पितासे पूछा—'भगवन्! यह इतने जोरकी हवा क्यों उठी थी? वायुदेवकी यह सारी चेष्टा आप बतानेकी कृपा करें।'

शुकदेवजीकी यह बात सुनकर व्यासजी अनध्यायके निमित्तस्वरूप वायुके विषयमें इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम्हें दिव्यदृष्टि उत्पन्न हुई है, तुम्हारा मन स्वतः निर्मल है। तुम तमोगुण तथा रजोगुणसे दूर एवं सत्यमें प्रतिष्ठित हुए हो, अतः अपने हृदयमें वेदोंका विचार करके स्वयं ही

बुद्धिद्वारा अनध्यायके कारणरूप वायुके विषयमें आलोचना करो।

पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जो वायु चलती है, उसके सात मार्ग हैं। जो धूम तथा गरमीसे उत्पन्न बादल-समूहों और ओलोंको इधर-से-उधर ले जाता है, वह प्रथम मार्गमें प्रवाहित होनेवाला 'प्रवह' नामक प्रथम वायु है। जो आकाशमें रसकी मात्राओं और बिजली आदिकी उत्पत्तिके लिये प्रकट होता है, वह महान् तेजसे सम्पन्न द्वितीय वायु 'आवह' नामसे प्रसिद्ध है और बड़ी भारी आवाजके साथ बहता है। जो सदा सोम-सूर्य आदि ज्योतिर्मय ग्रहोंका उदय एवं उद्भव करता है, मनीषी पुरुष शरीरके भीतर जिसे उदान कहते हैं, जो चारों समुद्रोंसे जल ग्रहण करता है और उसे ऊपर उठाकर 'जीमूतों' को देता है तथा जीमूतोंको जलसे संयुक्त करके उन्हें 'पर्जन्य' के हवाले करता है, वह महान् वायु 'उद्वह' कहलाता है। जिससे प्रेरित होकर अनेक प्रकारके नीले महामेघ घटा बाँधकर जल बरसाना आरम्भ करते हैं तथा जो देवताओंके आकाशमार्गसे जानेवाले विमानोंको स्वयं ही वहन करता है, वह पर्वतोंका मान मर्दन करनेवाला चतुर्थ वायु 'संवह' नामसे प्रसिद्ध है। जो रूक्षभावसे वेगपूर्वक बहकर वृक्षोंको तोड़ता और उखाड़ फेंकता है तथा जिसके द्वारा संगठित हुए प्रलयकालीन मेघ 'बलाहक' संज्ञा धारण करते हैं, जिसका संचरण भयानक उत्पात लानेवाला है तथा जो अपने साथ मेघोंकी घटाएँ लिये चलता है, वह अत्यन्त वेगवान् पञ्चम वायु 'विवह' कहा गया है। जिसके आधारपर आकाशमें दिव्य जल प्रवाहित होते हैं, जो आकाशगङ्गाके पवित्र जलको धारण करके स्थित है और जिसके द्वारा दूरसे ही प्रतिहत होकर सहस्रों किरणोंके उत्पत्तिस्थान सूर्यदेव एक ही किरणसे युक्त प्रतीत होते हैं, जिनसे यह पृथ्वी प्रकाशित होती है तथा अमृतकी दिव्यनिधि चन्द्रमाका भी जिससे पोषण होता है, उस छठे वायुका नाम 'परिवह' है, वह सम्पूर्ण विजयशील तत्त्वोंमें श्रेष्ठ है। जो अन्तकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको शरीरसे निकालता है, जिसके इस प्राणनिष्कासनरूप मार्गका मृत्यु तथा वैवस्वत यम अनुगमन मात्र करते हैं, सदा अध्यात्मचिन्तनमें लगी हुई शान्त बुद्धिके द्वारा भलीभाँति विचार या अनुसंधान करनेवाले ध्यानाभ्यासपरायण पुरुषोंको जो अमृतत्व देनेमें समर्थ है, जिसमें स्थित होकर प्रजापति दक्षके दस हजार पुत्र बड़े वेगसे सम्पूर्ण दिशाओंके अन्तमें पहुँच गये तथा जिससे वृष्टिका जल तिरोहित होकर वर्षा बंद हो जाती है, वह सर्वश्रेष्ठ सप्तम वायु 'परावह' नामसे प्रसिद्ध है। उसका अतिक्रमण करना सबके लिये कठिन है। इस प्रकार ये सात मरुद्गण दितिके परम अद्भुत पुत्र हैं। इनकी सर्वत्र गति है। ये सब जगह विचरते रहते हैं; किंतु बड़े आश्चर्यकी बात है कि उस वायुके वेगसे आज यह पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालय

भी सहसा काँप उठा है। बेटा! यह वायु भगवान् विष्णुका निःश्वास है। जब कभी सहसा वह निःश्वास वेगसे निकल पड़ता है, उस समय सारा जगत् व्यथित हो उठता है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रचण्ड वायु (आँधी) चलनेपर वेदका पाठ नहीं करते हैं। वेद भी भगवान्‌का निःश्वास ही है। उस समय वेद-पाठ करनेपर वायुसे वायुको क्षोभ प्राप्त होता है।

अनध्यायके विषयमें यह बात कहकर पराशरनन्दन भगवान् व्यास अपने पुत्र शुकदेवसे बोले—'अब तुम वेद-पाठ करो।' यों कहकर वे आकाशगङ्गाके तटपर गये। जब व्यासजी स्नान करने चले गये, तब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी वेदोंका स्वाध्याय करने लगे। वे वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। नारदजी! व्यासपुत्र शुकदेवजी जब स्वाध्यायमें लगे हुए थे, उसी समय वहाँ भगवान् सनत्कुमार एकान्तमें उनके पास आये[१]। व्यासनन्दन शुकने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीका उठकर स्वागत-सत्कार किया। विप्रेन्द! तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे कहा—'महाभाग! महातेजस्वी व्यासपुत्र! क्या कर रहे हो?'

**शुकदेवजी बोले**—ब्रह्मकुमार! इस समय मैं वेदोंके स्वाध्यायमें लगा हूँ। मेरे किसी अज्ञात पुण्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः महाभाग! मैं आपसे किसी ऐसे तत्त्वके विषयमें पूछना चाहता हूँ जो मोक्षरूपी पुरुषार्थका साधक हो। अतः आप कृपापूर्वक बतावें, जिससे मुझे भी उसका ज्ञान हो।

**सनत्कुमारजीने कहा**—ब्रह्मन्! विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके तुल्य कोई तपस्या नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके सदृश कोई सुख नहीं है। पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सञ्चय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानव-शरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। आसक्त मनुष्यकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है और मोहजालका विस्तार करनेवाली होती है। जो उस मोहजालसे घिर जाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी दुःखका ही भागी होता है। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सभी उपायोंसे काम और क्रोधको काबूमें करना चाहिये, क्योंकि वे दोनों दोष मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, सम्पत्तिको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूरस्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ़कर हितका साधन है[२]। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, किंतु हितकारक बात कहना सत्यसे भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये कर्म आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके

१. यहाँ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे मिलकर उनको जो उपदेश दिया है, वह या तो जनकके उपदेश देनेके पूर्वका प्रसंग समझना चाहिये अथवा ऐसा समझना चाहिये कि यह उपदेश सनत्कुमारजीने संसारके हितके लिये शुकदेवजीको निमित्त बनाकर दिया है।

२. नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्। विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम्। आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्॥
(ना० पूर्व० ६०। ४८-४९)

मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्त भावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसके अन्त:करणमें सदा शान्ति विराजती है, जो निर्विकार एवं एकाग्रचित्त है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले शरीर और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। मुने! जिसकी किसी भी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, उसे महान् श्रेयकी प्राप्ति होती है। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। सब प्राणियोंके साथ मित्रतापूर्ण बर्ताव करे। इस जन्म (अथवा शरीर)-को लेकर किसीके साथ वैरभाव न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी भी वस्तुका संग्रह न करे। मनमें पूर्ण संतोष रखे। कामना तथा चपलताको त्याग दे। इससे परम कल्याणकी सिद्धि होती है। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। जो किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमात्माको जीतना चाहता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह बहुत शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। मुने! जो मैथुनमें सुख समझनेवाले प्राणियोंके बीचमें रहकर भी (स्त्रियोंसे रहित) अकेले रहनेमें ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानानन्दसे तृप्त समझना चाहिये। जो ज्ञानानन्दसे पूर्णत: तृप्त है, वह शोकमें नहीं पड़ता। जीव सदा कर्मोंके अधीन रहता है, वह शुभ कर्मोंसे देवता होता है, शुभ और अशुभ दोनोंके आचरणसे मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है तथा केवल अशुभ कर्मोंसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उन-उन योनियोंमें जीवको सदा जरा-मृत्यु तथा नाना प्रकारके दुःखों-का शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है।

यहाँ विभिन्न वस्तुओंके संग्रह-परिग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संग्रहसे महान् दोष प्रकट होता है। रेशमका कीड़ा अपने संग्रहके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाले जीव उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जैसे जंगलके बूढ़े हाथी तालाबके दलदलमें फँसकर दुःख भोगते हैं। जैसे महान् जालमें फँसकर पानीके बाहर आये हुए मत्स्य तड़पते हैं, उसी प्रकार स्नेह-जालमें फँसकर अत्यन्त कष्ट उठाते हुए इन प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात करो। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और द्रव्यका संग्रह, यह सब कुछ पराया है, सब अनित्य है। यहाँ अपना क्या है? केवल पुण्य और पाप। अर्थ (परमात्मा)-की प्राप्तिके लिये विद्या, कर्म, पवित्रता और अत्यन्त विस्तृत ज्ञानका सहारा लिया जाता है। जब अर्थकी सिद्धि (परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। गाँवमें रहनेवाले मनुष्यकी विषयोंके प्रति जो आसक्ति होती है, वह उसे बाँधनेवाली रस्सीके समान है। पुण्यात्मा पुरुष उस रस्सीको काटकर आगे परमार्थके पथपर बढ़ जाते हैं; परंतु पापी जीव उसे नहीं काट पाते। यह संसार एक नदीके समान है। रूप इसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है। गन्ध इस

नदीका कीचड़, शब्द जल और स्वर्गरूपी दुर्गम घाट है। इस नदीको मनुष्य-शरीररूपी नौकाकी सहायतासे पार किया जा सकता है। क्षमा इसको खेनेवाले डाँड और धर्म इसको स्थिर करनेवाला लंगर है। विषयासक्तिके त्यागरूपी शीघ्रगामी वायुद्वारा ही इस नदीको पार किया जा सकता है। इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त, सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त, सर्वज्ञ, सर्वविजयी, सिद्ध तथा भाव, अभावसे रहित हो जाओ। बहुत-से ज्ञानी पुरुष संयम और तपस्याके बलसे नवीन बन्धनोंका उच्छेद करके नित्य सुख देनेवाली अबाधसिद्धि (मुक्ति)-को प्राप्त हो चुके हैं।

## शुकदेवजीको सनत्कुमारका उपदेश

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—शुकदेव! शास्त्र शोकको दूर करनेवाला है। वह शान्तिकारक तथा कल्याणमय है। अपने शोकका नाश करनेके लिये शास्त्रका श्रवण करनेसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। उनके मिलनेपर मनुष्य सुखी एवं अभ्युदयशील होता है। शोकके हजारों और भयके सैकड़ों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं। विद्वान् पुरुषपर उनका जोर नहीं चलता[1]। अल्प बुद्धिवाले मनुष्य ही अप्रिय वस्तुके संयोग और प्रिय वस्तुके वियोगसे मन-ही-मन दुःखी होते हैं। जो वस्तु भूतकालके गर्भमें छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणोंका स्मरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो आदरपूर्वक उसके गुणोंका चिन्तन करता है, वह उसकी आसक्तिके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। जहाँ चित्तकी आसक्ति बढ़ने लगे, वहीं दोषदृष्टि करनी चाहिये और उसे अनिष्टको बढ़ानेवाला समझना चाहिये। ऐसा करनेपर उससे शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है। जो बीती बातके लिये शोक करता है, उसे धर्म, अर्थ और यशकी प्राप्ति नहीं होती। वह उसके अभावका दुःखमात्र उठाता है। उससे अभाव दूर नहीं होता। सभी प्राणियोंको उत्तम पदार्थोंसे संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं। किसी एकपर ही यह शोकका अवसर नहीं आता। जो मनुष्य भूतकालमें मरे हुए किसी व्यक्ति अथवा नष्ट हुई किसी वस्तुके लिये निरन्तर शोक करता है, वह एक दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता है। इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। यदि कोई शारीरिक और मानसिक दुःख उपस्थित हो जाय तथा उसे दूर करनेमें कोई उपाय काम न दे सके, तो उसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये। दुःख दूर करनेकी सबसे अच्छी दवा यही है कि उसका बार-बार चिन्तन न किया जाय। चिन्तन करनेसे वह घटता नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिके विचारसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनद्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं है। रूप, यौवन, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। आये हुए संकटके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक

१. शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥ (ना० पूर्व० ६१। २)

छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दु:ख ही अधिक होता है तथापि जरा और मृत्युके दु:ख महान् हैं, अत: उनसे अपने प्रिय आत्माका उद्धार करे। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखी धारवाले बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दु:खी एवं विवश होकर जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका नाशवान् शरीर क्षण-क्षणमें विनाशको प्राप्त हो रहा है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए एक-एक करके बीतते चले जा रहे हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वाद बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता है और संसारको धोखा दिया करता है, किंतु कहीं-कहीं ऐसा पुरुष भी सुखी देखा जाता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग बहुत-से कार्य करते हैं, फिर भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। इसमें पुरुषका प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भ धारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती और कितने ही मनुष्य संतानको क्रोधमें भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मानो वह स्वयं किसी प्रकार परलोकसे आकर प्रकट हो गया हो। कितने ही गर्भ ऐसे हैं,जो पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस महीनेतक माताके उदरमें धारण किये जानेके बाद जन्म लेनेपर कुलाङ्गार निकल जाते हैं। उन्हीं माङ्गलिक कृत्योंसे प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेनेके साथ ही पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। (इन सबमें प्रारब्ध ही प्रधान है।)

जो सुख और दु:ख दोनोंकी चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है और परमानन्दका अनुभव करता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अत: धनको प्रत्येक दशामें दु:खदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिक धन कमानेकी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं (वे धनकी तृष्णामें नहीं पड़ते)। संग्रहका अन्त है विनाश, सांसारिक ऐश्वर्यकी उन्नतिका अन्त है उस ऐश्वर्यकी अवनति। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है। अत: पण्डितजन इस लोकमें संतोषको ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा

रही है। वह पलभर भी विश्राम नहीं लेती। अब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसारकी दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय। जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माकी स्थिति जानकर उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे संसारयात्रा समाप्त होनेपर परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं।

जैसे वनमें नयी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अतृप्त पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगोंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिये इस दुःख-से छुटकारा पानेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ करता है और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकालमें ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और उत्तम गन्ध आदि विषयोंमें किञ्चित् सुखका अनुभव होता है। उपभोगके पश्चात् उनमें कुछ नहीं रहता। प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयोग होनेके पहले कोई दुःख नहीं होता। जब संयोगके बाद प्रियका वियोग होता है तभी सबको दुःख हुआ करता है; अतः विवेकी पुरुषको अपने स्वरूपमें स्थित होकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। धैर्यके द्वारा शिश्न और उदरकी, नेत्रद्वारा हाथ और पैरकी, मनके द्वारा आँख और कानकी तथा सद्विद्याके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। पूजनीय तथा अन्य मनुष्योंमें आसक्ति हटाकर शान्तभावसे विचरण करता है, वही सुखी और वही विद्वान् है। जो अध्यात्म-विद्यामें अनुरक्त, निष्काम तथा भोगा-सक्तिसे दूर है और सदा अकेला ही विचरता रहता है, वह सुखी होता है। जब मनुष्य सुखको दुःख और दुःखको सुख समझने लगता है, उस अवस्थामें बुद्धि, सुनीति और पुरुषार्थ भी उसकी रक्षा नहीं कर पाते। अतः मनुष्यको ज्ञानप्राप्तिके लिये स्वभावतः यत्न करना चाहिये; क्योंकि यत्न करनेवाला पुरुष कभी दुःखमें नहीं पड़ता।

**सनन्दनजी कहते हैं**—व्यासपुत्र शुकदेवसे ऐसा कहकर उनकी अनुमति ले महामुनि सनत्कुमारजी उनसे सादर पूजित हो वहाँसे चले गये। योगियोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी भी अपनी स्वरूपस्थितिको भलीभाँति जानकर ब्रह्मपदका अनुसंधान करनेके लिये उत्सुक हो पिताके पास गये। पितासे मिलकर महामुनि शुकने उन्हें प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके वे कैलासपर्वतको चले गये।

## श्रीशुकदेवजीकी ऊर्ध्वगति, श्वेतद्वीप तथा वैकुण्ठधाममें जाकर शुकदेवजीके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्‌की आज्ञासे शुकदेवजीका व्यासजीके पास आकर भागवतशास्त्र पढ़ना

**सनन्दनजीने कहा**—देवर्षे! कैलास-पर्वतपर जाकर सूर्यके उदय होनेपर विद्वान् शुकदेव हाथ-पैरोंको यथोचित रीतिसे रखकर विनीतभावसे पूर्वकी ओर मुँह करके बैठे और योगमें लग गये। उस समय उन्होंने सब प्रकारके सङ्गोंसे रहित परमात्माका दर्शन किया। यों उस परमात्माका साक्षात्कार करके शुकदेवजी खूब खुलकर हँसे। फिर वे वायुके समान आकाशमें विचरने लगे। उस समय उनका तेज उदयकालीन अरुणके समान प्रकाशित हो रहा था। वे मन और वायुके समान आगे बढ़ रहे थे। उस समय सबने अपनी शक्ति तथा रीति-नीतिके अनुसार उनका पूजन किया। देवताओंने उनपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा

की। उन्हें इस प्रकार ऊपर उठते देख गन्धर्व, अप्सरा, महर्षि तथा सिद्धगण सब आश्चर्यसे चकित हो उठे। तत्पश्चात् वे नित्य, निर्गुण एवं लिङ्गरहित ब्रह्मपदमें स्थित हो गये। उस समय उनका तेज धूमरहित अग्निकी भाँति उद्दीप्त हो रहा था। आगे बढ़नेपर शुकदेवजीने पर्वतके दो अनुपम शिखर देखे, जिनमें एक तो हिमालयके समान श्वेत तथा दूसरा मेरुके समान पीतवर्ण था। एक रजतमय था और दूसरा सुवर्णमय। दोनों एक-दूसरेसे सटे हुए और सुन्दर थे। नारद! इनका विस्तार ऊपरकी ओर तथा अगल-बगलमें सौ-सौ योजनका था। शुकदेवजी दोनों शिखरोंके बीचसे सहसा आगे निकल गये। वह श्रेष्ठ पर्वत उनकी गतिको रोक न सका। उस समय शुकदेवजी वायुलोकसे ऊपर अन्तरिक्षमें यात्रा करते हुए अपना प्रभाव दिखाकर सर्व-स्वरूप हो सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करने लगे। परम योगवेत्ता शुकदेवजी श्वेतद्वीपमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहले भगवान् श्रीनारायणदेवका प्रभाव देखा। तत्पश्चात् जिन्हें वेदकी ऋचाएँ भी ढूँढ़ती फिरती हैं, उन देवाधिदेव जनार्दनका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर शुकदेवजीने भगवान्‌की स्तुति की। नारद! उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् बोले।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—योगीन्द्र! मैं सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अदृश्य होकर रहता हूँ, फिर भी तुमने मेरा दर्शन कर लिया है। ब्रह्मचारी शुक! तुम सनत्कुमारजीके बताये हुए योगके द्वारा सिद्ध हो चुके हो। अतः वायुके मार्गमें स्थित होकर इच्छानुसार सम्पूर्ण लोकोंको देखो।

विप्रवर! भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर शुकदेवमुनि उन्हें प्रणाम करके अखिलविश्ववन्दित विष्णुधामको गये। नारद! वैकुण्ठलोक विमानपर विचरनेवाले देवताओंसे सेवित है। उसे विरजा नामवाली दिव्य नदीने चारों ओरसे घेर रखा है। उस दिव्य धामके प्रकाशित होनेसे ही ये सम्पूर्ण लोक प्रकाशित हो रहे हैं। वहाँ सुन्दर-सुन्दर बावड़ियाँ बनी हैं, जो कमलोंसे आच्छादित रहती हैं। उनके घाट मूँगेके बने हुए हैं, जिनमें सुवर्ण और रत्न जड़े हुए हैं। वे सब बावड़ियाँ निर्मल जलसे भरी रहती हैं। वहाँके द्वारपाल चार भुजाधारी होते हैं। नाना प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे सभी विष्वक्सेनजीके अनुयायी एवं सिद्ध हैं। उनकी कुमुद आदि नामोंसे प्रसिद्धि है। शुकदेवजीको उनमेंसे किसीने नहीं रोका। वे बिना बाधा भीतर प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने सिद्ध-समुदायके द्वारा निरन्तर सेवित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया। उनके चार भुजाएँ थीं। वे शान्त एवं प्रसन्नमुख दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पर रहा था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। उनके वक्षःस्थलमें भगवती लक्ष्मी विराज रही थीं और कौस्तुभमणिसे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके कटिभागमें करधनी, बायें कंधेपर यज्ञोपवीत, हाथोंमें कड़े तथा भुजाओंमें अङ्गद सुशोभित थे। माथेपर मण्डलाकार किरीट और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे थे। भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके शुकदेवने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।

**शुकदेवजी बोले**—सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्के बीजस्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है। वासुकि नागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वाराह तथा नरसिंहरूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग दोनोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। चारों सनकादि आपके ही अवतार हैं। आपने ही कच्छप और पृथुरूप धारण किया है। आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है। आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं। जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं। आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि भी आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें आप ही विराज रहे हैं। जानने और चिन्तन करने योग्य परमात्मा भी आप ही हैं। नर-नारायण, शिपिविष्ट तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। सत्य ही आपका धाम है। आप धामरहित हैं। गरुड़ आपके ही स्वरूप हैं। आप स्वयंप्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं। आप यज्ञोंद्वारा यजन करने योग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ, पैर और मस्तकवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करते हैं। आठ[१] प्रकृतियोंके अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है। बृहदारण्यक उपनिषद्के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है। आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिञ्चि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। तीन शिखरोंवाला त्रिकूट पर्वत आपका ही स्वरूप है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके अभिन्न विग्रह हैं। एक सींगवाले शृङ्गी ऋषि भी आपकी ही विभूति हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं। आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचल रूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुण रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षररूप हैं। शरणागतवत्सल ईश्वर!

---

१. गीताके अनुसार आठ प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार।

आपको नमस्कार है। आप मेरी रक्षा कीजिये[1]।

इस प्रकार स्तुति करनेपर प्रणतजनोंपर दया करनेवाले शङ्ख, चक्र और गदाधारी भगवान् विष्णु शुकदेवजीसे इस प्रकार बोले।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग व्यासपुत्र! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें विद्या और भक्ति दोनों प्राप्त हों। तुम ज्ञानी और साक्षात् मेरे स्वरूप हो। ब्रह्मन्! तुमने पहले श्वेतद्वीपमें जो मेरा स्वरूप देखा है, वह मैं ही हूँ। सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये मैं वहाँ स्थित हूँ। मेरा वही स्वरूप भिन्न-भिन्न अवतार धारण करनेके लिये जाता है। महाभाग! मोक्षधर्मका निरन्तर चिन्तन करनेसे तुम सिद्ध हो गये हो। जैसे वायु तथा सूर्य आकाशमें विचरण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी समस्त श्रेष्ठ लोकोंमें भ्रमण कर सकते हो। तुम नित्य मुक्तस्वरूप हो। मैं ही सबको शरण देनेवाला हूँ। संसारमें मेरे प्रति भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। उस भक्तिको प्राप्त कर लेनेपर और कुछ पाना शेष नहीं रहता। (वह तुमको प्राप्त हो गयी) बदरिकाश्रममें नर-नारायण ऋषि कल्पान्त कालतकके लिये तपस्यामें स्थित हैं। उनकी आज्ञासे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तुम्हारे पिता व्यास भागवत्-शास्त्रका सम्पादन करेंगे। अतः तुम पृथ्वीपर जाओ और उस शास्त्रका अध्ययन करो। इस समय वे गन्धमादन पर्वतपर तपस्या करते हैं।

नारदजी! भगवान्‌के ऐसा कहनेपर शुकदेवजीने उन चार भुजाधारी श्रीहरिको नमस्कार किया और वे पिताके समीप लौट गये। तदनन्तर शुकदेवको अपने निकट देख परम प्रतापी पराशरनन्दन भगवान् व्यासका मन प्रसन्न हो गया। वे पुत्रको पाकर तपस्यासे निवृत्त हो गये। फिर भगवान् नारायण और नरश्रेष्ठ नरको नमस्कार करके शुकदेवजीके साथ अपने आश्रमपर आये। मुनीश्वर नारद! तुम्हारे मुखसे भगवान् नारायणका आदेश पाकर उन्होंने अनेक प्रकारके शुभ उपाख्यानोंसे युक्त दिव्य भागवतसंहिता बनायी, जो वेदके तुल्य माननीय तथा भगवद्भक्तिको बढ़ानेवाली है। व्यासजीने वह संहिता अपने निवृत्तिपरायण पुत्र शुकदेवको पढ़ायी। व्यासनन्दन भगवान् शुक यद्यपि आत्माराम हैं तथापि उन्होंने भक्तोंको सदा प्रिय लगनेवाली उस संहिताका बड़े उत्साहसे अध्ययन किया। अनघ! इस प्रकार ये मोक्षधर्म बतलाये गये, जो पाठकों और श्रोताओंके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति बढ़ानेवाले हैं।

---

१. शान्तं प्रसन्नवदनं पीतकौशेयवाससम्। शङ्खचक्रगदापद्मैर्मूर्तिमद्भिरुपासितम्॥
वक्षःस्थलस्थया लक्ष्म्या कौस्तुभेन विराजितम्। कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकटकाङ्गदभूषितम्॥
भ्राजत्किरीटवलयं मणिनूपुरशोभितम्। ददर्श सिद्धनिकरैः सेव्यमानमहर्निशम्॥
तं दृष्ट्वा भक्तिभावेन तुष्टाव मधुसूदनम्। नमस्ते वासुदेवाय सर्वलोकैकसाक्षिणे॥
जगद्बीजस्वरूपाय पूर्णाय निभृतात्मने। हरये वासुकिस्थाय श्वेतद्वीपनिवासिने॥
हंसाय मत्स्यरूपाय वाराहतनुधारिणे। नृसिंहाय ध्रुवेज्याय सांख्ययोगेश्वराय च॥
चतुःसनाय कूर्माय पृथवे स्वसुखात्मने। नाभेयाय जगद्धात्रे विधात्रेऽन्तकराय च॥
भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय पराय च। कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्धकल्किस्वरूपिणे॥
चतुर्व्यूहाय वेद्याय ध्येयाय परमात्मने। नरनारायणाख्याय शिपिविष्टाय विष्णवे॥
ऋतधाम्ने विधाम्ने च सुपर्णाय स्वरोचिषे। ऋभवे सुव्रताख्याय सुधाम्ने चाजिताय च॥
विश्वरूपाय विश्वाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे। यज्ञाय यज्ञभोक्त्रे च स्थविष्ठायाणवेऽर्थिने॥
आदित्यसोमनेत्राय सहओजोबलाय च। ईज्याय साक्षिणेऽजाय बहुशीर्षाङ्घ्रिबाहवे॥
श्रीशाय श्रीनिवासाय भक्तवश्याय शार्ङ्गिणे। अष्टप्रकृत्यधीशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये॥
बृहदारण्यवेद्याय हृषीकेशाय वेधसे। पुण्डरीकनिभाक्षाय क्षेत्रज्ञाय विभासिने॥
गोविन्दाय जगत्कर्त्रे जगन्नाथाय योगिने। सत्याय सत्यसंधाय वैकुण्ठायाच्युताय च॥
अधोक्षजाय धर्माय वामनाय त्रिधातवे। धृतार्चिषे विष्णवे तेऽनन्ताय कपिलाय च॥
विरिञ्चये त्रिककुदे ऋग्यजुःसामरूपिणे। एकशृङ्गाय च शुचिश्रवसे शास्त्रयोनये॥
वृषाकपय ऋद्धाय प्रभवे विश्वकर्मणे। भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय दैत्यघ्ने निर्गुणाय च॥
निरञ्जनाय नित्याय ह्यव्ययायाक्षराय च। नमस्ते पाहि मामीश शरणागतवत्सल॥

(ना० पूर्व० ६२। ४७—६५)

# तृतीय पाद

## शैवदर्शन[1] के अनुसार पति, पशु एवं पाश आदिका वर्णन तथा दीक्षाकी महत्ता

**शौनकजी बोले**—साधु सूतजी! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ पण्डित हैं। विद्वन्! आपने हमलोगोंको श्रीकृष्णकथारूपी अमृतका पान कराया है। भगवान्के प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने सनन्दनके मुखसे मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर पुनः क्या पूछा? ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि मुनीश्वर उत्तम सिद्धपुरुष हैं। वे लोगोंके उद्धारमें तत्पर होकर सम्पूर्ण जगत्में विचरते रहते हैं। महाभाग! श्रीनारदजी भी सदा श्रीकृष्णके भजनमें संलग्न रहते हैं और उन्हींके शरणागत भक्त हैं। उन सनकादि और नारदका समागम होनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली कौन-सी कल्याणमयी कथा हुई, यह बतानेकी कृपा करें?

**सूतजीने कहा**—भृगुश्रेष्ठ! सनन्दनजीके द्वारा प्रतिपादित सनातन मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर नारदजीने पुनः उन मुनियोंसे पूछा।

**नारदजी बोले**—मुनीश्वरो! किन मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी आराधना की जानी चाहिये। श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंकी शरण लेनेवाले भक्तजनोंको किन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। विप्रवरो! भागवततन्त्रका तथा गुरु और शिष्यके सम्बन्धको स्थापित करके उन्हें अपने-अपने कर्तव्यके पालनकी प्रेरणा देनेवाली दीक्षाका वर्णन कीजिये। तथा साधकोंद्वारा पालन करने योग्य प्रातःकाल आदिके जो-जो कृत्य हों, उन सबको भी हमें बताइये। जिन महीनोंमें जप, होम आदि जिन-जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे परमात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उनका आपलोग मुझसे वर्णन करें।

**सूतजी कहते हैं**—महात्मा नारदका यह वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले।

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—नारद! सुनो, मैं तुमसे भागवततन्त्रका वर्णन करूँगा। जिसे जानकर साधक निर्मल भक्तिके द्वारा अविनाशी भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। (अब पहले शैवतन्त्रका

---

१. 'शैव-महातन्त्र' के 'शैवागम', 'शैवदर्शन' तथा 'पाशुपत-दर्शन' आदि अनेक नाम हैं। इस अध्यायमें इसीके निगूढ़ तत्त्वोंका विशद विवेचन किया गया है। यहाँ भूमिकारूपसे उक्त दर्शनकी कुछ मोटी-मोटी बातें प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे पाशुपतसिद्धान्त और इस अध्यायमें वर्णित विषयको हृदयङ्गम करनेमें सुविधा होगी। शैवागमके अनुसार तीन पदार्थ (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार पाद या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं। जैसा कि तन्त्र-तत्त्वज्ञोंका कथन है—'त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रम् ....'

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको दीक्षा कहते हैं। यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके बिना नहीं हो सकती। इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है; अतः परमपुरुषार्थकी हेतुभूता दीक्षामें उपकारक उक्त ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम पादका नाम 'विद्या' है। भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है। अतः अनेक प्रकारकी साङ्गोपाङ्ग दीक्षाओंके विधि-विधानका परिचय करानेवाले द्वितीय पादको 'क्रिया' पाद कहा गया है। परंतु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके बिना अभीष्टप्राप्ति नहीं हो सकती, अतः 'क्रिया' पादके पश्चात् 'योग' नामक तीसरे पादकी आवश्यकता समझकर उसका प्रतिपादन किया गया है। योगकी सिद्धि भी तभी होती है, जब शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग हो, अतः इन सब कर्मोंके प्रतिपादक 'चर्या' नामक चतुर्थ पादका वर्णन है।

**पति या पशुपति**

करने, न करने और अन्यथा करनेमें समर्थ, नित्य, निर्गुण, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वथा स्वतन्त्र, परम सर्वज्ञ, परम ऐश्वर्यस्वरूप, नित्यमुक्त, नित्य-निर्मल, निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् महेश्वर परम शिव ही 'पति' या 'पशुपति' हैं। महेश्वरके पाँच कृत्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह। यद्यपि विद्येश्वर इत्यादि मुक्त जीव भी शिवभावको प्राप्त हो जाते हैं, किंतु ये सब स्वतन्त्र नहीं होते, अपितु परमेश्वरके अधीन रहते हैं। उपासनाके लिये जहाँ परमेश्वर शिवके साकार रूपका वर्णन है, वहाँ भी उनका शरीर प्राकृत

वर्णन करते हैं।) शैव-महातन्त्रमें तीन पदार्थ और चार पादोंका वर्णन है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। भोग, मोक्ष, क्रिया और चर्या—ये शैवमहातन्त्रमें चार पाद (साधन) कहे गये हैं। पदार्थ तीन ही हैं—पशुपति, पशु तथा पाश; इनमें एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही 'पशुपति' हैं और जीवोंको 'पशु' कहा गया है। नारद! देखो, जबतक स्वरूपके अज्ञानको सूचित करनेवाले मोह आदिसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक इन सब जीवोंकी 'पशु' संज्ञा मानी गयी है। उनका पशुत्व द्वैतभावसे युक्त है। इन पशुओंके जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकारके माने गये हैं। उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण बताया जायगा। पशुके तीन भेद हैं—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' और 'सकल'। इनमें प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल पशु' 'मल' संयुक्त (मलरूप पाशसे आबद्ध) होता है। दूसरा 'प्रलयाकल पशु' 'मल' और 'कर्म'—इन दो पाशोंसे संयुक्त (बद्ध) होता है। तीसरा अर्थात् 'सकल पशु' 'मल', 'माया' तथा 'कर्म'—इन तीन पाशोंसे बँधा हुआ कहा गया है। उक्त त्रिविध पशुओंमें जो पहला—विज्ञानाकल है, उसके दो भेद होते हैं—'समास-कलुष' और 'असमासकलुष'। दूसरे—प्रलयाकल पशुके भी दो भेद कहे गये हैं—'पक्व-मल' और 'अपक्व-मल' (अर्थात् पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय)। विज्ञानाकल और प्रलयाकल ये दोनों जीव (पशु) शुद्ध मार्गपर स्थित होते हैं और सकल जीव कला आदि तत्त्वोंके अधीन होकर विभिन्न लोकोंमें कर्मानुसार प्राप्त हुए तिर्यक्-मनुष्यादि शरीरोंमें भ्रमण करता है। पाश पाँच प्रकारके बताये गये हैं—'मलज', 'कर्मज', 'मायेय' (मायाजन्य), 'तिरोधानशक्तिज' और 'विन्दुज'। जैसे भूसी चावलको ढके रहती है, उसी प्रकार एक भी 'मल' पुरुषकी अनेक शक्ति—दृक्-शक्ति (ज्ञान) और क्रियाशक्तिका आच्छादन कर लेता है और यही जीवात्माओंके लिये देहान्तरकी प्राप्तिमें कारण होता है। धर्म और अधर्मका नाम है कर्म, जो विचित्र फल-भोग प्रदान करनेवाला है। यह 'कर्म' प्रवाहरूपसे नित्य है। बीजाङ्कुर-न्यायसे इसकी स्थिति अनादि मानी गयी है। इस प्रकार ये प्रथम दो (मलज और कर्मज) पाश बताये गये। ब्रह्मन्! अब 'मायेय' आदि पाशोंका वर्णन सुनो।

---

नहीं है। वह निर्मल तथा कर्मादि बन्धनोंसे नित्यमुक्त होनेके कारण शाक्त (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) है। उपनिषदोंमें महेश्वरके मन्त्रमय स्वरूपका वर्णन है। शैवदर्शनमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कही गयी है—'मलाद्यसम्भवाच्छाक्तं वपुर्नैतादृशं प्रभोः।' 'तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः।' इत्यादि।

### पशु

जीवात्मा या क्षेत्रज्ञका ही नाम 'पशु' है। पशु उसे कहते हैं जो पाशोंद्वारा बँधा हो—'पाशनाच्च पशवः।' जीव भी पाशबद्ध है, इसीसे उसे 'पशु' कहते हैं। वह वस्तुतः अणु नहीं, व्यापक है। नित्य है। 'आत्मनो विभुनित्यता' यह शैवतन्त्रकी स्पष्ट घोषणा है; परंतु पशु (जीव) दशामें यह परिच्छिन्न और सीमित शक्तिसे युक्त है, तथापि यह 'सांख्य' के पुरुषकी भाँति अकर्ता भी नहीं है; क्योंकि पाशोंसे मुक्त होकर शिवत्वको प्राप्त हो जानेपर यह भी निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। पशु तीन प्रकारका है—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' तथा 'सकल'। (१) जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा संन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसको शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं। मल तीन प्रकारके होते हैं—आणव-मल, कर्मज-मल तथा मायेय-मल। विज्ञानाकलमें केवल आणव मल रहता है। वह विज्ञान (तत्त्वज्ञान)-द्वारा अकल—कलारहित (कलादि भोग-बन्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी 'विज्ञानाकल' संज्ञा होती है। (२) जिस जीवात्माके देह, इन्द्रिय आदि प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं, इससे उसमें मायेय मल तो नहीं रहता, परंतु आणव और कर्मज—ये दो मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयकालमें ही अकल (कलारहित) होनेके कारण 'प्रलयाकल' कहलाता है। (३) जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कर्मज—तीनों मल (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण 'सकल' कहा गया है।

विज्ञानाकल पशु (जीव)-के भी दो भेद हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष'। (१) जीवात्मा जो कर्म

('विन्दुज पाश' अपरामुक्ति-स्वरूप है और शिव-स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाला है, उसका स्वरूप यह है—) सत्, चित् और आनन्द जिनका स्वरूपभूत वैभव है, वे एकमात्र सर्वव्यापी सनातन परमात्मा ही सबके कारण तथा सम्पूर्ण जीवोंके पतिरूपसे विराज रहे हैं। जो मनमें तो आता है, किंतु प्रकट नहीं होता और संसारसे निवृत्ति (वैराग्य) प्रदान करता है; तथा दृक्-शक्ति और क्रियाशक्तिके रूपमें जो स्वयं ही विद्यमान है, वह उत्कृष्ट शैव तेज है। इसके सिवा, जिस शक्तिसे समर्थ होकर जीव परमात्माके समीप दिव्य भोगसे सम्पन्न होता और पशु-समुदायकी कोटिसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है, परमात्माकी उस एकान्तस्वरूपा आद्या शक्तिको चिद्रूपा कहते हैं। उस चिद्रूपा शक्तिसे उत्कर्षको प्राप्त हुआ 'विन्दु' दृक् (ज्ञान) और क्रिया-स्वरूप होकर शिव-नामसे प्रतिपादित होता है, उसीको सम्पूर्ण तत्त्वोंका कारण बताया गया है। वह सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। उसीमें संनिहित हुई इच्छा आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके सकाशसे अपना-अपना कार्य करती हैं। मुने! इसलिये यह सबपर अनुग्रह करनेवाला है। जड और चेतनपर अनुग्रह करनेके लिये विश्वकी सृष्टि करते समय इसका प्रथम उन्मेष नादके रूपमें हुआ है, जो शान्ति आदिसे युक्त तथा भुवन-स्वरूप है। विप्रवर! वह शक्ति-तत्त्व सावयव बताया गया है। इससे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका तथा उत्कर्ष और अपकर्षका प्रसार एवं अभाव होता है; अतः यह तत्त्व सदा शिवरूप है। जहाँ दृक्-शक्ति तिरोहित होती है और क्रियाशक्ति बढ़ जाती है, वह ईश्वर नामक तत्त्व कहा गया है; जो समस्त मनोरथोंका साधक है, जहाँ क्रियाशक्तिका तिरोभाव और ज्ञानशक्तिका उद्रेक होता है, वह विद्यातत्त्व कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप एवं प्रकाशक है। नाद, विन्दु और सकल—ये सत्-नामक तत्त्वके आश्रित हैं। आठ विद्येश्वरगण ईशतत्त्वके और सात करोड़ 'मन्त्र' गण विद्यातत्त्वके आश्रित हैं। ये सब तत्त्व शुद्धमार्गके नामसे कहे गये हैं। यहाँ ईश्वर साक्षात् निमित्त कारण हैं। वे ही विन्दुरूपसे सुशोभित हो यहाँ उपादानकारण बनते हैं। पाँच प्रकारके जो पाश हैं, उनका कोई समय न होनेके कारण उनका कोई निश्चित क्रम नहीं है; उनका व्यापार देखकर ही

करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर' पदपर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं—

'अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।'

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या सात करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। तत्त्व-प्रकाश नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकली सकलः। मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्।
मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः। आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात्।
आद्याननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोटयः सप्त॥

'प्रलयाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्वपाशद्वय' और 'अपक्वपाशद्वय'। (१) जिनके मल तथा कर्मरूपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पक्वपाशद्वय' मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं। (२) 'अपक्वपाशद्वय' जीव पुर्यष्टक देह धारण करके नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

'सकल' जीवोंके भी दो भेद हैं—'पक्व-कलुष' और 'अपक्व-कलुष'। (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म

उनकी कल्पना की जाती है। वास्तवमें विचित्र शक्तियोंसे युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होनेसे 'शाक्त' कहा गया है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके भेदसे ही अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयी हैं, प्रभु शिव जड-चेतनपर अनुग्रह करने लिये विविध रूप धारण करके अनादि मलसे आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करनेवाले शिव सम्पूर्ण जीवोंको भोग और मोक्ष तथा जडवर्गको अपने व्यापारमें लगनेकी शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिवके समान रूपका हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवोंपर ईश्वरका अनुग्रह है। कर्म अनादि होनेके कारण सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपासे मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्करको अनुग्राहक (कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवोंके भोगके लिये सूक्ष्म करणोंद्वारा अनायास ही जगत्की उत्पत्ति करते हैं। कोई भी कर्ता किसी भी कार्यमें उपादान और करणोंके बिना नहीं देखा जाता।

(अब 'मायापाश'का प्रसङ्ग है—) यहाँ शक्तियाँ ही करण हैं। मायाको उपादान माना गया है। वह नित्य, एक और कल्याणमयी है। उसका न आदि है न अन्त; वह माया अपनी शक्तिद्वारा मनुष्यों और लोकोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण है। माया अपने कर्मोंद्वारा स्वभावतः मोहजनक होती है। उससे भिन्न 'परा माया' है, जो सूक्ष्म एवं व्यापक है। इन विकारयुक्त कार्योंसे वह सर्वथा परे मानी गयी है। विद्याके स्वामी भगवान् शिव जीवके कर्मोंको देखकर अपनी शक्तियोंसे मायाको क्षोभमें डालते और जीवोंके भोगके लिये मायाके द्वारा ही शरीर एवं इन्द्रियोंकी सृष्टि करते हैं। अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न माया पहले कालतत्त्वकी सृष्टि करती है। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्का संकलन तथा लय करती है। तदनन्तर माया नियमन-शक्तिस्वरूपा नियतिकी सृष्टि करती है। यह सबको नियममें रखती है; इसलिये नियति कही गयी है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली आदि-अन्तरहित नित्य माया 'कला'-तत्त्वको जन्म देती है; क्योंकि एक ओरसे मनुष्योंके मलको कलना करके वह उनमें कर्तृत्व-शक्ति प्रकट करती है; इसीलिये इसका नाम कला है। यह कला ही 'काल' और 'नियति' के सहयोगसे पृथ्वीपर्यन्त अपना सारा व्यापार करती है। वही पुरुषको विषयोंका दर्शन अनुभव करानेके लिये

---

तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब ये पक्व-कलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीव-विशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही ११८ मन्त्रेश्वर जीव हैं। (२) अपक्व-कलुष जीव भवकूपमें गिरते हैं।

**पाश**

नारदपुराणमें शैव-महातन्त्रकी मान्यताके अनुसार पाँच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज, (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाजन्य), (४) तिरोधान-शक्तिज और (५) विन्दुज। आधुनिक शैवदर्शनमें चार प्रकारके पाशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया। रोधशक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है। 'विन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिव-तत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्तिरूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा मुक्ति' कहा गया है, अतः उसे आधुनिक शैवदर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया)-के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता; किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव-शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्निमें दाहक-शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है; अतः

प्रकाशस्वरूप 'विद्या' नामक तत्त्व उत्पन्न करती है। विद्या अपने कर्मसे ज्ञानशक्तिके आवरणका भेदन करके जीवात्माओंको विषयोंका दर्शन कराती है, इसलिये वह कारण मानी गयी है; क्योंकि वह विद्या भोग्य उत्पन्न करती है, जिससे पुरुष उद्बुद्धशक्ति होकर परम करणके द्वारा महत्-तत्त्व आदिको प्रेरित करके भोग्य, भोग और भोक्ताकी उद्भावना करता है। अतः वह विद्या परम करण है। भोक्ता पुरुषको भोग्य वस्तुकी प्रतीति करानेसे विद्याको 'करण' कहा गया है। बुद्धिके द्वारा जो चेतन-जीवको विषयका अनुभव होता है, उसीको 'भोग' कहते हैं। संक्षेपसे विषयाकारा बुद्धि ही सुख-दुःख आदिके रूपमें परिणत होती है। भोक्ताको भोग्य वस्तुका अनुभव अपने-आप ही होता है। विद्या उसमें सहायकमात्र होती है। यद्यपि बुद्धि सूर्यकी भाँति प्रकाशमात्र करनेवाली है, तथापि कर्मरूप होनेके कारण उसमें स्वयं कर्तृत्व नहीं है। वह करणान्तरोंकी अपेक्षासे ही पुरुषको विषयोंका अनुभव करानेमें समर्थ होती है। पुरुष स्वयं ही करण आदिसे सम्बन्ध स्थापित करता और भोगोंकी उत्कण्ठासे स्वयं ही बुद्धि आदिको प्रेरित करता है। साथ ही उन बुद्धि आदिको शुभाशुभ चेष्टाओंसे प्राप्त होनेवाले फलका उसीको भोग करना पड़ता है। इसलिये पुरुषका कर्तृत्व सिद्ध होता है। यदि उसमें कर्तृत्व न स्वीकार किया जाय तो उसके भोक्तृत्वका कथन भी व्यर्थ होता है। इसके सिवा, प्रधान पुरुषके द्वारा आचरित सब कर्म निष्फल हो जाता। यदि पुरुष करण आदिका प्रेरक न हो और उसमें कर्तृत्वका अभाव हो तो उसके द्वारा भोग भी असम्भव ही है। इसलिये पुरुष ही यहाँ प्रवर्तक है। उसका करण आदिका प्रेरक होना विद्याके द्वारा ही सम्भव माना गया है।

तदनन्तर कला दृढ़ वज्रलेपके सदृश रागको उत्पन्न करती है, जिससे उस वज्रलेप-रागयुक्त पुरुषमें भोग्य वस्तुके लिये क्रियाप्रवृत्ति उत्पन्न होती है, इसलिये इसका नाम राग है। इन सब तत्त्वोंसे जब यह आत्मा भोक्तृत्व-दशाको पहुँचाया जाता है, तब वह पुरुष नाम धारण करता है। तत्पश्चात् कला ही अव्यक्त प्रकृतिको जन्म देती है। जो पुरुषके लिये भोग उपस्थित करती है, वह अव्यक्त ही गुणमय सप्तग्रन्थि[१]-विधानका कारण

पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है, आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अतः इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् पशुपतिपदको प्राप्त होता है।

## दीक्षा

दीक्षा ही शिवत्व-प्राप्तिका साधन है। सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीरमें स्थित होकर दीक्षाकरणद्वारा जीवको परम शिवतत्त्वकी प्राप्ति कराते हैं; ऐसा ही कहा भी है—

'योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः।'

'अपक्व-पाशद्वय प्रलयाकल' जीव तथा 'अपक्व-कलुष सकल' जीव जिस पुर्यष्टक देहको धारण करते हैं, वह पञ्चभूत तथा मन, बुद्धि, अहंकार—इन आठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण पुर्यष्टक कहलाती है। पुर्यष्टक शरीर छत्तीस तत्त्वोंसे युक्त होता है। अन्तर्भोगके साधनभूत कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। अपक्वपाशद्वय जीवोंमें जो अधिक पुण्यात्मा हैं, उन्हें परम दयालु भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते हैं।

नारदपुराणके इस अध्यायमें इन्हीं उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रम या व्युत्क्रमसे विवेचन किया गया है। पाठकोंको मनोयोगपूर्वक इसे पढ़ना और हृदयङ्गम करना चाहिये।

१. कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात ग्रन्थियाँ हैं, यही आन्तरिक भोग-साधन कहे गये हैं।

है। इसमें गुणोंका विभाग नहीं है; जैसे आधारमें पृथ्वी आदिके भागका विभाग नहीं होता। उनका जो आधार है, वह भी अव्यक्त ही कहलाता है। गुण तीन ही हैं। उनका अव्यक्तसे ही प्राकट्य होता है। उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम। गुणोंसे ही बुद्धि इन्द्रिय-व्यापारका नियमन और विषयोंका निश्चय करती है। गुणसे त्रिविध कर्मोंके अनुसार बुद्धि भी सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन प्रकारकी कही गयी है। महत्-तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न होता है, जो अहंभावकी वृत्तिसे युक्त होता है। इस अहंकारके ही सम्भेद (इन्द्रिय और देवता आदिके रूपमें परिणति)-से विषय व्यवहारमें आते हैं। अहंकार सत्त्वादि गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है। उन तीनोंके नाम हैं—तैजस, राजस और तामस अहंकार। उनमें तैजस अहंकारसे मनसहित ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुई हैं। जो सत्त्वगुणके प्रकाशसे युक्त होकर विषयोंका बोध कराती हैं। क्रियाके हेतुभूत राजस अहंकारसे कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तामस अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जो पाँचों भूतोंकी उत्पत्तिमें कारण हैं। इनमें मन इच्छा और संकल्पके व्यापारवाला है। अत: वह दो विकारोंसे युक्त है। वह बाह्य इन्द्रियोंका रूप धारण करके, जो उसके लिये सर्वथा उचित है, सदा भोक्ताके लिये भोगका उत्पादक होता है। मन अपने संकल्पसे हृदयके भीतर स्थित रहकर इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न करता है; इसलिये उसे अन्त:करण कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—ये अन्त:करणके तीन भेद हैं। इच्छा, बोध और संरम्भ (गर्व या अहंभाव)—ये क्रमश: इनकी तीन वृत्तियाँ हैं।

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुने! शब्द आदि इनके ग्राह्य-विषय जानने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि विषय माने गये हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये बोलने, ग्रहण करने, चलने, मल-त्याग करने और मैथुनजनित आनन्दकी उपलब्धिरूपी कर्मोंकी सिद्धिके करण हैं; क्योंकि कोई भी क्रिया करणोंके बिना नहीं हो सकती। कार्यमें लगाकर दस प्रकारके करणोंद्वारा चेष्टा की जाती है। व्यापक होनेके कारण कार्यका आश्रय लेकर सब इन्द्रियाँ चेष्टा करती हैं, इसलिये उनका नाम करण है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं। इन तन्मात्राओंसे ही आकाश आदि पाँच भूत प्रकट होते हैं, जो एक-एक विशेष गुणके कारण प्रसिद्ध हैं। शब्द आकाशका मुख्य गुण है; किंतु यह पाँचों भूतोंमें सामान्य रूपसे उपलब्ध होता है। स्पर्श वायुका विशेष गुण है; किंतु वह वायु आदि चारों भूतोंमें विद्यमान है। रूप तेजका विशेष गुण है, जो तेज आदि तीनों भूतोंमें उपलब्ध है। रस जलका विशेष गुण है, जो जल और पृथ्वी दोनोंमें विद्यमान है तथा गन्ध नामक गुण केवल पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है। इन पाँचों भूतोंके कार्य क्रमश: इस प्रकार हैं—अवकाश, चेष्टा, पाक, संग्रह और धारण। वायुमें न शीत स्पर्श है न उष्ण, जलमें शीतल स्पर्श है, तेजमें उष्ण स्पर्श है, अग्निमें भास्वर शुक्लरूप है और जलमें अभास्वर शुक्ल। पृथ्वीमें शुक्ल आदि अनेक वर्ण हैं। रूप केवल तीन भूतोंमें है। जलमें केवल मधुर-रस है और पृथ्वीमें छ: प्रकारका रस है। पृथ्वीमें दो प्रकारकी गन्ध कही गयी है—सुरभि तथा असुरभि। तन्मात्राओंमें उनके भूतोंके ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूतसमुदायकी विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पाँचों भूत सब ओर व्याप्त हैं। सम्पूर्ण चराचर

जगत् पञ्चभूतमय है। शरीरमें जो इन पाँचों भूतोंका संनिवेश है, उसका निरूपण किया जाता है। देहके भीतर जो हड्डी, मांस, केश, त्वचा, नख और दाँत आदि हैं, वे पृथ्वीके अंश हैं। मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद और शुक्र आदिमें जलकी स्थिति है। हृदयमें, नेत्रोंमें और पित्तमें तेजकी स्थिति है; क्योंकि वहाँ उसके उष्णत्व और प्रकाश आदि धर्मोंका दर्शन होता है। शरीरमें प्राण आदि वृत्तियोंके भेदसे वायुकी स्थिति मानी गयी है। सम्पूर्ण नाड़ियों तथा गर्भाशयमें आकाशतत्त्व व्याप्त है। कलासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका साधन है। प्रत्येक शरीरमें भी यह नियत है। भोग-भेदसे इसका निश्चय किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुषमें नियति-कला आदि तत्त्व कर्मवश प्राप्त हुए सम्पूर्ण शरीरोंमें विचरते हैं। यह 'मायेय पाश' कहलाता है। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। पृथ्वीसे लेकर कलापर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्व-समुदाय अशुद्धमार्ग माना गया है।

(अब 'निरोध-शक्तिज' पाशका वर्णन है—) भूमण्डलमें वह स्थावर-जङ्गमरूपसे विद्यमान है। पर्वत और वृक्ष आदिको स्थावर कहते हैं। जङ्गमके तीन भेद हैं—स्वेदज, अण्डज और जरायुज। चराचर भूतोंमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सबमें भ्रमण करता हुआ जीव कभी कर्मवश मनुष्य-शरीर प्राप्त कर लेता है, जो सबसे उत्तम और सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है। उसमें भी भारतवर्षमें ब्राह्मण आदि द्विजोंके कुलमें तो महान् पुण्यसे ही जन्म होता है। ऐसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। जन्म इस प्रकार होता है। पहले स्त्री-पुरुषका संयोग होता है, फिर रज-वीर्यके योगसे एक विन्दु गर्भाशयमें प्रवेश करता है। यह विन्दु द्वयात्मक होता है—इसमें स्त्री और पुरुष—दोनोंके रज-वीर्यका सम्मिश्रण होता है। उस समय रजकी अधिकता होनेपर कन्याका जन्म होता है और वीर्यकी मात्रा अधिक होनेपर पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उसमें मल, कर्म आदि पाशसे बँधा हुआ कोई आत्मा जीवभावको प्राप्त होता है, वह (मल, माया और कर्म त्रिविध पाशसे युक्त होनेके कारण) 'सकल' कहा गया है। गर्भमें माताके खाये हुए अन्न-पान आदिसे पोषित होकर उसका शरीर पक्ष-मास आदि कालसे बढ़ता रहता है। उसका शरीर जरायुसे ढका होता है और अनेक प्रकारके दु:ख आदिसे उसे पीड़ा पहुँचती रहती है। इस प्रकार गर्भमें स्थित जीव अपने पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण करके बार-बार दु:खमग्न एवं पीड़ित होता रहता है। फिर समयानुसार वह बालक स्वयं पीड़ित होकर माताको भी पीड़ा देता हुआ नीचे मुँह किये योनियन्त्रसे बाहर निकलता है। बाहर आकर वह क्षणभर निश्चेष्ट रहता है। फिर रोना चाहता है। तदनन्तर क्रमश: प्रतिदिन बढ़ता हुआ बाल, पौगण्ड आदि अवस्थाओंको पार करता हुआ युवावस्थामें जा पहुँचता है। इस लोकमें देहधारियोंके शरीरका इसी क्रमसे प्रादुर्भाव होता है। जो सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाले दुर्लभ मानव-जीवनको पाकर अपने आत्माका उद्धार नहीं करता, उससे बढ़कर पापी यहाँ कौन है? आहार, निद्रा, भय और मैथुन—यह सम्पूर्ण पशु आदि जीवोंके लिये सामान्य कहा गया है। जो मूर्ख इन्हीं चार बातोंमें फँसा हुआ है, वह आत्महत्यारा है। अपने बन्धनका उच्छेद करना यह मनुष्योंका विशेष धर्म है।

## बन्धनाशका उपाय

पाशबन्धनका विच्छेद दीक्षासे ही होता है, अत: बन्धनका विच्छेद करनेके लिये मन्त्रदीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। दीक्षा एवं ज्ञान-शक्तिसे अपने बन्धनका नाश करके शुद्ध आत्मा नामसे स्थित हुआ पुरुष निर्वाणपद (मोक्ष)-को प्राप्त होता है। जो अपनी शक्तिस्वरूपा दृष्टिसे भगवान् शिवका ध्यान एवं दर्शन करता है और शिवमन्त्रोंसे उनकी आराधनामें तत्पर रहता है, वह अपना और दूसरोंका हितकारी है। शिवरूपी सूर्यकी शक्तिरूपी किरणसे समर्थ हुई चैतन्यदृष्टिके द्वारा पुरुष

आवरणको अपनेमें लीन करके शक्ति आदिके साथ शिवका साक्षात्कार करता है। अन्तःकरणकी जो बोध नामक वृत्ति है, वह निगड (बेड़ी) आदिकी भाँति पाशरूप होनेके कारण महेश्वरको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं होती। दीक्षा ही पाशका उच्छेद करनेमें सर्वोत्तम हेतु है, अतः शास्त्रोक्त विधिसे मन्त्रदीक्षाका आचरण करना चाहिये। दीक्षा लेकर अपने वर्णके अनुरूप सदाचारमें तत्पर रहकर नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। अपने वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी आचारोंका मनसे भी लङ्घन न करे। जो मानव जिस आश्रममें दीक्षित होकर दीक्षा ले, वह उसीमें रहे और उसीके धर्मोंका निरन्तर पालन करे। इस प्रकार किये हुए कर्म भी बन्धनकारक नहीं होते। मन्त्रानुष्ठानजनित एक ही कर्म फलदायक होता है। दीक्षित पुरुष जिन-जिन लोकोंके भोगोंकी इच्छा करता है, मन्त्राराधनकी सामर्थ्यसे वह उन सबका उपभोग करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनिमें रहना पड़ता है। अतः दीक्षित पुरुष नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म अवश्य करे। नित्य-नैमित्तिक आचारका पालन करनेवाले मनुष्यको उसकी दीक्षामें त्रुटि न आनेके कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षाके द्वारा गुरुके स्वरूपमें स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक-परलोकके स्वार्थमें आसक्त होकर कृत्रिम गुरुभक्तिका प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलताको ही प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा गुरुभक्तिमें तत्पर है, उसे प्रायश्चित्त नहीं प्राप्त होता और पग-पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्तिसे सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्रका प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्तका भागी होता है[१]। (पूर्व० ६३ अध्याय)

---

१. इस 'तृतीय पाद' में अधिकांश सकाम अनुष्ठानोंका प्रसङ्ग है। इसमें देवताओंके तथा भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंके ध्यान-पूजनका निरूपण है तथा आराधनकी सुन्दर-सुन्दर विधियाँ बतलायी गयी हैं। उन विधियोंके अनुसार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे उल्लिखित फल अवश्य मिलता है। जैसे विविध तापोंकी निवृत्ति तथा इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं एवं ये भौतिक साधनोंकी अपेक्षा अधिक निर्दोष तथा सहज हैं और प्रतिबन्धकका नाश करके नवीन प्रारब्धके निर्माणमें हेतु होनेके कारण ये उनकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं ही। और स्वयं भगवान्‌का तो सकाम आराधन करनेपर (यदि वे उचित समझें तो कामनाकी पूर्ति करके अथवा पूर्ति न करके भी) अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा अन्तमें अपनी प्राप्ति करा देते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गकी निश्चय ही बड़ी उपादेयता है।

तथापि अल्पायु मनुष्यके लिये यह विचारणीय है कि अपने जीवनको क्या सांसारिक भोगपदार्थोंकी प्राप्तिके प्रयत्न और उनके उपभोगमें लगाना ही इष्ट है? मनुष्य-जीवन क्षणभंगुर है और वह है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। संसारके भोग तो प्रत्येक योनिमें ही प्रारब्धानुसार प्राप्त होते हैं और उनका उपभोग भी जीव करता ही है। मनुष्य-जीवन भी यदि उन्हीं क्षणभंगुर, नाशवान्, दुःखयोनि और जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले भोगपदार्थोंके लिये सकाम उपासनामें ही लगा दिया जाय तो यह बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो कृपामय भगवान् परम दुर्लभ मोक्षको या स्वयं अपने-आपको देनेके लिये प्रस्तुत हैं, उनसे दुःखपरिणामी और अनित्य भोग माँगना भगवान्‌के तत्त्वको और भक्तिके महत्त्वको न समझना ही है। जो पुरुष किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान्‌को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान् नहीं है। वह वस्तु साध्य है और भगवान् तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी मङ्गलकारी कारणवश ही उसके अभीष्टकी प्राप्तिमें देर होगी तो वह भगवान्‌की भक्तिको छोड़ दे सकता है। अतएव सकाम भावसे की हुई उपासना एक प्रकारसे काम्य वस्तुकी ही उपासना है, भगवान्‌की नहीं। इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये और अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की उपासना इस प्रसङ्गमें आयी हुई पद्धतिके अनुकूल अवश्य करनी चाहिये, पर वह करनी चाहिये—निष्काम प्रेमभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठानका फल प्रतिबन्धककी प्रबलता और सरलताके अनुसार

# मन्त्रके सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातें, मन्त्रके विविध दोष तथा उत्तम आचार्य एवं शिष्यके लक्षण

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—अब मैं जीवोंके पाश-समुदायका उच्छेद करनेके लिये अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाली दीक्षा-विधिका वर्णन करूँगा, जो मन्त्रोंको शक्ति प्रदान करनेवाली है। दीक्षा दिव्यभावको देती है और पापोंका क्षय करती है। इसीलिये सम्पूर्ण आगमोंके विद्वानोंने उसे दीक्षा कहा है। मननका अर्थ है सर्वज्ञता और त्राणका अर्थ है संसारी जीवपर अनुग्रह करना। इस मनन और त्राणधर्मसे युक्त होनेके कारण मन्त्रका मन्त्र नाम सार्थक होता है।

## मन्त्रोंके लिंगभेद

मन्त्र तीन प्रकारके होते हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। स्त्री-मन्त्र वे हैं जिनके अन्तमें दो 'ठ' अर्थात् '**स्वाहा**' लगे हों। जिनके अन्तमें '**हुम्**' और '**फट्**' हैं वे पुरुष-मन्त्र कहे गये हैं। जिनके अन्तमें '**नमः**' लगा होता है, वे मन्त्र नपुंसक हैं। इस प्रकार मन्त्रोंकी जातियाँ बतायी गयी हैं। सभी मन्त्रोंके देवता पुरुष हैं और सभी विद्याओंकी स्त्री देवता मानी गयी है। वे त्रिविध मन्त्र छः कर्मोंमें[1] प्रत्युक्त होते हैं। जिसमें प्रणवान्त रेफ (रां) और स्वाहाका प्रयोग हो, वे मन्त्र आग्नेय (अग्निसम्बन्धी) कहे गये हैं। मुने! जो मन्त्र भृगुबीज (सं) और पीयूष-बीज (वं)-से युक्त हैं, वे सौम्य (सोमसम्बन्धी) कहे गये हैं। इस प्रकार मनीषी पुरुषोंको सभी मन्त्र अग्नीषोमात्मक जानने चाहिये। जब श्वास पिङ्गला नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् दाहिनी साँस चलती हो तो आग्नेय मन्त्र जाग्रत् होते हैं और जब श्वास इडा नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् बायीं साँस चलती हो तो सोम-सम्बन्धी मन्त्र जागरूक होते हैं। जब इडा और पिङ्गला दोनों नाड़ियोंमें साँस चलती हो अर्थात् बायाँ और दाहिना दोनों स्वर समानभावसे चलते हों तो सभी मन्त्र जाग्रत् होते हैं। यदि मन्त्रके सोते समय उसका जप किया जाय तो वह अनर्थरूप फल देनेवाला है। प्रत्येक मन्त्रका उच्चारण करते समय उनका श्वास रोककर उच्चारण न करे। अनुलोमक्रममें बिन्दु (अनुस्वार)-युक्त और विलोमक्रममें विसर्गसंयुक्त मन्त्रोंका उच्चारण करे। यदि जपा हुआ मन्त्र देवताको जाग्रत् कर सका तो वह शीघ्र सिद्धि देनेवाला होता है और उस मालासे जपा हुआ दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध होता है। क्रूर कर्ममें आग्नेय मन्त्रका उपयोग होता है और सोमसम्बन्धी मन्त्र सौम्य फल देनेवाले होते हैं। शान्त, ज्ञान और अत्यन्त रौद्र—ये मन्त्रोंकी तीन जातियाँ हैं।

---

विलम्बसे या शीघ्र होता है। एक आदमीको किसी अमुक वस्तुकी या स्थितिकी आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थितिकी प्राप्तिमें बाधक पूर्वजन्मका कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है तो एक ही अनुष्ठानसे अभीष्ट फल नहीं मिलता। बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकलके सकामी पुरुषमें इतना धैर्य नहीं हो सकता और फलतः वह देवतामें ही अविश्वास कर बैठता है तथा उसकी अवज्ञा करने लगता है, इससे लाभके बदले उसकी उलटी हानि हो जाती है। फिर सकाम साधना वही सफल होती है जिसमें विधिका पूरा-पूरा साङ्गोपाङ्ग पालन हुआ हो तथा कर्म, देवता और फलमें पूर्ण श्रद्धा हो। विधि और श्रद्धाके अभावमें भी फल नहीं होता और आजके युगके मनुष्योंमें अधिकांश ऐसे हैं जो मनमाना फल तो तुरंत चाहते हैं, पर श्रद्धा और विधिकी आवश्यकता नहीं समझते। अतः उनको भी उक्त फल नहीं मिलता। इन सब दृष्टियोंसे भी सकामभावमें देवतामें, देवाराधनमें अश्रद्धातक होनेकी सम्भावना रहती है, फिर यदि कहीं कुछ फल मिलता भी है तो वह अनित्य, क्षणभंगुर और दुःख देनेवाला ही होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सकाम भावका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।—सम्पादक

१. शान्ति, वश्य, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। (मन्त्रमहोदधि)

शान्तिजातिसमन्वित शान्त मन्त्र भी 'हुं फट्' यह पल्लव जोड़नेसे रौद्र भाव धारण कर लेता है।

## मन्त्रोंके दोष

छिन्नता आदि दोषोंसे युक्त मन्त्र साधककी रक्षा नहीं कर पाते। छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, कर्णहीन, नेत्रहीन, कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य, भ्रान्त, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, बीजहीन, धूमित, आलिङ्गित, मोहित, क्षुधार्त्त, अतिदीप्त, अङ्गहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, व्रीडित (लज्जित), प्रशान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध, अतिनि:स्नेह तथा पीड़ित—ये (४९) मन्त्रके दोष बताये गये हैं। अब मैं इनके लक्षण बतलाता हूँ। जिस मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें संयुक्त, वियुक्त या स्वरसहित तीन-चार अथवा पाँच बार अग्निबीज (रं)-का प्रयोग हो, वह मन्त्र 'छिन्न' कहलाता है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें दो बार भूमिबीज (लं)-का उच्चारण होता हो उस मन्त्रको 'रुद्ध' जानना चाहिये। वह बड़े क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। प्रणव और कवच (हुं) ये तीन बार जिस मन्त्रमें आये हों वह लक्ष्मीयुक्त होता है। ऐसी लक्ष्मीसे हीन जो मन्त्र है उसे 'शक्तिहीन' जानना चाहिये। वह दीर्घकालके बाद फल देता है। जहाँ आदिमें कामबीज, (क्लीं), मध्यमें मायाबीज (ह्रीं) और अन्तमें अङ्कुश बीज (क्रों) हो, वह मन्त्र 'पराङ्मुख' जानना चाहिये। वह साधकोंको चिरकालमें सिद्धि देनेवाला होता है। यदि आदि, मध्य और अन्तमें सकार देखा जाय, तो वह मन्त्र 'बधिर' (कर्णहीन) कहा गया है। वह बहुत कष्ट उठानेपर थोड़ा फल देनेवाला है। यदि पञ्चाक्षर-मन्त्र हो, किंतु उसमें रेफ, मकार और अनुस्वार न हो तो उसे 'नेत्रहीन' जानना चाहिये। वह क्लेश उठानेपर भी सिद्धिदायक नहीं होता। आदि, मध्य और अन्तमें हंस (सं), प्रासाद तथा वाग्बीज (ऐं) हो अथवा हंस और चन्द्रविन्दु या सकार, फकार अथवा हुं हो तथा जिसमें मा, प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र 'कीलित' माना गया है। इसी प्रकार मध्यमें और अन्तमें भी वे दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह मन्त्र 'स्तम्भित' माना गया है, जो सिद्धिमें रुकावट डालनेवाला है। जिस मन्त्रके अन्तमें अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीजके साथ हो तथा जो सात अक्षरोंसे युक्त[1] दिखायी देता हो वह 'दग्ध' संज्ञक मन्त्र है। जिसमें दो, तीन, छ: या आठ अक्षरोंके साथ अस्त्र (फट्) दिखायी दे, उस मन्त्रको 'त्रस्त' जानना चाहिये। जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार अथवा शक्ति हो, वही मन्त्र 'भीत' कहा गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें चार 'म' हों, वह मन्त्र 'मलिन' माना गया है। वह अत्यन्त क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। जिस मन्त्रके मध्यभागमें द अक्षर और अन्तमें दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो, तो वह मन्त्र 'तिरस्कृत' कहा गया है। जिसके अन्तमें 'म' और 'य' तथा 'हृदय' हो और मध्यमें वषट् एवं वौषट् हो वह मन्त्र 'भेदित' कहा गया है। उसे त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह बड़े क्लेशसे फल देनेवाला होता है। जो तीन अक्षरसे युक्त तथा हंसहीन है, उस मन्त्रको 'सुषुप्त' कहा गया है। जो विद्या अथवा मन्त्र सतरह अक्षरोंसे युक्त हो तथा

१. 'ससार्णः' पाठ माननेपर यह अर्थ होगा—'जो 'स' अक्षरसे युक्त हो।'

जिसके आदिमें पाँच बार फट्‌का प्रयोग हुआ हो उस 'मदोन्मत्त' माना गया है। जिसके मध्य भागमें फट्‌का प्रयोग हो उस मन्त्रको 'मूर्छित' कहा गया है। जिसके विरामस्थानमें अस्त्र (फट्)-का प्रयोग हो वह 'हतवीर्य' कहा जाता है। मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार अस्त्र (फट्)-का प्रयोग हो तो उसे 'भ्रान्त' जानना चाहिये। जो मन्त्र अठारह अथवा बीस अक्षरवाला होकर कामबीज (क्लीं)-से युक्त होकर साथ ही उसमें हृदय, लेख और अङ्कुशके भी बीज हों तो उसे 'प्रध्वस्त' कहा गया है। सात अक्षरवाला मन्त्र 'बालक', आठ अक्षरवाला 'कुमार', सोलह अक्षरोंवाला 'युवा', चौबीस अक्षरोंवाला 'प्रौढ' तथा बीस, चौसठ, सौ और चार सौ अक्षरोंका मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है। प्रणवसहित नवार्ण-मन्त्रको 'निस्त्रिंश' कहते हैं। जिसके अन्तमें हृदय (नमः) कहा गया हो, मध्यमें शिरोमन्त्र (स्वाहा)- का उच्चारण होता हो और अन्तमें शिखा (वषट्), वर्म (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरोंसे हीन हो, उस मन्त्रको 'निर्बीज' माना गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें छः बार फट्‌का प्रयोग देखा जाता हो, वह मन्त्र 'सिद्धिहीन' होता है। पाँच अक्षरके मन्त्रको 'मन्द' और एकाक्षर मन्त्रको 'कूट' कहते हैं। उसीको 'निरंशक' भी कहा गया है। दो अक्षरका मन्त्र 'सत्त्वहीन', चार अक्षरका मन्त्र 'केकर' और छः या साढ़े सात अक्षरका मन्त्र 'बीजहीन' कहा गया है। साढ़े बारह अक्षरके मन्त्रको 'धूमित' माना गया है। वह निन्दित है। साढ़े तीन बीजसे युक्त बीस, तीस तथा इक्कीस अक्षरका मन्त्र 'आलिङ्गित' कहा गया है। जिसमें दन्तस्थानीय अक्षर हों वह मन्त्र 'मोहित' बताया गया है। चौबीस या सत्ताईस अक्षरके मन्त्रको 'क्षुधार्त' जानना चाहिये। वह मन्त्र सिद्धिसे रहित होता है। ग्यारह, पच्चीस, अथवा तेईस अक्षरका मन्त्र 'दृप्त' कहलाता है। छब्बीस, छत्तीस तथा उनतीस अक्षरके मन्त्रको 'हीनाङ्ग' माना गया है। अट्ठाईस और इकतीस अक्षरका मन्त्र 'अत्यन्त क्रूर' (और 'अतिक्रुद्ध') जानना चाहिये, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निन्दित माना गया है। चालीस अक्षरसे लेकर तिरसठ अक्षरोंतकका जो मन्त्र है, उसे 'व्रीडित' (लज्जित) समझना चाहिये। वह सब कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ नहीं होता। पैंसठ अक्षरके मन्त्रोंको 'शान्तमानस' जानना चाहिये। मुनीश्वर! पैंसठ अक्षरोंसे लेकर निन्यानबे अक्षरोंतकके जो मन्त्र हैं, उन्हें 'स्थानभ्रष्ट' जानना चाहिये। तेरह या पंद्रह अक्षरोंके जो मन्त्र हैं, उन्हें सर्वतन्त्र-विशारद विद्वानोंने 'विकल' कहा है। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, दो सौ इक्यानबे अथवा तीन सौ अक्षरोंके जो मन्त्र होते हैं, वे 'निःस्नेह' कहे गये हैं। ब्रह्मन्! चार सौसे लेकर एक हजार अक्षरतकके मन्त्र प्रयोगमें 'अत्यन्त वृद्ध' माने गये हैं। उन्हें शिथिल कहा गया है। जिनमें एक हजारसे भी अधिक अक्षर हों, उन मन्त्रोंको 'पीडित' बताया गया है। उनसे अधिक अक्षरवाले मन्त्रोंको स्तोत्ररूप माना गया है। इस प्रकारके मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं।

अब मैं 'छिन्न' आदि दोषोंसे दूषित मन्त्रोंका साधन बताता हूँ। जो योनिमुद्रासनसे बैठकर एकाग्रचित्त हो जिस किसी भी मन्त्रका जप करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बायें पैरकी एड़ीको गुदाके सहारे रखकर दाहिने पैरकी एड़ीको ध्वज (लिङ्ग)-के ऊपर रखे तो इस प्रकार योनिमुद्राबन्ध नामक उत्तम आसन होता है।

## आचार्य और शिष्यके लक्षण

जो कुलपरम्पराके क्रमसे प्राप्त हुआ हो, नित्य मन्त्र-जपके अनुष्ठानमें तत्पर हो, गुरुकी आज्ञाके पालनमें अनुरक्त हो तथा अभिषेकयुक्त हो; शान्त, कुलीन और जितेन्द्रिय हो, मन्त्र और तन्त्रके तात्त्विक अर्थका ज्ञाता तथा निग्रहानुग्रहमें समर्थ हो; किसीसे किसी वस्तुकी अपेक्षा न रखता हो, मननशील, इन्द्रियसंयमी, हितवचन बोलनेवाला, विद्वान्, तत्त्व निकालनेमें चतुर, विनयी हो; किसी-न-किसी आश्रमकी मर्यादामें स्थित, ध्यानपरायण, संशय-निवारण करनेवाला, परम बुद्धिमान् और नित्य सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहनेवाला हो, उसे ही 'आचार्य' कहा गया है। जो शान्त, विनयशील, शुद्धात्मा, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त, शम आदि साधनोंसे सम्पन्न, श्रद्धालु, सुस्थिर विचार या हृदयवाला, खान-पानमें शारीरिक शुद्धिसे युक्त, धार्मिक, शुद्धचित्त, सुदृढ़ व्रत एवं सुस्थिर आचारसे युक्त, कृतज्ञ एवं पापसे डरनेवाला हो, गुरुकी सेवामें जिसका मन लगता हो, ऐसे शील-स्वभावका पुरुष आदर्श शिष्य हो सकता है; अन्यथा वह गुरुको दुःख देनेवाला होता है। (पूर्व० ६४ अध्याय)

## मन्त्रशोधन, दीक्षाविधि, पञ्चदेवपूजा तथा जपपूर्वक इष्टदेव और आत्मचिन्तनका विधान

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—गुरुको चाहिये कि वह शिष्यकी परीक्षा लेकर मन्त्रका शोधन करे। पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर (रंगमें डुबोये हुए) पाँच-पाँच सूत गिरावे (तात्पर्य यह है कि पाँच खड़ी रेखाएँ खींचकर उनके ऊपर पाँच पड़ी रेखाएँ खींचे)। इस प्रकार चार-चार कोष्ठोंके चार समुदाय बनेंगे। उनमेंसे पहले चौकेके प्रथम कोष्ठमें एक, दूसरेके प्रथममें दो, तीसरेके प्रथममें तीन और चौथेके प्रथममें चार लिखे। (इसी क्रमसे आगेकी संख्याएँ भी लिख ले।) प्रथम कोष्ठमें 'अ' लिखकर उसके आग्नेय कोणमें उससे पाँचवाँ अक्षर लिखे। इस प्रकार सभी कोष्ठोंमें क्रमशः अक्षरोंको लिखकर बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रका संशोधन करे। साधकके नामका आदि-अक्षर जिस कोष्ठमें हो, वहाँसे लेकर जहाँ मन्त्रका आदि-अक्षर हो उस कोष्ठतक प्रदक्षिणक्रमसे गिनना चाहिये। यदि उसी चौक में मन्त्रका आदि-अक्षर हो, जिसमें नामका आदि-अक्षर है तो वह 'सिद्ध चौक' कहा जायगा। उससे प्रदक्षिणक्रमसे गिननेपर यदि द्वितीय चौकमें मन्त्रका आदिअक्षर हो तो वह 'साध्य' कहा गया है। इसी प्रकार तीसरा चौक 'सुसिद्ध' और चौथा चौक 'अरि' नामसे प्रसिद्ध है। यदि साधकके नामसम्बन्धी और मन्त्रसम्बन्धी आदिअक्षर प्रथम चौकके पहले ही कोष्ठमें पड़े हों तो वह मन्त्र 'सिद्धसिद्ध' माना गया है। यदि मन्त्रवर्ण प्रथम चौकके द्वितीय कोष्ठमें पड़ा हो तो वह 'सिद्धसाध्य' कहा गया है। प्रथमके तृतीय कोष्ठमें हो तो 'सिद्धसुसिद्ध' होगा और चौथेमें हो तो 'सिद्धारि' कहलायेगा। नामाक्षरयुक्त चौकसे दूसरे चौकमें यदि मन्त्रका अक्षर हो, तो पहले जहाँ नामका अक्षर था वहाँके उस कोष्ठसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्ववत् गणना करे। द्वितीय चौकके प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ कोष्ठमें मन्त्राक्षर होनेपर उसकी क्रमशः 'साध्यसिद्ध', 'साध्यसाध्य', 'साध्यसुसिध्य' तथा 'साध्य-अरि' संज्ञा होगी। तीसरे चौकमें मन्त्रका अक्षर हो तो मनीषी पुरुषोंको पूर्वोक्त रीतिसे गणना

करनी चाहिये। तृतीय चौकके प्रथम आदि कोष्ठोंके अनुसार क्रमश: उस मन्त्रकी 'सुसिद्धसिद्ध', 'सुसिद्ध-साध्य', 'सुसिद्धसुसिद्ध' तथा 'सुसिद्ध-अरि' संज्ञा होगी। यदि चौथे चौकमें मन्त्राक्षर हो तो भी विद्वान् पुरुष इसी प्रकार गणना करे। चतुर्थ चौकके प्रथम आदि कोष्ठोंके अनुसार उस यन्त्रकी 'अरिसिद्ध', 'अरिसाध्य', 'अरिसुसिद्ध' तथा 'अरि-अरि' यह संज्ञा होगी। सिद्धसिद्ध मन्त्र शास्त्रोक्त विधिसे उतनी ही संख्यामें जप करनेपर सिद्ध हो जायगा। परंतु सिद्धसाध्य मन्त्र दूनी संख्यामें जप करनेसे सिद्ध होगा। सिद्धसुसिद्ध मन्त्र शास्त्रोक्त संख्यासे आधा जप करनेपर ही सिद्ध हो जायगा। परंतु सिद्धारि मन्त्र कुटुम्बीजनोंका नाश करता है। साध्यसिद्ध मन्त्र दूनी संख्यामें जप करनेसे सिद्ध होता है। साध्यसाध्य मन्त्र बहुत विलम्बसे सिद्ध होता है। साध्यसुसिद्ध भी द्विगुण जपसे सिद्ध होता है; किंतु साध्यारि मन्त्र बन्धु-बान्धवोंका हनन करता है। सुसिद्धसिद्ध आधे ही जपसे सिद्ध हो जाता है। सुसिद्धसाध्य द्विगुण जपसे सिद्ध होता है। सुसिद्धसिद्ध मन्त्र प्राप्त होते ही सिद्ध हो जाता है और सुसिद्धारि मन्त्र सारे कुटुम्बका नाश करता है। अरिसिद्ध पुत्रनाशक है तथा अरिसाध्य कन्याका नाश करनेवाला होता है। अरिसुसिद्ध स्त्रीका नाश करता है और अरि-अरि मन्त्र साधकका ही नाश करनेवाला माना गया है। मुने! यहाँ मन्त्रशोधनके और भी बहुत-से प्रकार हैं, किंतु यह अकथह नामक चक्र सबमें प्रधान है; इसलिये यही तुम्हें बताया गया है[1]।

इस प्रकार मन्त्रका भलीभाँति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थानमें गुरु शिष्यको दीक्षा दे। अब दीक्षाका विधान बताया जाता है। प्रात:काल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणोंकी पादुकाको प्रणाम करे। तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे सद्गुरुकी पूजा करके उनसे अभीष्ट मन्त्रके लिये प्रार्थना करे। तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डल आदि विधान करके शिष्यके साथ पवित्र हो यज्ञमण्डपमें प्रवेश करें। फिर सामान्य अर्घ्य जलसे द्वारका अभिषेक करके अस्त्र-मन्त्रोंसे दिव्य विघ्नोंका निवारण करे; इसके बाद आकाशमें स्थित विघ्नोंका जलसे पूजन करके निराकरण करे। भूमिसम्बन्धी विघ्नोंको तीन बार ताली बजाकर हटावे, तत्पश्चात् कार्य प्रारम्भ करे। भिन्न-भिन्न रंगोंद्वारा शास्त्रोक्तविधिसे सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करके उसमें बह्निमण्डल और उसकी कलाओंका पूजन करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करके

---

१. मूलमें बतायी हुई रीतिसे कोष्ठक बनाकर उनमें अक्षरोंको लिखनेपर प्रथम कोष्ठकमें 'अ क थ ह' अक्षर आते हैं। इन्हींके नामपर इस चक्रको 'अकथह-चक्र' कहते हैं। इसका रेखाचित्र नीचे दिया जाता है—

अकथह-चक्र

| | | | |
|---|---|---|---|
| १<br>अ क<br>थ ह | २<br>उ<br>ङ प | ३<br>आ<br>ख द | ४<br>ऊ<br>च फ |
| ५<br>ओ<br>ढ ब | ६<br>लृ<br>झ म | ७<br>औ<br>ड श | ८<br>लॄ<br>अ य |
| ९<br>ई<br>घ न | १०<br>ऋ<br>ज भ | ११<br>इ<br>ग ध | १२<br>ॠ<br>छ व |
| १३<br>अ:<br>त स | १४<br>ऐ<br>ठ ल | १५<br>अं<br>ण ष | १६<br>ए<br>ट र |

धोये हुए यथाशक्तिनिर्मित कलशकी वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्यकी कलाका यजन करे। विलोममातृकाके मूलका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे कलशको भरे और उसके भीतर सोमकी कलाओंका विधिपूर्वक पूजन करे। धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला तथा हव्य-कव्यवाहा—ये अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। अब सूर्यकी बारह कलाएँ बतायी जाती हैं—तपिनी, तापिनी, धुम्रा, मरीचि ज्वालिनी, रुचि, सुषम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा। चन्द्रमाकी कलाओंके नाम इस प्रकार जानने चाहिये—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता—ये सोलह चन्द्रमाकी कलाएँ कही गयी हैं।

कलशको दो वस्त्रोंसे लपेट करके उसके भीतर सर्वौषधि डाले। फिर नौ रत्न छोड़कर पञ्चपल्लव डाले। कटहल, आम, बड़, पीपल और बकुल—इन पाँच वृक्षोंके पल्लवोंको यहाँ पञ्चपल्लव माना गया है। मोती, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्रुम (मूँगा), पद्मराग, मरकत तथा नीलमणि—इन नौ रत्नोंको क्रमशः कलशमें छोड़कर उसमें इष्ट देवताका आवाहन करे और मन्त्रवेत्ता आचार्य विधिपूर्वक देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शिष्यको वेदीपर बिठावे और प्रोक्षणीके जलसे उसका अभिषेक करे। फिर उसके शरीरमें विधिपूर्वक भूतशुद्धि आदि करके न्यासोंके द्वारा शरीरशुद्धि करे और मस्तकमें पल्लव मन्त्रोंका न्यास करके एक सौ आठ मूलमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रिय शिष्यका अभिषेक करे। उस समय मन-ही-मन मूलमन्त्रका जप करते रहना चाहिये। अवशिष्ट जलसे आचमन करके शिष्य दूसरा वस्त्र धारण करे और गुरुको विधिपूर्वक प्रणाम करके पवित्र हो उनके सामने बैठे। तदनन्तर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ देकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो, उसका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करे। '**सम: अस्तु**' (शिष्य मेरे समान हो) इस भावसे शिष्यको अक्षर-दान करे। तब शिष्य गुरुकी पूजा करे। इसके बाद गुरु शिष्यके मस्तकपर चन्दनयुक्त हाथ रखकर एकाग्रचित्त हो, उसके कानमें आठ बार मन्त्र कहे। इस प्रकार मन्त्रका उपदेश पाकर शिष्य भी गुरुके चरणोंमें गिर जाय। उस समय गुरु इस प्रकार कहे, 'बेटा! उठो। तुम बन्धनमुक्त हो गये। विधिपूर्वक सदाचारी बनो। तुम्हें सदा कीर्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल और आरोग्य प्राप्त हो।' तब शिष्य उठकर गन्ध आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे और उनके लिये दक्षिणा दे। इस प्रकार गुरुमन्त्र पाकर शिष्य उसी समयसे गुरुसेवामें लग जाय। बीचमें अपने इष्टदेवका पूजन करे और उन्हें पुष्पाञ्जलि देकर अग्नि, निर्ऋति और वागीशका क्रमशः पूजन करे। जब मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करे तो उनके चारों ओर क्रमशः गणेश, सूर्य, देवी तथा शिवकी पूजा करे और जब मध्यमें भगवान् शङ्करकी पूजा करे तो उनके पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सूर्य, गणेश, देवी तथा विष्णुका पूजन करे। जब मध्यमें देवीकी पूजा करे तो उनके चारों ओर शिव, गणेश, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे। जब मध्यमें गणेशकी पूजा करे तो उनके चारों ओर क्रमशः शिव, देवी, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे और जब मध्यभागमें सूर्यकी पूजा करे तो पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः गणेश, विष्णु, देवी और शिवकी पूजा करे। इस प्रकार प्रतिदिन आदरपूर्वक पञ्चदेवोंका पूजन करना चाहिये।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर लघुशंका आदि आवश्यक कार्य कर ले और यदि लघुशंका आदि न लगी हो तो शय्यापर बैठे-बैठे

ही अपने गुरुदेवको नमस्कार करे—तदनन्तर पादुकामन्त्रका दस बार जप और समर्पण करके गुरुदेवको पुनः प्रणाम और उनका स्तवन करे।

फिर मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रतक मूलविद्याका चिन्तन करे। मूलाधारसे निम्नभागमें गोलाकार वायुमण्डल है, उसमें वायुका बीज 'या' कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित हो रही है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें जो अग्निका बीज 'र' कार है, उससे आग प्रकट हो रही है। उक्त वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित शरीरवाली कुलकुण्डलिनीका ध्यान करे, जो सोये हुए सर्पके समान आकारवाली है। वह स्वयं भूलिङ्गको आवेष्टित करके सो रही है। देखनेमें वह कमलकी नालके समान जान पड़ती है। वह अत्यन्त पतली है और उसके अङ्गोंसे करोड़ों विद्युतोंकी-सी प्रभा छिटक रही है। इस प्रकार कुलकुण्डलिनीका ध्यान करके भावनात्मक कूर्च (कूँची)-के द्वारा उसे जगाकर उठाये और सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे क्रमशः छः चक्रोंका भेदन करनेवाली उस कुण्डलिनीको गुरुकी बतायी हुई विधिके अनुसार विद्वान् पुरुष ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाय और वहाँके अमृतमें निमग्न करके आत्माका चिन्तन करे। मानो आत्मा उसके प्रभापुञ्जसे व्याप्त है। वह निर्मल, चिन्मय तथा देह आदिसे परे है। फिर उस कुण्डलिनीको अपने स्थानपर पहुँचाकर हृदयमें इष्टदेवका चिन्तन करे और मानसिक उपचारोंसे उनका पूजन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

**त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव**
**श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।**
**प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं**
**संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥**

'आदिदेव! लक्ष्मीकान्त! विष्णो! त्रिलोकीका चैतन्य आपका स्वरूप है। आपकी आज्ञासे ही प्रातःकाल उठकर आपका प्रिय कार्य करनेके लिये मैं संसारयात्राका अनुसरण करूँगा।'

ब्रह्मन्! यदि इष्टदेव कोई दूसरा देवता हो तो पूर्वोक्त मन्त्रमें 'विष्णो' आदिके स्थानमें ऊहाद्वारा उसके वाचक शब्द या नामका प्रयोग कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण सिद्धिके लिये अजपा जप निवेदन करे। दिन-रातमें जीव 'इक्कीस हजार छः सौ' बार सदा अजपा नामक गायत्रीका जप करता है। इस अजपा मन्त्रके ऋषि हंस हैं, अव्यक्त गायत्री छन्द कहा गया है। परमहंस देवता हैं। आदि (हं) बीज और अन्त (सः) शक्ति है, तत्पश्चात् षडङ्गन्यास करे। सूर्य, सोम, निरञ्जन, निराभास, धर्म और ज्ञान—ये छः अङ्ग हैं। क्रमशः इनके पूर्वमें 'हंसः' और अन्तमें 'आत्मने' पद जोड़कर श्रेष्ठ साधक इनका छः अङ्गोंमें न्यास करे[1]। हकार सूर्यके समान तेजस्वी होकर शरीरसे बाहर निकलता है और सकार वैसे ही तेजस्वी रूपसे प्रवेश करता है। इस प्रकार हकार और सकारका ध्यान कहा गया है, इस तरह ध्यान करके बुद्धिमान् पुरुष वह्नि और अर्कमण्डलमें विभागपूर्वक जप अर्पण करे।

मूलाधारचक्रमें चार दलका कमल है, जो बन्धूकपुष्पके समान लाल है। उसके चारों दलोंमें क्रमशः 'व श ष स'—ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमें अपनी शक्तिके साथ गणेशजी विराजमान हैं। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, सुधापात्र तथा मोदक लेकर उल्लसित हैं। ऐसे वाक्पति गणेशजीको छः सौ जप अर्पण करे। स्वाधिष्ठान-चक्रमें छः दलोंका कमल है। वह चक्र मूँगेके समान रंगका है। उसके छः दलोंमें क्रमशः 'ब भ म य र ल' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमें कमलजन्मा

१. हंसः सूर्यात्मने हृदयाय नमः। हंसः सोमात्मने शिरसे स्वाहा। हंसो निरञ्जनात्मने शिखायै वषट्। हंसो निराभासात्मने कवचाय हुम्। हंसो धर्मात्मने नेत्राभ्यां वौषट्। हंसो ज्ञानात्मने अस्त्राय फट्।

ब्रह्माजी हंसारूढ़ होकर विराजमान हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी ब्राह्मीशक्ति सुशोभित हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। स्रुवा और अक्षमाला उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे ब्रह्माजीको छः हजार जप निवेदन करे। मणिपूर चक्रमें दशदल कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसकी प्रभा विद्युद्विलसित मेघके समान है। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित विराजमान हैं। उन्हें छः हजार जप अर्पण करे। अनाहत चक्रमें द्वादशदल कमल विद्यमान है। इसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसका वर्ण शुक्ल है। उसमें शूल, अभय, वर और अमृतकलश धारण करनेवाले वृषभारूढ़ भगवान् रुद्र विराज रहे हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी शक्ति पार्वतीदेवी विद्यमान हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। विद्वान् पुरुष उन रुद्रदेवको छः हजार जप निवेदन करे। विशुद्ध चक्र षोडशदल कमलसे युक्त है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः स्वरवर्ण (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) अङ्कित हैं। वह चक्र शुक्ल वर्णका है। उसमें महाज्योतिसे प्रकाशित होनेवाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राणशक्तिसे युक्त हैं। उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। आज्ञाचक्रमें दो दलोंवाला कमल है, उसके दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं; उसमें पराशक्तिसे युक्त जगद्गुरु सदाशिव विराजमान हैं; उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। सहस्रार-चक्रमें सहस्र दलोंसे युक्त महाकमल विद्यमान है, उसमें नाद-बिन्दुसहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं। उसमें स्थित वर और अभययुक्त हाथोंवाले परम आदिगुरुको एक सहस्र जप निवेदन करे। फिर चुल्लूमें जल लेकर इस प्रकार कहे—'स्वभावतः होते रहनेवाले इक्कीस हजार छः सौ अजपा जपका पूर्वोक्तरूपसे विभागपूर्वक संकल्प करनेके कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' इस अजपा गायत्रीके संकल्पमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' इस प्रकार अपने-आपके विषयमें चिन्तन करे। तदनन्तर दैहिक कृत्य और देवार्चन करे। उसका विधान और सदाचारका लक्षण मैं बताऊँगा। (पूर्व० ६५ अध्याय)

## शौचाचार, स्नान, संध्या-तर्पण, पूजागृहमें देवताओंका पूजन, केशव-कीर्त्यादि मातृकान्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका, कलामातृका आदि न्यासोंका वर्णन

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—तदनन्तर बायीं या दाहिनी जिस ओरकी साँस चलती हो, उसी ओरका बायाँ अथवा दाहिना पैर पृथ्वीपर उतारे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

**समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।**
**विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥** ६६। १-२

'पृथ्वी देवि! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबन्ध) और पर्वत स्तनमण्डल हैं। विष्णुपत्नि! तुम्हें नमस्कार है, मैंने जो तुम्हें चरणोंसे स्पर्श किया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो।'

इस प्रकार भूदेवीसे क्षमा-प्रार्थना करके विधिपूर्वक विचरण करे। तदनन्तर गाँवसे नैर्ऋत्य कोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

**गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।**
**पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम्॥** ३-४

'यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक,

पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।'

ऐसा कहकर तीन बार ताली बजावे और सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके मल-त्याग करे। रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठे और दिनमें उत्तरकी ओर मुँह करके मलत्याग करे। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे शुद्धि करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगावे। इस प्रकार शौच-सम्पादन करके बारह बार जलसे कुल्ला करे। उसके बाद दाँतुनके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रसे वनस्पतिकी प्रार्थना करे—

**आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।**
**श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥ ८**

'वनस्पते! तुम हमें आयु, बल, यश, तेज, संतान, पशु, धन, लक्ष्मी, प्रज्ञा (ज्ञानशक्ति) तथा मेधा (धारणशक्ति) दो।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक बारह अंगुलकी दाँतुन लेकर एकाग्रचित्त हो उससे दाँत और मुखकी शुद्धि करे। तत्पश्चात् नदी आदिमें नहानेके लिये जाय, उस समय देवताके गुणोंका कीर्तन करता रहे। जलाशयमें जाकर उसको नमस्कार करके स्नानोपयोगी वस्तु-वस्त्र आदिको तटपर रखकर मूल[1] (इष्ट) मन्त्रसे अभिमन्त्रित मिट्टी लेकर उसे कटिसे पैरतकके अङ्गोंमें लगावे और फिर जलाशयके जलसे उसे धो डाले। तदनन्तर पाँच बार जलसे पैरोंको धोकर जलके भीतर प्रवेश करे और नाभितकके जलमें पहुँचकर खड़ा हो जाय। उसके बाद जलाशयकी मिट्टी लेकर बायें हाथकी कलाई, हथेली और उसके अग्रभागमें लगावे और अंगुलीसे जलाशयकी मिट्टी लेकर मन्त्रज्ञ विद्वान् अस्त्र (फट्)-के उच्चारणद्वारा उसे अपने ऊपर घुमाकर छोड़ दे। फिर हथेलीकी मिट्टीको छः अङ्गोंमें उनके मन्त्रोंद्वारा लगावे। तदनन्तर डुबकी लगाकर भलीभाँति उन अङ्गोंको धो डाले। यह जल-स्नान बताया गया है। इसके बाद सम्पूर्ण जगत्को अपने इष्टदेवका स्वरूप मानकर आन्तरिक स्नान करे। अनन्त सूर्यके समान तेजस्वी तथा अपने आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न मन्त्रमूर्ति भगवान्का चिन्तन करके यह भावना करे कि उनके चरणोदकसे प्रकट हुई दिव्य धारा ब्रह्मरन्ध्रसे मेरे शरीरमें प्रवेश कर रही है। फिर उस धारासे शरीरके भीतरका सारा मल भावनाद्वारा ही धो डाले। ऐसा करनेसे मन्त्रका साधक तत्काल रजोगुणसे रहित हो स्वच्छ स्फटिकके समान शुद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् मन्त्रसाधक शास्त्रोक्तविधिसे स्नान करके एकाग्रचित्त हो मन्त्र-स्नान करे। उसका विधान बताया जाता है। पहले देश-कालका नाम लेकर संकल्प करे, फिर प्राणायाम और षडङ्ग-न्यास करके दोनों हाथोंसे मुष्टिकी मुद्रा बनाकर सूर्यमण्डलसे आते हुए तीर्थोंका आवाहन करे—

**ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।**
**तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थं दिवाकर॥**
**गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।**
**नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥**

(ना० पूर्व० ६६। २५—२७)

'सूर्यदेव! ब्रह्माण्डके भीतर जितने तीर्थ हैं, उन सबका आपकी किरणें स्पर्श करती हैं। दिवाकर! इस सत्यके अनुसार मेरे लिये यहाँ सब तीर्थ प्रदान कीजिये। गङ्गे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु, कावेरि! आप इस जलमें निवास करें।'

---

१. अपने इष्टदेवके अभीष्ट मन्त्रको ही यहाँ मूलमन्त्र कहा है।

इस प्रकार जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उन्हें सुधाबीज (वं)-से युक्त करे। फिर गोमुद्रासे उनका अमृतीकरण करके उन्हें कवचसे अवगुण्ठित करे। फिर अस्त्रमुद्राद्वारा संरक्षण करके चक्रमुद्राका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् उस जलमें विद्वान् पुरुष अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके मण्डलोंका चिन्तन करे। फिर सूर्यमन्त्र और अमृतबीजके द्वारा उस जलको अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर मूल-मन्त्रसे ग्यारह बार अभिमन्त्रित करके उसके मध्यभागमें पूजा-यन्त्रकी भावना करे और हृदयसे देवताका आवाहन करके स्नान कराकर मानसिक उपचारसे उनकी पूजा करे। इष्टदेव सिंहासनपर विराजमान हैं, इस भावनासे उन्हें नमस्कार करके विद्वान् पुरुष उस जलको प्रणाम करे—

**आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः।**
**तद्रूपाश्च ततो जाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम्॥**

(३२। ३३)

'जल सम्पूर्ण भूतोंका और अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका आधार है। अतः वह विष्णुस्वरूप है; इसलिये मैं उसे प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार नमस्कार करके साधक अपने शरीरके सात छिद्रोंको बंद करके जलमें डुबकी लगावे और उसमें मूलमन्त्रका इष्टदेवके स्वरूपमें ध्यान करे। तीन बार डुबकी लगावे और ऊपर आवे। तत्पश्चात् दोनों हाथोंको घड़ेकी मुद्रामें रखकर उसके द्वारा सिरको सींचे।

फिर श्रीशालग्रामशिलाका जल (भगवच्चरणामृत) पान करे। कभी इसके विरुद्ध आचरण न करे। यह शास्त्रका नियत विधान है। तदनन्तर मन्त्रका साधक अपने इष्टदेवका सूर्यमण्डलमें विसर्जन करके तटपर आवे और यत्नपूर्वक वस्त्र धोकर दो शुद्ध वस्त्र (धोती और अँगोछा) धारण करके विद्वान् पुरुष संध्या आदि करे। रोगादिके कारण स्नानादिमें असमर्थ हो, वह वहाँ जलसे स्नान न करके अघमर्षण करे अथवा अशक्त मनुष्य भस्म या धूलसे स्नान करे। तदनन्तर शुभ आसनपर बैठकर संध्यादि कर्म करे। '**ॐ केशवाय नमः**' '**ॐ नारायणाय नमः**' '**ॐ माधवाय नमः**' इन मन्त्रोंसे तीन बार जलका आचमन करके '**ॐ गोविन्दाय नमः**' '**ॐ विष्णवे नमः**'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनों हाथ धो ले। फिर '**ॐ मधुसूदनाय नमः**' '**ॐ त्रिविक्रमाय नमः**' से दोनों ओष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् '**ॐ वामनाय नमः**' '**ॐ श्रीधराय नमः**' से मुख और दोनों हाथोंका स्पर्श करे। '**ॐ हृषीकेशाय नमः**' '**ॐ पद्मनाभाय नमः**' से दोनों चरणोंका स्पर्श करे। '**ॐ दामोदराय नमः**' से मूर्धा (मस्तक) का, '**ॐ संकर्षणाय नमः**' से मुखका, '**ॐ वासुदेवाय नमः**' '**ॐ प्रद्युम्नाय नमः**' से क्रमशः दायीं-बायीं नासिकाका स्पर्श करे। '**ॐ अनिरुद्धाय नमः**' '**ॐ पुरुषोत्तमाय नमः**' से पूर्ववत् दोनों नेत्रोंका तथा '**ॐ अधोक्षजाय नमः**', '**ॐ नृसिंहाय नमः**' से दोनों कानोंका स्पर्श करे। '**ॐ अच्युताय नमः**'से नाभिका, '**ॐ जनार्दनाय नमः**' से वक्षःस्थलका तथा '**ॐ हरये नमः**', '**ॐ विष्णवे नमः**' से दोनों कंधोंका स्पर्श करे। यह वैष्णव आचमनकी विधि है। आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थीका एकवचन तथा नमः पद जोड़कर पूर्वोक्त केशव आदि नामोंद्वारा मुख आदिका स्पर्श करना चाहिये। मुख और नासिकाका स्पर्श तर्जनी अंगुलिसे करे। नेत्रों तथा कानोंका स्पर्श अनामिकाद्वारा करे तथा नाभिदेशका स्पर्श कनिष्ठा अंगुलिसे करे। अङ्गुष्ठका स्पर्श सभी अङ्गोंमें करना चाहिये। '**स्वाहा**' पद अन्तमें जोड़कर चतुर्थ्यन्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका उच्चारण करके जो

आचमन किया जाता है, उसे शैव आचमन कहा गया है। आदिमें क्रमशः दीर्घत्रय, अनुस्वार और ह अर्थात्—हां हीं हूं जोड़कर स्वाहान्त आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व शब्दोंके उच्चारणपूर्वक किये हुए आचमनको तो शैव[1] कहते हैं और आदिमें क्रमशः 'ऐं, ह्रीं, श्रीं' इस बीजके साथ स्वाहान्त उक्त नामोंका उच्चारण करके किये हुए आचमनको शाक्त[2] आचमन कहा गया है। ब्रह्मन्! वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (ह्रीं) और श्रीबीज (श्रीं)-का प्रारम्भमें प्रयोग करनेसे वह आचमन अभीष्ट अर्थको देनेवाला होता है।

तदनन्तर ललाटमें सुन्दर गदाकी-सी आकृतिवाला तिलक लगावे। हृदयमें नन्दक नामक खड्गकी और दोनों बाँहोंपर क्रमशः शङ्ख और चक्रकी आकृति बनावे। उत्तम बुद्धिवाला वैष्णव पुरुष क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्वभाग, पीठ, नाभि तथा ककुद्में भी शार्ङ्ग नामक धनुष तथा बाणका न्यास करे। इस प्रकार वैष्णव पुरुष तीर्थजनित मृत्तिका (गोपीचन्दन) आदिसे तिलक करे। अथवा शैवजन त्र्यम्बकमन्त्रसे अग्निहोत्रका भस्म लेकर '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान—इन नामोंद्वारा क्रमशः ललाट, कंधे, उदर, भुजा और हृदयमें पाँच जगह त्रिपुण्ड्र लगावे। शक्तिके उपासकको त्रिकोणकी आकृतिका अथवा स्त्रियाँ जैसे बेंदी लगाती हैं, उस तरहका तिलक करना चाहिये। वैदिकी संध्या करनेके बाद मन्त्रका साधक विधिवत् आचमन करके तान्त्रिकी संध्या करे। पूर्ववत् जलमें तीर्थोंका आवाहन कर ले। तत्पश्चात् कुशासे तीन बार पृथ्वीपर जल छिड़के। फिर उसी जलसे सात बार अपने मस्तकपर अभिषेक करे। फिर प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले। और मन्त्रज्ञ पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके बीजमन्त्रोंद्वारा[3] उसे अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रापूर्वक हाथसे चूते हुए जलबिन्दुओंद्वारा मूलमन्त्रसे अपने मस्तकको सात बार सींचे, फिर शेष जलको मन्त्रका साधक बीजाक्षरोंसे अभिमन्त्रित करके नासिकाके समीप ले आवे। उस तेजोमय जलको भावनाद्वारा इडा नाडीसे भीतर खींचकर उसके अन्तरके सारे मलोंको धो डाले, फिर कृष्णवर्णमें परिणत हुए उस जलको पिङ्गला नाड़ीसे बाहर निकाले और अपने आगे वज्रमय प्रस्तरकी कल्पना करके अस्त्रमन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जलको उसीपर दे मारे। वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला अघमर्षण कहा गया है। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् आचमन करके खड़ा हो ताँबेके पात्रमें पुष्प-चन्दन आदि डालकर मूलान्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यमण्डलमें विराजमान इष्टदेवको अर्घ्य दे। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देकर रविमण्डलमें स्थित आराध्यदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् अपने-अपने कल्पमें बतायी हुई गायत्रीका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करे। जपके अन्तमें '**गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं**' इत्यादि मन्त्रसे वह जप समर्पित करे, तदनन्तर गायत्रीका ध्यान करे।

फिर विधिज्ञ पुरुष देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरोंका तर्पण करके कल्पोक्त पद्धतिसे अपने इष्टदेवका भी तर्पण करे। तत्पश्चात्

१. हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शैव आचमन-मन्त्र हैं।

२. ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। श्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शाक्त आचमन-मन्त्र हैं।

३. हं यं रं वं लं—ये क्रमशः आकाश आदि तत्त्वोंके बीज हैं।

गुरुपङ्क्तिका तर्पण करके अङ्गों, आयुधों और आवरणोंसहित विनतानन्दन गरुड़का '**साङ्गं सावरणं सायुधं वैनतेयं तर्पयामि**' ऐसा कहकर तर्पण करे। इसके बाद नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा शैलेयका वैष्णव पुरुष तर्पण करे। विप्रेन्द्र! इस प्रकार तर्पण करके विवस्वान् सूर्यको अर्घ्य दे पूजाघरमें आकर हाथ-पैर धोकर आचमन करे। फिर अग्निहोत्रमें स्थित गार्हपत्य आदि अग्नियोंकी तृप्तिके लिये हवन करके यत्नपूर्वक उनकी उपासना करके पूजाके स्थानमें आकर द्वारपूजा प्रारम्भ करे। द्वारकी ऊपरी शाखामें गणेशजीकी, दक्षिण भागमें महालक्ष्मी-की, वाम भागमें सरस्वतीकी, दक्षिणमें पुनः विघ्नराज गणेशकी, वाम भागमें क्षेत्रपालकी, दक्षिणमें गङ्गाकी, वाम भागमें यमुनाकी, दक्षिणमें धाताकी, वाम भागमें विधाताकी, दक्षिणमें शङ्खनिधि-की तथा वाम-भागमें पद्मनिधिकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष तत्तत्कल्पोक्त, द्वारपालोंकी पूजा करे। नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, प्रचल, बल, भद्र तथा सुभद्र ये वैष्णव द्वारपाल हैं। नन्दी, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमामहेश्वर, नन्दीवृषभ तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी आदि जो आठ मातृका शक्तियाँ हैं, वे स्वयं ही द्वारपालिका हैं। इन सबके नामके आदि-अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे नामके पहले बोलना चाहिये। नामके चतुर्थी विभक्त्यन्त रूपके बाद नमः लगाना चाहिये। यथा—'**नं नन्दाय नमः**' इत्यादि। इन्हीं नाममन्त्रोंसे इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

### वैष्णव-मातृका-न्यास

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पवित्र हो मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आसनपर बैठकर आचमन करे और यत्नपूर्वक स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वीके विघ्नोंका निवारण करनेके अनन्तर श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास करे। कीर्तिसहित केशव, कान्तिसहित नारायण, तुष्टिके साथ माधव, पुष्टिके साथ गोविन्द, धृतिके साथ विष्णु, शान्तिके साथ मधुसूदन, क्रियाके साथ त्रिविक्रम, दयाके साथ वामन, मेधाके साथ श्रीधर, हर्षाके साथ हृषीकेश, पद्मनाभके साथ श्रद्धा, दामोदरके साथ लज्जा, लक्ष्मीसहित वासुदेव, सरस्वतीसहित संकर्षण, प्रीतिके साथ प्रद्युम्न, रतिके साथ अनिरुद्ध, जयाके साथ चक्री, दुर्गाके साथ गदी, प्रभाके साथ शार्ङ्गी, सत्याके साथ खड्गी, चण्डाके साथ शङ्खी, वाणीके साथ हली, विलासिनीके साथ मुसली, विजयाके साथ शूली, विरजाके साथ पाशी, विश्वाके साथ अङ्कुशी, विनदाके साथ मुकुन्द, सुनन्दाके साथ नन्दज, स्मृतिके साथ नन्दी, वृद्धिके साथ नर, समृद्धिके साथ नरकजित्, शुद्धिके साथ हरि, बुद्धिके साथ कृष्ण, भुक्तिके साथ सत्य, मुक्तिके साथ सात्वत, क्षमासहित सौरि, रमासहित सूर, उमासहित जनार्दन (शिव), क्लेदिनीसहित भूधर, क्लिन्नाके साथ विश्वमूर्ति, वसुधाके साथ वैकुण्ठ, वसुदाके साथ पुरुषोत्तम, पराके साथ बली, परायणाके साथ बलानुज, सूक्ष्माके साथ बाल, संध्याके साथ वृषहन्ता, प्रज्ञाके साथ वृष, प्रभाके साथ हंस, निशाके साथ वराह, धाराके साथ विमल तथा विद्युत्के साथ नृसिंहका न्यास करे। इस केशवादि मातृका-न्यासके नारायण ऋषि, अमृताद्या गायत्री छन्द और विष्णु देवता हैं। भगवान् विष्णु चक्र आदि आयुधोंसे सुशोभित हैं, उन्होंने हाथोंमें कलश और दर्पण ले रखा है, वे श्रीहरि श्रीलक्ष्मीजीके साथ शोभा पा रहे हैं, उनकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान प्रकाशमान है और वे अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं; ऐसे भगवान् विष्णुका मैं

भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके शक्ति (ह्रीं), श्री (श्रीं) तथा काम (क्लीं) बीजसे सम्पुटित 'अ' आदि एक-एक अक्षरका ललाट आदिमें न्यास करे। उसके साथ आदिमें प्रणव लगाकर श्रीविष्णु और उनकी शक्तिके चतुर्थ्यन्त नाम बोलकर अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर बोले।[1]

एक अक्षर 'अ' का ललाटमें, फिर एक अक्षर 'आ' का मुखमें, दो अक्षर 'इ' और 'ई'-का क्रमशः दाहिने और बाँयें नेत्रमें और दो अक्षर 'उ' 'ऊ' का क्रमशः दाहिने-बायें कानमें न्यास करे। दो अक्षर 'ऋ' 'ॠ' का दायीं-बायीं नासिकामें, दो अक्षर 'ऌ' 'ॡ' का दायें-बायें कपोलमें, दो अक्षर 'ए' 'ऐ' का ऊपर-नीचेके ओष्ठमें, दो अक्षर 'ओ' 'औ' का ऊपर-नीचेकी दन्तपंक्तिमें, एक अक्षर 'अं' का जिह्वामूलमें तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवामें न्यास करे। दाहिनी बाँहमें कवर्गका और बायीं बाँहमें चवर्गका न्यास करे। टवर्ग और तवर्गका दोनों पैरोंमें तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियोंमें न्यास करे। पृष्ठवंशमें 'ब' का, नाभिमें 'भ' का और हृदयमें 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरोंका शरीरकी सात धातुओंमें, 'ह' का प्राणमें तथा 'ळ' का आत्मामें न्यास करे। 'क्ष' का क्रोधमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार क्रमसे मातृका वर्णोंका न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजामें समर्थ होता है।

### शैव-मातृका-न्यास

[भगवान् शिवके उपासकको केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यासकी भाँति श्रीकण्ठेशादि मातृका-न्यास करना चाहिये।] पूर्णोदरीके साथ श्रीकण्ठेशका, विरजाके साथ अनन्तेशका, शाल्मलीके साथ सूक्ष्मेशका, लोलाक्षीके साथ त्रिमूर्तीशका, वर्तुलाक्षीके साथ महेशका और दीर्घघोणाके साथ अर्घीशका न्यास करे[2]। दीर्घमुखीके साथ भारभूतीशका, गोमुखीके साथ तिथीशका, दीर्घजिह्वाके साथ स्थाण्वीशका, कुण्डोदरीके साथ हरेशका, ऊर्ध्वकेशीके साथ झिण्टीशका, विकृतास्याके साथ भौतिकेशका, ज्वालामुखीके साथ सद्योजातेशका, उल्कामुखीके साथ अनुग्रहेशका, आस्याके साथ अक्रूरका, विद्याके साथ महासेनका, महाकालीके साथ क्रोधीशका, सरस्वतीके साथ चण्डेशका, सिद्धगौरीके साथ पञ्चान्तकेशका, त्रैलोक्यविद्याके साथ शिवोत्तमेशका, मन्त्र-शक्तिके साथ एकरुद्रेशका, कमठीके साथ कूर्मेशका, भूतमाताके साथ एकनेत्रेशका, लम्बोदरीके साथ चतुर्वक्त्रेशका, द्राविणीके साथ अजेशका, नागरीके साथ सर्वेशका, खेचरीके साथ सोमेशका, मर्यादाके साथ लाङ्गलीशका, दारुकेशके साथ रूपिणीका तथा वीरिणीके साथ अर्धनारीशका न्यास करना चाहिये। काकोदरीके साथ उमाकान्त (उमेश)-का और पूतनाके साथ आषाढीशका न्यास करे। भद्रकालीके साथ दण्डीशका, योगिनीके साथ अत्रीशका, शङ्खिनीके साथ मीनेशका, तर्जनीके साथ मेषेशका, कालरात्रिके साथ लोहितेशका, कुब्जनीके साथ शिखीशका, कपर्दिनीके साथ छलगण्डेशका, वज्राके साथ द्विरण्डेशका, जयाके साथ महाबलेशका, सुमुखेश्वरीके साथ बलीशका, रेवतीके साथ भुजङ्गेशका, माध्वीके साथ पिनाकीशका, वारुणीके साथ

१. उदाहरणके लिये एक वाक्ययोजना दी जाती है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवकीर्तिभ्यां नमः (ललाटे)' ऐसा कहकर ललाटका स्पर्श करे। इसी प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं क्लीं श्रीं ह्रीं नारायणकान्तिभ्यां नमः (मुखे)' ऐसा कहकर मुखका स्पर्श करे। ललाट, मुख आदि जिन-जिन अङ्गोंमें मातृका वर्णोंका न्यास करना है, उनका निर्देश मूलमें किया जा रहा है। उन सबके लिये उपर्युक्त रीतिसे वाक्ययोजना करनी चाहिये। तन्त्रमें द्विवचन-विभक्ति तथा शक्तियोंका अन्तमें प्रयोग देखा जानेके कारण द्वन्द्वसमास करके भी स्त्री-लिङ्गका पूर्वनिपात नहीं किया गया।

२. उदाहरणके लिये वाक्यप्रयोग इस प्रकार है—ह् सौ अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः (ललाटे)। ह् सौं आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि।

खड्गीशका, वायवीके साथ बकेशका, विदारणीके साथ श्वेतोरस्केशका, सहजाके साथ भृग्वीशका, लक्ष्मीके साथ लकुलीशका, व्यापिनीके साथ शिवेशका तथा महामायाके साथ संवर्तकेशका न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही गयी है। जहाँ 'ईश' पद न कहा गया हो, वहाँ सर्वत्र उसकी योजना कर लेनी चाहिये। इस श्रीकण्ठमातृका-न्यासके दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्वर देवता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग कहा गया है। इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं। भृगु (स)-में स्थित आकाश (ह)-की छः दीर्घोंसे युक्त करके उसके द्वारा अङ्गन्यास करे[१]। इसके बाद भगवान् शङ्करका इस प्रकार ध्यान करे। उनका श्रीविग्रह बन्धूकपुष्प एवं सुवर्णके समान है। वे अपने हाथोंमें वर, अक्षमाला, अङ्कुश और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं।

### गाणपत्य-मातृका-न्यास

इस प्रकार शिवशक्तिका ध्यान करके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदिमें गणेशजीका अपना बीज लगाकर मातृकास्थलमें एक-एक मातृका वर्णके साथ शक्तिसहित गणेशजीका न्यास करे। ह्रीके साथ विघ्नेश तथा श्रीके साथ विघ्नराजका न्यास करे[२]। पुष्टिके साथ विनायक, शान्तिके साथ शिवोत्तम, स्वस्तिसहित विघ्नकृत् सरस्वतीसहित विघ्नहर्ता, स्वाहासहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन्त, कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहित निरञ्जन, नटीसहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्व, ज्वालिनीसहित शङ्कुकर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनायक, कामरूपिणीके साथ गजेन्द्र; उमाके साथ शूर्पकर्ण, तेजोवतीके साथ विरोचन, सतीके साथ लम्बोदर, विघ्नेशीके साथ महानन्द, सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वासहित आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकीके साथ सुमुख, सिताके साथ प्रमोद, रमाके साथ एकपाद, महिषीके साथ द्विजिह्व, जम्भिनीके साथ शूर, विकर्णाके साथ वीर, भ्रुकुटीसहित षण्मुख, लज्जाके साथ वरद, दीर्घघोणाके साथ वामदेवेश, धनुर्धरीके साथ वक्रतुण्ड, यामिनीके साथ द्विरण्ड, रात्रिसहित सेनानी, ग्रामणीसहित कामान्ध, शशिप्रभाके साथ मत्त, लोलनेत्राके साथ विमत्त, चञ्चलाके साथ मत्तवाह, दीप्तिके साथ जटी, सुभगाके साथ मुण्डी, दुर्भगाके साथ खड्गी, शिवाके साथ वरेण्य, भगाके साथ वृषकेतन, भगिनीके साथ भक्त-प्रिय, भोगिनीके साथ गणेश, सुभगाके साथ मेघनाद, कालरात्रिसहित व्यापी तथा कालिकाके साथ गणेशका अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विघ्नेश-मातृकाका वर्णन किया गया है। गणेशमातृकाके गण ऋषि कहे गये हैं। निचृद् गायत्री छन्द है तथा शक्तिसहित गणेश्वर देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त गणेशबीज (गां गीं गूं गैं गौं गः) के द्वारा अङ्गन्यास करके उनका इस प्रकार ध्यान करे— गणेशजी अपने चारों भुजाओंमें क्रमशः पाश, अङ्कुर, अभय और वर धारण किये हुए हैं, उनकी पत्नी सिद्धि हाथमें कमल ले उनसे सटकर बैठी

१. ह् सां हृदयाय नमः। ह् सीं शिरसे स्वाहा। ह् सूं शिखायै वषट्। ह् सैं कवचाय हुम्। ह् सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फट्।

२. ग अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः (ललाटे), गं आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि रूपसे वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये।

हैं, उनका शरीर रक्तवर्णका है तथा उनके तीन नेत्र हैं, ऐसे गणपतिका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके स्वकीय बीजको पूर्वाक्षरके रूपमें रखकर उक्त मातृका-न्यास करना चाहिये।

**कला-मातृका-न्यास**

(अब कला-मातृका-न्यास बताया जाता है—) निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, असूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, समृद्धिका, स्मृति, मेधा, क्रान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्रा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रियाकारी, मृत्यु, पीता, श्वेता, अरुणा, असिता और अनन्ता—इस प्रकार कलामातृका कही गयी है। भक्त पुरुष उन-उन मातृकाओंका न्यास करे। इस कलामातृकाके प्रजापति ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द गायत्री और देवता शारदा हैं। ह्रस्व और दीर्घ स्वरके बीचमें प्रणव रखकर उसीके द्वारा षडङ्गन्यास करे (यथा—अं ॐ आं हृदयाय नमः' इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा, उं ॐ ऊं शिखायै वषट्, एं ॐ ऐं कवचाय हुम्, ओं ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं ॐ अः अस्त्राय फट्)। विद्वान् पुरुष मोतियोंके आभूषणोंसे विभूषित पञ्चमुखी शारदादेवीका भजन (ध्यान) करे। उनके तीन नेत्र हैं तथा वे अपने हाथोंमें पद्म, चक्र, गुण (त्रिशूल अथवा पाश) तथा एण (मृगचर्म) धारण करती हैं। इस प्रकार ध्यान करके ॐपूर्वक चतुर्थ्यन्त कलायुक्त मातृकाका न्यास करे (यथा—ॐ अं निवृत्त्यै नमः ललाटे, ॐ आं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते इत्यादि)। तदनन्तर मूलमन्त्रके छहों अङ्गोंका न्यास करना चाहिये। 'हृदय' आदि चतुर्थ्यन्त पदमें अङ्गन्यास-सम्बन्धी जातियोंका संयोग करके न्यास करे। 'नमः', 'स्वाहा', 'वषट्', 'हुम्', 'वौषट्' और 'फट्' ये छः जातियाँ कही गयी हैं (अर्थात् हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्—इस प्रकार संयोजना करे)। तत्पश्चात् आयुध और आभूषणोंसहित इष्टदेवका ध्यान करके उनकी मूर्तिमें छः अङ्गोंका न्यास करनेके पश्चात् पूजन प्रारम्भ करे। (पूर्व० ६६ अध्याय)

## देवपूजनकी विधि

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—अब मैं साधकोंका अभीष्ट मनोरथ सिद्ध करनेवाली देवपूजाका वर्णन करता हूँ। अपने वाम भागमें त्रिकोण अथवा चतुष्कोणकी रचना करके उसकी पूजा करे और अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसपर जल छिड़के। तत्पश्चात् हृदयसे आधारशक्तिकी भावना करके उसमें अग्निमण्डलका पूजन करे। फिर अस्त्रबीजसे पात्र धोकर आधारस्थानमें चमस रखकर उसमें सूर्यमण्डलकी भावना करे। विलोम मातृका मूलका उच्चारण करते हुए उस पात्रको जलसे भरे। फिर उसमें चन्द्रमण्डलकी पूजा करके पूर्ववत् उसमें तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्तर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके कवचसे उसको आच्छादित करे। फिर अस्त्रसे उसका संरक्षण करके उसके ऊपर आठ बार प्रणवका जप करे। यह मनुष्योंके लिये सर्वसिद्धिदायक सामान्य अर्घ्य बताया गया है। श्रेष्ठ साधक उस जलमेंसे किञ्चित् निकालकर उसको अपने आपपर तथा सम्पूर्ण पूजन-सामग्रियोंपर पृथक्-पृथक् छिड़के। अपने वाम भागमें आगेकी ओर एक त्रिकोण मण्डल अङ्कित करे। उस

त्रिकोणको षट्कोणसे आवृत करके उस सबको गोल रेखासे घेर दे, फिर सबको चतुष्कोण रेखासे आवृत करके अर्घ्य जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक शङ्खमुद्रासे स्तम्भन करे। आग्नेय आदि चार कोणोंमें हृदय, सिर, शिखा और कवच (भुजमूल)—इन चार अङ्गोंकी पूजा करके मध्यभागमें नेत्रकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी (पुष्पाक्षत आदिसे) पूजा करे। फिर त्रिकोण मण्डलके मध्यमें स्थित आधारशक्तिका मूलखण्डत्रयसे पूजन करे। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्)-के उच्चारणपूर्वक प्रक्षालित की हुई त्रिपादिका (तिरपाई) स्थापित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसकी पूजा करे। '**मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने""" देवतार्घ्यपात्रासनाय नमः**' आधारपूजनके लिये यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। तत्पश्चात् शङ्खको तत्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा धोकर उसे स्थापित करनेके अनन्तर उसकी पूजा करे। शङ्खके स्थापनका मन्त्र इस प्रकार है, पहले तार (ॐ) है, फिर काम (क्लीं) है, उसके बाद 'महा' शब्द है, तत्पश्चात् 'जलचराय' है। फिर वर्म (हुम्), 'फट्' 'स्वाहा' 'पाञ्चजन्याय' तथा हृदय (नमः पद) है। पूरा मन्त्र इस प्रकार समझना चाहिये—'**ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः**।' इसके बाद '**ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने"" देवार्घ्यपात्राय नमः**' इस तेईस अक्षरवाले मन्त्रसे शङ्खकी पूजा करनी चाहिये। (इष्टदेवका नाम जोड़नेसे अक्षर-संख्या पूरी होती है। उस मन्त्रसे पूजन करनेके अनन्तर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् विलोमक्रमसे मूलमातृका वर्णोंका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे शङ्खको भर दे और उसकी निम्नाङ्कित मन्त्रसे पूजा करे—'**ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नमः**'। अर्घ्यपूजनके लिये यही मन्त्र है। फिर उस जलमें चन्द्रमाकी सोलह कलाओंकी पूजा करे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार '**गङ्गे च यमुने चैव**' इत्यादि मन्त्रसे सब तीर्थोंका उसमें आवाहन करके धेनुमुद्राद्वारा[1] उसका अमृतीकरण[2] करे और मत्स्यमुद्राद्वारा[3] उसे आच्छादित करे। फिर कवच (हुं बीज) द्वारा अवगुण्ठन[4] करके पुनः अस्त्र (फट्)-द्वारा उसकी रक्षा करे। तदनन्तर इष्टदेवका चिन्तन करके मुद्रा प्रदर्शन करे। शङ्ख[5], मुसल[6],

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा। संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्। वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्। विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अंगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अंगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमाके बीचमें लगावे। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

२. अमृतीकरणकी विधि यह है—'वं' इस अमृतबीजका उच्चारण करके उस धेनुमुद्राको दिखावे। ३. मत्स्यमुद्रा इस प्रकार है—बायें हाथके पृष्ठ भागपर दाहिने हाथकी हथेली रखे। दोनों अँगूठोंको फैलाये रखे। ४. बायीं मुट्ठी इस प्रकार बाँध ले, जिससे तर्जनी अंगुली निकली रहे, इस प्रकारकी मुट्ठीको शङ्खके ऊपर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है। ५. शङ्खमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—बायें अँगूठेको दाहिनी मुट्ठीसे पकड़ ले। मुट्ठी उत्तान करके अँगूठेको फैला दे। बायें हाथकी चारों अंगुलियोंको सटी हुई रखे और उन्हें फैलाकर दाहिने अँगूठेसे सटा दे। यह शङ्खकी मुद्रा ऐश्वर्य देनेवाली है। ६. मुसलमुद्रा—

मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्। कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी॥

दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर बायींके ऊपर दाहिनी मुट्ठी रख दे। यह सब विघ्नोंका नाश करनेवाली मुसलमुद्रा कही गयी है।

चक्र[१], परमीकरण[२], महामुद्रा[३], तथा योनिमुद्राका[४], विद्वान् पुरुष क्रमशः प्रदर्शन करावे। गारुडी[५] और गालिनी[६]—ये दो मुद्राएँ मुख्य कही गयी हैं। गन्ध-पुष्प आदिसे वहाँ देवताका पूजन और स्मरण करे। आठ बार मूल मन्त्रका तथा आठ बार प्रणवका जप करे। शङ्खसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रोक्षणीपात्र रखे। शङ्खका थोड़ा-सा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उससे अपने ऊपर तीन बार अभिषेक करे। उस समय क्रमशः इन तीन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'**ॐ आत्मतत्त्वात्मने नमः, ॐ विद्यातत्त्वात्मने नमः, ॐ शिवतत्त्वात्मने नमः।**' विद्वान् पुरुष इन मन्त्रोंद्वारा अपने साथ ही उस मण्डलका भी विधिवत् प्रोक्षण करे और उसमें पुष्प तथा अक्षत भी बिखेरे अथवा मूलगायत्रीसे पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। फिर किसी आधार (चौकी)-पर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा मधुपर्कके लिये अपने आगे अनेक पात्र विधिवत् रख ले। श्यामाक (सावाँ), दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता नामक ओषधि और जल—इनके मेलसे भगवान्‌के लिये पाद्य बनता है। फूल, अक्षत, जौ, कुशाग्र, तिल, सरसों, गन्ध तथा दूर्वादल, इनके द्वारा भगवान्‌के लिये अर्घ्य देनेकी विधि है। आचमनके लिये शुद्ध जलमें जायफल, कंकोल और लवङ्ग मिलाकर रखना चाहिये। मधु, घी और दहीके मेलसे मधुपर्क बनता है। अथवा एक पात्रमें पाद्य आदिकी व्यवस्था करे। भगवान् शङ्कर और सूर्यदेवके पूजनमें शङ्खमय पात्र अच्छा नहीं माना गया है। श्वेत, कृष्ण, अरुण, पीत, श्याम, रक्त, शुक्ल, असित (काली), लाल वस्त्र धारण करनेवाली और हाथमें अभयकी मुद्रासे युक्त पीठ-शक्तियोंका ध्यान करना चाहिये। सुवर्ण आदिके पत्रपर लिखे हुए यन्त्रमें, शालग्राम-शिलामें, मणिमें अथवा विधिपूर्वक स्थापित की हुई प्रतिमामें इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। घरमें प्रतिदिन पूजाके लिये वही प्रतिमा कल्याणदायिनी होती है जो स्वर्ण आदि धातुओंकी बनी हो और कम-से-कम अँगूठेके बराबर तथा अधिक-से-अधिक एक बित्तेकी हो। जो टेढ़ी हो, जली हुई हो, खण्डित हो, जिसका मस्तक या आँख फूटी हुई हो अथवा जिसे चाण्डाल आदि अस्पृश्य मनुष्योंने छू दिया हो, वैसी प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

---

१. चक्रमुद्रा—

हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्न सुप्रसारितौ। कनिष्ठाङ्गुष्ठको लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका॥

दोनों हाथोंको आमने-सामने करके उन्हें भलीभाँति फैलाकर मोड़ दें और दोनों कनिष्ठिकाओं तथा अँगूठोंको परस्पर सटा दे। यह चक्रमुद्रा है। २. दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर सटाकर हाथोंको अलग रखे—यही परमीकरण मुद्रा है।

३. महामुद्रा—

अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली। महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः॥

अँगूठोंको परस्पर ग्रथित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैला दे। विद्वानोंने इसीको परमीकरणमें महामुद्रा कहा है। ४. दोनों हाथोंको उत्तान रखते हुए दायें हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी तर्जनीको और बायें हाथकी अनामिकासे दायें हाथकी तर्जनीको पकड़ ले और दोनों मध्यमाओं तथा कनिष्ठिकाओंको परस्पर सटा रखकर दोनों अङ्गुष्ठोंको तर्जनीके मूलसे मिलाये रखे—यही योनिमुद्रा है।

५. गरुडमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा ग्रन्थयित्वा कनिष्ठिके। पुनश्चाधोमुखे कृत्वा तर्जन्यौ योजयेत्तयोः॥
मध्यमानामिके द्वे तु पक्षाविव विचालयेत्। मुद्रैषा पक्षिराजस्य सर्वविघ्ननिवारिणी॥

(मन्त्रमहोदधि)

दोनों हाथोंको सम्मुख करके दोनों कनिष्ठिकाओंको परस्पर बद्ध कर दे और अधोमुख करके उनमें तर्जनियोंको मिला दे। फिर मध्यमा और अनामिकाओंको पाँखकी भाँति हिलावे। यह गरुडमुद्रा सब विघ्नोंका निवारण करनेवाली है।

६. कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम्। तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नवर्जिताः॥

दोनों हाथोंकी कनिष्ठिका और अँगूठे परस्पर सटे रहें और तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियाँ सीधी-सीधी रहकर परस्पर मिली रहें। यह गालिनीमुद्रा कही गयी है।

अथवा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित बाण आदि लिङ्गमें पूजा करे या मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक मूर्तिका निर्माण करके इष्टदेवके शास्त्रोक्त स्वरूपका ध्यान करे। फिर उसमें देवताका परिवारसहित आवाहन करके पूजा करे। शालग्रामशिलामें तथा पहले स्थापित की हुई देवप्रतिमामें आवाहन और विसर्जन नहीं किये जाते।

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि लेकर इष्टदेवका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे—

**आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर।**
**अरण्यामिव हव्यांशं मूर्तावावाहयाम्यहम्॥**
**तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो।**
**भक्तस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम्॥**
**सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम्।**
**स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥**
**अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो।**
**सांनिध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहकारक॥**
**अज्ञानादुत मत्तत्वाद् वैकल्यात्साधनस्य च।**
**यद्यपूर्णं भवेत् कल्पं तथाप्यभिमुखो भव॥**
**दृशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन् यज्ञविष्टरे।**
**मूर्तौ वा यज्ञसम्पूर्त्यै स्थितो भव महेश्वर॥**
**अभक्तवाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रदूरायितद्युते।**
**स्वतेजःपञ्जरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः॥**
**यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।**
**तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च मे॥**
**कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।**
**आगतो देवदेवेशः सुस्वागतमिदं पुनः॥**

(ना० पूर्व० ६७। ३७—४५)

परमेश्वर! आप अपने-आपमें स्थित, अजन्मा एवं शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं। जैसे अरणीमें अग्नि छिपी हुई है, उसी प्रकार इस मूर्तिमें आप गूढरूपसे व्याप्त हैं, मैं आपका आवाहन करता हूँ। प्रभो! यह आपकी महामूर्ति है, मैं इसके भीतर आप सर्वव्यापी परमात्माको, जो कि भक्तके प्रति स्नेहवश स्वयं खिंच आये हैं, दीपकी भाँति स्थापित करता हूँ। देव! अपने अन्तःकरणमें स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभुके लिये मैं सर्वबीजमय, शुभ एवं शुद्ध आसन प्रस्तुत करता हूँ। देवेश! यह आपकी अनन्य मूर्ति-शक्ति है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले प्रभो! आप इसमें निवास कीजिये। अज्ञानसे, प्रमादसे अथवा साधनहीनताके कारण यदि मेरा यह अनुष्ठान अपूर्ण रह जाय तो भी आप अवश्य सम्मुख हों। महेश्वर! आप अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिद्वारा सब त्रुटियोंको पूर्ण करते हुए यज्ञकी पूर्णताके लिये इस यज्ञासनपर अथवा मूर्तिमें स्थित होइये। आपका प्रकाश या तेज अभक्त जनोंके मन, वचन, नेत्र और कानसे कोसों दूर है। भगवन्! आप सब ओर अपने तेजःपुञ्जसे शीघ्र आवृत हो जाइये। देवतालोग अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा जिनका दर्शन चाहते हैं, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मेरा बारम्बार स्वागत है, स्वागत है। देवदेवेश्वर प्रभु आ गये। मैं कृतार्थ हो गया। मुझपर बड़ी कृपा हुई। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैं पुनः इस शुभागमनके लिये प्रभुका स्वागत करता हूँ।

### पाद्य

**यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।**
**तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते॥ ४६॥**

जिनकी लेशमात्र भक्तिका सम्पर्क होनेसे परमानन्दका समुद्र उमड़ आता है, आपके उन शुद्ध चरण-कमलोंके लिये पाद्य प्रस्तुत किया जाता है।

### अर्घ्य

**तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।**
**तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥ ४८॥**

देव! मैं तीन प्रकारके तापोंसे छुटकारा पानेके

लिये आपकी सेवामें त्रितापहारी परमानन्द-स्वरूप दिव्य अर्घ्य अर्पण करता हूँ।

### आचमनीय

**वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।**
**आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे॥ ४७॥**

भगवन्! आप वेदोंके भी वेद और देवताओंके भी देवता हैं। शुद्ध पुरुषोंकी भी परम शुद्धिके हेतु हैं। मैं आपके लिये आचमनीय प्रस्तुत करता हूँ।

### मधुपर्क

**सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।**
**मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥ ४९॥**

देव! आप सम्पूर्ण कलुषतासे रहित तथा परिपूर्ण सुखस्वरूप हैं, मैं आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये।

### पुनराचमनीय

**उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रत:।**
**शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥ ५०॥**

जिनके स्मरण करनेमात्रसे जूँठा या अपवित्र मनुष्य भी शुद्धि प्राप्त कर लेता है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये पुन: आचमनार्थ (जल) उपस्थित करता हूँ।

### स्नेह (तैल)

**स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय।**
**सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम्॥ ५१॥**

जगदीश्वर! आपका अन्त:करण विशाल है। सम्पूर्ण लोकोंमें आप ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं, मैं आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ, आप इस स्नेहको स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये।

### स्नान

**परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये।**
**साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते॥ ५२॥**

ईश! आपका निज स्वरूप तो निरन्तर परमानन्दमय ज्ञानके अगाध महासागरमें निमग्न रहता है, (आपके लिये बाह्य स्नानकी क्या आवश्यकता है?) तथापि मैं आपके लिये यह साङ्गोपाङ्ग स्नानकी व्यवस्था करता हूँ।

### अभिषेक

**सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च।**
**गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिञ्चये॥ ५३॥**

ईश! मैं आदरपूर्वक यथाशक्ति गन्ध-पुष्प आदिसे तथा मन्त्रद्वारा सहस्र अथवा सौ बार आपका अभिषेक करता हूँ।

### वस्त्र

**मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।**
**निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम्॥ ५४॥**

निरावृतविज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आपने मायारूप विचित्र पटके द्वारा अपने महान् तेजको छिपा रखा है। मैं आपके लिये वस्त्र अर्पण करता हूँ।

### उत्तरीय

**यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा।**
**तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम्॥ ५५॥**

जिनके आश्रित रहकर भगवती महामाया सदा सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित किया करती है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मैं उत्तरीय अर्पण करता हूँ।

दुर्गा देवी, भगवान् सूर्य तथा गणेशजीके लिये लाल वस्त्र अर्पण करना चाहिये। भगवान् विष्णुको पीत वस्त्र और भगवान् शिवको श्वेत वस्त्र चढ़ाना चाहिये। तेल आदिसे दूषित फटे-पुराने मलिन वस्त्रको त्याग दे।

### यज्ञोपवीत

**यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रीतमखिलं जगत्।**
**यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये॥ ५७॥**

जिनकी त्रिविध शक्तियोंसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा तृप्त रहता है, जो स्वयं ही यज्ञसूत्ररूप हैं, उन्हीं आप प्रभुको मैं यज्ञसूत्र अर्पण करता हूँ।

**भूषण**

**स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते।**
**भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित॥ ५४॥**

देवपूजित प्रभो! आपके श्रीअङ्ग स्वभावसे ही परम सुन्दर हैं। आप नाना शक्तियोंके आश्रय हैं, मैं आपको ये विचित्र आभूषण अर्पण करता हूँ।

**गन्ध**

**परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्।**
**गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर॥ ५९॥**

परमेश्वर! जिसने अपनी परमानन्दमयी सुगन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया है, उस परम उत्तम दिव्य गन्धको आप कृपापूर्वक स्वीकार करें।

**पुष्प**

**तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम्।**
**अमन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम्॥ ६०॥**

प्रभो! तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीयरूपी वनमें प्रकट हुए इस परम उत्तम दिव्य पुष्पको ग्रहण कीजिये। यह अनेक प्रकारके गुणोंके कारण अत्यन्त मनोहर है, इसकी सुगंन्ध कभी मन्द नहीं होती।

केतकी, कुटज, कुन्द, बन्धूक (दुपहरिया), नागकेसर, जवा तथा मालती—ये फूल भगवान् शङ्करको नहीं चढ़ाने चाहिये। मातुलिङ्ग (बिजौरा नीबू) और तगर कभी सूर्यको नहीं चढ़ावे। दूर्वा, आक और मदार—ये सब दुर्गाजीको अर्पण न करे तथा गणेश-पूजनमें तुलसीको सर्वथा त्याग दे। कमल, दौना, मरुआ, कुश, विष्णुक्रान्ता, पान, दुर्वा, अपामार्ग, अनार, आँवला और अगस्त्यके पत्रोंसे देवपूजा करनी चाहिये। केला, बेर, आँवला, इमली, बिजौरा, आम, अनार, जंबीर, जामुन और कटहल नामक वृक्षके फलोंसे विद्वान् पुरुष देवताकी पूजा करे। सूखे पत्तों, फूलों और फलोंसे कभी देवताका पूजन न करे। मुने! आँवला, खैर, बिल्व और तमालके पत्र यदि छिन्न-भिन्न भी हों तो विद्वान् पुरुष उन्हें दूषित नहीं कहते। कमल और आँवला तीन दिनोंतक शुद्ध रहता है। तुलसीदल और बिल्वपत्र-ये सदा शुद्ध होते हैं। पलाश और कासके फूलोंसे तथा तमाल, तुलसी, आँवला और दूर्वाके पत्तोंसे कभी जगदम्बा दुर्गाजीकी पूजा न करे। फूल, फल और पत्रको देवतापर अधोमुख करके न चढ़ावे। ब्रह्मन्! पत्र-पुष्प आदि जिस रूपमें उत्पन्न हों, उसी रूपमें उन्हें देवतापर चढ़ाना चाहिये।

**धूप**

**वनस्पतिरसं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।**
**आघ्रेयं देवदेवेश धूपं भक्त्या गृहाण मे॥ ७१॥**

देवदेवेश्वर! यह सूँघने योग्य धूप भक्तिपूर्वक आपकी सेवामें अर्पित है, इसे ग्रहण करें। यह वनस्पतिका सुगन्धयुक्त परम मनोहर दिव्य रस है।

**दीप**

**सुप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम्।**
**घृतवर्तिसमायुक्तं गृहाण मम सत्कृतम्॥ ७२॥**

भगवन्! यह घीकी बत्तीसे युक्त महान् दीप सत्कारपूर्वक आपकी सेवामें समर्पित है। यह उत्तम प्रकाशसे युक्त और सदा अन्धकार दूर करनेवाला है। आप इसे स्वीकार करें।

**नैवेद्य**

**अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्।**
**भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा॥ ७३॥**

देव! यह छः रसोंसे संयुक्त चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न भक्तिपूर्वक नैवेद्यके रूपमें समर्पित है, यह सदा संतोष प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करें।

**ताम्बूल**

**नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक्।**
**कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहाण मे॥ ७४॥**

प्रभो! यह उत्तम पान सुपारी, कत्था और

चूनासे संयुक्त है, इसमें कपूर आदि सुगन्धित वस्तु डाली गयी है; यह जो आपकी सेवामें अर्पित है, इसे मुझसे ग्रहण करें।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि दे और आवरण पूजा करे। जिस दिशाकी ओर मुँह करके पूजन करे उसीको पूर्व दिशा समझे और उससे भिन्न दसों दिशाओंका निश्चय करे। कमलके केशरोंमें अग्निकोण आदिसे आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अपने आगे नेत्रकी और सब दिशाओंमें अस्त्रकी अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः पूजा करे। क्रमशः शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्णवाली अङ्गशक्तियोंका अपनी-अपनी दिशाओंमें ध्यान करना चाहिये। उन सबके हाथमें वर और अभयकी मुद्रा सुशोभित है। 'अमुक आवरणके अन्तर्वर्ती देवताओंकी पूजा करता हूँ' ऐसा कहे। तत्पश्चात् अलंकार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधोंसहित समस्त देवताओंकी पूजा करके यह कहे 'उपर्युक्त सब देवता पूजित तथा तर्पित होकर वरदायक हों'। मूलमन्त्रके अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके इष्टदेवको पूजा समर्पित करे—

**अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।**
**भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम्॥ ८१-८२॥**

'शरणागतवत्सल! मुझे अभीष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं आपको भक्तिपूर्वक अमुक आवरणकी पूजा समर्पित करता हूँ। (अमुकके स्थानपर 'प्रथम' या 'द्वितीय' आदि पद बोलना चाहिये)।'

ऐसा कहकर इष्टदेवके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि बिखेरे। तदनन्तर कल्पोक्त आवरणोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। आयुध और वाहनोंसहित इन्द्र आदि ही आवरण देवता हैं। उनका अपनी-अपनी दिशाओंमें पूजन करे। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज अनन्त—ये दस देवता अथवा दिक्पाल प्रथम आवरणके देवता हैं। ऐरावत, भेड़, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर), मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कच्छप—ये विद्वानोंद्वारा इन्द्रादि देवताओंके वाहन माने गये हैं, जो द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादिके आयुध है (जो तृतीय आवरणमें पूजित होते हैं)। इस प्रकार आवरणपूजा समाप्त करके भगवान्‌की आरती करे। फिर शङ्खका जल चारों ओर छिड़ककर ऊपर बाँह उठाये हुए भगवान्‌का नाम लेकर नृत्य करे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। उसके बाद उठकर अपने इष्टदेवकी प्रार्थना करे। प्रार्थनाके पश्चात् दक्षिण भागमें वेदी बनाकर उसका संस्कार करे। मूलमन्त्रसे ईक्षण, अस्त्र (फट्)-द्वारा प्रोक्षण और कुशोंसे ताड़न (मार्जन) करके कवच (हुम्) के द्वारा पुनः वेदीका अभिषेक करे। उसके बाद वेदीकी पूजा करके उसपर अग्निकी स्थापना करे। फिर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें इष्टदेवका ध्यान करते हुए आहुति दे। समस्त महाव्याहृतियोंसे चार बार घीकी आहुति देकर उत्तम साधक भात, तिल अथवा घृतयुक्त खीरद्वारा पचीस आहुति करे। फिर व्याहृतिसे होम करके गन्ध आदिके द्वारा पुनः इष्टदेवकी पूजा करे। भगवान्‌की मूर्तिमें अग्निके लीन होनेकी भावना करे। उसके बाद निम्नाङ्कित प्रार्थना पढ़कर अग्निका विसर्जन करे—

**भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।**
**कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्॥ ९३॥**

हे अग्निदेव! आपकी शक्ति बहुत बड़ी है। आप सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि करानेवाले हैं। कोई दूसरा कार्य प्राप्त होनेपर भी आप यहाँ सादर पधारें।

इस प्रकार विसर्जन करके अग्निदेवताके लिये

आचमनार्थ जल दे। फिर बचे हुए हविष्यसे इष्टदेवको, पूर्वोक्त पार्षदोंको भी गन्ध, पुष्प और अक्षतसहित बलि दे। इसके बाद सब दिशाओंमें योगिनी आदिको बलि अर्पण करे।

**ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।**
**योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये॥**
**विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।**
**सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम्॥**
(९५—९७)

जो भयंकर हैं, जिनके कर्म भयंकर हैं, जो भयंकर स्थानोंमें निवास करते हैं, जो उग्र रूपवाली योगिनियाँ हैं, जो गणोंके स्वामी तथा विघ्नस्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशामें स्थित हैं, वे सब प्रसन्नचित्त होकर यह बलि ग्रहण करें।

इस प्रकार आठों दिशाओंमें बलि अर्पण करके पुनः भूतबलि दे। तत्पश्चात् धेनुमुद्राद्वारा जलका अमृतीकरण करके इष्टदेवताके हाथमें पुनः आचमनीयके लिये जल दे। फिर मूर्तिमें स्थित देवताका विसर्जन करके पुनः उस मूर्तिमें ही उनको प्रतिष्ठित करे। तत्पश्चात् भगवत्प्रसादभोजी पार्षदको नैवेद्य दे। महादेवजीके 'चण्डेश' भगवान् विष्णुके 'विष्वक्सेन' सूर्यके 'चण्डांशु' गणेशजीके 'वक्रतुण्ड' और भगवती दुर्गाकी 'उच्छिष्ट चाण्डाली'—ये सब उच्छिष्टभोजी कहे गये हैं।

तदनन्तर मूलमन्त्रके ऋषि आदिका स्मरण करके मूलसे ही षडङ्ग-न्यास करे और यथाशक्ति मन्त्रका जप करके देवताको अर्पित करे।

**गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।**
**सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता॥ १०२॥**

'देव! आप गुह्यसे अतिगुह्य वस्तुकी भी रक्षा करनेवाले हैं। आप मेरेद्वारा किये गये इस जपको ग्रहण करें। आपके प्रसादसे आपके भीतर रहनेवाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो।'

इसके बाद पराङ्मुख अर्घ्य देकर फूलोंसे पूजा करे। पूजनके पश्चात् प्रणाम करना चाहिये। दोनों हाथोंसे, दोनों पैरोंसे, दोनों घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे, नेत्रोंसे, मनसे और वाणीसे जो नमस्कार किया जाता है उसे 'अष्टाङ्ग प्रणाम' कहा गया है। दोनों बाहुओंसे, घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे जो प्रणाम किया जाता है, वह 'पञ्चाङ्ग प्रणाम' है। पूजामें ये दोनों अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग प्रणाम श्रेष्ठ माने गये हैं। मन्त्रका साधक दण्डवत्-प्रणाम करके भगवान्‌की परिक्रमा करे। भगवान् विष्णुकी चार बार, भगवान् शङ्करकी आधी बार, भगवती दुर्गाकी एक बार, सूर्यकी सात बार और गणेशजीकी तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोपासक भक्ति-पूर्वक स्तोत्र-पाठ करे। इसके बाद इस प्रकार कहे—

**'ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये ॐ तत्सत्।'**[1]

यह विद्वानोंने 'ब्रह्मार्पण मन्त्र' कहा है। इसके आदिमें प्रणव है, उसके बाद बयासी अक्षरोंका यह मन्त्र है, इसीसे भगवान्‌को आत्म-समर्पण करना चाहिये। इसके बाद नीचे लिखे अनुसार क्षमा-प्रार्थना करे—

**अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।**
**यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥**
**द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा।**

---

१. इसका भावार्थ इस प्रकार है—'इससे पहले प्राण, बुद्धि, देहधर्मके अधिकारसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें मनसे, वाणीसे, दोनों हाथोंसे, चरणोंसे, उदरसे, लिङ्गसे मैंने जो कुछ सोचा है, जो बात कही है तथा जो कर्म किया है, वह ब्रह्मार्पण हो, स्वाहा। मैं अपनेको और अपने सर्वस्वको आप श्रीविष्णुकी सेवामें समर्पित करता हूँ। ॐ तत्सत्।'

**कृतं यत्तत् क्षमस्वेश कृपया त्वं दयानिधे॥**
**यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्रसुषुप्तिषु।**
**तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै च मे प्रभो॥**
**भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।**
**त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥**
**अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।**
**तस्मात् कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर॥**
**अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।**
**दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते॥**
**आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।**
**पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर॥**

(ना० पू० ६७। ११०—११७)

'भगवन्! अज्ञानसे, प्रमादसे तथा साधनकी कमीसे मेरेद्वारा जो न्यूनता या अधिकताका दोष बन गया हो, उसे आप क्षमा करेंगे। ईश्वर! दयानिधे! मैंने जो द्रव्यहीन, क्रियाहीन तथा मन्त्रहीन विधिविपरीत कर्म किया है, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा करें। प्रभो! मैंने जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाओंमें जो कर्म किया है, वह सब आपकी पूजारूप हो जाय और मेरे लिये कल्याणकारी हो। धरतीपर जो लड़खड़ाकर गिरते हैं, उनको सहारा देनेवाली भी धरती ही है, उसी प्रकार आपके प्रति अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये भी आप ही शरणदाता हैं, परमेश्वर! आपके सिवा दूसरा कोई शरण नहीं है। आप ही मेरे शरणदाता हैं। अतः करुणापूर्वक मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें। जगत्पते? मेरेद्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध बनते हैं। अतः 'यह मेरा दास है।' ऐसा समझकर क्षमा करें। परमेश्वर! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन भी नहीं जानता और पूजा करना भी अच्छी तरह नहीं जानता, अब आप ही मेरी गति हैं—सहारे हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जनके लिये नीचे लिखे श्लोकका पाठ करे और पुष्पाञ्जलि दे—

**गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय।**
**यत्र ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिवः॥ ११८॥**

'जगदीश! जगन्मय! आप अपने उस परम धामको पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं।'

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर संहार-मुद्राके द्वारा भगवान्‌को उनके अङ्गभूत पार्षदोंसहित सुषुम्णा नाडीके मार्गसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करके पुष्प सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान्‌का विसर्जन करे। दो शङ्ख, दो चक्रशिला (गोमतीचक्र), दो शिवलिङ्ग, दो गणेशमूर्ति दो सूर्यप्रतिमा और दुर्गाजीकी तीन प्रतिमाओंका पूजन एक घरमें नहीं करना चाहिये; अन्यथा दुःखकी प्राप्ति होती है। इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्‌का चरणामृत पान करे—

**अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।**
**सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम्॥ १२१-१२२॥**

'भगवान् विष्णुका शुभ चरणामृत अकालमृत्युका अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश तथा समस्त पापोंका संहार करनेवाला है।'

भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि वे अपने आराध्यदेवको निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसादको ग्रहण करें। भगवान् शिवको निवेदित निर्माल्य—पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किंतु शालग्राम-शिलाका स्पर्श होनेसे वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है।

## पूजाके पाँच प्रकार

नारद! सबने पाँच प्रकारकी पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी। इनके लक्षणोंका मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदिसे युक्त मनुष्य न स्नान करे, न

जप करे और न पूजन ही करे। आराध्यदेवकी पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डलका दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्र-स्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्पाञ्जलि दे। फिर जब रोग निवृत्त हो जाय तो स्नान और नमस्कार करके गुरुकी पूजा करे तथा उनसे प्रार्थना करे—'जगन्नाथ! जगत्पूज्य! दयानिधे! आपके प्रसादसे मुझे पूजा छोड़नेका दोष न लगे।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंका भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान्‌की पूजा करे। यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है। अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है। सूतक दो प्रकारका कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक। दोनों ही सूतकोंमें एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मनसे ही भगवान्‌का पूजन और मनसे ही मन्त्रका जप करे। फिर सूतक बीत जानेपर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणोंका पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदाकी भाँति पूजाका क्रम प्रारम्भ कर दे[1]। यह 'सौतिकी पूजा' कही गयी। अब त्रासी पूजा बतायी जाती है। दुष्टोंसे त्रासको प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारोंसे अथवा मानसिक उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा करे। यह 'त्रासी पूजा' कही गयी है। पूजा-साधन-सामग्री जुटानेकी शक्ति न होनेपर यथाप्राप्त पत्र, पुष्प और फलका संग्रह करके उन्हींके द्वारा या मानसोपचारसे भगवान्‌का पूजन करे। यह 'साधनाभाविनी पूजा' कही गयी है। नारद! अब दौर्बोधी पूजाका परिचय सुनो—स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञानके अनुसार जिस किसी क्रमसे जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी पूजा' कहते हैं। इस प्रकार साधकको जिस किसी तरह भी सम्भव हो, देवपूजा करनी चाहिये। देवपूजाके बाद बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् भगवान्‌को अर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनोंके साथ भोजन करे। फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे। फिर स्वजनोंके साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने। जो सब कल्पों (सम्पूर्ण पूजा-विधियों)-के सम्पादनमें समर्थ होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान)-का अनुष्ठान करता है, उस उपासकको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती है। (पूर्व० ६७ अध्याय)

## श्रीमहाविष्णुसम्बन्धी अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर आदि विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी विधि

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—नारद! अब मैं महाविष्णुके मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जो लोकमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। जिन्हें पाकर मनुष्य शीघ्र ही अपने अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं। जिनके उच्चारणमात्रसे ही राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि भी जिन मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके ही संसारकी सृष्टिमें समर्थ होते हैं। प्रणव और नमःपूर्वक ङे विभक्त्यन्त 'नारायण' पद हो तो '**ॐ नमो नारायणाय**' यह अष्टाक्षर मन्त्र होता है। साध्य नारायण इसके ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, अविनाशी भगवान् विष्णु देवता हैं, ॐ बीज है, नमः शक्ति है तथा सम्पूर्ण

१. तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः। मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम्॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुं द्विजान्। तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत्॥
(ना० पूर्व० तृ० ६७। १३१-१३२)

मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका पञ्चाङ्ग-न्यास इस प्रकार है—**क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय शिखायै वषट्, अत्युल्काय कवचाय हुं, सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्।** इस प्रकार पञ्चाङ्गकी कल्पना करनी चाहिये। फिर मन्त्रके छः वर्णोंसे षडङ्ग-न्यास करके शेष दो मन्त्राक्षरोंका कुक्षि तथा पृष्ठभागमें न्यास करे। इसके बाद सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करना चाहिये। 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' यह बारह अक्षरोंका मन्त्र 'सुदर्शन-मन्त्र' कहा गया है।

अब मैं विभूतिपञ्जर नामक दशावृत्तिमय न्यासका वर्णन करता हूँ। मूल मन्त्रके अक्षरोंका अपने शरीरके मूलाधार हृदय, मुख, दोनों भुजा तथा दोनों चरणोंके मूलभाग तथा नासिकामें न्यास करे। यह प्रथम आवृत्ति कही गयी है। कण्ठ, नाभि, हृदय, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग तथा पृष्ठभागमें पुनः मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह द्वितीय आवृत्ति बतायी गयी है। मूर्धा, मुख, दोनों नेत्र, दोनों श्रवण तथा नासिका-छिद्रोंमें मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह तृतीय आवृत्ति है। दोनों भुजाओं और दोनों पैरोंकी सटी हुई अंगुलियोंमें चौथी आवृत्तिका न्यास करे। धातु, प्राण और हृदयमें पाँचवीं आवृत्तिका न्यास करे। सिर, नेत्र, मुख और हृदय, कुक्षि, ऊरु, जङ्घा तथा दोनों पैरोंमें विद्वान् पुरुष एक-एक करके क्रमशः मन्त्र-वर्णोंका न्यास करे। (यह छठी, सातवीं, आठवीं आवृत्ति है) हृदय, कंधा, ऊरु तथा चरणोंमें मन्त्रके चार वर्णोंका न्यास करे। शेष वर्णोंका चक्र, शङ्ख, गदा और कमलकी मुद्रा बनाकर उनमें न्यास करे (यह नवम, दशम आवृत्ति है)। यह सर्वश्रेष्ठ न्यास विभूति-पञ्जर नामसे विख्यात है। मूलके एक-एक अक्षरको अनुस्वारसे युक्त करके उसके दोनों ओर प्रणवका सम्पुट लगाकर न्यास करे अथवा आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः लगाकर मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। ऐसा दूसरे विद्वानोंका कथन है।

तत्पश्चात् बारह आदित्योंसहित द्वादश मूर्तियोंका न्यास करे। ये बारह मूर्तियाँ आदिमें द्वादशाक्षरके एक-एक मन्त्रसे युक्त होती हैं और इनके साथ बारह आदित्योंका संयोग होता है। यह अष्टाक्षर-मन्त्र अष्टप्रकृतिरूप बताया गया है। इनके साथ चार[1] आत्माका योग होनेसे द्वादशाक्षर होता है। ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षिण पार्श्व, दक्षिण अंस, गल दक्षिणभाग, वाम पार्श्व, वाम अंस, गल वामभाग, पृष्ठभाग तथा ककुद्—इन बारह अङ्गोंमें मन्त्रसाधक क्रमशः बारह मूर्तियोंका न्यास करे। केशवका धाताके साथ ललाटमें न्यास करके नारायणका अर्यमाके साथ कुक्षिमें, माधवका मित्रके साथ हृदयमें तथा गोविन्दका वरुणके साथ कण्ठकूपमें न्यास करे। विष्णुका अंशुके साथ, मधुसूदनका भगके साथ, त्रिविक्रमका विवस्वान्‌के साथ, वामनका इन्द्रके साथ, श्रीधरका पूषाके साथ और हृषीकेशका पर्जन्यके साथ न्यास करे। पद्मनाभका त्वष्टाके साथ तथा दामोदरका विष्णुके साथ न्यास करे[2]। तत्पश्चात्

१. आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा—ये चार आत्मा हैं।

२. यह मूर्तिपञ्जर-न्यास कहलाता है। इसका प्रयोग इस प्रकार है—

ललाटे—ॐ अम् केशवाय धात्रे नमः।
कुक्षौ—ॐ नम् आम् नारायणाय अर्यम्णे नमः।
हृदि—ॐ मोम् इम् माधवाय मित्राय नमः।
कण्ठकूपे—ॐ भम् ईम् गोविन्दाय वरुणाय नमः।
दक्षिणपार्श्वे—ॐ गम् उम् विष्णवे अंशवे नमः।
दक्षिणांसे—ॐ वम् ऊम् मधुसूदनाय भगाय नमः।
गलदक्षिणभागे—ॐ तेम् एम् त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः।
वामपार्श्वे—ॐ वाम् ऐम् वामनाय इन्द्राय नमः।
वामांसे—ॐ सुम् ओम् श्रीधराय पूष्णे नमः।
गलवामभागे—ॐ देम् औम् हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः।
पृष्ठे—ॐ वाम् अम् पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः।
ककुदि—ॐ यम् अः दामोदराय विष्णवे नमः।

द्वादशाक्षर-मन्त्रका सम्पूर्ण सिरमें न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रके द्वारा व्यापक-न्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणवके अतिरिक्त पैंसठ अक्षरका बताया गया है—'ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधर-श्रीवत्साङ्कितवक्ष:स्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।' इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायणका ध्यान करे।

**उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।**
**दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाञ्चितम्॥**
**श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।**
**हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥**

(ना० पूर्व० तृ० ७०। ३२-३३)

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-कालके कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश है, जो अपने चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्वकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका वक्ष:स्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अपने गलेमें चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअङ्गोंमें पड़कर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये।

इन्द्रियोंको वशमें रखकर मन्त्रमें जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रका विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्रके जपसे निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होनेपर साधकको मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाखके जपसे साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाखके जपसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जाता है। पाँच लाखके जपसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। छठे लाखके जपसे मन्त्र-साधककी बुद्धि भगवान् विष्णुमें स्थिर हो जाती है। सात लाखके जपसे मन्त्रोपासक श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। आठ लाखका जप पूर्ण कर लेनेपर मन्त्र-जप करनेवाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एवं मोक्ष)- को प्राप्त होता है। इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुरात्त कमलोंद्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्निमें दशांश होम करे। मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त सबका पीठपर यत्नपूर्वक पूजन करे। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, सत्या, ईशाना तथा नवीं अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं। (इन सबका पूजन करना चाहिये।) इसके बाद '**ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठाय नमः**' यह छत्तीस अक्षरका पीठमन्त्र है, इससे भगवान्को आसन देना चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण कराकर उसमें भगवान्का आवाहन करके पूजा करे। पहले कमलके केसरोंमें मन्त्रसम्बन्धी छः अङ्गोंका पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमलके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका और आग्नेय आदि कोणों क्रमशः उनकी शक्तियोंका पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री,

रति तथा सरस्वती। इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। वासुदेवकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। संकर्षण पीत वर्णके हैं। प्रद्युम्न तमालके समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणिके सदृश हैं। ये सब-के-सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाले हैं। शान्तिका वर्ण श्वेत, श्रीका वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वतीका रंग गोदुग्धके समान उज्ज्वल तथा रतिका वर्ण दूर्वादलके समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमलदलोंके अग्रभागमें चक्र, शङ्ख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमालाका क्रमशः पूजन करे। चक्रका रंग लाल, शङ्खका रंग चन्द्रमाके समान श्वेत, गदाका पीला, कमलका सुवर्णके समान, कौस्तुभका श्याम, मुसलका काला, तलवारका श्वेत और वनमालाका उज्ज्वल है। इनके बाह्यभागमें भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए कुंकुम वर्णवाले पक्षिराज गरुड़का पूजन करे। तत्पश्चात् क्रमशः दक्षिण पार्श्वमें शङ्खनिधि और वाम पार्श्वमें पद्मनिधिकी पूजा करे। इनका वर्ण क्रमशः मोती और माणिक्यके समान है। पश्चिममें ध्वजकी पूजा करे। अग्निकोणमें रक्तवर्णके विघ्न (गणेश)-का, नैर्ऋत्य कोणमें श्याम वर्णवाले आर्यका, वायव्यकोणमें श्यामवर्ण दुर्गाका तथा ईशान कोणमें पीतवर्णके सेनानीका पूजन करना चाहिये। इनके बाह्यभागमें विद्वान् पुरुष इन्द्र आदि लोकपालोंका उनके आयुधोंसहित पूजन करे। जो इस प्रकार आवरणोंसहित अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धामको जाता है। खेत, धान्य और सुवर्णकी प्राप्तिके लिये धरणीदेवीका चिन्तन करे। उनकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है और वे अपने हाथोंमें धानकी बाल लिये रहती हैं। देवाधिदेव भगवान्‌के दक्षिणभागमें पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वतीदेवीका चिन्तन करे। वे क्षीरसागरके फेनपुञ्जकी भाँति उज्ज्वल दो वस्त्र धारण करती हैं। जो सरस्वतीदेवीके साथ परात्पर भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह वेद और वेदाङ्गोंका तत्त्वज्ञ तथा सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ होता है।

जो प्रतिदिन प्रातःकाल पच्चीस बार ( **ॐ नमो नारायण** ) इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करके जल पीता है, वह सब पापोंसे मुक्त, ज्ञानवान् तथा नीरोग होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय उपवासपूर्वक ब्राह्मी घृतका स्पर्श करके उक्त मन्त्रका आठ हजार जप करनेके पश्चात् ग्रहण शुद्ध होनेपर श्रेष्ठ साधक उस घृतको पी ले। ऐसा करनेसे वह मेधा (धारणशक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है। यह नारायणमन्त्र सब मन्त्रोंमें उत्तम-से-उत्तम है। नारद! यह सम्पूर्ण सिद्धियोंका घर है; अतः मैंने तुम्हें इसका उपदेश किया है। '**नारायणाय**' पदके अन्तमें '**विद्महे**' पदका उच्चारण करे। फिर 'ङे' विभक्त्यन्त 'वासुदेव' पद ( **वासुदेवाय** )-का उच्चारण करे, उसके बाद '**धीमहि**' यह पद बोले। अन्तमें '**तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**' इन अक्षरोंका उच्चारण करे। यह ( **ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्** ) विष्णुगायत्री बतायी गयी है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है।

तार (ॐ), हृदय (नमः) भगवत् शब्दका चतुर्थी विभक्तिमें एकवचनान्त रूप ( **भगवते** ) तथा '**वासुदेवाय**' यह द्वादशाक्षर ( **ॐ नमो भगवते वसुदेवाय** ) महामन्त्र कहा गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। स्त्री और शूद्रोंको बिना प्रणवके यह मन्त्र जपना चाहिये और द्विजातियोंके लिये प्रणवसहित इसके जपका विधान है। इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वासुदेव देवता, ॐ बीज और नमः शक्ति है। इस मन्त्रके एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा

सम्पूर्ण मन्त्रद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये।

यहाँ भी पूर्वोक्तरूपसे ही ध्यान करना चाहिये। इस मन्त्रके बारह लाख जपका विधान है। घीसे सने हुए तिलसे जपके दशांशका हवन करना चाहिये। पूर्वोक्त पीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके मन्त्रसाधक उस मूर्तिमें देवेश्वर वासुदेवका आवाहन और पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करके वासुदेव आदि व्यूहोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर शान्ति आदि शक्तियोंका पूजन करना उचित है। वासुदेव आदिका पूर्व आदि दिशाओंमें और शान्ति आदि शक्तियोंका अग्नि आदि कोणोंमें पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरणमें केशवादि द्वादश मूर्तियोंकी पूजा बतायी गयी है। चतुर्थ और पञ्चम आवरणमें इन्द्रादि दिक्पालों और उनके आयुधोंकी पूजा करे। इनकी पूजाका स्थान भूपुर है। इस प्रकार पाँच आवरणोंसहित अविनाशी भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पाता और अन्तमें भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

## भगवान् श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न-सम्बन्धी विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी संक्षिप्त विधि

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—नारद! अब भगवान् श्रीरामके मन्त्र बताये जाते हैं, जो सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और जिनकी उपासनासे मनुष्य भवसागरके पार हो जाते हैं। सब उत्तम मन्त्रोंमें वैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ बताया जाता है। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव-मन्त्र शीघ्र अभीष्ट सिद्ध करनेवाला है। वैष्णव-मन्त्रोंमें भी राम-मन्त्रोंके फल अधिक हैं। गणपति आदि मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र कोटि-कोटिगुने अधिक महत्त्व रखते हैं। विष्णुशय्या (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र)-का मस्तक यदि चन्द्रमा (ं अनुस्वार)-से विभूषित हो और उसके आगे '**रामाय नमः**'—ये दो पद हों तो यह ( **रां रामाय नमः** ) मन्त्र महान् पापोंकी राशिका नाश करनेवाला है। श्रीरामसम्बन्धी सम्पूर्ण मन्त्रोंमें यह षडक्षर मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है। जानकर और बिना जाने किये हुए महापातक एवं उपपातक सब इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, रां बीज और नमः शक्ति है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें रघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

**कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्।**
**ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥**
**सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।**
**पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥**

(७३। १०—१२)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली

घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्‌के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्रभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर उसमें भगवान्‌का आवाहन और प्रतिष्ठा करके साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त वैष्णवपीठपर उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवीकी उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। '**श्रीसीतायै स्वाहा**' यह जानकी-मन्त्र है। भगवान् श्रीरामके अग्रभागमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करके दोनों पार्श्वभागोंमें बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें छः अङ्गोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदिकी अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः पूजन करना चाहिये। हनुमान्‌जी भगवान्‌के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दोनों पार्श्वमें भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सबकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताप्त शतपर्वासे आहुति करनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्न भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति करे तो वह मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। गङ्गातटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधुयुक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति करे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कन्द-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका उल्लेख करे। द्वादशदल कमलमें कामबीज (क्लीं) लिखे। मध्यभागमें मन्त्रसे आवृत नामका उल्लेख

करे। बाह्यभागमें सुदर्शन मन्त्रसे और दिशाओंमें युग्मबीज (रां श्रीं)-से यन्त्रको आवृत करे। उसका भूपुर वज्रसे सुशोभित हो। कोण कन्दर्प, अङ्कुश, पाश और भूमिसे सुशोभित हो। यह यन्त्रराज माना गया है। भोजपत्रपर अष्टगन्धसे ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिखकर छः कोणोंके ऊपर दलोंका आवेष्टन रहे। अष्टदल कमलके केसरोंमें विद्वान् पुरुष युग्म बीजसे आवृत दो-दो स्वरोंका उल्लेख करे। यन्त्रके बाह्यभागमें मातृकावर्णोंका उल्लेख करे। साथ ही प्राण-प्रतिष्ठाका मन्त्र भी लिखे। मन्त्रोपासक किसी शुभ दिनको कण्ठमें, दाहिनी भुजामें अथवा मस्तकपर इस यन्त्रको धारण करे। इससे वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्व बीज (रां), काम (क्लीं), सत्य (ह्रीं), वाक् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), तार (ॐ) इन छः प्रकारके बीजोंसे पृथक्-पृथक् जुड़नेपर पाँच वर्णोंका 'रामाय नमः' मन्त्र छः भेदोंसे युक्त षडक्षर होता है। (यथा—'**रां रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः**' इत्यादि) यह छः प्रकारका षडक्षर-मन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों फलोंको देनेवाला है। इन छहोंके क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, सत्य, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव—ये ऋषि बताये गये हैं। इनका छन्द गायत्री है, देवता श्रीरामचन्द्रजी हैं, आदिमें लगे हुए **रां, क्लीं** आदि बीज हैं और अन्तिम नमः पद शक्ति है। मन्त्रके छः अक्षरोंसे षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। अथवा छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजाक्षरोंद्वारा न्यास करे। मन्त्रके अक्षरोंका पूर्ववत् न्यास करना चाहिये।

### ध्यान

**ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे।**
**पुष्पकाख्यविमानान्तःसिंहासनपरिच्छदे॥**
**पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्।**
**वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्॥**
**वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसेवितम्।**
**रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम्॥**
**यद्वा स्मारादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत्।**

(५९—६२)

भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करे। कल्पवृक्षके

नीचे एक सुवर्णका विशाल मण्डप बना हुआ है। उसके भीतर पुष्पक विमान है, उस विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायी जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जप करे अथवा क्लीं आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रके ही समान करने चाहिये। '**ॐ रामचन्द्राय नमः**' '**ॐ रामभद्राय नमः**।' ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नवाक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति करे। '**हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा**' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, हुं बीज तथा स्वाहा शक्ति है (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये)। क्लीं बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

### ध्यान

**अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।**
**मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते॥**
**सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।**
**रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः॥**
**संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।**
**सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥**
**श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।**
(६८—७१)

दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं, उसके भीतर पुष्पक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुए हैं। उस सुन्दर

विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वाम भागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्‌का दाहिना भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है, श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है, उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजन षडक्षर-मन्त्रके समान है। '**रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।**' यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। मन्त्रका आदि अक्षर अर्थात् 'रां' यह बीज है और स्वाहा शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्ग-न्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर-मन्त्रके लिये पहले बताये अनुसार करे। इसके जपमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (ॐ)-के पश्चात् '**नमो भगवते रामचन्द्राय**' अथवा '**रामभद्राय**' ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर-मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम हो[1]। यह (श्रीराम जय राम जय जय राम) तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा पाप-राशिका नाश करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। इसके तीन पदोंकी दो-दो आवृत्ति करके षडङ्ग-न्यास करे[2]। ध्यान-पूजन आदि सब कार्य दशाक्षर मन्त्रके समान करे।

'**ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः**' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, ॐ बीज और 'नमः' शक्ति है। मन्त्रके एक, दो, चार, तीन, छः और दो अक्षरोंवाले पदोंद्वारा एकाग्रचित्त हो षडङ्ग-न्यास करे।

## ध्यान

**निःशाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनिःस्वनैः ॥**
**प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते।**

१. श्रीपूर्वं जयपूर्वं च तद्‌द्विधा रामनाम च ॥ ७६ ॥
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम्। छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामः पापौघनाशनः ॥ ७७ ॥

२. यथा—'श्रीराम' हृदयाय नमः। 'श्रीराम' शिरसे स्वाहा। 'जय राम' शिखायै वषट्। 'जय राम' कवचाय हुम्। 'जय जय राम' नेत्राभ्यां वौषट्। 'जय जय राम' अस्त्राय फट्। पुराणमें इसका प्रमापक मूल श्लोक इस प्रकार है—
षडङ्गानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्त्या पदत्रयैः।

चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते ॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम्॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम्।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम्॥

भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर बैठे हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रखा है। उनकी विजयके उपलक्षमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गल-पाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति करके पूर्ववत् पूजन करे।

**ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।**
**दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम्॥**[1]

यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे बिलग होनेपर बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, रां बीज और श्रीं शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग-न्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे, फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'**ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः**' यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। '**त्रैलोक्यनाथाय नमः**' यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। '**रामाय नमः**' यह पञ्चाक्षर-मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। '**रामचन्द्राय स्वाहा**', '**रामभद्राय स्वाहा**'—ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इसके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र्) शेष (आ)-से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं)-से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर-मन्त्र (रां) है। जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने ॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया॥
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम्।
(१०५—१०८)

---

1. श्रीरामतापनीयोपनिषद्में यही मन्त्र इस प्रकार है—
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

'सरयूके तटपर मन्दार (कल्पवृक्ष)-के नीचे एक वेदिका बनी हुई है और उसके ऊपर एक कमलका आसन बिछा हुआ है। जिसपर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीराम वीरासनसे बैठे हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है। उन्होंने अपने बायें ऊरुपर बायाँ हाथ रख छोड़ा है। उनके वामभागमें सीता और दाहिने भागमें लक्ष्मणजी हैं। भगवान् श्रीरामका अमित तेज कामदेवसे भी अत्यधिक सुन्दर है। वे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल तथा अद्वितीय आत्माका ध्यानद्वारा साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीरामका केवल मोक्षकी इच्छासे चिन्तन करे और छः लाख मन्त्रका जप करे।'

इसके होम और नित्य-पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति हैं। वह्नि (र्), शेष (आ)-के आसनपर विराजमान हो और उसके बाद भान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरका मन्त्र (राम) होता है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य एकाक्षर मन्त्रकी ही भाँति जानने चाहिये। तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं), अस्त्र (फट्) तथा स्व बीज (रां) इनके साथ पृथक्-पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छः भेदोंसे युक्त त्र्यक्षर मन्त्रराज होता है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाला है। द्व्यक्षर मन्त्रके अन्तमें 'चन्द्र' और 'भद्र' शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकारका चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षरमन्त्रमें बताये अनुसार हैं। तार (ॐ), चतुर्थ्यन्त राम शब्द (रामाय), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), वह्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (**ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा**) आठ अक्षरोंका महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर-मन्त्रके समान हैं। '**तार (ॐ) हृत् (नमः) ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोकधुर्याय स्व (न्य) भृगु (स्) कामिका (त) दण्डार्पिताङ्घ्रये।**' यह ('**ॐ नमः ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोक-धुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये**') तैंतीस अक्षरोंका मन्त्र कहा गया है। इसके शुक्र ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्रके चारों पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये। शेष सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी भाँति करे। जो साधक मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों

प्राप्त होते हैं। उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। '**दाशरथाय विद्महे। सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।**' यह राम-गायत्री कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।

पद्म (श्रीं) ङे विभक्त्यन्त सीता शब्द (सीतायै) और अन्तमें ठद्वय (स्वाहा)—यह (**श्रीं सीतायै स्वाहा**) षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, गायत्री छन्द, भगवती सीता देवता, श्रीं बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षरद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

**ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्।**
**तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये॥**
**सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्।**
**नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्॥**
**पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्यायां षड्गुणेश्वरीम्।**

(ना० पूर्व० १३३—१३५)

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य-शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है। नेत्र कमलोंकी शोभा धारण करते हैं। अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शय्यापर अपने प्राणवल्लभ पुण्यमय श्रीराघवेन्द्रको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख मन्त्रका जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति निर्माण करके उसमें जनकनन्दिनी किशोरीजीका आवाहन और स्थापन करे। फिर विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिणभागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अग्रभागमें हनुमान्‌जीकी और पृष्ठभागमें लक्ष्मीजीकी पूजा करके छः कोणोंमें हृदयादि अङ्गोंका पूजन करे। फिर आठ दलोंमें मुख्य मन्त्रियोंका, उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकेश्वरोंका और उनके भी बाह्यभागमें वज्र आदि आयुधोंका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। अधिक कहनेसे क्या लाभ? श्रीकिशोरीजीकी आराधनासे मनुष्य सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, परम सुख, धन-धान्य तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इन्दु (— अनुस्वार), युक्त शक्र (ल) तथा '**लक्ष्मणाय नमः**' यह (**लं लक्ष्मणाय नमः**) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

## ध्यान

**द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।**
**धनुर्बाणकरं रामं सेवासंसक्तमानसम्॥ १४४॥**

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है। नेत्र कमलदलके सदृश हैं। हाथोंमें धनुष-बाण हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधुसे सींची हुई खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मणजीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजनका सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्नपूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्रजीके बहुत-से भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं, जो सिद्धि देनेवाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीका शुभ

आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर आलस्यरहित हो लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्तमें बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है। राज्यकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पापरहित हो अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है, इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके शुद्धचित्त हो पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त होता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घ कालतक पूर्वजन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। निद्रा (भ), चन्द्र (अनुस्वार)-से युक्त हो और उसके बाद '**भरताय नमः**' ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस '**भं भरताय नमः**' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। वक (श), इन्दु (अनुसार)-से युक्त हो उसके बाद ङे विभक्त्यन्त शत्रुघ्न शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो '**शं शत्रुघ्नाय नमः**' यह सात अक्षरोंका शत्रुघ्न मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। (ना० पूर्व० अध्याय ७३)

## विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना, दीपदानविधि और कामनाशक भूतविद्रावण-मन्त्रोंका वर्णन

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—विप्रवर! अब हनुमान्‌जीके मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमानजीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त गगन (ह) अर्थात् 'हौं' यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार ये भग (ए)-से युक्त हों अर्थात् 'ह्स्फ्रें' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र् ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह्), भृगु (स्), अग्नि (र्), मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्रौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार)- से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र्) हों अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुसार)-से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर ङे विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः) यह (हौं हस्फ्रें ख्फ्रें हस्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः) बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमान्‌जी हैं। 'ह्सौं' बीज है, 'ह्स्फ्रें' शक्ति है। छः बीजोंसे षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय,

कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, दोनों जानु, दोनों चरण इनमें क्रमश: मन्त्रके बारह अक्षरोंका न्यास करे। छः बीज और दो पद इन आठोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा और चरणोंमें न्यास करे। तदनन्तर अञ्जनीनन्दन कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

**उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।**
**श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥**
**वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्।**

(९-१०)

उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्‌को क्षोभमें डालनेकी शक्ति रखते हैं, सुग्रीव आदि प्रमुख वानर वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर संलग्न हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं। ऐसे पवनकुमार हनुमान्‌जीका भजन करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके जितेन्द्रिय पुरुष बारह हजार मन्त्र-जप करे। फिर दही, दूध और घी मिलाये हुए धानकी दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें हनुमान्‌जीका आवाहन-स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारोंसे पूजन करे। केसरोंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके अष्टदल कमलके आठ दलोंमें हनुमान्‌जीके निम्नाङ्कित आठ नामोंकी पूजा करे—रामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविघ्नविनाशक। (**रामभक्ताय नमः, महातेजसे नमः, कपिराजाय नमः, महाबलाय नमः, द्रोणाद्रिहारकाय नमः, मेरुपीठार्चनकारकाय नमः, दक्षिणाशाभास्कराय नमः, सर्वविघ्नविनाशकाय नमः**) इस प्रकार नामोंकी पूजा करके दलोंके अग्रभागमें क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा मैन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् लोकपालों तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो मानव लगातार दस दिनोंतक रातमें नौ सौ मन्त्र-जप करता है, उसके राजभय और शत्रुभय नष्ट हो जाते हैं। एक सौ आठ बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया हुआ जल विषका नाश करनेवाला होता है। भूत, अपस्मार (मिरगी) और कृत्या (मारण आदिके प्रयोग)-से ज्वर उत्पन्न हो तो उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म अथवा जलसे क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त पुरुषपर प्रहार करे। ऐसा करनेपर वह मनुष्य तीन दिनमें ज्वरसे छूट जाता और सुख पाता है। हनुमान्‌जीके उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित औषध या जल खा-पीकर मनुष्य सब रोगोंको मार भगाता और तत्क्षण सुखी हो जाता है। उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको अपने अङ्गोंमें लगाकर अथवा उससे अभिमन्त्रित जलको पीकर जो मन्त्रोपासक युद्धके लिये जाता है, वह शस्त्रोंके समुदायसे पीड़ित नहीं होता। किसी शस्त्रसे कटकर घाव हुआ हो या फोड़ा फूटकर बहता हो, लूता (मकरी) रोग फूटा हो, तीन बार मन्त्र जपकर अभिमन्त्रित किये हुए भस्मसे उनपर स्पर्श कराते ही वे सभी घाव सूख जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ईशान कोणमें स्थित करंज नामक वृक्षकी जड़को ले आकर उसके द्वारा हनुमानजीकी अँगूठे बराबर प्रतिमा बनावे; फिर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके सिन्दूर आदिसे उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् उस प्रतिमाका मुख घरकी ओर करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे दरवाजेपर गाड़ दे। उससे ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा आदिके उपद्रव कभी उस घरमें नहीं आते और वह घर दीर्घकालतक प्रतिदिन धन-पुत्र आदिसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है।

विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अष्टमी या चतुर्दशीको मंगलवार या रविवारके दिन किसी तख्तेपर तैलयुक्त उड़दके बेसनसे हनुमान्‌जीकी सुन्दर तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित एक प्रतिमा बनावे। वाम भागमें तेलका और दाहिने भागमें घीका दीपक जलाकर रखे। फिर मन्त्रज्ञ पुरुष मूलमन्त्रसे उक्त प्रतिमामें हनुमान्‌जीका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा करके उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पण करे। लाल चन्दन, लाल फूल तथा सिन्दूर आदिसे उनकी पूजा करे। धूप और दीप देकर नैवेद्य निवेदन करे। मन्त्रवेत्ता उपासक मूलमन्त्रसे पूआ, भात, साग, मिठाई, बड़े, पकौड़ी आदि भोज्य पदार्थोंको घृतसहित समर्पित करके फिर सत्ताईस पानके पत्तोंको तीन-तीन आवृत्ति मोड़कर उनके भीतर सुपारी आदि रखकर मुख-शुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे ही अर्पण करे। मन्त्रज्ञसाधक इस प्रकार भलीभाँति पूजा करके एक हजार मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष कपूरकी आरती करके नाना प्रकारसे हनुमान्‌जीकी स्तुति करे और अपना अभीष्ट मनोरथ उनसे निवेदन करके विधिपूर्वक उनका विसर्जन करे। इसके बाद नैवेद्य लगाये हुए अन्नद्वारा सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और चढ़ाये हुए पानके पत्ते उन्हींको बाँटकर दे दे। विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमान्‌जीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्रभागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्यवस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे '**विमोचय विमोचय**' लिखे, लिखकर उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटावे। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुचि, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड)-की समिधाओंको तैलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार)-की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलाइची और लवंगकी आहुति दे। वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे। विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये। धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है। तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जानेपर आदि सभीमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है।

द्वादशाक्षर-मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (**हनुमते नमः**) हैं इनको और आदि बीज (हौं)-को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर-मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको

देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान् देवता कहे गये हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे। रामदूत, लक्ष्मण-प्राणदाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-विनाशन तथा लङ्काप्रासादभञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदिमें पाँच बीज और अन्तमें ङे विभक्ति लगायी जाती है। अन्तिम नामके साथ उक्त पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं[१]। इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर मन्त्रके समान ही हैं।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं) तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पाँच कूट (**ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्त्रौं, ह्स्ख्फ्रें, ह्सौं**) यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है। '**नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।**' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। '**आञ्जनेयाय नमः**' का हृदयमें, '**रुद्रमूर्तये नमः**' का सिरमें, '**वायुपुत्राय नमः**' का शिखामें, '**अग्निगर्भाय नमः**' का कवचमें, '**रामदूताय नमः**' का नेत्रोंमें तथा '**ब्रह्मास्त्राय नमः**' के अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास-विधि कही गयी है।

**ध्यान**

**तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।**
**चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥**

जिनकी दिव्य कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, जो भयका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने प्रभु (श्रीराम)-का चिन्तन करके उनके लिये अञ्जलि बाँध रखी है, जिनका सुन्दर मुख हिलते हुए कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहा है तथा जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, उन पवनकुमार हनुमान्‌जीका ध्यान करे।

इस प्रकार ध्यान करके दस हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिलसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त रीतिसे वैष्णव-पीठपर पूजन करे। प्रतिदिन केवल रातमें भोजनका नियम लेकर जितेन्द्रियभावसे एक सौ आठ बार जप करे तो मनुष्य छोटे-मोटे रोगोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। बड़े भारी रोगोंसे मुक्त होनेके लिये तो प्रतिदिन एक हजार जप करना चाहिये। सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मित्रता कराते हुए हनुमान्‌जीका ध्यान करके जो दस हजार मन्त्र-

१. यथा-'ह्स्फ्रें हनुमते नमः, हृदयाय नमः। ख्फ्रें रामभक्ताय नमः शिरसे स्वाहा। ह्स्त्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट्।' ह्स्ख्फ्रें अञ्जनीसुताय नमः कवचाय हुम्।' 'ह्सौं सीताशोकविनाशाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रेंह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जनाय नमः अस्त्राय फट्।'

जप करता है, वह परस्पर द्वेष रखनेवाले दो विरोधियोंमें संधि करा सकता है। जो यात्राके समय हनुमान्‌जीका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करता है, उसके बाद यात्रा करता है, वह शीघ्र ही अपना अभीष्ट-साधन करके घर लौट आता है। जो अपने घरमें मन्त्र-जप करते हुए सदा हनुमान्‌जीकी आराधना करता है, वह आरोग्य, लक्ष्मी तथा कान्ति पाता है और किसी प्रकारके उपद्रवमें नहीं पड़ता। वनमें यदि इस मन्त्रका स्मरण किया जाय तो यह व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं तथा चोर-डाकुओंसे रक्षा करता है। सोते समय शय्यापर एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे दुःस्वप्न और चोर आदिका भय कभी नहीं होता।

वियत् (ह) इन्दु (अनुस्वार)-से युक्त हो, उसके बाद '**हनुमते रुद्रात्मकाय**' ये दो पद हों, फिर वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) हो तो (**हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्**) यह बारह अक्षरोंका महामन्त्र होता है, जो अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, जगती छन्द, श्रीहनुमान्‌जी देवता, हं बीज और 'हुम्' शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीज (हां हीं हूं हैं हौं हः)-के द्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

**ध्यान**

**महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति॥**
**लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।**
**ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥**
**अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।**
**तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनिःस्वनम्॥**
**शैवरूपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्।**

(७४। १२२—१२५)

हनुमान्‌जी एक बहुत बड़ा पर्वत उखाड़कर रावणकी ओर दौड़ रहे हैं। वे लाक्षा (महावर)-के रंगके समान अरुणवर्ण हैं। काल, अन्तक तथा यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अंगद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्रस्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवावतार भगवान् हनुमान्‌जीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूल मन्त्रसे मूर्ति-कल्पना करके हनुमान्‌जीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्रका साधन बतलाता हूँ। हनुमान्‌जीका साधन पुण्यमय है, वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रातःकाल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास सब कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्र-पात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमान्‌जीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमलके केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र)-का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधोंका पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध कर सकता है।

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, श्वास, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रखे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमान्‌जीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ़ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमान्‌जी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं; वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; क्योंकि गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगोंका भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार)-युक्त वियत् (ह) अर्थात् 'हं' के पश्चात् ङे विभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (**हं पवननन्दनाय स्वाहा**) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

### ध्यान

**ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।**
**धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥**
**लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।**
**गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥**
**हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।**
**आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥**

(७४। १४५—१४७)

लङ्काकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमान्‌जी तुरन्त उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वेगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्डव्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित किये देते हैं। इस प्रकार युद्ध-भूमिमें हनुमान्‌जीका चिन्तन करना चाहिये।

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ मन्त्रका साधन भी गोपनीय रहस्य ही है। सब तन्त्रोंमें इसे अत्यन्त गोप्य बताया गया है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौचादि नित्यकर्म करके पवित्र हो नदीके तटपर जाकर तीर्थके आवाहनपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय आठ बार मूलमन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् बारह बार मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़के। इस प्रकार स्नान, संध्या, तर्पण आदि करके गङ्गाजीके तटपर, पर्वतपर अथवा वनमें भूमिग्रहणपूर्वक अकारादि स्वरवर्णोंका उच्चारण करके पूरक, 'क' से लेकर 'म' तकके पाँचवर्गके अक्षरोंसे कुम्भक तथा 'य' से लेकर अवशेष वर्णोंका उच्चारण करके रेचक करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम करके भूत-शुद्धिसे लेकर पीठन्यासतकके सब कार्य करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे कपीश्वर हनुमान्‌जीका ध्यान और पूजन करके उनके आगे बैठकर साधक प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार मन्त्र-जप करे। सातवें दिन विशेषरूपसे पूजन करे। उस दिन मन्त्रसाधक एकाग्रचित्तसे दिन-रात जप करे। रातके तीन पहर बीत जानेपर चौथे पहरमें महान् भय दिखाकर कपीश्वर पवननन्दन हनुमान्‌जी अवश्य साधकके सम्मुख पधारते हैं और उसे अभीष्ट वर देते हैं। साधक अपनी रुचिके अनुसार विद्या, धन, राज्य अथवा विजय तत्काल प्राप्त कर लेता है। यह सर्वथा सत्य है, इसमें संशयका लेश भी नहीं है। वह इहलोकमें सम्पूर्ण कामनाओंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सद्योजात (ओ)-सहित दो वायु (य् य्-यो यो) 'हनुमन्त' का उच्चारण करे। फिर 'फल' के अन्तमें 'फ' तथा नेत्र (इ) युक्त क्रिया (ल) एवं कामिका (त)-का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'धग्गधगित' बोलकर 'आयुराष' पदका उच्चारण करे, तदनन्तर लोहित (प) तथा 'रुडाह' का उच्चारण करना चाहिये। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ यो यो हनूमन्त फलफलित धग्गधगित आयुराष परुडाह**') यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इसके भी ऋषि आदि पूर्वोक्त ही हैं। 'प्लीहा' रोग दूर करनेवाले वानरराज हनुमान्‌जी इसके देवता कहे गये हैं। 'प्लीहा' रोगसे युक्त पेटपर पानका पत्ता रखे, उनके ऊपर आठ पर्व लपेटा हुआ वस्त्र रखकर उसे ढक दे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक हनुमान्‌जीका स्मरण करके उस वस्त्रके ऊपर एक बाँसका टुकड़ा डाल दे। इसके बाद बेरके वृक्षकी लकड़ीसे बनी हुई छड़ी लेकर उसे जंगली पत्थरसे प्रकट हुई आगमें मन्त्रसे सात बार तपावे, फिर उस छड़ीसे पेटपर रखे हुए बाँसके टुकड़ेपर सात बार प्रहार करे। इससे मनुष्योंका प्लीहा रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

'**ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय अमुकस्य शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा।**'

यह एक मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, शृङ्खलामोचक पवनपुत्र श्रीमान् हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है। बन्धनसे छूटनेके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वर तथा रेफयुक्त बीजमन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे (यथा—**ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा** इत्यादि)।

**ध्यान**

**वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टङ्कमन्यतः।**
**दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत् कुण्डलिनं हरिम्॥**

(७४। १६९-१७०)

'बायें हाथमें वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला पर्वत तथा दायें हाथमें विशुद्ध टंक धारण करनेवाले, सुवर्णके समान कान्तिमान्, कुण्डल-मण्डित वानरराज हनुमान्जीका ध्यान करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मन्त्रका जप तथा आम्र-पल्लवसे दशांश हवन करे। विद्वानोंने इसके पूजन आदिकी विधि पूर्ववत् बतायी है। महान् कारागारमें पड़ा हुआ मनुष्य दस हजार जप करे। इससे वह कारागारसे मुक्त हो अवश्य सुखका भागी होता है।

अब मैं बन्धनसे छुड़ानेवाले शुभ हनुमत्-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। अष्टदल कमलके भीतर षट्कोण बनावे। उसकी कर्णिकामें साध्य पुरुषका नाम लिखे। छः कोणोंमें '**ॐ आञ्जनेयाय**' का उल्लेख करे। आठों दलोंमें '**ॐ वातु-वातु**' लिखे। गोरोचन और कुङ्कुमसे यह उत्तम मन्त्र लिखकर मस्तकपर धारण करके बन्धनसे छूटनेके लिये उक्त मन्त्रका दस हजार जप करे। इस मन्त्रको प्रतिदिन मिट्टीपर लिखकर मन्त्रज्ञ पुरुष दाहिने हाथसे मिटावे। बारह बार लिखने और मिटानेसे मन्त्राराधक महान् कारागारसे छुटकारा पा जाता है। गगन (ह) नेत्र (इ)-युक्त ज्वलन (र) अर्थात् 'हरि' पदके पश्चात् दो बार 'मर्कट' शब्द बोलकर शेष (आ)-सहित तोय (व) अर्थात् 'वा' का उच्चारण करके 'मकरे' पद बोले। फिर '**परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्**' का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—***हरि मर्कट मर्कट वाम करे* परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्**) यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। विद्वान् पुरुष इस मन्त्रको दायें हाथमें बायें हाथसे लिखकर मिटा दे और एक सौ आठ बार इसका जप करे। ऐसा करनेपर कैदमें पड़ा हुआ मनुष्य तीन सप्ताहमें छूट जाता है। इसमें संशय नहीं है। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् हैं। पूजन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे। इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये। मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार कपीश्वर वायुपुत्र हनुमान्जीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। अञ्जनीनन्दन हनुमान्जीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं। सिद्धि तथा विजय देते हैं।

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—अब मैं हनुमान्जीके लिये रहस्यसहित दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ। जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है। दीपपात्रका प्रमाण, तैलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती)-का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा। स्थानभेद-मन्त्र, पृथक्-पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा। पुष्पसे वासित तैलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला माना गया है। किसी पथिकके आनेपर उसकी सेवाके लिये तिलका तैल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मीप्राप्तिका कारण होता है। सरसोंका तेल

रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है। गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पञ्चधान्य कहे गये हैं। हनुमान्‌जीके लिये सदा इनका दीप देना चाहिये। पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है। वह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है।

सन्धिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मीप्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्याप्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है। सख्य सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये। इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है। आठ मुट्ठीका एक किञ्चित् होता है, आठ किञ्चित्‌का एक पुष्कल होता है। चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है। दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका आढक होता है। चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है। इस क्रमसे षट्कर्मोपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये। पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलसे जलनेवाले दीपकका कोई मान नहीं है। उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है। तैलोंके नित्य पात्रमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है। सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें डुबोकर रखे। फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये। पीसे हुएको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये। उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनावे। जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे। मङ्गलवारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे। कूट बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य हैं। पात्रके लिये कोई नियम नहीं है। मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये। हनुमान्‌जीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है। कूटकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये। गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है। नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है। अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रखे। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमान्‌जीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिवमन्दिरमें दीपदान कराना चाहिये।

हनुमान्‌जीके दीपदानमें जो कोई विशेष बात है उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ। देव-प्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसरपर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, गृहोंमें और चौराहोंपर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये। स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्रामशिलाके निकट हनुमान्‌जीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है। विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमान्‌जीके उद्देश्यसे दीपदान करे। भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये। बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है। सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और बड़के मूलभागमें दीप देना चाहिये। भयनिवारण और विवाद-शान्तिके लिये, गृहसंकट और युद्ध-संकटकी निवृत्तिके लिये तथा विष, व्याधि और

ज्वरको उतारनेके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुएको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये, सदाके लिये बन्धनसे छूटनेके लिये, पथिकके आगमनमें, आने-जानेके मार्गमें तथा राजद्वारपर हनुमान्‌जीके लिये दीपदान आवश्यक बताया गया है। ग्यारह, इक्कीस और पिण्ड—तीन प्रकारका मण्डलमान होता है। पाँच, सात अथवा नौ—इन्हें लघुमान कहा गया है। दीपदानके समय दूध, दही, माखन अथवा गोबरसे हनुमान्‌जीकी प्रतिमा बनानेका विधान किया गया है। सिंहके समान पराक्रमी वीरवर हनुमान्‌जीको दक्षिणाभिमुख करके उनके पैरको रीछपर रखा हुआ दिखावे। उनका मस्तक किरीटसे सुशोभित होना चाहिये। सुन्दर वस्त्र, पीठ अथवा दीवारपर हनुमान्‌जीकी प्रतिमा अङ्कित करनी चाहिये। कृत्यादिमें तथा नित्य दीपमें द्वादशाक्षर-मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गोबरसे लिपी हुई भूमिपर एकाग्रचित्त हो षट्कोण अङ्कित करे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल बनावे तथा उसके भी बाह्यभागमें भूपुर-रेखा खींचे। उस कमलमें दीपक रखे। शैव अथवा वैष्णव पीठकर अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीकी पूजा करे। छः कोणोंके अन्तरालमें '**ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं हस्ख्फ्रें हसौं,**' इन छः कूटोंका उल्लेख करे। छहों कोणोंमें बीजसहित छः अङ्गोंको लिखे। मध्यमें सौम्यका उल्लेख करे और उसीमें पवननन्दन हनुमान्‌जीकी पूजा करके छः कोणोंमें छः अङ्गों तथा छः नामोंकी पहले बताये अनुसार पूजा करे। कमलके अष्टदलोंमें क्रमशः इन वानरोंकी पूजा करनी चाहिये—'**सुग्रीवाय नमः, अङ्गदाय नमः, सुषेणाय नमः, नलाय नमः, नीलाय नमः, जाम्बवते नमः, प्रहस्ताय नमः, सुवेषाय नमः।**' तत्पश्चात् षडङ्ग देवताओंका पूजन करे। '**अञ्जनापुत्राय नमः, रुद्रमूर्तये नमः, वायुसुताय नमः, जानकीजीवनाय नमः, रामदूताय नमः, ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नमः।**' पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य)-से इन सबका पूजन करके कुश और जल हाथमें लेकर देश-कालके उच्चारणपूर्वक दीपदानका संकल्प करे। उसके बाद दीप-मन्त्र बोले। श्रेष्ठ साधक उत्तराभिमुख हो उस मन्त्रको कूट संख्याके बराबर (छः बार) जप कर हाथमें लिये हुए जलको भूमिपर गिरा दे। तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर यथाशक्ति मन्त्र-जप करे। फिर इस प्रकार कहे—'हनुमान्‌जी! उत्तराभिमुख अर्पित किये हुए इस श्रेष्ठ दीपकसे प्रसन्न होकर आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायँ।'

इस प्रकार ये तेरह द्रव्य उपयुक्त होते हैं—गोबर, मिट्टी, मषी, आलता, सिंदूर, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दूध, मक्खन और घी। गोबर दो प्रकारके बताये गये हैं—गायका और भैंसका। खोये हुए द्रव्यकी पुनः प्राप्तिके लिये दीपदान करना हो तो उसमें भैंसके गोबरका उपयोग आवश्यक माना गया है। मुने! दूर देशमें गये हुए पथिकके आगमन, महादुर्गकी रक्षा, बालक आदिकी रक्षा, चोर आदिके भयका नाश आदि कार्योंमें गायका गोबर उत्तम कहा गया है। वह भी भूमिपर पड़ा हो तो नहीं लेना चाहिये। जब गाय गोबर कर रही हो तो किसी पात्रमें आकाशमेंसे ही उसे रोक लेना चाहिये।

मिट्टी चार प्रकारकी कही गयी है—सफेद, पीली, लाल और काली। उनमें गोपीचन्दन, हरिताल, गेरू आदि ग्राह्य हैं; अन्य सब द्रव्य प्रसिद्ध एवं सबके लिये सुपरिचित हैं। विद्वान् पुरुष गोपीचन्दनसे चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें भैंसके गोबरसे हनुमान्‌जीकी मूर्ति बनावे। मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो बीज और क्रोध (हुं)-से उनकी पूँछ अङ्कित करे। तेलसे

मूर्तिको नहलाये और गुडसे तिलक करे। कमलके समान रंगवाला धूप, जो शालवृक्षकी गोंदसे बना हो, निवेदन करे। पाँच बत्तियोंके साथ तेलका दीपक जलाकर अर्पण करे। इसके बाद (हाथ धोकर) श्रेष्ठ साधक दही-भातका नैवेद्य निवेदन करे। उस समय वह तीन बार शेष (आ)-सहित विष (म्)-का उच्चारण करे[१]। ऐसा करनेपर खोयी हुई भैंसों, गौओं तथा दास-दासियोंकी भी प्राप्ति हो जाती है। चोर आदि दुष्ट जीवों तथा सर्प आदिका भय प्राप्त होनेपर 'ताल' से चार दरवाजेका सुन्दर गृह बनावे। पूर्वके द्वारपर हाथीकी मूर्ति बिठावे और दक्षिण द्वारपर भैंसेकी, पश्चिम द्वारपर सर्प और उत्तर द्वारपर व्याघ्र स्थापित करे। इसी प्रकार क्रमसे पूर्वादि द्वारोंपर खड्ग, छुरी, दण्ड और मुद्गर अङ्कित करके मध्य भागमें भैंसके गोबरसे मूर्ति बनावे। उसके हाथमें डमरू धारण करावे और यत्नपूर्वक यह चेष्टा करे कि मूर्तिसे ऐसा भाव प्रकट हो मानो वह चकित नेत्रोंसे देख रही है। उसे दूधसे नहलाकर उसके ऊपर लाल चन्दन लगाये। चमेलीके फूलोंसे उसकी पूजा करके शुद्ध धूपकी गन्ध दे। घीका दीपक देकर खीरका नैवेद्य अर्पण करे। गगन (ह), दीपिका (ऊ) और इन्दु (अनुस्वार) अर्थात् 'हूं' और शस्त्र (फट्) यह आराध्यदेवताके आगे जपे। इस प्रकार सात दिन करके मनुष्य भारी भयसे मुक्त हो जाता है। उक्त दोनों प्रयोगोंका प्रारम्भ मङ्गलवारके दिन आदरपूर्वक करना चाहिये। शत्रुसेनासे भय प्राप्त होनेपर गेरूसे मण्डल बनाकर उसके भीतर थोड़ा झुका हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमान्‌जीकी प्रतिमा गोबरसे बनावे। उनके बायें हाथमें तालका अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञान-मुद्रा हो। ताड़की जडसे एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनावे। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयमें अञ्जलि बाँधे बैठी हो। जलसे उसको स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित खिचड़ीका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि' का जप बताया गया है। प्रतिदिन ऐसा ही करे। ऐसा करनेपर पथिकोंका शीघ्र समागम होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमान्‌जीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगला हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। **'तार (ॐ) नमो हनुमते'** इतना कहकर तीन बार जाठर (म)-का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कह-कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्म-तत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा)-का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—**ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा**) यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ

१. 'मा मा मा' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिये।

मुनि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमान् देवता हैं। सात-सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

**जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।**
**अध्यात्मचित्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥**
**बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।**

(७५। ९५-९६)

'हनुमान्‌जीका बायाँ हाथ घुटनेपर रखा हुआ है। दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृतसहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठपर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमान्‌जीका पूजन करे। यह मन्त्र-जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ।'**ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।**' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान् देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

**ध्यान**

**आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।**
**पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥**

(७५। १०२)

'जिसका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष)-के नीचे उसके मूलभागमें बैठे हुए हैं, उन अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ साधक चिन्तन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और मधु, घी एवं शक्कर मिलाये हुए तिलसे दशांश होम करे। विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त पीठपर पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। मन्त्रोपासक इस मन्त्रद्वारा यदि ग्रहग्रस्त पुरुषको झाड़ दे तो वह ग्रह चीखता-चिल्लाता हुआ उस पुरुषको छोड़कर भाग जाता है। इन मन्त्रोंको सदा गुप्त रखना चाहिये। जहाँ-तहाँ सबके सामने इन्हें प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। खूब जाँचे-बूझे हुए शिष्यको अथवा अपने पुत्रको ही इनका उपदेश करना चाहिये। (ना० पूर्व० ७४-७५)

## भगवान् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी मन्त्रोंकी अनुष्ठानविधि तथा विविध प्रयोग

**सनत्कुमारजीने कहा—नारद!** अब मैं भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले श्रीकृष्ण-मन्त्रोंका वर्णन करूँगा; काम (क्लीं) 'ङे' विभक्त्यन्त कृष्ण और गोविन्द पद (**कृष्णाय गोविन्दाय**) फिर '**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' (**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है, जिसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गाजी हैं। इस मन्त्रके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, परमात्मा श्रीकृष्ण देवता, क्लीं बीज और स्वाहा शक्ति है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। श्रेष्ठ साधक ऋषिका सिरमें, छन्दका मुखमें, देवताका हृदयमें बीजका गुह्यमें और शक्तिका चरणोंमें न्यास करे[1]। मन्त्रके चार, चार, चार, चार और दो अक्षरोंसे पञ्चाङ्ग-न्यास[2] करके फिर तत्त्व-न्यास करे। तत्पश्चात् हृदयकमलमें क्रमशः द्वादशकलाव्याप्त सूर्यमण्डल, षोडशकलाव्याप्त चन्द्रमण्डल तथा दशकलाव्याप्त अग्निमण्डलका न्यास करे। साथ ही मन्त्रके पदोंमें स्थित आठ, आठ और दो अक्षरोंका भी क्रमशः उन मण्डलोंके साथ योग करके उन सबका हृदयमें न्यास करे (यथा—**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः, गोपीजनवल्लभाय ॐ षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः स्वाहा, मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः—हृत्पुण्डरीके**)। तत्पश्चात् आकाशादिके स्थलोंमें अर्थात् मूर्द्धा, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणोंमें क्रमशः वासुदेव आदिका न्यास करे। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण—ये वासुदेव आदि कहलाते हैं। ये क्रमशः परमेष्ठी आदिसे युक्त हैं। परमेष्ठि पुरुष, शौच, विश्व, निवृत्ति तथा सर्व—ये परमेष्ठ्यादि कहे गये हैं। परमेष्ठि पुरुष आदि क्रमशः श्वेतवर्ण, अनिलवर्ण, अग्निवर्ण, अम्बुवर्ण तथा भूमिवर्णके हैं। इन सबका पूर्ववत् न्यास करे (यथा—**श्वेतवर्णपरमेष्ठिपुरुषात्मने वासुदेवाय नमः मूर्द्धनि। अनिलवर्णशौचात्मने सङ्कर्षणाय नमः मुखे। अग्निवर्णविश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः हृदये। अम्बुवर्णनिवृत्त्यात्मनेऽनिरुद्धाय नमः गुह्ये। भूमिवर्णसर्वात्मने नारायणाय नमः पादयोः।**) **ॐ क्ष्रौं कोपतत्त्वात्मने नृसिंहाय नमः इति सर्वाङ्गे।** इस प्रकार सम्पूर्ण अङ्गमें न्यास करे। यह तत्त्व-न्यास कहा गया है। इसी प्रकार श्रेष्ठ साधकोंको यह जानना चाहिये कि वासुदेव आदि नामोंका 'ङे' विभक्त्यन्त रूप ही न्यासमें ग्राह्य है। तदनन्तर मन्त्रज्ञ पुरुष मूलमन्त्रको चार बार पढ़कर पूरक, छः बार पढ़कर कुम्भक और दो बार पढ़कर रेचक करते हुए प्राणायाम सम्पन्न करे। कुछ आचार्योंका यहाँ यह कथन है कि प्राणायामके पश्चात् पीठन्यास करके दूसरे न्यासोंका अनुष्ठान करे। आगे बतायी जानेवाली विधिके अनुसार दशतत्त्वादि न्यास करके विद्वान् पुरुष मूर्तिपञ्जर नामक न्यास करे। फिर किरीटमन्त्रद्वारा बुद्धिमान् साधक सर्वाङ्गमें व्यापक न्यास करके प्रणवसम्पुटित मन्त्रको तीन बार दोनों हाथोंकी पाँचों अंगुलियोंमें व्यास (विन्यस्त) करे। उसके बाद तीन बार पञ्चाङ्ग-न्यास करे। तदनन्तर मूलमन्त्रको पढ़कर सिरसे लेकर पैरतक व्यापक-न्यास करे।

---

१. नारदर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमः हृदि, क्लींबीजाय नमः गुह्ये, स्वाहाशक्तये नमः पादयोः—यह ऋष्यादि न्यास है।

२. पञ्चाङ्ग-न्यास इस प्रकार है—क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः। गोविन्दाय शिरसे स्वाहा। 'गोपीजन' शिखायै वषट्, 'वल्लभाय' कवचाय हुं, 'स्वाहा' अस्त्राय फट्।

फिर केवल प्रणवद्वारा एक बार व्यापक-न्यास करके मन्त्र-न्यास करे। इसके बाद पुनः नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य और चरणद्वय—इनमें क्रमशः मन्त्रके पाँच पदोंका अन्तमें 'नमः' लगाकर न्यास करे (यथा—**क्लीं नमः नेत्रद्वये। कृष्णाय नमः मुखे। गोविन्दाय नमः हृदये। गोपीजनवल्लभाय नमः गुह्ये। स्वाहा नमः पादयोः**)। पुनः ऋषि आदि न्यास करके पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

अब मैं सब न्यासोंमें उत्तमोत्तम परमगुह्य न्यासका वर्णन करता हूँ, जिसके विज्ञान मात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त तथा अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है, जिसकी आराधनासे मन्त्रोपासक श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। प्रणवादि व्याहृतियोंसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित प्रणवादिका तथा गायत्रीसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित गायत्रीका मातृकास्थलमें न्यास करे। मातृका-सम्पुटित मूलका और मूलसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका श्रेष्ठ साधक क्रमशः न्यास करे। विद्वान् पुरुष पहले मातृका वर्णोंका नियतस्थलमें न्यास कर ले। उसके बाद पूर्वोक्त न्यास करने चाहिये। इस तरह उपर्युक्त छः प्रकारके न्यास करे। यह षोढान्यास कहा गया है। इस श्रेष्ठ न्यासके अनुष्ठानसे साधक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो जाता है। न्याससे सम्पुटित पुरुषको देखकर सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर और देवता भी उसे नमस्कार करते हैं। फिर इस भूतलपर मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है? तत्पश्चात् '**ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्**' इस मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। इसके बाद अपने हृदयमें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले इष्टदेवका इस प्रकार ध्यान करे—

**उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः।**
**सस्मेरमञ्जरीवृन्दवल्लीवेष्टितैः शुभैः॥**
**गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखैः।**
**स्मरेच्छिशिरितं वृन्दावनं मन्त्री समाहितः॥**
**उन्मीलन्नवकञ्जालि विगलन्मधुसञ्चयैः।**
**लुब्धान्तःकरणैर्गुञ्जद्द्विरेफपटलैः शुभम्॥**
**मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः।**
**मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमञ्जुलम्॥**
**कालिन्द्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मन्दवाहिभिः।**
**उन्निद्राम्बुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः॥**
**प्रदीपितस्मरैर्गोष्ठसुन्दरीमृदुवाससाम्।**
**विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरन्तरम्॥**
**स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम्।**
**तदधः स्वर्णवेद्यां च रत्नपीठमनुत्तमम्॥**
**रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत्।**
**अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम्॥**
**फुल्लेन्दीवरकान्तं च केकिबर्हावतंसकम्।**
**पीतांशुकं चन्द्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम्॥**
**कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम्।**
**व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम्॥**
**गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयन्तं स्मरेत्सुधीः।**
(४०—५०)

'मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त होकर श्रीवृन्दावनका चिन्तन करे, जो शुभ एवं सुन्दर हरे-भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण तथा शीतल है। उन वृक्षोंकी शाखाएँ खिले हुए कुसुम-समूहोंके भारसे झुकी हुई हैं। उनपर प्रफुल्ल मञ्जरियोंसे युक्त विकसित लतावल्लरियाँ फैली हुई हैं। वे वृक्ष झड़ते हुए पुष्पपरागरूप धूमिकणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करते रहते हैं, वहाँ खिलते हुए नूतन कमल-वनोंसे निकलती मधुधाराओंके संचयसे लुभाये अन्तःकरणवाले भ्रमरोंका समुदाय मनोहर गुञ्जार करता रहता है। हंस, कोकिल, शुक और पारावत आदि पक्षियोंका समूह बारम्बार कलरव करते हुए वृन्दावनको कोलाहलपूर्ण किये रहता है। चारों ओर नृत्य करते मोरोंके झुंडसे वह वन अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है। कालिन्दीकी

चञ्चल लहरोंसे नीर-बिन्दुओंको लेकर मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली शीतल सुखद वायु प्रफुल्ल पङ्कजोंके पराग-पुञ्जसे धूसर हो रही है। व्रजसुन्दरियोंके मृदुल वसनाञ्चलोंको वह चञ्चल किये देती है और इस प्रकार मनमें प्रेमोन्मादका उद्दीपन करती हुई वह मन्द वायु वृन्दावनका निरन्तर सेवन करती रहती है। उस वनके भीतर एक अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जिसके नीचे सुवर्णमयी वेदीपर परम उत्तम रत्नमय पीठ शोभा पाता है। वहाँकी प्राङ्गण-भूमि भी रत्नोंसे आबद्ध है। उस रत्नमय पीठपर लाल रंगके अष्टदलकमलकी भावना करे, जिसके मध्यभागमें श्रीमुकुन्द विराजमान हैं। उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अङ्ग-कान्ति विकसित नील कमलके समान श्याम है। वे मोर-पङ्खका मुकुट पहने हुए हैं, कटिभागमें पीताम्बर शोभा पा रहा है। उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है, नेत्र खिले हुए कमलोंकी शोभा छीने लेते हैं, उनका सम्पूर्ण अङ्ग कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। वे परम सुन्दर दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं, व्रजसुन्दरियाँ मानो अपने नेत्रकमलोंके उपहारसे उनकी पूजा करती हैं, गौएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं। गोपवृन्द उनके साथ हैं और वे वंशी बजा रहे हैं। विद्वान् पुरुष भगवान्‌का चिन्तन करे।'

बुद्धिमान् साधक इस तरह ध्यान करके पहले बीस हजार मन्त्र-जप करे। फिर एकाग्रचित्त हो अरुण कमल-कुसुमोंकी दशांश आहुति दे। तत्पश्चात् समाहित होकर मन्त्र-सिद्धिके लिये पाँच लाख जप करे। लाल कमलोंकी आहुति देकर साधक सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। पूर्वोक्त वैष्णव पीठपर मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके उसमें गोपीजनमनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। मुखमें वेणुकी पूजा करके, वक्षःस्थलमें वनमाला, कौस्तुभ तथा श्रीवत्सका पूजन करे। इसके बाद पुष्पाञ्जलि चढ़ावे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् उपासक देवेश्वर श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उनके दक्षिणभागमें श्वेतचन्दनचर्चित श्वेत तुलसीको तथा वामभागमें रक्तचन्दनचर्चित लाल तुलसीको समर्पित करे। इसके बाद दो अश्वमार (कनेर) पुष्पोंसे उनके हृदय और मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर शीर्षभागमें विधिपूर्वक दो कमलपुष्प समर्पित करे। तत्पश्चात् उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें दो तुलसीदल, दो कमलपुष्प और दो अश्वमार (श्वेत-रक्त कनेर) कुसुम चढ़ाकर फिर सब प्रकारके पुष्प अर्पण करे। गोपाल श्रीकृष्णके दक्षिणभागमें अविनाशी निर्मल चैतन्यस्वरूप भगवान् वासुदेवका तथा वामभागमें रजोगुणस्वरूपा नित्य अनुरक्ता रुक्मिणी देवीका पूजन करे। इस प्रकार गोपालका भलीभाँति पूजन करके आवरण देवताओंकी पूजा करे। दाम, सुदाम, वसुदाम और किंकिणी—इनका क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरमें पूजन करे। दाम आदि शब्दोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'ङे' विभक्ति तथा 'नमः' पद जोड़ने चाहिये। (यथा— ॐ दामाय नमः इत्यादि, यदि दाम शब्द नान्त हो तो 'दाम्ने नमः' यह रूप होगा) अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान कोणोंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा तथा कवचका पूजन करके सम्पूर्ण दिशाओंमें अस्त्रोंका पूजन करे। फिर आठों दलोंमें रुक्मिणी आदि पटरानियोंकी पूजा करे। रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्निजिती, सुविन्दा, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला[1]। ये सब-की-सब सुन्दर, सुरम्य एवं विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं। तदनन्तर अष्टदलोंके

१. अन्यत्र सुशीला और सुविन्दाके स्थानमें भद्रा और कालिन्दी—ये दो नाम उपलब्ध होते हैं।

अग्रभागमें वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा, बलभद्र-सुभद्रा तथा गोप और गोपियोंका पूजन करे। इन सबके मन, बुद्धि तथा नेत्र गोविन्दमें ही लगे हुए हैं। दोनों पिता वसुदेव और नन्द क्रमशः पीत और पाण्डु वर्णके हैं। माताएँ (देवकी और यशोदा) दिव्य हार, दिव्य वस्त्र, दिव्याङ्गराग तथा दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। दोनोंने चरु तथा खीरसे भरे हुए पात्र ले रखे हैं। देवकीका रंग लाल है और यशोदाका श्याम। दोनोंने सुन्दर हार और मणिमय कुण्डलोंसे अपनेको विभूषित किया है। बलरामजी शङ्ख तथा चन्द्रमाके समान गौरवर्णके हैं। वे मूसल और हल धारण करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर नीले रंगका वस्त्र सुशोभित होता है। हलधरके एक कानमें कुण्डल शोभा पाता है। भगवान्‌की जो श्यामला कला है, वही भद्रस्वरूपा सुभद्रा है। उसके आभूषण भी भद्र (मङ्गल)-रूप हैं। सुभद्राजीके एक हाथमें वर और दूसरेमें अभय है। वे पीताम्बर धारण करती हैं। गोपगणोंके हाथमें वेणु, वीणा, सोनेकी छड़ी, शङ्ख और सींग आदि हैं। गोपियोंके करकमलोंमें नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। इन सबके बाह्यभागमें मन्दार आदि कल्पवृक्षोंकी पूजा करे। मन्दार, सन्तान, पारिजात, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन (ये ही उन वृक्षोंके नाम हैं)। उक्त पाँच वृक्षोंसे चारकी चारों दिशाओंमें और एककी मध्यभागमें पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पालों और उनके वज्र आदि अस्त्रोंकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रीकृष्णके आठ नामोंद्वारा उनका यजन करना चाहिये। वे नाम इस प्रकार हैं—कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नारायण, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, धर्मपालक तथा असुराक्रान्त-भूभारहारी। विद्वान् पुरुषोंको सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये तथा संसार-सागरसे पार होनेके लिये इन आवरणोंसहित असुरारि श्रीकृष्णकी आराधना करनी चाहिये।

अब मैं भगवान् श्रीकृष्णके त्रिकाल पूजनका वर्णन करता हूँ, जो समस्त मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है।

## प्रातःकालिक ध्यान

श्रीमदुद्यानसंवीतहेमभूरत्नमण्डपे ॥
लसत्कल्पद्रुमाधःस्थरत्नाब्जपीठसंस्थितम् ।
सुत्रामरत्नसंकाशं गुडस्निग्धालकं शिशुम् ॥
चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलं
सुघोणधरमद्भुतस्मितमुखाम्बुजं सुन्दरम् ।
स्फुरद्विमलरत्नयुक्कनकसूत्रनद्धं दधत्-
सुवर्णपरिमण्डितं सुभगपौण्डरीकं नखम् ॥
समुद्धूसरोरःस्थले धेनुधूल्या
सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम् ।
कटीरस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मं
पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥
हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
दधानं करे दक्षिणे पायसान्नं
सुहैयंगवीनं तथा वामहस्ते ॥
लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्ये
स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चिताङ्घ्रिम् ।
महीभारभूतामरारातियूथां-
स्ततः पूतनादीन् निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥

(ना० पूर्व० ८०। ७५—८०)

'एक सुन्दर उद्यानसे घिरी हुई सुवर्णमयी भूमिपर रत्नमय मण्डप बना हुआ है। वहाँ शोभायमान कल्पवृक्षके नीचे स्थित रत्ननिर्मित कमलयुक्त पीठपर एक सुन्दर शिशु विराजमान है; जिसकी अङ्गकान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम है। उसके काले-काले केश चिकने और घुँघराले हैं। उसके मनोहर कपोल हिलते हुए स्वर्णमय कुण्डलोंसे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, उसकी नासिका बड़ी सुघड़ है। उस सुन्दर बालकके मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी अद्भुत छटा छा रही है। वह सोनेके तारमें गुँथा और सोनेसे ही मँढ़ा हुआ सुन्दर बघनखा धारण करता है, जिसमें परम उज्ज्वल चमकीले रत्न जड़े हुए हैं। गोधूलिसे धूसर वक्ष:स्थलपर धारण किये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे उसकी दीप्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसका एक-एक अङ्ग अत्यन्त पुष्ट है। उसकी दोनों पिण्डलियोंका अन्तिम भाग अत्यन्त मनोहर है। उसने अपने कटिभागमें घुँघरूदार करधनीकी लड़ बाँध रखी है, जिससे मधुर झनकार होती रहती है। खिले हुए बन्धुजीव (दुपहरिया)-के फूलकी अरुण प्रभासे युक्त करारविन्द और चरणारविन्दोंकी उदार कान्तिसे सुशोभित वह शिशु मन्द-मन्द हँस रहा है। उसने दाहिने हाथमें खीर और बायें हाथमें तुरन्तका निकाला हुआ माखन ले रखा है। ग्वालों, गोपसुन्दरियों और गौओंकी मण्डलीमें स्थित होकर वह बड़ी शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवता उसके चरणोंकी समाराधना करते हैं। वह पृथ्वीके भारभूत दैत्यसमुदाय पूतना आदिका संहार करनेमें लगा है।'

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो भगवान्‌का पूजन करे। दही और गुड़का नैवेद्य लगाकर एक हजार मन्त्र-जप करे। इसी प्रकार मध्याह्नकालमें नारदादि मुनिगणों और देवताओंसे पूजित विशिष्ट रूपधारी भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे।

## मध्याह्नकालिक ध्यान

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम्।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च॥
चलत्कुण्डलोल्लासिगण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम्।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणत्किङ्किणीजालमात्तानुलेपम्॥
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम्।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै॥

(ना० पूर्व० ८० । ८३—८५)

'जो सुन्दर गोप, गोपाङ्गनाओं तथा गौओंके मध्य विराजमान हैं, स्निग्ध मेघके समान जिनकी श्याम छवि है, जिनका एक-एक अङ्ग बहुत सुन्दर है, जो मयूरपिच्छका मुकुट धारण करते हैं, जिनके

नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं, भौंहोंका मध्यभाग शोभासम्पन्न है और मुख पूर्ण चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है, हिलते और झलमलाते हुए कमनीय कुण्डलोंसे उल्लसित कपोलोंपर जो शोभाको राशि धारण करते हैं, जिनकी नासिका मनोहर है, जो मन्द-मन्द हँसते हुए बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं; जिनका वस्त्र तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् और आभूषण दिव्य हैं, कटिभागमें धारण की हुई जिनकी क्षुद्र घण्टिकाओंसे मधुर झनकार हो रहा है, जिन्होंने दिव्य अङ्गराग धारण किया है, जो अपने हाथमें लेकर मुरली बजा रहे हैं, जिनके बायें हाथमें शङ्ख और दाहिने हाथमें छड़ी है, जिनकी वेश-भूषासे उदारता टपक रही है, जो मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेमें दक्ष हैं, उन नन्दनन्दन श्रीकृष्णका ध्यान करके लक्ष्मीप्राप्तिके लिये उनका पूजन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष पूर्ववत् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। पूआ, खीर तथा अन्य भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका नैवेद्य अर्पण करे। घृतयुक्त खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर प्रत्येक दिशामें उसीसे बलि अर्पण करे। तत्पश्चात् आचमन करे। इसके बाद एक हजार आठ बार उत्तम मन्त्र-जप करे। जो उत्तम वैष्णव मध्याह्नकालमें इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, उसे सब देवता प्रणाम करते हैं और वह मनुष्य सब लोगोंका प्रिय होता है। वह मेधा, आयु, लक्ष्मी तथा सुन्दर कान्तिसे सुशोभित होकर पुत्र-पौत्रोंके साथ अभ्युदयको प्राप्त होता है। तीसरे समयकी पूजामें कौन-सा काल है, इस विषयमें मतभेद है। कुछ विद्वान् इस पूजाको सायंकालमें करने योग्य बताते हैं और कुछ रात्रिमें। दशाक्षर-मन्त्रसे पूजा करनी हो तो रातमें करे। अष्टादशाक्षरसे करनी हो तो सायंकालमें करे। कुछ दूसरे विद्वान् ऐसा भी कहते हैं कि दोनों प्रकारके मन्त्रोंसे दोनों ही समय पूजा करनी चाहिये।

## सायंकालिक ध्यान

सायंकालमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीमें एक सुन्दर भवनके भीतर विराजमान हैं, जो विचित्र उद्यानसे सुशोभित है। वह श्रेष्ठ भवन आठ हजार गृहोंसे अलंकृत है। उसके चारों ओर निर्मल जलवाले सरोवर सुशोभित हैं। हंस, सारस आदि पक्षियोंसे व्याप्त कमल और उत्पल आदि पुष्प उन सरोवरोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उक्त भवनमें एक शोभासम्पन्न मणिमय मण्डप है, जो उदयकालीन सूर्यदेवके समान अरुण प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है। उस मण्डपके भीतर सुवर्णमय कमलकी आकृतिका सुन्दर सिंहासन है, जिसपर त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्ण बैठे हैं। उनसे आत्मतत्त्वका निर्णय

करानेके लिये मुनियोंके समुदायने उन्हें सब ओरसे घेर रखा है। भगवान् श्यामसुन्दर उन मुनियोंको अपने अविनाशी परम धामका उपदेश दे रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति विकसित नीलकमलके

समान श्याम है। दोनों नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं। सिरपर स्निग्ध अलकावलियोंसे संयुक्त सुन्दर किरीट सुशोभित है। गलेमें वनमाला शोभा पा रही है। प्रसन्न मुखारविन्द मनको मोहे लेता है। कपोलोंपर मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है। वहीं कौस्तुभमणि अपनी प्रभा बिखेर रही है। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है। उनका वक्ष:स्थल केसरके अनुलेपसे सुनहली प्रभा धारण करता है। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, विभिन्न अङ्गोंमें हार, बाजूबंद, कड़े और करधनी आदि आभूषण उन्हें अलंकृत कर रहे हैं। उन्होंने पृथ्वीका भारी भार उतार दिया। उनका हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण है तथा उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं[१]।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान्‌की पूजा करे। हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इनके द्वारा प्रथम आवरण बनता है। रुक्मिणी आदि पटरानियोंद्वारा द्वितीय आवरण सम्पन्न होता है। तृतीय आवरणमें नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि हैं, इनका आठ दिशाओंमें और विनतानन्दन गरुड़का भगवान्‌के सम्मुख पूजन करे। चौथे आवरणमें लोकपालोंके साथ और पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंके साथ उत्तम वैष्णव भगवत्पूजनका कार्य सम्पन्न करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके खीरका नैवेद्य अर्पण करे। फिर जलमें खाँड़मिश्रित दूधकी भावना करके उस जलद्वारा तर्पण करे। उसके बाद मन्त्रोपासक पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तीनों कालकी पूजाओंमें अथवा केवल मध्याह्नकालमें ही होम करे। आसनसे लेकर विशेषार्घ्यपर्यन्त सम्पूर्ण पूजा पूरी करके विद्वान् पुरुष भगवान्‌की स्तुति और नमस्कार करे। फिर भगवान्‌को आत्मसमर्पण करके उनका विसर्जन करनेके पश्चात् अपने हृदयकमलमें उनकी स्थापना करे और तन्मय होकर पुन: आत्मस्वरूप भगवान्‌की पूजा करे। जो प्रतिदिन इस प्रकार सायंकालमें भगवान् वासुदेवकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होता है।

## रात्रिकालिक ध्यान

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तचेतसं नन्दनन्दनम्।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम्॥
विकसत्कुन्दकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्गतैः।
रजोभिर्धूसरैर्मन्दमारुतैः शिशिरीकृते॥

१. सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते। अष्टसाहस्रसंख्यातैर्भवनैरुपमण्डिते॥
हंससारससंकीर्णकमलोत्पलशालिभिः। सरोभिर्निर्मलाम्भोभिः परीते भवनोत्तमे॥
उद्यत्प्रद्योतनोद्योतद्युतौ श्रीमणिमण्डपे। हेमाम्भोजासनासीनं कृष्णं त्रैलोक्यमोहनम्॥
मुनिवृन्दैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये। तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम्॥
उन्निद्रेन्दीवरश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। स्निग्धकुन्तलसम्भिन्नकिरीटवनमालिनम्॥
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं सुमनोहरम्॥
काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम्। हारकेयूरकटककटिसूत्रैरलङ्कृतम्॥
हतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितमानसम्। शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम्॥
(ना० पूर्व० ८०। ९२—९९)

उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलब्धान्तर-
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्दगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते।
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरित्प्रान्ते स्मरोद्दीपने
कालिन्दीपुलिनाङ्गणे स्मितमुखं वेणुं रणन्तं मुहुः॥
अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुदघटासंघट्टकारत्विषं
चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरम्।
मायूरच्छदबद्धमौलिविलसद्धम्मिल्लमालं चलद्-
दीप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गण्डद्वयोद्भासितम्॥
काञ्चीनूपुरहारकङ्कणलसत्केयूरभूषान्वितं
गोपीनां द्वितयान्तरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रजम्।
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं लस-
द्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रान्तं मुकुन्दं भजेत्॥
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः।
भ्रममाणममूभिरुदारमणिस्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतनुम्॥
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ।
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम्॥

(ना० पूर्व० ८०। १०७—११३)

'रात्रिमें पूजन करना हो तो भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करे—भगवान् नन्दनन्दनने अपने हृदयमें प्रेमको आश्रय दे रखा है। वे रासक्रीड़ामें संलग्न हो मानो थक गये हैं और गोपाङ्गनाओंकी मण्डलीके मध्यभागमें विराज रहे हैं। उस समय यमुनाजीका पुलिन-प्राङ्गण अमृतमय किरणोंवाले चन्द्रदेवकी धवल ज्योत्स्नासे उद्भासित हो रहा है। वहाँका प्रान्त अत्यन्त हरा-भरा एवं भगवत्प्रेमका उद्दीपक हो रहा है। खिले हुए कुन्द, कह्लार और मल्लिका आदि कुसुमोंके परागपुञ्जसे धूसरित मन्द-मन्द वायु प्रवाहित होकर उस पुलिन-प्राङ्गणको शीतल बना रही है। खिले हुए नूतन कुमुदोंके मादक मकरन्दका पान करके उन्मत्त हृदयवाले भ्रमर इधर-उधर भ्रमण करते हुए मधुर गुञ्जारव फैला रहे हैं; जिससे वह वनप्रान्त अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है। वहाँ सब ओर सुन्दर चमेलीकी सुगन्ध फैल रही है। ऐसे मनोहर कालिन्दीतटपर श्यामसुन्दर मुखसे मन्द-मन्द मुसकानकी प्रभा बिखेरते हुए बारम्बार मुरली बजा रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति भीतर जलसे भरे हुए नूतन मेघोंकी श्याम घटासे टक्कर ले रही है। भौंहोंका मध्यभाग कुछ चञ्चल हो उठा है। दोनों नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल हैं। लाल-लाल अधर बिम्बफलको लजा रहे हैं। भगवान्‌की वह झाँकी बड़ी ही सुन्दर है। माथेपर मोरपंखका मुकुट है, जिससे उनके बँधे हुए केशोंकी चोटी बड़ी सुहावनी लग रही है। उनके दोनों कपोल हिलते हुए चमकीले कुण्डलोंमें जटित रत्नोंकी किरणोंसे उद्भासित हो रहे हैं और उन कपोलोंसे श्यामसुन्दरका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। वे करधनी, नुपुर, हार, कंगन और सुन्दर भुजबंद आदि आभूषणोंसे विभूषित हो प्रत्येक दो गोपीके बीचमें खड़े होकर अपनी मनमोहिनी झाँकी दिखा रहे हैं। गलेमें वन्यपुष्पोंका हार सुशोभित है। एक-दूसरीसे अपनी बाहोंको मिलाये हुए नृत्य करनेवाली गोपाङ्गनाओंकी बाहु-वल्लरियोंसे वे घिरे हुए हैं। इस प्रकार परम सुन्दर शोभामयी दिव्य रासलीलाके लिये सदा उत्सुक रहनेवाले प्रेमके आश्रयभूत भगवान् मुकुन्दका भजन करे। वे नाना प्रकारकी श्रुतियोंके[1] भेदसे युक्त परम मनोहर सात स्वरोंकी मूर्च्छना[2]

१. संगीतमें किसी सप्तकके बाईस भागोंमेंसे एक भाग अथवा किसी स्वरके एक अंशको श्रुति कहते हैं। स्वरका आरम्भ और अन्त इसीसे होता है। षड्जमें चार, ऋषभमें तीन, गान्धारमें दो, मध्यम और पञ्चममें चार-चार, धैवतमें तीन और निषादमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

२. संगीतमें एक ग्रामसे दूसरे ग्रामतक जानेमें सातों स्वरोंका जो आरोहावरोह होता है, उसीका नाम मूर्च्छना है। ग्रामके सातवें भागकी ही मूर्च्छना कहते हैं। भरत मुनिके मतसे गाते समय गलेकी कँपकँपीसे ही मूर्च्छना होती है। किसी-किसीके मतसे स्वरके सूक्ष्म विरामका नाम मूर्च्छना है। तीन ग्राम होनेके कारण इक्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं।

और तीनोंके[1] साथ-साथ गोपाङ्गनाओंसहित थिरक रहे हैं। सुन्दर मणिमय स्वच्छ आभूषणोंके मधुर शिञ्जनसे भगवान्‌का सम्पूर्ण मनोहर अङ्ग ही झनकारमय हो उठा है। एक-दूसरीसे हाथ बाँधकर मण्डलाकार खड़ी हुई गोपाङ्गनाओंके समूहसे कल्पित रासलीलामण्डलकी रचनामें यद्यपि भगवान् श्यामसुन्दर बीचमें मणिमय मेखकी भाँति स्थित हैं तथापि इसी शरीरसे उन्होंने अपने बहुत-से दिव्य स्वरूप प्रकट कर लिये हैं (और उन स्वरूपोंसे प्रत्येक दो गोपीके बीचमें स्थित हैं)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान्‌की पूजा करे। हृदयादि अङ्गोंद्वारा प्रथम आवरणकी पूजा होती है। धन-सम्पत्तिकी इच्छा रखनेवाला श्रेष्ठ वैष्णव पूर्वोक्त केशव-कीर्ति आदि सोलह जोड़ोंकी कमलपुष्पोंद्वारा पूजा करे। उन सबके नामके आदिमें क्रमशः सोलह स्वरोंको संयुक्त करे[2]। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। एक मोटा, गोल और चिकना खूँटा जिसकी ऊँचाई एक बित्तेकी हो, पृथ्वीमें गाड़ दे और उसे पैरोंसे दबाकर एक-दूसरेसे हाथ मिलाकर उसके चारों ओर चक्कर देना रासगोष्ठी कही गयी है। इस प्रकार पूजा करके दूध, घी और मिश्री मिलाकर भगवान्‌को नैवेद्य अर्पण करे और सोलह प्याले लेकर उनमें मिश्री मिलायी हुई खीर परोसे और पूर्वोक्त जोड़ोंको क्रमशः अर्पण करे। फिर शेष कार्य पूर्ववत् करके मन्त्रोपासक एक हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् स्तुति, नमस्कार और प्रार्थना करके पूजनका शेष कार्य भी समाप्त करे। इस प्रकार जो उपासक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है तथा अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। इहलोकमें वह विविध भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। इस तरह पूजा आदिके द्वारा मन्त्रके सिद्ध होनेपर अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि करे। अथवा विद्वान् पुरुष अट्ठाईस बार मन्त्र-जपपूर्वक तीनों समय भगवान्‌की पूजा करे। उस-उस कालमें कथित परिवारों (आवरण देवताओं)-का भी तर्पण करे। प्रातःकाल गुड़मिश्रित दहीसे, मध्याह्नकालमें मक्खनयुक्त दूधसे और सायंकालमें मिश्री मिलाये हुए दूधसे श्रेष्ठ वैष्णव तर्पण करे। मन्त्रके अन्तमें तर्पणीय देवताओंके नामोंमें द्वितीया विभक्ति जोड़कर अन्तमें '**तर्पयामि**' पदका प्रयोग करे। तत्पश्चात् शेष पूजा पूरी करे। भगवत्प्रसादस्वरूप जलसे अपने-आपको सींचकर उस जलको पीये। उससे तृप्त होकर देवताका विसर्जन करके तन्मय हो मन्त्र-जप करे।

अब सकामभावसे किये जानेवाले तर्पणोंमें आवश्यक द्रव्य बताये जाते हैं। शास्त्रोक्त विधानसम्बन्धी उन वस्तुओंका आश्रय लेकर उनमेंसे किसी एकका भी सेवन करे। खीर, दही बड़ा, घी, गुड़ मिला हुआ अन्न, खिचड़ी, दूध, दही, केला, मोचा, चिंचा (इमली), चीनी, पूआ, मोदक, खील (लाजा), चावल, मक्खन—ये सोलह

१. मूर्च्छना आदिद्वारा राग या स्वरके विस्तारको तान कहते हैं। संगीत दामोदरके मतसे स्वरोंसे उत्पन्न तान ४९ हैं। इन ४९ तानोंसे भी ८,३०० कूट तान निकलते हैं। किसी-किसीके मतसे कूट तानोंकी संख्या ५०४० भी मानी गयी है।

२. केशव-कीर्ति, नारायण-कान्ति, माधव-तुष्टि, गोविन्द-पुष्टि, विष्णु-धृति, मधुसूदन-शान्ति, त्रिविक्रम-क्रिया, वामन-दया, श्रीधरमेधा, हृषीकेश-हर्षा, पद्मनाभ-श्रद्धा, दामोदर-लज्जा, वासुदेव-लक्ष्मी, संकर्षण-सरस्वती, प्रद्युम्न-प्रीति और अनिरुद्ध-रति—ये सोलह जोड़े हैं। इनके आदिमें क्रमशः 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः' इन सोलह स्वरोंको अनुस्वार युक्त करके जोड़ना चाहिये। यथा—'अं केशवकीर्तिभ्यां नमः, आं नारायणकान्तिभ्यां कान्त्यै नमः' इत्यादि। इन्हीं मन्त्रोंसे इनकी पूजा करनी चाहिये।

द्रव्य ब्रह्मा आदिके द्वारा तर्पणोपयोगी बताये गये हैं। जो प्रातःकाल अन्तमें लाजा और पहले चावल तथा मिश्री अर्पित करके चौहत्तर बार तर्पण करता है, साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका ध्यान करता रहता है, वह मन्त्रोपासक अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। धारोष्ण तथा पके हुए दूधसे—मक्खन, दही, दूध और आमके रस, घी, मोटी चीनी, मधु और कीलल (शर्बत)—इन नौ द्रव्योंमेंसे प्रत्येकके द्वारा बारह बार तर्पण करे। इस प्रकार जो श्रेष्ठ वैष्णव एक सौ आठ बार तर्पण करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होता है। बहुत कहनेसे क्या लाभ? वह तर्पण सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मिश्री मिलाये हुए धारोष्ण दुग्धकी भावनासे जलद्वारा श्रीकृष्णका तर्पण करके गाँवको जानेवाला साधक वहाँ अपने पारिवारिक लोगोंके साथ धन, वस्त्र एवं भोज्य पदार्थ प्राप्त कर लेता है। मन्त्रोपासक जितनी बार तर्पण करे, उतनी ही संख्यामें जप करे। वह तर्पणसे ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर लेता है।

अब मैं साधकोंके हितके लिये सकाम होमका वर्णन करता हूँ। उत्तम श्रीकी अभिलाषा रखनेवाला मन्त्रोपासक बेलके फूलोंसे होम करे। घृत और अन्नकी वृद्धिके लिये घृतयुक्त अन्नकी आहुति दे।

अब मैं एक उत्तम रहस्यका वर्णन करता हूँ, जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। साधक अपने हृदयकमलमें भगवान् देवकीनन्दनका इस प्रकार ध्यान करे—

**श्रीमत्कुन्देन्दुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे**
**बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालया दीप्यमानम्॥**
**वन्दे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमणिलसद्दिव्यभूषाभिरामं**
**दिव्याङ्गालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम्॥**

(ना० पूर्व० ८०। १५०)

'जो कुन्द और चन्द्रमाके समान सुन्दर गौरवर्णके हैं, जिनके नेत्र कमलकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं, जो अपने करारविन्दोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं, नूतन कमलोंकी सुन्दर मालासे सुशोभित हैं, छोटी-छोटी मणियोंसे जटित सुन्दर दिव्य आभूषण जिनके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यको और बढ़ा रहे हैं तथा जिनके श्रीअङ्गोंमें दिव्य अङ्गराग शोभा पा रहा है, उन मुनीन्द्रवेद्य, सकल भयहारी, पीताम्बरधारी मुरारिको मैं वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके आदिपुरुष श्रीकृष्णको अपने विकसित हृदयकमलके आसनपर विराजमान देखे और यह भावना करे कि वे घनीभूत मेघोंकी श्याम घटा तथा अद्भुत सुवर्णकी-सी नील एवं पीत प्रभा धारण करते हैं। इस चिन्तनके साथ साधक बारह लाख मन्त्रका जप करे। दो प्रकारके मन्त्रोंमेंसे एकका, जो प्रणवसम्पुटित है, जप करना चाहिये। फिर दूधवाले वृक्षोंकी समिधाओंसे बारह हजार आहुति दे अथवा मधु-घृत एवं मिश्रीमिश्रित खीरसे होम करे। इस प्रकार मन्त्रोपासक

अपने हृदयकमलमें लोकेश्वरोंके भी आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए प्रतिदिन तीन हजार मन्त्रका जप करे। फिर सायंकालके लिये बतायी हुई विधिसे भलीभाँति पूजा करके साधक भगवत्-चिन्तनमें संलग्न हो पुनः पूर्वोक्त रीतिसे हवन करे। जो विद्वान् इस तरह गोपालनन्दन श्रीकृष्णका नित्य भजन करता है, वह भवसागरसे पार हो परमपदको प्राप्त होता है।

पहले दो त्रिभुज अङ्कित करे; जिसमें एक ऊर्ध्वमुख और दूसरा अधोमुख हो। एकके ऊपर दूसरा त्रिकोण होना चाहिये। इस प्रकार छः कोण हो जायँगे। कोण बाह्य भागमें होंगे। उनके बीचमें जो षट्कोण चक्र होगा, उसे अग्निपुर कहते हैं। उस अग्निपुरकी कर्णिका (मध्यभाग)-में 'क्लीं' यह बीजमन्त्र अङ्कित करे। उसके साथ साध्य पुरुष एवं कार्यका भी उल्लेख करे। बहिर्गत कोणोंके विवरमें षडक्षर-मन्त्र लिखे। छः कोणोंके ऊपर एक गोलाकार रेखा खींचकर उसके बाह्यभागमें दस-दल कमल अङ्कित करे। उन दस दलोंके केसरोंमें एक-एकमें दो-दो अक्षरके क्रमसे 'ह्रीं' और 'श्रीं' पूर्वक अष्टादशाक्षर-मन्त्रके अक्षरोंका उल्लेख करे। तदनन्तर दलोंके मध्यभागमें दशाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरोंको लिखे। इस प्रकार लिखे हुए दस-दल चक्रको भूपुरसे (चौकोर रेखासे) आवृत करे। भूपुरमें अस्त्रोंके स्थानमें कामबीज (क्लीं)-का उल्लेख करे। इस यन्त्रको सोनेके पत्रपर सोनेकी ही शलाकासे गोरोचनद्वारा लिखकर उसकी गुटिका बना ले। यही गोपाल-यन्त्र है। यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला कहा गया है। जो रक्षा, यश, पुत्र, पृथ्वी, धन-धान्य, लक्ष्मी और सौभाग्यकी इच्छा रखनेवाले हों उन श्रेष्ठ पुरुषोंको निरन्तर यह यन्त्र धारण करना चाहिये। इसका अभिषेक करके मन्त्र-जपपूर्वक इसे धारण करना उचित है। यह तीनों लोकोंको वशमें करनेके लिये एकमात्र कुशल (अमोघ) उपाय है। इसकी महती शक्ति अवर्णनीय है।

स्मर (क्लीं), त्रिविक्रम (ऋ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् कृ, इसके पश्चात् ष्णाय तथा हृत् (नमः)—यह (**क्लीं कृष्णाय नमः**) षडक्षर-मन्त्र कहा गया है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है।

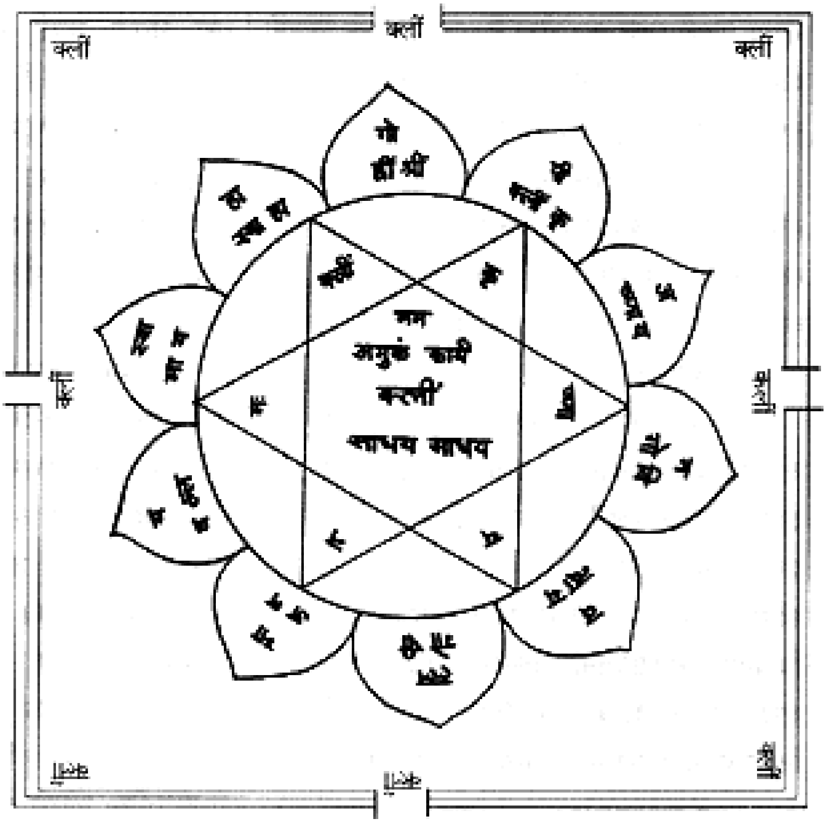

वाराह (ह्), अग्नि (र्), शान्ति (ई) और इन्दु (-अनुस्वार)—ये सब मिलकर मायाबीज 'ह्रीं' कहे गये हैं। मृत्यु (श्), वह्नि (र्), गोविन्द (ई) और चन्द्र (-अनुस्वार)-से युक्त हो तो श्रीबीज—'श्रीं' कहा गया है। इन दोनों बीजोंसे युक्त होनेपर अष्टादशाक्षर-मन्त्र (**ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) बीस अक्षरोंका हो जाता है। शालग्राममें, मणिमें, यन्त्रमें, मण्डलमें तथा प्रतिमाओंमें ही सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये; केवल भूमिपर नहीं। जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बीस अक्षरवाले मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं। छन्दका नाम गायत्री है। श्रीकृष्ण देवता हैं; क्लीं बीज है और विद्वान् पुरुषोंने स्वाहाको शक्ति कहा है। तीन, तीन, चार, चार, चार तथा दो मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। मूलमन्त्रसे व्यापक न्यास करके मन्त्रसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका उनके नियत स्थानोंमें एकाग्रतापूर्वक न्यास करे। फिर दस तत्त्वोंका न्यास करके मूलमन्त्रद्वारा व्यापक करे। तदनन्तर देवभावकी सिद्धि (इष्टदेवके साथ तन्मयता) प्राप्त करनेके लिये मन्त्र-न्यास करे। मूर्तिपञ्जर नामक न्यास पूर्ववत् करे। फिर षडङ्ग-न्यास करके हृदयकमलमें भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे।

द्वारकापुरीमें सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुन्दर महलों और बहुतेरे कल्पवृक्षोंसे घिरा हुआ एक मणिमय मण्डप है, जिसके खंभे अग्निके समान जाज्वल्यमान रत्नोंके बने हुए हैं। उसके द्वार, तोरण और दीवारें सभी प्रकाशमान मणियोंद्वारा निर्मित हैं। वहाँ खिले हुए सुन्दर पुष्पोंके चित्रोंसे सुशोभित चँदोवोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं। मण्डपका मध्यभाग अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित हुआ है, जो पद्मराग मणिमयी भूमिसे सुशोभित है। वहाँ एक कल्पवृक्ष है, जिससे निरन्तर दिव्य रत्नोंकी धारावाहिक वृष्टि होती रहती है। उस वृक्षके नीचे प्रज्वलित रत्नमय प्रदीपोंकी पङ्क्तियोंसे चारों ओर दिव्य प्रकाश छाया रहता है। वहीं मणिमय सिंहासनपर दिव्य कमलका आसन है, जो उदयकालीन सूर्यके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा है। उस आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो तपाये हुए सुवर्णके समान तेजस्वी हैं। उनका प्रकाश समानरूपसे सदा उदित रहनेवाले कोटि-कोटि चन्द्रमा, सूर्य और विद्युत्के समान है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, सौम्य तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है। उनके चार हाथ क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं। वे पल्लवकी छबिको छीन लेनेवाले अपने बायें चरणारविन्दके अग्रभागसे कलशका स्पर्श कर रहे हैं; जिससे बिना किसी आघातके रत्नमयी धाराएँ उछलकर गिर रही हैं। उनके दाहिने भागमें रुक्मिणी और वामभागमें सत्यभामा खड़ी होकर अपने हाथोंमें दिव्य कलश ले उनसे निकलती हुई रत्नराशिमयी जलधाराओंसे उन (भगवान् श्रीकृष्ण)-के मस्तकपर अभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिती (सत्या) और सुनन्दा ये उक्त देवियोंके समीप खड़ी हो उन्हें एकके बाद दूसरा कलश अर्पण कर रही हैं। इन दोनोंको क्रमशः दायें और वामभागमें खड़ी हुई मित्रविन्दा और लक्ष्मणा कलश दे रही हैं और इनके भी दक्षिण वामभागमें खड़ी जाम्बवती और सुशीला रत्नमयी नदीसे रत्नपूर्ण कलश भरकर उनके हाथोंमें दे रही हैं। इनके बाह्यभागमें चारों ओर खड़ी हुई सोलह सहस्र श्रीकृष्णवल्लभाओंका ध्यान करे, जो सुवर्ण एवं रत्नमयी धाराओंसे युक्त कलशोंसे

सुशोभित हो रही हैं। उनके बाह्यभागमें आठ निधियाँ हैं, जो धनसे वहाँ वसुधाको भरपूर किये देती हैं। उनके बाह्यभागमें सब वृष्णिवंशी विद्यमान हैं और पहलेकी भाँति स्वर आदि भी हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पाँच लाख जप करे और लाल कमलोंद्वारा दशांश होम करके पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर भगवान्‌का पूजन करे।

पूर्ववत् पीठकी पूजा करनेके पश्चात् मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करे और उसमें पूर्णताकी भावनासे पूजा करे। आसनसे लेकर आभूषणतक भगवान्‌को अर्पण करके फिर न्यासक्रमसे आराधना करे। सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग, किरीट, कुण्डलद्वय, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ—इन सबका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके श्रेष्ठ वैष्णव मूलमन्त्रद्वारा छः कोणोंमें छः अङ्गोंका और पूर्वादि दलोंमें क्रमशः वासुदेव आदि तथा कोणोंमें शान्ति आदिका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक दलोंके अग्रभागमें आठों पटरानियोंका पूजन करे। तदनन्तर सोलह हजार श्रीकृष्णपत्नियोंकी एक ही साथ पूजा करे। इसके बाद इन्द्र, नील, मुकुन्द, कराल, आनन्द, कच्छप, शङ्ख और पद्म—इन आठ निधियोंका क्रमशः पूजन करे। उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकपालों तथा वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार सात आवरणोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णका आदरपूर्वक पूजन करके दही, खाँड़ और घी मिले हुए दुग्धमिश्रित अन्नका नैवेद्य लगाकर उन्हें तृप्त करे। तदनन्तर दिव्योपचार समर्पित करके स्तुति और नमस्कारके पश्चात् परिवारगणों (आवरण देवताओं)-के साथ भगवान् केशवका अपने हृदयमें विसर्जन करे। भगवान्‌को अपनेमें बिठाकर भगवत्स्वरूप आत्माका पूजन करके विद्वान् पुरुष तन्मय होकर विचरे। रत्नाभिषेकयुक्त ध्यानमें वर्णित भगवत्स्वरूपकी पूजा बीस अक्षरवाले मन्त्रके आश्रित है। इस प्रकार जो मन्त्रकी आराधना करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है। जो जप, होम, पूजन और ध्यान करते हुए उक्त मन्त्रका जप करता है, उसका घर रत्नों, सुवर्णों तथा धन-धान्योंसे निरन्तर परिपूर्ण होता रहता है। यह विशाल पृथ्वी उसके हाथमें आ जाती है और वह सब प्रकारके शस्योंसे सम्पन्न होती है। साधक पुत्रों और मित्रोंसे भरा-पूरा रहता है और अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है। उक्त मन्त्रसे साधक इस प्रकारके अनेक प्रयोगोंका साधन कर सकता है। अब मैं सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाले मन्त्रराज दशाक्षरका वर्णन करता हूँ।

स्मृति (ग्) यह सद्य (ओ)-से युक्त हो और लोहित (प्) वामनेत्र (ई)-से संलग्न हो। इसके बाद 'जनवल्लभा' ये अक्षरसमुदाय हों। तत्पश्चात् पवन (य) हो और अन्तमें अग्निप्रिया (स्वाहा) हो तो यह (**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) दशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि, विराट् छन्द, श्रीकृष्ण देवता, क्लीं बीज और स्वाहा शक्ति है। यह बात मनीषी पुरुषोंने बतायी है। आचक्र, विचक्र, सुचक्र, त्रैलोक्यरक्षणचक्र तथा असुरान्तकचक्र—इन शब्दोंके अन्तमें 'ङे' विभक्ति और स्वाहा पद जोड़कर इन पञ्चविध चक्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे[1]। तदनन्तर प्रणव-सम्पुटित मन्त्र पढ़कर तीन बार दोनों हाथोंमें व्यापक-न्यास करे। तत्पश्चात् मन्त्रके प्रत्येक अक्षरको अनुस्वारयुक्त करके उनके

---

१. न्यास-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—
ॐ आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः।
ॐ विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा।
ॐ सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्।
ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुम्।
ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।

आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः जोड़कर उनका दाहिने अंगूठेसे लेकर बायें अंगूठेतक अंगुलि-पर्वोंमें न्यास करे[१]। यह सृष्टिन्यास बताया गया है। अब स्थितिन्यास कहा जाता है। विद्वान् पुरुष स्थितिन्यासमें बायीं कनिष्ठसे लेकर दाहिनी कनिष्ठतक पूर्वोक्तरूपसे मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। संहारन्यासमें बायें अंगूठेसे दाहिने अंगूठेतक उक्त मन्त्राक्षरोंका न्यास करना चाहिये। यह संहारन्यास दोषसमुदायका नाश करनेवाला कहा गया है। शुद्धचेता ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि वे स्थिति और संहारन्यास पहले करके अन्तमें सृष्टिन्यास करें; क्योंकि वह विद्या प्रदान करनेवाला है। गृहस्थोंके लिये अन्तमें स्थितिन्यास करना उचित है। (उन्हें सृष्टि और संहारन्यास पहले कर लेना चाहिये।) क्योंकि स्थितिन्यास काम्यादिस्वरूप (कामनापूरक) है। विरक्त मुनीश्वरोंको सर्वदा अन्तमें संहारन्यास करना चाहिये। तदनन्तर साधक पुनः स्थितिक्रमसे मन्त्राक्षरोंका अंगुलियोंमें न्यास करे। तत्पश्चात् पुनः पूर्वोक्त चक्रोंद्वारा हाथोंमें पञ्चाङ्ग-न्यास करे। (यथा—**ॐ आचक्राय स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः। ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां नमः। ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः**) तदनन्तर विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रसे सम्पुटित अनुस्वारयुक्त मातृका वर्णोंका मातृकान्यासके स्थलोंमें विनीतभावसे न्यास करे। उसके बाद प्रणवसम्पुटित मूलमन्त्रका उच्चारण करके व्यापक न्यास करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त मूर्तिपञ्जर नामक न्यास करे। उसके बाद क्रमशः दशाङ्ग-न्यास और पञ्चाङ्ग-न्यास करे। दशाङ्ग-न्यासकी विधि इस प्रकार है—हृदय, मस्तक, शिखा, सर्वाङ्ग, सम्पूर्ण दिशा, दक्षिणापार्श्व, वामपार्श्व, कटि, पृष्ठ तथा मूर्धा—इन अङ्गोंमें श्रेष्ठ वैष्णवमन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। फिर एकाग्रचित्त हो पूर्वोक्त चक्रोंद्वारा पुनः पूर्ववत् पञ्चाङ्ग-न्यास करे। इसके सिवा अष्टादशाक्षरमन्त्रके लिये बताये हुए अन्य प्रकारके न्यासोंका भी यहाँ संग्रह कर लेना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रसे व्यापक-न्यास करे। फिर श्रेष्ठ साधक वेणु और बिल्व आदिकी मुद्रा दिखाये। फिर सुदर्शन मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। अङ्गुष्ठको छोड़कर शेष अंगुलियाँ यदि सीधी रहें तो यह हृदयमुद्रा कही गयी है। शिरोमुद्रा भी ऐसी ही होती है। अङ्गुष्ठको नीचे करके जो मुट्ठी बाँधी जाती है, उसका नाम शिखामुद्रा है। हाथकी अंगुलियोंको फैलाना यह वरुणमुद्रा कही गयी है। बाणकी मुट्ठीकी तरह उठी हुई दोनों भुजाओंके अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे चुटकी बजाकर उसकी ध्वनिको सब ओर फैलाना, इसे अस्त्रमुद्रा कहा गया है। तर्जनी और मध्यमा—ये दो अंगुलियाँ नेत्रमुद्रा हैं। (जहाँ तीन नेत्रका न्यास करना हो, वहाँ तर्जनी, मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलिको भी लेकर नेत्रत्रयका प्रदर्शन कराया जाता है।) बायें हाथका अँगूठा ओष्ठमें लगा हो। उसकी कनिष्ठिका अंगुली दाहिने हाथके अंगूठेसे सटी हो, दाहिने हाथकी कनिष्ठिका फैली हुई हो और उसकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ कुछ सिकोड़कर हिलायी जाती हों तो यह वेणुमुद्रा कही गयी है। यह अत्यन्त गुप्त होनके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ नामक मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका वर्णन नहीं

१. यथा—ॐ गों नमः, दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वसु। ॐ पीं नमः, दक्षिणतर्जनीपर्वसु। ॐ जं नमः, दक्षिणमध्यमापर्वसु। ॐ नं नमः, दक्षिणानामिकापर्वसु। ॐ वं नमः, दक्षिणकनिष्ठिकापर्वसु। ॐ ल्लं नमः, वामकनिष्ठिकापर्वसु। ॐ भां नमः, वामानामिकापर्वसु। ॐ यं नमः, वाममध्यमापर्वसु। ॐ स्वां नमः, वामतर्जनीपर्वसु। ॐ हां नमः, वामाङ्गुष्ठपर्वसु।

किया जाता है[१]। बायें अंगूठेको ऊर्ध्वमुख खड़ा करके उसे दाहिने हाथके अंगूठेसे बाँध ले और उसके अग्रभागको दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर फिर उन अंगुलियोंको बायें हाथकी अंगुलियोंसे खूब कसकर बाँध ले और उसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करे। साथ ही कामबीज (क्लीं)-का उच्चारण करता रहे। मुनीश्वरोंने उसे परम गोपनीय बिल्वमुद्रा कहा है। यह सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति करानेवाली है। मन, वाणी और शरीरसे जो पाप किया गया हो, वह सब इस मुद्राके ज्ञानमात्रसे नष्ट हो जायगा। मन्त्रका ध्यान, जप और पूर्वोक्तरूपसे त्रिकाल पूजन करना चाहिये। दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर आदि सब मन्त्रोंमें एक ही क्रम बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक उससे नाना प्रकारके लौकिक अथवा पारलौकिक प्रयोग कर सकता है।

चेचक, फोड़े या ज्वर आदिसे जब जलन और मूर्च्छा हो रही हो तो उक्तरूपसे ही श्रीकृष्णका ध्यान करके रोगीके मस्तकके समीप मन्त्र-जप करे। इससे ज्वरग्रस्त मनुष्य निश्चय ही उस ज्वरसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त ध्यान करके अग्निमें भगवान्‌की पूजा करे और गुरुचिके चार-चार अंगुलके टुकड़ोंद्वारा दस हजार आहुति दे तो ज्वरकी शान्ति हो जाती है। ज्वरसे पीड़ित मनुष्यके ज्वरसे शान्तिके लिये बाणोंसे छिदे हुए भीष्मपितामहका तथा संताप दूर करनेवाले श्रीहरिका ध्यान करके रोगीका स्पर्श करते हुए मन्त्रजप करे। सान्दीपनि मुनिको पुत्र देते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके पूर्वोक्त रूपसे गुरुचिके टुकड़ेसे दस हजार आहुति दे। इससे अपमृत्युका निवारण होता है। जिसके पुत्र मर गये थे ऐसे ब्राह्मणको उसके पुत्र अर्पण करते हुए अर्जुनसहित श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप करे। इससे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। घी, चीनी और मधुमें मिलाये हुए पुत्रजीवके फलोंसे उसीकी समिधाद्वारा प्रज्वलित हुई अग्निमें दस हजार आहुति देनेपर मनुष्य दीर्घायु पुत्र पाता है। दुधैले वृक्षके काढ़ेसे भरे हुए कलशकी रातमें पूजा करके प्रातःकाल दस हजार मन्त्र जपे और उसके रसके जलसे स्त्रीका अभिषेक करे। बारह दिनोंतक ऐसा करनेपर वन्ध्या स्त्री भी दीर्घायु पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रकी इच्छा रखनेवाली स्त्री प्रातःकाल मौन होकर पीपलके पत्तेके दोनेमें रखे हुए जलको एक सौ आठ बार मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कराकर पीये। एक मासतक ऐसा करके बन्ध्या स्त्री भी समस्त शुभ लक्षणोंसे

---

१. वनमाला आदि मुद्राओंका लक्षण इस प्रकार है—

स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याङ्गुष्ठनिष्ठया। करद्वयेन तु भवेन्मुद्रेयं वनमालिका॥

दोनों हाथोंकी तर्जनी और अंगूठेको सटाकर उनके द्वारा कण्ठसे लेकर चरणतकका स्पर्श करे। इसे वनमाला नामक मुद्रा कहा गया है।

अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली। अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंश्रिते॥
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससञ्ज्ञिका।

आपसमें सटे हुए दोनों हाथोंकी मध्यमा और अनामिका अंगुलियोंको अंगूठेसे बाँधे और तर्जनी अंगुलियोंको कनिष्ठा अंगुलियोंके मूल-भागसे संलग्न करे। इसका नाम श्रीवत्समुद्रा है।

दक्षिणस्यानामिकाङ्गुष्ठसंलग्नां कनिष्ठिकाम्। कनिष्ठयान्यया बद्ध्वा तर्जन्या दक्षया तथा॥
वामानामां च बध्नीयाद्दक्षाङ्गुष्ठस्य मूलके। अङ्गुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरलाः पराः॥
चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका।

दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठसे सटी हुई कनिष्ठिका अंगुलिको बायें हाथकी कनिष्ठिकासे बाँध ले। दाहिनी तर्जनीसे बायीं अनामिकाको बाँधे, दाहिने अंगूठेके मूलभागमें बायें अङ्गुष्ठ और मध्यमाको संयुक्त करे। शेष अंगुलियोंको सीधी रखे। चारों अंगुलियोंके अग्रभाग परस्पर मिले हों, यह कौस्तुभमुद्रा है।

सम्पन्न पुत्र प्राप्त कर लेती है। बेरके वृक्षोंसे भरे हुए शुभ एवं दिव्य आश्रममें स्थित हो अपने करकमलोंसे घंटाकर्णके शरीरका स्पर्श करते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके घी, चीनी और मधु मिलाये हुए तिलोंसे एक लाख आहुति दे। ऐसा करनेसे महान् पापी भी तत्काल पवित्र हो जाता है। पारिजात-हरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र जपे। जो ऐसा करता है, उसकी सर्वत्र विजय होती है। पराजय कभी नहीं होती है। श्रेष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह पार्थको गीताका उपदेश करते हुए हाथमें व्याख्यानकी मुद्रासे युक्त रथारूढ़ श्रीकृष्णका ध्यान करे। उस ध्यानके साथ मन्त्र जपे। इससे धर्मकी वृद्धि होती है। मधुमें सने हुए पलाशके फूलोंसे एक लाख आहुति दे। इससे विद्याकी प्राप्ति होती है। राष्ट्र, पुर, ग्राम, वस्तु तथा शरीरकी रक्षाके लिये विश्वरूपधारी श्रीकृष्णका ध्यान करे—उनकी कान्ति उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान है। वे अग्नि एवं सोमस्वरूप हैं, सच्चिदानन्दमय हैं, उनका तेज तपाये हुए स्वर्णके समान है, उनके मुख और चरणारविन्द सूर्य और अग्निके सदृश प्रकाशित हो रहे हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उन्होंने नाना प्रकारके आयुध धारण कर रखे हैं। सम्पूर्ण आकाशको वे ही अवकाश दे रहे हैं। इस प्रकार ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख मन्त्र-जप करे। इससे पूर्वोक्त सब वस्तुओंकी रक्षा होती है। जो श्रेष्ठ वैष्णव सद्गुरुसे दीक्षा लेकर उक्त विधिसे श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका स्वामी होता है। उसके दर्शनमात्रसे वादी हस्तप्रतिभ हो जाते हैं। वह घरमें हो या सभामें उसके मुखमें सदा सरस्वती निवास करती हैं। वह इस लोकमें नाना प्रकारके भोगोंका उपभोग करके अन्तमें श्रीकृष्णधामको जाता है। (ना० पूर्व० अध्याय ८०)

## श्रीकृष्णसम्बन्धी विविध मन्त्रों तथा व्याससम्बन्धी मन्त्रकी अनुष्ठानविधि

**श्रीसनत्कुमारजी कहते हैं—**मुनीश्वर! अब मैं श्रीकृष्णसम्बन्धी मन्त्रोंके भेद बतलाता हूँ, जिनकी आराधना करके मनुष्य अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। दशाक्षर मन्त्रके तीन नूतन भेद हैं—'**ह्रीं श्रीं क्लीं**'—इन तीन बीजोंके साथ '**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' यह प्रथम भेद है। '**श्रीं ह्रीं क्लीं**'—इस क्रमसे बीज जोड़नेपर दूसरा भेद होता है। '**क्लीं ह्रीं श्रीं**'—इस क्रमसे बीज-मन्त्र जोड़नेपर तीसरा भेद बनता है। इसके नारद ऋषि और गायत्री छन्द हैं तथा मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले गोविन्द श्रीकृष्ण इसके देवता हैं। इन तीनों मन्त्रोंका अङ्गन्यास पूर्ववत् चक्रोंद्वारा करना चाहिये। तत्पश्चात् किरीटमन्त्रसे व्यापक-न्यास करे, फिर सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। आदि मन्त्रमें बीस अक्षरवाले मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि करे। द्वितीय मन्त्रमें दशाक्षर-मन्त्रके लिये कहे हुए ध्यान-पूजन आदिका आश्रय ले। तृतीय मन्त्रमें विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त होकर श्रीहरिका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् अपनी छः भुजाओंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, धनुष, बाण, पाश तथा अङ्कुश धारण करते हैं और शेष दो भुजाओंमें वेणु लेकर बजा रहे हैं। उनका वर्ण लाल है। वे श्रीकृष्ण साक्षात् सूर्यरूपसे प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार ध्यान करके बुद्धिमान् पुरुष पाँच लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे दशांश आहुति दे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्रोपासक पुरुष उसके द्वारा पूर्ववत् सकाम प्रयोग

कर सकता है। '**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा**' यह बारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। पृथक्-पृथक् तीन बीजों तथा तीन, चार एवं दो मन्त्राक्षरोंसे षडङ्ग-न्यास करे। बीस अक्षरवाले मन्त्रकी भाँति इसके भी ध्यान, होम और पूजन आदि करने चाहिये। यह मन्त्र सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है।

दशाक्षर मन्त्र ( **गोपीजनवल्लभाय स्वाहा** )-के आदिमें **श्रीं ह्रीं क्लीं** तथा अन्तमें **क्लीं ह्रीं श्रीं** जोड़नेसे षोडशाक्षर-मन्त्र बनता है। इसी प्रकार केवल आदिमें ही श्रीं जोड़नेसे बारह अक्षरोंका मन्त्र होता है। पूर्वोक्त चक्रोंद्वारा इनका अङ्गन्यास करे, फिर भगवान्‌का ध्यान करके दस लाख जप करे और घीसे दशांश होम करे। इससे ये दोनों मन्त्रराज सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध होनेपर ये मनुष्योंके लिये सम्पूर्ण कामनाओं, समस्त सम्पदाओं तथा सौभाग्यको देनेवाले हैं। अष्टादशाक्षर-मन्त्रके अन्तमें क्लीं जोड़ दिया जाय तो वह पुत्र तथा धन देनेवाला होता है। इस मन्त्रके नारद ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। क्लीं बीज कहा गया है और स्वाहा शक्ति मानी गयी है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। 'दायें हाथमें खीर और बायें हाथमें मक्खन लिये हुए दिगम्बर गोपीपुत्र श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें।' इस प्रकार ध्यान करके बत्तीस लाख मन्त्र जपे और प्रज्वलित अग्निमें मिश्री मिलायी हुई खीरसे दशांश आहुति दे, तत्पश्चात् पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर अष्टादशाक्षर-मन्त्रकी भाँति पूजन करे। कमलके आसनपर विराजमान श्रीकृष्णकी पूजा करके उनके मुखारविन्दमें खीर, पके केले, दही और तुरंतका निकाला हुआ माखन देकर तर्पण करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष यदि इस प्रकार तर्पण करे तो वह वर्षभरमें पुत्र प्राप्त कर लेता है। वह जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तर्पणसे ही प्राप्त हो जाती है।

वाक् (ऐं), काम (क्लीं) ङे विभक्त्यन्त कृष्ण शब्द ( **कृष्णाय** ) तत्पश्चात् माया ( **ह्रीं** ), उसके बाद '**गोविन्दाय**' फिर रमा ( **श्रीं** ) तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र ( **गोपीजनवल्लभाय स्वाहा** ) उद्धृत करे, फिर ह् और स् ये दोनों ओकार और विसर्गसे संयुक्त होकर अन्तमें जुड़ जायँ तो ( **ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ह्सौं** ) बाईस अक्षरका मन्त्र होता है, जो वागीशत्व प्रदान करनेवाला है। इसके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, विद्यादाता गोपाल देवता, क्लीं बीज और ऐं शक्ति है। विद्याप्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—जो वाम भागके ऊपरवाले हाथोंमें उत्तम विद्या-पुस्तक और दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें स्फटिक मणिकी मातृकामयी अक्षमाला धारण करते हैं। इसी प्रकार नीचेके दोनों शब्दब्रह्ममयी मुरली लेकर बजाते हैं, जिनके श्रीअङ्गमें गायत्री-छन्दमय पीताम्बर सुशोभित है, जो श्याम वर्ण कोमल कान्तिमान् मयूरपिच्छमय मुकुट धारण करनेवाले, सर्वज्ञ तथा मुनिवरोंद्वारा सेवित हैं, उन श्रीकृष्णका चिन्तन करे। इस प्रकार लीला करनेवाले भुवनेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करके चार लाख मन्त्र जप करे और पलासके फूलोंसे दशांश आहुति देकर मन्त्रोपासक बीस अक्षरवाले मन्त्रके लिये कहे हुए विधानके अनुसार पूजन करे। इस प्रकार जो मन्त्रकी उपासना करता है, वह वागीश्वर हो जाता है। उसके बिना देखे हुए शास्त्र भी गङ्गाकी लहरोंके समान स्वतः प्रस्तुत हो जाते हैं।

'**ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे॥**' ( हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाकृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। हे रमारमण! हे विद्येश्वर! मुझे शीघ्र विद्या दीजिये।) यह तैंतीस अक्षरोंवाला महाविद्याप्रद मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीकृष्ण

देवता हैं। मन्त्रके चारों चरणों और सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करके श्रीहरिका ध्यान करे।

**ध्यान**

**दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमये मण्डपे योगपीठे**
**मध्ये .यः सर्ववेदान्तमयसुरतरोः संनिविष्टो मुकुन्दः।**
**वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालम्बिकोशैश्चतुर्भि-**
**र्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशश्चामराद्यैः॥**
**दद्याद्दिभ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापा-**
**नक्षस्पृक्पूर्णकुम्भौ स्मरललितवपुर्दिव्यभूषाङ्गरागः॥**
**व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे**
**शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्वल्लवीवल्लभो नः॥**

(ना० पूर्व० ८१। ३४-३५)

एक दिव्य उद्यान है, उसके भीतर सूर्यके समान प्रकाशमान मणिमय मण्डप है, जहाँ सर्व वेदान्तमय कल्पवृक्षके नीचे योगपीठ नामक दिव्य सिंहासन है, जिसके मध्यभागमें भगवान् मुकुन्द विराजमान हैं। कल्पवृक्षरूपी चार वेद जिसके कोष सौ पर्वतोंको सहारा देनेवाले हैं, उन्हें घेरकर स्थित हैं। छत्र, चँवर आदिके रूपमें सुशोभित न्याय, तर्क, पुराण तथा स्मृतियोंसे भगवान् आवृत हैं। वे अपने हाथोंके अग्रभागमें शङ्ख, मुरली, पुष्पमय बाण और ईखके धनुष धारण करते हैं। अक्षमाला और भरे हुए दो कलश उन्होंने ले रखे हैं; उनका दिव्य विग्रह कामदेवसे भी अधिक मनोहर है। वे दिव्य आभूषण तथा दिव्य अङ्गराग धारण करते हैं। शब्दब्रह्मसे प्रकट हुई तथा बायें हाथमें ली हुई वेणुद्वारा स्पष्ट एवं रुचिर पदका उच्चारण करते हुए विश्वमात्रमें विशद व्याख्याका विस्तार करते हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति अरुण वर्णकी है, ऐसे गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हमें लक्ष्मी प्रदान करें।

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और खीरसे दशांश आहुति दे। मन्त्रज्ञ पुरुष इसका पूजन आदि अष्टादशाक्षर मन्त्रकी भाँति करे।

'**ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**' यह अट्ठाईस अक्षरोंका मन्त्र है। जो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है।

'**नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**' यह बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इन दोनों मन्त्रोंके नारद ऋषि हैं, पहलेका उष्णिक्, दूसरेका अनुष्टुप् छन्द है। देवता नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं। समस्त कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। चक्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे तथा हृदयादि अङ्गों, इन्द्रादि दिक्पालों और उनके वज्र आदि

आयुधोंसहित भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। फिर ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप और खीरसे दशांश हवन करे। इन सिद्ध मन्त्रोंद्वारा मन्त्रोपासक अपने अभीष्टकी सिद्धि कर सकता है।

'**लीलादण्ड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन् विष्णो स्वाहा**' यह उन्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और 'लीलादण्ड हरि' देवता कहे गये हैं। चौदह, चार, चार, तीन तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

### ध्यान

**सम्मोहयंश्च निजवामकरस्थलीला-**
**दण्डेन गोपयुवतीः परसुन्दरीश्च।**
**दिश्यान्निजप्रियसखांसगदक्षहस्तो**
**देवः श्रियं निहतकंस उरुक्रमो नः॥**

(ना० पूर्व० ८१। ५५)

'जो अपने बायें हाथमें लिये हुए लीलादण्डसे भाँति-भाँतिके खेल दिखाकर परम सुन्दरी गोपाङ्गनाओंका मन मोहे लेते हैं, जिनका दाहिना हाथ अपने प्रिय सखाके कंधेपर है, वे कंसविनाशक महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण हमें लक्ष्मी प्रदान करें।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप और घी, चीनी तथा मधुमें सने हुए तिल और चावलोंसे दशांश होम करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधोंसहित श्रीहरिका पूजन करे। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक 'लीलादण्ड हरि' की आराधना करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित होता है और उसके घरमें लक्ष्मीका स्थिर निवास होता है। सद्य (ओ)-पर स्थित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो', केशव (अ) युक्त तोय (व्) अर्थात् 'व', धरायुग (ल्ल), 'भाय', अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (**गोवल्लभाय स्वाहा**) मन्त्र सात अक्षरोंका है और सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके नारद ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा गोवल्लभ श्रीकृष्ण देवता हैं। पूर्ववत् चक्र-मन्त्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

### ध्यान

**ध्येयो हरिः स कपिलागणमध्यसंस्थ-**
**स्ता आह्वयन् दधददक्षिणदोःस्थवेणुम्।**
**पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः**
**पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः॥**

(ना० पूर्व० ८१। ६०)

'जो कपिला गायोंके बीचमें खड़े हो उनको

पुकारते हैं, बायें हाथमें मुरली और दायें हाथमें रस्सी और लाठी लिये हुए हैं, जिनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, जो पीतवस्त्र और मोर-पंखका मुकुट धारण करते हैं, उन श्यामसुन्दर श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये।'

ध्यानके बाद, सात लाख मन्त्र-जप और गोदुग्धसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर पूजन करे। अङ्गोंद्वारा प्रथम आवरण होता है। द्वितीय आवरणमें—सुवर्ण-पिङ्गला, गौर-पिङ्गला, रक्त-पिङ्गला, गुड-पिङ्गला, बभ्रु-वर्णा, उत्तमा कपिला, चतुष्क-पिङ्गला तथा शुभ एवं उत्तम पीत-पिङ्गला—इन आठ गायोंके समुदायकी पूजा करके तीसरे और चौथे आवरणोंमें इन्द्रादि लोकेशों तथा वज्र आदि आयुधोंका पूजन करे।

इस प्रकार पूजन करके मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रज्ञ पुरुष उसके द्वारा कामना-पूर्तिके लिये प्रयोग करे। जो प्रतिदिन गोदुग्धसे एक सौ आठ आहुति देता है, वह पंद्रह दिनमें ही गोसमुदायसहित मुक्त हो जाता है। दशाक्षर मन्त्रमें भी यह विधि है। '**ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय**' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि माने गये हैं। छन्द गायत्री है और गोविन्द देवता कहे गये हैं। एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

**ध्यान**

**ध्यायेत् कल्पद्रुमूलाश्रितमणिविलसद्दिव्यसिंहासनस्थं**
**मेघश्यामं पिशङ्गांशुकमतिसुभगं शङ्खवेत्रे कराभ्याम्।**
**बिभ्राणं गोसहस्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुम्भ-**
**प्रश्च्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम्॥**

'दिव्य कल्पवृक्षके नीचे मूलभागके समीप नाना प्रकारकी मणियोंसे सुशोभित दिव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, वे पीताम्बर धारण किये अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। अपने दोनों हाथोंमें शङ्ख और बेंत ले रखे हैं। सहस्रों गायें उन्हें घेरकर खड़ी हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके प्रतिपालक हैं। एक प्रौढ़ व्यक्तिके हाथोंमें एक कलश है, उससे अमृतकी धारा झर रही है और उसीसे भगवान् स्नान कर रहे हैं; उनके नेत्र नूतन विकसित कमल-दलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। ऐसे श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये।'

तत्पश्चात् बारह लाख मन्त्र जपे। फिर गोदुग्धसे

दशांश होम करके पूर्ववत् गोशालामें स्थित भगवान्‌का पूजन करे। अथवा प्रतिमा आदिमें भी पूजा कर सकते हैं। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिनिर्माण करके उसमें भगवान्‌का आवाहन और प्रतिष्ठा करे।

तत्पश्चात् पहले गुरुदेवकी पूजा करके भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। भगवान्‌के पार्श्वभागमें रुक्मिणि और सत्यभामाका, सामने इन्द्रका तथा पृष्ठभागमें सुरभिदेवीका पूजन करके केसरोंमें अङ्गपूजा करे। फिर आठ दलोंमें कालिन्दी आदि आठ पटरानियोंकी पूजा करके पीठके कोणोंमें किङ्किणी और दाम[१] (रस्सी) की अर्चना करे। पृष्ठभागोंमें वेणुकी तथा सम्मुख श्रीवत्स एवं कौस्तुभकी पूजा करे। आगेकी ओर वनमाला आदि अलंकारोंका पूजन करे। आठ दिशाओंमें स्थित पाञ्चजन्य, गदा, चक्र, वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा तथा गौओं और ग्वालोंसहित गोपिका—इन सबकी पूजा करे। उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पाल तथा उनके भी बाह्यभागमें वज्र आदि आयुध हैं। फिर पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित—इन दिग्गजोंका पूजन करके विष्वक्-सेन तथा आत्माका पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य एक या तीनों समय श्रीगोविन्दका पूजन करता है, वह चिरायु, निर्भय तथा धन-धान्यका स्वामी होता है।

सद्य (ओ) सहित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो', दक्षिण कर्ण (उ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् 'कु', धरा (ल)—इन अक्षरोंके पश्चात् 'नाथाय' पद और अन्तमें हृदय (नमः) यह—'**गोकुलनाथाय नमः**' महामन्त्र आठ अक्षरोंका है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द तथा श्रीकृष्ण देवता हैं। इसके दो-दो अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्गन्यास करे।

**ध्यान**

**पञ्चवर्षमतिलोलमङ्गने**
**धावमानमतिचञ्चलेक्षणम् ।**
**किङ्किणीवलयहारनूपुरै**
**रञ्जितं नमत गोपबालकम् ॥ ८० ॥**

'बाल गोपालकी पाँच वर्षकी अवस्था है, वे

अत्यन्त चपल गतिसे आँगनमें दौड़ रहे हैं, उनके नेत्र भी बड़े चञ्चल हैं, किङ्किणी, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण विभिन्न अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, ऐसे सुन्दर गोपबालकको नमस्कार करो।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक आठ लाख जप और पलाशकी समिधाओं अथवा खीरसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिका संकल्प करके उसमें मन्त्रसाधक स्थिरचित्त हो भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। चारों दिशा-विदिशाओंमें जो केसर हैं, उनमें अङ्गोंकी पूजा करे। फिर दिशाओंमें वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्धका तथा कोणोंमें रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवतीका पूजन करे। इनके बाह्यभागोंमें लोकेशों और आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

तार (ॐ), श्री (श्रीं), भुवना (ह्रीं), काम (क्लीं), ङे विभक्त्यन्त श्रीकृष्ण शब्द अर्थात् '**श्रीकृष्णाय**' ऐसा ही गोविन्द पद (**गोविन्दाय**),

१. यशोदा मैयाने रस्सीसे उन्हें बाँधा था, इसीसे कमरमें किंकिणीके साथ दाम (रस्सी)-की पूजाका विधान है।

फिर '**गोपीजनवल्लभाय**' तत्पश्चात् तीन पद्मा ( श्रीं श्रीं श्रीं )—यह ( **ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं** ) तेईस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि भी पूर्वोक्त ही हैं। सिद्ध गोपालका स्मरण करना चाहिये।

**ध्यान**

**माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाभिपालितौ।**
**दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरञ् जपेत्॥ ८७॥**

जो माधवीलतामय मण्डपमें बैठकर दिव्य क्रीडाओंमें तत्पर हैं, श्रीगरुडजी जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए मन्त्र-जप करना चाहिये।

श्रेष्ठ वैष्णवोंको पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। चक्री ( क् ) आठवें स्वर ( ऋ )-से युक्त हो और उसके साथ विसर्ग भी हो तो 'कृः' यह एकाक्षर मन्त्र होता है। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। इसके आदिमें क्लीं जोड़नेपर '**क्लीं कृष्ण**' यह तीन अक्षरोंका मन्त्र बनता है। वही ङे विभक्त्यन्त होनेपर चार अक्षरोंका '**क्लीं कृष्णाय**' मन्त्र होता है। '**कृष्णाय नमः**' यह पञ्चाक्षर-मन्त्र है। 'क्लीं' सम्पुटित कृष्ण पद भी अपर पञ्चाक्षर-मन्त्र है; यथा—**क्लीं कृष्णाय क्लीं**। '**गोपालाय स्वाहा**' यह षडक्षर-मन्त्र कहा गया है। '**क्लीं कृष्णाय स्वाहा**' यह भी दूसरा षडक्षर-मन्त्र है। '**कृष्णाय गोविन्दाय**' यह सप्ताक्षर-मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। '**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं**' यह दूसरा सप्ताक्षर-मन्त्र है। '**कृष्णाय गोविन्दाय नमः**' यह दूसरा नवाक्षर-मन्त्र है। '**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं**' यह भी इतर नवाक्षर-मन्त्र है। '**क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः**' यह दशाक्षर सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। '**बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा**' यह दूसरा दशाक्षर मन्त्र है। तदनन्तर गोपीजनमनोहर श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे—

**श्रीवृन्दाविपिनप्रतोलिषु नमत्संफुल्लवल्लीतति-**
**ष्वन्तर्जालविघट्टनैः सुरभिणा वातेन संसेविते।**
**कालिन्दीपुलिने विहारिणमथो राधैकजीवातुकं**
**वन्दे नन्दकिशोरमिन्दुवदनं स्निग्धाम्बुदाडम्बरम्॥**

(ना० पूर्व० ८१। ९६)

श्रीवृन्दावनकी गलियोंमें झुकी और फूली

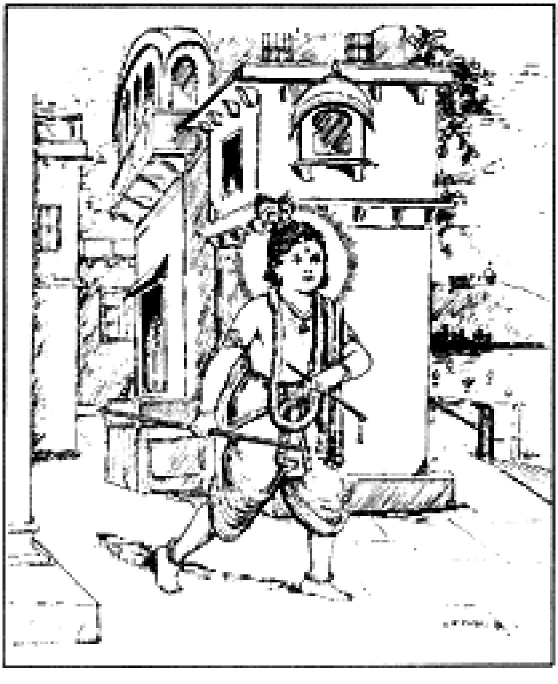

हुई लतावेलोंकी पङ्क्तियाँ फैली हुई हैं। उनके भीतर घुसकर लोट-पोट करनेसे शीतल-मन्द वायु सुगन्धसे भर गयी है। वह सुगन्धित वायु उस यमुना-पुलिनको सब ओरसे सुवासित कर रही है, जहाँ श्रीराधारानीके एकमात्र जीवनधन नागर नन्दकिशोर विचरण कर रहे हैं। उनका मुख चन्द्रमासे भी अधिक मनोहर है और उनकी अङ्गकान्ति स्निग्ध मेघोंकी श्याम मनोहर छविको छीने लेती है। मैं उन्हीं नटवर नन्दकिशोरकी वन्दना करता हूँ।

मुनीश्वर! इन मन्त्रोंकी पूजा पूर्वोक्त पद्धतिसे ही होती है, यह जानना चाहिये।

**देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।**
**देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥**[१]

(ना० पूर्व० ८१। ९७-९८)

यह बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, गायत्री और अनुष्टुप् छन्द तथा पुत्रप्रदाता श्रीकृष्ण देवता हैं। चारों पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे इसका अङ्ग-न्यास करे।

### ध्यान

**विजयेन युतो रथस्थितः प्रसमानीय समुद्रमध्यतः।**
**प्रददत्तनयान् द्विजन्मने स्मरणीयो वसुदेवनन्दनः ॥**

(ना० पूर्व० ८१। १००)

'जो अर्जुनके साथ रथपर बैठे हैं और क्षीरसागरसे लाकर ब्राह्मणके मरे पुत्रको उन्हें वापस दे रहे हैं, उन वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।'

इसका एक लाख जप और घी, चीनी तथा मधु-मेवा आदि मधुर पदार्थोंमें सने हुए तिलोंसे दस हजार होम करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधोंसहित श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है। '**ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा**' यह दूसरा अष्टाक्षर-मन्त्र है। इस पञ्चब्रह्मात्मक मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, परमा गायत्री छन्द तथा परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म

१. 'देवकीपुत्र! गोविन्द! वासुदेव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान करो।'

देवता कहे गये हैं। प्रणव बीज है और स्वाहा शक्ति कही गयी है। '**स्वाहा' हृदयाय नमः। सोऽहं शिरसे स्वाहा। हंसः शिखायै वषट्। हृल्लेखा कवचाय हुम्। ॐ नेत्राभ्यां वौषट्। 'हरिहर' अस्त्राय फट्।** इस प्रकार अङ्ग-न्यास करे।

**स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।**
**स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥**

(ना० पूर्व० ८१। १०७)

'विप्रवर! वे श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही सब रूपोंमें हैं तथा सब नाम उन्हींके हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके आठ लाख जप और दशांश होम करे। इनकी पूजा प्रणवात्मक पीठपर अङ्ग और आवरणदेवताओंके साथ करनी चाहिये। नारद! इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर साधक-शिरोमणि पुरुषको 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंका विकल्परहित ज्ञान प्राप्त होता है।

'**क्लीं हृषीकेशाय नमः**' यह अष्टाक्षर-मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और हृषीकेश देवता हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। 'क्लीं' बीज है तथा 'आय' शक्ति कही गयी है। बीजमन्त्रसे ही षडङ्ग-न्यास करके ध्यान करे। अथवा पुरुषोत्तम मन्त्रके लिये कही हुई सब बातें इसके लिये भी समझनी चाहिये। इसका एक लाख जप तथा घृतसे दस हजार होम करे। संमोहिनी कुसुमोंसे तर्पण करना सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। '**श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः**' यह चौदह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीधर देवता, श्रीं बीज और 'आय' शक्ति है। बीजसे ही षडङ्ग-न्यास करे। इसमें भी पुरुषोत्तम मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि कहे गये हैं। एक लाख जप और घीसे ही दशांश होमका विधान है। सुगन्धित श्वेत पुष्पोंसे पूजा और होम आदि करे। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर वह साक्षात् श्रीधरस्वरूप हो जाता है। '**अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः**' यह एक मन्त्र है और '**अच्युताय नमः', अनन्ताय नमः', गोविन्दाय नमः**'—ये तीन मन्त्र हैं। प्रथमके शौनक ऋषि और विराट् छन्द है। शेष तीन मन्त्रोंके क्रमशः पराशर, व्यास और नारद ऋषि हैं। छन्द इनका भी विराट् ही है। परब्रह्मस्वरूप श्रीहरि इन सब मन्त्रोंके देवता हैं। साधक इनके बीज और शक्ति भी पूर्वोक्त ही समझे।

### ध्यान

**शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥**
**सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम्।**
**सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥**
**श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्।**
**प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्॥**
**सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि।**
**अभयं वरदं देवं प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्॥**

(ना० पूर्व० ८१। १२०—१२३)

'भगवान् अच्युत शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। वे द्युतिमान् होनेसे 'देव' कहे गये हैं। उनके चार बाहें हैं। वे किरीटसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सब प्रकारके आयुध हैं। वे गरुड़की पीठपर बैठे हैं। सनक आदि मुनीश्वर तथा सम्पूर्ण देवता उनकी उपासना करते हैं। उनके उभय पार्श्वमें श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। वे उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनके कानोंके कमनीय कुण्डल प्रातःकाल उगते हुए सूर्यदेवके मण्डलके समान अरुण प्रकाशसे सुशोभित हैं। वे वरदायक देवता हैं, सदा परमानन्दसे परिपूर्ण रहते हैं और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये सदा ही सबको अभय प्रदान करते हैं। उनका कहीं किसी कालमें भी अन्त नहीं होता।'

इस प्रकार ध्यान करके एकाग्रचित्त हो

वैष्णवपीठपर भगवान्‌की पूर्ववत् पूजा करें। इनका प्रथम आवरण अङ्गोंद्वारा सम्पन्न होता है। चक्र, शङ्ख, गदा, खड्ग, मुसल, धनुष, पाश तथा अङ्कुश—इनसे द्वितीय आवरण बनता है। सनकादि चार महात्मा तथा पराशर, व्यास, नारद और शौनकसे तृतीय आवरण होता है। लोकपालोंद्वारा चौथा आवरण पूरा होता है। (पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंकी पूजा होती है।) इस मन्त्रका एक लाख जप और घृतसे दशांश हवन किया जाता है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्रोपासक कामनापूर्तिके लिये मन्त्रका प्रयोग भी कर सकता है। बेलके पेड़के नीचे उसकी जड़के समीप बैठकर देवेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए रोगीका स्मरण करे और उसका स्पर्श करके दस हजार मन्त्र जपे। ब्रह्मन्! वह स्पर्श करके, जप करके अथवा साध्यका मन-ही-मन स्मरण करके या मण्डल बनाकर रोगियोंको रोगसे मुक्त कर सकता है।

बाल (व्), पवन (य्) ये दोनों अक्षर दीर्घ आकार और अनुस्वारसे युक्त हों और झिंटीश (एकार)-से युक्त जल (व्) हो, तत्पश्चात् अत्रि अर्थात् दकार हो और उसके बाद **'व्यासाय'** पदके अन्तमें हृदय (**नमः**)-का प्रयोग हो तो यह (**व्यां वेदव्यासाय नमः**) अष्टाक्षर-मन्त्र बनता है। यह मन्त्र सबकी रक्षा करे। इसके ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, सत्यवतीनन्दन व्यास देवता, व्यां बीज और नमः शक्ति है। दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षर (**व्यां व्यीं व्यूं व्यैं व्यौं व्यः**)-द्वारा अङ्ग-न्यास करना चाहिये।

**ध्यान**

**व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं**
**वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम्।**
**विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिं**
**पाराशर्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं स्मरेत्सिद्धये॥**

(ना० पूर्व० ८१। १३६)

'जिनका दाहिना हाथ व्याख्याकी मुद्रासे सुशोभित

है, जो उत्तम योगपीठासनपर विराजमान हैं, जिन्होंने अपना बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रख छोड़ा है, जो उत्तम विद्याके भण्डार, ब्राह्मणसमूहसे घिरे हुए तथा प्रसन्नचित्त हैं, जिनकी अङ्गकान्ति कमलके समान तथा चरित्र अत्यन्त पुण्यमय है, उन पराशरनन्दन वेदव्यासका सिद्धिके लिये चिन्तन करे। आठ हजार मन्त्र-जप और खीरसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त पीठपर व्यासका पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि चार दिशाओंमें क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तका तथा ईशान आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीशुकदेव, रोमहर्षण, उग्रश्रवा तथा अन्य मुनियोंका पूजन करे। इनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रोपासक पुरुष कवित्वशक्ति, सुन्दर संतान, व्याख्यान-शक्ति, कीर्ति तथा सम्पदाओंकी निधि प्राप्त कर लेता है।

## श्रीनारदजीको भगवान् शङ्करसे प्राप्त हुए युगलशरणागति-मन्त्र तथा राधाकृष्ण-युगलसहस्त्रनामस्तोत्रका वर्णन

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—नारद! क्या तुम जानते हो कि पूर्व-जन्ममें तुमने साक्षात् भगवान् शङ्करसे युगल-मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया था। श्रीकृष्ण-मन्त्रका रहस्य, जिसे तुम भूल चुके हो, स्मरण तो करो।

**सूतजी कहते हैं**—ब्राह्मणो! परम बुद्धिमान् सनत्कुमारजीके द्वारा ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदने ध्यानमें स्थित हो अपने पूर्व-जन्मके चिरन्तन चरित्रको शीघ्र जान लिया। तब उन्होंने मुखसे आन्तरिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'भगवन्! पूर्व-कल्पका और वृत्तान्त तो मुझे स्मरण हो आया है; परंतु युगल-मन्त्रका लाभ किस प्रकार हुआ, यह याद नहीं आता।' महात्मा नारदका यह वचन सुनकर भगवान् सनत्कुमारने सब बातें यथावत्-रूपसे बतलाना आरम्भ किया।

**सनत्कुमारजी बोले**—ब्रह्मन्! सुनो, इस सारस्वत कल्पसे पच्चीसवें कल्प पूर्वकी बात है, तुम कश्यपजीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। उस समय भी तुम्हारा नाम नारद ही था। एक दिन तुम भगवान् श्रीकृष्णका परम तत्त्व पूछनेके लिये कैलास पर्वतपर भगवान् शिवके समीप गये। वहाँ तुम्हारे प्रश्न करनेपर, महादेवजीने स्वयं जिसका साक्षात्कार किया था, श्रीहरिकी नित्य-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले उस परम रहस्यका तुमसे यथार्थरूपमें वर्णन किया। तब तुमने श्रीहरिकी नित्य-लीलाका दर्शन करनेके लिये भगवान् शङ्करसे पुनः प्रार्थना की। तब भगवान् सदाशिव इस प्रकार बोले—'**गोपीजनवल्लभचरणाञ्छरणं[1] प्रपद्ये**' यह मन्त्र है। इस मन्त्रके सुरभि ऋषि, गायत्री

१. गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके चरणोंकी शरण लेता हूँ।

छन्द और गोपीवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं, '**प्रपन्नोऽस्मि**' ऐसा कहकर भगवान्‌की शरणागतिरूप भक्ति प्राप्त करनेके लिये इसका विनियोग बताया गया है। विप्रवर! इसका सिद्धादि-शोधन नहीं होता है। इसके लिये न्यासकी कल्पना भी नहीं की गयी है। केवल इस मन्त्रका चिन्तन ही भगवान्‌की नित्य लीलाको तत्काल प्रकाशित कर देता है। गुरुसे मन्त्र ग्रहण करके उनमें भक्तिभाव रखते हुए अपने धर्मपालनमें संलग्न हो गुरुदेवकी अपने ऊपर पूर्ण कृपा समझे और सेवाओंसे गुरुको संतुष्ट करे। साधुपुरुषोंके धर्मोंकी, जो शरणागतोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शिक्षा ले। इहलोक और परलोककी चिन्ता छोड़कर उन सिद्धिदायक धर्मोंको अपनावे। 'इहलोकका सुख, भोग और आयु पूर्वकर्मोंके अधीन हैं, कर्मानुसार उनकी व्यवस्था भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही करेंगे।' ऐसा दृढ़ विचार कर अपने मन और बुद्धिके द्वारा निरन्तर नित्यलीलापरायण श्रीकृष्णका चिन्तन करे। दिव्य अर्चाविग्रहोंके रूपमें भी भगवान्‌का अवतार होता है। अतः उन विग्रहोंकी सेवा-पूजा-द्वारा सदा श्रीकृष्णकी आराधना करे। भगवान्‌की शरण चाहनेवाले प्रपन्न भक्तोंको अनन्यभावसे उनका चिन्तन करना चाहिये और विद्वानोंको भगवान्‌का आश्रय रखकर देह-गेह आदिकी ओरसे उदासीन रहना चाहिये। गुरुकी अवहेलना, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगवान् शिव और विष्णुमें भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नामके बलपर पापाचार करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझना, नाम लेनेमें पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिकको भगवन्नामका उपदेश देना, भगवन्नामको भूलना अथवा नाममें आदरबुद्धि न होना—ये (दस) बड़े भयानक दोष हैं। वत्स! इन दोषोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये[1]। मैं भगवान्‌की शरणमें हूँ, इस भावसे सदा हृदयस्थित श्रीहरिका चिन्तन करे और यह विश्वास रखे कि वे भगवान् ही सदा मेरा पालन करते हैं और करेंगे। भगवान्‌से यह प्रार्थना करे—'राधानाथ! मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपका हूँ। श्रीकृष्णवल्लभे! मैं तुम्हारा ही हूँ। आप ही दोनों मेरे आश्रय हैं।' मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिके दास, सखा, पिता-माता और प्रेयसियाँ—सब-के-सब नित्य हैं; ऐसा महात्मा पुरुषोंको चिन्तन करना चाहिये। भगवान् श्यामसुन्दर प्रतिदिन वृन्दावन तथा व्रजमें आते-जाते और सखाओंके साथ गौएँ चराते हैं। केवल असुर-विध्वंसकी लीला सदा नहीं होती। श्रीहरिके श्रीदामा आदि बारह सखा कहे गये हैं तथा श्रीराधा-रानीकी सुशीला आदि बत्तीस सखियाँ बतायी गयी हैं। वत्स! साधकको चाहिये वह अपनेको श्यामसुन्दरकी सेवाके सर्वथा अनुरूप समझे और श्रीकृष्णसेवाजनित सुख एवं आनन्दसे अपनेको अत्यन्त संतुष्ट अनुभव करे। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तसे लेकर आधी राततक समयानुरूप सेवाके द्वारा दोनों प्रिया-प्रियतमकी परिचर्या करे। प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर उन युगल सरकारके सहस्र नामोंका पाठ भी करे। मुनीश्वर! यह प्रपन्न भक्तोंके लिये साधन बताया गया है। यह मैंने

१. गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरे हरौ। वेदनिन्दां हरेर्नामबलात्पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाखण्डं नामसंग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान्॥
(ना० पूर्व० ८२। २२—२४)

तुम्हारे समक्ष गूढ तत्त्व प्रकाशित किया है।

**सनत्कुमारजी कहते हैं**—नारद! तब तुमने पुनः भगवान् सदाशिवसे पूछा—'प्रभो! युगलसहस्रनाम कौन-से हैं? महामुने! तुम्हारे पूछनेपर भगवान् शिवने युगलसहस्रनाम भी बतलाया। वह सब मुझसे सुनो। रमणीय वृन्दावनमें यमुनाजीके तटसे लगे हुए कल्पवृक्षका सहारा लेकर श्यामसुन्दर श्रीराधारानीके साथ खड़े हैं। महामुने! ऐसा ध्यान करके युगलसहस्रनामका पाठ करे।

१. **देवकीनन्दनः**-देवकीको आनन्दित करनेवाले, २. **शौरिः**-शूरसेनके वंशज, ३. **वासुदेवः**-वसुदेव-पुत्र अथवा सबके भीतर निवास करनेवाले देवता, ४. **बलानुजः**-बलरामजीके छोटे भाई, ५. **गदाग्रजः**-गदके बड़े भाई, ६. **कंसमोहः**-अपनी अलौकिक शौर्यपूर्ण लीलाओंसे कंसको मोहित करनेवाले, ७. **कंससेवकमोहनः**-कंसकी सेवामें तत्पर असुर वीरोंको मोहित करनेवाले।

८. **भिन्नार्गलः**-जन्म लेनेके पश्चात् गोकुल-गमनकी इच्छासे कंसके कारागारमें लगे हुए किंवाड़ोंकी अर्गला (सिटकिनी)-का भेदन करनेवाले, ९. **भिन्नलोहः**-पिताके हाथों और पैरोंमें बँधी हुई लोहेकी हथकड़ी और बेड़ीको संकल्पमात्रसे तोड़ देनेवाले, १०. **पितृवाह्यः**-पिता वसुदेवके द्वारा सिरपर वहन करने योग्य शिशुरूप श्रीकृष्ण, ११. **पितृस्तुतः**-अवतारकालमें पिताके द्वारा जिनकी स्तुति की गयी, वे श्रीकृष्ण, १२. **मातृस्तुतः**-माता देवकीके द्वारा जिनकी स्तुति की गयी वे, १३. **शिवध्येयः**-भगवान् शङ्करके ध्यानके विषय, १४. **यमुनाजलभेदनः**-गोकुल जाते समय वसुदेवजीको मार्ग देनेके लिये यमुनाजीके जलका भेदन करनेवाले।

१५. **व्रजवासी**-व्रजमें निवास करनेवाले, १६. **व्रजानन्दी**-अपने शुभागमनसे सम्पूर्ण व्रजका आनन्द बढ़ानेवाले, १७. **नन्दबालः**-नन्दजीके पुत्र, १८. **दयानिधिः**-दयाके समुद्र, १९. **लीलाबालः**-लीलाके लिये बालरूपमें प्रकट, २०. **पद्मनेत्रः**-कमलसदृश नेत्रवाले, २१. **गोकुलोत्सवः**-गोकुलके लिये उत्सवरूप अथवा अपने जन्मसे गोकुलमें आनन्दोत्सवको बढ़ानेवाले, २२. **ईश्वरः**-सब प्रकारसे समर्थ।

२३. **गोपिकानन्दनः**-अपनी शैशवसुलभ चेष्टाओंसे यशोदा आदि गोपियोंको आनन्दित करनेवाले, २४. **कृष्णः**-सच्चिदानन्दस्वरूप अथवा सबको अपनी ओर खींचनेवाले, २५. **गोपानन्दः**-गोपोंके लिये मूर्तिमान् आनन्द, २६. **सताङ्गतिः**-साधु-महात्माओं तथा भक्तजनोंके आश्रय, २७. **बकप्राणहरः**-बकासुरके प्राण लेनेवाले, २८. **विष्णुः**-सर्वत्र व्यापक, २९. **बकमुक्तिप्रदः**-बकासुरको मोक्ष देनेवाले, ३०. **हरिः**- पाप, दुःख और अज्ञानको हर लेनेवाले।

३१. **बलदोलाशयशयः**-शेषस्वरूप बलरामरूपी हिंडोलेपर शयन करनेवाले, ३२. **श्यामलः**-श्यामवर्ण, ३३. **सर्वसुन्दरः**-पूर्ण सौन्दर्यके आश्रय, ३४. **पद्मनाभः**-जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ वे भगवान् विष्णु, ३५. **हृषीकेशः**-इन्द्रियोंके नियन्ता और प्रेरक, ३६. **क्रीडामनुजबालकः**-लीलाके लिये मनुष्य-बालकका रूप धारण किये हुए।

३७. **लीलाविध्वस्तशकटः**-अनायास ही चरणोंके स्पर्शसे छकड़ेको उलटकर उसमें स्थित असुरका नाश करनेवाले, ३८. **वेदमन्त्राभिषेचितः**-यशोदा मैयाकी प्रेरणासे बालारिष्टनिवारणके लिये ब्राह्मणोंद्वारा वेद-मन्त्रसे अभिषिक्त, ३९. **यशोदानन्दनः**-यशोदा मैयाको आनन्द देनेवाले, ४०. **कान्तः**-कमनीय स्वरूप, ४१. **मुनिकोटिनिषेवितः**-करोड़ों मुनियोंद्वारा सेवित।

४२. **नित्यं मधुवनवासी**-मधुवनमें नित्य निवास करनेवाले, ४३. **वैकुण्ठः**-वैकुण्ठधामके अधिपति

विष्णु, ४४. **सम्भवः**=सबकी उत्पत्तिके स्थान, ४५. **क्रतुः**=यज्ञस्वरूप, ४६. **रमापतिः**=लक्ष्मीपति, ४७. **यदुपतिः**=यदुवंशियोंके स्वामी, ४८. **मुरारिः**=मुर दैत्यके नाशक, ४९. **मधुसूदनः**=मधु नामक दैत्यको मारनेवाले।

५०. **माधवः**=यदुवंशान्तर्गत मधुकुलमें प्रकट, ५१. **मानहारी**=अभिमान और अहंकारका नाश करनेवाले, ५२. **श्रीपतिः**=लक्ष्मीके स्वामी, ५३. **भूधरः**=शेषनागरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ५४. **प्रभुः**=सर्वसमर्थ, ५५. **बृहद्वनमहालीलः**=महावनमें बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले, ५६. **नन्दसूनुः**=नन्दजीके पुत्र, ५७. **महासनः**=अनन्त शेषरूपी महान् आसनपर विराजनेवाले।

५८. **तृणावर्तप्राणहारी**=तृणावर्त नामक दैत्यको मारनेवाले, ५९. **यशोदाविस्मयप्रदः**=अपनी अद्भुत लीलाओंसे यशोदा मैयाको आश्चर्यमें डाल देनेवाले, ६०. **त्रैलोक्यवक्त्रः**=अपने मुखमें तीनों लोकोंको दिखानेवाले, ६१. **पद्माक्षः**=विकसित कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, ६२. **पद्महस्तः**=हाथमें कमल धारण करनेवाले, ६३. **प्रियङ्करः**=सबका प्रिय कार्य करनेवाले।

६४. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मण-हितकारी, ६५. **धर्मगोप्ता**=धर्मकी रक्षा करनेवाले, ६६. **भूपतिः**=पृथ्वीके स्वामी, ६७. **श्रीधरः**=वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण करनेवाले, ६८. **स्वराट्**=स्वयंप्रकाश, ६९. **अजाध्यक्षः**=ब्रह्माजीके स्वामी, ७०. **शिवाध्यक्षः**=भगवान् शिवके स्वामी, ७१. **धर्माध्यक्षः**=धर्मके अधिपति, ७२. **महेश्वरः**=परमेश्वर।

७३. **वेदान्तवेद्यः**=उपनिषदोंद्वारा जानने योग्य परमात्मा, ७४. **ब्रह्मस्थः**=वेदमें स्थित, ७५. **प्रजापतिः**=सम्पूर्ण जीवोंके पालक, ७६. **अमोघदृक्**=जिनकी दृष्टि कभी चूकती नहीं ऐसे सर्वसाक्षी, ७७. **गोपीकरावलम्बी**=गोपियोंके हाथको पकड़कर नाचनेवाले, ७८. **गोपबालकसुप्रियः**=गोपबालकोंके अत्यन्त प्रियतम।

७९. **बलानुयायी**=बलरामजीका अनुकरण करनेवाले, ८०. **बलवान्**=बली, ८१. **श्रीदामप्रियः**=श्रीदामाके प्रिय सखा, ८२. **आत्मवान्**=मनको वशमें करनेवाले, ८३. **गोपीगृहाङ्गणरतिः**=गोपियोंके घर और आँगनमें खेलनेवाले, ८४. **भद्रः**=कल्याणस्वरूप, ८५. **सुश्लोकमङ्गलः**=अपने लोकपावन सुयशसे सबका मङ्गल करनेवाले।

८६. **नवनीतहरः**=माखनका हरण करनेवाले, ८७. **बालः**=बाल्यावस्थासे विभूषित, ८८. **नवनीतप्रियाशनः**=मक्खन जिनका प्यारा भोजन है, ८९. **बालवृन्दी**=गोप-बालकोंके समुदायको साथ रखनेवाले, ९०. **मर्कवृन्दी**=वानरोंके झुंडके साथ खेलनेवाले, ९१. **चकिताक्षः**=आश्चर्ययुक्त चञ्चल नेत्रोंसे देखनेवाले, ९२. **पलायितः**=मैयाकी साँटीके भयसे भाग जानेवाले।

९३. **यशोदातर्जितः**=यशोदा मैयाकी डाँट सहनेवाले, ९४. **कम्पी**=मैया मारेगी इस भयसे काँपनेवाले, ९५. **मायारुदितशोभनः**=लीलाकृत रुदनसे सुशोभित, ९६. **दामोदरः**=मैयाद्वारा रस्सीसे कमरमें बाँधे जानेवाले, ९७. **अप्रमेयात्मा**=जिसकी कोई माप नहीं ऐसे स्वरूपसे युक्त, ९८. **दयालुः**=सबपर दया करनेवाले, ९९. **भक्तवत्सलः**=भक्तोंसे प्यार करनेवाले।

१००. **उलूखले सुबद्धः**=ऊखलमें अच्छी तरह बँधे हुए, १०१. **नम्रशिरा**=झुके मस्तकवाले, १०२. **गोपीकदर्थितः**=गोपियोंद्वारा यशोदा मैयाके पास जिनके बालचापल्यकी शिकायत की गयी है वे, १०३. **वृक्षभङ्गी**=यमलार्जुन नामक वृक्षोंको भङ्ग करनेवाले, १०४. **शोकभङ्गी**=स्वयं सुरक्षित रहकर स्वजनोंका शोक भङ्ग करनेवाले, १०५. **धनदात्मजमोक्षणः**=कुबेरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले।

१०६. **देवर्षिवचनश्लाघी**=देवर्षि नारदके वचनका आदर करनेवाले, १०७. **भक्तवात्सल्यसागरः**= भक्तवत्सलताके समुद्र, १०८. **व्रजकोलाहलकरः**= अपनी बालोचित क्रीड़ाओंसे व्रजमें कोलाहल मचा देनेवाले, १०९. **व्रजानन्दविवर्धनः**=व्रजवासियोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले।

११०. **गोपात्मा**=गोपस्वरूप, १११. **प्रेरकः**= इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिको प्रेरणा देनेवाले, ११२. **साक्षी**=अनन्त विश्वके सम्पूर्ण पदार्थों और भावोंके द्रष्टा, ११३. **वृन्दावननिवासकृत्**=वृन्दावनमें निवास करनेवाले, ११४. **वत्सपालः**=बछड़ोंको पालनेवाले, ११५. **वत्सपतिः**=बछड़ोंके स्वामी एवं रक्षक, ११६. **गोपदारकमण्डनः**=गोपबालकोंकी मण्डलीको सुशोभित करनेवाले।

११७. **बालक्रीडः**=बालोचित खेल खेलनेवाले, ११८. **बालरतिः**=गोपबालकोंसे प्रेम करनेवाले, ११९. **बालकः**=बालरूपधारी गोपाल, १२०. **कनकाङ्गदी**=सोनेका बाजूबंद पहननेवाले, १२१. **पीताम्बरः**=पीताम्बर पहननेवाले, १२२. **हेममाली**= सुवर्णमालाधारी, १२३. **मणिमुक्ताविभूषणः**=मणियों और मोतियोंके आभूषण धारण करनेवाले।

१२४. **किङ्किणीकटकी**=कटिमें क्षुद्र घण्टिका और हाथोंमें कड़े पहननेवाले, १२५. **सूत्री**= बाल्यावस्थामें सूतकी करधनी और बड़े होनेपर यज्ञोपवीत धारण करनेवाले; १२६. **नूपुरी**=पैरोंमें नूपुर पहननेवाले, १२७. **मुद्रिकान्वितः**=हाथकी अंगुलियोंमें अंगूठी धारण करनेवाले, १२८. **वत्सासुरप्रतिध्वंसी**=वत्सासुरका विनाश करनेवाले, १२९. **बकासुरविनाशनः**=बकासुरका विनाश करनेवाले।

१३०. **अघासुरविनाशी**=अघासुर नामक सर्परूपधारी दैत्यका विनाश करनेवाले, १३१. **विनिद्रीकृतबालकः**=सर्पके विषसे मूर्च्छित गोपबालकोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे जीवित करके जगानेवाले, १३२. **आद्यः**=सबके आदिकारण; १३३. **आत्मप्रदः**=प्रेमी भक्तोंके लिये अपने आत्मातकको दे डालनेवाले, १३४. **सङ्गी**=गोपबालकोंके सङ्ग रहनेवाले, १३५. **यमुनातीरभोजनः**= यमुनाजीके तटपर ग्वालबालोंके साथ भोजन करनेवाले।

१३६. **गोपालमण्डलीमध्यः** = ग्वालबालोंकी मण्डलीके बीचमें बैठनेवाले, १३७. **सर्वगोपालभूषणः**=सम्पूर्ण ग्वालबालोंको विभूषित करनेवाले, १३८. **कृतहस्ततलग्रासः**=हथेलीमें अन्नका ग्रास लेनेवाले, १३९. **व्यञ्जनाश्रितशाखिकः**=वृक्षोंपर भोजन-सामग्री एवं व्यञ्जन रखनेवाले।

१४०. **कृतबाहुशृङ्गयष्टिः**=हाथोंमें सींग और छड़ी धारण करनेवाले, १४१. **गुञ्जालंकृतकण्ठकः**= गुञ्जाकी मालासे अपने कण्ठको विभूषित करनेवाले, १४२. **मयूरपिच्छमुकुटः**=मोरपंखका मुकुट धारण करनेवाले, १४३. **वनमालाविभूषितः**=वनमालासे अलंकृत।

१४४. **गैरिकाचित्रितवपुः**=गेरूसे अपने शरीरमें चित्रोंकी रचना करनेवाले, १४५. **नवमेघवपुः**=नवीन मेघ-घटाके समान श्याम शरीरवाले, १४६. **स्मरः**= कामदेवस्वरूप, १४७. **कोटिकन्दर्पलावण्यः**= करोड़ों कामदेवोंके समान सौन्दर्यशाली, १४८. **लसन्मकरकुण्डलः**=सुन्दर मकराकृति कुण्डल धारण करनेवाले।

१४९. **आजानुबाहुः**=घुटनेतक लंबी भुजावाले, १५०. **भगवान्**=ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्णतया युक्त, १५१. **निद्रारहितलोचनः**=निद्राशून्य नेत्रोंवाले, १५२. **कोटिसागरगाम्भीर्यः**=करोड़ों समुद्रोंके समान गम्भीर, १५३. **कालकालः**=कालके भी महाकाल, १५४. **सदाशिवः**=नित्य कल्याणस्वरूप।

१५५. **विरञ्चिमोहनवपुः**=अपने अद्भुतरूपसे ब्रह्माजीको भी मोहमें डालनेवाले, १५६. **गोप**-

**वत्सवपुर्धरः**-ग्वालबालों और बछड़ोंका रूप धारण करनेवाले, १५७. **ब्रह्माण्डकोटिजनकः**-करोड़ों ब्रह्माण्डोंके उत्पादक, १५८. **ब्रह्ममोहविनाशकः**-ब्रह्माजीके मोहका नाश करनेवाले।

१५९. **ब्रह्मा**-स्वयं ही ब्रह्माजीके रूपमें प्रकट, १६०. **ब्रह्मेडितः**-ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत, १६१. **स्वामी**-सबके अधिपति, १६२. **शक्रदर्पादिनाशनः**- इन्द्रके घमंड आदिको नष्ट करनेवाले, १६३. **गिरिपूजोपदेष्टा**-गोवर्धन पर्वतकी पूजाका उपदेश देनेवाले, १६४. **धृतगोवर्धनाचलः**-गोवर्धन पर्वतको धारण करनेवाले।

१६५. **पुरन्दरेडितः**-इन्द्रके द्वारा स्तुत, १६६. **पूज्यः**-सबके लिये पूजनीय, १६७. **कामधेनुप्रपूजितः**-कामधेनुद्वारा पूजित, १६८. **सर्वतीर्थाभिषिक्तः**-सुरभिद्वारा सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे इन्द्रपदपर अभिषिक्त, १६९. **गोविन्दः**-गौओंके इन्द्र होनेपर गोविन्द नामसे प्रसिद्ध, १७०. **गोपरक्षकः**-गोपोंकी रक्षा करनेवाले।

१७१. **कालियार्तिकरः**-कालिय नागका दमन करनेवाले, १७२. **क्रूरः**-दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये कठोर, १७३. **नागपत्नीरितः**-नागपत्नियोंद्वारा स्तुत, १७४. **विराट्**-विराट् पुरुष, १७५. **धेनुकारिः**-धेनुकासुरके शत्रु, १७६. **प्रलम्बारिः**-बलभद्ररूपसे प्रलम्ब नामक असुरका नाश करनेवाले, १७७. **वृषासुरविमर्दनः**-वृषभरूपधारी अरिष्टासुरका मर्दन करनेवाले।

१७८. **मयासुरात्मजध्वंसी**-मयासुरके पुत्र व्योमासुरका नाश करनेवाले, १७९. **केशिकण्ठविदारकः**-केशीका कण्ठ विदीर्ण करनेवाले, १८०. **गोपगोप्ता**-ग्वालोंके रक्षक, १८१. **दावाग्निपरिशोषकः**-दावानलका शोषण करनेवाले।

१८२. **गोपकन्यावस्त्रहारी**-गोपकुमारियोंके चीर हरण करनेवाले, १८३. **गोपकन्यावरप्रदः**-गोपकन्याओंको वर देनेवाले, १८४. **यज्ञपत्न्यन्नभोजी**- यज्ञपत्नियोंके अन्न भोजन करनेवाले, १८५. **मुनिमानापहारकः**-अपनेको मुनि माननेवाले ब्राह्मणोंके अभिमानको दूर करनेवाले।

१८६. **जलेशमानमथनः**-जलके स्वामी वरुणका मान मर्दन करनेवाले, १८७. **नन्दगोपालजीवनः**-अजगरसे छुड़ाकर नन्दगोपको जीवन देनेवाले, १८८. **गन्धर्वशापमोक्ता**-अजगररूपमें आये हुए गन्धर्व (विद्याधर)-को शापसे छुड़ानेवाले, १८९. **शङ्खचूडशिरोहरः**-शङ्खचूड नामक गुह्यकका मस्तक काट लेनेवाले।

१९०. **वंशीवटी**-वंशीवटके समीप लीला करनेवाले, १९१. **वेणुवादी**-वंशी बजानेवाले, १९२. **गोपीचिन्तापहारकः**-गोपियोंकी चिन्ताको दूर करनेवाले, १९३. **सर्वगोप्ता**-सबके रक्षक, १९४. **समाह्वानः**-सबके द्वारा पुकारे जानेवाले, १९५. **सर्वगोपीमनोरथः**-सम्पूर्ण गोपाङ्गनाओंके अभीष्ट।

१९६. **व्यङ्ग्यधर्मप्रवक्ता**-व्यङ्ग्योक्तिद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाले, १९७. **गोपीमण्डलमोहनः**-गोपसुन्दरियोंके समुदायको मोहित करनेवाले, १९८. **रासक्रीडारसास्वादी**-रासक्रीडाके रसका आस्वादन करनेवाले, १९९. **रसिकः**-रसका अनुभव करनेवाले, २००. **राधिकाधवः**-श्रीराधाके प्राणनाथ।

२०१. **किशोरीप्राणनाथः**-श्रीकिशोरीजीके प्राणवल्लभ, २०२. **वृषभानुसुताप्रियः**-वृषभानुनन्दिनीके प्यारे, २०३. **सर्वगोपीजनानन्दी**-सम्पूर्ण गोपीजनोंको आनन्द देनेवाले, २०४. **गोपीजनविमोहनः**-गोपाङ्गनाओंके मनको मोह लेनेवाले।

२०५. **गोपिकागीतचरितः**-गोपाङ्गनाओंद्वारा गाये हुए पावन चरित्रवाले, २०६. **गोपीनर्तनलालसः**-गोपियोंके रासनृत्यकी अभिलाषा रखनेवाले, २०७. **गोपीस्कन्धाश्रितकरः**-गोपीके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाले, २०८. **गोपिकाचुम्बनप्रियः**-

यशोदा आदि मातृस्थानीया वात्सल्यवती गोपियोंके द्वारा किया जानेवाला मुखचुम्बन जिन्हें प्रिय है वे श्यामसुन्दर।

२०९. **गोपिकामार्जितमुखः**-गोपाङ्गनाएँ अपने अञ्चलसे जिनका मुख पोंछती हैं वे, २१०. **गोपीव्यजनवीजितः**-गोपियाँ जिन्हें पंखा डुलाकर आराम पहुँचाती हैं वे, २११. **गोपिकाकेशसंस्कारी**-गोपिकाके केशोंको सँवारनेवाले, २१२. **गोपिकापुष्पसंस्तरः**-गोपिकाका फूलोंसे शृङ्गार करनेवाले।

२१३. **गोपिकाहृदयालम्बी**-गोपीके हृदयका आश्रय लेनेवाले, २१४. **गोपीवहनतत्परः**-गोपी (श्रीराधा)-को कंधेपर बिठाकर ढोनेके लिये प्रस्तुत, २१५. **गोपिकामदहारी**-गोपाङ्गनाओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, २१६. **गोपिकापरमार्जितः**-गोपाङ्गनाओंको परम फलके रूपमें प्राप्त।

२१७. **गोपिकाकृतसल्लीलः**-रासलीलामें अन्तर्धान हो जानेपर गोपिकाओंने जिनकी पवित्र लीलाओंका अनुकरण किया था वे श्रीकृष्ण, २१८. **गोपिकासंस्मृतप्रियः**- गोपिकाओंद्वारा निरन्तर चिन्तन किये जानेवाले प्रियतम, २१९. **गोपिकावन्दितपदः**-गोपाङ्गनाओंद्वारा वन्दित चरणोंवाले, २२०. **गोपिकावशवर्तनः**-गोपसुन्दरियोंके वशमें रहनेवाले।

२२१. **राधापराजितः**-श्रीराधारानीसे हार मान लेनेवाले, २२२. **श्रीमान्**-शोभाशाली, २२३. **निकुञ्जेसुविहारवान्**-वृन्दावनके कुञ्जमें सुन्दर लीला करनेवाले, २२४. **कुञ्जप्रियः**-निकुञ्जके प्रेमी, २२५. **कुञ्जवासी**-कुञ्जमें निवास करनेवाले, २२६. **वृन्दावनविकाशनः**-वृन्दावनको प्रकाशित करनेवाले।

२२७. **यमुनाजलसिक्ताङ्गः**-यमुनाजीके जलसे अभिषिक्त अङ्गोंवाले, २२८. **यमुनासौख्यदायकः**-यमुनाजीको सुख देनेवाले, २२९. **शशिसंस्तम्भनः**-रासलीलाकी रात्रिमें चन्द्रमाकी गतिको रोक देनेवाले, २३०. **शूरः**-अखण्ड शौर्यसम्पन्न, २३१. **कामी**-प्रेमी भक्तोंसे मिलनेकी कामनावाले, २३२. **कामविमोहनः**-अपनी दिव्य लीलाओंसे कामदेवको विमोहित कर देनेवाले।

२३३. **कामाद्यः**-कामदेवके आदिकारण, २३४. **कामनाथः**-कामके स्वामी, २३५. **काममानसभेदनः**-कामदेवके भी हृदयका भेदन करनेवाले, २३६. **कामदः**-इच्छानुरूप भोग देनेवाले, २३७. **कामरूपः**-भक्तजनोंकी कामनाके अनुरूप रूप धारण करनेवाले, २३८. **कामिनीकामसंचयः**-गोपकामिनियोंके प्रेमका संग्रह करनेवाले।

२३९. **नित्यक्रीडः**-नित्य खेल करनेवाले, २४०. **महालीलः**-महती लीला करनेवाले, २४१. **सर्वः**-सर्वस्वरूप, २४२. **सर्वगतः**-सर्वत्र व्यापक, २४३. **परमात्मा**-परब्रह्मस्वरूप, २४४. **पराधीशः**-परमेश्वर, २४५. **सर्वकारणकारणः**-समस्त कारणोंके भी कारण।

२४६. **गृहीतनारदवचाः**-नारदजीके वचन माननेवाले, २४७. **अक्रूरपरिचिन्तितः**-व्रजमें जाते हुए अक्रूरजीके द्वारा मार्गमें जिनका विशेषरूपसे चिन्तन किया गया, वे श्रीकृष्ण, २४८. **अक्रूरवन्दितपदः**-अक्रूरजीके द्वारा वन्दित चरणोंवाले, २४९. **गोपिकातोषकारकः**-भावी विरहसे व्याकुल हुई गोपाङ्गनाओंको सान्त्वना देनेवाले।

२५०. **अक्रूरवाक्यसंग्राही**-अक्रूरजीके वचनोंको स्वीकार करनेवाले, २५१. **मथुरावासकारणः**-मथुरामें निवास करनेवाले, २५२. **अक्रूरतापशमनः**-अक्रूरजीका दुःख दूर करनेवाले, २५३. **रजकायुःप्रणाशनः**-कंसके धोबीकी आयुको नष्ट करनेवाले।

२५४. **मथुरानन्ददायी**-मथुरावासियोंको आनन्द देनेवाले, २५५. **कंसवस्त्रविलुण्ठनः**-कंसके कपड़ोंको लूट लेनेवाले, २५६. **कंसवस्त्रपरीधानः**-कंसके वस्त्र पहननेवाले, २५७. **गोपवस्त्रप्रदायकः**-ग्वालबालोंको वस्त्र देनेवाले।

२५८. **सुदामगृहगामी**-सुदामा मालीके घर जानेवाले, २५९. **सुदामपरिपूजितः**-सुदामा मालीके द्वारा पूजित, २६०. **तन्तुवायकसम्प्रीतः**-दर्जीके ऊपर प्रसन्न, २६१. **कुब्जाचन्दनलेपनः**-कुब्जाके घिसे हुए चन्दनको अपने श्रीअङ्गोंमें लगानेवाले।

२६२. **कुब्जारूपप्रदः**-कुब्जाको सुन्दर रूप देनेवाले, २६३. **विज्ञः**-विशिष्ट ज्ञानवान्, २६४. **मुकुन्दः**-मोक्ष देनेवाले, २६५. **विष्टरश्रवाः**-विस्तृत सुयश एवं कानोंवाले, २६६. **सर्वज्ञः**-सब कुछ जाननेवाले, २६७. **मथुरालोकी**-मथुरानगरीका दर्शन करनेवाले, २६८. **सर्वलोकाभिनन्दनः**-सब लोगोंसे अभिनन्दन (सम्मान) पानेवाले।

२६९. **कृपाकटाक्षदर्शी**-कृपापूर्ण कटाक्षसे सबकी ओर देखनेवाले, २७०. **दैत्यारिः**-दैत्योंके शत्रु, २७१. **देवपालकः**-देवताओंके रक्षक, २७२. **सर्वदुःखप्रशमनः**-सबके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाले, २७३. **धनुर्भङ्गी**- धनुष तोड़नेवाले, २७४. **महोत्सवः**-महान् उत्सवरूप।

२७५. **कुवलयापीडहन्ता**-कुवलयापीड नामक हाथीका वध करनेवाले, २७६. **दन्तस्कन्धः**-हाथीके तोड़े हुए दाँतोंको कंधेपर धारण करनेवाले, २७७. **बलाग्रणी**-बलरामजीको आगे करके चलनेवाले, २७८. **कल्परूपधरः**-विभिन्न लोगोंके लिये उनकी भावनाके अनुसार रूप धारण करनेवाले, २७९. **धीरः**-अविचल धैर्यसे सम्पन्न, २८०. **दिव्यवस्त्रानुलेपनः**-दिव्य वस्त्र तथा दिव्य अङ्गराग धारण करनेवाले।

२८१. **मल्लरूपः**-कंसके अखाड़ेमें पहलवानके रूपमें उपस्थित, २८२. **महाकालः**-महान् कालरूप, २८३. **कामरूपी**-इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, २८४. **बलान्वितः**-अनन्त बलसम्पन्न, २८५. **कंसत्रासकरः**-कंसको भयभीत कर देनेवाले, २८६. **भीमः**-कंसके लिये भयंकर, २८७. **मुष्टिकान्तः**-बलभद्ररूपसे मुष्टिकके जीवनका अन्त कर देनेवाले, २८८. **कंसहा**-कंसका वध करनेवाले।

२८९. **चाणूरघ्नः**-चाणूरका नाश करनेवाले, २९०. **भयहरः**-भय हर लेनेवाले, २९१. **शलारिः**-शलके शत्रु, २९२. **तोशलान्तकः**-तोशलका अन्त करनेवाले, २९३. **वैकुण्ठवासी**-विष्णुरूपसे वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले, २९४. **कंसारिः**-कंसके शत्रु, २९५. **सर्वदुष्टनिषूदनः**-सब दुष्टोंका संहार करनेवाले।

२९६. **देवदुन्दुभिनिर्घोषी**-देव-दुन्दुभिघोषके कारण, २९७. **पितृशोकनिवारणः**-पिता-माता (वसुदेव-देवकी)-का शोक दूर करनेवाले, २९८. **यादवेन्द्रः**-यदुकुलके स्वामी, २९९. **सतां नाथः**-सत्पुरुषोंके रक्षक, ३००. **यादवारिप्रमर्दनः**-यादवोंके शत्रुओंका मर्दन करनेवाले।

३०१. **शौरिशोकविनाशी**-वसुदेवजीके शोकका नाश करनेवाले, ३०२. **देवकीतापनाशनः**-देवकीका संताप नष्ट करनेवाले, ३०३. **उग्रसेनपरित्राता**-उग्रसेनके रक्षक, ३०४. **उग्रसेनाभिपूजितः**-उग्रसेनद्वारा पूजित।

३०५. **उग्रसेनाभिषेकी**-उग्रसेनका राज्याभिषेक करनेवाले, ३०६. **उग्रसेनदयापरः**-उग्रसेनके प्रति दयाभाव बनाये रखनेवाले, ३०७. **सर्वसात्वतसाक्षी**-सम्पूर्ण यदुवंशियोंकी देख-भाल करनेवाले, ३०८. **यदूनामभिनन्दनः**-यदुवंशियोंको आनन्दित करनेवाले।

३०९. **सर्वमाथुरसंसेव्यः**-सम्पूर्ण मथुरावासियोंद्वारा सेवन करने योग्य, ३१०. **करुणः**-दयालु, ३११. **भक्तबान्धवः**-भक्तोंके भाई-बन्धु, ३१२. **सर्वगोपालधनदः**-सम्पूर्ण ग्वालोंको धन देनेवाले, ३१३. **गोपीगोपाललालसः**-गोपियों और ग्वालोंसे मिलनेके लिये उत्सुक रहनेवाले।

३१४. **शौरिदत्तोपवीती**-वसुदेवजीके द्वारा उपनयन-संस्कारमें दिये हुए यज्ञोपवीतको धारण करनेवाले, ३१५. **उग्रसेनदयाकरः**-उग्रसेनपर दया करनेवाले, ३१६. **गुरुभक्तः**-गुरु सान्दीपनिके

प्रति भक्तिभावसे युक्त, ३१७. **ब्रह्मचारी**=गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले, ३१८. **निगमाध्ययने रतः**=वेदाध्ययनपरायण।

३१९. **संकर्षणसहाध्यायी**=बलरामजीके सहपाठी, ३२०. **सुदामसुहृत्**=सुदामा ब्राह्मणके सखा, ३२१. **विद्यानिधिः**=विद्याके भण्डार, ३२२. **कलाकोषः**=सम्पूर्ण कलाओंके कोषागार, ३२३. **मृतपुत्रप्रदः**=मरे हुए गुरुपुत्रोंको यमलोकसे जीवित लाकर गुरुकी सेवामें अर्पित करनेवाले।

३२४. **चक्री**=सुदर्शन चक्रधारी, ३२५. **पाञ्चजनी**=पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले, ३२६. **सर्वनारकिमोचनः**=सम्पूर्ण नरकवासियोंका उद्धार करनेवाले, ३२७. **यमार्चितः**=यमराजद्वारा पूजित, ३२८. **परः**= सर्वोत्कृष्ट, ३२९. **देवः**=द्युतिमान्,३३०. **नामोच्चारवशः**=अपने नामके उच्चारणमात्रसे वशमें हो जानेवाले, ३३१. **अच्युतः**=अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले।

३३२. **कुब्जाविलासी**=कुब्जाके कुबड़ेपनको मिटानेकी लीला करनेवाले, ३३३. **सुभगः**=पूर्ण सौभाग्यशाली, ३३४. **दीनबन्धुः**=दीन-दुःखियों और असहायोंके बन्धु, ३३५. **अनूपमः**=जिनके समान दूसरा कोई नहीं, ३३६. **अक्रूरगृहगोप्ता**=अक्रूरके गृहकी रक्षा करनेवाले, ३३७. **प्रतिज्ञापालकः**= प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले, ३३८. **शुभः**=शुभस्वरूप।

३३९. **जरासन्धजयी**=सत्रह बार जरासन्धको जीतनेवाले, ३४०. **विद्वान्**=सर्वज्ञ, ३४१. **यवनान्तः**=कालयवनका अन्त करनेवाले, ३४२. **द्विजाश्रयः**=द्विजोंके आश्रय, ३४३. **मुचुकुन्दप्रियकरः**=मुचुकुन्दका प्रिय करनेवाले, ३४४. **जरासन्धपलायितः**=अठारहवीं बारके युद्धमें जरासन्धके सामनेसे युद्ध छोड़कर भाग जानेवाले।

३४५. **द्वारकाजनकः**=द्वारकापुरीको प्रकट करनेवाले, ३४६. **गूढः**=मानवरूपमें छिपे हुए परमात्मा, ३४७. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मणभक्त, ३४८. **सत्यसंगरः**=सत्यप्रतिज्ञ, ३४९. **लीलाधरः**=लीलाधारी, ३५०. **प्रियकरः**=सबका प्रिय करनेवाले, ३५१. **विश्वकर्मा**=बहुत प्रकारके कर्म करनेवाले, ३५२. **यशप्रदः**=दूसरोंको यश देनेवाले।

३५३. **रुक्मिणीप्रियसंदेशः**=रुक्मिणीको प्रिय संदेश देनेवाले, ३५४. **रुक्मिशोकविवर्धनः**=रुक्मीका शोक बढ़ानेवाले, ३५५. **चैद्यशोकालयः**=शिशुपालके लिये शोकके भण्डार, ३५६. **श्रेष्ठः**=उत्तम गुणसम्पन्न, ३५७. **दुष्टराजन्यनाशनः**=दुष्ट राजाओंका नाश करनेवाले।

३५८. **रुक्मिवैरूप्यकरणः**=रुक्मीके आधे बाल मुड़ाकर उसे कुरूप बना देनेवाले, ३५९. **रुक्मिणीवचने रतः**=रुक्मिणीके वचनका पालन करनेमें तत्पर, ३६०. **बलभद्रवचोग्राही**= बलभद्रजीकी आज्ञा माननेवाले, ३६१. **मुक्तरुक्मी**=रुक्मीको जीवित छोड़ देनेवाले, ३६२. **जनार्दनः**= भक्तोंद्वारा याचित।

३६३. **रुक्मिणीप्राणनाथः**=रुक्मिणीके प्राणवल्लभ, ३६४. **सत्यभामापतिः**=सत्यभामाके स्वामी, ३६५. **स्वयं भक्तपक्षी**=स्वयं ही भक्तोंका पक्ष लेनेवाले, ३६६. **भक्तिवश्यः**=भक्तिसे वशमें हो जानेवाले, ३६७. **अक्रूरमणिदायकः**=अक्रूरजीको स्यमन्तकमणि देनेवाले।

३६८. **शतधन्वप्राणहारी**=शतधन्वाके प्राण लेनेवाले, ३६९. **ऋक्षराजसुताप्रियः**=रीछोंके राजा जाम्बवान्‌की पुत्रीके प्रियतम पति, ३७०. **सत्राजित्तनयाकान्तः**=सत्राजित्‌की सुपुत्री सत्यभामाके प्राणवल्लभ, ३७१. **मित्रविन्दापहारकः**=मित्रविन्दाका अपहरण करनेवाले।

३७२. **सत्यापतिः**=नग्नजित्‌की पुत्री सत्याके स्वामी, ३७३. **लक्ष्मणाजित्**=स्वयंवरमें लक्ष्मणाको जीतनेवाले, ३७४. **पूज्यः**=पूजाके योग्य, ३७५. **भद्राप्रियङ्करः**=भद्राका प्रिय करनेवाले,

३७६. **नरकासुरघाती**=नरकासुरका वध करनेवाले, ३७७. **लीलाकन्याहरः**=लीलापूर्वक षोडश सहस्र कन्याओंको नरकासुरकी कैदसे छुड़ाकर अपने साथ ले जानेवाले, ३७८. जयी=विजयशील।

३७९. **मुरारिः**=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ३८०. **मदनेशः**=कामदेवपर भी शासन करनेवाले, ३८१. **धरित्रीदुःखनाशनः**=धरतीका दुःख दूर करनेवाले, ३८२. **वैनतेयी**=गरुड़के स्वामी, ३८३. **स्वर्गगामी**=पारिजातके लिये स्वर्गलोककी यात्रा करनेवाले, ३८४. **अदित्याः कुण्डलप्रदः**= अदितिको कुण्डल देनेवाले।

३८५. **इन्द्रार्चितः**=इन्द्रके द्वारा पूजित, ३८६. **रमाकान्तः**=लक्ष्मीके प्रियतम, ३८७. **वज्रिभार्याप्रपूजितः**=इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा पूजित, ३८८. **पारिजातापहारी**=पारिजात वृक्षका अपहरण करनेवाले, ३८९. **शक्रमानापहारकः**=इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेवाले।

३९०. **प्रद्युम्नजनकः**=प्रद्युम्नके पिता, ३९१. **साम्बतातः**=साम्बके पिता, ३९२. **बहुसुतः**= अधिक पुत्रोंवाले, ३९३. **विधुः**=विष्णुस्वरूप, ३९४. **गर्गाचार्यः**=गर्गमुनिको आचार्य बनानेवाले, ३९५. **सत्यगतिः**=सत्यसे ही प्राप्त होनेवाले, ३९६. **धर्माधारः**=धर्मके आश्रय, ३९७. **धराधरः**= पृथ्वीको धारण करनेवाले।

३९८. **द्वारकामण्डनः**=द्वारकाको सुशोभित करनेवाले, ३९९. **श्लोक्यः**=यशोगानके योग्य, ४००. **सुश्लोकः**=उत्तम यशवाले, ४०१. **निगमालयः**= वेदोंके आश्रय, ४०२. **पौण्ड्रकप्राणहारी**=मिथ्या वासुदेवनामधारी पौण्ड्रकके प्राण लेनेवाले, ४०३. **काशिराजशिरोहरः**=काशिराजका सिर काटनेवाले।

४०४. **अवैष्णवविप्रदाही**=अवैष्णव ब्राह्मणोंको, जो यदुवंशियोंके प्रति मारणका प्रयोग कर रहे थे, दग्ध करनेवाले, ४०५. **सुदक्षिणभयावहः**= काशिराजके पुत्र सुदक्षिणको भय देनेवाले, ४०६. **जरासन्धविदारी**=भीमसेनके द्वारा जरासन्धको चीर डालनेवाले, ४०७. **धर्मनन्दनयज्ञकृत्**=धर्मपुत्र युधिष्ठिरका यज्ञ पूर्ण करनेवाले।

४०८. **शिशुपालशिरश्छेदी**=शिशुपालका सिर काटनेवाले, ४०९. **दन्तवक्त्रविनाशनः**=दन्तवक्त्रका नाश करनेवाले, ४१०. **विदूरथान्तकः**=विदूरथके काल, ४११. **श्रीशः**=लक्ष्मीके स्वामी, ४१२. **श्रीदः**= सम्पत्ति देनेवाले, ४१३. **द्विविदनाशनः**=बलभद्ररूपसे द्विविद वानरका नाश करनेवाले।

४१४. **रुक्मिणीमानहारी**= रुक्मिणीका अभिमान दूर करनेवाले, ४१५. **रुक्मिणीमानवर्धनः**=रुक्मिणीका सम्मान बढ़ानेवाले, ४१६. **देवर्षिशापहर्ता**=देवर्षि नारदका शाप दूर करनेवाले, ४१७. **द्रौपदीवाक्यपालकः**=द्रौपदीके वचनोंका पालन करनेवाले।

४१८. **दुर्वासोभयहारी**=दुर्वासाका भय दूर करनेवाले, ४१९. **पाञ्चालीस्मरणागतः**=द्रौपदीके स्मरण करते ही आ पहुँचनेवाले, ४२०. **पार्थदूतः**= कुन्तीपुत्रोंके दूत, ४२१. **पार्थमन्त्री**=कुन्तीपुत्रोंके मन्त्री (सलाहकार), ४२२. **पार्थदुःखौघनाशनः**= कुन्तीपुत्रोंके दुःखसमुदायका नाश करनेवाले।

४२३. **पार्थमानापहारी**=कुन्तीपुत्रोंका अभिमान दूर करनेवाले, ४२४. **पार्थजीवनदायकः**=कुन्तीपुत्रोंको जीवन देनेवाले, ४२५. **पाञ्चालीवस्त्रदाता**=कौरवोंकी सभामें द्रौपदीको वस्त्रराशि अर्पण करनेवाले, ४२६. **विश्वपालकपालकः**=विश्वकी रक्षा करनेवाले देवताओंके भी रक्षक।

४२७. **श्वेताश्वसारथिः**=श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनके सारथि, ४२८. **सत्यः**=सत्यस्वरूप, ४२९. **सत्यसाध्यः**= सत्यसे ही प्राप्त होने योग्य, ४३०. **भयापहः**= भक्तोंके भयका नाश करनेवाले, ४३१. **सत्यसन्धः**= सत्यप्रतिज्ञ, ४३२. **सत्यरतिः**=सत्यमें रत, ४३३. **सत्यप्रियः**=सत्य जिनको प्यारा है, ४३४. **उदारधीः**=उदार बुद्धिवाले।

४३५. **महासेनजयी**=शोणितपुरमें बाणासुरके पक्षमें युद्धके लिये आये हुए स्वामिकार्तिकेयको भी परास्त करनेवाले, ४३६. **शिवसैन्यविनाशनः**= भगवान् शिवकी सेनाको मार भगानेवाले, ४३७. **बाणासुरभुजच्छेत्ता**=बाणासुरकी भुजाओंको काटनेवाले, ४३८. **बाणबाहुवरप्रदः**=बाणासुरको चार भुजाओंसे युक्त रहनेका वर देनेवाले।

४३९. **तार्क्ष्यमानापहारी**=गरुड़का अभिमान चूर्ण करनेवाले, ४४०. **तार्क्ष्यतेजोविवर्धनः**=गरुड़के तेजको बढ़ानेवाले, ४४१. **रामस्वरूपधारी**=श्रीरामका स्वरूप धारण करनेवाले, ४४२. **सत्यभामामुदावहः**= सत्यभामाको आनन्द देनेवाले।

४४३. **रत्नाकरजलक्रीडः**=समुद्रके जलमें क्रीडा करनेवाले, ४४४. **व्रजलीलाप्रदर्शकः**=अधिकारी भक्तोंको व्रजलीलाका दर्शन करानेवाले, ४४५. **स्वप्रतिज्ञा-परिध्वंसी**=भीष्मजीकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देनेवाले, ४४६. **भीष्माज्ञापरिपालकः**= भीष्मकी आज्ञाका पालन करनेवाले।

४४७. **वीरायुधहरः**=वीरोंके अस्त्र-शस्त्र हर लेनेवाले, ४४८. **कालः**=कालस्वरूप, ४४९. **कालि-केशः**=कालिकाके स्वामी, ४५०. **महाबलः**= महाशक्तिसम्पन्न, ४५१. **बर्बरीकशिरोहारी**=बर्बरीकका सिर काटनेवाले, ४५२. **बर्बरीकशिरप्रदः**=बर्बरीकका सिर देनेवाले।

४५३. **धर्मपुत्रजयी**=धर्मपुत्र युधिष्ठिरको जय दिलानेवाले, ४५४. **शूरदुर्योधनमदान्तकः**= शूरवीर दुर्योधनके मदका नाश करनेवाले, ४५५. **गोपिकाप्रीतिनिर्बन्धनित्यक्रीडः**= गोपाङ्गनाओंके प्रेमपूर्ण आग्रहसे वृन्दावनमें नित्य लीला करनेवाले, ४५६. **व्रजेश्वरः**=व्रजके स्वामी।

४५७. **राधाकुण्डरतिः**= राधाकुण्डमें खेल करनेवाले, ४५८. **धन्यः**=धन्यवादके योग्य, ४५९. **सदान्दोलसमाश्रितः**=सदा झूलेपर झूलनेवाले, ४६०. **सदामधुवनानन्दी**=सदा मधुवनमें आनन्द लेनेवाले, ४६१. **सदावृन्दावनप्रियः**= वृन्दावनके शाश्वत प्रेमी।

४६२. **अशोकवनसन्नद्धः**= अशोकवनमें लीलाके लिये सदा प्रस्तुत, ४६३. **सदातिलकसङ्गतः**= सदैव तिलक लगानेवाले, ४६४. **सदागोवर्धनरतिः**= गिरिराज गोवर्धनपर सदा क्रीडा करनेवाले, ४६५. **सदागोकुलवल्लभः**=सदैव गोकुल ग्राम एवं गो-समुदायके प्रिय।

४६६. **भाण्डीरवटसंवासी**=भाण्डीर वटके नीचे निवास करनेवाले, ४६७. **नित्यं वंशीवटस्थितः**= वंशीवटपर सदा स्थित रहनेवाले, ४६८. **नन्दग्राम-कृतावासः**=नन्दगाँवमें निवास करनेवाले, ४६९. **वृषभानुगृहप्रियः**=वृषभानुजीके गृहको प्रिय माननेवाले।

४७०. **गृहीतकामिनीरूपः**=मोहिनीका रूप धारण करनेवाले, ४७१. **नित्यं रासविलासकृत्**=नित्य रासलीला करनेवाले, ४७२. **वल्लवीजनसंगोप्ता**= गोपाङ्गनाओंके रक्षक, ४७३. **वल्लवीजनवल्लभः**= गोपीजनोंके प्रियतम।

४७४. **देवशर्मकृपाकर्ता**=देवशर्मापर कृपा करनेवाले, ४७५. **कल्पपादपसंस्थितः**=कल्पवृक्षके नीचे रहनेवाले, ४७६. **शिलानुगन्धनिलयः**=शिलामय सुगन्धित भवनमें निवास करनेवाले, ४७७. **पादचारी**= पैदल चलनेवाले, ४७८. **घनच्छविः**=मेघके समान श्यामकान्तिवाले।

४७९. **अतसीकुसुमप्रख्यः**=तीसीके फूलके-से वर्णवाले, ४८०. **सदा लक्ष्मीकृपाकरः**= लक्ष्मीजीपर सदा कृपा करनेवाले, ४८१. **त्रिपुरारिप्रियकरः**= महादेवजीका प्रिय करनेवाले, ४८२. **उग्रधन्वा**=भयङ्कर धनुषवाले, ४८३. **अपराजितः**=किसीसे भी परास्त न होनेवाले।

४८४. **षड्धुरध्वंसकर्ता**=षड्धुरका नाश करनेवाले, ४८५. **निकुम्भप्राणहारकः**= निकुम्भके प्राणोंको हरनेवाले, ४८६. **वज्रनाभपुरध्वंसी**= वज्रनाभपुरका

ध्वंस करनेवाले, ४८७. **पौण्ड्रकप्राणहारकः**= पौण्ड्रकके प्राणोंका अन्त करनेवाले।

४८८. **बहुलाश्वप्रीतिकर्ता**=मिथिलाके राजा बहुलाश्वपर प्रेम करनेवाले, ४८९. **द्विजवर्यप्रियङ्करः**= श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्तशिरोमणि श्रुतदेवका प्रिय करनेवाले, ४९०. **शिवसंकटहारी**= भगवान् शिवका संकट टालनेवाले, ४९१. **वृकासुरविनाशनः**= वृकासुरका नाश करनेवाले।

४९२. **भृगुसत्कारकारी**=भृगुजीका सत्कार करनेवाले, ४९३. **शिवसात्त्विकताप्रदः**=भगवान् शिवको सात्त्विकता देनेवाले, ४९४. **गोकर्णपूजकः**= गोकर्णकी पूजा करनेवाले, ४९५. **साम्बकुष्ठविध्वंस-कारणः**=साम्बकी कोढ़का नाश करनेवाले।

४९६. **वेदस्तुतः**=वेदोंके द्वारा स्तुत, ४९७. **वेदवेत्ता**=वेदज्ञ, ४९८. **यदुवंशाववर्धनः**= यदुकुलको बढ़ानेवाले, ४९९. **यदुवंशविनाशी**= यदुकुलका संहार कलेवाले, ५००. **उद्धवोद्धारकारकः**= उद्धवका उद्धार करनेवाले।

५०१. **राधा**=श्रीकृष्णकी आराध्या देवी, उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति, ५०२. **राधिका**=श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली वृषभानुपुत्री, ५०३. **आनन्दा**= आनन्दस्वरूपा, ५०४. **वृषभानुजा**=वृषभानुगोपकी कन्या, ५०५. **वृन्दावनेश्वरी**=वृन्दावनकी स्वामिनी, ५०६. **पुण्या**=पुण्यमयी, ५०७. **कृष्णमानसहारिणी**= श्रीकृष्णका चित्त चुरानेवाली।

५०८. **प्रगल्भा**=प्रतिभा, साहस, निर्भयता और उदार बुद्धिसे सम्पन्न, ५०९. **चतुरा**=चतुराईसे युक्त, ५१०. **कामा**= प्रेमस्वरूपा, ५११. **कामिनी**= एकमात्र श्रीकृष्णको चाहनेवाली, ५१२. **हरिमोहिनी**= श्रीकृष्णको मोहित करनेवाली, ५१३. **ललिता**= मनोहर सौन्दर्यसे सुशोभित, ५१४. **मधुरा**= माधुर्यभावसे युक्त, ५१५. **माध्वी**=मधुमयी, ५१६. **किशोरी**=नित्यकिशोरावस्थासे युक्त, ५१७. **कनकप्रभाः**=सुवर्णके समान कान्तिवाली।

५१८. **जितचन्द्रा**=मुखके सौन्दर्यसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाली, ५१९. **जितमृगा**=चञ्चल चकित नेत्रोंकी शोभासे मृगको भी मात करनेवाली, ५२०. **जितसिंहा**=सूक्ष्म कटि-भागकी कमनीयतासे मृगराज सिंहके भी मदको चूर्ण करनेवाली, ५२१. **जितद्विपा**=मन्द-मन्द गतिसे गजेन्द्रका भी गर्व खर्व करनेवाली, ५२२. **जितरम्भा**=ऊरुओंकी स्निग्धतासे कदलीको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२३. **जितपिका**=अपने मधुर कण्ठस्वरसे कोयलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२४. **गोविन्दहृदयोद्भवा**= श्रीकृष्णके हृदयसे प्रकट हुई।

५२५. **जितबिम्बा**=अपने अधरकी अरुणिमासे बिम्बफलको भी तिरस्कृत करनेवाली, ५२६. **जितशुका**= नुकीली नासिकाकी शोभासे तोतेको भी लजा देनेवाली, ५२७. **जितपद्मा**=अपने अनिर्वचनीय रूप-लावण्यसे लक्ष्मीको भी लज्जित करनेवाली, ५२८. **कुमारिका**= नित्य कुमारी, ५२९. **श्रीकृष्णाकर्षणा**=श्रीकृष्णको अपनी ओर खींचनेवाली, ५३०. **देवी**=दिव्यस्वरूपा, ५३१. **नित्ययुग्मस्वरूपिणी**=नित्य युगलरूपा।

५३२. **नित्यं विहारिणी**=श्यामसुन्दरके साथ नित्य लीला करनेवाली, ५३३. **कान्ता**=नन्दनन्दनकी प्रियतमा, ५३४. **रसिका**=प्रेमरसका आस्वादन करनेवाली, ५३५. **कृष्णवल्लभा**=श्रीकृष्णप्रिया, ५३६. **आमोदिनी**=श्रीकृष्णको आमोद प्रदान करनेवाली, ५३७. **मोदवती**= मोदमयी, ५३८. **नन्दनन्दनभूषिता**= नन्दनन्दन श्रीकृष्णके द्वारा जिनका शृङ्गार किया गया है।

५३९. **दिव्याम्बरा**=दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली, ५४०. **दिव्यहारा**=दिव्य हार धारण करनेवाली, ५४१. **मुक्तामणिविभूषिता**=दिव्य मुक्तामणियोंसे विभूषित, ५४२. **कुञ्जप्रिया**=वृन्दावनके कुञ्जोंसे प्यार करनेवाली, ५४३. **कुञ्जवासा**=कुञ्जमें निवास करनेवाली, ५४४. **कुञ्जनायकनायिका**=कुञ्जनायक श्रीकृष्णकी नायिका।

५४५. **चारुरूपा**=मनोहर रूपवाली, ५४६. **चारुवक्त्रा**=परम सुन्दर मुखवाली, ५४७. **चारुहेमाङ्गदा**=सुन्दर सुवर्णके भुजबंद धारण करनेवाली, ५४८. **शुभा**=शुभस्वरूपा, ५४९. **श्रीकृष्णवेणुसङ्गीता**= श्रीकृष्णद्वारा मुरलीमें जिनके नाम और यशका गान किया जाता है, ५५०. **मुरलीहारिणी**=विनोदके लिये श्रीकृष्णकी मुरलीका हरण करनेवाली, ५५१. **शिवा**= कल्याणस्वरूप।

५५२. **भद्रा**=मङ्गलमयी, ५५३. **भगवती**= षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न, ५५४. **शान्ता**=शान्तिमयी, ५५५. **कुमुदा**=पृथ्वीपर आनन्दोल्लास वितीर्ण करनेवाली, ५५६. **सुन्दरी**=अनन्त सौन्दर्यकी निधि, ५५७. **प्रिया**=सखियों तथा श्यामसुन्दरको अत्यन्त प्रिय, ५५८. **कृष्णक्रीडा**=श्रीकृष्णके साथ लीला करनेवाली, ५५९. **कृष्णरतिः**=श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेमवाली, ५६०. **श्रीकृष्णसहचारिणी**=वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ विचरनेवाली।

५६१. **वंशीवटप्रियस्थाना**=वंशीवट जिनका प्रिय स्थान है, ५६२. **युग्मायुग्मस्वरूपिणी**=युगलरूपा और एक रूपा, ५६३. **भाण्डीरवासिनी**=भाण्डीर वनमें निवास करनेवाली, ५६४. **शुभ्रा**=गौरवर्णा, ५६५. **गोपीनाथप्रिया**=गोपीवल्लभ श्रीकृष्णकी प्रियतमा, ५६६. **सखी**=श्रीकृष्णकी सखी।

५६७. **श्रुतिनिःश्वसितः**=श्रुतियाँ जिनके निःश्वाससे प्रकट होती हैं, ५६८. **दिव्या**=दिव्यस्वरूपा, ५६९. **गोविन्दरसदायिनी**=गोविन्दको माधुर्यरस प्रदान करनेवाली, ५७०. **श्रीकृष्णप्रार्थिनी**=केवल श्रीकृष्णको चाहनेवाली, ५७१. **ईशाना**=ईश्वरी, ५७२. **महानन्दप्रदायिनी**=परमानन्द प्रदान करनेवाली।

५७३. **वैकुण्ठजनसंसेव्या**=वैकुण्ठवासियोंद्वारा सेवन करने योग्य, ५७४. **कोटिलक्ष्मीसुखावहा**=कोटि-कोटि लक्ष्मीसे भी अधिक सुख देनेवाली, ५७५. **कोटिकन्दर्पलावण्या**=करोड़ों कामदेवोंसे अधिक रूपलावण्यसे सम्पन्न, ५७६. **रतिकोटिरतिप्रदा**= करोड़ों रतियोंसे भी अधिक प्रगाढ़ प्रीतिरस प्रदान करनेवाली।

५७७. **भक्तिग्राह्या**=भक्तिसे प्राप्त होने योग्य, ५७८. **भक्तिरूपा**=भक्तिस्वरूपा, ५७९. **लावण्यसरसी**= सौन्दर्यकी पुष्करिणी, ५८०. **उमा**=योगमाया एवं ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ५८१. **ब्रह्मरुद्रादिसंराध्या**=ब्रह्मा तथा रुद्रादिके द्वारा आराधना करने योग्य, ५८२. **नित्यं कौतूहलान्विता**=नित्य कौतुकयुक्त।

५८३. **नित्यलीला**=नित्य लीलापरायणा, ५८४. **नित्यकामा**=नित्य श्रीकृष्ण-मिलनको चाहनेवाली, ५८५. **नित्यशृङ्गारभूषिता**=नित्य नूतन शृङ्गारसे विभूषित, ५८६. **नित्यवृन्दावनरसा**= वृन्दावनके माधुर्यरसका सदा आस्वादन करनेवाली, ५८७. **नन्दनन्दनसंयुता**=नन्दनन्दन श्रीकृष्णके साथ रहनेवाली।

५८८. **गोपिकामण्डलीयुक्ता**= गोपियोंकी मण्डलीसे घिरी हुई, ५८९. **नित्यं गोपालसङ्गता**= सदा गोपाल श्रीकृष्णसे मिलनेवाली, ५९०. **गोरसक्षेपिणी**=गोरस फेंकने या लुटानेवाली, ५९१. **शूरा**=शौर्यसम्पन्न, ५९२. **सानन्दा**=आनन्दयुक्त, ५९३. **आनन्ददायिनी**=आनन्द देनेवाली।

५९४. **महालीलाप्रकृष्टा**=श्रीकृष्णकी महालीलाकी सर्वश्रेष्ठ पात्र, ५९५. **नागरी**=परम चतुरा, ५९६. **नगचारिणी**=गिरिराज गोवर्धनपर विचरनेवाली, ५९७. **नित्यमाघूर्णिता**=श्रीकृष्णकी खोजमें नित्य घूमनेवाली, ५९८. **पूर्णा**=समस्त सद्‌गुणोंसे परिपूर्ण, ५९९. **कस्तूरीतिलकान्विता**=कस्तूरीकी बेंदीसे सुशोभित।

६००. **पद्मा**=लक्ष्मीस्वरूपा, ६०१. **श्यामा**= सौन्दर्यसे सम्पन्न, ६०२. **मृगाक्षी**=मृगके समान विशाल एवं चञ्चल नेत्रोंवाली, ६०३. **सिद्धिरूपा**= सिद्धिस्वरूपा, ६०४. **रसावहा**=श्रीकृष्णको माधुर्यरसका आस्वादन करानेवाली, ६०५. **कोटिचन्द्रानना**= करोड़ों चन्द्रमाओंके समान सुन्दर मुखवाली,

६०६. **गौरी**=गौरवर्णा, ६०७. **कोटिकोकिलसुस्वरा**=करोड़ों कोकिलोंके समान मधुर स्वरवाली।

६०८. **शीलसौन्दर्यनिलया**=उत्तम शील तथा अनन्त सौन्दर्यकी आधारभूता, ६०९. **नन्दनन्दनलालिता**= नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे दुलार पानेवाली, ६१०. **अशोकवनसंवासा**=अशोकवनमें निवास करनेवाली, ६११. **भाण्डीरवनसङ्गता**=भाण्डीरवनमें मिलनेवाली।

६१२. **कल्पद्रुमतलाविष्टा**=कल्पवृक्षके नीचे बैठी हुई, ६१३. **कृष्णा**=कृष्णस्वरूपा, ६१४. **विश्वा**=विश्वस्वरूपा, ६१५. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ६१६. **अजागम्या**=ब्रह्माजीके लिये अगम्य, ६१७. **भवागम्या**=महादेवजीके लिये अगम्य, ६१८. **गोवर्धनकृतालया**=गोवर्धन पर्वतपर निवास करनेवाली।

६१९. **यमुनातीरनिलया**=यमुनातटपर रहनेवाली, ६२०. **शश्वद्गोविन्दजल्पिनी**=सदा श्रीकृष्ण गोविन्दकी रट लगानेवाली, ६२१. **शश्वन्मानवती**=नित्य मानिनी, ६२२. **स्निग्धा**=स्नेहमयी, ६२३. **श्रीकृष्णपरिवन्दिता**=श्रीकृष्णके द्वारा नित्य वन्दित।

६२४. **कृष्णस्तुता**=श्रीकृष्णके द्वारा जिनका गुणगान किया गया है, ६२५. **कृष्णव्रता**=श्रीकृष्णपरायणा, ६२६. **श्रीकृष्णहृदयालया**=श्रीकृष्णके हृदयमें निवास करनेवाली, ६२७. **देवद्रुमफला**=कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाली, ६२८. **सेव्या**=सेवन करने योग्य, ६२९. **वृन्दावनरसालया**=वृन्दावनके रसमें निमग्न रहनेवाली।

६३०. **कोटितीर्थमयी**= कोटितीर्थस्वरूपा, ६३१. **सत्या**=सत्यस्वरूपा, ६३२. **कोटितीर्थफलप्रदा**=करोड़ों तीर्थोंका फल देनेवाली, ६३३. **कोटियोगसुदुष्प्राप्या**=करोड़ों योगसाधनोंसे भी दुर्लभ, ६३४. **कोटियज्ञदुराश्रया**=कोटि यज्ञोंसे भी जिनकी शरणागति प्राप्त होनी कठिन है।

६३५. **मनसा**=मनसा नामसे प्रसिद्ध, ६३६. **शशिलेखा**=श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाकी कला, ६३७. **श्रीकोटिसुभगा**=कोटि लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती, ६३८. **अनघा**=पापशून्य, ६३९. **कोटिमुक्तसुखा**=करोड़ों मुक्तात्माओंके समान सुखी, ६४०. **सौम्या**=सौम्यस्वरूपा, ६४१. **लक्ष्मीकोटिविलासिनी**=करोड़ों लक्ष्मियोंके समान विलासवती।

६४२. **तिलोत्तमा**=ठोढ़ीमें तिलके आकारकी बेंदी या चिह्न होनेके कारण अतिशय उत्तम सौन्दर्ययुक्त, ६४३. **त्रिकालस्था**=भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें विद्यमान, ६४४. **त्रिकालज्ञा**=तीनों कालोंकी घटनाओंको जाननेवाली, ६४५. **अधीश्वरी**=स्वामिनी, ६४६. **त्रिवेदज्ञा**=तीनों वेदोंको जाननेवाली, ६४७. **त्रिलोकज्ञा**=तीनों लोकोंको जाननेवाली, ६४८. **तुरीयान्तनिवासिनी**=जाग्रत्‌से लेकर तुरीयापर्यन्त सब अवस्थाओंमें निवास करनेवाली।

६४९. **दुर्गाराध्या**=उमाके द्वारा आराध्य, ६५०. रमाराध्या=लक्ष्मीकी आराध्य देवी, ६५१. **विश्वाराध्या**=सम्पूर्ण जगत्‌के लिये आराधनीया, ६५२. **चिदात्मिका**=चेतनस्वरूपा, ६५३. **देवाराध्या**=देवताओंकी आराध्य देवी, ६५४. **पराराध्या**=परम आराध्य देवी, ६५५. **ब्रह्माराध्या**=ब्रह्माजीके द्वारा उपास्य, ६५६. **परात्मिका**=परमात्मस्वरूपा।

६५७. **शिवाराध्या**=भगवान् शिवके लिये आराध्य, ६५८. **प्रेमसाध्या**=प्रेमसे प्राप्त होने योग्य, ६५९. **भक्ताराध्या**=भक्तोंकी उपास्य देवी, ६६०. **रसात्मिका**= रसस्वरूपा, ६६१. **कृष्णप्राणार्पिणी**=श्रीकृष्णको जीवन देनेवाली, ६६२. **भामा**=मानिनी, ६६३. **शुद्धप्रेमविलासिनी**=विशुद्ध प्रेमसे सुशोभित होनेवाली।

६६४. **कृष्णाराध्या**=श्रीकृष्णकी आराध्य देवी, ६६५. **भक्तिसाध्या**=अनन्य भक्तिसे प्राप्त होनेवाली,

६६६. **भक्तवृन्दनिषेविता**=भक्त-समुदायसे सेविता, ६६७. **विश्वाधारा**=सम्पूर्ण जगत्‌को आश्रय देनेवाली, ६६८. **कृपाधारा**=कृपाकी आधारभूमि, ६६९. **जीवाधारा**=सम्पूर्ण जीवोंको आश्रय देनेवाली, ६७०. **अतिनायिका**=सम्पूर्ण नायिकाओंसे उत्कृष्ट।

६७१. **शुद्धप्रेममयी**=विशुद्ध अनुरागस्वरूपा, ६७२. **लज्जा**= मूर्तिमती लज्जा, ६७३. **नित्यसिद्धा**=सदा, बिना किसी साधनके, स्वत:सिद्ध, ६७४. **शिरोमणि:**=गोपाङ्गनाओंकी शिरोमणि, ६७५. **दिव्यरूपा**=दिव्य रूपवाली, ६७६. **दिव्यभोगा**=दिव्यभोगोंसे सम्पन्न, ६७७. **दिव्यवेषा**=अलौकिक वेशभूषाओंसे सुशोभित, ६७८. **मुदान्विता**=सदा आनन्दमग्न रहनेवाली।

६७९. **दिव्याङ्गनावृन्दसारा**=दिव्य युवतियोंके समुदायकी सार-सर्वस्वरूपा, ६८०. **नित्यनूतनयौवना**=नित्य नवीन यौवनसे युक्त, ६८१. **परब्रह्मावृता**=परब्रह्म परमात्मासे आवृत, ६८२. **ध्येया**=ध्यान करने योग्य, ६८३. **महारूपा**=परम सुन्दर रूपवाली, ६८४. **महोज्ज्वला**=परमोज्ज्वल प्रकाशमयी।

६८५. **कोटिसूर्यप्रभा**=करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे उद्भासित, ६८६. **कोटिचन्द्रबिम्बाधिकच्छवि:**=कोटि चन्द्रमण्डलसे अधिक छविवाली, ६८७. **कोमलामृतवाक्**=कोमल एवं अमृतके समान मधुर वचनवाली, ६८८. **आद्या**=आदिदेवी, ६८९. **वेदाद्या**=वेदोंकी आदिकारणस्वरूपा, ६९०. **वेददुर्लभा**=वेदोंकी भी पहुँचसे परे।

६९१. **कृष्णासक्ता**=श्रीकृष्णमें अनुरक्त, ६९२. **कृष्णभक्ता**=श्रीकृष्णके प्रति भक्तिभावसे परिपूर्ण, ६९३. **चन्द्रावलिनिषेविता**=चन्द्रावली नामकी सखीसे सेवित, ६९४. **कलाषोडशसम्पूर्णा**=सोलह कलाओंसे पूर्ण, ६९५. **कृष्णदेहार्धधारिणी**=अपने आधे शरीरमें श्रीकृष्णके स्वरूपको धारण करनेवाली।

६९६. **कृष्णबुद्धि:**=श्रीकृष्णमें बुद्धिको अर्पित कर देनेवाली, ६९७. **कृष्णसारा**=श्रीकृष्णको ही जीवनका सारसर्वस्व माननेवाली, ६९८. **कृष्णरूपविहारिणी**=श्रीकृष्णरूपसे विचरनेवाली, ६९९. **कृष्णकान्ता**=श्रीकृष्णप्रिया, ७००. **कृष्णधना**=श्रीकृष्णको ही अपना परम धन माननेवाली, ७०१. **कृष्णमोहनकारिणी**=अपने अनुपम प्रेमसे श्रीकृष्णको मोहित करनेवाली।

७०२. **कृष्णदृष्टि:**=एकमात्र श्रीकृष्णपर ही दृष्टि रखनेवाली, ७०३. **कृष्णगोत्रा**=श्रीकृष्णके गोत्रवाली, ७०४. **कृष्णदेवी**=श्रीकृष्णकी आराध्यदेवी, ७०५. **कुलोद्वहा**=कुलमें सर्वश्रेष्ठ, ७०६. **सर्वभूतस्थितात्मा**=सम्पूर्ण भूतोंमें विद्यमान आत्मस्वरूपा, ७०७. **सर्वलोकनमस्कृता**=सम्पूर्ण लोकोंद्वारा अभिवन्दित।

७०८. **कृष्णदात्री**=उपासकोंको श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली, ७०९. **प्रेमधात्री**=भावुकोंके हृदयमें श्रीकृष्णप्रेमको प्रकट करनेवाली, ७१०. **स्वर्णगात्री**=सुवर्णके समान गौर शरीरवाली, ७११. **मनोरमा**=श्रीकृष्णके मनको रमानेवाली, ७१२. **नगधात्री**=पर्वतोंके अधिष्ठातृ देवताको उत्पन्न करनेवाली, ७१३. **यशोदात्री**=यश देनेवाली, ७१४. **महादेवी**=सर्वश्रेष्ठ देवी, ७१५. **शुभङ्करी**=कल्याण करनेवाली।

७१६. **श्रीशेषदेवजननी**=लक्ष्मीजी, शेषजी और देवताओंको उत्पन्न करनेवाली, ७१७. **अवतारगणप्रसू:**=अवतारगणोंको उत्पन्न करनेवाली, ७१८. **उत्पलाङ्का**=हाथ-पैरोंमें नील कमलके चिह्न धारण करनेवाली, ७१९. **अरविन्दाङ्का**=कमलके चिह्नसे युक्त, ७२०. **प्रासादाङ्का**=मन्दिरके चिह्नसे युक्त, ७२१. **अद्वितीयका**= जिसके समान दूसरी कोई नहीं है ऐसी।

७२२. **रथाङ्का**=रथके चिह्नसे युक्त, ७२३. **कुञ्जराङ्का**=हाथीके चिह्नसे युक्त, ७२४. **कुण्डलाङ्कपदस्थिता**=चरणोंमें कुण्डलके चिह्नसे युक्त, ७२५. **छत्राङ्का**=छत्रके चिह्नसे युक्त, ७२६. **विद्युदङ्का**=वज्रके चिह्नसे युक्त,

७२७. **पुष्पमालाङ्किता**= पुष्पमालाके चिह्नसे युक्त।

७२८. **दण्डाङ्का**=दण्डके चिह्नसे युक्त, ७२९. **मुकुटाङ्का**=मुकुटके चिह्नसे युक्त, ७३०. **पूर्णचन्द्रा**=पूर्णचन्द्रके सदृश शोभासम्पन्न, ७३१. **शुकाङ्किता**=शुकके चिह्नसे युक्त, ७३२. **कृष्णान्नाहारपाका**=श्रीकृष्णको भोजन करानेके लिये भाँति-भाँतिकी रसोई तैयार करनेवाली, ७३३. **वृन्दाकुञ्जविहारिणी**=वृन्दावनके कुञ्जमें विचरनेवाली।

७३४. **कृष्णप्रबोधनकरी**=कृष्णको शयनसे जगानेवाली, ७३५. **कृष्णशेषान्नभोजिनी**=श्रीकृष्णके आरोगनेसे बचे हुए प्रसादरूप अन्नको ग्रहण करनेवाली, ७३६. **पद्मकेसरमध्यस्था**=कमलकेसरोंके मध्यमें विराजमान, ७३७. **सङ्गीतागमवेदिनी**=सङ्गीतशास्त्रको जाननेवाली।

७३८. **कोटिकल्पान्तभ्रूभङ्गा**=अपने भ्रूभङ्गमात्रसे करोड़ों कल्पोंका अन्त करनेवाली, ७३९. **अप्राप्तप्रलया**=कभी प्रलयको प्राप्त न होनेवाली, ७४०. **अच्युता**=अपनी महिमासे कभी विचलित न होनेवाली, ७४१. **सर्वसत्त्वनिधिः**=पूर्ण सत्त्वगुणकी निधि, ७४२. **पद्मशङ्खादिनिधिसेविता**=पद्म-शङ्ख आदि निधियोंसे सेवित।

७४३. **अणिमादिगुणैश्वर्या**=अणिमा आदि अष्टविध गुणोंके ऐश्वर्योंसे युक्त, ७४४. **देववृन्दविमोहिनी**=देवसमुदायको मोहित करनेवाली, ७४५. **सर्वानन्दप्रदा**=सबको आनन्द देनेवाली, ७४६. **सर्वा**=सर्वस्वरूपा, ७४७. **सुवर्णलतिकाकृतिः**=स्वर्णमयी लताके समान आकृतिवाली।

७४८. **कृष्णाभिसारसंकेता**=श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये संकेतस्थानमें स्थित, ७४९. **मालिनी**=मालासे अलंकृत, ७५०. **नृत्यपण्डिता**=नृत्यकलाकी विदुषी, ७५१. **गोपीसिन्धुसकाशाप्या** = गोपीसमुदायरूपी सिन्धुमें प्राप्त होनेवाली, ७५२. **गोपमण्डपशोभिनी**=वृषभानुगोपके मण्डपमें शोभा पानेवाली।

७५३. **श्रीकृष्णप्रीतिदा**=श्रीकृष्णके प्रेमको प्रदान करनेवाली, ७५४. **भीता**=श्रीकृष्णके वियोगके भयसे भीत, ७५५. **प्रत्यङ्गपुलकाञ्चिता**=प्रत्येक अङ्गमें श्रीकृष्ण-प्रेमजनित रोमाञ्चसे युक्त, ७५६. **श्रीकृष्णालिङ्गनरता**=श्रीकृष्णका स्पर्श करनेमें तत्पर, ७५७. **गोविन्दविरहाक्षमा**=श्रीकृष्णका वियोग सहन करनेमें असमर्थ।

७५८. **अनन्तगुणसम्पन्ना**=अनन्त गुणोंसे युक्त, ७५९. **कृष्णकीर्तनलालसा**=श्रीकृष्णके नाम और गुणोंके कीर्तन करनेकी रुचिवाली, ७६०. **बीजत्रयमयीमूर्तिः**=श्रीं, ह्रीं, क्लीं—इन तीन बीजोंसे संयुक्तरूपवाली, ७६१. **कृष्णानुग्रहवाञ्छिनी**=श्रीकृष्णके अनुग्रहको चाहनेवाली।

७६२. **विमलादिनिषेव्या**=विमला, उत्कर्षिणी आदि सखियोंद्वारा सेव्य, ७६३. **ललिताद्यर्चिता**= ललिता आदि सखियोंसे पूजित, ७६४. **सती**=उत्तम शील और सदाचारसे सम्पन्न, ७६५. **पद्मवृन्दस्थिता**= कमलवनमें निवास करनेवाली, ७६६. **हृष्टा**=हर्षसे युक्त, ७६७. **त्रिपुरापरिसेविता**=त्रिपुरसुन्दरीके द्वारा सेवित।

७६८. **वृन्दावत्यर्चिता**=वृन्दावती देवीके द्वारा पूजित, ७६९. **श्रद्धा**=श्रद्धास्वरूपा, ७७०. **दुर्ज्ञेया**=बुद्धिकी पहुँचसे परे, ७७१. **भक्तवल्लभा**=भक्तप्रिया, ७७२. **दुर्लभा**=दुष्प्राप्य, ७७३. **सान्द्रसौख्यात्मा**=घनीभूत सुखस्वरूपा, ७७४. **श्रेयोहेतुः**=कल्याणकी प्राप्तिमें हेतु, ७७५. **सुभोगदा**=मुक्तिप्रद भोग देनेवाली।

७७६. **सारङ्गा**=श्रीकृष्णप्रेमकी प्यासी चातकी, ७७७. **शारदा**=सरस्वतीस्वरूपा, ७७८. **बोधा**=ज्ञानमयी, ७७९. **सद्वृन्दावनचारिणी**=सुन्दर वृन्दावनमें विचरनेवाली, ७८०. **ब्रह्मानन्दा**=ब्रह्मानन्दस्वरूपा, ७८१. **चिदानन्दा**=चिदानन्दमयी, ७८२. **ध्यानानन्दा**=श्रीकृष्ण-ध्यानजनित आनन्दमें मग्न, ७८३. **अर्धमात्रिका**=अर्धमात्रास्वरूपा।

७८४. **गन्धर्वा**=गानविद्यामें प्रवीण, ७८५. **सुरतज्ञा**=सुरतकलाको जाननेवाली, ७८६. **गोविन्दप्राणसङ्गमा**=गोविन्दके साथ एक प्राण होकर रहनेवाली, ७८७. **कृष्णाङ्गभूषणा**=श्रीकृष्णके अङ्गोंको विभूषित करनेवाली, ७८८. **रत्नभूषणा**=रत्नमय आभूषण धारण करनेवाली, ७८९. **स्वर्णभूषिता**=सोनेके आभूषणोंसे विभूषित।

७९०. **श्रीकृष्णहृदयावासा**=श्रीकृष्णके हृदय-मन्दिरमें निवास करनेवाली, ७९१. **मुक्ताकनकनासिका**=नासिकामें मुक्तायुक्त सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली, ७९२. **सद्रत्नकङ्कणयुता**=हाथोंमें सुन्दर रत्नजटित कंगन पहननेवाली, ७९३. **श्रीमन्नीलगिरिस्थिता**=शोभाशाली नीलाचलपर विराजमान।

७९४. **स्वर्णनूपुरसम्पन्ना**=सोनेके नूपुरोंसे सुशोभित, ७९५. **स्वर्णकिङ्किणिमण्डिता**=सुवर्णकी किङ्किणी (करधनी)-से अलंकृत, ७९६. **अशेषरासकुतुका**=महारासके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली, ७९७. **रम्भोरुः**=केलेके समान जंघावाली, ७९८. **तनुमध्यमा**=क्षीण कटिवाली।

७९९. **पराकृतिः**=सर्वोत्कृष्ट आकृतिवाली, ८००. **परानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ८०१. **परस्वर्गविहारिणी**=स्वर्गसे भी परे गोलोक धाममें विहार करनेवाली, ८०२. **प्रसूनकबरी**=वेणीमें फूलोंके हार गूँथनेवाली, ८०३. **चित्रा**=विचित्र शोभामयी, ८०४. **महासिन्दूरसुन्दरी**=उत्तम सिन्दूरसे अति सुन्दर प्रतीत होनेवाली।

८०५. **कैशोरवयसा**=किशोरावस्थासे युक्त, ८०६. **बाला**=मुग्धा, ८०७. **प्रमदाकुलशेखरा**=रमणीकुलशिरोमणि, ८०८. **कृष्णाधरासुधास्वादा**=श्रीकृष्णनामरूपी सुधाका अधरोंके द्वारा नित्य आस्वादन करनेवाली, ८०९. **श्यामप्रेमविनोदिनी**=श्रीकृष्णप्रेमसे ही मनोरञ्जन करनेवाली।

८१०. **शिखिपिच्छलसच्चूडा**=मयूर-पंखसे सुशोभित केशोंवाली, ८११. **स्वर्णचम्पकभूषिता**=स्वर्णचम्पाके आभूषणोंसे विभूषित, ८१२. **कुङ्कुमालक्तकस्तूरीमण्डिता**=रोली, महावर और कस्तुरीके शृङ्गारसे सुशोभित, ८१३. **अपराजिता**=कभी परास्त न होनेवाली।

८१४. **हेमहारान्विता**=सुवर्णके हारसे अलंकृत, ८१५. **पुष्पहाराढ्या**=पुष्पमालासे मण्डित, ८१६. **रसवती**=प्रेमरसमयी, ८१७. **माधुर्यमधुरा**=माधुर्य भावके कारण मधुर, ८१८. **पद्मा**=पद्मानामसे प्रसिद्ध, ८१९. **पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली, ८२०. **सुविश्रुता**=अति विख्यात।

८२१. **भ्रूभङ्गाभङ्गकोदण्डकटाक्षशरसन्धिनी**=श्रीकृष्णके प्रति तिरछी भौंहरूपी सुदृढ़ धनुषपर कटाक्षरूपी बाणोंका संधान करनेवाली, ८२२. **शेषदेवशिरःस्था**=शेषजीके मस्तकपर पृथ्वीके रूपमें स्थित, ८२३. **नित्यस्थलविहारिणी**=नित्य लीला-स्थलियोंमें विचरनेवाली।

८२४. **कारुण्यजलमध्यस्था**=करुणारूपी जलराशिके मध्य विराजमान, ८२५. **नित्यमत्ता**=सदा प्रेममें मतवाली, ८२६. **अधिरोहिणी**=उन्नतिकी साधनरूपा, ८२७. **अष्टभाषावती**=आठ भाषाओंको जाननेवाली, ८२८. **अष्टनायिका**=ललिता आदि आठ सखियोंकी स्वामिनी, ८२९. **लक्षणान्विता**=उत्तम लक्षणोंसे युक्त।

८३०. **सुनीतिज्ञा**=अच्छी नीतिको जाननेवाली, ८३१. **श्रुतिज्ञा**=श्रुतिको जाननेवाली, ८३२. **सर्वज्ञा**=सब कुछ जाननेवाली, ८३३. **दुःखहारिणी**=दुःखोंको हरण करनेवाली, ८३४. **रजोगुणेश्वरी**=रजोगुणकी स्वामिनी, ८३५. **शरच्चन्द्रनिभानना**=शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर मुखवाली।

८३६. **केतकीकुसुमाभासा**=केतकीके पुष्पकी-सी आभावाली, ८३७. **सदासिन्धुवनस्थिता**=सदा सिन्धु-वनमें रहनेवाली, ८३८. **हेमपुष्पाधिककरा**=सुवर्ण-पुष्पसे अधिक कमनीय हाथवाली, ८३९. **पञ्चशक्तिमयी**=पञ्चविधशक्तिसे सम्पन्न,

८४०. **हिता**=हितकारिणी।

८४१. **स्तनकुम्भी**=कुम्भके समान स्तनवाली, ८४२. **नराढ्या**=पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे संयुक्त, ८४३. **क्षीणापुण्या**=पापरहित, ८४४. **यशस्विनी**=कीर्तिमती, ८४५. **वैराजसूर्यजननी**=विराट् ब्रह्माण्डके प्रकाशक सूर्यको जन्म देनेवाली, ८४६. **श्रीशा**=लक्ष्मीकी भी स्वामिनी, ८४७. **भुवनमोहिनी**=सम्पूर्ण भुवनोंको मोहित करनेवाली।

८४८. **महाशोभा**=परम शोभाशालिनी, ८४९. **महामाया**=महामायास्वरूपा, ८५०. **महाकान्तिः**=अनन्त कान्तिसे सुशोभित, ८५१. **महास्मृतिः**=महती स्मरणशक्तिस्वरूपा, ८५२. **महामोहा**=महामोहमयी, ८५३. **महाविद्या**=भगवत्प्राप्ति करानेवाली श्रेष्ठ विद्या, ८५४. **महाकीर्तिः**=विशाल कीर्तिवाली, ८५५. **महारतिः**=अत्यन्तानुरागस्वरूपा।

८५६. **महाधैर्या**=अत्यन्त धीर स्वभाववाली, ८५७. **महावीर्या**=महान् पराक्रमसे सम्पन्न, ८५७. **महाशक्तिः**=महाशक्ति, ८५९. **महाद्युतिः**= परम-प्रकाशवती, ८६०. **महागौरी**=अत्यन्त गौर वर्णवाली, ८६१. **महासम्पत्**=परम सम्पत्तिरूपा, ८६२. **महाभोगविलासिनी**=महान् भोग-विलाससे युक्त।

८६३. **समया**=अत्यन्त निकटवर्तिनी, ८६४. **भक्तिदा**=भक्ति देनेवाली, ८६५. **अशोका**=शोकरहित, ८६६. **वात्सल्यरसदायिनी**=वात्सल्यरस देनेवाली, ८६७. **सुहृद्भक्तिप्रदा**=सुहृद् जनोंको भक्ति देनेवाली, ८६८. **स्वच्छा**=निर्मल, ८६९. **माधुर्यरसवर्षिणी**=माधुर्यरसकी वर्षा करनेवाली।

८७०. **भावभक्तिप्रदा**=भावभक्ति प्रदान करनेवाली, ८७१. **शुद्धप्रेमभक्तिविधायिनी**=शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिका विधान करनेवाली, ८७२. **गोपरामा**=गोपकुलकी रमणी, ८७३. **अभिरामा**=सर्व-सुन्दरी, ८७४. **क्रीडारामा**=श्यामसुन्दरके साथ लीलामें रत रहनेवाली, ८७५. **परेश्वरी**=परमेश्वरी।

८७६. **नित्यरामा**=नित्य वस्तुमें रमण करनेवाली, ८७७. **आत्मरामा**=आत्मामें रमण करनेवाली, ८७८. **कृष्णरामा**=श्रीकृष्णके चिन्तनमें रमण करनेवाली, ८७९. **रमेश्वरी**=लक्ष्मीकी अधीश्वरी, ८८०. **एकानेकजगद्व्याप्ता**=एक होकर भी अनेक रूपसे जगत्में व्याप्त, ८८१. **विश्वलीलाप्रकाशिनी**=सम्पूर्ण विश्वके रूपमें बाह्यलीलाको प्रकाशित करनेवाली।

८८२. **सरस्वतीशा**=सरस्वतीकी स्वामिनी, ८८३. **दुर्गेशा**=दुर्गाकी स्वामिनी, ८८४. **जगदीशा**=जगत्की स्वामिनी, ८८५. **जगद्विधिः**=संसारको रचनेवाली, ८८६. **विष्णुवंशनिवासा**=वैष्णववंशमें निवास करनेवाली, ८८७. **विष्णुवंशसमुद्भवा**=वैष्णववंशमें प्रकट हुई।

८८८. **विष्णुवंशस्तुता**=वैष्णवकुलके द्वारा स्तुत, ८८९. **कर्त्री**=स्वतन्त्र कर्तृत्वशक्तिसे सम्पन्न, ८९०. **सदाविष्णुवंशावनी**=सदा वैष्णवकुलकी रक्षा करनेवाली, ८९१. **आरामस्था**=उपवनमें रहनेवाली, ८९२. **वनस्था**=वृन्दावनमें निवास करनेवाली, ८९३. **सूर्यपुत्र्यवगाहिनी**=यमुनामें स्नान करनेवाली।

८९४. **प्रीतिस्था**=प्रेममें निवास करनेवाली, ८९५. **नित्ययन्त्रस्था**=नित्य-यन्त्रमें स्थित रहनेवाली, ८९६. **गोलोकस्था**=गोलोकधाममें स्थित, ८९७. **विभूतिदा**=ऐश्वर्य देनेवाली, ८९८. **स्वानुभूतिस्थिता**=केवल अपनी अनुभूतिमें प्रकट होनेवाली, ८९९. **अव्यक्ता**=अव्यक्तस्वरूपा, ९००. **सर्वलोकनिवासिनी**=सम्पूर्ण लोकोंमें निवास करनेवाली।

९०१. **अमृता**=अमृतस्वरूपा, ९०२. **अद्भुता**=अद्भुत रूप और भावसे सम्पन्न, ९०३. **श्रीमन्नारायणसमीरिता**=लक्ष्मीसहित भगवान् नारायणके द्वारा स्तुत, ९०४. **अक्षरा**=अक्षरस्वरूपा, ९०५. **कूटस्था**=एकरस परमात्मस्वरूपा, ९०६. **महापुरुषसम्भवा**=महापुरुषोंको प्रकट करनेवाली।

९०७. **औदार्यभावसाध्या**=औदार्यपूर्ण भक्तिभावसे

प्राप्त होनेवाली, १०८. **स्थूलसूक्ष्मातिरूपिणी**=स्थूल-सूक्ष्मसे विलक्षण चिदानन्दमय स्वरूपवाली, १०९. **शिरीषपुष्पमृदुला**=सिरसके फूलोंसे भी अधिक कोमल, ११०. **गाङ्गेयमुकुरप्रभा**=गङ्गाजल एवं दर्पणके समान निर्मल कान्तिवाली।

१११. **नीलोत्पलजिताक्षी**=कजरारे नेत्रोंकी शोभासे नीलकमलको परास्त करनेवाली, ११२. **सद्रत्नकबरान्विता**=सुन्दर रत्नोंसे अलंकृत चोटीवाली, ११३. **प्रेमपर्यङ्कनिलया**=प्रेमरूपी पर्यङ्कपर शयन करनेवाली, ११४. **तेजोमण्डलमध्यगा**=तेजपुञ्जके भीतर विराजमान।

११५. **कृष्णाङ्गगोपनाभेदा**=श्रीकृष्णके अङ्गोंको छिपानेके लिये उनसे अभिन्नरूपमें स्थित, ११६. **लीलावरणनायिका**=विभिन्न लीलाओंको स्वीकार करनेवाली प्रधान नायिका, ११७. **सुधासिन्धु-समुल्लासा**=प्रेमसुधाके समुद्रको समुल्लसित करनेवाली, ११८. **अमृतस्यन्दविधायिनी**=अमृतरसका स्रोत बहानेवाली।

११९. **कृष्णचित्ता**=अपना चित्त श्रीकृष्णको समर्पित कर देनेवाली, १२०. **रासचित्ता**=श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये रासमें मन लगानेवाली, १२१. **प्रेमचित्ता**=श्रीकृष्णप्रेममें मनको निमग्न रखनेवाली, १२२. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, १२३. **अचिन्तनगुणग्रामा**=अचिन्त्य गुण-समुदायवाली, १२४. **कृष्णलीला**=श्रीकृष्णलीलास्वरूपा, १२५. **मलापहा**=मनकी मलिनता एवं पाप-तापको धो बहानेवाली।

१२६. **रासासिन्धुशशाङ्का**=रासरूपी समुद्रको उल्लसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित, १२७. **रासमण्डलमण्डिनी**=अपनी उपस्थितिसे रासमण्डलकी अत्यन्त शोभा बढ़ानेवाली, १२८. **नतव्रता**=विनम्रस्वभाववाली, १२९. **श्रीहरीच्छासुमूर्तिः**=श्रीकृष्णइच्छाकी सुन्दर मूर्ति, १३०. **सुरवन्दिता**=देवताओंद्वारा वन्दित।

१३१. **गोपीचूडामणिः**=गोपाङ्गनाशिरोमणि, १३२. **गोपीगणेड्या**=गोपियोंके समुदायद्वारा स्तुत, १३३. **विरजाधिका**=गोलोकमें विरजासे अधिक सम्मानित पदपर स्थित, १३४. **गोपप्रेष्ठा**=गोपाल श्यामसुन्दरकी प्रियतमा, १३५. **गोपकन्या**=वृषभानुगोपकी पुत्री, १३६. **गोपनारी**=गोपकी वधू, १३७. **सुगोपिका**=श्रेष्ठ गोपी।

१३८. **गोपधामा**=गोलोक धाममें विराजमान, १३९. **सुदामाम्बा**=सुदामागोपके प्रति मातृ-स्नेह रखनेवाली, १४०. **गोपाली**=गोपी, १४१. **गोपमोहिनी**=गोपाल श्रीकृष्णको मोहनेवाली, १४२. **गोपभूषा**=गोपाल श्यामसुन्दर ही जिनके आभूषण हैं, १४३. **कृष्णभूषा**=श्रीकृष्णको विभूषित करनेवाली, १४४. **श्रीवृन्दावनचन्द्रिका**=श्रीवृन्दावनकी चाँदनी।

१४५. **वीणादिघोषनिरता**=वीणा आदिको बजानेमें संलग्न, १४६. **रासोत्सवविकासिनी**=रासोत्सवका विकास करनेवाली, १४७. **कृष्णचेष्टा**=श्रीकृष्णके अनुरूप चेष्टा करनेवाली, १४८. **अपरिज्ञाता**=पहचानमें न आनेवाली, १४९. **कोटिकन्दर्पमोहिनी**=करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाली।

१५०. **श्रीकृष्णगुणगानाढ्या**=श्रीकृष्णके गुणोंका गान करनेमें तत्पर, १५१. **देवसुन्दरिमोहिनी**=देवसुन्दरियोंको मोहनेवाली, १५२. **कृष्णचन्द्रमनोज्ञा**=श्रीकृष्णचन्द्रके मनोभावको जाननेवाली, १५३. **कृष्णदेव-सहोदरी**=योगमाया रूपसे श्रीयशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली।

१५४. **कृष्णाभिलाषिणी**=श्रीकृष्ण-मिलनकी इच्छा रखनेवाली, १५५. **कृष्णप्रेमानुग्रहवाञ्छिनी**=श्रीकृष्णके प्रेम और अनुग्रहको चाहनेवाली, १५६. **क्षेमा**=क्षेमस्वरूपा, १५७. **मधुरालापा**=मीठे वचन बोलनेवाली, १५८. **भ्रुवोमाया**=भौंहोंसे मायाको प्रकट करनेवाली, १५९. **सुभद्रिका**=परम कल्याणमयी।

९६०. **प्रकृति:**=श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति, ९६१. **परमानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ९६२. **नीपद्रुमतलस्थिता**=कदम्बवृक्षके नीचे खड़ी होनेवाली, ९६३. **कृपाकटाक्षा**=कृपापूर्ण कटाक्षवाली, ९६४. **बिम्बोष्ठी**=बिम्बफलके समान लाल ओठवाली, ९६५. **रम्भा**=सर्वाधिक सुन्दरी होनेके कारण रम्भा नामसे प्रसिद्ध, ९६६. **चारुनितम्बिनी**=मनोहर नितम्बवाली।

९६७. **स्मरकेलिनिधाना**=प्रेमलीलाकी निधि, ९६८. **गण्डताटङ्कमण्डिता**=कपोलोंपर कर्णभूषणोंसे अलंकृत, ९६९. **हेमाद्रिकान्तिरुचिरा**=सुवर्णगिरि मेरुकी कान्तिके समान सुनहरी कान्तिसे सुशोभित परम सुन्दरी, ९७०. **प्रेमाढ्या**=प्रेमसे परिपूर्ण, ९७१. **मदमन्थरा**=प्रेममदसे मन्द गतिवाली।

९७२. **कृष्णाचिन्ता**=श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाली, ९७३. **प्रेमचिन्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेमका चिन्तन करनेवाली, ९७४. **रतिचिन्ता**=श्रीकृष्णरतिका चिन्तन करनेवाली, ९७५. **कृष्णदा**=श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली, ९७६. **रासचिन्ता**=श्रीकृष्णके साथ रासका चिन्तन करनेवाली, ९७७. **भावचिन्ता**=प्रेम-भावका चिन्तन करनेवाली, ९७८. **शुद्धचिन्ता**=विशुद्ध चिन्तनवाली, ९७९. **महारसा**=अतिशय प्रेमस्वरूपा।

९८०. **कृष्णादृष्टित्रुटियुगा**=श्रीकृष्णको देखे बिना क्षणभरके विलम्बको भी एक युगके समान माननेवाली, ९८१. **दृष्टिपक्ष्मविनिन्दिनी**=श्रीकृष्णका दर्शन करते समय बाधा देनेवाली आँखकी पलकोंकी निन्दा करनेवाली, ९८२. **कन्दर्पजननी**=कामदेवको जन्म देनेवाली, ९८३. **मुख्या**=सर्वप्रधाना, ९८४. **वैकुण्ठगतिदायिनी**=वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति करानेवाली।

९८५. **रासभावा**=रासमण्डलमें आविर्भूत होनेवाली, ९८६. **प्रियाश्लिष्टा**=प्रियतम श्यामसुन्दरके द्वारा आश्लिष्ट, ९८७. **प्रेष्ठा**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ९८८. **प्रथमनायिका**=श्रीकृष्णकी प्रधान नायिका, ९८९. **शुद्धा**=शुद्धस्वरूपा, ९९०. **सुधादेहिनी**=प्रेमामृतमय शरीरवाली, ९९१. **श्रीरामा**=लक्ष्मीके समान सुन्दर, ९९२. **रसमञ्जरी**=श्रीकृष्णप्रेम-रसको प्रकट करनेके लिये मञ्जरीके समान।

९९३. **सुप्रभावा**=उत्तम प्रभावसे युक्त, ९९४. **शुभाचारा**=शुभ आचरणवाली, ९९५. **स्वर्नदीनर्मदाम्बिका**=गङ्गा तथा नर्मदाकी जननी, ९९६. **गोमतीचन्द्रभागेड्या**=गोमती और चन्द्रभागाके द्वारा स्तवनीय, ९९७. **सरयूताम्रपर्णिसूः**=सरयू तथा ताम्रपर्णी नदीको प्रकट करनेवाली।

९९८. **निष्कलङ्कचरित्रा**=कलङ्कशून्य चरित्रवाली, ९९९. **निर्गुणा**=गुणातीत, १०००. **निरञ्जना**=निर्मलस्वरूपा। नारद! यह राधाकृष्णयुगलरूप भगवान्‌का सहस्रनाम स्तोत्र है।

इसका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये। यह वृन्दावनके रसकी प्राप्ति करानेवाला है। बड़े-से-बड़े पापोंको शान्त कर देता है। अभिलषित भोगोंको देनेवाला महान् साधन है। यह राधा-माधवकी भक्ति देनेवाला है। जिनकी मेधाशक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती तथा जो श्रीराधा-प्रेमरूपी सुधासिन्धुमें नित्य विहार—सतत अवगाहन करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। श्रीराधादेवी संसारकी सृष्टि करती हैं। वे ही जगत्‌के पालनमें तत्पर रहती हैं और वे ही अन्तकालमें जगत्‌का संहार करनेवाली हैं। वे सबकी अधीश्वरी तथा सबकी जननी हैं। मुनीश्वर! यह उन्हीं श्रीराधाकृष्णका सहस्रनाम मैंने तुम्हें बताया है। यह दिव्य सहस्रनाम भोग और मोक्ष देनेवाला है। (नारदपुराण पूर्वभाग अध्याय ८२)

॥ तृतीय पाद सम्पूर्ण ॥

# चतुर्थ पाद

## नारद-सनातन-संवाद, ब्रह्माजीका मरीचिको ब्रह्मपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठश्रवण एवं दानका फल बताना

**देवर्षि नारद** विनीतभावसे सनातनजीको प्रणाम करके बोले—ब्रह्मन्! आप पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और ज्ञान-विज्ञानमें तत्पर हैं, अतः मुझे पुराणोंके विभागका पूर्णरूपसे परिचय कराइये, जिसके श्रवण करनेपर सब कुछ सुन लिया जाता है, जिसका ज्ञान होनेपर सब कुछ ज्ञात हो जाता है और जिसे कर लेनेपर सब कुछ किया हुआ हो जाता है। पुराणोंके स्वाध्यायसे वर्णों और आश्रमोंके आचार-धर्मका साक्षात्कार हो जाता है। प्रभो! पुराण कितने हैं? उनकी संख्या कितनी है? और उनके श्लोकोंका मान क्या है? उन पुराणोंमें कौन-कौनसे आख्यान वर्णित हैं? यह सब मुझे बताइये। चारों वर्णोंसे सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारके व्रत आदिकी कथाएँ भी कहिये। सृष्टिक्रमसे विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंकी जीवनकथाको भी भलीभाँति प्रकाशित कीजिये; क्योंकि भगवन्! आपसे अधिक दूसरा कोई पौराणिक उपाख्यानोंका जानकार नहीं है। इसलिये सब संदेहोंका निराकरण करनेवाले पुराणोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

**सूतजी बोले**—ब्राह्मणो! तदनन्तर नारदजीका वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ सनातनजी एक क्षण भगवान् नारायणका ध्यान करके बोले।

**सनातनजीने कहा**—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हें बार-बार साधुवाद है। पुराणोंका उपाख्यान जाननेके लिये जो तुम्हें निष्ठायुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, वह सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाली है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पुत्रस्नेहसे परिपूर्ण चित्त होकर मरीचि आदि ऋषियोंसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, उसीका तुमसे वर्णन करता हूँ। एक समय ब्रह्माजीके पुत्र मरीचिने, जो स्वाध्याय और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं, अपने पिता लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। दूसरोंको मान देनेवाले मुनीश्वर! प्रणामके पश्चात् उन्होंने भी निर्मल पौराणिक उपाख्यानके विषयमें, जैसा कि तुम पूछते हो, यही प्रश्न किया था।

**मरीचिने कहा**—भगवन्! देवदेवेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। सर्वज्ञ, सबका कल्याण करनेवाले तथा सबके साक्षी हैं, आपको नमस्कार है। पिताजी! मुझे पुराणोंके बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता और श्रोता बताइये। मैं वह सब सुननेको उत्सुक हूँ।

**ब्रह्माजीने कहा**—वत्स! सुनो, मैं पुराणोंका

संग्रह बतला रहा हूँ, जिसके जान लेनेपर चर और अचरसहित सम्पूर्ण वाङ्मयका ज्ञान हो जाता है। मानद! सब कल्पोंमें एक ही पुराण था, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका बीज माना गया है। सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति पुराणसे ही हुई है, अत: समयानुसार लोकमें पुराणोंका ग्रहण न होता देख परम बुद्धिमान् भगवान् विष्णु प्रत्येक युगमें व्यासरूपसे प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापरमें चार लाख श्लोकोंके पुराणका संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भूलोकमें उन्हींका प्रचार करते हैं। आज भी देवलोकमें सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है। उसीके सारभागका चार लाख श्लोकोंद्वारा वर्णन किया जाता है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—ये अठारह पुराण हैं। अब सूत्ररूपसे एक-एकका कथानक तथा उसके वक्ता और श्रोताके नाम संक्षेपसे बतलाता हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो। वेदवेत्ता महात्मा व्यासजीने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये पहले ब्रह्मपुराणका संकलन किया। वह सब पुराणोंमें प्रथम और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला है। उसमें नाना प्रकारके आख्यान और इतिहास हैं। उसकी श्लोक-संख्या दस हजार बतायी जाती है। मुनीश्वर! उसमें देवताओं, असुरों और दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्ति कही गयी है। तदनन्तर उसमें लोकेश्वर भगवान् सूर्यके पुण्यमय वंशका वर्णन किया गया है, जो महापातकोंका नाश करनेवाला है। उसी वंशमें परमानन्दस्वरूप तथा चतुर्व्यूहावतारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अवतारकी कथा कही गयी है। तदनन्तर उस पुराणमें चन्द्रवंशका वर्णन आया है और जगदीश्वर श्रीकृष्णके पापनाशक चरित्रका भी वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण द्वीपों, समस्त वर्षों तथा पाताल और स्वर्गलोकका वर्णन भी उस पुराणमें देखा जाता है। नरकोंका वर्णन, सूर्यदेवकी स्तुति और कथा एवं पार्वतीजीके जन्म तथा विवाहका प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर दक्ष प्रजापतिकी कथा और एकाम्रकक्षेत्रका वर्णन है। नारद! इस प्रकार इस ब्रह्मपुराणके पूर्व भागका निरूपण किया गया है। इसके उत्तर भागमें तीर्थयात्रा-विधिपूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्रका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। इसीमें श्रीकृष्णचरित्रका विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। यमलोकका वर्णन तथा पितरोंके श्राद्धकी विधि है। इस उत्तर भागमें ही वर्णों और आश्रमोंके धर्मोंका विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। वैष्णव-धर्मका प्रतिपादन, युगोंका निरूपण तथा प्रलयका भी वर्णन आया है। योगोंका निरूपण, सांख्यसिद्धान्तोंका प्रतिपादन, ब्रह्मवादका दिग्दर्शन तथा पुराणकी प्रशंसा आदि विषय आये हैं। इस प्रकार दो भागोंसे युक्त ब्रह्मपुराणका वर्णन किया गया है, जो सब पापोंका नाशक और सब प्रकारके सुख देनेवाला है। इसमें सूत और शौनकका संवाद है। यह पुराण भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो इस पुराणको लिखकर वैशाखकी पूर्णिमाको अन्न, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पौराणिक ब्राह्मणकी पूजा करके उसे सुवर्ण और जलधेनुसहित इस लिखे हुए पुराणका भक्तिपूर्वक दान करता है, वह चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकी स्थिति-कालतक ब्रह्मलोकमें वास करता है। ब्रह्मन्! जो ब्रह्मपुराणकी इस अनुक्रमणिका (विषय-सूची)-का पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी समस्त पुराणके पाठ और श्रवणका फल पा लेता है। जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके हविष्यान्न भोजन करते हुए

नियमपूर्वक समूचे ब्रह्मपुराणका श्रवण करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। वत्स! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? इस पुराणके कीर्तनसे मनुष्य जो-जो चाहता है, वह सब पा लेता है।

## पद्मपुराणका लक्षण तथा उसमें वर्णित विषयोंकी अनुक्रमणिका

**ब्रह्माजी कहते हैं**—बेटा! सुनो, अब मैं पद्मपुराणका वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ और श्रवण करते हैं, उन्हें यह महान् पुण्य देनेवाला है। जैसे सम्पूर्ण देहधारी मनुष्य पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे युक्त बताया जाता है, उसी प्रकार यह पापनाशक पद्मपुराण पाँच खण्डोंसे युक्त कहा गया है। ब्रह्मन्! जिसमें महर्षि पुलस्त्यने भीष्मको सृष्टि आदिके क्रमसे नाना प्रकारके उपाख्यान और इतिहास आदिके साथ विस्तारपूर्वक धर्मका उपदेश किया है। जहाँ पुष्करतीर्थका माहात्म्य विस्तारपूर्वक कहा गया है, जिसमें ब्रह्म-यज्ञकी विधि, वेदपाठ आदिका लक्षण, नाना प्रकारके दानों और व्रतोंका पृथक्-पृथक् निरूपण, पार्वतीका विवाह, तारकासुरका विस्तृत उपाख्यान तथा गौ आदिका माहात्म्य है, जो सबको पुण्य देनेवाला है, जिसमें कालकेय आदि दैत्योंके वधकी पृथक्-पृथक् कथा दी गयी है तथा द्विजश्रेष्ठ! जहाँ ग्रहोंके पूजन और दानकी विधि भी बतायी गयी है, वह महात्मा श्रीव्यासजीके द्वारा कहा हुआ 'सृष्टिखण्ड' है।

पिता-माता आदिकी पूजनीयताके विषयमें शिवशर्माकी प्राचीन कथा, सुव्रतकी कथा, वृत्रासुरके वधकी कथा, पृथु, वेन और सुनीथाकी कथा, सुकलाका उपाख्यान, धर्मका आख्यान, पिताकी सेवाके विषयमें उपाख्यान, नहुषकी कथा, ययातिचरित्र, गुरुतीर्थका निरूपण, राजा और जैमिनिके संवादमें अत्यन्त आश्चर्यमयी कथा, अशोक सुन्दरीकी कथा, हुण्ड दैत्यका वध, कामोदाकी कथा, विहुण्ड दैत्यका वध, महात्मा च्यवनके साथ कुञ्जलका संवाद, तदनन्तर सिद्धोपाख्यान और इस खण्डके फलका विचार—ये सब विषय जिसमें कहे गये हों, वह सूत-शौनक-संवादरूप ग्रन्थ 'भूमिखण्ड' कहा गया है।

जहाँ सौति तथा महर्षियोंके संवादरूपसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति बतायी गयी है, पृथ्वीसहित सम्पूर्ण लोकोंकी स्थिति और तीर्थोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जहाँ नर्मदाजीकी उत्पत्ति-कथा और उनके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् वर्णन है, जिसमें कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंकी पुण्यमयी कथा कही गयी है, कालिन्दीकी पुण्यकथा, काशी-माहात्म्य-वर्णन तथा गया और प्रयागके पुण्यमय माहात्म्यका निरूपण है, वर्ण और आश्रमके अनुकूल कर्मयोगका निरूपण, पुण्यकर्मकी कथाको लेकर व्यास-जैमिनि-संवाद, समुद्र-मन्थनकी कथा, व्रतसम्बन्धी उपाख्यान, तदनन्तर कार्तिकके अन्तिम पाँच दिन (भीष्मपञ्चक)-का माहात्म्य तथा सर्वापराधनिवारक स्तोत्र—ये सब विषय जहाँ आये हैं, वह 'स्वर्गखण्ड' कहा गया है। ब्रह्मन्! यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

रामाश्वमेधके प्रसङ्गमें प्रथम रामका राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि महर्षियोंका आगमन, पुलस्त्यवंशका वर्णन, अश्वमेधका उपदेश, अश्वमेधीय अश्वका पृथ्वीपर विचरण, अनेक राजाओंकी पुण्यमयी कथा, जगन्नाथजीकी महिमाका निरूपण, वृन्दावनका सर्वपापनाशक माहात्म्य, कृष्णावतारधारी श्रीहरिकी नित्य लीलाओंका कथन, वैशाखस्नानकी महिमा,

स्नान-दान और पूजनका फल, भूमि-वाराह-संवाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतोंका संवाद, श्रीकृष्णस्तोत्रका निरूपण, शिवशम्भु-समागम, दधीचिकी कथा, भस्मका अनुपम माहात्म्य, उत्तम शिव-माहात्म्य, देवरातसुतोपाख्यान, पुराणवेत्ताकी प्रशंसा, गौतमका उपाख्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तरमें भरद्वाज-आश्रममें श्रीरामकथा आदि विषय 'पातालखण्ड'के अन्तर्गत हैं। जो सदा इसका श्रवण और पाठ करते हैं, उनके सब पापोंका नाश करके यह उन्हें सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति कराता है।

पाँचवें खण्डमें पहले भगवान् शिवके द्वारा गौरीदेवीके प्रति कहा हुआ पर्वतोपाख्यान है। तत्पश्चात् जालन्धरकी कथा, श्रीशैल आदिका माहात्म्यकीर्तन और राजा सगरकी पुण्यमयी कथा है। उसके बाद गङ्गा, प्रयाग, काशी और गयाका अधिक पुण्यदायक माहात्म्य कहा गया है। फिर अन्नादि दानका माहात्म्य और महाद्वादशीव्रतका उल्लेख है। तत्पश्चात् चौबीस एकादशियोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य कहा गया है। फिर विष्णुधर्मका निरूपण और विष्णुसहस्रनामका वर्णन है। उसके बाद कार्तिकव्रतका माहात्म्य, माघ-स्नानका फल तथा जम्बूद्वीपके तीर्थोंकी पापनाशक महिमाका वर्णन है। फिर साभ्रमती (साबरमती)-का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्तिकथा, देवशर्मा आदिका उपाख्यान और गीतामाहात्म्यका वर्णन है। तदनन्तर भक्तिका आख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य और अनेक तीर्थोंकी कथासे युक्त इन्द्रप्रस्थकी महिमा है। इसके बाद मन्त्ररत्नका कथन, त्रिपादविभूतिका वर्णन तथा मत्स्य आदि अवतारोंकी पुण्यमयी अवतार-कथा है। तत्पश्चात् अष्टोत्तरशत दिव्य राम-नाम और उसके माहात्म्यका वर्णन है। वाडव! फिर महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुके वैभवकी परीक्षाका उल्लेख है। इस प्रकार यह पाँचवाँ 'उत्तरखण्ड' कहा गया है, जो सब प्रकारके पुण्य देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव पाँच खण्डोंसे युक्त पद्मपुराणका श्रवण करता है, वह इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर वैष्णव धामको प्राप्त कर लेता है। यह पद्मपुराण पचपन हजार श्लोकोंसे युक्त है। मानद! जो इस पुराणको लिखवाकर

पुराणज्ञ ब्राह्मणका भलीभाँति सत्कार करके ज्येष्ठकी पूर्णिमाको स्वर्णमय कमलके साथ इस लिखित पुराणका उक्त पुराणवेत्ता ब्राह्मणको दान करता है, वह सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित होकर वैष्णव धामको चला जाता है। जो पद्मपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ तथा श्रवण करता है, वह भी सम्पूर्ण पद्मपुराणके श्रवणजनित फलको प्राप्त कर लेता है।

# विष्णुपुराणका स्वरूप और विषयानुक्रमणिका

**श्रीब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं वैष्णव महापुराणका वर्णन करता हूँ। इसकी श्लोक-संख्या तेईस हजार है। यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है। इसके पूर्वभागमें शक्तिनन्दन पराशरजीने मैत्रेयको छः अंश सुनाये हैं, उनमेंसे प्रथम अंशमें इस पुराणकी अवतरणिका दी गयी है। आदिकारण सर्ग, देवता आदिकी उत्पत्ति, समुद्रमन्थनकी कथा, दक्ष आदिके वंशका वर्णन, ध्रुव तथा पृथुके चरित्र, प्राचेतसका उपाख्यान, प्रह्लादकी कथा और ब्रह्माजीके द्वारा देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि वर्गोंके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंको पृथक्-पृथक् राज्याधिकार दिये जानेका वर्णन—इन सब विषयोंको प्रथम अंश कहा गया है।

प्रियव्रतके वंशका वर्णन, द्वीपों और वर्षोंका वर्णन, पाताल और नरकोंका कथन, सात स्वर्गोंका निरूपण, पृथक्-पृथक् लक्षणोंसे युक्त सूर्य आदि ग्रहोंकी गतिका प्रतिपादन, भरत-चरित्र, मुक्तिमार्ग-निदर्शन तथा निदाघ एवं ऋभुका संवाद—ये सब विषय द्वितीय अंशके अन्तर्गत कहे गये हैं।

मन्वन्तरोंका वर्णन, वेदव्यासका अवतार तथा इसके बाद नरकसे उद्धार करनेवाला कर्म कहा गया है। सगर और और्वके संवादमें सब धर्मोंका निरूपण, श्राद्धकल्प तथा वर्णाश्रमधर्म, सदाचार-निरूपण तथा मायामोहकी कथा—यह सब विषय तीसरे अंशमें बताया गया है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

मुनिश्रेष्ठ! सूर्यवंशकी पवित्र कथा, चन्द्रवंशका वर्णन तथा नाना प्रकारके राजाओंका वृत्तान्त चतुर्थ अंशके अन्तर्गत है।

श्रीकृष्णावतारविषयक प्रश्न, गोकुलकी कथा, बाल्यावस्थामें श्रीकृष्णद्वारा पूतना आदिका वध, कुमारावस्थामें अघासुर आदिकी हिंसा, किशोरावस्थामें उनके द्वारा कंसका वध, मथुरापुरीकी लीला, तदनन्तर युवावस्थामें द्वारकाकी लीलाएँ, समस्त दैत्योंका वध, भगवान्‌के पृथक्-पृथक् विवाह, द्वारकामें रहकर योगीश्वरोंके भी ईश्वर जगन्नाथ श्रीकृष्णके द्वारा शत्रुओंके वध आदिके साथ-साथ पृथ्वीका भार उतारा जाना और अष्टावक्रजीका उपाख्यान—ये सब बातें पाँचवें अंशके अन्तर्गत हैं।

कलियुगका चरित्र, चार प्रकारके महाप्रलय तथा केशिध्वजके द्वारा खाण्डिक्य जनकको ब्रह्मज्ञानका उपदेश इत्यादि विषयोंको छठा अंश कहा गया है।

इसके बाद विष्णुपुराणका उत्तर भाग प्रारम्भ होता है, जिसमें शौनक आदिके द्वारा आदरपूर्वक पूछे जानेपर सूतजीने सनातन 'विष्णुधर्मोत्तर' नामसे प्रसिद्ध नाना प्रकारके धर्मोंकी कथाएँ कही हैं। अनेकानेक पुण्य-व्रत, यम-नियम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्यौतिष, वंशवर्णनके प्रकरण, स्तोत्र, मन्त्र तथा सब लोगोंका उपकार करनेवाली नाना प्रकारकी विद्याएँ सुनायी हैं। यह विष्णुपुराण है, जिसमें सब शास्त्रोंके सिद्धान्तका संग्रह हुआ है। इसमें वेदव्यासजीने वाराहकल्पका वृत्तान्त कहा है। जो मनुष्य भक्ति और आदरके साथ विष्णुपुराणको पढ़ते और सुनते हैं, वे दोनों यहाँ मनोवाञ्छित भोग भोगकर विष्णुलोकमें चले जाते हैं। जो इस पुराणको लिखवाकर या स्वयं लिखकर आषाढ़की पूर्णिमाको घृतमयी धेनुके साथ पुराणार्थवेत्ता विष्णुभक्त ब्राह्मणको दान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठधाममें जाता है। ब्रह्मन्! जो विष्णुपुराणकी इस विषयानुक्रमणिकाको कहता अथवा सुनता है, वह समूचे पुराणके पठन एवं श्रवणका फल पाता है।

## वायुपुराणका परिचय तथा उसके दान एवं श्रवण आदिका फल

**ब्रह्माजी कहते हैं**—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं वायुपुराणका लक्षण बतलाता हूँ, जिसके श्रवण करनेपर परमात्मा भगवान् शिवका धाम प्राप्त होता है। यह पुराण चौबीस हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। जिसमें वायुदेवने श्वेतकल्पके प्रसङ्गसे धर्मोंका उपदेश किया है, उसे वायुपुराण कहा गया है। वह पूर्व और उत्तर दो भागोंसे युक्त है। ब्रह्मन्! जिसमें सर्ग आदिका लक्षण विस्तारपूर्वक बतलाया गया है, जहाँ भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें राजाओंके वंशका वर्णन है और जहाँ गयासुरके वधकी कथा विस्तारके साथ कही गयी है, जिसमें सब मासोंका माहात्म्य बताकर माघमासका अधिक फल कहा गया है, जहाँ दानधर्म तथा राजधर्म अधिक विस्तारसे कहे गये हैं, जिसमें पृथ्वी, पाताल, दिशा और आकाशमें विचरनेवाले जीवोंके और व्रत आदिके सम्बन्धमें निर्णय किया गया है, वह वायुपुराणका पूर्वभाग कहा गया है।

मुनीश्वर! उसके उत्तरभागमें नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन है और विस्तारके साथ शिवसंहिता कही गयी है। जो भगवान् सम्पूर्ण देवताओंके लिये दुर्ज्ञेय और सनातन हैं, वे जिसके तटपर सदा सर्वतोभावेन निवास करते हैं, वही यह नर्मदाका जल ब्रह्मा है, यही विष्णु है और यही सर्वोत्कृष्ट साक्षात् शिव है। यह नर्मदाजल ही निराकार ब्रह्म तथा कैवल्य मोक्ष है। निश्चय ही भगवान् शिवने समस्त लोकोंका हित करनेके लिये अपने शरीरसे इस नर्मदा नदीके रूपमें किसी दिव्य शक्तिको ही धरतीपर उतारा है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे भगवान् रुद्रके अनुचर होते हैं और जिनका दक्षिण तटपर निवास है, वे भगवान् विष्णुके लोकमें जाते हैं। ॐकारेश्वरसे लेकर पश्चिम समुद्रतक नर्मदा नदीमें दूसरी नदियोंके पैंतीस पापनाशक संगम हैं, उनमेंसे ग्यारह तो उत्तर तटपर हैं और तेईस दक्षिण तटपर। पैंतीसवाँ तो स्वयं नर्मदा और समुद्रका संगम कहा गया है। नर्मदाके दोनों तटोंपर इन संगमोंके साथ चार सौ प्रसिद्ध तीर्थ हैं। मुनीश्वर! इनके सिवा अन्य साधारण तीर्थ तो रेवाके दोनों तटोंपर पग-पगपर विद्यमान हैं, जिनकी संख्या साठ करोड़ साठ हजार है। यह परमात्मा शिवकी संहिता परम पुण्यमयी है, जिसमें वायुदेवताने नर्मदाके चरित्रका वर्णन किया है। जो इस पुराणको लिखकर गुड़मयी धेनुके साथ श्रावणकी पूर्णिमाको भक्तिपूर्वक कुटुम्बी ब्राह्मणके हाथमें दान देता है, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य नियमपूर्वक हविष्य भोजन करते हुए इस वायुपुराणको सुनाता अथवा सुनता है, वह साक्षात् रुद्र है, इसमें संशय नहीं है। जो इस अनुक्रमणिकाको सुनता और सुनाता है, वह भी समस्त पुराणके श्रवणका फल पा लेता है।

## श्रीमद्भागवतका परिचय, माहात्म्य तथा दानजनित फल

**ब्रह्माजी कहते हैं**—मरीचे! सुनो, वेदव्यासजीने जो वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका सम्पादन किया है, वह अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह बारह शाखाओंसे युक्त कल्पवृक्षस्वरूप है। विप्रवर! इसमें विश्वरूप भगवान्‌का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके पहले स्कन्धमें सूत और शौनकादि ऋषियोंके समागमका प्रसंग उठाकर व्यासजी तथा पाण्डवोंके पवित्र चरित्रका वर्णन किया गया है। इसके बाद परीक्षित्‌के जन्मसे लेकर प्रायोपवेशनतककी कथा कही गयी है। यहींतक प्रथम स्कन्धका विषय है। फिर परीक्षित्-शुकसंवादमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी धारणाओंका निरूपण है। तदनन्तर ब्रह्म-नारद-संवादमें भगवान्‌के अवतारसम्बन्धी अमृतोपम चरित्रोंका वर्णन है। फिर पुराणका लक्षण कहा गया है। बुद्धिमान् व्यासजीने यह द्वितीय स्कन्धका विषय बताया है, जो सृष्टिके कारणतत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रतिपादक है। तत्पश्चात् विदुरका चरित्र, मैत्रेयजीके साथ विदुरका समागम, परमात्मा ब्रह्मसे सृष्टिक्रमका निरूपण और महर्षि कपिलद्वारा कहा हुआ सांख्य—यह सब विषय तृतीय स्कन्धके अन्तर्गत बताया गया है। तदनन्तर पहले सतीचरित्र, फिर ध्रुवका चरित्र, तत्पश्चात् राजा पृथुका पवित्र उपाख्यान, फिर राजा प्राचीनबर्हिष्‌की कथा—यह सब विसर्गविषयक परम उत्तम चौथा स्कन्ध कहा गया है। राजा प्रियव्रत और उनके पुत्रोंका पुण्यदायक चरित्र, ब्रह्माण्डके अन्तर्गत विभिन्न लोकोंका वर्णन तथा नरकोंकी स्थिति—यह संस्थानविषयक पाँचवाँ स्कन्ध है। अजामिलका चरित्र, दक्ष प्रजापतिद्वारा की हुई सृष्टिका निरूपण, वृत्रासुरकी कथा और मरुद्‌गणोंका पुण्यदायक जन्म—यह सब व्यासजीके द्वारा छठा स्कन्ध कहा गया है। वत्स! प्रह्लादका पुण्यचरित्र और वर्णाश्रमधर्मका निरूपण यह सातवाँ स्कन्ध बताया गया है। यह 'ऊति' अथवा कर्मवासनाविषयक स्कन्ध है। इसमें उसीका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् मन्वन्तरनिरूपणके प्रसंगमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा, समुद्रमन्थन, बलिके ऐश्वर्यकी वृद्धि और उनका बन्धन तथा मत्स्यावतारचरित्र—यह आठवाँ स्कन्ध कहा गया है। महामते! सूर्यवंशका वर्णन और चन्द्रवंशका निरूपण—यह वंशानुचरितविषयक नवाँ स्कन्ध बताया गया है। श्रीकृष्णका बालचरित, कुमारावस्थाकी लीलाएँ, व्रजमें निवास, किशोरावस्थाकी लीलाएँ, मथुरामें निवास, युवावस्था, द्वारकामें निवास और भूभारहरण—यह निरोधविषयक दसवाँ स्कन्ध है। नारद-वसुदेव-संवाद, यदु-दत्तात्रेय-संवाद और श्रीकृष्णके साथ उद्धवका संवाद, आपसके कलहसे यादवोंका संहार—यह सब मुक्तिविषयक ग्यारहवाँ स्कन्ध है। भविष्य राजाओंका वर्णन, कलिधर्मका निर्देश, राजा परीक्षित्‌के मोक्षका प्रसङ्ग, वेदोंकी शाखाओंका विभाजन, मार्कण्डेयजीकी तपस्या, सूर्यदेवकी विभूतियोंका वर्णन, तत्पश्चात् भागवती विभूतिका वर्णन और अन्तमें पुराणोंकी श्लोक-संख्याका प्रतिपादन—यह सब आश्रयविषयक बारहवाँ स्कन्ध है। वत्स! इस प्रकार तुम्हें श्रीमद्भागवतका परिचय

दिया गया है। वह वक्ता, श्रोता, उपदेशक, अनुमोदक और सहायक—सबको भक्ति, भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो भगवान्‌की भक्ति चाहता हो, वह भाद्रपदकी पूर्णिमाको सोनेके सिंहासनके साथ इस भागवतका भगवद्भक्त ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक दान करे। उसके पहले वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा ब्राह्मणकी पूजा कर लेनी चाहिये। जो मनुष्य भागवतकी इस विषयानुक्रमणिकाका दूसरेको श्रवण कराता अथवा स्वयं सुनता है, वह समस्त पुराणके श्रवणका उत्तम फल प्राप्त कर लेता है।

## नारदपुराणकी विषय-सूची, इसके पाठ, श्रवण और दानका फल

**ब्रह्माजी कहते हैं**—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं नारदीय पुराणका वर्णन करता हूँ। इसमें पचीस हजार श्लोक हैं। इसमें बृहत्कल्पकी कथाका आश्रय लिया गया है। इसमें पूर्वभागके प्रथम पादमें पहले सूत-शौनक-संवाद है; फिर सृष्टिका संक्षेपसे वर्णन है। फिर महात्मा सनकके द्वारा नाना प्रकारके धर्मोंकी पुण्यमयी कथाएँ कही गयी हैं। पहले पादका नाम 'प्रवृत्तिधर्म' है। दूसरा पाद 'मोक्षधर्म'के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें मोक्षके उपायोंका वर्णन है। वेदाङ्गोंका वर्णन और शुकदेवजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग विस्तारके साथ आया है। सनन्दनजीने महात्मा नारदको इस द्वितीय पादका उपदेश किया है। तृतीय पादमें सनत्कुमार मुनिने नारदजीको महातन्त्रवर्णित 'पशुपाशविमोक्ष'का उपदेश दिया है। फिर गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति आदिके मन्त्रोंका शोधन, दीक्षा, मन्त्रोद्धार, पूजन, प्रयोग, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्रका क्रमशः वर्णन किया है। तदनन्तर चतुर्थ पादमें सनातन मुनिने नारदजीसे पुराणोंका लक्षण, उनकी श्लोक-संख्या तथा दानका पृथक्-पृथक् फल बताया है। साथ ही उन दानोंका अलग-अलग समय भी नियत किया है। इसके बाद चैत्र आदि सब मासोंमें पृथक्-पृथक् प्रतिपदा आदि तिथियोंका सर्वपापनाशक व्रत बताया है। यह 'बृहदाख्यान' नामक पूर्वभाग बताया गया है। इसके उत्तर भागमें एकादशी व्रतके सम्बन्धमें किये हुए प्रश्नके उत्तरमें महर्षि वशिष्ठके साथ राजा मान्धाताका संवाद उपस्थित किया गया है। तत्पश्चात् राजा रुक्माङ्गदकी पुण्यमयी कथा, मोहिनीकी उत्पत्ति, उसके कर्म, पुरोहित वसुका मोहिनीके लिये शाप, फिर शापसे उसके उद्धारका कार्य, गङ्गाकी पुण्यतम कथा, गयायात्रावर्णन, काशीका अनुपम माहात्म्य, पुरुषोत्तमक्षेत्रका वर्णन, उस क्षेत्रकी यात्राविधि, तत्सम्बन्धी अनेक उपाख्यान, प्रयाग, कुरुक्षेत्र और हरिद्वारका माहात्म्य, कामोदाकी कथा, बदरीतीर्थका माहात्म्य, कामाक्षा और प्रभासक्षेत्रकी महिमा, पुष्करक्षेत्रका माहात्म्य, गौतममुनिका आख्यान, वेदपादस्तोत्र,

गोकर्णक्षेत्रका माहात्म्य, लक्ष्मणजीकी कथा, सेतुमाहात्म्यकथन, नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन, अवन्तीपुरीकी महिमा, तदनन्तर मथुरा-माहात्म्य, वृन्दावनकी महिमा, वसुका ब्रह्माके निकट जाना, तत्पश्चात् मोहिनीका तीर्थोंमें भ्रमण आदि विषय हैं। इस प्रकार यह सब नारदमहापुराण है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो इस पुराणको सुनता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। जो आश्विनकी पूर्णिमाके दिन सात धेनुओंके साथ इस पुराणका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है। जो एकचित्त होकर नारदपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका वर्णन अथवा श्रवण करता है, वह भी स्वर्गलोकमें जाता है।

## मार्कण्डेयपुराणका परिचय तथा उसके श्रवण एवं दानका माहात्म्य

**श्रीब्रह्माजी कहते हैं—**मुने! अब मैं तुम्हें मार्कण्डेयपुराणका परिचय देता हूँ। यह महापुराण पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके लिये सदा पुण्यदायक है। जिसमें पक्षियोंको प्रवचनका अधिकारी बनाकर उनके द्वारा सब धर्मोंका निरूपण किया गया है, वह मार्कण्डेयपुराण नौ हजार श्लोकोंका है, ऐसा कहा जाता है। इसमें पहले मार्कण्डेयमुनिके समीप जैमिनिके प्रश्नका वर्णन है। फिर धर्मसंज्ञक पक्षियोंके जन्मकी कथा कही गयी है। फिर उनके पूर्वजन्मकी कथा और देवराज इन्द्रके कारण उन्हें शापरूप विकारकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर बलभद्रजीकी तीर्थयात्रा, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी कथा, हरिश्चन्द्रकी पुण्यमयी कथा, आडी और बक पक्षियोंका युद्ध, पिता और पुत्रका उपाख्यान, दत्तात्रेयजीकी कथा, महान् आख्यानसहित हैहयचरित्र, अलर्कचरित्रके साथ मदालसाकी कथा, नौ प्रकारकी सृष्टिका पुण्यमय वर्णन, कल्पान्तकालका निर्देश, यक्ष-सृष्टि-निरूपण, रुद्र आदिकी सृष्टि, द्वीपचर्याका वर्णन, मनुओंकी अनेक पापनाशक कथाओंका कीर्तन और उन्हींमें दुर्गाजीकी अत्यन्त पुण्यदायिनी कथा है, जो आठवें मन्वन्तरके प्रसङ्गमें कही गयी है। तत्पश्चात् तीन वेदोंके तेजसे प्रणवकी उत्पत्ति, सूर्यदेवके जन्मकी कथा, उनका माहात्म्य, वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन, वत्सप्रीका चरित्र, तदनन्तर महात्मा खनित्रकी पुण्यमयी कथा, राजा अविक्षित्‌का चरित्र, किमिच्छिक व्रतका वर्णन, नरिष्यन्त-चरित्र, इक्ष्वाकु-चरित्र, नल-चरित्र, श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम कथा, कुशके वंशका वर्णन, सोमवंशका वर्णन, पुरूरवाकी पुण्यमयी कथा, नहुषका अद्भुत वृत्तान्त, ययातिका पवित्र चरित्र, यदुवंशका वर्णन, श्रीकृष्णकी बाललीला, उनकी मथुरा और द्वारकाकी लीलाएँ, सब

अवतारोंकी कथा, सांख्यमतका वर्णन, प्रपञ्चके मिथ्यात्वका वर्णन, मार्कण्डेयजीका चरित्र तथा पुराणश्रवण आदिका फल—ये सब विषय हैं। वत्स! जो मनुष्य इस मार्कण्डेयपुराणका भक्तिभावसे आदरपूर्वक श्रवण करता है, वह परम गतिको पाता है। जो इसकी व्याख्या करता है, वह भगवान् शिवके लोकमें जाता है। जो इसे लिखकर हाथीकी स्वर्णमयी प्रतिमाके साथ कार्तिककी पूर्णिमाके दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान देता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो मार्कण्डेयपुराणकी इस विषय-सूचीको सुनता अथवा सुनाता है, वह मनोवाञ्छित फल पाता है।

## अग्निपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

**श्रीब्रह्माजी कहते हैं**—अब मैं अग्निपुराणका वर्णन करता हूँ। जिसमें अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठसे ईशान-कल्पका वर्णन किया है, वह अग्निपुराण पंद्रह हजार श्लोकोंसे पूर्ण है। उसमें अनेक प्रकारके चरित्र हैं। यह पुराण अद्भुत है। जो लोग इसका पाठ और श्रवण करते हैं, उनके समस्त पापोंको यह हर लेनेवाला है। इसमें पहले पुराणविषयक प्रश्न है, फिर सब अवतारोंकी कथा कही गयी है। तत्पश्चात् सृष्टिका प्रकरण और विष्णुपूजा आदिका वर्णन है। तदनन्तर अग्निकार्य, मन्त्र, मुद्रादिलक्षण, सर्वदीक्षाविधान और अभिषेकनिरूपण है। इसके बाद मण्डल आदिका लक्षण, कुशापामार्जन, पवित्रारोपणविधि, देवालयविधि, शालग्राम आदिकी पूजा तथा मूर्तियोंके पृथक्-पृथक् चिह्नका वर्णन है। फिर न्यास आदिका विधान, प्रतिष्ठा, पूर्तकर्म, विनायक आदिका पूजन, नाना प्रकारकी दीक्षाओंकी विधि, सर्वदेवप्रतिष्ठा, ब्रह्माण्डका वर्णन, गङ्गादि तीर्थोंका माहात्म्य, द्वीप और वर्षका वर्णन, ऊपर और नीचेके लोकोंकी रचना, ज्योतिश्चक्रका निरूपण, ज्योतिः-शास्त्र, युद्धजयार्णव, षट्कर्म, मन्त्र, यन्त्र, औषधसमूह, कुब्जिका आदिकी पूजा, छः प्रकारकी न्यासविधि, कोटिहोमविधि, मन्वन्तरनिरूपण, ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म, श्राद्धकल्पविधि, ग्रहयज्ञ, श्रौतस्मार्तकर्म, प्रायश्चित्तवर्णन, तिथि-व्रत आदिका वर्णन, वार-व्रतका कथन, नक्षत्रव्रतकी विधिका प्रतिपादन, मासिक व्रतका निर्देश, उत्तम दीपदानविधि, नवव्यूहपूजन, नरक-निरूपण, व्रतों और दानोंकी विधिका प्रतिपादन, नाडीचक्रका संक्षिप्त वर्णन, संध्याकी उत्तम विधि, गायत्रीके अर्थका निर्देश, लिङ्गस्तोत्र, राज्याभिषेकके मन्त्रका प्रतिपादन, राजाओंके धार्मिक कृत्य, स्वप्न-सम्बन्धी विचारका अध्याय (या प्रसङ्ग), शकुन आदिका निरूपण, मण्डल आदिका निर्देश, रत्नदीक्षाविधि, रामोक्त नीतिका वर्णन, रत्नोंके लक्षण, धनुर्विद्या, व्यवहारदर्शन,

देवासुरसंग्रामकी कथा, आयुर्वेद-निरूपण, गज आदिकी चिकित्सा, उनके रोगोंकी शान्ति, गोचिकित्सा, मनुष्यादि चिकित्सा, नाना प्रकारकी पूजा-पद्धति, विविध प्रकारकी शान्ति, छन्द:शास्त्र, साहित्य, एकाक्षर आदि कोष, सिद्ध शब्दानुशासन (व्याकरण), स्वर्गादि वर्गोंसे युक्त कोश, प्रलयका लक्षण, शारीरक (वेदान्त)-का निरूपण, नरक-वर्णन, योगशास्त्र, ब्रह्मज्ञान तथा पुराणश्रवणका फल—इन विषयोंका प्रतिपादन हुआ है। ब्रह्मन्! यही अग्निपुराण कहा गया है। जो अग्निपुराणको लिखकर सुवर्णमय कमल और तिलमयी धेनुके साथ मार्गशीर्षकी पूर्णिमाके दिन पौराणिक ब्राह्मणको विधिपूर्वक दान देता है, वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस प्रकार तुम्हें अग्निपुराणकी अनुक्रमणिका बतायी गयी है, जो इसे पढ़ने और सुननेवाले

मनुष्योंको इहलोक और परलोकमें भी मोक्ष देनेवाली है।

## भविष्यपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

**ब्रह्माजी कहते हैं**—अब मैं तुम्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भविष्यपुराणका वर्णन करता हूँ, जो सब लोगोंके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है; जिसमें मैं ब्रह्मा सम्पूर्ण देवताओंका आदि स्रष्टा बताया गया हूँ। पूर्वकालमें सृष्टिके लिये स्वयम्भू मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके सर्वार्थसाधक धर्मके विषयमें प्रश्न किया। तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें धर्मसंहिताका उपदेश किया। परम बुद्धिमान् व्यास जब पुराणोंका विस्तार करने लगे तो उन्होंने उस धर्मसंहिताके पाँच विभाग किये। उनमें नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक कथाओंसे युक्त अघोरकल्पका वृत्तान्त है। उस पुराणमें पहला पर्व 'ब्रह्मपर्व' के नामसे प्रसिद्ध है। इसीमें ग्रन्थका उपक्रम है। सूत-शौनक-संवादमें पुराणविषयक प्रश्न है। इसमें अधिकतर सूर्यदेवका ही चरित्र है। अन्य सब उपाख्यान भी इसमें आये हैं। इसमें सृष्टि आदिके लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रोंका तो यह सर्वस्वरूप है। इसमें पुस्तक, लेखक और लेख्यका भी लक्षण दिया गया है। सब प्रकारके संस्कारोंका भी लक्षण बताया गया है। पक्षकी आदि सात तिथियोंके सात कल्प कहे गये हैं। अष्टमी आदि तिथियोंके शेष आठ कल्प 'वैष्णवपर्व' में बताये गये हैं। 'शैवपर्व' में ब्रह्मपर्वसे भिन्न कथाएँ हैं। 'सौरपर्व' में अन्तिम कथाओंका सम्बन्ध देखा जाता है। तत्पश्चात् 'प्रतिसर्ग पर्व' है, जिसमें पुराणके उपसंहारका वर्णन है। यह नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त पाँचवाँ पर्व है। इन पाँच पर्वोंमेंसे पहलेमें मुझ ब्रह्माकी महिमा अधिक है। दूसरे और तीसरे पर्वोंमें धर्म, काम और मोक्ष विषयको लेकर

क्रमशः भगवान् विष्णु तथा शिवकी महिमाका वर्णन है। चौथे पर्वमें सूर्यदेवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम या पाँचवाँ पर्व प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। इसमें सब प्रकारकी कथाएँ हैं। बुद्धिमान् व्यासजीने इस पर्वका भविष्यकी कथाओंके साथ उल्लेख किया है। भविष्यपुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार बतायी गयी है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवताओंकी समताका प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म सर्वत्र सम है। गुणोंके तारतम्यसे उसमें विषमता प्रतीत होती है। ऐसा श्रुतिका कथन है। जो विद्वान् ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सुवर्ण, वस्त्र, माला, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्योंसे विधिपूर्वक वाचक और पुस्तककी पूजा करता है और भविष्यपुराणकी पुस्तकको लिखकर गुड़धेनुके साथ पौषकी पूर्णिमाको उसका दान करता है तथा जो जितेन्द्रिय, निराहार अथवा एक समय हविष्यभोजी एवं एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका

पाठ और श्रवण करता है, वह भयंकर पातकोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें चला जाता है। जो भविष्यपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

## ब्रह्मवैवर्तपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दान आदिकी महिमा

**ब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं तुम्हें दसवें पुराण ब्रह्मवैवर्तका परिचय देता हूँ, जो वेदमार्गका साक्षात्कार करानेवाला है। जहाँ देवर्षि नारदको उनके प्रार्थना करनेपर भगवान् सावर्णिने सम्पूर्ण पुराणोक्त विषयका उपदेश किया था। यह पुराण अलौकिक एवं धर्म, अर्थ काम और मोक्षका सारभूत है। इसके पाठ और श्रवणसे भगवान् विष्णु और शिवमें प्रीति होती है। उन दोनोंमें अभेद-सिद्धिके लिये इस उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराणका उपदेश किया गया है। मैंने रथन्तर कल्पका जो वृत्तान्त बताया था, उसीको वेदवेत्ता व्यासने संक्षिप्त करके शतकोटिपुराणमें कहा है। व्यासजीने ब्रह्मवैवर्तपुराणके चार भाग किये हैं, जिनके नाम हैं—'ब्रह्मखण्ड', 'प्रकृतिखण्ड' 'गणेशखण्ड' और 'श्रीकृष्णखण्ड'। इन चारों खण्डोंसे युक्त यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बताया गया है। उसमें सूत और महर्षियोंके संवादमें पुराणका उपक्रम है। उसमें पहला प्रकरण सृष्टिवर्णनका है। फिर नारदके और मेरे महान् विवादका वर्णन है, जिसमें दोनोंका पराभव हुआ था। मरीचे! फिर नारदका शिवलोकगमन और भगवान् शिवसे नारदमुनिको ज्ञानकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर शिवजीके कहनेसे ज्ञानलाभके लिये सावर्णिके सिद्धसेवित आश्रममें, जो परम पुण्यमय तथा त्रिलोकीको आश्चर्यमें डालनेवाला था, नारदजीके जानेकी बात कही गयी है। यह 'ब्रह्मखण्ड' है, जो श्रवण करनेपर सब पापोंका

नाश कर देता है। तदनन्तर नारद-सावर्णि-संवादका वर्णन है। इसमें श्रीकृष्णका माहात्म्य तथा नाना प्रकारके आख्यान और कथाएँ हैं। प्रकृतिकी अंशभूत कलाओंके माहात्म्य और पूजन आदिका विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन किया गया है। यह 'प्रकृतिखण्ड' है, जो श्रवण करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करता है। तदनन्तर गणेशजन्मके विषयमें प्रश्न किया गया है। पार्वतीजीके द्वारा पुण्यक नामक महाव्रतके अनुष्ठानकी चर्चा है। तत्पश्चात् कार्तिकेय और गणेशजीकी उत्पत्ति कही गयी है। इसके बाद कार्तवीर्य अर्जुन और जमदग्निनन्दन परशुरामजीके अद्भुत चरित्रका वर्णन है, फिर गणेश और परशुरामजीमें जो महान् विवाद हुआ था, उसका उल्लेख किया गया है। यह 'गणेशखण्ड' है, जो सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है। तदनन्तर श्रीकृष्णजन्मके विषयमें प्रश्न और उनके जन्मकी अद्भुत कथा है। फिर गोकुलमें गमन तथा पूतना आदिके वधकी आश्चर्यमयी कथा है। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था और कुमारावस्थाकी विविध लीलाओंका वर्णन है। उसके बाद शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें गोपसुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ाका वर्णन है। रहस्यमें श्रीराधाके साथ उनकी क्रीड़ाका बहुत विस्तारके साथ प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् अक्रूरजीके साथ श्रीकृष्णके मथुरागमनकी कथा है। कंस आदिका वध हो जानेके बाद श्रीकृष्णके द्विजोचित संस्कारका उल्लेख है। फिर काश्य गोत्रोत्पन्न सान्दीपनि मुनिसे उनके विद्याग्रहणकी अद्भुत कथा है। तदनन्तर कालयवनका वध, श्रीकृष्णका द्वारकागमन तथा वहाँ उनके द्वारा की हुई नरकासुर आदिके वधकी अद्भुत लीलाओंका वर्णन है। ब्रह्मन्! यह 'श्रीकृष्णखण्ड' है, जो पढ़ने, सुनने, ध्यान करने, पूजा करने अथवा नमस्कार करनेपर भी मनुष्योंके संसार-दुःखका खण्डन करनेवाला है। व्यासजीके द्वारा कहे हुए इस प्राचीन और अलौकिक ब्रह्मवैवर्तपुराणका पाठ अथवा श्रवण करनेवाला मनुष्य ज्ञान-विज्ञानका नाश करनेवाले भयंकर संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है। जो इस पुराणको लिखकर माघकी पूर्णिमाको प्रत्यक्ष धेनुके साथ इसका दान करता है, वह अज्ञानबन्धनसे मुक्त हो ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लेता है। जो इस विषय-सूचीको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मनोवाञ्छित फल पा लेता है।

## लिङ्गपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

**ब्रह्माजी कहते हैं**—बेटा! सुनो, अब मैं लिङ्गपुराणका वर्णन करता हूँ, जो पढ़ने तथा सुननेवालोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् शङ्करने अग्निलिङ्गमें स्थित होकर अग्नि-कल्पकी कथाका आश्रय ले धर्म आदिकी सिद्धिके लिये मुझे जिस लिङ्गपुराणका उपदेश किया था, उसीको व्यासदेवने दो भागोंमें बाँटकर कहा है। अनेक प्रकारके उपाख्यानोंसे विचित्र प्रतीत होनेवाला यह लिङ्गपुराण ग्यारह हजार श्लोकोंसे युक्त है और भगवान् शिवकी महिमाका सूचक है। यह सब पुराणोंमें श्रेष्ठ तथा त्रिलोकीका सारभूत है। पुराणके आरम्भमें पहले प्रश्न है। फिर संक्षेपसे सृष्टिका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् योगाख्यान और कल्पाख्यानका वर्णन है। इसके बाद

लिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी पूजाकी विधि बतायी गयी है। फिर सनत्कुमार और शैल आदिका पवित्र संवाद है। तदनन्तर दाधिचि-चरित्र, युगधर्मनिरूपण, भुवन-कोश-वर्णन तथा सूर्यवंश और चन्द्रवंशका परिचय है। तत्पश्चात् विस्तारपूर्वक सृष्टिवर्णन, त्रिपुरकी कथा, लिङ्गप्रतिष्ठा तथा पशुपाश-विमोक्षका प्रसङ्ग है। भगवान् शिवके व्रत, सदाचार-निरूपण, प्रायश्चित्त, अरिष्ट, काशी तथा श्रीशैलका वर्णन है। फिर अन्धकासुरकी कथा, वाराह-चरित्र, नृसिंह-चरित्र और जलन्धर-वधकी कथा है। तदनन्तर शिवसहस्रनाम, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, मदन-दहन और पार्वतीके पाणिग्रहणकी कथा है। तत्पश्चात् विनायककी कथा, भगवान् शिवके ताण्डव-नृत्य-प्रसङ्ग तथा उपमन्युकी कथा है। ये सब विषय लिङ्गपुराणके पूर्वभागमें कहे गये हैं। मुने! इसके बाद विष्णुके माहात्म्यका कथन, अम्बरीषकी कथा तथा सनत्कुमार और नन्दीश्वरका संवाद है। फिर शिव-माहात्म्यके साथ स्नान, याग आदिका वर्णन, सूर्यपूजाकी विधि तथा मुक्तिदायिनी शिवपूजाका वर्णन है। तदनन्तर अनेक प्रकारके दान कहे गये हैं। फिर श्राद्ध-प्रकरण और प्रतिष्ठातन्त्रका वर्णन है। तत्पश्चात् अघोरकीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, गायत्री-महिमा, त्र्यम्बक-माहात्म्य और पुराणश्रवणके फलका वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें व्यासरचित लिङ्गपुराणके उत्तरभागका परिचय दिया है। यह भगवान् रुद्रके माहात्म्यका सूचक है। जो इस पुराणको लिखकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है। वह जरा-मृत्युरहित शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पापनाशक लिङ्गपुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको चला जाता है। वे दोनों भगवान् शिवके भक्त हैं और गिरिजावल्लभ शिवके प्रसादसे इहलोक और परलोकका यथावत् उपभोग करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

## वाराहपुराणका लक्षण तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

**श्रीब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं वाराहपुराणका वर्णन करता हूँ। यह दो भागोंसे युक्त है और सनातन भगवान् विष्णुके माहात्म्यका सूचक है। पूर्वकालमें मेरे द्वारा निर्मित जो मानव-कल्पका प्रसङ्ग है, उसीको विद्वानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् नारायणस्वरूप वेदव्यासने भूतलपर इस पुराणमें लिपिबद्ध किया है। वाराहपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार है। इसमें सबसे पहले पृथ्वी और वाराहभगवान्का शुभ संवाद है। तदनन्तर आदि सत्ययुगके वृत्तान्तमें रैभ्यका चरित्र है। फिर दुर्जयके चरित्र और श्राद्धकल्पका वर्णन है। तत्पश्चात् महातपाका आख्यान, गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सेनानी (कार्तिकेय), आदित्यगण, देवी, धनद तथा वृषका आख्यान है। उसके बाद सत्यतपाके व्रतकी कथा दी गयी है। तदनन्तर अगस्त्यगीता तथा रुद्रगीता कही गयी है। महिषासुरके विध्वंसमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—तीनोंकी शक्तियोंका माहात्म्य प्रकट किया गया है। तत्पश्चात् पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, गोप्रदानिक इत्यादि सत्ययुगका वृत्तान्त मैंने प्रथम भागमें दिखाया है। फिर भगवद्धर्ममें व्रत और तीर्थोंकी कथाएँ हैं। बत्तीस अपराधोंका शारीरिक प्रायश्चित्त बताया गया है। प्रायः सभी तीर्थोंके पृथक्-पृथक् माहात्म्यका वर्णन है। मथुराकी महिमा विशेषरूपसे दी गयी है। उसके बाद श्राद्ध

आदिकी विधि है। तदनन्तर ऋषिपुत्रके प्रसङ्गसे यमलोकका वर्णन, कर्मविपाक एवं विष्णुव्रतका निरूपण है। गोकर्णके पापनाशक माहात्म्यका भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार वाराहपुराणका यह पूर्वभाग कहा गया है। उत्तर भागमें पुलस्त्य और पुरुराजके संवादमें विस्तारके साथ सब तीर्थोंके माहात्म्यका पृथक्-पृथक् वर्णन है। फिर सम्पूर्ण धर्मोंकी व्याख्या और पुष्कर नामक पुण्य-पर्वका भी वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें पापनाशक वाराहपुराणका परिचय दिया है। यह पढ़ने और सुननेवालोंके मनमें भगवद्भक्ति बढ़ानेवाला है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर और सोनेकी गरुड़-प्रतिमा बनवाकर तिलधेनुके साथ चैत्रकी पूर्णिमाके दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह देवताओं तथा महर्षियोंसे वन्दित होकर भगवान् विष्णुका धाम प्राप्त कर लेता है। जो वाराहपुराणकी

इस अनुक्रमणिकाका श्रवण या पाठ करता है, वह भी भगवान् विष्णुके चरणोंमें संसार-बन्धनका नाश करनेवाली भक्ति प्राप्त कर लेता है।

## स्कन्दपुराणकी विषयानुक्रमणिका, इस पुराणके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

**श्रीब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं स्कन्दपुराणका वर्णन करता हूँ, जिसके पद-पदमें साक्षात् महादेवजी स्थित हैं। मैंने शतकोटि पुराणमें जो शिवकी महिमाका वर्णन किया है, उसके सारभूत अर्थका व्यासजीने स्कन्दपुराणमें वर्णन किया है। उसमें सात खण्ड किये गये हैं। सब पापोंका नाश करनेवाला स्कन्दपुराण इक्यासी हजार श्लोकोंसे युक्त है। जो इसका श्रवण अथवा पाठ करता है, वह साक्षात् भगवान् शिव ही है। इसमें स्कन्दके द्वारा उन शैव धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, जो तत्पुरुष कल्पमें प्रचलित थे। वे सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। इसके पहले खण्डका नाम 'माहेश्वरखण्ड' है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। इसमें बारह हजारसे कुछ कम श्लोक हैं। यह परम पवित्र तथा विशाल कथाओंसे परिपूर्ण है। इसमें सैकड़ों उत्तम चरित्र हैं तथा यह खण्ड स्कन्दस्वामीके माहात्म्यका सूचक है। माहेश्वरखण्डके भीतर केदारमाहात्म्यमें पुराणका आरम्भ हुआ है। इसमें पहले दक्षयज्ञकी कथा है। इसके बाद शिवलिङ्ग-पूजनका फल बताया गया है। इसके बाद समुद्र-मन्थनकी कथा और देवराज इन्द्रके चरित्रका वर्णन है। फिर पार्वतीका उपाख्यान और उनके विवाहका प्रसङ्ग है। तत्पश्चात् कुमारस्कन्दकी उत्पत्ति और तारकासुरके साथ उनके युद्धका वर्णन है। फिर पाशुपतका उपाख्यान और चण्डकी कथा है। फिर दूतकी नियुक्तिका

कथन और नारदजीके साथ समागमका वृत्तान्त है। उसके बाद कुमार-माहात्म्यके प्रसङ्गमें पञ्चतीर्थकी कथा है। धर्मवर्मा राजाकी कथा तथा नदियों और समुद्रका वर्णन है। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न और नाड़ीजङ्घकी कथा है। फिर महीनदीके प्रादुर्भाव और दमनककी कथा है। तत्पश्चात् मही-सागर-संगम और कुमारेशका वृत्तान्त है। इसके बाद नाना प्रकारके उपाख्यानोंसहित तारकयुद्ध और तारकासुरके वधका वर्णन है। फिर पञ्चलिङ्ग-स्थापनकी कथा आयी है। तदनन्तर द्वीपोंका पुण्यमय वर्णन, ऊपरके लोकोंकी स्थिति, ब्रह्माण्डकी स्थिति और उसका मान तथा वर्करेशकी कथा है। महाकालका प्रादुर्भाव और उसकी परम अद्भुत कथा है। फिर वासुदेवका माहात्म्य और कोटितीर्थका वर्णन है। तदनन्तर गुप्तक्षेत्रमें नाना तीर्थोंका आख्यान कहा गया है। पाण्डवोंकी पुण्यमयी कथा और बर्बरीककी सहायतासे महाविद्याके साधनका प्रसङ्ग है। तत्पश्चात् तीर्थयात्राकी समाप्ति है। तदनन्तर अरुणाचलका माहात्म्य तथा सनक और ब्रह्माजीका संवाद है। गौरीकी तपस्याका वर्णन तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका वर्णन है। महिषासुरकी कथा और उसके वधका परम अद्भुत प्रसङ्ग कहा गया है। द्रोणाचल पर्वतपर भगवान् शिवका नित्य निवास बताया गया है। इस प्रकार स्कन्दपुराणमें यह अद्भुत 'माहेश्वरखण्ड' कहा गया है।

दूसरा 'वैष्णवखण्ड' है। अब उसके आख्यानोंका मुझसे श्रवण करो। पहले भूमि-वाराह-संवादका वर्णन है, जिसमें वेङ्कटाचलका पापनाशक माहात्म्य बताया गया है। फिर कमलाकी पवित्र कथा और श्रीनिवासकी स्थितिका वर्णन है। तदनन्तर कुम्हारकी कथा तथा सुवर्णमुखरी नदीके माहात्म्यका वर्णन है। फिर अनेक उपाख्यानोंसे युक्त भरद्वाजकी अद्भुत कथा है। इसके बाद मतङ्ग और अञ्जनके पापनाशक संवादका वर्णन है। फिर उत्कलप्रदेशके पुरुषोत्तमक्षेत्रका माहात्म्य कहा गया है। तत्पश्चात्

मार्कण्डेयजीकी कथा, राजा अम्बरीषका वृत्तान्त, इन्द्रद्युम्नका आख्यान और विद्यापतिकी शुभ कथाका उल्लेख है। ब्रह्मन्! इसके बाद जैमिनि और नारदका आख्यान है, फिर नीलकण्ठ और नृसिंहका वर्णन है। तदनन्तर अश्वमेध यज्ञकी कथा और राजाका ब्रह्मलोकमें गमन कहा गया है। तत्पश्चात् रथयात्रा-विधि और जप तथा स्नानकी विधि कही गयी है। फिर दक्षिणामूर्तिका उपाख्यान और गुण्डिचाकी कथा है। रथ-रक्षाकी विधि और भगवान्‌के शयनोत्सवका वर्णन है। इसके बाद राजा श्वेतका उपाख्यान कहा गया है। फिर पृथु-उत्सवका निरूपण है। भगवान्‌के दोलोत्सव तथा सांवत्सरिक-व्रतका वर्णन है। तदनन्तर उद्दालकके नियोगसे भगवान् विष्णुकी निष्काम पूजाका प्रतिपादन किया गया है। फिर मोक्ष-साधन बताकर नाना प्रकारके योगोंका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् दशावतारकी कथा और स्नान आदिका वर्णन है। इसके बाद बदरिकाश्रम-

तीर्थका पापनाशक माहात्म्य बताया गया है। उस प्रसङ्गमें अग्नि आदि तीर्थों और गरुड़-शिलाकी महिमा है। वहाँ भगवान्के निवासका कारण बताया गया है। फिर कपालमोचन-तीर्थ, पञ्चधारा-तीर्थ और मेरुसंस्थानकी कथा है। तदनन्तर कार्तिकमासका माहात्म्य प्रारम्भ होता है। उसमें मदनालसके माहात्म्यका वर्णन है। धूम्रकेशका उपाख्यान और कार्तिकमासमें प्रत्येक दिनके कृत्यका वर्णन है। अन्तमें भीष्मपञ्चकव्रतका प्रतिपादन किया गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है।

तत्पश्चात् मार्गशीर्षके माहात्म्यमें स्नानकी विधि बतायी गयी है। फिर पुण्ड्रादि-कीर्तन और माला-धारणका पुण्य कहा गया है। भगवान्को पञ्चामृतसे स्नान करानेका तथा घण्टा बजाने आदिका पुण्य फल बताया गया है। नाना प्रकारके फूलोंसे भगवत्पूजनका फल और तुलसीदलका माहात्म्य कहा गया है। भगवान्को नैवेद्य लगानेकी महिमा, एकादशीके दिन कीर्तन, अखण्ड एकादशी-व्रत रहनेका पुण्य और एकादशीको रातमें जागरण करनेका फल बताया गया है। इसके बाद मत्स्योत्सवका विधान और नाममाहात्म्यका कीर्तन है। भगवान्के ध्यान आदिका पुण्य तथा मथुराका माहात्म्य बताया गया है। मथुरातीर्थका उत्तम माहात्म्य अलग कहा गया है और वहाँके बारह वनोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् इस पुराणमें श्रीमद्भागवतके उत्तम माहात्म्यका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्गमें वज्रनाभ और शाण्डिल्यके संवादका उल्लेख किया गया है, जो व्रजकी आन्तरिक लीलाओंका प्रकाशक है। तदनन्तर माघ मासमें स्नान, दान और जप करनेका माहात्म्य बताया गया है, जो नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त है। माघ-माहात्म्यका दस अध्यायोंमें प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् वैशाख-माहात्म्यमें शय्यादान आदिका फल कहा गया है। फिर जलदानकी विधि, कामोपाख्यान, शुकदेवचरित, व्याधकी अद्भुत कथा और अक्षयतृतीया आदिके पुण्यका विशेषरूपसे वर्णन है। इसके बाद अयोध्या-माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें चक्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वारतीर्थ, चन्द्रहरितीर्थ, धर्महरितीर्थ, स्वर्णवृष्टितीर्थकी कथा और तिलोदा-सरयू-संगमका वर्णन है। तदनन्तर सीताकुण्ड, गुप्तहरितीर्थ, सरयू-घाघरा-संगम, गोप्रचारतीर्थ, क्षीरोदकतीर्थ और बृहस्पतिकुण्ड आदि पाँच तीर्थोंकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् घोषार्क आदि तेरह तीर्थोंका वर्णन है। फिर गयाकूपके सर्वपापनाशक माहात्म्यका कथन है। तदनन्तर माण्डव्याश्रम आदि, अजित आदि तथा मानस आदि तीर्थोंका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह दूसरा 'वैष्णवखण्ड' कहा गया है।

मरीचे! इसके बाद परम पुण्यदायक 'ब्रह्म-खण्ड' का वर्णन सुनो, जिसमें पहले सेतुमाहात्म्य प्रारम्भ करके वहाँके स्नान और दर्शनका फल बताया गया है। फिर गालवकी तपस्या तथा राक्षसकी कथा है। तत्पश्चात् देवीपत्तनमें चक्रतीर्थ आदिकी महिमा, वेतालतीर्थका माहात्म्य और पापनाश आदिका वर्णन है। मङ्गल आदि तीर्थोंका माहात्म्य, ब्रह्मकुण्ड आदिका वर्णन, हनुमत्कुण्डकी महिमा तथा अगस्त्यतीर्थके फलका कथन है। रामतीर्थ आदिका वर्णन, लक्ष्मीतीर्थका निरूपण, शङ्ख आदि तीर्थोंकी महिमा तथा साध्यामृत आदि तीर्थोंके प्रभावका वर्णन है। इसके बाद धनुषकोटि आदिका माहात्म्य, क्षीरकुण्ड आदिकी महिमा तथा गायत्री आदि तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन है। फिर रामेश्वरकी महिमा, तत्त्वज्ञानका उपदेश तथा सेतु-यात्रा-विधिका वर्णन है, जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। तत्पश्चात् धर्मारण्यका

उत्तम माहात्म्य बताया गया है, जिसमें भगवान् शिवने स्कन्दको तत्त्वका उपदेश किया है। फिर धर्मारण्यका प्रादुर्भाव, उसके पुण्यका वर्णन, कर्मसिद्धिका उपाख्यान तथा ऋषिवंशका निरूपण है। तदनन्तर वहाँ अप्सरा-सम्बन्धी मुख्य तीर्थोंका माहात्म्य कहा गया है। इसके बाद वर्णाश्रम-धर्मके तत्त्वका निरूपण किया गया है। तदनन्तर देवस्थान-विभाग और बकुलादित्यकी शुभ कथाका वर्णन है। वहाँ छत्रानन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतङ्गिनी और पुण्यदा—ये पाँच देवियाँ सदा स्थित बतायी गयी हैं। इसके बाद वहाँ इन्द्रेश्वर आदिकी महिमा तथा द्वारका आदिका निरूपण है। लोहासुरकी कथा, गङ्गाकूपका वर्णन, श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र तथा सत्यमन्दिरका वर्णन है। फिर जीर्णोद्धारकी महिमाका कथन, आसन-दान, जातिभेद-वर्णन तथा स्मृति-धर्मका निरूपण है। तत्पश्चात् अनेक उपाख्यानोंसे युक्त वैष्णव-धर्मोंका वर्णन है। तदनन्तर पुण्यमय चातुर्मास्यका माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें पालन करने योग्य सब धर्मोंका निरूपण किया गया है। फिर दानकी प्रशंसा, व्रतकी महिमा, तपस्या और पूजाका माहात्म्य तथा सच्छूद्रका कथन है। तदनन्तर प्रकृतियोंके भेदका वर्णन, शालग्रामके तत्त्वका निरूपण, तारकासुरके वधका उपाय, गरुड़-पूजनकी महिमा, विष्णुका शाप, वृक्षभावकी प्राप्ति, पार्वतीका अनुनय, भगवान् शिवका ताण्डवनृत्य, राम-नामकी महिमाका निरूपण, शिव-लिङ्गपतनकी कथा, पैजवन शूद्रकी कथा, पार्वतीजीका जन्म और चरित्र, तारकासुरका अद्भुत वध, प्रणवके ऐश्वर्यका कथन, तारकासुरके चरित्रका पुनर्वर्णन, दक्ष-यज्ञकी समाप्ति, द्वादशाक्षरमन्त्रका निरूपण, ज्ञानयोगका वर्णन, द्वादश सूर्योंकी महिमा तथा चातुर्मास्य-माहात्म्यके श्रवण आदिके पुण्यका वर्णन किया गया है, जो मनुष्योंके लिये कल्याणदायक है। तदनन्तर ब्राह्मोत्तर भागमें भगवान् शिवकी अद्भुत महिमा, पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य तथा गोकर्णकी महिमाका वर्णन है। तत्पश्चात् शिवरात्रिकी महिमा, प्रदोषव्रतका वर्णन तथा सोमवार-व्रतकी महिमा एवं सीमन्तिनीकी कथा है। फिर भद्रायुकी उत्पत्तिका वर्णन, सदाचार-निरूपण, शिवकवचका उपदेश, भद्रायुके विवाहका वर्णन, भद्रायुकी महिमा, भस्म-माहात्म्य-वर्णन, शबरका उपाख्यान, उमा-महेश्वर-व्रतकी महिमा, रुद्राक्षका माहात्म्य, रुद्राध्यायके पुण्य तथा ब्रह्मखण्डके श्रवण आदिकी पुण्यमयी महिमाका वर्णन है। इस प्रकार यह 'ब्रह्मखण्ड' बताया गया है।

इसके बाद चौथा परम उत्तम 'काशीखण्ड' है, जिसमें विन्ध्यपर्वत और नारदजीके संवादका वर्णन है। फिर सत्यलोकका प्रभाव, अगस्त्यके आश्रममें देवताओंका आगमन, पतिव्रताचरित्र तथा तीर्थयात्राकी प्रशंसा है। तदनन्तर सप्तपुरीका वर्णन, संयमिनीका निरूपण, शिवशर्माको सूर्य, इन्द्र और अग्निके लोककी प्राप्तिका उल्लेख है। अग्निका प्रादुर्भाव, निर्ऋति तथा वरुणकी उत्पत्ति, गन्धवती, अलकापुरी और ईशानपुरीके उद्भवका वर्णन, चन्द्र, सूर्य, बुध, मङ्गल तथा बृहस्पतिके लोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, ध्रुवलोक और तपोलोकका वर्णन है। तत्पश्चात् ध्रुवलोककी पुण्यमयी कथा, सत्यलोकका निरीक्षण, स्कन्द-अगस्त्य-संवाद, मणिकर्णिकाकी उत्पत्ति, गङ्गाजीका प्राकट्य, गङ्गासहस्रनाम, काशीपुरीकी प्रशंसा, भैरवका आविर्भाव, दण्डपाणि तथा ज्ञानवापीका उद्भव, कलावतीकी कथा, सदाचारनिरूपण, ब्रह्मचारीका आख्यान, स्त्रीके लक्षण, कर्तव्याकर्तव्यका निर्देश, अविमुक्तेश्वरका वर्णन, गृहस्थ योगीके धर्म, कालज्ञान, दिवोदासकी पुण्यमयी कथा, काशीका वर्णन, भूतलपर मायागणपतिका प्रादुर्भाव, विष्णुमायाका

प्रपञ्च, दिवोदासका मोक्ष, पञ्चनदतीर्थकी उत्पत्ति, विन्दुमाधवका प्राकट्य, तदनन्तर काशीका वैष्णवतीर्थ कहलाना; फिर शूलधारी शङ्करका काशीमें आगमन, जैगीषव्यके साथ संवाद, महेश्वरका ज्येष्ठेश्वर नाम होना, क्षेत्राख्यान, कन्दुकेश्वर और व्याघ्रेश्वरका प्रादुर्भाव, शैलेश्वर, रत्नेश्वर तथा कृत्तिवासेश्वरका प्राकट्य, देवताओंका अधिष्ठान, दुर्गासुरका पराक्रम, दुर्गाजीकी विजय, ॐकारेश्वरका वर्णन, पुनः ॐकारका माहात्म्य, त्रिलोचनका प्रादुर्भाव, केदारेश्वरका आख्यान, धर्मेश्वरकी कथा, विष्णुभुजाका प्राकट्य, वीरेश्वरका आख्यान, गङ्गा-माहात्म्यकीर्तन, विश्वकर्मेश्वरकी महिमा, दक्षयज्ञोद्भव, सतीश और अमृतेश आदिका माहात्म्य, पराशरनन्दन व्यासजीकी भुजाओंका स्तम्भन, क्षेत्रके तीर्थोंका समुदाय, मुक्तिमण्डपकी कथा, विश्वनाथजीका वैभव, तदनन्तर काशीकी यात्रा और परिक्रमाका वर्णन—ये 'काशीखण्ड'के विषय हैं।

तदनन्तर पाँचवें 'अवन्तीखण्ड'का वर्णन सुनो। इसमें महाकालवनका आख्यान, ब्रह्माजीके मस्तकका छेदन, प्रायश्चित्तविधि, अग्निकी उत्पत्ति, देवताओंका आगमन, देवदीक्षा, नाना प्रकारके पातकोंका नाश करनेवाला शिवस्तोत्र, कपालमोचनकी कथा, महाकालवनकी स्थिति, कलकलेश्वरका सर्वपापनाशक तीर्थ, अप्सराकुण्ड, पुण्यदायक रुद्रसरोवर, कुटुम्बेश, विद्याधरेश्वर तथ मर्कटेश्वर तीर्थका वर्णन है। तत्पश्चात् स्वर्गद्वार, चतुःसिन्धुतीर्थ, शङ्करवापिका, शङ्करादित्य, पापनाशक गन्धवतीतीर्थ, दशाश्वमेधिकतीर्थ, अनंशतीर्थ, हरिसिद्धिप्रदतीर्थ, पिशाचादियात्रा, हनुमदीश्वर, कवचेश्वर, महाकालेश्वरयात्रा, वल्मीकेश्वरतीर्थ, शुक्रेश्वर और नक्षत्रेश्वरतीर्थका उपाख्यान, कुशस्थलीकी परिक्रमा, अक्रूरतीर्थ, एकपादतीर्थ, चन्द्रार्कवैभवतीर्थ, करभेशतीर्थ, लड्डुकेश आदि तीर्थ, मार्कण्डेश्वरतीर्थ, यज्ञवापीतीर्थ, सोमेश्वरतीर्थ, नरकान्तकतीर्थ, केदारेश्वर, रामेश्वर, सौभागेश्वर तथा नरादित्यतीर्थ, केशवादित्य, शक्तिभेदतीर्थ, स्वर्णसारमुखतीर्थ, ॐकारेश्वर आदि तीर्थ, अन्धकासुरके द्वारा स्तुति-कीर्तन, कालवनमें शिवलिङ्गोंकी संख्या तथा स्वर्णशृङ्गेश्वरतीर्थका वर्णन है। फिर कुशस्थली, अवन्ती एवं उज्जयिनीपुरीके पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती, विशाला तथा प्रतिकल्प—इन नामोंका उल्लेख है। इनका उच्चारण ज्वरकी शान्ति करनेवाला है। तत्पश्चात् शिप्रामें स्नान आदिका फल, नागोंद्वारा की हुई भगवान् शिवकी स्तुति, हिरण्याक्षवधकी कथा, सुन्दरकुण्डकतीर्थ, नीलगङ्गा, पुष्करतीर्थ, विन्ध्यवासनतीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ, अघनाशनतीर्थ, गोमतीतीर्थ, वामनकुण्ड, विष्णुसहस्रनाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमीकी महिमा, नृसिंहजयन्ती, कुटुम्बेश्वरयात्रा, देवसाधककीर्तन, कर्कराज नामक तीर्थ, विघ्नेशादितीर्थ और सुरोहनतीर्थका वर्णन किया गया है। रुद्रकुण्ड आदिमें अनेक तीर्थोंका निरूपण किया गया है। तदनन्तर आठ तीर्थोंकी पुण्यमयी यात्राका वर्णन है। इसके बाद नर्मदानदीका माहात्म्य बतलाया गया है, जिसमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वैराग्य तथा मार्कण्डेयजीके साथ उनके समागमका वर्णन है।

तदनन्तर पहलेके प्रलयकालीन अनुभवका वर्णन, अमृत-कीर्तन, कल्प-कल्पमें नर्मदाके पृथक्-पृथक् नामोंका वर्णन, नर्मदाजीका आर्षस्तोत्र, कालरात्रिकी कथा, महादेवजीकी स्तुति, पृथक् कल्पकी अद्भुत कथा, विशल्याकी कथा, जालेश्वरकी कथा, गौरीव्रतका वर्णन, त्रिपुरदाहकी कथा, देहपातविधि, कावेरीसङ्गम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त, ईश्वरकथा, अग्नितीर्थ, सूर्यतीर्थ, मेघनादादितीर्थ, दारुकतीर्थ, देवतीर्थ, नर्मदेशतीर्थ, कपिलातीर्थ, करञ्जकतीर्थ, कुण्डलेशतीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, विमलेश्वरतीर्थ, शूलभेदनतीर्थ, शचीहरणकी कथा,

अभ्रकका वध, शूलभेदोद्भवतीर्थ, पृथक्-पृथक् दानधर्म, दीर्घतपाकी कथा, ऋष्यशृङ्गका उपाख्यान, चित्रसेनकी पुण्यमयी कथा, काशिराजका मोक्ष, देवशिलाकी कथा, शबरीतीर्थ, पवित्र व्याधोपाख्यान, पुष्करिणीतीर्थ, अर्कतीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिकतीर्थ, कुमारेश्वरतीर्थ, अगस्त्येश्वरतीर्थ, आनन्देश्वरतीर्थ, मातृतीर्थ, लोकेश्वर, धनदेश्वर, मङ्गलेश्वर तथा कामजतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, गोपारतीर्थ, गौतमतीर्थ, शङ्खचूडतीर्थ, नारदेश्वरतीर्थ, नन्दिकेश्वरतीर्थ, वरणेश्वरतीर्थ, दधिस्कन्दादितीर्थ, हनुमदीश्वरतीर्थ, रामेश्वर आदि तीर्थ, सोमेश्वर, पिङ्गलेश्वर, ऋणमोक्षेश्वर, कपिलेश्वर, पूतिकेश्वर, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, काल्होडीश्वर, नन्दिकेश्वर, नारायणेश्वर, कोटीश्वर, व्यासतीर्थ, प्रभासतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, संकर्षणतीर्थ, प्रश्रयेश्वरतीर्थ, पुण्यमय एरण्डी-सङ्गमतीर्थ, सुवर्णशिलतीर्थ, करञ्जतीर्थ, कामरतीर्थ, भाण्डीरतीर्थ, रोहिणीभवतीर्थ, चक्रतीर्थ, धौतपापतीर्थ, आङ्गिरसतीर्थ, कोटितीर्थ, अन्योन्यतीर्थ, अङ्गारतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, इन्द्रेशतीर्थ, कम्बुकेशतीर्थ, सोमेशतीर्थ, कोहलेशतीर्थ, नर्मदातीर्थ, अर्कतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, उत्तम भार्गवेश्वरतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, दैवतीर्थ, मार्गेशतीर्थ, आदिवाराहेश्वर, रामेश्वरतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, अहल्यातीर्थ, कंकटेश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, नादेशतीर्थ, कोयेश तीर्थ, रुक्मिणीसम्भवतीर्थ, योजनेशतीर्थ, वराहेशतीर्थ, द्वादशीतीर्थ, शिवतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, मङ्गलेश्वरतीर्थ, लिङ्गवाराहतीर्थ, कुण्डेशतीर्थ, श्वेतवाराहतीर्थ, भार्गवेश तीर्थ, रवीश्वरतीर्थ, शुक्ल आदि तीर्थ, हुङ्कारस्वामितीर्थ, सङ्गमेश्वरतीर्थ, नहुषेश्वरतीर्थ, मोक्षणतीर्थ, पञ्चगोपदतीर्थ, नागशावकतीर्थ, सिद्धेशतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, अक्रूरतीर्थ, कामोदतीर्थ, शूलारोपतीर्थ, माण्डव्यतीर्थ, गोपकेश्वरतीर्थ, कपिलेश्वरतीर्थ, पिङ्गलेश्वरतीर्थ, भूतेश्वरतीर्थ, गङ्गातीर्थ, गौतमतीर्थ, अश्वमेधतीर्थ, भृगुकच्छतीर्थ, पापनाशक केदारेशतीर्थ, कलकलेश (या कनखलेश) तीर्थ, जालेशतीर्थ, शालग्रामतीर्थ, वराहतीर्थ, चन्द्रप्रभासतीर्थ, आदित्यतीर्थ, श्रीपदतीर्थ, हंसतीर्थ, मूलस्थानतीर्थ, शूलेश्वरतीर्थ, उग्रतीर्थ, चित्रदैवकतीर्थ, शिखीश्वरतीर्थ, कोटितीर्थ, दशकन्यतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, भारभूतितीर्थ, पुङ्खमुण्डित तीर्थ, आमलेशतीर्थ, कपालेशतीर्थ, शृङ्गैरण्डीतीर्थ, कोटितीर्थ और लोटलेशतीर्थ आदिका वर्णन है। इसके बाद फलस्तुति कही गयी है। तदनन्तर कृमिजङ्गलमाहात्म्यके प्रसङ्गमें रोहिताश्वकी कथा, धुन्धुमारका उपाख्यान, उसके वधका उपाय, धुन्धु-वध, चित्रवहका उद्भव, उसकी महिमा, चण्डीशका प्रभाव, रतीश्वर, केदारेश्वर, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, मुखारतीर्थ, च्यवनान्धतीर्थ, ब्रह्मसरोवर, चक्रतीर्थ, ललितोपाख्यान, बहुगोमुखतीर्थ, रुद्रावर्ततीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, पापनाशकतीर्थ, श्रवणेशतीर्थ, शुद्धपटतीर्थ, देवान्धुप्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थका प्राकट्य, शिवोद्भेदतीर्थ और फल-श्रुति—इन विषयोंका वर्णन है। यह सब 'अवन्ती-खण्ड'का वर्णन किया गया है, जो श्रोताओंके पापका नाश करनेवाला है।

इसके अनन्तर 'नागरखण्ड'का परिचय दिया जाता है। इसमें लिङ्गोत्पत्तिका वर्णन, हरिश्चन्द्रकी शुभ कथा, विश्वामित्रका माहात्म्य, त्रिशङ्कुका स्वर्गलोकमें गमन, हाटकेश्वर-माहात्म्यके प्रसङ्गमें वृत्रासुरका वध, नागबिल, शङ्खतीर्थ, अचलेश्वरका वर्णन, चमत्कारपुरकी चमत्कारपूर्ण कथा, गयशीर्षतीर्थ, बालशतीर्थ, बालमण्डतीर्थ, मृगतीर्थ, विष्णुपाद, गोकर्ण, युगरूप, समाश्रय तथा सिद्धेश्वरतीर्थ, नागसरोवर, सप्तर्षितीर्थ, अगस्त्यतीर्थ, भ्रूणगर्त, नलेशतीर्थ, भीष्मतीर्थ, वैडूरमरकततीर्थ, शर्मिष्ठातीर्थ, सोमनाथतीर्थ, दुर्गातीर्थ, आनर्तकेश्वरतीर्थ, जमदग्निवधकी कथा, परशुरामद्वारा क्षत्रियोंके संहारका कथानक, रामह्रद, नागपुरतीर्थ, षड्लिङ्गतीर्थ,

यज्ञभूतीर्थ, मुण्डीरादितीर्थ, त्रिकार्कतीर्थ, सतीपरिणयतीर्थ, रुद्रशीर्षतीर्थ, योगेशतीर्थ, बालखिल्यतीर्थ, गरुड़तीर्थ, लक्ष्मीजीका शाप, सप्तविंशतीर्थ, सोमप्रासादतीर्थ, अम्बावृद्धतीर्थ, अग्नितीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, गोमुखतीर्थ, लोहयष्टितीर्थ, अजापालेश्वरीदेवी, शनैश्चरतीर्थ, राजवापी, रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, कुशेश्वर, लवेश्वरलिङ्ग, सर्वोत्तमोत्तम अड़सठ तीर्थोंके नाम, दमयन्तीपुत्र त्रिजातकी कथा, रेवती अम्बाकी स्थापना, भक्तिकातीर्थका आविर्भाव, क्षेमङ्करीदेवी, केदारक्षेत्रका प्रादुर्भाव, शुक्लतीर्थ, मुखारकतीर्थ, सत्यसन्ध्येश्वरका आख्यान, कर्णोत्पलाकी कथा, अटेश्वरतीर्थ, याज्ञवल्क्यतीर्थ, गौरीगणेशतीर्थ, वास्तुपदतीर्थका आख्यान, अजागृहादेवीकी कथा, सौभाग्यान्धतीर्थ, शूलेश्वरलिङ्ग, धर्मराजकी कथा, मिष्टान्न देवेश्वरका आख्यान, तीन गणपतिका आविर्भाव, जाबालिचरित, मकरेशकी कथा, कालेश्वरी और अन्धकका आख्यान, आप्सरसकुण्ड, पुष्पादित्यतीर्थ, रोहिताश्वतीर्थ, नागर ब्राह्मणोंकी उत्पत्तिका कथन, भार्गवचरित, विश्वामित्रचरित्र, सारस्वततीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, कंसारीश्वरतीर्थ, पिण्डकतीर्थ, ब्रह्माका यज्ञानुष्ठान, सावित्रीकी कथा, रैवतका आख्यान, भर्तृयज्ञका वृत्तान्त, मुख्य तीर्थोंका निरीक्षण, कुरुक्षेत्र, हाटकेश्वरक्षेत्र और प्रभासक्षेत्र—इन तीनों क्षेत्रोंका वर्णन, पुष्करारण्य, नैमिषारण्य तथा धर्मारण्य—इन तीन अरण्योंका वर्णन, वाराणसी, द्वारका तथा अवन्ती—इन तीन पुरियोंका वर्णन, वृन्दावन, खाण्डववन और अद्वैतवन—इन तीन वनोंका उल्लेख, कल्पग्राम, शालग्राम तथा नन्दिग्राम—इन तीन उत्तम ग्रामोंका प्रतिपादन, असितीर्थ, शुक्लतीर्थ और पितृतीर्थ—इन तीन तीर्थोंका निरूपण, श्रीशैल, अर्बुदगिरि तथा रैवतगिरि—इन तीन पर्वतोंका वर्णन, गङ्गा, नर्मदा और सरस्वती—इन तीन नदियोंका नाम-उच्चारण, इनमेंसे एक-एकका कीर्तन साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंका फल देनेवाला है—इत्यादि विषयोंका प्रतिपादन किया गया है। कूपिकातीर्थ, शङ्खतीर्थ, चामरतीर्थ और बालमण्डनतीर्थ—इन चारोंका उच्चारण, हाटकेश्वरक्षेत्रका फल देनेवाला है। इन सब तीर्थोंके वर्णनके पश्चात् साम्बादित्यकी महिमा, श्राद्धकल्पका निरूपण, युधिष्ठिर-भीष्म-संवाद, अन्धक (अन्धकारपूर्ण नरक), जलशायीका माहात्म्य, चातुर्मास्य-व्रत, अशून्यशयनव्रत, मङ्कणेशकी महिमा, शिवरात्रिका माहात्म्य, तुलापुरुषदान, पृथ्वीदान, बालकेश्वर, कपालमोचनेश्वर, पापपिण्ड, सप्तलिङ्ग, युगमान आदिका वर्णन, निम्बेश्वर और शाकम्भरीकी कथा, ग्यारह रुद्रोंके प्राकट्यका वर्णन, दानमाहात्म्य तथा द्वादशादित्यका कीर्तन—इन सब विषयोंका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार यह 'नागर-खण्ड' कहा गया।

अब 'प्रभासखण्ड'का वर्णन किया जाता है, जिसमें सोमनाथ, विश्वनाथ, महान् पुण्यप्रद अर्कस्थल तथा सिद्धेश्वर आदिका आख्यान पृथक्-पृथक् कहा गया है। तत्पश्चात् अग्नितीर्थ, कपर्दीश्वर, उत्तम गतिदायक केदारेश्वर, भीमेश्वर, भैरवेश्वर, चण्डीश्वर, भास्करेश्वर, चन्द्रेश्वर, मङ्गलेश्वर, बुधेश्वर, बृहस्पतीश्वर, शुक्रेश्वर, शनैश्चरेश्वर, राह्वीश्वर, केत्वीश्वर आदि शिवविग्रहोंका वर्णन है। तत्पश्चात् सिद्धेश्वर आदि अन्य पाँच रुद्रोंकी स्थितिका वर्णन किया गया है। वरारोहा, अजापाला, मङ्गला, ललितेश्वरी, लक्ष्मीश्वर, बाडवेश्वर, उर्वीश्वर, कामेश्वर, गौरीश्वर, वरुणेश्वर, दुर्वासेश्वर, गणेश्वर, कुमारेश्वर, चण्डकल्प, शकुलीश्वर, कोटीश्वर तथा बालरूपधारी ब्रह्मा आदिकी उत्तम कथा है। तत्पश्चात् नरकेश्वर, संवर्तेश्वर, निधीश्वर, बलभद्रेश्वर, गङ्गा, गणपति, जाम्बवती नदी, पाण्डुकूप, शतमेध, लक्षमेध और कोटिमेधकी श्रेष्ठ कथा है। दुर्वासादित्य, घटस्थान,

हिरण्यासङ्गम, नागरादित्य, श्रीकृष्ण, संकर्षण, समुद्र, कुमारी, क्षेत्रपाल, ब्रह्मेश्वर, पिङ्गलासङ्गमेश्वर, शङ्करादित्य, घटेश्वर, ऋषितीर्थ, नन्दादित्य, त्रितकूप, सोमपान, पर्णादित्य और न्यङ्कुमतीकी भी अद्भुत कथाका उल्लेख है। तदनन्तर बाराहस्वामीका वृत्तान्त, छायालिङ्ग, गुल्फ, कनकनन्दा, कुन्ती और गङ्गेशकी कथा है। फिर चमसोद्भेदेश्वर, विदुरेश्वर, त्रिलोकेश्वर, मङ्कणेश्वर, त्रैपुरेश्वर तथा षण्डतीर्थकी कथा है। फिर सूर्यप्राची, त्रीक्षण और उमानाथकी कथा है। पृथिव्युद्धार, शूलस्थल, च्यवनादित्य और च्यवनेश्वरका वृत्तान्त है। उसके बाद अजापालेश्वर, बालादित्य, कुबेरस्थल तथा ऋषितोयाकी पुण्यमयी कथा एवं शृगालेश्वरका माहात्म्यकीर्तन है। फिर नारदादित्यकी कथा, नारायणके स्वरूपका निरूपण, तप्तकुण्डकी महिमा तथा मूलचण्डीश्वरका वर्णन है। चतुर्मुख गणेश और कलम्बेश्वरकी कथा, गोपालस्वामी, बकुलस्वामी और मरुद्गणकी भी कथा है। तत्पश्चात् क्षेमादित्य, उन्नतविघ्नेश, तलस्वामी, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासेश्वर, भद्रेश्वर, शङ्खावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पदतीर्थ, अच्युतगृह, जालेश्वर, ॐकारेश्वर, चण्डीश्वर, आशापुरनिवासी विघ्नेश और कलाकुण्डकी अद्भुत कथा है। कपिलेश्वर और जरद्गव शिवकी भी विचित्र कथाका उल्लेख है। नलेश्वर, कर्कोटकेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, यन्त्रभूषा, दुर्गकूट और गणेशकी कथाका भी उल्लेख है। सुपर्णभैरवी और एलाभैरवी तथा भल्लतीर्थकी भी महिमा है। तत्पश्चात् कर्दमालतीर्थ और गुप्त सोमनाथका वर्णन है। इसके बाद बहुस्वर्णेश्वर, शृङ्गेश्वर, कोटीश्वर, मार्कण्डेश्वर, कोटीश तथा दामोदरगृहकी माहात्म्य-कथा है। तदनन्तर स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश्वर, भीमेश्वर, मृगीकुण्ड तथा सर्वस्व—ये वस्त्रापथक्षेत्रमें कहे गये हैं। तत्पश्चात् दुर्गाभल्लेश, गङ्गेश, रैवतेश, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदार, तीर्थागमन, कोटीश्वर, रूपतीर्थ और हृषीकेश—ये अद्भुत माहात्म्यकथाएँ हैं। इसके बाद सिद्धेश्वर, शुक्रेश्वर, मणिकर्णीश्वर, पङ्गुतीर्थ, यमतीर्थ और वाराहीतीर्थ आदिके माहात्म्यका वर्णन है। फिर चन्द्रप्रभास, पिण्डोदक, श्रीमाता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनीदेवी, पिण्डारकतीर्थ, कनखलतीर्थ, चक्रतीर्थ, मानुषतीर्थ, कपिलाग्नितीर्थ तथा रक्तानुबन्ध आदि माहात्म्यकथाका उल्लेख है। तदनन्तर गणेशतीर्थ, पार्थेश्वरतीर्थ और उज्ज्वलतीर्थकी यात्रामें चण्डीस्थान, नागोद्भव, शिवकुण्ड, महेशतीर्थ तथा कामेश्वरका माहात्म्यवर्णन और मार्कण्डेयजीकी उत्पत्तिकथा है। फिर उद्दालकेश और सिद्धेशके समीपवर्ती तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् कथाएँ हैं। इसके बाद श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतीर्थकी कथा, कुलसन्तारतीर्थका माहात्म्य तथा रामतीर्थ एवं कोटितीर्थकी महिमा है। चन्द्रोद्भेदतीर्थ, ईशानतीर्थ और ब्रह्मस्थानकी उत्पत्तिका अद्भुत माहात्म्य तथा त्रिपुष्कर, रुद्रह्रद और गुहेश्वरकी शुभ कथा है। तत्पश्चात् अविमुक्तकी महिमा, उमामहेश्वरका माहात्म्य, महौजाका प्रभाव और जम्बूतीर्थका महत्त्व कहा गया है। गङ्गाधर और मिश्रककी कथा एवं फलस्तुतिका भी वर्णन है। तदनन्तर द्वारकामाहात्म्यके प्रसङ्गमें चन्द्रशर्माकी कथा है। जागरण और पूजन आदिका आख्यान, एकादशीव्रतकी महिमा, महाद्वादशीका आख्यान, प्रह्लाद और ऋषियोंका समागम, दुर्वासाका उपाख्यान, यात्राकी प्रारम्भिक विधि, गोमतीकी उत्पत्तिकथा, उसमें स्नान आदिका फल, चक्रतीर्थका माहात्म्य, गोमतीसागर-सङ्गम, सनकादि कुण्डका आख्यान, नृगतीर्थकी कथा, गोप्रचारकी पुण्यमयी कथा, गोपियोंका द्वारकामें आगमन, गोपीसरोवरका आख्यान, ब्रह्मतीर्थ आदिका कीर्तन, पाँच नदियोंके

आगमनकी कथा, अनेक प्रकारके उपाख्यान, शिवलिङ्ग, गदातीर्थ और श्रीकृष्णपूजन आदिका वर्णन है। त्रिविध-मूर्तिका वर्णन, दुर्वासा और श्रीकृष्ण-संवाद, कुश दैत्यके वधकी कथा, विशेष, पूजनका फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थोंके आगमनका वर्णन, श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन, द्वारवतीमें अभिषेक, वहाँ तीर्थोंके निवासकी कथा और द्वारकाके पुण्यका वर्णन है। ब्राह्मणो! इस प्रकार सर्वोत्तम कथाओंसे युक्त शिवमाहात्म्य-प्रतिपादक स्कन्दपुराणमें यह सातवाँ प्रभासखण्ड बताया गया है। जो इसे लिखकर सुवर्णमय त्रिशूलके साथ माघकी पूर्णिमाके दिन सत्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह सदा भगवान् शिवके लोकमें आनन्दका भागी होता है।

## वामनपुराणकी विषय-सूची और उस पुराणके श्रवण, पठन एवं दानका माहात्म्य

**ब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं त्रिविक्रमचरित्रसे युक्त वामनपुराणका वर्णन करता हूँ। इसकी श्लोक संख्या दस हजार है। इसमें कूर्म कल्पके वृत्तान्तका वर्णन है और त्रिवर्णकी कथा है। यह पुराण दो भागोंसे युक्त है और वक्ता-श्रोता दोनोंके लिये शुभकारक है। इसमें पहले पुराणके विषयमें प्रश्न है। फिर ब्रह्माजीके शिरश्छेदकी कथा, कपालमोचनका आख्यान और दक्ष-यज्ञ-विध्वंसका वर्णन है। तत्पश्चात् भगवान् हरकी कालरूप संज्ञा, मदनदहन, प्रह्लादनारायणयुद्ध, देवासुर-संग्राम, सुकेशी और सूर्यकी कथा, काम्यव्रतका वर्णन, श्रीदुर्गाचरित्र, तपतीचरित्र, कुरुक्षेत्रवर्णन, अनुपम सत्या-माहात्म्य, पार्वती-जन्मकी कथा, तपतीका विवाह, गौरी-उपाख्यान, कौशिकी-उपाख्यान, कुमारचरित, अन्धकवधकी कथा, साध्योपाख्यान, जाबालिचरित, अरजाकी अद्भुत कथा, अन्धकासुर और भगवान् शङ्करका युद्ध, अन्धकको गणत्वकी प्राप्ति, मरुद्गणोंके जन्मकी कथा, राजा बलिका चरित्र, लक्ष्मी-चरित्र, त्रिविक्रम-चरित्र, प्रह्लादकी तीर्थयात्रा और उसमें अनेक मङ्गलमयी कथाएँ, धुन्धु-चरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्र पुरुषकी कथा, श्रीदामाका चरित्र, त्रिविक्रमचरित्रके अन्तमें ब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ उत्तम स्तोत्र तथा प्रह्लाद और बलिके संवादमें सुतललोकमें श्रीहरिकी प्रशंसाका उल्लेख है। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें इस पुराणका पूर्वभाग बताया है। अब इस वामनपुराणके उत्तरभागका श्रवण करो। उत्तरभागमें चार संहिताएँ हैं। वे पृथक्-पृथक् एक-एक सहस्र श्लोकोंसे युक्त हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी। माहेश्वरी संहितामें श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका वर्णन है। भागवती संहितामें जगदम्बाके अवतारकी अद्भुत कथा दी

गयी है। 'सौरीसंहिता' में भगवान् सूर्यकी पाप-नाशक महिमाका वर्णन है। 'गाणेश्वरीसंहिता' में भगवान् शिव तथा गणेशजीके चरित्रका वर्णन किया गया है। यह वामन नामका अत्यन्त विचित्र पुराण महर्षि पुलस्त्यने महात्मा नारदजीसे कहा है। फिर नारदजीसे महात्मा व्यासको प्राप्त हुआ है और व्यासजीसे उनके शिष्य रोमहर्षणको मिला है। रोमहर्षणजी नैमिषारण्यनिवासी शौनकादि ब्रह्मर्षियोंसे यह पुराण कहेंगे। इस प्रकार यह मङ्गलमय वामनपुराण परम्परासे प्राप्त हुआ है। जो इसका पाठ और श्रवण करते हैं, वे भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो इस पुराणको लिखकर शरत्कालके विषुव योगमें वेदवेत्ता ब्राह्मणको घृतधेनुके साथ इसका दान करता है, वह अपने पितरोंको नरकसे निकालकर स्वर्गमें पहुँचा देता है और स्वयं भी अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करके देह-त्यागके पश्चात् वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है।

## कूर्मपुराणकी संक्षिप्त विषय-सूची और उसके पाठ, श्रवण तथा दानका माहात्म्य

**ब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स मरीचे! अब तुम कूर्मपुराणका परिचय सुनो। इसमें लक्ष्मी-कल्पका वृत्तान्त है। इस पुराणमें कूर्मरूपधारी दयामय श्रीहरिने इन्द्रद्युम्नके प्रसङ्गसे महर्षियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका पृथक्-पृथक् माहात्म्य सुनाया है। यह शुभ पुराण चार संहिताओंमें विभक्त है। इसकी श्लोक-संख्या सतरह हजार है। मुने! इसमें अनेक प्रकारकी कथाओंके प्रसङ्गसे मनुष्योंको सद्गति प्रदान करनेवाले नाना प्रकारके ब्राह्मणधर्म बताये गये हैं। इसके पूर्वभागमें पहले पुराणका उपक्रम है। तत्पश्चात् लक्ष्मी और इन्द्रद्युम्नका संवाद, कूर्म और महर्षियोंकी वार्ता, वर्णाश्रमसम्बन्धी आचारका कथन, जगत्की उत्पत्तिका वर्णन, संक्षेपसे काल-संख्याका निरूपण, प्रलयके अन्तमें भगवान्‌का स्तवन, संक्षेपसे सृष्टिका वर्णन, शङ्करजीका चरित्र, पार्वतीसहस्रनाम, योगनिरूपण, भृगुवंशवर्णन, स्वायम्भुव मनु तथा देवता आदिकी उत्पत्ति, दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्षसृष्टि-कथन, कश्यपके वंशका वर्णन, अत्रिवंशका परिचय, श्रीकृष्णका शुभ चरित्र, मार्कण्डेय-श्रीकृष्ण-संवाद, व्यास-पाण्डव-संवाद, युगधर्मका वर्णन, व्यास-जैमिनिकी कथा, काशी एवं प्रयागका माहात्म्य, तीनों लोकोंका वर्णन और वैदिक शाखाका निरूपण है। इस पुराणके उत्तरभागमें पहले ईश्वरीय-गीता फिर व्यास-गीता है, जो नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश देनेवाली है। इसके सिवा नाना प्रकारके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य बताया गया है। तदनन्तर प्रतिसर्गका वर्णन है। यह 'ब्राह्मीसंहिता' कही गयी है। इसके बाद 'भागवतीसंहिता' के विषयोंका निरूपण है, जिसमें वर्णोंकी पृथक्-पृथक् वृत्ति बतायी गयी है। इसके प्रथम पादमें ब्राह्मणोंकी सदाचाररूप स्थिति बतायी गयी है, जो भोग और सुख बढ़ानेवाली है। द्वितीय पादमें क्षत्रियोंकी वृत्तिका भलीभाँति निरूपण किया गया है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य अपने पापोंका यहीं नाश करके स्वर्गलोकमें चला जाता है। तृतीय पादमें वैश्योंकी चार प्रकारकी वृत्ति कही गयी है, जिसके सम्यक् आचरणसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार इसके चतुर्थ पादमें शूद्रोंकी वृत्ति कही गयी है, जिससे मनुष्योंके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपति संतुष्ट होते हैं। तदनन्तर भागवतीसंहिताके पाँचवें पादमें संकरजातियोंकी

वृत्ति कही गयी है, जिसके आचरणसे वह भविष्यमें उत्तम गतिको पा लेता है। मुने! इस प्रकार द्वितीय संहिता पाँच पादोंसे युक्त कही गयी है। इस उत्तरभागमें तीसरी संहिता 'सौरीसंहिता' कहलाती है, जो मनुष्योंका कार्य सिद्ध करनेवाली है। वह सकामभाववाले मनुष्योंको छः प्रकारसे षट्कर्मसिद्धिका बोध कराती है। चौथी 'वैष्णवीसंहिता' है, जो मोक्ष देनेवाली कही गयी है। यह चार पदोंवाली संहिता द्विजातियोंके लिये ब्रह्मस्वरूप है। वे क्रमशः छः, चार, दो और पाँच हजार श्लोकोंकी बतायी गयी हैं। यह कूर्मपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल देनेवाला है, जो पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको सर्वोत्तम गति प्रदान करता है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर अयनारम्भके दिन सोनेकी कच्छपमूर्तिके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका

दान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

## मत्स्यपुराणकी विषय-सूची तथा इस पुराणके पाठ, श्रवण और दानका माहात्म्य

**ब्रह्माजी कहते हैं**—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें मत्स्यपुराणका परिचय देता हूँ, जिसमें वेदवेत्ता व्यासजीने इस भूतलपर सात कल्पोंके वृत्तान्तको संक्षिप्त करके कहा है। नृसिंहवर्णन आरम्भ करके चौदह हजार श्लोकोंका मत्स्यपुराण कहा गया है। मनु और मत्स्यका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन, ब्रह्मा, देवता और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणका प्रादुर्भाव, मदनद्वादशी, लोकपालपूजा, मन्वन्तर-वर्णन, राजा पृथुके राज्यका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुध-संगमन, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका कथन, राजा ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका चरित्र, सृष्टिवंश-वर्णन, भृगुशाप, भगवान् विष्णुका पृथ्वीपर दस बार जन्म (अवतार), पूरुवंशका कीर्तन, हुताशनवंशका वर्णन, पहले क्रियायोग, फिर पुराणकीर्तन, नक्षत्रव्रत, पुरुषव्रत, मार्तण्डशयनव्रत, श्रीकृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्र नामक व्रत, तडागविधिकी महिमा, वृक्षोत्सर्ग, सौभाग्यशयनव्रत, अगस्त्यव्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत, आनन्दकरीव्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेक (ग्रहणस्नान) विधि, सप्तमीशयनव्रत, भीमद्वादशी, अनङ्गशयनव्रत, अशून्यशयनव्रत, अङ्गारकव्रत, सप्तमीसप्तकव्रत, विशोकद्वादशीव्रत, दस प्रकारका मेरुप्रदान, ग्रहशान्ति, ग्रहस्वरूपकथा, शिवचतुर्दशी, सर्वफलत्याग, रविवारव्रत, संक्रान्तिस्नान, विभूतिद्वादशीव्रत, षष्ठीव्रत-माहात्म्य, स्नानविधिका वर्णन, प्रयागका माहात्म्य, द्वीप और लोकोंका वर्णन, अन्तरिक्षमें गमन, ध्रुवकी महिमा, देवेश्वरोंके भवन, त्रिपुरका प्रकाशन, श्रेष्ठ पितरोंकी महिमा, मन्वन्तर-निर्णय, चारों युगोंकी उत्पत्ति, युगधर्म-

निरूपण, वज्राङ्गकी उत्पत्ति, तारकासुरकी उत्पत्ति, तारकासुरका माहात्म्य, ब्रह्मदेवानुकीर्तन, पार्वतीका प्राकट्य, शिवतपोवन, मदनदेहदाह, रतिशोक, गौरी-तपोवन, शिवका गौरीको प्रसन्न करना, पार्वती तथा ऋषियोंका संवाद, पार्वतीविवाह-मङ्गल, कुमार कार्तिकेयका जन्म, कुमारकी विजय, तारकासुरका भयंकर वध, नृसिंहभगवान्‌की कथा, ब्रह्माजीकी सृष्टि, अन्धकासुरका वध, वाराणसी-माहात्म्य, नर्मदा-माहात्म्य, प्रवर-गणना, पितृगाथाका कीर्तन उभयमुखी गौका दान, काले मृगचर्मका दान, सावित्रीकी कथा, राजधर्मका वर्णन, नाना प्रकारके उत्पातोंका कथन, ग्रहणान्त, यात्रानिमित्तक वर्णन, स्वप्नमङ्गलकीर्तन, ब्राह्मण और वाराहका माहात्म्य, समुद्र-मन्थन, कालकूटकी शान्ति, देवासुर-संग्राम, वास्तुविद्या, प्रतिमालक्षण, देवमन्दिर-निर्माण, प्रासादलक्षण, मण्डपलक्षण, भविष्य राजाओंका वर्णन, महादानवर्णन तथा कल्पकीर्तन—इन सब विषयोंका इस पुराणमें वर्णन किया गया है। जो पवित्र, कल्याणकारी तथा आयु और कीर्ति

बढ़ानेवाले इस पुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। जो इस पुराणको लिखकर सुवर्णमय मत्स्य और गौके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दान देता है, वह परम पदको प्राप्त होता है।

## गरुडपुराणकी विषय-सूची और पुराणके पाठ, श्रवण और दानकी महिमा

**ब्रह्माजी कहते हैं**—मरीचे! सुनो, अब मैं मङ्गलमय गरुडपुराणका वर्णन करता हूँ। गरुडके पूछनेपर गरुडासन भगवान् विष्णुने उन्हें तार्क्ष्य-कल्पकी कथासे युक्त उन्नीस हजार श्लोकोंका गरुडपुराण सुनाया था। इसमें पहले पुराणको आरम्भ करनेके लिये प्रश्न किया गया है। फिर संक्षेपसे सृष्टिका वर्णन है। तत्पश्चात् सूर्य आदिके पूजनकी विधि, दीक्षाविधि, श्राद्ध-पूजा, नवव्यूहपूजाकी विधि, वैष्णव-पञ्जर, योगाध्याय, विष्णुसहस्रनामकीर्तन, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युञ्जय-पूजा, मालामन्त्र, शिवार्चा, गोपालपूजा, त्रैलोक्यमोहन श्रीधरपूजा, विष्णु-अर्चा, पञ्चतत्त्वार्चा, चक्रार्चा, देवपूजा, न्यास आदि, संध्योपासन, दुर्गार्चन, सुरार्चन, महेश्वर-पूजा, पवित्रारोपण-पूजन, मूर्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासादलक्षण, सर्वदेवप्रतिष्ठा, पृथक् पूजाविधि, अष्टाङ्गयोग, दानधर्म, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश्वरों और नरकोंका वर्णन, सूर्यव्यूह, ज्यौतिष, सामुद्रिकशास्त्र, स्वरज्ञान, नूतनरत्नपरीक्षा, तीर्थ-माहात्म्य, गयाका उत्तम माहात्म्य, पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक मन्वन्तर-वर्णन, पितरोंका उपाख्यान, वर्णधर्म, द्रव्यशुद्धि, समर्पण, श्राद्धकर्म, विनायकपूजा, ग्रहयज्ञ, आश्रम, जननाशौच, प्रेतशुद्धि, नीति-शास्त्र,

व्रत-कथा, सूर्यवंश, सोमवंश, श्रीहरिकी अवतारकथा, रामायण, हरिवंश, भारताख्यान, आयुर्वेदनिदान, चिकित्सा, द्रव्यगुणनिरूपण, रोगनाशक विष्णुकवच, गरुडकवच, त्रैपुर मन्त्र, प्रश्नचूडामणि, अश्वायुर्वेदकीर्तन, ओषधियोंके नामका कीर्तन, व्याकरणका ऊहापोह, छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, तर्पण, बलिवैश्वदेव, संध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डन, धर्मसार, पापोंका प्रायश्चित्त, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कर्मफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, श्रीहरिको नमस्कार करनेका फल, विष्णुमहिमा, नृसिंहस्तोत्र, ज्ञानामृत, गुह्याष्टकस्तोत्र, विष्णवर्चनस्तोत्र, वेदान्त और सांख्यका सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, आत्मानन्द, गीतासार तथा फलवर्णन—ये विषय कहे गये हैं। यह गरुडपुराणका पूर्वखण्ड बताया गया है।

इसीके उत्तरखण्डमें सबसे पहले प्रेतकल्पका वर्णन है। मरीचे! उसमें गरुडके पूछनेपर भगवान् विष्णुने पहले धर्मके महत्त्वको प्रकट किया है, जो योगियोंकी उत्तम गतिका कारण है। फिर दान आदिका फल तथा और्ध्वदेहिक कर्म बताया गया है। तत्पश्चात् यमलोकके मार्गका वर्णन किया गया है। इसी प्रसंगमें षोडश श्राद्धके फलको सूचित करनेवाले वृत्तान्तका वर्णन है। यमलोकके मार्गसे छूटनेका उपाय और धर्मराजके वैभवका कथन है। इसके बाद प्रेतकी पीड़ाओंका वर्णन, प्रेतचिह्न-निरूपण, प्रेतचरितवर्णन तथा प्रेतत्वप्राप्तिके कारणका उल्लेख किया गया है। तदनन्तर प्रेतकृत्यका विचार, सपिण्डीकरणका कथन, प्रेतत्वसे मुक्त होनेका कथन, मोक्षसाधक दान, आवश्यक एवं उत्तम दान, प्रेतको सुख देनेवाले कार्योंका ऊहापोह, शारीरक निर्देश, यमलोक-वर्णन, प्रेतत्वसे उद्धारका कथन, कर्म करनेके अधिकारीका निर्णय, मृत्युसे पहलेके कर्तव्यका वर्णन, मृत्युसे पीछेके कर्मका निरूपण, मध्यषोडश श्राद्ध, स्वर्गप्राप्ति करानेवाले कर्तव्यका ऊहापोह, सूतककी दिन-संख्या, नारायणबलि कर्म, वृषोत्सर्गका माहात्म्य, निषिद्ध कर्मका त्याग, दुर्मृत्युके अवसरपर किये जानेवाले कर्मका वर्णन, मनुष्योंके कर्मका फल, विष्णुध्यान और मोक्षके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार, स्वर्गकी प्राप्तिके लिये विहित कर्मका वर्णन, स्वर्गीय सुखका निरूपण, भूलोकवर्णन, नीचेके सात लोकोंका वर्णन, ऊपरके पाँच लोकोंका वर्णन, ब्रह्माण्डकी स्थितिका निरूपण, ब्रह्माण्डके अनेक चरित्र, ब्रह्म और जीवका निरूपण, आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन तथा फलस्तुतिका निरूपण है। यही गरुड नामक पुराण है, जो कीर्तन और श्रवण करनेपर वक्ता और श्रोता मनुष्योंके पापका शमन करके उन्हें भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो इस पुराणको लिखकर दो सुवर्णमयी हंसप्रतिमाके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको दान

देता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।

## ब्रह्माण्डपुराणका परिचय, संक्षिप्त विषय-सूची, पुराण-परम्परा, उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

**ब्रह्माजी कहते हैं**—वत्स! सुनो, अब मैं ब्रह्माण्डपुराणका वर्णन करता हूँ, जो भविष्यकल्पोंकी कथासे युक्त और बारह हजार श्लोकोंसे परिपूर्ण है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद' दूसरा 'अनुषङ्गपाद', तीसरा 'उपोद्घातपाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहलेके दो पादोंको पूर्वभाग कहा गया है। तृतीय पाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थ पाद उत्तरभाग माना गया है। पूर्वभागके प्रक्रियापादमें पहले कर्तव्यका उपदेश, नैमिषका आख्यान, हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति और लोकरचना इत्यादि विषय वर्णित हैं। मानद! यह पूर्वभागका प्रथम पाद (प्रक्रियापाद) है।

अब द्वितीय (अनुषङ्ग) पादका वर्णन सुनो, इसमें कल्प तथा मन्वन्तरका वर्णन है। तत्पश्चात् लोकज्ञान, मानुषी-सृष्टिकथन, रुद्रसृष्टिवर्णन, महादेवविभूति, ऋषिसर्ग, अग्निविजय, कालसद्भाव-वर्णन, प्रियव्रत-वंशका परिचय, पृथ्वीका दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्षका वर्णन, फिर अन्य वर्षोंका वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपोंका परिचय, नीचेके लोकों—पातालोंका वर्णन, भूर्भुवः आदि ऊपरके लोकोंका वर्णन, ग्रहोंकी गतिका विश्लेषण, आदित्यव्यूहका कथन, देवग्रहानुकीर्तन, भगवान् शिवके नीलकण्ठ नाम पड़नेका कथन, महादेवजीका वैभव, अमावास्याका वर्णन, युगतत्त्वनिरूपण, यज्ञप्रवर्तन, अन्तिम दो युगोंका कार्य, युगके अनुसार प्रजाका लक्षण, ऋषिप्रवर-वर्णन, वेदव्यसन-वर्णन, स्वायम्भुव मन्वन्तरका निरूपण, शेषमन्वन्तरका कथन, पृथ्वीदोहन, चाक्षुष और वर्तमान मन्वन्तरके सर्गका वर्णन है। इस प्रकार यह पूर्वभागका द्वितीय पाद कहा गया।

अब मध्यभागके उपोद्घातपादमें वर्णित विषय कहे जाते हैं। उसमें पहले सप्तर्षियोंका वर्णन, प्रजापतिवंशका निरूपण, उससे देवता आदिकी उत्पत्ति, तदनन्तर विजयकी अभिलाषा और मरुद्गणोंकी उत्पत्तिका कथन है। कश्यपकी संतानोंका वर्णन, ऋषिवंशनिरूपण, पितृकल्पका कथन, श्राद्धकल्पका वर्णन, वैवस्वतमनुकी उत्पत्ति, उनकी सृष्टि, मनुपुत्रोंका वंश, गान्धर्वनिरूपण, इक्ष्वाकुवंशवर्णन, महात्मा अत्रिके वंशका कथन, अमावसुके वंशका वर्णन, रजिका अद्भुत चरित्र, ययातिचरित, यदुवंशनिरूपण, कार्तवीर्यचरित, परशुरामचरित, वृष्णिवंशका वर्णन, सगरकी उत्पत्ति, भार्गवका चरित्र, कार्तवीर्यवधसम्बन्धी कथा, सगरका चरित्र, भार्गव (और्व)-की कथा, देवासुर-संग्रामकी कथा, कृष्णावतारवर्णन, शुक्राचार्यकृत इन्द्रका पवित्र-स्तोत्र, विष्णुमाहात्म्यकथन, बलिवंश-निरूपण तथा कलियुगमें होनेवाले राजाओंका चरित्र—यह मध्यमभागका तीसरा उपोद्घातपाद है।

अब उत्तरभागके चौथे उपसंहारपादका वर्णन करता हूँ। इसमें वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा विस्तारके साथ ज्यों-की-त्यों दी गयी है। जो कथा पहले ही कह दी गयी है, वह यहाँ संक्षेपसे बतायी जाती है। भविष्यमें होनेवाले मनुओंका चरित्र भी कहा गया है। तदनन्तर कल्पके प्रलयका निर्देश किया गया है। कालमान बताया गया है। तत्पश्चात् प्राप्त लक्षणोंके अनुसार चौदह भुवनोंका वर्णन किया गया है। फिर विपरीत कर्मोंके आचरणसे नरकोंकी प्राप्तिका कथन है। मनोमयपुरका आख्यान और प्राकृत प्रलयका प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर शिवधामका वर्णन है और सत्त्व आदि गुणोंके सम्बन्धसे जीवोंकी त्रिविध गतिका निरूपण किया गया है। इसके बाद अन्वय तथा व्यतिरेकदृष्टिसे

अनिर्देश्य एवं अतर्क्य परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार यह उत्तर-भागसहित उपसंहारपादका वर्णन किया गया है। मरीचे! मैंने तुम्हें चार पादवाले ब्रह्माण्डपुराणका परिचय दिया। यह अठारहवाँ पुराण सारसे भी सारतर वस्तु है। इसकी कहीं भी उपमा नहीं है। मानद! ब्रह्माण्डपुराण जो चार लाख श्लोकमें कहा गया है, वास्तवमें उसीको भावितात्मा मुनियोंके उपदेशक पराशरनन्दन व्यासमुनिने अठारह भागोंमें विभक्त करके पृथक्-पृथक् कहा है। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले धर्मशील मुनियोंने मुझसे सभी पुराण सुनकर उनका सम्पूर्ण लोकोंके लिये प्रकाशन किया है। पूर्वकालमें मैंने वसिष्ठको इस पुराणका उपदेश दिया था। वसिष्ठने शक्तिनन्दन पराशरको और पराशरने जातूकर्ण्यको यह पुराण सुनाया। फिर जातूकर्ण्यसे वायुदेवके मुखसे प्रकट हुए इस उत्तम पुराणको पाकर व्यासदेवने इसे प्रमाणभूत माना और इस लोकमें इसका प्रचार किया । वत्स! जो एकाग्रचित्त हो इस पुराणका पाठ एवं श्रवण करता है, वह इस लोकमें सारे पापोंका नाश करके अनामय लोक (रोग-शोकसे रहित परम धाम)-में जाता है। जो इस पुराणको लिखकर सोनेके सिंहासनपर रखता और वस्त्रसे आच्छादित करके ब्राह्मणको दान कर देता है, वह ब्रह्माजीके लोकमें जाता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मरीचे! मैंने तुमसे जो ये अठारह पुराण संक्षेपसे कहे हैं, उन सबको विस्तारसे सुनना चाहिये। जो श्रेष्ठ मानव इन अठारह पुराणोंको विधिपूर्वक सुनता अथवा कहता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। मैंने इस समय जो कुछ कहा है, यह पुराणोंका सूत्ररूप है। पुराणका फल चाहनेवाले पुरुषको इसका नित्य अनुशीलन करना चाहिये। जो दाम्भिक, पापाचारी, देवता और गुरुकी निन्दा करनेवाला, साधुमहात्माओंसे द्वेष रखनेवाला और शठ है, उसे इस पुराणका उपदेश कदापि नहीं देना चाहिये। जो शान्त, मनोनिग्रहसे युक्त, सेवापरायण, द्वेषरहित तथा पवित्र हो, उस श्रेष्ठ वैष्णव पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

## बारह मासोंकी प्रतिपदाके व्रत एवं आवश्यक कृत्योंका वर्णन

**श्रीनारदजी बोले—**प्रभो! मैंने आपके मुखसे समस्त पुराणोंका सूत्र, जैसा कि परमेष्ठी ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिसे कहा था, सुन लिया। महाभाग! अब मुझसे क्रमशः तिथियोंके विषयमें निरूपण कीजिये, जिससे व्रतका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय। जिस मासमें, जिस पुण्य तिथिको जिसने उपासना की है और उसकी पूजा आदिका जो विधान है, वह सब इस समय बताइये।

**श्रीसनातनजीने कहा—**नारद! सुनो, अब मैं तुमसे तिथियोंके पृथक्-पृथक् व्रतका वर्णन करता हूँ। तिथियोंके जो स्वामी हैं, उन्हींके क्रमसे पृथक्-पृथक् व्रत बताया जाता है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें प्रथम दिन सूर्योदयकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की थी, इसलिये वर्ष और वसन्त ऋतुके आदिमें बलिराज्य-सम्बन्धी तिथि— अमावास्याको जो प्रतिपदा तिथि प्राप्त होती है, उसीमें सदा विद्वानोंको व्रत करना चाहिये। प्रतिपदा तिथि पूर्वविद्धा होनेपर ही व्रत आदिमें ग्रहण करने योग्य है। उस दिन महाशान्ति करनी चाहिये। वह समस्त पापोंका नाश, सब प्रकारके उत्पातोंकी शान्ति तथा कलियुगके दुष्कर्मोंका निवारण

करनेवाली होती है। साथ ही वह आयु देनेवाली, पुष्टिकारक तथा धन और सौभाग्यको बढ़ानेवाली है। वह परम मङ्गलमयी, शान्ति, पवित्र होनेके साथ ही इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है। उस तिथिको पहले अग्निरूपधारी भगवान् ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये, फिर क्रमशः सब देवताओंकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। इस तरह पूजा और ॐकारपूर्वक नमस्कार[१] करके कुश, जल, तिल और अक्षतके साथ सुवर्ण और वस्त्रसहित दक्षिणा लेकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको व्रतकी पूर्तिके लिये दान करना चाहिये। इस प्रकार पूजा-विशेषसे 'सौरि' नामक व्रत सम्पन्न होता है। ब्रह्मन्! यह मनुष्योंको आरोग्य[२] प्रदान करनेवाला है। मुने! उसी दिन 'विद्याव्रत[३]' भी बताया गया है तथा इसी तिथिको श्रीकृष्णने अजातशत्रु युधिष्ठिरको 'तिलकव्रत'[४] करनेका उपदेश दिया है।

तदनन्तर ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयकालमें देवमन्दिरसम्बन्धी वाटिकामें उगे हुए मनोहर कनेरवृक्षका पूजन करे। कनेरके वृक्षमें लाल डोरा लपेटकर उसपर गन्ध, चन्दन, धूप आदि चढ़ावे, उगे हुए सप्तधान्यके अङ्कुर, नारंगी और बिजौरा नीबू आदिसे उसकी पूजा करे। फिर अक्षत और जलसे उस वृक्षको सींचकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे क्षमा-प्रार्थना करे—

**करवीरवृषावास नमस्ते भानुवल्लभ।**
**मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रिय॥**

(ना० पूर्व० ११०। १०७)

'करवीर! आप धर्मके निवास-स्थान और भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। दुर्गादि देवताओंके मस्तकको विभूषित करनेवाले तथा उनके सदैव प्रिय हैं। आपको नमस्कार है।'

तत्पश्चात् 'आ कृष्णेन०[५]' इत्यादि वेदोक्त मन्त्रका उच्चारण करके इसी प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और वृक्षकी परिक्रमा करके अपने घर जाय[६]। श्रावण शुक्ला प्रतिपदाको परम उत्तम 'रोटकव्रत[७]' होता है, जो लक्ष्मी और बुद्धिको देनेवाला है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका कारण है। ब्रह्मन्! सोमवारयुक्त श्रावण शुक्ल प्रतिपदा या श्रावणके प्रथम सोमवारसे लेकर साढ़े तीन मासतक यह व्रत किया जाता है। इसमें प्रतिदिन सोमेश्वर भगवान् शिवकी बिल्वपत्रसे पूजा की जाती है। कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीतक इस नियमसे पूजा करके उस दिन उपवासपूर्वक रहे और व्रतपरायण पुरुष पूर्णिमाके दिन पुनः भगवान् शङ्करकी पूजा करे। फिर बाँसके पात्रमें

---

१. नामके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर बोलना ही ॐकारपूर्वक नमस्कार है; यथा—'ॐ ब्रह्मणे नमः' इत्यादि। अथवा 'ॐ नमः' को एक साथ भी बोल सकते हैं; यथा—'ॐ नमो ब्रह्मणे' इत्यादि।

२. इसी तिथिको विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें 'आरोग्यव्रत'का विधान किया गया है और ब्रह्मपुराणमें 'संवत्सरारम्भ-विधि' दी गयी है।

३. 'विद्याव्रत'की विधि विष्णुधर्मोत्तरमें तथा गरुडपुराणमें भी उपलब्ध होती है।

४. 'तिलकव्रत' के विषयमें विशेष जानकारी भविष्योत्तरपुराणसे हो सकती है।

५. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

६. निर्णयग्रन्थोंके अनुसार भविष्योत्तरपुराणमें इसकी विशेष विधि दी गयी है। वहाँ 'करवीरव्रत' के नामसे इसका उल्लेख किया गया है।

७. व्रतराजमें इस व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन है।

सुवर्णसहित पवित्र एवं अधिक वायन, जो देवताकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला हो, लेकर संकल्पपूर्वक ब्राह्मणको दान करे। मुनीश्वर! यह दान धनकी वृद्धि करनेवाला है। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको कोई 'महत्तमव्रत[1]' एवं कोई 'मौनव्रत[2]' बतलाते हैं। इसमें भगवान् शिवकी पूजा की जाती है। उस दिन मौन रहकर नैवेद्य तैयार करे। अड़तालीस फल और पूए एकत्र करके उनमेंसे सोलह तो ब्राह्मणको दे और सोलह देवताको भोग लगावे एवं शेष सोलह अपने उपयोगमें लावे। सुवर्णमयी शिवकी प्रतिमाको विधानवेत्ता पुरुष कलशके ऊपर स्थापित करके उसकी पूजा करे। फिर वह सब कुछ एक धेनुके सहित आचार्यको दान कर दे। ब्रह्मन्! देवदेव महादेवके इस व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करके नाना प्रकारके भोग भोगनेके पश्चात् देहावसान होनेपर शिवलोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला प्रतिप्रदाको 'अशोक-व्रत'का पालन करके मनुष्य शोकरहित तथा धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाता है। उसमें नियमपूर्वक रहकर अशोक वृक्षकी पूजा करनी चाहिये। बारहवें वर्ष व्रतके अन्तमें अशोक वृक्षकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर उसे भक्तिपूर्वक गुरुको समर्पित करनेपर मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रतिपदाको 'नवरात्रव्रत' आरम्भ करे। पूर्वाह्णकालमें कलशस्थापनपूर्वक देवीकी पूजा करे। गेहूँ और जौके बीजसे अंकुर आरोपण करके प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार उपवास, अयाचित अथवा एकभुक्त करके रहे और पूजा, पाठ, जप आदि करता रहे। ब्रह्मन्! मार्कण्डेयपुराणमें देवीके जो तीन चरित्र कहे गये हैं, उनका भोग

और मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष नौ दिनोंतक पाठ करे। नवरात्रमें भोजन, वस्त्र आदिके द्वारा कुमारीपूजन उत्तम माना गया है। ब्रह्मन्! इस प्रकार व्रतका आचरण करके मनुष्य इस पृथ्वीपर दुर्गाजीकी कृपासे सम्पूर्ण सिद्धियोंका आश्रय हो जाता है।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको नवरात्रमें बताये अनुसार नियमोंका पालन करे। विशेषत: अन्नकूट नामक कर्म भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। उस दिन गोवर्धनपूजनके लिये सब तरहके पाक और सब गोरसोंका संग्रह करके सबको अन्नकूट करना चाहिये। इससे सब मनोरथोंकी सिद्धि होती है। सायंकालमें गौओंसहित श्रीगोवर्धन पर्वतका पूजन करके जो उसकी प्रदक्षिणा करता है, वह भोग और मोक्ष पाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाको परम उत्तम 'धनव्रत'का पालन करना चाहिये। रातमें भगवान् विष्णुका पूजन और होम करके अग्निदेवकी सुवर्णमयी प्रतिमाको दो लाल वस्त्रोंसे आच्छादित करके ब्राह्मणको दान दे। ऐसा करके मनुष्य इस

१-२. महत्तम और मौन—इन दोनों व्रतोंका विशेष विधान स्कन्दपुराणमें उपलब्ध होता है।

पृथ्वीपर धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। अग्निदेवके द्वारा उसके समस्त पाप दग्ध हो जाते हैं और वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पौष शुक्ला प्रतिपदाको भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी पूजा करके एकभुक्तव्रत करनेवाला मनुष्य सूर्यलोकमें जाता है। माघ शुक्ला प्रतिपदाके दिन अग्निस्वरूप साक्षात् महेश्वरकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य इस पृथ्वीपर समृद्धिशाली होता है। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाको धूलिधूसरित अङ्गोंवाले देवदेव दिगम्बर शिवको सब ओरसे जलद्वारा स्नान करावे। भगवान् महेश्वर इस लौकिक कर्मसे भी संतुष्ट होकर अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। फिर भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजित होनेपर वे क्या नहीं दे सकते! वैशाख शुक्ला प्रतिपदाको विश्वव्यापक भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदाको जगद्गुरु ब्रह्मा एवं विष्णुका पूजन करके ब्राह्मण-भोजन करावे। ऐसा करनेसे विष्णुसहित सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्माजी अपना सायुज्य प्रदान करते हैं और वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ! बारह महीनोंकी प्रतिपदा तिथियोंमें होनेवाले जो व्रत तुम्हें बताये गये हैं, वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। इन सब व्रतोंमें ब्रह्मचर्य-पालनका विधान है। भोजनके लिये सामान्यतः हविष्यान्न बताया गया है।

## बारह मासोंके द्वितीया-सम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण

**सनातनजी कहते हैं—**ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें द्वितीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्ति-पूर्वक पालन करके मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। चैत्र शुक्ला द्वितीयाको ब्राह्मी शक्तिके साथ ब्रह्माजीका हविष्यान्न तथा गन्ध आदिसे पूजन करके व्रती पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है और समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको पाकर अन्तमें ब्रह्मपद प्राप्त करता है। विप्रवर! इसी दिन सायंकाल उगे हुए बालचन्द्रमाका[१] पूजन करनेसे भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होती है। अथवा उस दिन भक्तिपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी यत्नपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणको सोने और चाँदीके नेत्रोंका दान करे[२]। इस व्रतमें दही अथवा घीसे प्राणयात्राका निर्वाह किया जाता है। द्विजेन्द्र! बारह वर्षोंतक 'नेत्रव्रत' का अनुष्ठान करके मनुष्य पृथ्वीका अधिपति होता है। वैशाख शुक्ला द्वितीयाको सप्तधान्ययुक्त कलशके ऊपर विष्णुरूपी ब्रह्माका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति ब्रह्मस्वरूप भगवान् भास्करका विधिपूर्वक पूजन करके जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। आषाढ़मासके शुक्ल पक्षमें जो पुष्यनक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आती है, उसमें सुभद्रादेवीके साथ श्रीबलराम और श्रीकृष्णको रथपर बिठाकर व्रती पुरुष ब्राह्मण आदिके साथ नगर आदिमें भ्रमण करावे और किसी जलाशयके निकट जाकर बड़ा भारी उत्सव मनावे। तदनन्तर देवविग्रहोंको विधिपूर्वक पुनः मन्दिरमें विराजमान करके उक्त व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावे। श्रावण कृष्णा द्वितीयाको प्रजापति विश्वकर्मा शयन करते हैं। अतः वह पुण्यमयी

१. विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार यह 'बालेन्दुव्रत' कहा गया है।
२. विष्णुधर्ममें भी इस 'नेत्रव्रत' का वर्णन किया गया है।

तिथि 'अशून्यशयन' नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन अपनी शक्तिके साथ शय्यापर शयन किये हुए नारायणस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजीकी पूजा करके उन जगदीश्वरको प्रणाम करे।

तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान भी आवश्यक बताया गया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। भाद्रपद शुक्ला द्वितीयाको इन्द्ररूपधारी जगद्विधाता ब्रह्माकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो पुण्यमयी द्वितीया तिथि आती है, उसमें दिया हुआ दान अनन्त फल देनेवाला कहा जाता है। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाजीने यमराजको अपने घर भोजन कराया था, इसलिये यह 'यमद्वितीया' कहलाती है। इसमें बहिनके घर भोजन करना पुष्टिवर्धक बताया गया है। अत: बहिनको उस दिन वस्त्र और आभूषण देने चाहिये। उस तिथिको जो बहिनके हाथसे इस लोकमें भोजन करता है, वह सर्वोत्तम रत्न, धन और धान्य पाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीयाको श्राद्धके द्वारा पितरोंका पूजन करनेवाला पुरुष पुत्र-पौत्रोंसहित आरोग्य लाभ करता है। पौष शुक्ला द्वितीयाको गायके सींगमें लिये हुए जलके द्वारा मार्जन करना और संध्याकालमें बालचन्द्रमाका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। जो हविष्यान्न भोजन करके इन्द्रियसंयमपूर्वक रहकर अर्घ्यदानसे तथा घृतसहित पुष्प आदिसे बालचन्द्रमाका पूजन करता है, वह धर्म, काम और अर्थकी सिद्धि लाभ करता है। माघशुक्ला द्वितीयाको भानुरूपी प्रजापतिकी विधिपूर्वक अर्चना करके लाल फूल और लाल चन्दन आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार सोनेकी सूर्यमूर्तिका निर्माण कराकर ताँबेके पात्रको गेहूँ या चावलसे भर दे और वह पात्र भक्तिपूर्वक देवताको समर्पित करके मूर्तिसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे। ब्रह्मन्! इस प्रकार व्रतका पालन करनेपर वह मनुष्य उदित हुए साक्षात् सूर्यके समान इस पृथ्वीपर दुर्जय एवं दुर्धर्ष हो जाता है। इस लोकमें श्रेष्ठ कामनाओंका उपभोग करके अन्तमें वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला द्वितीयाको श्रेष्ठ द्विज श्वेत एवं सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् शिवकी पूजा करे। फूलोंसे चँदोवा बनाकर सुन्दर पुष्पमय आभूषणोंसे उनका शृङ्गार करे। फिर धूप, दीप, नाना प्रकारके नैवेद्य और आरती आदिके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करके पृथ्वीपर पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करे। इस प्रकार देवेश्वर शिवकी

आराधना करके मनुष्य रोगसे रहित तथा धन-धान्यसे सम्पन्न हो निश्चय ही सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथियोंमें जो विधान बताया गया है, वही विधिज्ञ पुरुषोंको कृष्णपक्षकी द्वितीयामें भी करना चाहिये। पृथक्-पृथक् महीनोंमें नाना रूप धारण करनेवाले अग्निदेव ही द्वितीया तिथियोंमें पूजित होते हैं। इसमें भी पूर्ववत् ब्रह्मचर्य आदिका पालन आवश्यक है।

## बारह महीनोंके तृतीया-सम्बन्धी व्रतोंका परिचय

**सनातनजी कहते हैं**—नारद! सुनो, अब मैं तुम्हें तृतीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका विधिपूर्वक पालन करके नारी शीघ्र सौभाग्य लाभ करती है। ब्रह्मन्! वर-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाली कन्या तथा सौभाग्य, पुत्र एवं पतिकी मङ्गलकामना करनेवाली विवाहिता नारी चैत्र शुक्ला तृतीयाको उपवास करके गौरीदेवी तथा भगवान् शङ्करकी सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टीकी प्रतिमा बनावे और उसे गन्ध-पुष्प, दूर्वाकाण्ड आदि आचारों तथा सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विधिपूर्वक पूजित करके सधवा ब्राह्मण-पत्नियों अथवा सुलक्षणा ब्राह्मण-कन्याओंको सिन्दूर, काजल और वस्त्राभूषणों आदिसे संतुष्ट करे। तदनन्तर उस प्रतिमाको जलाशयमें विसर्जन कर दे। स्त्रियोंको सौभाग्य देनेवाली जैसी गौरीदेवी हैं, वैसी तीनों लोकोंमें दूसरी कोई शक्ति नहीं है। वैशाख शुक्ल पक्षकी जो तृतीया है, उसे 'अक्षयतृतीया' कहते हैं। वह त्रेतायुगकी आदि तिथि है। उस दिन जो सत्कर्म किया जाता है, उसे वह अक्षय बना देती है। वैशाख शुक्ला तृतीयाको लक्ष्मीसहित जगद्गुरु भगवान् नारायणका पुष्प,धूप और चन्दन आदिसे पूजन करना चाहिये अथवा गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी जो तृतीया है, वह 'रम्भा-तृतीया' के नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन सपत्नीक श्रेष्ठ ब्राह्मणकी गन्ध, पुष्प और वस्त्र आदिसे विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। यह व्रत धन, पुत्र और धर्मविषयक शुभकारक बुद्धि प्रदान करता है। आषाढ़ शुक्ला तृतीयाको सपत्नीक ब्राह्मणमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, भोजन और धेनुदानके द्वारा उनकी पूजा करे; फिर प्रिय वचनोंसे उन्हें अधिक संतुष्ट करे। इस प्रकार सौभाग्यकी इच्छासे प्रेमपूर्वक इस व्रतका पालन करके नारी धन-धान्यसे सम्पन्न हो देवदेव श्रीहरिके प्रसादसे विष्णुलोक प्राप्त कर लेती है। श्रावण शुक्ला तृतीयाको 'स्वर्णगौरीव्रत' का आचरण करना चाहिये। उस दिन स्त्रीको चाहिये कि वह षोडश उपचारोंसे भवानीकी पूजा करे।

भाद्रपद शुक्ला तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा भक्ति-भावसे पूजा करती हुई 'हरितालिकाव्रत'का पालन करे। सोने, चाँदी, ताँबे, बाँस अथवा मिट्टीके पात्रमें दक्षिणासहित पकवान रखकर फल और वस्त्रके साथ ब्राह्मणको दान करे। इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाली नारी मनोरम भोगोंका उपभोग करके इस व्रतके प्रभावसे गौरीदेवीकी सहचरी होती है। आश्विन शुक्ला तृतीयाको 'बृहद् गौरीव्रत'-का आचरण करे। नारद! इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है।

कार्तिक शुक्ला तृतीयाको 'विष्णु-गौरीव्रत'का आचरण करे। उसमें भाँति-भाँतिके उपचारोंसे जगद्वन्द्या लक्ष्मीकी पूजा करके सुवासिनी स्त्रीका मङ्गल-द्रव्योंसे पूजन करनेके पश्चात् उसे भोजन करावे और प्रणाम करके विदा करे। मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको मङ्गलमय 'हरगौरीव्रत' करके पूर्वोक्तविधिसे जगदम्बाका पूजन करे। इस व्रतके प्रभावसे स्त्री मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवीलोकमें जाती और गौरीके साथ आनन्दका अनुभव करती है। पौष शुक्ला तृतीयाको 'ब्रह्मगौरीव्रत'का आचरण करे। द्विजश्रेष्ठ! इसमें भी पूर्वोक्त विधिसे पूजन

करके नारी ब्रह्मगौरीके प्रसादसे उनके लोकमें जाकर आनन्द भोगती है। माघ शुक्ला तृतीयाको व्रत रखकर पूर्वोक्त विधिसे सौभाग्यसुन्दरीकी पूजा करनी चाहिये और उनके लिये नारियलके साथ अर्घ्य देना चाहिये। इससे प्रसन्न होकर व्रतसे संतुष्ट हुई देवी अपना लोक प्रदान करती है। फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें कुलसौख्यदा-तृतीयाका व्रत होता है, उसमें गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा पूजित होनेपर देवी सबके लिये मङ्गलदायिनी होती हैं। मुने! सम्पूर्ण तृतीयाव्रतोंमें देवीपूजा, ब्राह्मणपूजा, दान, होम और विसर्जन—यह साधारण विधि है। इस प्रकार तुम्हें तृतीयाके व्रत बताये गये हैं, जो भक्तिपूर्वक पालित होनेपर मनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं।

## बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य

**सनातनजी कहते हैं—**ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्थीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। चैत्रमासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी भलीभाँति पूजा करके ब्राह्मणको सुवर्ण दक्षिणा देनेसे मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंका वन्दनीय हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। वैशाखकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा करके विधिज्ञ पुरुष गृहस्थ ब्राह्मणोंको शङ्ख दान करे तो वह संकर्षणलोकमें जाकर अनेक कल्पोंतक आनन्दका अनुभव करता है। ज्येष्ठ मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशका पूजन करके ब्राह्मणसमूहको फल-मूलका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। आषाढ़की चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करनेसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है। ज्येष्ठकी चतुर्थीको एक दूसरा परम उत्तम व्रत होता है, जिसे 'सतीव्रत' कहते हैं। इस व्रतका पालन करके स्त्री गणेशमाता पार्वतीके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्दकी भागिनी होती है। इसी प्रकार आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा कल्याणकारी व्रत होता है, क्योंकि वह तिथि रथन्तर कल्पका प्रथम दिन है। उस दिन मनुष्य श्रद्धापूत हृदयसे विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करके देवताओंके लिये दुर्लभ फल भी प्राप्त कर लेता है। मुने! श्रावणकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ विद्वान् गणेशजीको अर्घ्य प्रदान करे। उस समय गणेशजीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। ध्यानके पश्चात् आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन करे। फिर लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे, जो गणेशजीके लिये

प्रीतिदायक है। इस प्रकार व्रत पूरा करके स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाय तथा रातमें गणेशजीका

पूजन करके भूमिपर ही सुखपूर्वक सोये। इस व्रतके प्रभावसे वह लोकमें मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और परलोकमें भी गणेशजीका पद पाता है। तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरा कोई व्रत नहीं है।

तदनन्तर भाद्रपद कृष्णा चतुर्थीको बहुलागणेशका गन्ध, पुष्प, माला और घास आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् परिक्रमा करके सामर्थ्य हो तो दान करे। दानकी शक्ति न हो तो इस बहुला गौको नमस्कार करके विसर्जन करे। इस प्रकार पाँच, दस या सोलह वर्षोंतक इस व्रतका पालन करके उद्यापन करे। उस समय दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये। इस व्रतके प्रभावसे मनुष्य मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवताओंद्वारा सत्कृत हो गोलोकधाममें जाता है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करे। इसमें आवाहन आदि समस्त उपचारोंद्वारा गणेशजीका पूजन करना चाहिये। पहले एकाग्रचित्त होकर सिद्धिविनायकका ध्यान करे। उनके एक दाँत है। कान सूपके समान जान पड़ता है। उनका मुँह हाथीके मुखके समान है। वे चार भुजाओंसे सुशोभित हैं। उन्होंने हाथोंमें पाश और अङ्कुश धारण कर रखे हैं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान देदीप्यमान है। उनके इक्कीस नाम लेकर उन्हें भक्तिपूर्वक इक्कीस पत्ते समर्पित करे। अब तुम उन नामोंको श्रवण करो। '**सुमुखाय नमः**' कहकर शमीपत्र, '**गणाधीशाय नमः**' से भँगरैयाका पत्ता, '**उमापुत्राय नमः**' से बिल्वपत्र, '**गजमुखाय नमः**' से दूर्वादल, '**लम्बोदराय नमः**' से बेरका पत्ता, '**हरसूनवे नमः**' से धतूरका पत्ता, '**शूर्पकर्णाय नमः**' से तुलसीदल, '**वक्रतुण्डाय नमः**' से सेमका पत्ता, '**गुहाग्रजाय नमः**' से अपामार्गका पत्ता, '**एकदन्ताय नमः**' से बनभंटा या भटकटैयाका पत्ता, '**हेरम्बाय नमः**' से सिंदूर (सिंदूरचर्व अथवा सिंदूर-वृक्षका पत्ता), '**चतुर्होत्रे नमः**' से तेजपात और '**सर्वेश्वराय नमः**' से अगस्त्यका पत्ता चढ़ावे[1]। यह सब गणेशजीकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। तत्पश्चात् दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ावे। इस प्रकार पूजा करके भक्तिभावसे नैवेद्यरूपमें पाँच लड्डू निवेदन करे। फिर आचमन कराकर नमस्कार और प्रार्थना करके देवताका विसर्जन करे। मुने! सब सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। नारद! इस प्रकार पाँच वर्षोंतक भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा और उपासना करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकके शुभ भोगोंको प्राप्त कर लेता है। इस चतुर्थीकी रातमें कभी चन्द्रमाकी ओर न देखे। जो देखता है उसे झूठा कलङ्क प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। यदि चन्द्रमा दीख जाय तो उस दोषकी शान्तिके लिये इस पौराणिक मन्त्रका पाठ करे—

**सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।**
**सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥**

(ना० पूर्व० ११३। ३९)

'सिंहने प्रसेनको मारा और सिंहको जाम्बवान्ने मार गिराया। सुकुमार बालक! तू रो मत। यह स्यमन्तक अब तेरा ही है।'

---

१. यहाँ इक्कीस नामोंसे इक्कीस पत्ते अर्पण करनेकी बात लिखकर तेरह नामोंका ही उल्लेख किया गया है। संग्रह ग्रन्थोंमें उपर्युक्त नामोंके अतिरिक्त आठ नाम और आठ प्रकारके पत्तोंका निर्देश इस प्रकार किया गया है—'विकटाय नमः' से कनेरका पत्ता, 'इभतुण्डाय नमः' से अश्मातपत्र, 'विनायकाय नमः' से आकका पत्ता, 'कपिलाय नमः' से अर्जुनका पत्ता, 'वटवे नमः' से देवदारुका पत्ता, 'भालचन्द्राय नमः' से मरुआका पत्ता, 'सुराग्रजाय नमः' से गान्धारी-पत्र और 'सिद्धिविनायकाय नमः' से केतकी-पत्र अर्पण करे।

आश्विन शुक्ला चतुर्थीको पुरुषसूक्तद्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश विनायककी पूजा करे। कार्तिक कृष्ण चतुर्थीको 'कर्काचतुर्थी' (करवा चौथ)-का व्रत बताया गया है। इस व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसलिये उसका विधान बताया है—स्त्री स्नान करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी पूजा करे। उनके आगे पकवानसे भरे हुए दस करवे रखे और भक्तिसे पवित्रचित्त होकर उन्हें देवदेव गणेशजीको समर्पित करे। समर्पणके समय यह कहना चाहिये कि 'भगवान् कपर्दि गणेश मुझपर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दे। इसके बाद रातमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य दे। व्रतकी पूर्तिके लिये स्वयं भी मिष्टान्न भोजन करे। इस व्रतको सोलह या बारह वर्षोंतक करके नारी इसका उद्यापन करे। उसके बाद इसे छोड़ दे अथवा स्त्रीको चाहिये कि सौभाग्यकी इच्छासे वह जीवनभर इस व्रतको करती रहे; क्योंकि स्त्रियोंके लिये इस व्रतके समान सौभाग्यदायक व्रत तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है।

मुनीश्वर! मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थीसे लेकर एक वर्षतकका समय प्रत्येक चतुर्थीको एकभुक्त (एक समय भोजन) करके बितावे और द्वितीय वर्ष उक्त तिथिको केवल रातमें एक बार भोजन करके व्यतीत करे। तृतीय वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिले हुए) अन्न एक बार खाकर रहे और चौथा वर्ष उक्त तिथिको उपवासपूर्वक रहकर बितावे। इस प्रकार विधिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए क्रमश: चार वर्ष पूरे करके अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय महाव्रती मानव सोनेकी गणेशमूर्ति बनवावे। यदि असमर्थ हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण)-द्वारा ही गणेश-प्रतिमा बना ले। तदनन्तर विविध रंगोंसे धरतीपर सुन्दर दलोंसहित कमल अङ्कित करके उसके ऊपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर ताँबेका पात्र रखे। उस पात्रको सफेद चावलसे भर दे। चावलके ऊपर युगल वस्त्रसे आच्छादित गणेशजीको विराजमान करे। तदनन्तर गन्ध आदि सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा करे। फिर गणेशजी प्रसन्न हों, इस उद्देश्यसे लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। रातमें गीत, वाद्य और पुराण-कथा आदिके द्वारा जागरण करे। फिर निर्मल प्रभात होनेपर स्नान करके तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़ मिली हवनसामग्रीसे विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' पद लगाकर अग्निमें एक-एक आहुति दे। इसके बाद '**वक्रतुण्डाय हुम्**' इस मन्त्रके द्वारा एक-सौ आठ आहुति दे। तत्पश्चात् व्याहृतियोंद्वारा यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति दे। दिक्पालोंका पूजन करके चौबीस ब्राह्मणोंको लड्डू और खीर भोजन करावे। इसके बाद आचार्यको दक्षिणासहित सवत्सा गौ दान करे एवं दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूयसी दक्षिणा दे। फिर प्रणाम और परिक्रमा करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी प्रसन्नचित्त होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। मनुष्य इस व्रतका पालन करके गणेशजीके प्रसादसे इहलोकमें उत्तम भोग भोगता और परलोकमें भगवान् विष्णुका सायुज्य लाभ करता है। नारद! कुछ लोग इसका नाम 'वरव्रत' कहते हैं। इसका विधान भी यही है और फल भी उसके समान ही है। पौष मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी प्रार्थना करके एक

ब्राह्मणको लड्डू भोजन करावे और दक्षिणा दे। मुने! ऐसा करनेसे व्रती पुरुष धन-सम्पत्तिका भागी होता है।

माघ कृष्णा चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' बतलाया जाता है। उसमें उपवासका संकल्प लेकर व्रती पुरुष सबेरेसे चन्द्रोदयकालतक नियमपूर्वक रहे। मनको काबूमें रखे। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। मूर्तिमें गणेशजीकी स्थापना करके षोडशोपचारसे विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

**गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते।**
**गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक॥**

(ना० पूर्व० ११३। ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य चन्द्रमा! दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम! गणेशके प्रतिविम्ब! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

इस प्रकार गणेशजीको यह दिव्य तथा पापनाशक अर्घ्य देकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार कल्याणकारी 'संकष्टव्रत' का पालन करके मनुष्य धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। वह कभी कष्टमें नहीं पड़ता। माघ शुक्ला चतुर्थीको परम उत्तम गौरीव्रत किया जाता है। उस दिन योगिनी-गणोंसहित गौरीजीकी पूजा करनी चाहिये। मनुष्यों और उनमें भी विशेषतः स्त्रियोंको कुन्द, पुष्प, कुङ्कुम, लाल सूत्र, लाल फूल, महावर, धूप, दीप, बलि, गुड़, अदरख, दूध, खीर, नमक और पालक आदिसे गौरीजीकी पूजा करनी चाहिये। अपनी सौभाग्यवृद्धिके लिये सौभाग्यवती स्त्रियों और उत्तम ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। विप्रवर! यह सौभाग्य तथा आरोग्य बढ़ानेवाला 'गौरीव्रत' है। स्त्रियों और पुरुषोंको प्रतिवर्ष इसका पालन करना चाहिये। कुछ लोग इसे 'ढुण्ढिव्रत' कहते हैं। किन्हीं-किन्हींके मतमें इसका नाम 'कुण्ड-व्रत' है। कुछ दूसरे लोग इसे 'ललिताव्रत' अथवा 'शान्तिव्रत' भी कहते हैं। मुने! इस तिथिमें किया हुआ स्नान, दान, जप और होम सब कुछ गणेशजीकी कृपासे सदाके लिये सहस्रगुना हो जाता है। फाल्गुन मासकी चतुर्थीको मङ्गलमय 'ढुण्ढिराजव्रत' बताया गया है। उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य स्वयं भी भोजन करे। गणेशजीकी आराधनामें संलग्न होकर तिलोंसे ही दान, होम और पूजन आदि करनेपर मनुष्य गणेशके प्रसादसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। मनुष्यको चाहिये कि सोनेकी गणेशमूर्ति बनाकर यत्नपूर्वक उसकी पूजा करे और श्रेष्ठ ब्राह्मणको उसका दान कर दे। इससे समस्त सम्पदाओंकी वृद्धि होती है। विप्रेन्द्र! जिस किसी मासमें भी चतुर्थी तिथि रविवार या मङ्गलवारसे युक्त हो तो वह विशेष फल देनेवाली होती है। शुक्ल या कृष्ण पक्षकी सभी चतुर्थी तिथियोंमें भक्तिपरायण पुरुषोंको देवेश्वर गणेशका ही पूजन करना चाहिये।

## सभी मासोंकी पञ्चमी तिथियोंमें करने योग्य व्रत-पूजन आदिका वर्णन

**सनातनजी कहते हैं**—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें पञ्चमीके व्रत कहता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। चैत्रके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको 'मत्स्यजयन्ती' कहते हैं। इसमें भक्तोंको मत्स्यावतार-

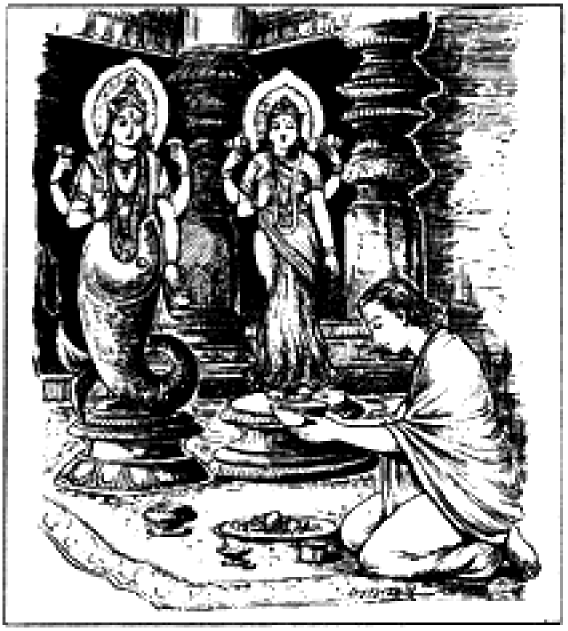

विग्रहकी पूजा और तत्सम्बन्धी महोत्सव करने चाहिये। इसे 'श्रीपञ्चमी' भी कहते हैं। अतः उस दिन गन्ध आदि उपचारों तथा खीर आदि नैवेद्योंद्वारा श्रीलक्ष्मीजीका भी पूजन करना चाहिये। जो उस दिन लक्ष्मीजीकी पूजा करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं। उसी दिन 'पृथ्वीव्रत', 'चान्द्र-व्रत' तथा 'हयग्रीवव्रत' भी होता है। अतः उनकी पृथक्-पृथक् सिद्धि चाहनेवाले पुरुषोंको शास्त्रोक्त विधिसे उन-उन व्रतोंका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य वैशाखकी पञ्चमीको सम्पूर्ण नागगणोंसे युक्त शेषनागकी पूजा करता है, वह मनोवाञ्छित फल पाता है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष ज्येष्ठकी पञ्चमी तिथिको पितरोंका पूजन करे। उस दिन ब्राह्मण-भोजन करानेसे सम्पूर्ण कामनाओं और अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मुने! आषाढ़ शुक्ल पञ्चमीको सर्वव्यापी वायुकी परीक्षा की जाती है। गाँवसे बाहर निकलकर धरतीपर खड़ा रहे और वहाँ एक बाँस खड़ा करे। बाँसके डंडेके अग्रभागमें पञ्चाङ्गी पताका लगा ले। तदनन्तर बाँसके मूल भागमें सब दिशाओंकी ओर लोकपालोंकी स्थापना एवं पूजा करके वायुकी परीक्षा करे। प्रथम आदि यामों (प्रहरों)-में जिस-जिस दिशाकी ओरसे वायु चलती है, उसी-उसी दिक्पाल या लोकपालकी भलीभाँति पूजा करे। इस प्रकार चार प्रहरतक वहाँ निराहार रहकर सायंकाल अपने घर आवे और थोड़ा भोजन करके एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको नमस्कार करके पवित्र भूमिपर सो जाय। उस दिन रातके चौथे प्रहरमें जो स्वप्न होता है, वह निश्चय ही सत्य होता है—यह भगवान् शिवका कथन है। यदि अशुभ स्वप्न हो तो भगवान् शिवकी पूजामें तत्पर हो उपवासपूर्वक आठ पहर वितावे। फिर आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य शुभ फलका भागी होता है। यह 'शुभाशुभ-निदर्शनव्रत' कहा गया है, जो मनुष्योंके इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यजनक होता है।

श्रावण मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जब थोड़ा दिन शेष रहे तो कच्चा अन्न (जितना दान देना हो) पृथक्-पृथक् पात्रोंमें रखकर विद्वान् पुरुष उन पात्रोंमें जल भर दे। तदनन्तर वह सब जल निकाल दे। फिर दूसरे दिन सबेरे सूर्योदय होनेपर विधिवत् स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। उनके आगे नैवेद्य स्थापित करे और वह पहले दिनका धोया

हुआ कच्चा अन्न प्रसन्नतापूर्वक याचकोंको देवे। तत्पश्चात् प्रदोषकालमें शिवमन्दिरमें जाकर लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंके द्वारा सम्यक् पूजन करे। फिर सहस्र या सौ बार पञ्चाक्षरी विद्या ('नमः **शिवाय**' मन्त्र)-का जप करे। तदनन्तर उनका स्तवन करे। फिर सदा अन्नकी सिद्धिके लिये भगवान् शिवसे प्रार्थना करे। इसके बाद अपने घर आकर ब्राह्मण आदिको पकवान देकर स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। विप्रवर! यह 'अन्नव्रत' है, मनुष्योंद्वारा विधिपूर्वक इसका पालन होनेपर यह सम्पूर्ण अन्नसम्पत्तियोंका उत्पादक और परलोकमें सद्गति देनेवाला होता है।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीके दिन आस्तिक मनुष्योंको चाहिये कि वे अपने दरवाजेके दोनों ओर गोबरसे सर्पोंकी आकृति बनावें और गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् इन्द्राणीदेवीकी पूजा करें। सोने, चाँदी, दही, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उन सबकी पूजा करके परिक्रमा करे और उस द्रव्यको प्रणाम करके भक्तिभावसे प्रार्थनापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको समर्पित करे। नारद! इस प्रकार भक्तिभावसे द्रव्य दान करनेवाले पुरुषपर स्वर्ण आदि समृद्धियोंके दाता धनाध्यक्ष कुबेर प्रसन्न होते हैं। फिर भक्तिभावसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री-पुत्र और सगे-सम्बन्धियोंके साथ भोजन करे।

भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी पञ्चमीको दूधसे नागोंको तृप्त करे। जो ऐसा करता है उसकी सात पीढ़ियोंतकके लोग साँपसे निर्भय हो जाते हैं। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको श्रेष्ठ ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिके तटपर जाकर सदा आलस्यरहित हो स्नान करे। फिर घर आकर यत्नपूर्वक मिट्टीकी वेदी बनावे। उसे गोबरसे लीपकर पुष्पोंसे सुशोभित करे। इसके बाद कुशा बिछाकर उसके ऊपर गन्ध, नाना प्रकारके पुष्प, धूप और सुन्दर दीप आदिके द्वारा सात ऋषियोंका पूजन करे। कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ—ये सात ऋषि माने गये हैं। इनके लिये विधिवत् अर्घ्य तैयार करके अर्घ्यदान दे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके लिये बिना जोते-बोये उत्पन्न हुए श्यामाक (साँवाके चावल) आदिसे नैवेद्य तैयार करे। वह नैवेद्य उन्हें अर्पण करके उन ऋषियोंका विसर्जन करनेके पश्चात् स्वयं भी वही प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। इस व्रतका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल भोगता और सप्तर्षियोंके प्रसादसे श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यलोकमें जाता है।

आश्विन शुक्ला पञ्चमीको 'उपाङ्गललिताव्रत' होता है। नारद! यथाशक्ति ललिताजीकी स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर षोडशोपचारसे उनकी विधिवत् पूजा करे। व्रतकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको पकवान, फल, घी और दक्षिणा दान करे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना एवं विसर्जन करे—

**सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया।**
**मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम्॥**

(ना० पूर्व० ११४। ५२)

'मैंने वाहन और शक्तियोंसे युक्त वरदायिनी ललितादेवीका पूजन किया है। माँ! तुम मुझपर अनुग्रह करके अपने मन्दिरको पधारो।'

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको सब पापोंका नाश करनेके लिये श्रद्धापूर्वक परम उत्तम 'जया-व्रत' करना चाहिये। ब्रह्मन्! एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक षोडशोपचारसे जयादेवीकी पूजा करके पवित्र तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो एक

ब्राह्मणको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उसे विदा करे। तत्पश्चात् स्वयं मौन होकर भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक जयाके दिन स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। विप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेसे जो फल बताया गया है, वही जयाके दिन भी स्नान करनेसे प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीको विधिपूर्वक नागोंकी पूजा करके मनुष्य उनसे अभय पाकर बन्धु-बान्धवोंके साथ प्रसन्न रहता है। पौष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको भगवान् मधुसूदनकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। (इसी प्रकार माघ और फाल्गुनके लिये समझना चाहिये) नारद! प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्णपक्षमें भी पञ्चमीको पितरों और नागोंकी पूजा सर्वथा उत्तम मानी गयी है।

## वर्षभरकी षष्ठी तिथियोंमें पालनीय व्रत एवं देवपूजन आदिकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—विप्रवर! सुनो, अब मैं तुमसे षष्ठीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका यथार्थरूपसे अनुष्ठान करके मनुष्य यहाँ सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला षष्ठीको परम उत्तम 'कुमारव्रत[१]' का विधान किया गया है। उसमें नाना प्रकारकी पूजा-विधिसे भगवान् षडाननकी[१] आराधना करके मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न एवं चिरंजीवी पुत्र प्राप्त कर लेता है। वैशाख शुक्ला षष्ठीको कार्तिकेयजीकी पूजा करके मनुष्य मातृसुखलाभ करता है। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक सूर्यदेवकी पूजा करके उनकी कृपासे मनुष्य मनोवाञ्छित भोग पाता है। आषाढ़ शुक्ला षष्ठीको परम उत्तम 'स्कन्दव्रत[१]' करना चाहिये। उस दिन उपवास करके शिव तथा पार्वतीके प्रिय पुत्र स्कन्दजीकी पूजा करनेसे मनुष्य पुत्र-पौत्रादि सन्तानों और मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है। श्रावण शुक्ला षष्ठीको उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो षोडशोपचारद्वारा शरजन्मा भगवान् स्कन्दकी आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष षडाननकी कृपासे अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लेता है। भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'ललिताव्रत' बताया गया है। उस दिन नारी विधिपूर्वक प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत मालासे अलंकृत हो नदी-संगमकी बालुका लेकर उसके पिण्ड बनाकर बाँसके पात्रमें रखे। इस प्रकार पाँच पिण्ड रखकर उसमें वन-विलासिनी ललितादेवीका ध्यान करे। फिर कमल, कनेर, नेवारी (वनमल्लिका), मालती, नील कमल, केतकी और तगरका संग्रह करके इनमेंसे एक-एकके एक सौ आठ या अट्ठाईस फूल ग्रहण करे। उन फूलोंकी अक्षत-कलिकाएँ ग्रहण करके उन्हींसे देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके पश्चात् सामने खड़े होकर उन शिवप्रिया ललितादेवीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले देवि हरं लब्धवती पतिम्॥
ललिते सुभगे देवि सुखसौभाग्यदायिनि।
अनन्तं देहि सौभाग्यं मह्यं तुभ्यं नमो नमः॥

(ना० पूर्व० ११५। १३—१५)

१. कार्तिकेय।

'देवि! आपने गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत और कनखल तीर्थमें स्नान करके भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया है। सुख और सौभाग्य देनेवाली सुन्दरी ललितादेवी! आपको बारम्बार नमस्कार है, आप मुझे अक्षय सौभाग्य प्रदान कीजिये।'

इस मन्त्रसे चम्पाके सुन्दर फूलोंद्वारा ललितादेवीकी विधिपूर्वक पूजा करके उनके आगे नैवेद्य रखे। खीरा, ककड़ी, कुम्हड़ा, नारियल, अनार, बिजौरा नीबू, तुंडीर, कारवेल्ल और चिर्भट आदि सामयिक फलोंसे देवीके आगे शोभा करके बढ़े हुए धानके अङ्कुर, दीपोंकी पंक्ति, अगुरु, धूप, सौहालक, करञ्जक, गुड़, पुष्प, कर्णवेष्ट (कानके आभूषण), मोदक, उपमोदक तथा अपने वैभवके अनुसार अनेक प्रकारके नैवेद्य आदिद्वारा विधिवत् पूजा करके रातमें जागरणका उत्सव मनावे। इस प्रकार जागरण करके सप्तमीको सबेरे ललिताजीको नदीके तटपर ले जाय। द्विजोत्तम! वहाँ गन्ध, पुष्पसे गाजे-बाजेके साथ पूजा करके वह नैवेद्य आदि सामग्री श्रेष्ठ ब्राह्मणको दे। फिर स्नान करके घर आकर अग्निमें होम करे। देवताओं, पितरों और मनुष्योंका पूजन करके सुवासिनी स्त्रियों, कन्याओं तथा पन्द्रह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। भोजनके पश्चात् बहुत-सा दान देकर उन सबको विदा करे। अनेकानेक व्रत, तपस्या, दान और नियमसे जो फल प्राप्त होता है, वह इसी व्रतसे यहाँ उपलब्ध हो जाता है। तदनन्तर नारी मृत्युके पश्चात् सनातन शिवधाममें पहुँचकर ललितादेवीके साथ उनकी सखी होकर चिरकालतक आनन्द भोगती है और पुरुष भगवान् शिवके समीप रहकर सुखी होता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षमें जो षष्ठी आती है, उसे 'चन्दनषष्ठी' कहते हैं। उस दिन देवीकी पूजा करके मनुष्य देवीलोकको प्राप्त कर लेता है। यदि वह षष्ठी रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात योग और मङ्गलवारसे संयुक्त हो तो उसका नाम 'कपिलाषष्ठी' होता है। कपिलाषष्ठीके दिन व्रत एवं नियममें तत्पर होकर सूर्यदेवकी पूजा करके मनुष्य भगवान् भास्करके प्रसादसे मनोवाञ्छित कामनाओंको पा लेता है। देवर्षिप्रवर! उस दिन किया हुआ अन्नदान, होम, जप तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण आदि सब कुछ अक्षय जानना चाहिये। कपिलाषष्ठीको भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, माला और चन्दन आदिसे दूध

देनेवाली कपिला गायकी पूजा करके उसे वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला षष्ठीको गन्ध आदि माङ्गलिक द्रव्यों और नाना प्रकारके नैवेद्योंसे कात्यायनीदेवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजाके पश्चात् देवेश्वरी कात्यायनी-देवीसे क्षमा-प्रार्थना और उन्हें प्रणाम करके उनका विसर्जन करे। यहाँ बालूकी मूर्तिमें कात्यायनीकी प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करके कात्यायनीदेवीकी कृपासे

कन्या मनके अनुरूप वर पाती है और विवाहिता नारी मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त करती है। कार्तिक शुक्ला षष्ठीको महात्मा षडाननने सम्पूर्ण देवताओंद्वारा दी हुई महाभागा देवसेनाको प्राप्त किया था। अतः इस तिथिको सम्पूर्ण मनोहर उपचारोंद्वारा सुरश्रेष्ठा देवसेना और षडानन कार्तिकेयकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य अपने मनके अनुकूल अनुपम सिद्धि प्राप्त करता है। द्विजोत्तम! उसी तिथिको अग्निपूजा बतायी गयी है। पहले अग्निदेवकी पूजा करके नाना प्रकारके द्रव्योंसे होम करना चाहिये।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा स्कन्दका पूजन करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! यदि वह षष्ठी रविवार तथा शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे 'चम्पाषष्ठी' कहते हैं। उस दिन सुख चाहनेवाले पुरुषको पापनाशक भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन, पूजन, ज्ञान और स्मरण करना चाहिये। उस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सब शुभ कर्म अक्षय होता है। विप्रवर! पौष मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको सनातन विष्णुरूपी जगत्पालक भगवान् दिनेश प्रकट हुए थे। अतः सब प्रकारका सुख चाहनेवाले पुरुषोंको उस दिन गन्ध आदि द्रव्यों, नैवेद्यों तथा वस्त्राभूषण आदिके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। माघ मासमें जो शुक्ल पक्षकी षष्ठी आती है, उसे 'वरुणषष्ठी' कहते हैं। उसमें रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यद्वारा विष्णु-स्वरूप सनातन वरुणदेवताकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य जो-जो चाहता है, वही-वही फल वरुणदेवकी कृपासे प्राप्त करके प्रसन्न होता है। नारद! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक भगवान् पशुपतिकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। शतरुद्रीके मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् पञ्चामृत एवं जलद्वारा नहलाकर श्वेत चन्दन लगावे; फिर अक्षत, सफेद फूल, बिल्वपत्र, धतूरके फूल, अनेक प्रकारके फल और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भलीभाँति पूजा करके विधिवत् आरती उतारे। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना करके प्रणामपूर्वक उन्हें कैलासके लिये विसर्जन करे। मुने! जो स्त्री अथवा पुरुष इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजा करते हैं, वे इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके स्वरूपको प्राप्त होते हैं।

## बारह मासोंके सप्तमी-सम्बन्धी व्रत और उनके माहात्म्य

**सनातनजी कहते हैं**—सुनो, अब मैं तुम्हें सप्तमीके व्रत बतलाता हूँ। चैत्र शुक्ला सप्तमीको गाँवसे बाहर किसी नदी या जलाशयमें स्नान करे। फिर घर आकर एक वेदी बनावे और उसे गोबरसे लीपकर उसके ऊपर सफेद बालू फैला दे। उसपर अष्टदल कमल लिखकर उसकी कर्णिकामें भगवान् सूर्यकी स्थापना करे। पूर्वके दलमें यज्ञसाधक दो देवताओंका न्यास करे। अग्निकोणके दलमें दो यज्ञसाधक गन्धर्वोंका न्यास करे। दक्षिणदलमें दो अप्सराओंका न्यास करे। मुनिश्रेष्ठ! नैर्ऋत्य-दलमें दो राक्षसोंको स्थापित करे। पश्चिमदलमें यज्ञमें सहायता पहुँचानेवाले काद्रवेयसंज्ञक दो महानागोंका न्यास करे। द्विजोत्तम! वायव्यदलमें दो यातुधानोंका, उत्तरदलमें दो ऋषियोंका और ऐशान्यदलमें एक ग्रहका न्यास करे। इन सबका गन्ध, माला, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य और पान-सुपारी आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करके सूर्यदेवके लिये घीसे एक सौ आठ आहुति दे तथा अन्य लोगोंके लिये

नाम-मन्त्रसे वेदीपर ही क्रमशः आठ-आठ आहुतियाँ दे। द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर पूर्णाहुति दे और ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा अर्पित करे। इस प्रकार सब विधान करके मनुष्य पूर्ण सौख्य लाभ करता है और शरीरका अन्त होनेपर सूर्यमण्डल भेदकर परम पदको प्राप्त होता है।

वैशाख शुक्ला सप्तमीको राजा जह्नुने स्वयं क्रोधवश गङ्गाजीको पी लिया था और पुनः अपने दाहिने कानके छिद्रसे उनका त्याग किया था। अतः वहाँ प्रातःकाल स्नान करके निर्मल जलमें गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि सम्पूर्ण उपचारोंद्वारा गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर एक सहस्र घट दान करना चाहिये। 'गङ्गाव्रत' में यही कर्तव्य है। यह सब भक्तिपूर्वक किया जाय तो गङ्गाजी सात पीढ़ियोंको निःसंदेह स्वर्गमें पहुँचा देती हैं। इसी तिथिको 'कमलव्रत' भी बताया गया है। तिलसे भरे हुए पात्रमें सुवर्णमय सुन्दर कमल रखकर उसे दो वस्त्रोंसे ढँककर गन्ध, धूप आदिके द्वारा उसकी पूजा करे। तत्पश्चात्—

**नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे।**
**दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥**

(ना० पूर्व० ११६। १५-१६)

'हाथमें कमल धारण करनेवाले भगवान् सूर्यको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले भगवान् सविताको नमस्कार है। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार देवेश्वर सूर्यको नमस्कार करके सूर्यास्तके समय जलसे भरे हुए घड़ेके साथ वह कमल और एक कपिला गाय ब्राह्मणको दान दे। उस दिन अखण्ड उपवास और दूसरे दिन भोजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे भोजन करानेसे व्रत सफल होता है। उसी दिन 'निम्बसप्तमी'-का व्रत बताया जाता है। द्विजश्रेष्ठ नारद! उसमें '**ॐ खखोल्काय नमः**' इस मन्त्रद्वारा नीमके पत्तेसे भगवान् भास्करकी पूजाका विधान है। पूजनके पश्चात् नीमका पत्ता खाय और मौन होकर भूमिपर शयन करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। यह '**निम्बपत्रव्रत**' है, जो इसका पालन करनेवाले पुरुषोंको सब प्रकारका सुख देनेवाला है। इसी दिन 'शर्करासप्तमी' भी कही गयी है। शर्करासप्तमी अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाली, सब दुःखोंको शान्त करनेवाली और सन्तानपरम्पराको बढ़ानेवाली है। इसमें शक्करका दान करना, शक्कर खाना और खिलाना कर्तव्य है। यह व्रत भगवान् सूर्यको विशेष प्रिय है। जो परम भक्तिभावसे इसका पालन करता है, वह सद्गतिको प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमीको साक्षात् भगवान् सूर्यस्वरूप इन्द्र उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मन्! जो उपवासपूर्वक जितेन्द्रियभावसे विधि-विधानके साथ उनकी पूजा करता है, वह देवराज इन्द्रके प्रसादसे स्वर्गलोकमें

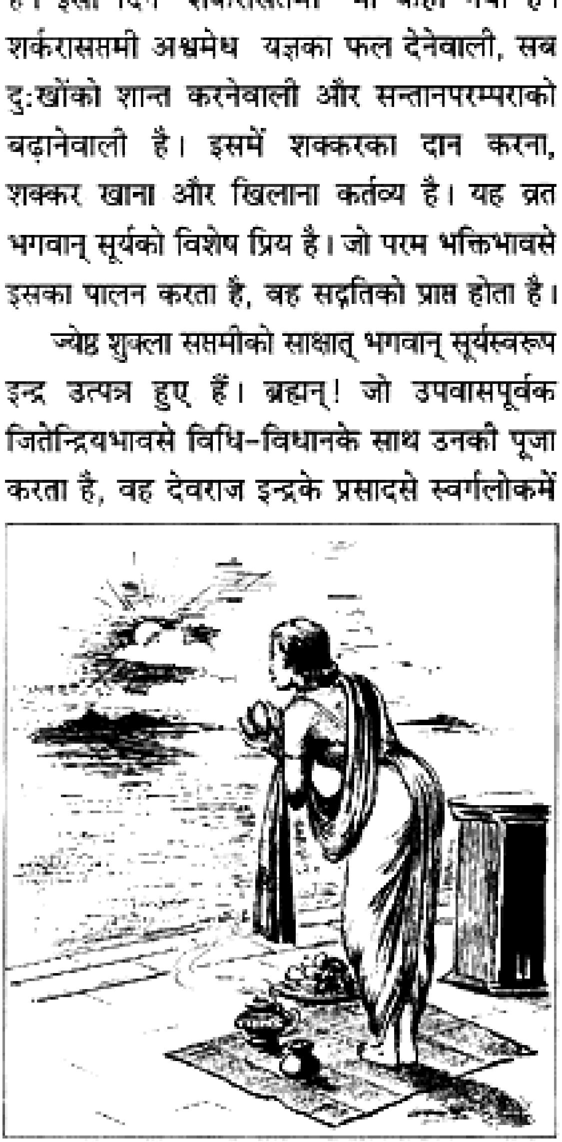

स्थान पाता है। विप्रेन्द्र! आषाढ़ शुक्ला सप्तमीको विवस्वान् नामक सूर्य प्रकट हुए थे; अतः उस

तिथिमें गन्ध, पुष्प आदि पृथक्-पृथक् सामग्रियोंद्वारा उनकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

श्रावण शुक्ला सप्तमीको 'अव्यङ्ग' नामक शुभ व्रत करना चाहिये। इसमें सूर्यदेवकी पूजाके अन्तमें उनकी प्रसन्नताके लिये कपासके सूतका बना हुआ साढ़े चार हाथका वस्त्र दान करना चाहिये। यह व्रत विशेष कल्याणकारी है। यदि यह सप्तमी हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो पापनाशिनी कही गयी है। इसमें किया हुआ दान, जप और होम सब अक्षय होता है। भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको 'आमुक्ताभरणव्रत' बतलाया गया है। इसमें उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजाका विधान है। गङ्गाजल आदि षोडशोपचारसे भगवान्‌का पूजन, प्रार्थना और नमस्कार करके सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये उनका विसर्जन करना चाहिये। इसीको 'फलसप्तमी' भी कहते हैं। नारियल, बैगन, नारंगी, बिजौरा नीबू, कुम्हड़ा, बनभंटा और सुपारी—इन सात फलोंको महादेवजीके आगे रखकर सात तन्तुओं और सात गाँठोंसे युक्त एक डोरा भी चढ़ावे। फिर पराभक्तिसे उनका पूजन करके उस डोरेको स्त्री बायें हाथमें बाँध ले और पुरुष दाहिने हाथमें। जबतक वर्ष पूरा न हो जाय तबतक उसे धारण किये रहे। सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराकर उन्हें विदा करे। उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष व्रतकी पूर्णताके लिये स्वयं भी भोजन करे। पहले बताये हुए सातों फल सात ब्राह्मणोंको देने चाहिये। विप्रवर! इस प्रकार सात वर्षोंतक व्रतका पालन करके विधिवत् उपासना करनेपर व्रतधारी मनुष्य महादेवजीका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। आश्विनके शुक्ल पक्षमें जो सप्तमी आती है, उसे 'शुभ सप्तमी' जानना चाहिये। उसमें स्नान और पूजा करके तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले व्रतका आरम्भ करके कपिला गायका पूजन एवं प्रार्थना करे—

**त्वामहं दद्मि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम्।**
**पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा॥**

(ना० पूर्व० ११६। ४१-४२)

'कल्याणी! मैं तुम्हारा दान करता हूँ, इससे साक्षात् भगवान् सूर्य प्रसन्न हों। तुम सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करो; क्योंकि धर्मसे उत्पन्न हुई हो।'

ऐसा कहकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको नमस्कार करके उसे गाय और दक्षिणा दे। ब्रह्मन्! फिर स्वयं पञ्चगव्य पान करके रहे। इस प्रकार व्रत करके दूसरे दिन उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनसे शेष बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्नको स्वयं भोजन करे। जिसने श्रद्धापूर्वक इस शुभ सप्तमी नामक व्रतको किया है, वह देवदेव महादेवजीके प्रसादसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

कार्तिकके शुक्ल पक्षमें 'शाकसप्तमी' नामक व्रत करना चाहिये। उस दिन स्वर्णकमलसहित सात प्रकारके शाक सात ब्राह्मणोंको दान करे और स्वयं शाक भोजन करके ही रहे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भोजन-दक्षिणा दे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको 'मित्र-व्रत' बताया गया है। भगवान् विष्णुका जो दाहिना नेत्र है, वही साकार होकर कश्यपके तेज और अदितिके गर्भसे 'मित्र' नामधारी दिवाकरके रूपमें प्रकट हुआ है। अतः ब्रह्मन्! इस तिथिमें शास्त्रोक्त विधिसे उन्हींका पूजन करना चाहिये। पूजन करके मधुर आदि सामग्रियोंसे सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्ण-दक्षिणा देकर विदा करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करके मनुष्य निश्चय ही सूर्यके लोकमें जाता है। पौष शुक्ला सप्तमीको 'अभयव्रत' होता है। उस दिन उपवास करके पृथ्वीपर खड़ा हो तीनों समय

सूर्यदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् दूधमिश्रित अन्नसे बँधा हुआ एक सेर मोदक ब्राह्मणको दान करके सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्णकी दक्षिणा दे विदा करके स्वयं भी भोजन करे। यह सबको अभय देनेवाला माना गया है। दूसरे ब्राह्मण उसी दिन 'मार्तण्डव्रत'का उपदेश करते हैं। दोनों एक ही देवता होनेके कारण विद्वानोंने उन्हें एक ही व्रत कहा है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको 'सर्वाप्ति' नामक व्रत होता है। उस दिन उपवास करके सुवर्णके बने हुए सूर्यविम्बकी गन्ध, पुष्प आदिसे पूजा करे तथा रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिन सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा, नारियल और अगुरु अर्पण करके दूसरी दक्षिणाके साथ सुवर्णमय सूर्यविम्ब आचार्यको समर्पित करे। फिर विशेष प्रार्थनापूर्वक उन्हें विदा करके स्वयं भोजन करे। यह व्रत सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है। इस व्रतके प्रभावसे सर्वथा अद्वैतज्ञान सिद्ध होता है।

माघ शुक्ला सप्तमीको 'अचलाव्रत' बताया गया है। यह 'त्रिलोचनजयन्ती' है। इसे सर्वपापहारिणी माना गया है। इसीको 'रथसप्तमी' भी कहते हैं, जो 'चक्रवर्ती' पद प्रदान करनेवाली है। उस दिन सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमाको सुवर्णमय घोड़े जुते हुए सुवर्णके ही रथपर बिठाकर जो सुवर्ण दक्षिणाके साथ भावभक्तिपूर्वक उसका दान करता है, वह भगवान् शङ्करके लोकमें जाकर आनन्द भोगता है। यही 'भास्करसप्तमी' भी कहलाती है, जो करोड़ों सूर्य-ग्रहणोंके समान है। इसमें अरुणोदयके समय स्नान किया जाता है। आक और बेरके सात-सात पत्ते सिरपर रखकर स्नान करना चाहिये। इससे सात जन्मोंके पापोंका नाश होता है। इसी सप्तमीको 'पुत्रदायक' व्रत भी बताया गया है। स्वयं भगवान् सूर्यने कहा है—'जो माघ शुक्ला सप्तमीको विधिपूर्वक मेरी पूजा करेगा, उसपर अधिक सन्तुष्ट होकर मैं अपने अंशसे उसका पुत्र होऊँगा।' इसलिये उस दिन इन्द्रियसंयमपूर्वक दिन-रात उपवास करे और दूसरे दिन होम करके ब्राह्मणोंको दही, भात, दूध और खीर आदि भोजन करावे। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको 'अर्कपुट' नामक व्रतका आचरण करे। अर्कके पत्तोंसे अर्क (सूर्य)-का पूजन करे और अर्कके पत्ते ही खाय तथा 'अर्क' नामका सदा जप करे। इस प्रकार किया हुआ यह 'अर्कपुटव्रत' धन और पुत्र देनेवाला तथा सब पापोंका नाश करनेवाला है। कोई-कोई विधिपूर्वक होम करनेसे इसे 'यज्ञव्रत' मानते हैं। द्विजश्रेष्ठ! सब मासोंकी सम्पूर्ण सप्तमी तिथियोंमें भगवान् सूर्यकी आराधना समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली बतायी गयी है।

## बारह महीनोंके अष्टमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—नारद! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको भवानीका जन्म बताया जाता है। उस दिन सौ परिक्रमा करके उनकी यात्राका महान् उत्सव मनाना चाहिये। उस दिन जगदम्बाका दर्शन मनुष्योंके लिये सर्वथा आनन्द देनेवाला है। उसी दिन अशोककलिका खानेका विधान है। जो लोग चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको पुनर्वसु नक्षत्रमें अशोककी आठ कलिकाओंका पान करते हैं, वे कभी शोक नहीं पाते। उस दिन रातमें देवीकी पूजाका विधान होनेसे वह तिथि 'महाष्टमी' भी कही गयी है। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको

उपवास करके स्वयं जलसे स्नान करे और अपराजिता-देवीको जटामाँसी तथा उशीर (खस)-मिश्रित जलसे स्नान कराकर गन्ध आदिसे उनकी पूजा करे। फिर शर्करासे तैयार किया हुआ नैवेद्य भोग लगावे। दूसरे दिन नवमीको पारणासे पहले कुमारी कन्याओंको देवीका शर्करामय प्रसाद भोजन करावे। ब्रह्मन्! ऐसा करनेवाला मनुष्य देवीके प्रसादसे ज्योतिर्मय विमानमें बैठकर प्रकाशमान सूर्यकी भाँति दिव्य लोकोंमें विचरता है।

ज्येष्ठ मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको भगवान् त्रिलोचनकी पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमीको देवीकी पूजा करता है, वह गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ विमानपर विचरण करता है। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको हल्दीमिश्रित जलसे स्नान करके वैसे ही जलसे देवीको भी स्नान करावे और विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तदनन्तर शुद्ध जलसे स्नान कराकर कपूर और चन्दनका लेप लगावे। तत्पश्चात् शर्करायुक्त नैवेद्य अर्पण करके आचमन करावे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें सुवर्ण और दक्षिणा दे। तदनन्तर उन्हें विदा करके स्वयं मौन होकर भोजन करे। इस व्रतका पालन करके मनुष्य देवीलोकमें जाता है। श्रावण शुक्ला अष्टमीको विधिपूर्वक देवीका यजन करके दूधसे उन्हें नहलावे और मिष्टान्न निवेदन करे, तत्पश्चात् दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करे। यह संतान बढ़ानेवाला व्रत है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको 'दशाफल' नामका व्रत होता है[1]। उस दिन उपवास-व्रतका संकल्प लेकर स्नान और नित्यकर्म करके काली तुलसीके दस पत्तोंसे **'कृष्णाय नमः'**, **'विष्णवे नमः'**, **'अनन्ताय नमः'**, **'गोविन्दाय नमः'**, **'गरुडध्वजाय नमः'**, **'दामोदराय नमः'**, **'हृषीकेशाय नमः'**, **'पद्मनाभाय नमः'**, **'हरये नमः'**, **'प्रभवे नमः'**—इन दस नामोंका उच्चारण करके प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। तदनन्तर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतको दस दिनतक करता रहे। इसके आदि, मध्य और अन्तमें श्रीकृष्ण-मन्त्रद्वारा चरुसे एक सौ आठ बार विधिपूर्वक होम करे। होमके अन्तमें विद्वान् पुरुष विधिके अनुसार भलीभाँति आचार्यकी पूजा करे। सोने, ताँबे, मिट्टी अथवा बाँसके पात्रमें सोनेका सुन्दर तुलसीदल बनवाकर रखे। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी प्रतिमा भी स्थापित करके उसकी विधिपूर्वक पूजा करे और वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित बछड़ेसहित गौका दान भी करे। दस दिनोंतक प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णको दस-दस पूरी अर्पण करे। उन पूरियोंको व्रती पुरुष विधिज्ञ ब्राह्मणको दे डाले अथवा स्वयं भोजन करे। द्विजोत्तम! दसवें दिन यथाशक्ति शय्यादान करे। तत्पश्चात् द्रव्यसहित सुवर्णमयी मूर्ति आचार्यको समर्पित करे। व्रतके अन्तमें दस ब्राह्मणोंको प्रत्येकके लिये दस-दस पूरियाँ देवे। इस प्रकार दस वर्षोंतक उत्तम व्रतका पालन करके विधिपूर्वक उपवासका निर्वाह कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होता है और अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

यही 'कृष्ण-जन्माष्टमी' तिथि है, जो मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाली कही गयी है। श्रीकृष्णके जन्मके दिन केवल उपवास करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विद्वान्

---

१. अमावास्यातक मास माननेवालोंकी दृष्टिसे यह श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी कही गयी है। जो पूर्णिमातक ही मास मानते हैं उनकी दृष्टिसे यह अष्टमी भाद्रपद कृष्ण पक्षमें पड़ती है।

पुरुष उपवास करके नदी आदिके निर्मल जलमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। फिर उत्तम स्थानमें बने हुए मण्डपके भीतर मण्डल बनावे। मण्डलके मध्यभागमें ताँबे या मिट्टीका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबेका पात्र रखे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढकी हुई श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। फिर वाद्य आदि उपचारोंद्वारा स्नेहपूर्ण हृदयसे उसकी पूजा करे। कलशके सब ओर पूर्व आदि क्रमसे देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, व्रज, गोपगण, गोपीवृन्द तथा गोसमुदायकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अपराध क्षमा कराते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। उसके बाद आधी राततक वहीं रहे। आधी रातमें पुन: श्रीहरिको पञ्चामृत तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये और गन्ध-पुष्प आदिसे पुन: उनकी पूजा करे। नारद! धनिया, अजवाइन, सोंठ, खाँड़ और घीके मेलसे नैवेद्य तैयार करके उसे चाँदीके पात्रमें रखकर भगवान्‌को अर्पण करे। फिर दशावतारधारी श्रीहरिका चिन्तन करते हुए पुनः आरती करके चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उसके बाद देवेश्वर श्रीकृष्णसे क्षमा-प्रार्थना करके व्रती पुरुष पौराणिक स्तोत्र-पाठ और गीत-वाद्य आदि अनेक कार्यक्रमोंद्वारा रात्रिका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर प्रात:काल श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा देकर विदा करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की सुवर्णमयी प्रतिमाको स्वर्ण, धेनु और भूमिसहित आचार्यको दान करे। फिर और भी दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री, पुत्र, सुहृद् तथा भृत्यवर्गके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य श्रेष्ठ विमानपर बैठकर साक्षात् गोलोकमें जाता है। इस जन्माष्टमीके समान दूसरा कोई व्रत तीनों लोकोंमें नहीं है, जिसके करनेसे करोड़ों एकादशियोंका फल प्राप्त हो जाता है। भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको मनुष्य 'राधाव्रत' करे। इसमें भी पूर्ववत् कलशके ऊपर स्थापित श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। यदि शक्ति हो तो भक्त पुरुष पूरा उपवास करे। फिर दूसरे दिन भक्तिपूर्वक सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार इस व्रतको समाप्त

करना चाहिये। ब्रह्मर्षे! व्रती पुरुष विधिपूर्वक इस 'राधाष्टमीव्रत' के करनेसे व्रजका रहस्य जान लेता तथा राधापरिकरोंमें निवास करता है।

इसी तिथिको 'दूर्वाष्टमीव्रत' भी बताया गया है। पवित्र स्थानमें उगी हुई दूबपर शिवलिङ्गकी स्थापना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दही, अक्षत और फल आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। पूजाके अन्तमें एकाग्रचित्त होकर अर्घ्य दे। अर्घ्य देनेके पश्चात् परिक्रमा करके वहीं ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा, उत्तम फल तथा सुगन्धित मिष्टान्न देकर विदा करे; फिर स्वयं भी भोजन करके अपने घर जाय। विप्रवर! इस प्रकार यह 'दूर्वाष्टमी' मनुष्योंके लिये पुण्यदायिनी तथा उनका पाप हर लेनेवाली है। यह चारों वर्णों और विशेषतः स्त्रियोंके लिये अवश्यकर्तव्य व्रत है। ब्रह्मन्! जब वह अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्रसे संयुक्त हो तो उसे 'ज्येष्ठा अष्टमी' के नामसे जानना चाहिये। वह पूजित होनेपर सब पापोंका नाश करनेवाली है। इस तिथिसे लेकर सोलह दिनोंतक महालक्ष्मीका व्रत बताया गया है। पहले इस प्रकार संकल्प करे—

**करिष्येऽहं महालक्ष्मीव्रतं ते त्वत्परायणः।**
**तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः॥**

(ना० पूर्व० ११७। ५५)

'देवि! मैं आपकी सेवामें तत्पर होकर आपके इस महालक्ष्मीव्रतका पालन करूँगा। आपकी कृपासे यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके परिपूर्ण हो।'

ऐसा कहकर दाहिने हाथमें सोलह तन्तु और सोलह गाँठोंसे युक्त डोरा बाँध ले। तबसे व्रती पुरुष प्रतिदिन गन्ध आदि उपचारोंद्वारा महालक्ष्मीकी पूजा करे। पूजाका यह क्रम आश्विन कृष्णा अष्टमीतक चलाता रहे। व्रत पूरा हो जानेपर विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे। वस्त्र घेरकर एक मण्डप बना ले। उसके भीतर सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करे और उस मण्डलमें कलशकी प्रतिष्ठा करके दीपक जला दे। फिर अपनी बाँहसे डोरा उतारकर कलशके नीचे रख दे। इसके बाद सोनेकी चार प्रतिमाएँ बनवावे, वे सब-की-सब महालक्ष्मीस्वरूपा हों। फिर पञ्चामृत और जलसे उन सबको स्नान करावे तथा षोडशोपचारसे विधिपूर्वक पूजा करके वहाँ जागरण करे। तदनन्तर आधी रातके समय चन्द्रोदय होनेपर श्रीखण्ड आदि द्रव्योंसे विधिपूर्वक अर्घ्य अर्पण करे। यह अर्घ्य चन्द्रमण्डलमें स्थित महालक्ष्मीके उद्देश्यसे देना चाहिये। अर्घ्य देनेके पश्चात् महालक्ष्मीकी प्रार्थना करे और फिर व्रत करनेवाली स्त्री श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका रोली, महावर और काजल आदि सौभाग्यसूचक द्रव्योंद्वारा भलीभाँति पूजन करके उन्हें भोजन करावे। तत्पश्चात् बिल्व, कमल और खीरसे अग्निमें आहुति दे। ब्रह्मन्! उक्त वस्तुओंके अभावमें केवल घीकी आहुति दे। ग्रहोंके लिये समिधा और तिलका हवन करे। सब रोगोंकी शान्तिके उद्देश्यसे भगवान् मृत्युञ्जयके लिये भी आहुति देनी चाहिये। चन्दन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, लाल सूत, सुपारी, नारियल तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ—सबको नये सूपेमें रखे। प्रत्येक वस्तु सोलहकी संख्यामें हो। उन सब वस्तुओंको दूसरे सूपसे ढक दे। तदनन्तर व्रती पुरुष निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उपर्युक्त सब वस्तुएँ महालक्ष्मीको समर्पित करे—

**क्षीरोदार्णवसम्भूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा।**
**व्रतेनानेन संतुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा॥**

(ना० पूर्व० ११७। ७०-७१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई चन्द्रमाकी सहोदर भगिनी श्रीविष्णुवल्लभा महालक्ष्मी इस व्रतसे सन्तुष्ट हों।'

पूर्वोक्त चार प्रतिमाएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणको अर्पित करे। इसके बाद चार ब्राह्मणों और सोलह सुवासिनी स्त्रियोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे। फिर नियम समाप्त करके इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। विप्रवर! यह महालक्ष्मीका व्रत है। इसका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य इहलोकके इष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद चिरकालतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है।

विप्रवर! आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो अष्टमी आती है, उसे 'महाष्टमी' कहा गया है। उसमें सभी उपचारोंसे दुर्गाजीके पूजनका विधान है। जो 'महाष्टमी'को उपवास अथवा एकभुक्त व्रत करता है, वह सब ओरसे वैभव पाकर देवताकी भाँति चिरकालतक आनन्दमग्न रहता है। कार्तिक कृष्णपक्षमें अष्टमीको 'कर्काष्टमी' नामक व्रत कहा गया है। उसमें यत्नपूर्वक उमासहित भगवान् शङ्करकी पूजा करनी चाहिये। जो सर्वगुणसम्पन्न पुत्र और नाना प्रकारके सुखकी अभिलाषा रखते हैं, उन व्रती पुरुषोंको चन्द्रोदय होनेपर सदा चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। कार्तिकके शुक्लपक्षमें गोपाष्टमीका व्रत बताया गया है। उसमें गौओंकी पूजा करना, गोग्रास देना, गौओंकी परिक्रमा करना, गौओंके पीछे-पीछे चलना और गोदान करना आदि कर्तव्य है। जो समस्त सम्पत्तियोंकी इच्छा रखता हो, उसे उपर्युक्त कार्य अवश्य करने चाहिये। मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'अनघाष्टमी-व्रत' कहा गया है। उसमें अनेक पुत्रोंसे युक्त अनघ और अनघा—इन दोनों पति-पत्नीकी कुशमयी प्रतिमा बनायी जाती है। उस युगल जोड़ीको गोबरसे लीपे हुए शुभ स्थानमें स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदि विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे। फिर ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराकर दक्षिणा देकर विदा करे। स्त्री हो या पुरुष विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करके उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र पाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीको कालभैरवके समीप उपवासपूर्वक जागरण करके मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। पौष शुक्ल अष्टमीको अष्टकासंज्ञक श्राद्ध पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति देनेवाला और कुल-संततिको बढ़ानेवाला है। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करके केवल भक्तिका आचरण करते हुए मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। माघ मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भद्रकाली देवीकी भक्तिभावसे पूजा करे। जो अविच्छिन्न संतति और विजय चाहता हो, वह माघ मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मजीका तर्पण करे। ब्रह्मन्! फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको व्रतपरायण पुरुष समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये भीमादेवीकी आराधना करे। फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको गन्ध आदि उपचारोंसे शिव और शिवाकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है। सभी मासोंके दोनों पक्षोंमें अष्टमीके दिन विधिपूर्वक शिव और पार्वतीकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है।

# नवमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—विप्रेन्द्र! अब मैं तुमसे नवमीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, लोकमें जिनका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाते हैं। चैत्रके शुक्लपक्षमें नवमीको 'श्रीरामनवमी'का व्रत होता है। उसमें भक्तियुक्त पुरुष यदि शक्ति

हो तो विधिपूर्वक उपवास करे। जो अशक्त हो, वह मध्याह्नकालीन जन्मोत्सवके बाद एक समय भोज करके रहे। ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करे। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण आदिके दानसे भी श्रीरामप्रीतिका सम्पादन करे। जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिपूर्वक 'श्रीरामनवमीव्रत' का पालन करता है, वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करके भगवान् विष्णुके परम धामको जाता है। वैशाखमें दोनों पक्षोंकी नवमीको जो विधिपूर्वक चण्डिका-पूजन करता है, वह विमानसे विचरण करता हुआ देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। ज्येष्ठ शुक्ला नवमीको श्रेष्ठ मनुष्य उपवासपूर्वक उमादेवीका विधिवत् पूजन करके कुमारी कन्याओं तथा ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर अगहनीके चावलका भात दूधके साथ खाय। जो मनुष्य इस 'उमाव्रत'का विधिपूर्वक पालन करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें स्थान पाता है। विप्रेन्द्र! जो आषाढ़ मासके दोनों पक्षोंमें नवमीको रातमें ऐरावतपर विराजमान शुक्लवर्णा इन्द्राणीका भलीभाँति पूजन करता है, वह देवलोकमें दिव्य विमानपर विचरता हुआ दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। विप्रवर! जो श्रावण मासके दोनों पक्षोंकी नवमीको उपवास अथवा केवल रातमें भोजन करता और 'कौमारी चण्डिका' की आराधना करता है, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भाँति-भाँतिके नैवेद्य अर्पण करके और कुमारी कन्याओंको भोजन कराकर जो उस पापहारिणी देवीकी परिचर्यामें तत्पर रहता है तथा इस प्रकार भक्तिपूर्वक उस उत्तम 'कौमारीव्रत'का पालन करता है, वह विमानद्वारा सनातन देवीलोकमें जाता है।

भाद्रपद शुक्ला नवमीको 'नन्दानवमी' कहते हैं। उस दिन जो नाना प्रकारके उपचारोंद्वारा दुर्गादेवीकी विधिवत् पूजा करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें जो नवमी आती है, उसे 'अक्षयनवमी' कहते हैं। उस दिन पीपलवृक्षकी जड़के समीप देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे और सूर्यदेवताको अर्घ्य दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे और स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक 'अक्षयनवमी' को जप, दान, ब्राह्मणपूजन और होम करता है, उसका वह सब कुछ अक्षय होता है, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। मार्गशीर्ष शुक्ला नवमीको 'नन्दिनीनवमी' कहते हैं। जो उस दिन उपवास करके गन्ध आदिसे जगदम्बाका पूजन करता है, वह निश्चय ही अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है। विप्रवर! पौष मासके शुक्लपक्षकी नवमीको एक समय भोजनके व्रतका पालन करते हुए महामायाका पूजन करे। इससे वाजपेय यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। माघ शुक्ला नवमी लोकपूजित 'महानन्दा' के नामसे विख्यात है, जो मानवोंके लिये सदा आनन्ददायिनी होती है। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम और उपवास सब अक्षय होता है। द्विजोत्तम! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी जो नवमी तिथि है, वह परम पुण्यमयी 'आनन्दा नवमी' कहलाती है। वह सब पापोंका नाश करनेवाली मानी गयी है। जो उस दिन उपवास करके 'आनन्दा' का पूजन करता है, वह मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

## बारह महीनोंके दशमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं—**नारद! अब मैं तुम्हें दशमीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्मराजका प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला दशमीको सामयिक फल, फूल और गन्ध आदिसे धर्मराजका पूजन करना चाहिये। उस दिन पूरा उपवास या एक समय भोजन करके रहे। व्रतके अन्तमें चौदह ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। विप्रवर! जो इस प्रकार धर्मराजकी पूजा करता है, वह धर्मकी आज्ञासे देवताओंकी समता प्राप्त कर लेता है और फिर उससे च्युत नहीं होता। जो मानव वैशाख शुक्ला दशमीको गन्ध आदि उपचारों तथा श्वेत और सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनकी सौ परिक्रमा करता और यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है। सरिताओंमें श्रेष्ठ जह्नुपुत्री गङ्गा ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको स्वर्गसे इस पृथ्वीपर उतरी थीं, इसलिये वह तिथि पुण्यदायिनी मानी गयी है। ज्येष्ठ मास, शुक्लपक्ष, हस्त नक्षत्र, बुध दिन, दशमी तिथि, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याराशिके चन्द्रमा और वृषराशिके सूर्य—इन दसोंका योग महान् पुण्यमय बताया गया है। इन दस योगोंसे युक्त दशमी तिथि दस पाप हर लेती है। इसलिये उसे 'दशहरा' कहते हैं। जो इस 'दशहरा' में गङ्गाजीके पास पहुँचकर प्रसन्नचित्त हो विधिपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। मनु आदि स्मृतिकारोंने आषाढ़ शुक्ला दशमीको पुण्य-तिथि कहा है, अतः उसमें किये जानेवाले स्नान, जप, दान और होम स्वर्गलोककी प्राप्ति

करानेवाले हैं। श्रावण शुक्ला दशमी सम्पूर्ण आशाओंकी पूर्ति करनेवाली है। इसमें गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा उत्तम मानी गयी है। उस दिन किया हुआ उपवास या नक्तव्रत, ब्राह्मणभोजन, जप, सुवर्णदान तथा धेनु आदिका दान सब पापोंका नाशक बताया गया है।

द्विजश्रेष्ठ! भाद्रपद शुक्ला दशमीको 'दशावतार-व्रत' किया जाता है। उस दिन जलाशयमें स्नान करके सन्ध्यावन्दन तथा देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त हो दशावतार विग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम (वामन), परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—इन दसोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर विधिपूर्वक पूजा करे और दस ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें उन मूर्तियोंका दान कर दे। नारद! उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें विदा करके एकाग्रचित्त हो स्वयं इष्टजनोंके साथ भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें विमानद्वारा सनातन विष्णुलोकको जाता है। आश्विन शुक्ला दशमीको 'विजयादशमी' कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल घरके आँगनमें गोबरके चार पिण्ड मण्डलाकार रखे। उनके भीतर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—इन चारोंकी पूजा करे। गोबरके ही बने हुए चार ढक्कनदार पात्रोंमें भीगा हुआ धान और चाँदी रखकर उसे धुले हुए वस्त्रसे ढक देना चाहिये। फिर पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री और भृत्यसहित गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उस धान्यकी विधिपूर्वक पूजा करके नमस्कार करे। फिर पूजित ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारकी विधिका पालन करके मनुष्य निश्चय ही एक वर्षतक सुखी और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नारद! कार्तिक शुक्ला दशमीको 'सार्वभौम-व्रत' का पालन करे। उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके आधी रातके समय घर अथवा गाँवसे बाहर पूए आदिके द्वारा दसों दिशाओंमें बलि दे। गोबरसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल अङ्कित करे और उसमें गणेश आदि देवताओंकी पूजा करे।

मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीको 'आरोग्यव्रत' का आचरण करे। दस ब्राह्मणोंका गन्ध आदिसे पूजन करे और उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। स्वयं उस दिन एक समय भोजन करके रहे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य इस भूतलपर आरोग्य पाता और धर्मराजके प्रसादसे देवलोकमें देवताकी भाँति आनन्दका अनुभव करता है। पौष शुक्ला दशमीको विश्वेदेवोंकी पूजा करनी चाहिये। विश्वेदेव दस हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, मुनि, गुरु, विप्र और राम। इन सबमें भगवान् विष्णु भलीभाँति विराजमान हैं। विश्वेदेवोंको

कुशमयी प्रतिमाएँ बनाकर उन्हें कुशके ही आसनोंपर स्थापित करे। आसनोंपर स्थित हो जानेपर उनमेंसे प्रत्येकका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिके द्वारा पूजन करे। प्रत्येकको दक्षिणा देकर प्रणाम करनेके अनन्तर उन सबका विसर्जन करे। उनपर चढ़ी हुई दक्षिणाको श्रेष्ठ द्विजों अथवा गुरुको समर्पित करे। विप्रर्षे! इस प्रकार एक समय भोजनका व्रत करके जो व्रती पुरुष उक्त विधिका पालन करता है, वह उभय लोकके उत्तम भोगोंका अधिकारी होता है। नारद! माघ शुक्ला दशमीको इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करके अङ्गिरा नामवाले दस देवताओंकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदि उपचारोंसे उनकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, बर्हिष्मान्, गविष्ठ, दत्त और सत्य—ये दस अङ्गिरा हैं। उनकी पूजा करके दस ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उक्त स्वर्णमयी मूर्तियाँ उन्हींको अर्पित कर दे। इससे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। फाल्गुन शुक्ला दशमीको चौदह यमोंकी पूजा करे। यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—ये चौदह यम हैं। गन्ध आदि उपचारोंसे इनकी भलीभाँति पूजा करके कुशसहित तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अञ्जलियोंसे प्रत्येकका तर्पण करे। तदनन्तर ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, तिल, अक्षत, जौ और जल रखकर उन सबके द्वारा सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

**एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।**
**गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भक्त्या मामनुकम्पय॥**

(ना० पूर्व० ११९। ६३)

'सहस्रों किरणोंसे सुशोभित तेजोराशि जगदीश्वर सूर्यदेव! आइये, भक्तिपूर्वक मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार कीजिये। साथ ही मुझे अपनी सहज कृपासे अपनाइये।'

इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर चौदह ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा रजतमयी दक्षिणा दे। उन्हें विदा करके स्वयं भी भोजन करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार विधिका पालन करके मनुष्य धर्मराजकी कृपासे इहलोकके धन, पुत्र आदि देवदुर्लभ भोगोंको भोगता है और देहावसान होनेपर श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकका भागी होता है।

## द्वादश मासके एकादशी-व्रतोंकी विधि और महिमा तथा दशमी आदि तीन दिनोंके पालनीय विशेष नियम

**सनातनजी कहते हैं**—मुने! दोनों पक्षोंकी एकादशीको मनुष्य निराहार रहे और एकाग्रचित्त हो नाना प्रकारके पुष्पोंसे शुभ एवं विचित्र मण्डप बनावे। फिर शास्त्रोक्त विधिसे भलीभाँति स्नान करके उपवास और इन्द्रियसंयमपूर्वक श्रद्धा और एकाग्रताके साथ नाना प्रकारके उपचार जप, होम, प्रदक्षिणा, स्तोत्रपाठ, दण्डवत्-प्रणाम तथा मनको प्रिय लगनेवाले जय-जयकारके शब्दोंसे विधिवत् श्रीविष्णुकी पूजा करे तथा रात्रिमें जागरण करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला एकादशीको उपवास करके श्रेष्ठ मनुष्य तीन दिनके लिये आगे बताये जानेवाले सभी नियमोंका पालन करनेके पश्चात् द्वादशीको भक्तिपूर्वक सनातन वासुदेवकी षोडशोपचारसे पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे और उनको विदा

करके स्वयं भी भोजन करे। यह 'कामदा' नामक एकादशी है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। यदि भक्तिपूर्वक इस तिथिको उपवास किया जाय तो यह भोग और मोक्ष देनेवाली होती है। वैशाख कृष्णा एकादशीको 'वरूथिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके दूसरे दिन भगवान् मधुसूदनकी पूजा करनी चाहिये। इसमें सुवर्ण, अन्न, कन्या और धेनुका दान उत्तम माना गया है। वरूथिनीका व्रत करके नियमपरायण मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो वैष्णवपद प्राप्त कर लेता है। वैशाख शुक्ला एकादशीको 'मोहिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके दूसरे दिन स्नानके पश्चात् गन्ध आदिसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

ज्येष्ठ कृष्णा एकादशीको 'अपरा' कहते हैं। उस दिन नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको प्रातः-काल नित्यकर्मसे निवृत्त हो भगवान् त्रिविक्रमकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला मानव सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको 'निर्जला' एकादशी कहते हैं। द्विजोत्तम! सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक निर्जल उपवास करके दूसरे दिन द्वादशीके प्रातः-काल नित्यकर्म करनेके अनन्तर विविध उपचारोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य चौबीस एकादशियोंका फल प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ कृष्ण एकादशीको 'योगिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मके पश्चात् भगवान् नारायणकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण दानोंका फल पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। मुने! आषाढ़ शुक्ला एकादशीको उपवास करके सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे। वह प्रतिमा सोने या चाँदीकी बनी हुई अत्यन्त सुन्दर हो। उसकी चारों भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हों। उसे पीताम्बर धारण कराया

गया हो और वह अच्छी तरह बिछे हुए सुन्दर पलंगपर विराज रही हो। तदनन्तर मन्त्रपाठपूर्वक पञ्चामृत एवं शुद्ध जलसे स्नान कराकर पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजन करे। पाद्यसमर्पणसे लेकर आरती उतारनेतक सोलह उपचार होते हैं। तत्पश्चात् श्रीहरिकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

**सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।**
**विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम्॥**

(ना० पूर्व १२० । २३)

'जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् सो जाता है और आपके जाग्रत् होनेपर यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी जाग्रत् रहता है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त पुरुष चातुर्मास्यके लिये शास्त्रविहित नियमोंको यथाशक्ति ग्रहण करे। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारद्वारा भगवान् शेषशायीकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको

भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करे। फिर स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। इस विधिसे भगवान्‌की 'शयनी' एकादशीका व्रत करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी कृपासे भोग एवं मोक्षका भागी होता है। द्विजश्रेष्ठ! श्रावणके कृष्णपक्षमें एकादशीको 'कामिका' व्रत होता है। उस दिन श्रेष्ठ मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मका सम्पादन करनेके अनन्तर षोडशोपचारसे भगवान् श्रीधरका पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार उत्तम 'कामिकव्रत' करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। श्रावण शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नियमपूर्वक रहकर षोडशोपचारसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार करनेवाला इहलोकमें उनसे सद्गुणसम्पन्न पुत्र पाकर सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो साक्षात् भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशीको 'अजा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन विभिन्न उपचारोंसे भगवान् उपेन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक एकाग्रभावसे 'अजा' एकादशीका व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण उत्तम भोगोंको भोगता और अन्तमें वैष्णवधामको जाता है। भाद्रपद शुक्ला एकादशीका नाम 'पद्मा' है। उस दिन उपवास करके नित्य पूजन करनेके अनन्तर ब्राह्मणको जलसे भरा घट दान करे। द्विजोत्तम! पहलेसे स्थापित प्रतिमाका उत्सव करके उसे जलाशयके निकट ले जाय और जलसे स्पर्श कराकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करे। फिर उसे घरमें लाकर बायीं करवटसे सुला दे। तदनन्तर प्रातःकाल द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंद्वारा भगवान् वामनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। जो इस प्रकार 'पद्मा'का परम उत्तम व्रत करता है, वह इस लोकमें भोग पाकर अन्तमें इस प्रपञ्चसे मुक्त हो जाता है। आश्विन कृष्णा एकादशीको 'इन्दिरा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके शालग्राम शिलाके सम्मुख मध्याह्नकालमें श्राद्ध करे। ब्रह्मन्! यह भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला होता है। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल भगवान् पद्मनाभकी पूजा करके विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार 'इन्दिरा एकादशी'का व्रत करनेवाला मनुष्य इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर करोड़ों पितरोंका उद्धार करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। विप्रवर! आश्विन शुक्ला एकादशीको 'पापाङ्कुशा' कहते हैं। उस दिन विधिपूर्वक उपवास करके द्वादशीके दिन भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा दे भक्तिभावसे प्रणाम करके विदा करे। फिर स्वयं भी भोजन करे। जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिपूर्वक पापाङ्कुशा एकादशीका व्रत करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोगोंको भोगकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक कृष्णपक्षमें 'रमा' नामकी एकादशीको विधिवत् स्नान करके द्वादशीको प्रातः-काल केशी दैत्यका वध करनेवाले, देवताओंके भी देवता सनातन भगवान् केशवकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार व्रत करके

मनुष्य इस लोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर भगवान् लक्ष्मीपतिका सामीप्य लाभ करता है। कार्तिक शुक्ला एकादशीको 'प्रबोधिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके रातमें सोये हुए भगवान्को गीत आदि माङ्गलिक उत्सवोंद्वारा जगाये। उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके विविध मन्त्रों और नाना प्रकारके वाद्योंके द्वारा भगवान्को जगाना चाहिये। द्राक्षा, ईख, अनार, केला और सिंघाड़ा आदि वस्तुएँ भगवान्को अर्पित करनी चाहिये। तत्पश्चात् रात बीतनेपर दूसरे दिन सबेरे स्नान और नित्यकर्म करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा भगवान् गदादामोदरकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करके विदा करे। इसके बाद आचार्यको भगवान्की स्वर्णमयी प्रतिमा और धेनुका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो भक्ति और आदरपूर्वक 'प्रबोधिनी एकादशी'का व्रत करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैष्णवपद प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी एकादशीको 'उत्पन्ना' एकादशी कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा दे विदा करके स्वयं भी इष्टजनोंके साथ एकाग्र होकर भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिभावसे 'उत्पन्ना'का व्रत करता है, वह अन्तकालमें श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको 'मोक्षा' (मोक्षदा) एकादशी कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल सम्पूर्ण उपचारोंसे विश्वरूपधारी भगवान् अनन्तकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर पहले और पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार करके भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। पौष मासके कृष्णपक्षकी एकादशीको 'सफला' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको सभी उपचारोंसे भगवान् अच्युतकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार 'सफला' एकादशीका विधिपूर्वक व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैष्णवपदको प्राप्त होता है। पौष शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहा गया है। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन अर्घ्य आदि उपचारोंसे भगवान् चक्रधारी विष्णुकी पूजा करे। फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे विदा करके अपने इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ शेष अन्न स्वयं भोजन करे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करनेवाला मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगकर अन्तमें श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

द्विजश्रेष्ठ! माघके कृष्णपक्षमें 'षट्तिला' एकादशीको उपवास करके तिलोंसे ही स्नान, दान, तर्पण, हवन, भोजन एवं पूजनका काम ले। फिर द्वादशीको प्रात:काल सब उपचारोंसे भगवान् वैकुण्ठकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक व्रत करके मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगकर अन्तमें विष्णुपद प्राप्त कर लेता है। माघ शुक्ला एकादशीका नाम 'जया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल परम पुरुष भगवान् श्रीपतिकी अर्चना करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे

विदा करके शेष अन्न अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं एकाग्रचित्त होकर भोजन करे। विप्रवर! जो इस प्रकार भगवान् केशवको संतुष्ट करनेवाला व्रत करता है, वह इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। फाल्गुन कृष्णा एकादशीका नाम 'विजया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् योगीश्वरकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणासे संतुष्ट करके उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेवाला मानव इहलोकमें अभीष्ट भोगोंको भोगकर देहान्त होनेके बाद देवताओंसे सम्मानित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। द्विजोत्तम! फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'आमलकी' एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल सम्पूर्ण उपचारोंसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका भक्तिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'आमलकी' नामवाली एकादशीको विधिपूर्वक पूजन आदि करके मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। ब्रह्मन्! चैत्रके कृष्णपक्षमें 'पापमोचनी' नामवली एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रात:काल षोडशोपचारसे भगवान् गोविन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे उन्हें विदा करके स्वयं भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार इस 'पापमोचनी' का व्रत करता है, वह तेजस्वी विमानद्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार कृष्ण तथा शुक्लपक्षमें एकादशीका व्रत मोक्षदायक कहा गया है। एकादशी व्रत तीन दिनमें साध्य होनेवाला बताया गया है। वह सब व्रतोंमें उत्तम और पापोंका नाशक है, अत: उसका महान् फल जानना चाहिये। नारद! इन तीन दिनके भीतर चार समयका भोजन त्याग देना चाहिये। प्रथम और अन्तिम दिनमें एक-एक बारका और बिचले दिनमें दोनों समयका भोजन त्याज्य है। अब मैं तुम्हें इस तीन दिनके व्रतमें पालन करने योग्य नियम बतलाता हूँ। काँसका बर्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, पुनर्भोजन (दो बार भोजन) और मैथुन—दशमीके दिन इन दस वस्तुओंसे वैष्णव पुरुष दूर रहे। जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी करना, हिंसा करना, मैथुन करना, क्रोध करना और झूठ बोलना—एकादशीको ये ग्यारह बातें न करे। काँस, मांस, मदिरा, मधु, तेल, झूठ बोलना, व्यायाम करना, परदेशमें जाना, दुबारा भोजन, मैथुन, जो स्पर्श करने योग्य नहीं है उनका स्पर्श करना और मसूर खाना—द्वादशीको इन बारह वस्तुओंको न करे[1]। विप्रवर! इस प्रकार नियम करनेवाला पुरुष यदि शक्ति हो तो उपवास करे। यदि शक्ति न हो तो बुद्धिमान् पुरुष एक समय भोजन करके रहे ,किंतु रातमें भोजन न करे। अथवा अयाचित वस्तु (बिना माँगे मिली हुई चीज)-को उपयोग करे, किंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण व्रतका त्याग न करे।

---

१. अथ ते नियमान् वच्मि व्रते ह्यस्मिन् दिनत्रये। कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवांस्तथा॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने। दशम्यां दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णवः सदा॥
द्यूतक्रीडां च निद्रां च ताम्बूलं दन्तधावनम्। परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम्॥
कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्यां विवर्जयेत्। कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम्॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। अस्पृश्यस्पर्शमासूरे द्वादश्यां द्वादश त्यजेत्॥
(ना० पूर्व० १२०। ८६—९०)

# बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण

**सनातनजी कहते हैं**—अनघ! अब मैं तुमसे द्वादशीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला द्वादशीको 'मदनव्रत' का आचरण करे। सफेद चावलसे भरे हुए एक नूतन कलशकी स्थापना करे, जिसमें कोई छेद न हो। वह अनेक प्रकारके फलोंसे युक्त इक्षुदण्डसंयुक्त दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित, श्वेत चन्दनसे चर्चित, नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे सम्पन्न तथा अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुशोभित हो। उसके ऊपर गुड़सहित ताँबेका पात्र रखे। उस पात्रमें कामस्वरूप भगवान् अच्युतका गन्ध आदि उपचारोंसे पूजन करे। द्वादशीको उपवास करके दूसरे दिन प्रातः-काल पुनः भगवान्‌की पूजा करे। वहाँ चढ़ी हुई वस्तुएँ ब्राह्मणको दे दे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक द्वादशीको यह व्रत करके आचार्यको घृत-धेनुसहित सब सामग्रियोंसे युक्त शय्यादान दे। तदनन्तर वस्त्र आदिसे ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करके उन्हें सुवर्णमय कामदेव तथा दूध देनेवाली श्वेत गौ दान करे। दान करते समय यह कहे कि 'कामरूपी श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों।' जो इस विधिसे 'मदनद्वादशीव्रत'-का पालन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुकी समता प्राप्त कर लेता है। इसी तिथिको 'भर्तृद्वादशी' का व्रत बताया गया है। इसमें सुन्दर शय्या बिछाकर उसपर लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको स्थापित करके उनके ऊपर फूलोंसे मण्डप बनावे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा करे। माङ्गलिक गीत, वाद्य आदिके द्वारा रातमें जागरण करे, फिर दूसरे दिन प्रातःकाल शय्यासहित भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणाद्वारा उन्हें संतुष्ट करके विदा करे। इस तरह व्रत करनेवाले पुरुषका दाम्पत्यसुख चिरस्थायी होता है और वह सात जन्मोंतक इहलोक और परलोकके अभीष्ट भोगोंको भोगता रहता है।

वैशाख शुक्ला द्वादशीको उपवास और इन्द्रियसंयमपूर्वक गन्ध आदि उपचारोंद्वारा भक्तिभावसे भगवान् माधवकी पूजा करे। फिर तृप्तिजनक मधुर पकवान और एक घड़ा जल ब्राह्मणको विधिपूर्वक देवे। 'भगवान् माधव मुझपर प्रसन्न हों', यही उसका उद्देश्य होना चाहिये। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंके द्वारा भगवान् त्रिविक्रमकी पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणको मिष्टान्नसे भरा हुआ करवा निवेदन करे। तत्पश्चात् एक समय भोजनका व्रत करे। इस व्रतसे संतुष्ट होकर देवदेव भगवान् त्रिविक्रम जीवनमें विपुल भोग और अन्तमें मोक्ष भी देते हैं। आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदिसे पृथक्-पृथक् बारह ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मिष्टान्न भोजन करावे। फिर उनके लिये वस्त्र छड़ी, यज्ञोपवीत, अँगूठी और जलपात्र—इस वस्तुओंको भक्तिपूर्वक दान करे। 'भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों'—यही उस दानका उद्देश्य होना चाहिये। श्रावण शुक्ला द्वादशीको व्रती पुरुष भगवत्परायण हो गन्ध आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीधरकी पूजा करे। फिर उत्तम ब्राह्मणोंको दही-भात भोजन कराकर चाँदीकी दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे। मन-ही-मन यह भावना करे कि 'मेरे

इस व्रतसे देवेश्वर भगवान् श्रीधर प्रसन्न हों।' भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको व्रती पुरुष भगवान् वामनकी पूजा करके उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। तत्पश्चात् स्वर्णमयी दक्षिणा दे। वह भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको करनेवाला होता है। आश्विन शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् पद्मनाभकी पूजा करे और उनके आगे ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे। साथ ही वस्त्र और सुवर्ण-दक्षिणा दे। द्विजोत्तम! इस व्रतसे संतुष्ट होकर भगवान् पद्मनाभ श्वेतद्वीपकी प्राप्ति कराते हैं और इहलोकमें भी मनोवाञ्छित भोग प्रदान करते हैं। कार्तिक मासके कृष्णपक्षमें 'गोवत्सद्वादशी' का व्रत होता है। उसमें बछड़ेसहित गौकी आकृति लिखकर सुगन्धित चन्दन आदिके द्वारा तथा पुष्पमालाओंसे उसकी पूजा करे। फिर ताम्रपात्रमें फूल, अक्षत और तिल रखकर उन सबके द्वारा विधिपूर्वक अर्घ्य दान करे। नारद! निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसके चरणोंमें अर्घ्य देना चाहिये—

**क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते।**
**सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते॥**
**मातर्मातर्गवां मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**

(ना० पूर्व० १२१। ३०-३१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई, सर्वदेवभूषिता, देव-दानववन्दिता, सम्पूर्ण देवस्वरूपा देवि! तुम्हें नमस्कार है। मातः! गोमातः! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

तदनन्तर उड़द आदिसे बने हुए बड़े निवेदन करे। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार दस, पाँच या एक बड़ा अर्पण करना चाहिये। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

**सुरभे त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।**
**सर्वदेवमयि ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस॥**
**सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते।**
**मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥**

(ना० पूर्व० १२१। ३२—३४)

'सुरभी! तुम सम्पूर्ण जगत्‌की माता हो और सदा भगवान् विष्णुके धाममें निवास करती हो। सर्वदेवमयी देवि! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो। देवि! तुम सर्वदेवस्वरूपा हो। सम्पूर्ण देवता तुम्हें विभूषित करते हैं। माता नन्दिनी! मेरी अभिलाषा सफल करो।'

द्विजोत्तम! उस दिन तेलका पका हुआ और बटलोईका पका हुआ अन्न न खाय। गायका दूध, दही, घी और तक्र भी त्याग दे। ब्रह्मन्! कार्तिक शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त हो भगवान् दामोदरकी पूजा करे और उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको पकवान भोजन करावे। तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ोंको वस्त्रसे आच्छादित और पूजित करके सुपारी, लड्डू और सुवर्णके साथ उन सबको प्रसन्नतापूर्वक अर्पण करे। ऐसा करनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त और सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता होता है और शरीरका अन्त होनेपर वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको परम उत्तम 'साध्य-

व्रत' का अनुष्ठान करना चाहिये। मनोभाव, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, चिति, हय, नय, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्यगण कहे गये हैं[1]। चावलोंपर इनका आवाहन करके गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'भगवान् नारायण प्रसन्न हों', इस भावनासे बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें उत्तम दक्षिणा दे विदा करे। उसी दिन 'द्वादशादित्य' नामक व्रत भी विख्यात है। उस दिन बुद्धिमान् पुरुष बारह आदित्योंकी पूजा करे। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता और विष्णु—ये बारह आदित्य बताये गये हैं।[2] प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको यत्नपूर्वक बारह आदित्योंकी पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत करे। व्रतके अन्तमें सोनेकी बारह प्रतिमाएँ बनवाये और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक मिष्टान्न भोजन करावे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक प्रतिमा दे। इस प्रकार द्वादशादित्य नामक व्रत करके मनुष्य सूर्यलोकमें जा वहाँके भोगोंका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् पृथ्वीपर धर्मात्मा मनुष्य होता है। मनुष्ययोनिमें उसे रोग नहीं होते। उस व्रतके पुण्यसे वह पुनः उसी व्रतको पाता है और पुनः उसके पुण्यसे सूर्यमण्डलको भेदकर निरञ्जन, निराकार एवं निर्द्वन्द्व ब्रह्मको प्राप्त होता है। द्विजोत्तम! उक्त तिथिको ही 'अखण्ड' नामक व्रत कहा गया है। उसमें भगवान् जनार्दनकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसकी पूजा करके भगवान्‌के आगे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। प्रत्येक मासकी द्वादशीको ऐसा करके स्वयं रातमें भोजन करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे। तत्पश्चात् वर्ष पूरा होनेपर उस स्वर्ण-मूर्तिका विधिपूर्वक पूजन करके दूध देनेवाली गायके साथ उसका आचार्यको दान करे। तदनन्तर बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको खाँड और खीर भोजन कराकर उन्हें बारह सुवर्णखण्डकी दक्षिणा दे नमस्कार करे। इस प्रकार व्रत पूरा करके जो भगवान् जनार्दनको प्रसन्न करता है, वह सुवर्णमय विमानसे श्रीविष्णुके परम धाममें जाता है।

पौष मासके कृष्णपक्षकी द्वादशीको 'रूप-व्रत' बताया गया है। ब्रह्मन्! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह दशमीको विधिपूर्वक स्नान करके सफेद या किसी एक रंगवाली गायके गोबरको धरतीपर गिरनेसे पहले आकाशमेंसे ही ले ले। उस गोबरसे एक सौ आठ पिण्ड बनाकर उन्हें ताँबे या मिट्टीके पात्रमें रखकर धूपमें सुखा ले। फिर एकादशीको उपवास करके भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाका विधिपूर्वक पूजन और रात्रिमें जागरण करे। सुन्दर मङ्गलमय गीतवाद्य, स्तोत्र-पाठ और जप आदिके द्वारा जागरणका कार्य सफल बनावे। तत्पश्चात् प्रातः-काल जलसे भरे हुए कलशपर तिलसे भरा पात्र रखकर उसके ऊपर उस स्वर्णमयी प्रतिमाको रखे और विभिन्न उपचारोंसे उसकी पूजा करे। इसके बाद दो काष्ठोंके रगड़ने आदिके द्वारा नूतन अग्नि उत्पन्न करके उसकी पूजा करे और विद्वान् पुरुष उस प्रज्वलित अग्निमें तिल और घीसहित एक-एक गोमय-पिण्डका विष्णुसम्बन्धी

१. मनोभवस्तथा प्राणो नरोऽपानश्च वीर्यवान्। चितिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा॥
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः।
(ना० पूर्व० १२१। ५१-५२)

२. धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोंऽशो वरुणो भगः। त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश ईरिताः॥
(ना० पूर्व० १२१। ५५-५६)

द्वादशाक्षर[1]-मन्त्रसे होम करे। तत्पश्चात् पूर्णाहुति करके प्रेमपूर्ण हृदयसे प्रसन्नतापूर्वक एक सौ आठ ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। फिर कलशसहित वह प्रतिमा आचार्यको अर्पित करे। तदनन्तर दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। पुरुष हो या स्त्री, इस व्रतका आदरपूर्वक पालन करके वह रूप और सौभाग्य प्राप्त कर लेती है।

माघ शुक्ला द्वादशीको शालग्रामशिलाकी विधिपूर्वक भक्तिभावसे पूजा करके उसके मुख्यभागमें सुवर्ण रखे। फिर उसे चाँदीके पात्रमें रखकर दो श्वेत वस्त्रोंसे ढक दे। तत्पश्चात् वेदवेत्ता ब्राह्मणको उसका दान दे। दान देनेके पश्चात् उस ब्राह्मणको खाँड़ और घीके साथ हितकर खीरका भोजन करावे, यह करके स्वयं एक समय भोजनका व्रत करते हुए भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहे। ऐसा करनेवाला पुरुष यहाँ मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुधाम प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मन्! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीहरिकी सुवर्णमयी प्रतिमाका गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करके उसे वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान कर दे। फिर बारह ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। उसके बाद स्वयं भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। त्रिस्पृशा, उन्मीलनी, पक्षवर्धिनी, वञ्जुली, जया, विजया, जयन्ती तथा अपराजिता—ये आठ प्रकारकी द्वादशी तिथियाँ सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। इनमें सदा उपवासपूर्वक व्रत रहना चाहिये।

**श्रीनारदजीने पूछा—** ब्रह्मन्! इन सब द्वादशियोंका लक्षण कैसा है? और उनका फल कैसा होता है, वह सब मुझे बताइये। इसके सिवा अन्य पुण्यदायक तिथियोंका भी परिचय दीजिये।

**सूतजी कहते हैं—** महर्षियो! देवर्षि नारदने द्विजश्रेष्ठ सनातनजीसे जब इस प्रकार प्रश्न किया तो सनातन मुनिने अपने भाई महाभागवत नारदजीकी प्रशंसा करके कहा।

**सनातनजी बोले—** भैया! तुम तो साधु पुरुषोंके संशयका निवारण करनेवाले हो। तुमने यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। मैं तुम्हें महाद्वादशियोंके पृथक्-पृथक् लक्षण और फल बतलाता हूँ। जिस दिन एकादशी सूर्योदयसे पहले—अरुणोदयकालमें ही निवृत्त हो गयी हो, (दिनभर द्वादशी हो और रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी आ गयी हो) उस दिन 'त्रिस्पृशा' नामवाली द्वादशी होती है। उसका महान् फल होता है। नारद! जो मनुष्य उसमें उपवास करके भगवान् गोविन्दका पूजन करता है, वह निश्चय ही एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी तिथि दशमीसे विद्ध हो (और एकादशी पूरे दिन रहकर दूसरे दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो) तो उस प्रथम दिनकी एकादशीको छोड़कर दूसरे दिन महाद्वादशीको उपवास करे (उसे 'उन्मीलनी' द्वादशी कहते हैं)। उस उन्मीलनी व्रतमें उत्तम पूजाकी विधिसे भगवान् वासुदेवका यजन करके मनुष्य एक सहस्र राजसूय-यज्ञका फल पाता है। जब सूर्योदयकालमें दशमी एकादशीका स्पर्श करती हो (और द्वादशीकी वृद्धि हुई हो) तो उस एकादशीको त्यागकर 'वञ्जुली' नामवाली उस महाद्वादशीको ही सदा उपवास करना चाहिये। उसमें सबको सदा अभयदान करनेवाले परम पुरुष संकर्षणदेवका गन्ध आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे। यह महाद्वादशी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाली, सब पापोंको हर लेनेवाली तथा समस्त सम्पदाओंको देनेवाली कही गयी है। विप्रवर! जब पूर्णिमा अथवा अमावास्या

१. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

नामकी तिथियाँ बढ़ जाती हैं, तो उस पक्षकी द्वादशीका नाम 'पक्षवर्धिनी' होता है, जो महान् फल देनेवाली है। उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा पुत्र और पौत्रोंको बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् प्रद्युम्नका पूजन करना चाहिये। जब शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथि मघा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसका नाम 'जया' होता है। वह सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाली है। उसमें समस्त कामनाओंके दाता और मनुष्योंको सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् अनिरुद्धकी आराधना करनी चाहिये। जब शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो वह 'विजया' नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें सदा समस्त भोगोंके आश्रय तथा सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करनेवाले भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। विप्रवर! 'विजया'में उपवास करके मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाता है। जब शुक्लपक्षमें द्वादशी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त होती है, तब वह महापुण्यमयी 'जयन्ती' नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले भगवान् वामनकी अर्चना करनी चाहिये। यह तिथि उपवास करनेपर सम्पूर्ण व्रतोंका फल देती है, समस्त दानोंका फल प्रस्तुत करती है और भोग तथा मोक्ष देनेवाली होती है। जब शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे 'अपराजिता' कहा गया है। वह सम्पूर्ण ज्ञान देनेवाली है। उसमें संसार-बन्धनका नाश करनेवाले, ज्ञानके समुद्र तथा रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी आराधना करनी चाहिये। उस तिथिको उपवास करके ब्राह्मणभोजन करानेवाला मनुष्य उस व्रतके पुण्यसे ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

जब आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको अनुराधा नक्षत्र हो, तब दो व्रत करने चाहिये। यहाँ एक ही देवता है, इसलिये दो व्रत करनेमें दोष नहीं है। जब भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका योग हो और कार्तिक शुक्ला द्वादशीको रेवती नक्षत्रका संयोग हो तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन व्रत रहने चाहिये। विप्रवर! इनके सिवा अन्यत्र द्वादशीको एक समय भोजन करके व्रत रहना चाहिये। यह व्रत स्वभावसे ही सब पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। द्वादशीसहित एकादशीका व्रत नित्य माना गया है, अतः यहाँ उसका उद्यापन नहीं कहा गया। इसे जीवनपर्यन्त करते रहना चाहिये।

## त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—नारद! अब मैं तुम्हें त्रयोदशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर सौभाग्यशाली होता है। चैत्र कृष्णपक्षकी त्रयोदशी शनिवारसे युक्त हो तो 'महावारुणी' मानी गयी है। यदि उसमें गङ्गा-स्नानका अवसर मिले तो वह कोटि सूर्यग्रहणोंसे अधिक फल देनेवाली है। चैत्रके कृष्णपक्षमें त्रयोदशीको शुभ योग, शतभिषा नक्षत्र और शनिवारका योग हो तो वह 'महामहावारुणी'-के नामसे विख्यात होती है। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको 'दौर्भाग्यशमनव्रत' होता है। उस दिन नदीके जलमें स्नान करके पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए सफेद मदार, आक और लाल कनेरकी पूजा करे। उस समय आकाशमें सूर्यकी ओर देखकर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

मन्दारकरवीरार्का भवन्तो भास्करांशजाः।
पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः॥

(ना० पूर्व० १२२। २०-२१)

'मदार! कनेर! और आक! आप लोग भगवान् भास्करके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। अतः पूजित होकर मेरे दुर्भाग्यका नाश करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक एक-एक वर्षतक इन तीनों वृक्षोंकी पूजा करता है, उसका दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है। आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशीको एक समय भोजनका व्रत करे। भगवती पार्वती और भगवान् शङ्कर—इन दोनों जगदीश्वरोंकी यथाशक्ति सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करे। भगवती उमा सिंहपर बैठी हों और

भगवान् शङ्कर वृषभपर। नारद! इन दोनों प्रतिमाओंको देवमन्दिर, गोशाला अथवा ब्राह्मणके घरमें वेदमन्त्रद्वारा स्थापित करके लगातार पाँच दिनतक नित्य पूजन तथा एक समय भोजनके व्रतका पालन करे। तदनन्तर अन्तिम दिन प्रातःकाल स्नान करके पुनः उन दोनों प्रतिमाओंकी पूजा करे। फिर वेद-वेदाङ्गके ज्ञानसे सुशोभित ब्राह्मणको वे दोनों विग्रह समर्पित कर दे। पाँच वर्षोंतक प्रतिवर्ष इसी प्रकार करना चाहिये। पाँचवाँ वर्ष बीतनेपर दूध देनेवाली दो गौओंके साथ उन दोनों प्रतिमाओंका दान करे। स्त्री हो या पुरुष—जो इस प्रकार इस शुभ व्रतका पालन करता है, वह सात जन्मोंतक दाम्पत्यसुखसे वञ्चित नहीं होता—उसका दाम्पत्य-सम्बन्ध बीचमें खण्डित नहीं होता।

भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीको 'गोत्रिरात्रव्रत' बताया गया है। उस दिन भगवान् लक्ष्मीनारायणकी सोने या चाँदीकी प्रतिमा बनवाकर उसे पञ्चामृतसे स्नान करावे। तत्पश्चात् शुभ अष्टदल मण्डलमें पीठपर उस भगवद्विग्रहको स्थापित करके सुन्दर वस्त्र चढ़ाकर गन्ध आदिसे उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अन्न और जलसहित घटदान करे। नारद! इस प्रकार तीन दिनतक सब विधिका पालन करके व्रतके अन्तमें गौका पूजन करे और भलीभाँति धनकी दक्षिणा देकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे गौको नमस्कारपूर्वक दान दे—

**पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।**
**तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः॥**

(ना० पूर्व० १२२। ३६-३७)

'जब क्षीरसमुद्रका मन्थन होने लगा, उस समय उससे पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं। उनके मध्यमें जो नन्दा नामवाली गौ है, उस धेनुको बारम्बार नमस्कार है।'

तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे गायकी प्रदक्षिणा करके उसे ब्राह्मणको दान दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

**गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।**
**गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥**

(ना० पूर्व० १२२। ३८)

'गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे पीछे रहें, गौएँ मेरे बगलमें रहें और मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणदम्पतिका पूर्णतः सत्कार करके उन्हें भोजन करावे और उन्हें आदरपूर्वक लक्ष्मी-

नारायणकी प्रतिमा दान करे। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसीको वह 'गोत्रिरात्रव्रत' से पा लेता है। आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको तीन राततक 'अशोकव्रत' करे। उस दिन नारी उपवासपरायण हो अशोककी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाकर शास्त्रीय विधिसे उसकी प्रतिदिन पूजा और आदरपूर्वक एक सौ आठ परिक्रमा करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

**हरेण निर्मितः पूर्वं त्वमशोक कृपालुना।**
**लोकोपकारकरणस्तत्प्रसीद शिवप्रिय॥**

(ना० पूर्व० १२२। ४३)

'अशोक! तुम्हें पूर्वकालमें परम कृपालु भगवान् शङ्करने उत्पन्न किया है। तुम सम्पूर्ण जगत्‌का उपकार करनेवाले हो; अतः शिवप्रिय अशोक! तुम मुझपर प्रसन्न होओ।'

तदनन्तर तीसरे दिन, उस अशोकवृक्षमें भगवान् शङ्करकी विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणको भोजन करावे और उसे अशोक-प्रतिमाका दान करे। इस प्रकार व्रत करनेवाली नारी कभी वैधव्यका कष्ट नहीं पाती। वह पुत्र-पौत्र आदिके साथ रहकर अपने पतिकी अत्यन्त प्रियतमा होती है। कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको एकाग्रचित्त हो एक समय भोजनका व्रत करे। प्रदोषकालमें तेलका दीपक जलाकर उसकी यत्नपूर्वक पूजा करे और घरके द्वारपर बाहरके भागमें उस दीपकको इस उद्देश्यसे रखे कि इसके दानसे यमराज मुझपर प्रसन्न हों। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर मनुष्यको यमराजकी पीड़ा नहीं प्राप्त होती। द्विजोत्तम! कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीको मनुष्य एक समय भोजन करके व्रत रखे। प्रदोषकालमें पुनः स्नान करके मौन और एकाग्रचित्त हो बत्तीस दीपकोंकी पङ्क्तिसे भगवान् शिवको आलोकित करे। घीसे दीपकोंको जलाये और गन्ध आदिसे भगवान् शिवकी पूजा करे। फिर नाना प्रकारके फलों और नैवेद्योंद्वारा उन्हें संतुष्ट करे। तदनन्तर निम्नलिखित नामोंसे देवेश्वर शिवकी स्तुति करे—

रुद्र, भीम, नीलकण्ठ और वेधा (स्रष्टा)-को नमस्कार है। कपर्दी (जटा-जूटधारी), सुरेश तथा व्योमकेशको नमस्कार है। वृषध्वज, सोम तथा सोमनाथको नमस्कार है। दिगम्बर, भृङ्ग, उमाकान्त और वर्द्धी (वृद्धि करनेवाले) शिवको नमस्कार है। तपोमय, व्यास और शिपिविष्ट (तेजस्वी) भगवान् शङ्करको नमस्कार है। व्यालप्रिय (सर्पोंको पसंद करनेवाले), व्याल (सर्पस्वरूप) और व्यालपति शिवको नमस्कार है। महीधर (पर्वतरूप), व्योम (आकाशस्वरूप) और पशुपतिको नमस्कार है। त्रिपुरहन्ता, सिंह, शार्दूल तथा वृषभको नमस्कार है। मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, वेदगीत, गुप्त और वेदगुह्य शिवको नमस्कार है। दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थ, महीयान्, जगदाधार और व्योमस्वरूप शिवको नमस्कार है। कल्याणस्वरूप, विशिष्ट-पुरुष, शिष्ट (साधु-महात्मा), परमात्मा, गजकृत्तिधर (वस्त्ररूपसे हाथीका चमड़ा धारण करनेवाले), अन्धकासुरहन्ता भगवान् शिवको नमस्कार है। नील, लोहित एवं शुक्ल वर्णवाले, चण्डमुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देवस्वरूप, दक्षयज्ञनाशक तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है। महेश! आपको नमस्कार है। महादेव! सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। आप तीनों वेदोंके आश्रय हैं। वेदाङ्गस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। आप अर्थ हैं, अर्थस्वरूप हैं और परमार्थ हैं, आपको नमस्कार है। विश्वरूप, विश्वमय तथा विश्वनाथ भगवान् शिवको नमस्कार है। जो सबका कल्याण करनेवाले शङ्कर हैं, कालस्वरूप हैं तथा

कालके कला-काष्ठा आदि छोटे-छोटे अवयवरूप हैं; जिनका कोई रूप नहीं है, जिनके विविध रूप हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। प्रभो! आप श्मशानमें निवास करनेवाले हैं, आप चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आपके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित है, आप भयंकर भूमिमें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आप दुर्ग (कठिनतासे प्राप्त होने योग्य), दुर्गपार (कठिनाइयोंसे पार लगानेवाले), दुर्गावयवसाक्षी (पार्वतीजीके अङ्ग-प्रत्यङ्गका दर्शन करनेवाले), लिङ्गरूप, लिङ्गमय और लिङ्गोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रभावरूप हैं। प्रभावरूप प्रयोजनके साधक हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप कारणोंके भी कारण, मृत्युञ्जय तथा स्वयम्भूस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। शितिकण्ठ! आप तेजकी निधि हैं। गौरीजीके साथ नित्य संयुक्त रहनेवाले और मङ्गलके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है।

विप्रवर! पिनाकधारी महादेवजीके गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले इन नामोंका पाठ करके महादेवजीकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य भगवान्‌के निज धाममें जाता है। ब्रह्मन्! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीके प्रसादसे इहलोकके सम्पूर्ण भोग भोगकर अन्तमें शिवधाम प्राप्त कर लेता है। पौष शुक्ला त्रयोदशीको अच्युत श्रीहरिका पूजन करके सब मनोरथोंकी सिद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ पात्र दान करे। ब्रह्मन्! माघ शुक्ला त्रयोदशीसे लेकर तीन दिनतक 'माघ-स्नान' का व्रत होता है, जो नाना प्रकारके मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। माघ मासमें प्रयागमें तीन दिन स्नान करनेवाले पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह एक हजार अश्वमेध-यज्ञ करनेसे भी इस पृथ्वीपर सुलभ नहीं होता। वहाँ किया हुआ स्नान, जप, होम और दान अनन्तगुना अथवा अक्षय हो जाता है। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको उपवास करके भगवान् जगन्नाथको प्रणाम करे। तत्पश्चात् 'धनदव्रत' प्रारम्भ करे। नाना प्रकारके रंगोंसे एक पट्टपर यक्षपति महाराज कुबेरकी आकृति अङ्कित कर ले और भक्तिभावसे गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे।

द्विजोत्तम! इस प्रकार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको मनुष्य कुबेरकी पूजा करे। उस दिन वह उपवास करके रहे या एक समय भोजन करे। तदनन्तर एक वर्षमें व्रतकी समाप्ति होनेपर पुनः सुवर्णमयी निधियोंके साथ धनाध्यक्ष कुबेरकी भी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर पञ्चामृत आदि स्नानों, षोडश उपचारों और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भक्ति एवं एकाग्रताके साथ पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्र, माला, गन्ध और आभूषणोंसे बछड़ेसहित शुभ गौको अलंकृत करके वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये विधिपूर्वक दान करे। फिर बारह या तेरह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर वस्त्र आदिसे आचार्यकी पूजा करके पूर्वोक्त प्रतिमा उन्हें अर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष इष्ट-बन्धुओंके साथ एकाग्रचित्त हो स्वयं भोजन करे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत पूर्ण करनेपर निर्धन मनुष्य धन पाकर इस पृथ्वीपर दूसरे कुबेरकी भाँति विख्यात हो आनन्दका अनुभव करता है।

# वर्षभरके चतुर्दशीव्रतोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—नारद! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्दशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको कुंकुम, अगुरु, चन्दन, गन्ध आदि उपचार, वस्त्र तथा मणियोंद्वारा भगवान् शिवकी बड़ी भारी पूजा करनी चाहिये। चँदोवा, ध्वज एवं छत्र आदि देकर मातृकाओंका भी पूजन करना चाहिये। विप्रवर! जो उपवास अथवा एक समय भोजन करके इस प्रकार पूजन करता है, वह मनुष्य इस पृथ्वीपर अश्वमेध-यज्ञसे भी अधिक पुण्यलाभ करता है। इसी तिथिको गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा दमनक-पूजन करके पूर्णिमाको कल्याणस्वरूप भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित करना चाहिये। वैशाख कृष्णा चतुर्दशीको उपवास करके प्रदोषकालमें स्नान करे और श्वेत वस्त्र धारण करके विद्वान् पुरुष गन्ध आदि उपचारों तथा बिल्वपत्रोंसे शिवलिङ्गकी पूजा करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर उसे भोजन करानेके बाद दूसरे दिन स्वयं भोजन करे।

द्विजश्रेष्ठ! इसी प्रकार समस्त कृष्णा चतुर्दशियोंमें धन और संतानकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यह शिवसम्बन्धी व्रत करना चाहिये। वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको 'श्रीनृसिंहव्रत' का अनुष्ठान करे। यदि शक्ति हो तो उपवासपूर्वक व्रत करना चाहिये और यदि शक्ति न हो तो एक समय भोजन करके करना चाहिये। सायंकालमें दैत्यसूदन भगवान् नृसिंहको पञ्चामृत आदिसे स्नान कराकर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना करे—

**तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन।**
**वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते॥**

(ना० पूर्व० १२३। ११)

'दिव्यसिंह! आपके अयाल तपाये हुए सोनेके समान दमक रहे हैं, नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान दहक रहे हैं और आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, आपको नमस्कार है।'

देवेश्वर भगवान् नृसिंहसे इस प्रकार प्रार्थना करके व्रती पुरुष मिट्टीकी वेदीपर सोये। इन्द्रियों और क्रोधको काबूमें रखे और सब प्रकारके भोगोंसे अलग रहे। जो इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें विधिपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त कर लेता है। मुनीश्वर! इसी तिथिको ॐकारेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ ॐकारेश्वरके पूजनका अवसर दुर्लभ है। उनका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला है। ॐकारेश्वरका पूजन, ध्यान, जप और दर्शन जो भी हो जाय, वह मनुष्योंके लिये ज्ञान और मोक्ष देनेवाला बताया गया है। इस तिथिको पापनाशक 'लिङ्गव्रत' भी करना चाहिये। आटेका शिवलिङ्ग बनाकर उसे पञ्चामृतसे स्नान

करावे। फिर उसपर कुंकुमका लेप करे और वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप तथा नैवेद्यके द्वारा उसकी पूजा करे। जो इस प्रकार सब मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाले पिष्टमय शिवलिङ्गका पूजन करता है, वह महादेवजीकी कृपासे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशीको दिनमें पञ्चाग्निका सेवन करे और सायंकाल सुवर्णमयी धेनुका दान करे। यह 'रुद्र-व्रत' कहा गया है। जो मनुष्य आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीको देश-कालमें उत्पन्न हुए फूलोंद्वारा भगवान् शिवका पूजन करता है, वह समस्त सम्पदाओंको प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ! श्रावण शुक्ला चतुर्दशीको अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार पवित्रारोपण करना चाहिये। पहले पवित्रकको सौ बार अभिमन्त्रित करके देवीको समर्पित करे। स्त्री हो या पुरुष यदि वह पवित्रारोपण करता है तो महादेवजीके प्रसादसे भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको उत्तम 'अनन्त-व्रत'का पालन करना चाहिये। इसमें एक समय भोजन किया जाता है। एक सेर गेहूँका आटा लेकर उसे शक्कर और घीमें मिलाकर पकावे—पूआ तैयार करे और वह भगवान् अनन्तको अर्पण करे। इससे पहले कपास अथवा रेशमके सुन्दर सूतको चौदह गाँठोंसे युक्त करके उसका गन्ध आदि उपचारोंसे पूजन करे। फिर पुराने सूतको बाँहमेंसे उतारकर उसे किसी जलाशयमें डाल दे और नये अनन्त सूत्रको नारी बायीं भुजामें और पुरुष दायीं भुजामें बाँध ले। आटेका पूआ या पिट्ठी पकाकर दक्षिणासहित उसका दान करे। फिर स्वयं भी परिमित मात्रामें उसे भोजन करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे। मुने! रँगे हुए चावलोंसे सुन्दर सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसमें ताँबेका कलश स्थापित करे। उस कलशके ऊपर रेशमी पीताम्बरसे आच्छादित भगवान् अनन्तकी सुन्दर सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे और उसका विधिपूर्वक यजन करे। इसके सिवा गणेश, मातृका, नवग्रह तथा लोकपालोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करे। फिर हविष्यसे होम करके पूर्णाहुति दे। द्विजोत्तम! तत्पश्चात् आवश्यक सामग्रियोंसहित शय्या, दूध देनेवाली गाय तथा अनन्तजीकी प्रतिमा आचार्यको भक्तिपूर्वक अर्पण करे और दूसरे चौदह ब्राह्मणोंको मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें दक्षिणाद्वारा संतुष्ट करे। इस प्रकार किये गये 'अनन्तव्रत'का जो आदरपूर्वक प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वह भी भगवान् अनन्तके प्रसादसे भोग और मोक्षका भागी होता है।

आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, हिंसक जीव तथा वज्रपात आदिके द्वारा मरे हुए मनुष्यों तथा ब्रह्महत्यारे पुरुषोंके लिये एकोद्दिष्टकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये और ब्राह्मणवर्गको मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये। उस दिन तर्पण, गोग्रास, कुक्कुरबलि और काकबलि आदि देकर आचमन करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार दक्षिणा देकर श्राद्ध करता है, वह पितरोंका उद्धार करके सनातन देवलोकमें जाता है। द्विजश्रेष्ठ! आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको धर्मराजकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करे और ब्राह्मणको भोजन कराकर उसे वह प्रतिमा दान कर दे। नारद! इस पृथ्वीपर धर्मराज उस दाता पुरुषकी रक्षा करते हैं। जो इस प्रकार धर्मराजकी प्रतिमाका उत्तम दान करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर धर्मराजकी आज्ञासे स्वर्गलोकमें जाता है। कार्तिक कृष्णा

चतुर्दशीको सबेरे चन्द्रोदय होनेपर शरीरमें तेल और उबटन लगाकर स्नान करे। स्नानके पश्चात् वह धर्मराजकी पूजा करे। ऐसा करनेसे उस मनुष्यको नरकसे अभय प्राप्त होता है। प्रदोषकालमें तेलके दीपक जलाकर यमराजकी प्रसन्नताके लिये चौराहेपर या घरसे बाहरके प्रदेशमें एकाग्रचित्त हो दीपदान करे। हेमलम्ब नामक संवत्सरमें श्रीसम्पन्न कार्तिक मास आनेपर शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अरुणोदयकालमें भगवान् विश्वनाथजीने अन्य देवताओंके साथ मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नान करके भस्मसे त्रिपुण्ड्र तिलक लगाया और स्वयं अपने-आपकी पूजा करके 'पाशुपत-व्रत' का पालन किया था; अतः वहाँ गन्ध आदिके द्वारा शिवलिङ्गकी महापूजा करनी चाहिये। द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, भाँति-भाँतिके फल, मीठे पकवान एवं नाना प्रकारके नैवेद्योंद्वारा उस शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। नारद! ऐसा करके भगवान् विश्वनाथके संतोषके लिये जो एक समय भोजनका व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त करता है। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन 'ब्रह्मकूर्चव्रत' भी करना चाहिये। दिनमें उपवास करके रातमें पञ्चगव्य पान करे और जितेन्द्रिय रहे। कपिला गायका मूत्र, काली गौका गोबर, सफेद गौका दूध, लाल गायका दही और कबरी गायका घी लेकर एकमें मिला दे। अन्तमें कुशोदक मिलावे (यही 'पञ्चगव्य' एवं 'ब्रह्मकूर्च' है, जिसको व्रतके दिन उपवास करके रातमें पीया जाता है)। तदनन्तर प्रातःकाल कुशयुक्त जलसे स्नान करके देवताओंका तर्पण करे और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करके स्वयं मौन होकर भोजन करे। यह 'ब्रह्मकूर्चव्रत' सब पातकोंका नाश करनेवाला है। बाल्यावस्था, कुमारावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो पाप किया गया है, वह 'ब्रह्मकूर्चव्रत' से तत्काल नष्ट हो जाता है। नारद! उसी दिन 'पाषाणव्रत' भी बताया गया है। उसका परिचय सुनो, दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करे। गन्ध आदिसे गौरी देवीकी पूजा करे और उन्हें घीमें पकायी हुई पाषाणके आकारकी पिट्ठी अर्पण करे। (उसी प्रसादको स्वयं भी ग्रहण करे।) द्विजश्रेष्ठ! शास्त्रोक्त विधिसे इस व्रतका आचरण करके मनुष्य ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूप प्राप्त करता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको शिवजीका व्रत किया जाता है। इसमें पहले दिन एक समय भोजन करना चाहिये और व्रतके दिन निराहार रहकर सुवर्णमय वृषकी पूजा करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। तदनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानके पश्चात् कमलके फूल, गन्ध, माला और अनुलेपन आदिके द्वारा उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे। विप्रवर! यह शिवव्रत जो करते हैं, जो इसका उपदेश देते हैं, जो इसमें सहायक होते या अनुमोदन करते हैं, उन सबको यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। पौष शुक्ला चतुर्दशीको 'विरूपाक्षव्रत' बताया गया है। उस दिन यह चिन्तन करके कि 'मैं भगवान् कपर्दीश्वरका सामीप्य प्राप्त करूँगा' अगाध जलमें स्नान करे। विप्रवर! स्नानके पश्चात् गन्ध, माल्य, नमस्कार, धूप, दीप तथा अन्न-सम्पत्तिके द्वारा विरूपाक्ष शिवका पूजन करे। वहाँ चढ़ी हुई सब वस्तुएँ ब्राह्मणको देकर मनुष्य देवलोकमें देवताकी भाँति आनन्दका अनुभव करता है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको 'यमतर्पण' बताया गया है। उस दिन सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये शास्त्रोक्त चौदह नामोंसे यमका तर्पण करे। तिल, कुशा और जलसे तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोंको

खिचड़ी खिलावे और स्वयं भी मौन होकर वही भोजन करे। द्विजश्रेष्ठ! फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीको 'शिवरात्रिव्रत' बताया गया है। उसमें दिन-रात निर्जल उपवास करके एकाग्रचित्त हो गन्ध आदि उपचारोंसे तथा जल, बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, स्तोत्रपाठ और जप आदिसे किसी स्वयम्भू आदि लिङ्गकी अथवा पार्थिक लिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। फिर दूसरे दिन उन्हीं उपचारोंसे पुनः पूजन करके ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीकी कृपासे देवताओंद्वारा सम्मानित हो दिव्य भोग प्राप्त करता है। फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीको भक्तिपूर्वक गन्ध आदि उपचारोंसे दुर्गाजीकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं एक समय भोजन करके रहे। नारद! जो इस प्रकार दुर्गाका व्रत करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको उपवास करके केदारतीर्थका जल पीनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण चतुर्दशीव्रतोंके उद्यापनकी सामान्य विधि बतायी जाती है। इसमें चौदह कलश रखे जाते हैं और सबके साथ सुपारी, अक्षत, मोदक, वस्त्र और दक्षिणा-द्रव्य होते हैं। घट ताँबेके हों या मिट्टीके, नये हों। टूटे-फूटे नहीं होने चाहिये। बाँसके चौदह डंडों और उतने ही पवित्रक, आसन, पात्र तथा यज्ञोपवीतोंकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। शेष बातें उन-उन व्रतोंके साथ जैसी कही गयी हैं, उसी प्रकार करे।

## बारह महीनोंकी पूर्णिमा तथा अमावास्यासे सम्बन्ध रखनेवाले व्रतों तथा सत्कर्मोंकी विधि और महिमा

**सनातनजी कहते हैं**—नारद! सुनो, अब मैं तुमसे पूर्णिमाके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष सुख और संतति प्राप्त करते हैं। विप्रवर! चैत्रकी पूर्णिमा मन्वादि तिथि कही गयी है। उसमें चन्द्रमाकी प्रसन्नताके लिये कच्चे अन्नसहित जलसे भरा हुआ घट दान करना चाहिये। वैशाखकी पूर्णिमाको ब्राह्मणको जो-जो द्रव्य दिया जाता है, वह सब दाताको निश्चितरूपसे प्राप्त होता है। उस दिन 'धर्मराजव्रत' कहा गया है। वैशाखकी पूर्णिमाको श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये जलसे भरा हुआ घट और पकवान दान करना चाहिये। वह गोदानका फल देनेवाला होता है और उससे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। जो स्वच्छ जलसे भरे हुए कलशोंका श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णके साथ दान करता है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको 'वट-सावित्री'का व्रत होता है। उस दिन स्त्री उपवास करके अमृतके समान मधुर जलसे वटवृक्षको सींचे और सूतसे उस वृक्षको एक सौ आठ बार

प्रदक्षिणापूर्वक लपेटे। तदनन्तर परम पतिव्रता सावित्रीदेवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

**जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते।**
**पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः॥**

(ना० पूर्व० १२४। ११)

'जगन्माता सावित्री! तुम सम्पूर्ण जगत्‌के लिये पूजनीय तथा पतिको ही इष्टदेव माननेवाली पतिव्रता हो। वटवृक्षपर निवास करनेवाली देवि! तुम ऐसी कृपा करो, जिससे मेरा अपने पतिके साथ नित्यसंयोग बना रहे। कभी वियोग न हो। तुम्हें मेरा सादर नमस्कार है।'

जो नारी इस प्रकार प्रार्थना करके दूसरे दिन सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती है, वह सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। आषाढ़की पूर्णिमाको 'गोपद्मव्रत'का विधान है। उस दिन स्नान करके भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान्‌के चार भुजाएँ हैं। उनका शरीर विशाल है। उनकी अङ्गकान्ति जाम्बूनद सुवर्णके समान श्याम है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी तथा गरुड़ उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा देवता, मुनि, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी सेवामें लगे हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा आचार्यको संतुष्ट करे और स्नेहयुक्त हृदयसे आचार्य तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंको यथाशक्ति मीठे पकवान भोजन करावे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य कमलापतिके प्रसादसे इहलोक और परलोकके भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

श्रावण मासकी पूर्णिमाको 'वेदोंका उपाकर्म' बताया गया है। उस दिन यजुर्वेदी द्विजोंको देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार ऋषियोंका पूजन भी करना चाहिये। ऋग्वेदियोंको चतुर्दशीके दिन तथा सामवेदियोंको भाद्रपद मासके हस्त नक्षत्रमें विधिपूर्वक 'रक्षा-विधान' करना चाहिये। लाल कपड़ेके एक भागमें सरसों तथा अक्षत रखकर उसे लाल रंगके डोरेसे बाँध दे, इस प्रकार बनी हुई पोटली ही रक्षा है, उसे जलसे सींचकर काँसके पात्रमें रखे। उसीमें गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीविष्णु आदि देवताओंको पूजा करके उनकी प्रार्थना करे। फिर ब्राह्मणको नमस्कार करके उसीके हाथसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी कलाईमें उस रक्षापोटलिकाको बँधा ले। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सप्तर्षियोंका विसर्जन करके अपने हाथसे बनाकर कुंकुम आदिसे रंगे हुए नूतन यज्ञोपवीतको धारण करे। यथाशक्ति श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं एक समय भोजन करे। विप्रवर! इस व्रतके कर लेनेपर वर्षभर वैदिक कर्म यदि भूल गया हो, विधिसे हीन हुआ हो या नहीं किया गया हो तो वह सब भलीभाँति सम्पादित हो जाता है। भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको 'उमामाहेश्वरव्रत' किया जाता है। उसके लिये एक दिन पहले एक समय भोजन करके रहे और शिव-पार्वतीका यत्नपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़ प्रार्थना करे—'प्रभो! मैं कल व्रत करूँगा।' इस प्रकार भगवान्‌से निवेदन करके उस उत्तम व्रतको ग्रहण करे। रातमें देवताके समीप शयन करके रातके पिछले पहरमें उठे। फिर संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करे। तत्पश्चात् उत्तम गन्ध, बिल्वपत्र, धूप, दीप और नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करे। उसके बाद सबेरेसे लेकर प्रदोषकालतक विद्वान् पुरुष उपवास करे। चन्द्रोदय होनेपर

पुन: पूजा करके वहीं देवताके समीप रातमें जागरण करे।

इस प्रकार प्रतिवर्ष आलस्य छोड़कर पंद्रह वर्षोंतक इस व्रतका निर्वाह करे। उसके बाद विधिपूर्वक व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उस समय भगवती उमा और भगवान् शङ्करकी सुवर्णमयी दो प्रतिमाएँ बनवावे। यथाशक्ति सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पंद्रह उत्तम कलश स्थापित करे। वहाँ एक कलशके ऊपर वस्त्रसहित दोनों प्रतिमाओंकी स्थापना करनी चाहिये। उन प्रतिमाओंको पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलाना चाहिये। तदनन्तर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पंद्रह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा तथा एक-एक कलश दे। भगवान् शङ्करकी मूर्तिसे युक्त कलश आचार्यको अर्पण करे। इस प्रकार 'उमामाहेश्वरव्रत' का पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर विख्यात होता है। वह समस्त सम्पत्तियोंकी निधि बन जाता है। उसी दिन 'शक्रव्रत'का भी विधान किया गया है। उसमें प्रात:काल स्नान करके विधिपूर्वक गन्ध आदि उपचारों तथा नैवेद्य-राशियोंसे देवराज इन्द्रकी पूजा करे। फिर निमन्त्रित ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर वहाँ आये हुए दूसरे लोगोंको तथा दीनों और अनाथोंको भी उसी प्रकार भोजन करावे। विप्रवर! धन-धान्यकी सिद्धि चाहनेवाले राजाको अथवा दूसरे धनी लोगोंको प्रतिवर्ष यह 'शक्रव्रत' करना चाहिये।

आश्विन मासकी पूर्णिमाको 'कोजागरव्रत' कहा गया है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके उपवास करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे। ताँबे अथवा मिट्टीके कलशपर वस्त्रसे ढकी हुई सुवर्णमयी लक्ष्मीप्रतिमाको स्थापित करके भिन्न-भिन्न उपचारोंसे उनकी पूजा करे। तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रोदय होनेपर सोने, चाँदी अथवा मिट्टीके घृतपूर्ण एक सौ दीपक जलावे। इसके बाद घी और शक्कर मिलायी हुई बहुत-सी खीर तैयार करे और बहुत-से पात्रोंमें उसे ढालकर चन्द्रमाकी चाँदनीमें रखे। जब एक पहर बीत जाय तो लक्ष्मीजीको वह सब अर्पण करे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको वह खीर भोजन करावे और उनके साथ ही माङ्गलिक गीत तथा मङ्गलमय कार्योंद्वारा जागरण करे। तदनन्तर अरुणोदय-कालमें स्नान करके लक्ष्मीजीकी वह स्वर्णमयी मूर्ति आचार्यको अर्पित करे। उस रातमें देवी महालक्ष्मी अपने कर-कमलोंमें वर और अभय लिये निशीथ कालमें संसारमें विचरती हैं और मन-ही-मन संकल्प करती हैं कि 'इस समय भूतलपर कौन जाग रहा है? जागकर मेरी पूजामें लगे हुए उस मनुष्यको मैं आज धन दूँगी।' प्रतिवर्ष किया जानेवाला यह व्रत लक्ष्मीजीको संतुष्ट करनेवाला है। इससे प्रसन्न हुई लक्ष्मी इस लोकमें समृद्धि देती हैं और शरीरका अन्त होनेपर परलोकमें सद्गति प्रदान करती हैं। कार्तिककी पूर्णिमाको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति और सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पानेके लिये कार्तिकेयजीका दर्शन करे। उसी तिथिको प्रदोषकालमें दीपदानके द्वारा सम्पूर्ण जीवोंके लिये सुखदायक 'त्रिपुरोत्सव' करना चाहिये। उस दिन दीपका दर्शन करके कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष तथा जल और स्थलमें विचरनेवाले दूसरे जीव भी पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करते; उन्हें अवश्य मोक्ष होता है। ब्रह्मन्! उस दिन चन्द्रोदयके समय छहों कृत्तिकाओंकी, खड्गधारी कार्तिकेयकी तथा वरुण और अग्निकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, प्रचुर नैवेद्य, उत्तम अन्न, फल तथा शाक आदिके द्वारा एवं होम और ब्राह्मणभोजनके द्वारा पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार देवताओंकी पूजा करके घरसे बाहर दीप-

दान करना चाहिये। दीपकोंके पास ही एक सुन्दर चौकोर गड्ढा खोदे। उसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई चौदह अंगुलकी रखे। फिर उसे चन्दन और जलसे सींचे। तदनन्तर उस गड्ढेको गायके दूधसे भरकर उसमें सर्वाङ्गसुन्दर सुवर्णमय मत्स्य डाले। उस मत्स्यके नेत्र मोतीके बने होने चाहिये। फिर '**महामत्स्याय नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको उसका दान कर दे। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने तुमसे क्षीरसागर-दानकी विधि बतायी है। इस दानके प्रभावसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। नारद! इस पूर्णिमाको 'वृषोसर्गव्रत' तथा 'नक्तव्रत' करके मनुष्य रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके दिन शान्त स्वभाववाले ब्राह्मणको सुवर्णसहित एक आढक[1] नमक दान करे। इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है। मनुष्य पूर्णिमाको पुष्यका योग होनेपर सम्पूर्ण सौभाग्यकी वृद्धिके लिये पीली सरसोंके उबटनसे अपने शरीरको मलकर सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान करे। स्नानके पश्चात् दो नूतन वस्त्र धारण करे। फिर माङ्गलिक द्रव्यका दर्शन और स्पर्श कर विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, पुष्य और बृहस्पतिको नमस्कार करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर होम करके ब्राह्मणोंको खीरके भोजनसे तृप्त करे। विप्रवर! लक्ष्मीजीकी प्रीति बढ़ानेवाले और दरिद्रताका नाश करनेवाले इस व्रतको करके मनुष्य इहलोक और परलोकमें आनन्द भोगता है। माघकी पूर्णिमाके दिन तिल, सूती कपड़े, कम्बल, रत्न, कंचुक, पगड़ी, जूते आदिका अपने वैभवके अनुसार दान करके

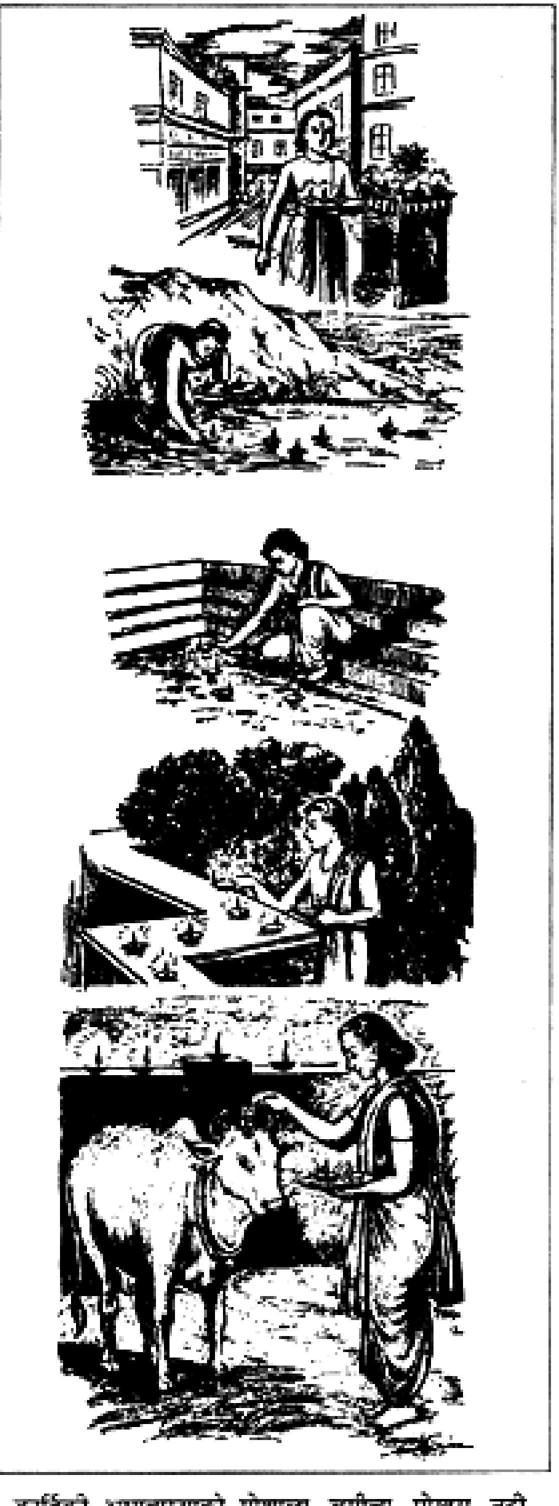

कार्तिकी अमावास्याको गोशाला, बगीचा, पोखरा, नदी, बाजार आदिमें दीपदान

१. चार सेरके बराबरका एक तौल।

मनुष्य स्वर्गलोकमें सुखी होता है। जो उस दिन भगवान् शङ्करकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको सब प्रकारके काष्ठों और उपलों (कंडों)-का संग्रह करना चाहिये। वहाँ रक्षोघ्न-मन्त्रोंद्वारा अग्निमें विधिपूर्वक होम करके होलिकापर काठ आदि फेंककर उसमें आग लगा दे। इस प्रकार दाह करके होलिकाकी परिक्रमा करते हुए उत्सव मनावे। यह होलिका प्रह्लादको भय देनेवाली राक्षसी है। इसीलिये गीत-मङ्गलपूर्वक काष्ठ आदिके द्वारा लोग उसका दाह करते हैं। विप्रेन्द्र! मतान्तरमें यह 'कामदेवका दाह' है।

पक्षान्त-तिथियाँ दो होती हैं—पूर्णिमा तथा अमावास्या। दोनोंके देवता पृथक्-पृथक् हैं। अतः अमावास्याका व्रत पृथक् बतलाया जाता है। नारद! इसे सुनो। यह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। चैत्र और वैशाखकी अमावास्याको पितरोंकी पूजा, पार्वणविधिसे धन-वैभवके अनुसार श्राद्ध, ब्राह्मणभोजन, विशेषतः गौ आदिका दान—ये सब कार्य सभी महीनोंकी अमावास्याको अत्यन्त पुण्यदायक बताये गये हैं। नारद! ज्येष्ठकी अमावास्याको ब्रह्मसावित्रीका व्रत बताया गया है। इसमें भी ज्येष्ठकी पूर्णिमाके समान ही सब विधि कही गयी है। आषाढ़, श्रावण और भाद्रपद मासमें पितृश्राद्ध, दान, होम और देवपूजा आदि कार्य अक्षय होते हैं। भाद्रपदकी अमावास्याको अपराह्नमें तिलके खेतमें पैदा हुए कुशोंको ब्रह्माजीके मन्त्रसे आमन्त्रित करके 'हुं फट्'[1] का उच्चारण करते हुए उखाड़ ले और उन्हें सदा सब कार्योंमें नियुक्त करे और दूसरे कुशोंको एक ही समय काममें लाना चाहिये। आश्विनकी अमावास्याको विशेषरूपसे गङ्गाजीके जलमें या गयाजीमें पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये; वह मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी अमावास्याको देवमन्दिर, घर, नदी, बगीचा, पोखरा, चैत्य वृक्ष, गोशाला तथा बाजारमें दीपदान और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करना चाहिये। उस दिन गौओंके सींग आदि अङ्गोंमें रंग लगाकर उन्हें घास और अन्न देकर तथा नमस्कार और प्रदक्षिणा करके उनकी पूजा की जाती है। मार्गशीर्षकी अमावास्याको भी श्राद्ध और ब्राह्मणभोजनके द्वारा तथा ब्रह्मचर्य आदि नियमों और जप, होम तथा पूजनादिके द्वारा पितरोंकी पूजा की जाती है। विप्रवर! पौष और माघमें भी पितृश्राद्धका फल अधिक कहा गया है। फाल्गुनकी अमावास्यामें श्रवण, व्यतीपात और सूर्यका योग होनेपर केवल श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन गयासे अधिक फल देनेवाला होता है। सोमवती अमावास्याको किया हुआ दान आदि सम्पूर्ण फलोंको देनेवाला है। उसमें किये हुए श्राद्धका अधिक फल है। मुने! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे तिथिकृत्य बताया है। सभी तिथियोंमें कुछ विशेष विधि है, जो अन्य पुराणोंमें वर्णित है।

---

१. निमन्त्रणसम्बन्धी ब्रह्माजीका मन्त्र इस प्रकार है—

विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिन्निसर्गज। नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥

'दर्भ! तुम ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न हुए हो, साक्षात् परमेष्ठी ब्रह्माके स्वरूप हो और तुम स्वभावतः प्रकट हुए हो। हमारे सब पाप हर लो और हमारे लिये कल्याणकारी बनो।'

## सनकादि और नारदजीका प्रस्थान, नारदपुराणके माहात्म्यका वर्णन और पूर्वभागकी समाप्ति

**श्रीसूतजी कहते हैं**—महर्षियो! देवर्षि नारदजीके प्रश्न करनेपर उन्हें इस प्रकार उपदेश देकर वे सनकादि चारों कुमार, जो शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, नारदजीसे पूजित हो, संध्या आदि नित्यकर्म करके भगवान् शङ्करके लोकमें चले गये। वहाँ देवताओं और दानवोंके अधीश्वर जिनके चरणारविन्दोंमें मस्तक झुकाते हैं, उन महेश्वरको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे वे भूमिपर बैठे। तदनन्तर सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारको, जो अज्ञानी जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको खोलनेवाला है, सुनकर वे ज्ञानघनस्वरूप कुमार भगवान् शिवको नमस्कार करके अपने पिताके समीप चले गये। पिताके चरणकमलोंमें प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद लेकर वे आज भी सम्पूर्ण लोकोंके तीर्थोंमें सदा विचरते रहते हैं। वास्तवमें वे स्वयं ही तीर्थस्वरूप हैं। ब्रह्मलोकसे वे बदरिकाश्रम-तीर्थमें गये और देवेश्वरसमुदायसे सेवित भगवान् विष्णुके उन अविनाशी चरणारविन्दोंका चिरकालतक चिन्तन करते रहे; जिनका वीतराग संन्यासी ध्यान करते हैं। ब्राह्मणो! तत्पश्चात् नारदजी भी सनकादि कुमारोंसे मनोवाञ्छित ज्ञान-विज्ञान पाकर उस गङ्गातटसे उठकर पिताके निकट गये और प्रणाम करके खड़े रहे। फिर पिता ब्रह्माजीके द्वारा आज्ञा मिलनेपर वे बैठे। उन्होंने कुमारोंसे जो ज्ञान-विज्ञान श्रवण किया था, उसका ब्रह्माजीके समीप यथार्थरूपसे वर्णन किया। उसे सुनकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर आशीर्वाद ले मुनिवर नारद मुनिसिद्ध-सेवित कैलास पर्वतपर आये। वह पर्वत नाना प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्योंसे भरा हुआ था। सिद्ध और किन्नरोंने उस पर्वतको व्याप्त कर रखा था। जहाँ सुन्दर स्वर्णमय कमल खिले हुए हैं, ऐसे स्वच्छ जलसे भरे हुए सरोवर उस शैलशिखरकी शोभा बढ़ाते हैं। गङ्गाजीके प्रपातकी कलकल ध्वनि वहाँ सब ओर गूँजती रहती है। कैलासका एक-एक शिखर सफेद बादलोंके समान जान पड़ता है। उसी शिखरपर काले मेघके समान श्यामवर्णका एक वटवृक्ष है, जो सौ योजन विस्तृत है। उसके नीचे योगियोंकी मण्डलीके मध्यभागमें जटाजूटधारी भगवान् त्रिलोचन बाघाम्बर ओढ़े हुए बैठे थे। उनका सारा अङ्ग भस्माङ्गरागसे विभूषित हो रहा था। नागोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे। ब्राह्मणो! रुद्राक्षकी मालासे सदा शोभायमान भगवान् चन्द्रशेखरको देखकर नारदजीने भक्तिभावसे नतमस्तक हो उन जगदीश्वरके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और प्रसन्न मनसे उन श्रीवृषध्वज शिवका स्तवन किया, तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञासे वे आसनपर बैठे। उस समय योगियोंने उनका बड़ा सत्कार किया। जगद्गुरु सदाशिवने नारदजीकी कुशल पूछी। नारदजीने कहा—भगवन् आपके प्रसादसे सब कुशल है। ब्राह्मणो! फिर सब योगियोंके सुनते हुए नारदजीने पशुओं (जीवों)-के अज्ञानमय पाशको छुड़ानेवाले पाशुपत (शाम्भव) ज्ञानके विषयमें प्रश्न किया। तब शरणागतवत्सल भगवान् शिवने उनकी भक्तिसे संतुष्ट हो उनसे आदरपूर्वक अष्टाङ्ग शिव-योगका वर्णन किया। लोककल्याणकारी भगवान् शङ्करसे शाम्भव ज्ञान प्राप्त करके प्रसन्नचित्त हो नारदजी बदरिकाश्रममें भगवान् नारायणके निकट गये। सदा आने-जानेवाले देवर्षि नारदने वहाँ भी सिद्धों और योगियोंसे सेवित भगवान् नारायणको बारम्बार संतुष्ट किया।

ब्राह्मणो! यह नारदमहापुराण है, जिसका मैंने तुम्हारे समक्ष वर्णन किया है। सम्पूर्ण शास्त्रोंका दिग्दर्शन करानेवाला यह उपाख्यान वेदके समान

मान्य है। यह श्रोताओंके ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला है। विप्रगण! जो इस नारदीय महापुराणका शिवालयमें, श्रेष्ठ द्विजोंके समाजमें, भगवान् विष्णुके मन्दिरमें, मथुरा और प्रयागमें, पुरुषोत्तम जगन्नाथजीके समीप, सेतुबन्ध रामेश्वरमें, काञ्ची, द्वारका, हरद्वार और कुशस्थलमें, त्रिपुष्कर तीर्थमें, किसी नदीके तटपर अथवा जहाँ-कहीं भी भक्तिभावसे कीर्तन करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञों और तीर्थोंका महान् फल पाता है। सम्पूर्ण दानों और समस्त तपस्याओंका भी पूरा-पूरा फल प्राप्त कर लेता है। जो उपवास करके या हविष्य भोजन करके इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए भगवान् नारायण या शिवकी भक्तिमें तत्पर हो इस पुराणका श्रवण अथवा प्रवचन करता है, वह सिद्धि पाता है। इस पुराणमें सब प्रकारके पुण्यों और सिद्धियोंके उद्भवका वर्णन किया गया है, जो सदा पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। यह मनुष्योंके कलिसम्बन्धी दोषको हर लेता है और सब सम्पत्तियोंकी वृद्धि करता है। यह सभीको अभीष्ट है। यह तपस्या, व्रत और उनके फलोंका प्रकाशक है। मन्त्र, यन्त्र, पृथक्-पृथक् वेदाङ्ग, आगम, सांख्य और वेद—सबका इसमें संक्षेपसे संग्रह किया गया है। इस वेदसम्मित नारदीय महापुराणका श्रवण करके धन, रत्न और वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे पुराणवाचक आचार्यकी पूजा करनी चाहिये। भूमिदान, गोदान, रत्नदान तथा हाथी, घोड़े और रथके दानसे आचार्यको सदैव संतुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मणो! यह पुराण धर्मका संग्रह करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो इसकी व्याख्या करता है, उसके समान मनुष्योंका गुरु दूसरा कौन हो सकता है। शरीर, मन, वाणी और धन आदिके द्वारा सदा धर्मोपदेशक गुरुका प्रिय करना चाहिये। इस पुराणको विधिपूर्वक सुनकर देवपूजन और हवन करके सौ ब्राह्मणोंको मिठाई और खीरका भोजन कराना चाहिये तथा भक्तिभावसे उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये; क्योंकि भगवान् माधव भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सरोवरोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशीपुरी, पर्वतोंमें मेरु, तीनों देवताओंमें सबका पाप हरनेवाले भगवान् नारायण, युगोंमें सत्ययुग, वेदोंमें सामवेद, पशुओंमें धेनु, वर्णोंमें ब्राह्मण, देने योग्य तथा पोषक वस्तुओंमें अन्न और जल, मासोंमें मार्गशीर्ष, मृगोंमें सिंह, देहधारियोंमें पुरुष, वृक्षोंमें पीपल, दैत्योंमें प्रह्लाद, अङ्गोंमें मुख, अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, ऋतुओंमें वसन्त, यज्ञोंमें जपयज्ञ, नागोंमें शेष, पितरोंमें अर्यमा, अस्त्रोंमें धनुष, वसुओंमें पावक, आदित्योंमें विष्णु, देवताओंमें इन्द्र, सिद्धोंमें कपिल, पुरोहितोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, पाण्डवोंमें अर्जुन, दास्य-भक्तोंमें हनुमान्, तृणोंमें कुश, इन्द्रियोंमें मन (चित्त), गन्धर्वोंमें चित्ररथ, पुष्पोंमें कमल, अप्सराओंमें उर्वशी तथा धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है। जिस प्रकार ये सब वस्तुएँ अपने सजातीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणोंमें श्रीनारदमहापुराण श्रेष्ठ कहा गया है। द्विजवरो! आप सब लोगोंको शान्ति प्राप्त हो, आपका कल्याण हो। अब मैं अमित तेजस्वी व्यासजीके समीप जाऊँगा।

ऐसा कहकर सूतजी शौनक आदि महात्माओंसे पूजित हो उन सबकी आज्ञा लेकर चले गये। वे शौनक आदि द्विज श्रेष्ठ महात्मा भी जो यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए थे, एकाग्रचित्त हो सुने हुए समस्त धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर हो, वहीं रहने लगे। जो कलिके पाप-विषका नाश करनेवाले श्रीहरिके जप और पूजन-विधिरूप औषधका सेवन करता है, वह निर्मल चित्तसे भगवान्‌के ध्यानमें लगकर सदा मनोवाञ्छित लोक प्राप्त करता है।

॥ पूर्वभाग समाप्त ॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

# श्रीनारदमहापुराण

## उत्तरभाग

### महर्षि वसिष्ठका मान्धाताको एकादशीव्रतकी महिमा सुनाना

**पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः।**
**त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः॥ १॥**

'जो मेघके समान श्यामवर्ण हैं, शार्ङ्गधनुषकी प्रत्यञ्चाके आघात (रगड़)-से कठोर हो गयी हैं तथा त्रिभुवनरूपी विशाल भवनको खड़े रखनेके लिये मानो खंभेके समान हैं, भगवान् विष्णुकी वे चारों भुजाएँ आप लोगोंकी रक्षा करें।'

**सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टमणिरञ्जितम्।**
**हरिपादाम्बुजद्वन्द्वमभीष्टप्रदमस्तु नः॥ २॥**

'भगवान् श्रीहरिके वे युगल चरणारविन्द हमारे अभीष्ट मनोरथोंकी पूर्ति करें, जो देवताओं और असुरोंके मस्तकपर स्थित रत्नमय मुकुटकी घिसी हुई मणियोंसे सदा अनुरञ्जित रहते हैं।'

**मान्धाताने (वसिष्ठजीसे) पूछा**—द्विजोत्तम! जो भयंकर पापरूपी सूखे या गीले ईंधनको जला सके, ऐसी अग्नि कौन है? यह बतानेकी कृपा करें। ब्रह्मपुत्र! विप्र-शिरोमणे! तीनों लोकोंमें त्रिविध पाप-तापके निवारणका कोई भी ऐसा सुनिश्चित उपाय नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो। अज्ञानावस्थामें किये हुए पापको 'शुष्क' और जान-बूझकर किये हुए पातकको 'आर्द्र' कहा गया है। वह भूत, वर्तमान अथवा भविष्य कैसा ही क्यों न हो, किस अग्निसे दग्ध हो सकता है? यह जानना मुझे अभीष्ट है।

**वसिष्ठजी बोले**—नृपश्रेष्ठ! सुनो, जिस अग्निसे 'शुष्क' अथवा 'आर्द्र' पाप पूर्णतः दग्ध हो सकता है, वह उपाय बताता हूँ। जो मनुष्य भगवान् विष्णुके दिन (एकादशी तिथि) आनेपर जितेन्द्रिय

हो उपवास करके भगवान् मधुसूदनकी पूजा करता है, आँवलेसे स्नान करके रातमें जागता है, वह पापोंको धो बहा देता है। राजन्! एकादशी नामक अग्निसे, पातकरूपी ईंधन सौ वर्षोंसे संचित हो तो भी शीघ्र ही भस्म हो जाता है। नरेश्वर! मनुष्य जबतक भगवान् पद्मनाभके शुभदिवस—एकादशी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत नहीं करता, तभीतक इस शरीरमें पाप ठहर पाते हैं। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशीव्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। प्रभो! एकादश इन्द्रियोंद्वारा जो पाप किया जाता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है। राजन्! यदि किसी दूसरे बहानेसे भी एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो वह यमराजका दर्शन नहीं होने देती। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है। राज्य और पुत्र प्रदान करनेवाली है। उत्तम स्त्रीकी प्राप्ति करानेवाली तथा शरीरको नीरोग बनानेवाली है। राजन्! एकादशीसे अधिक पवित्र न गङ्गा है, न गया; न काशी है, न पुष्कर। कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशीसे बढ़कर पुण्यमय नहीं हैं। राजन्! एकादशीका व्रत करनेसे भगवान् विष्णुका धाम अनायास ही प्राप्त हो जाता है। एकादशीको उपवासपूर्वक रातमें जागरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। राजेन्द्र! एकादशीव्रत करनेवाला पुरुष मातृकुल, पितृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। महाराज! वह अपनेको भी वैकुण्ठमें ले जाता है। एकादशी चिन्तामणि अथवा निधिके समान है। संकल्पसाधक कल्पवृक्ष एवं वेदवाक्योंके समान है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी (एकादशीयुक्त)-की शरण लेते हैं, वे चार भुजाओंसे युक्त हो गरुड़की पीठपर वनमाला और पीताम्बरसे सुशोभित हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। महीपते! यह मैंने द्वादशी (एकादशीयुक्त)-का प्रभाव बताया है। यह घोर पापरूपी ईंधनके लिये अग्निके समान है। पुत्र-पौत्र आदि विपुल योगों (अप्राप्त वस्तुओं) अथवा भोगोंकी इच्छा रखनेवाले धर्मपरायण मनुष्योंको सदा एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य आदरपूर्वक एकादशीव्रत करता है, वह माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता (उसकी मुक्ति हो जाती है)। अनेक पापोंसे युक्त मनुष्य भी निष्काम या सकामभावसे यदि एकादशीका व्रत करता है तो वह लोकनाथ भगवान् विष्णुके अनन्त पद (वैकुण्ठ धाम)-को प्राप्त कर लेता है।

## तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! एकादशी तथा भगवान् विष्णुकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाले सूतपुत्रके उस वचनको जो समस्त पापराशियोंका निवारण करनेवाला था, सुनकर सम्पूर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने पुनः निर्मल हृदयवाले पौराणिक सूतपुत्रसे पूछा—मानद! आप व्यासजीकी कृपासे अठारह पुराण और महाभारतको भी जानते हैं। पुराणों और स्मृतियोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। हम लोगोंके हृदयमें एक संशय उत्पन्न हो गया है। आप ही विस्तारसे समझाकर यथार्थरूपसे उसका निवारण कर सकते हैं। तिथिके मूल भाग (प्रारम्भ)-में उपवास करना चाहिये या अन्तमें? देवकर्म हो या पितृकर्म उसमें तिथिके किस भागमें उपवास करना उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

**सौतिने कहा**—महर्षियो! देवताओंकी प्रसन्नताके लिये तो तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना उचित है। वही उनकी प्रीति बढ़ानेवाला है। पितरोंको तिथिका मूलभाग ही प्रिय है—ऐसा कालज्ञ पुरुषोंका कथन है। अत: दसगुने फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना चाहिये। धर्मकामी पुरुषोंको पितरोंकी तृप्तिके लिये तिथिके मूलभागको ही उत्तम मानना चाहिये। विप्रगण! धर्म, अर्थ तथा कामकी इच्छावाले मनुष्योंको चाहिये कि द्वितीया, अष्टमी, षष्ठी और एकादशी तिथियाँ यदि पूर्वविद्धा हों अर्थात् पहलेवाली तिथिसे संयुक्त हों तो उस दिन व्रत न करें। द्विजवरो! सप्तमी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पिताका वार्षिक श्राद्धदिन—इन दिनोंमें पूर्वविद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। सूर्योदयके समय यदि थोड़ी भी पूर्व तिथि हो तो उससे वर्तमान तिथिको पूर्वविद्धा माने, यदि उदयके पूर्वसे ही वर्तमान तिथि आ गयी हो तो उसे 'प्रभूता' समझे। पारण तथा मनुष्यके मरणमें तत्कालवर्तिनी तिथि ग्रहण करने योग्य मानी गयी है। पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है जो सूर्यास्तकालमें मौजूद रहे। विप्रवरो! तिथिका प्रमाण सूर्य और चन्द्रमाकी गतिपर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्यकी गतिका ज्ञान होनेसे कालवेत्ता विद्वान् तिथिके कालका मान समझते हैं।

इसके बाद, अब मैं स्नान, पूजा आदिकी विधिका क्रम बताऊँगा, यदि दिन शुद्ध न मिले तो रातमें पूजा की जाती है। दिनका सारा कार्य प्रदोष (रात्रिके आरम्भकाल)-में पूर्ण करना चाहिये। यह विधि व्रत करनेवाले मनुष्योंके लिये बतायी गयी है। विप्रवरो! यदि अरुणोदयकालमें थोड़ी भी द्वादशी हो तो उसमें स्नान, पूजन, होम और दान आदि सारे कार्य करने चाहिये। द्वादशीमें व्रत करनेपर शुद्ध त्रयोदशीमें पारण हो तो पृथ्वीदानका फल मिलता है। अथवा वह मनुष्य सौ यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी अधिक पुण्य प्राप्त कर लेता है। विप्रगण! यदि आगे द्वादशीयुक्त दिन न दिखायी दे तो (अर्थात् द्वादशीयुक्त त्रयोदशी न हो तो) प्रात:काल ही स्नान करना चाहिये और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके द्वादशीमें ही पारण कर लेना चाहिये। इस द्वादशीका यदि मनुष्य उल्लङ्घन करे तो वह बहुत बड़ी हानि करनेवाली होती है। ठीक उसी प्रकार जैसे विद्याध्ययन करके समावर्तन-संस्कारद्वारा मनुष्य स्नातक न बने तो वह सरस्वती उस विद्वान्‌के धर्मका अपहरण करती है। क्षयमें, वृद्धिमें अथवा सूर्योदयकालमें भी पवित्र द्वादशी तिथि प्राप्त हो तो उसीमें उपवास करना चाहिये, किंतु पूर्व तिथिसे विद्ध होनेपर उसका अवश्य त्याग कर देना चाहिये।

**ब्राह्मणोंने पूछा**—सूतजी! जब पहले दिनकी एकादशीमें द्वादशीका संयोग न प्राप्त होता हो तो मनुष्योंको किस प्रकार उपवास करना चाहिये? यह बतलाइये। उपवासका दिन जब पूर्व तिथिसे विद्ध हो और दूसरे दिन जब थोड़ी भी एकादशी न हो तो उसमें किस प्रकार उपवास करनेका विधान है? इसे भी स्पष्ट कीजिये।

**सौतिने कहा**—ब्राह्मणो! यदि पहले दिनकी एकादशीमें आधे सूर्योदयतक भी द्वादशीका संयोग न मिलता हो तो दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये। अनेक शास्त्रोंमें परस्पर विरुद्ध वचन देखे जाते हैं और ब्राह्मण लोग भी विवादमें ही पड़े रहते हैं। ऐसी दशामें कोई निर्णय होता न देख पवित्र द्वादशी तिथिमें ही उपवास करे और त्रयोदशीमें पारण कर ले। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो और द्वादशीमें श्रवणका योग मिलता हो तो दोनों पक्षोंमें पवित्र द्वादशी तिथिको ही उपवास करना चाहिये।

**ऋषि बोले**—सूतपुत्र! अब आप युगादि तिथियों तथा सूर्यसंक्रान्ति आदिमें किये जानेवाले पुण्य कर्मोंकी विधिका यथावत् वर्णन कीजिये; क्योंकि आपसे कोई बात छिपी नहीं है।

**सौतिने कहा**—अयनका पुण्यकाल, जिस दिन अयनका आरम्भ हो, उस पूरे दिनतक मानना चाहिये। संक्रान्तिका पुण्यकाल सोलह घटीतक होता है। विषुवकालको अक्षय पुण्यजनक बताया गया है। द्विजश्रेष्ठगण! दोनों पक्षोंकी दशमीविद्धा एकादशीका अवश्य त्याग करना चाहिये। जैसे वृषली स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाला ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन कर लेनेपर उस श्राद्धको और श्राद्धकर्ताके पुण्यकृत पुण्यको भी नष्ट कर देता है, उसी प्रकार पूर्वविद्धा तिथिमें किये हुए दान, जप, होम, स्नान तथा भगवत्पूजन आदि कर्म सूर्योदयकालमें अन्धकारकी भाँति नष्ट हो जाते हैं।

## रुक्माङ्गदके राज्यमें एकादशीव्रतके प्रभावसे सबका वैकुण्ठगमन, यमराज आदिका चिन्तित होना, नारदजीसे उनका वार्तालाप तथा ब्रह्मलोक-गमन

**ऋषि बोले**—सूतजी! अब भगवान् विष्णुके आराधनकर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिससे भगवान् संतुष्ट होते और अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। भगवान् लक्ष्मीपति सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। यह चराचर जगत् उन्हींका स्वरूप है। वे समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीहरि किस कर्मसे प्रसन्न होते हैं?

**सौतिने कहा**—ब्राह्मणो! धरणीधर भगवान् हृषीकेश भक्तिसे ही वशमें होते हैं, धनसे नहीं। भक्तिभावसे पूजित होनेपर श्रीविष्णु सब मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। अत: ब्राह्मणो! चक्रसुदर्शनधारी भगवान् श्रीहरिकी सदा भक्ति करनी चाहिये। जलसे भी पूजन करनेपर भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण क्लेशोंका नाश कर देते हैं। जैसे प्यासा मनुष्य जलसे तृप्त होता है। उसी प्रकार उस पूजनसे भगवान् शीघ्र संतुष्ट होते हैं। ब्राह्मणो! इस विषयमें एक पापनाशक उपाख्यान सुना जाता है, जिसमें महर्षि गौतमके साथ राजा रुक्माङ्गदके संवादका वर्णन है। प्राचीन कालमें रुक्माङ्गद नामसे प्रसिद्ध एक सार्वभौम राजा हो गये हैं। वे सब प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते थे। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णु उनके प्रिय आराध्यदेव थे। वे भगवद्भक्त तो थे ही, सदा एकादशीव्रतके पालनमें तत्पर रहते थे। राजा रुक्माङ्गद इस जगत्में देवेश्वर भगवान् पद्मनाभके सिवा और किसीको नहीं देखते थे। उनकी सर्वत्र भगवद्दृष्टि थी। वे एकादशीके दिन हाथीपर नगाड़ा रखकर बजवाते और सब ओर यह घोषणा कराते थे कि 'आज एकादशी तिथि है। आजके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो मन्दबुद्धि मनुष्य भोजन करेगा, वह मेरेद्वारा दण्डनीय होगा, उसे नगरसे निर्वासित कर दिया जायगा। औरोंकी तो बात ही क्या, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी और मेरा मित्र ही क्यों न हो, यदि वह एकादशीके दिन भोजन करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। आज गङ्गाजीके जलमें गोते लगाओ, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो।' द्विजवरो! राजाके इस प्रकार घोषणा करानेपर सब लोग एकादशीव्रत करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाने लगे। ब्राह्मणो! इस प्रकार वैकुण्ठधामका मार्ग लोगोंसे भर गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग भी मृत्युको प्राप्त होते थे, वे

भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते थे।

ब्राह्मणो! सूर्यनन्दन प्रेतराज यम दयनीय स्थितिमें पहुँच गये थे। चित्रगुप्तको उस समय लिखने-पढ़नेके कामसे छुट्टी मिल गयी थी। लोगोंके पूर्व कर्मोंके सारे लेख मिटा दिये गये। मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे क्षणभरमें वैकुण्ठधामको चले जाते थे। सम्पूर्ण नरक सूने हो गये। कहीं कोई पापी जीव नहीं रह गया था। बारह सूर्योंके तेजसे तप्त होनेवाला यमलोकका मार्ग नष्ट हो गया। सब लोग गरुड़की पीठपर बैठकर भगवान् विष्णुके धामको चले जाते थे। मर्त्यलोगके मानव एकमात्र एकादशीको छोड़कर और कोई व्रत आदि नहीं जानते थे। नरकमें भी सन्नाटा छा गया। तब एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा।

**नारदजी बोले—**राजन्! नरकोंके आँगनमें भी किसी प्रकारकी चीख-पुकार नहीं सुनायी देती। आजकल लोगोंके पापकर्मोंका लेखन भी नहीं किया जा रहा है। क्यों चित्रगुप्तजी मुनिकी भाँति मौन साधकर बैठे हैं? क्या कारण है कि आजकल आपके यहाँ माया और दम्भके वशीभूत हो दुष्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले पापियोंका आगमन नहीं हो रहा है?

महात्मा नारदके ऐसा पूछनेपर सूर्यपुत्र धर्मराजने कुछ दयनीय भावसे कहा।

**यम बोले—**नारदजी! इस समय पृथ्वीपर जो राजा राज्य कर रहा है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् हृषीकेशका भक्त है। राजेश्वर रुक्माङ्गद अपने राज्यके लोगोंको नगाड़ा पीटकर सचेत करता है—'एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर भोजन न करो, न करो। जो मनुष्य उस दिन भोजन करेंगे वे मेरे दण्डके पात्र होंगे।' अत: सब लोग (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीव्रत करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो लोग किसी बहानेसे भी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको उपवास कर लेते हैं, वे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको जाते हैं। सारांश यह है कि (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीव्रतके सेवनसे सब लोग वैकुण्ठधामको चले जा रहे हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकके मार्गोंका लोप कर दिया है। अत: मेरे लेखकोंने लिखनेका काम ढीला कर दिया है। महामुने! इस समय मैं काठके मृगकी भाँति निश्चेष्ट हो रहा हूँ। इस तरहके लोकपाल-पदको मैं त्याग देना चाहता हूँ। अपना यह दु:ख ब्रह्माजीको बतानेके लिये मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँगा। किसी कार्यके लिये नियुक्त हुआ सेवक काम न होनेपर भी यदि उस पदपर बना रहता है और बेकार रहकर स्वामीके धनका उपभोग करता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।

**सौति कहते हैं—**ब्राह्मणो! ऐसा कहकर यमराज देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी मूर्त और अमूर्त जीवोंसे घिरे बैठे हैं। वे सम्पूर्ण वेदोंके आश्रय जगत्‌की उत्पत्तिके बीज तथा सबके

प्रपितामह हैं। उनका स्वत: प्रादुर्भाव हुआ है। वे

सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान और पापसे रहित हैं। ॐकार उन्हींका नाम है। वे पवित्र, पवित्र वस्तुओंके आधार, हंस (विशुद्ध आत्मा) और दर्भ (कुशा), कमण्डलु आदि चिह्नोंसे युक्त हैं। अनेकानेक लोकपाल और दिक्पाल भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे हैं। इतिहास, पुराण और वेद साकाररूपमें उपस्थित हो उनकी सेवा करते हैं। उन सबके बीचमें यमराजने लजाती हुई नववधूकी भाँति प्रवेश किया। उनका मुँह नीचेकी ओर झुका था और वे नीचेकी ओर ही देख रहे थे। ब्रह्माजीकी सभामें बैठे हुए लोग देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ यमराजको वहाँ उपस्थित देख आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देखते हुए आपसमें कहने लगे, 'क्या ये सूर्यपुत्र यमराज यहाँ लोककर्ता पितामह ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये पधारे हुए हैं? क्या इनके पास इस समय कोई कार्य नहीं है? इनको तो एक क्षणका भी अवकाश नहीं मिलता है; ये सूर्यनन्दन यम सदा अपने कार्योंमें ही व्यग्र रहते हैं, फिर भी आज यहाँ कैसे आ गये? देवता लोग सकुशल तो हैं? सबसे बढ़कर आश्चर्य तो यह मालूम होता है कि ये लेखक महोदय (चित्रगुप्तजी) बड़ी दीनताके साथ यहाँ उपस्थित हुए हैं और इनके हाथमें जो पट है, जिसपर जीवोंका शुभाशुभ कर्म लिखा जाता है, उसका सब लेख मिटा दिया गया है। अबतक किसी भी धर्मात्माने इनके पटपर लिखे हुए लेखको नहीं मिटाया था। अबतक जो बात देखने और सुननेमें नहीं आयी थी, वह यहीं प्रत्यक्ष दिखायी देती है।'

ब्राह्मणो! ब्रह्माजीके सभासद् जब इस प्रकारकी बातें कर रहे थे, उस समय सम्पूर्ण भूतोंका शासन करनेवाले सूर्यपुत्र यम पितामहके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—'देवेश्वर! मेरा बड़ा तिरस्कार हुआ है। मेरे पटपर जो कुछ लिखा गया था, सब मिटा दिया गया। कमलासन? आप-जैसे स्वामीके रहते हुए मैं अपनेको अनाथ देख रहा हूँ।' द्विजवरो! ऐसा कहकर धर्मराज निश्चेष्ट हो गये। फिर उदारचित्तवाले लोकमूर्ति वायुदेवने अपनी सुन्दर एवं मोटी भुजाओंसे यमराजके संदेहका निवारण करते हुए उन्हें धीरे-धीरे उठाया और उन धर्मराज और चित्रगुप्तको आसनपर बिठाया।

## यमराजके द्वारा ब्रह्माजीसे अपने कष्टका निवेदन और रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन

**तब यमराज बोले**—पितामह! पितामह!! नाथ! मेरी बात सुनिये। देव! किसीके प्रभावका जो खण्डन है, वह मृत्युसे भी अधिक दु:खदायक होता है। कमलोद्भव! जो पुरुष कार्यमें नियुक्त होकर स्वामीके उस आदेशका पालन नहीं करता; किंतु उनसे वेतन लेकर खाता है, वह काठका कीड़ा होता है। जो लोभवश प्रजा अथवा राजासे धन लेकर खाता है, वह कर्मचारी तीन सौ कल्पोंतक नरकमें पड़ा रहता है। जो अपना काम बनाता और स्वामीको लूटता है, वह मन्दबुद्धि मानव तीन सौ कल्पोंतक घरका चूहा होता है। जो राजकर्मचारी राजाके सेवकोंको अपने घरके काममें लगाता है, वह बिल्ली होता है। देव! मैं आपकी आज्ञासे धर्मपूर्वक प्रजाका शासन करता था। प्रभो! मैं मुनियों तथा धर्मशास्त्र आदिके द्वारा भलीभाँति विचार करके पुण्यकर्म करनेवालेको पुण्यफलसे और पाप करनेवालेको पापके फलसे संयुक्त करता था। कल्पके आदिसे लेकर जबतक

आपका वह दिन पूरा होता है, तबतक आपके ही आदेशके अनुसार मैं सब काम करता आया हूँ और आगे भी कर सकता हूँ, किंतु आज राजा रुक्माङ्गदने मेरा महान् तिरस्कार कर दिया है। जगन्नाथ! उस राजाके भयसे समुद्रोंद्वारा घिरी हुई समूची पृथ्वीके लोग सर्वपापनाशक एकादशीके दिन भोजन नहीं करते हैं और उसके प्रभावसे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते हैं; वह भी अकेले नहीं, पितरों और पितामहोंको भी साथ ले लेते हैं। इस लोकमें व्रत करनेवालोंके पितर तो वैकुण्ठलोकमें जाते ही हैं, उनके पितरोंके पितर तथा माताके पिता-मातामह आदि भी विष्णुधामको चले जाते हैं, फिर उन सबके भी जो पिता-माता आदि हैं, उनके पूर्वज भी वैकुण्ठवासी हो जाते हैं। यही नहीं, उनकी पत्नियोंके पितर भी मेरी लिपिको मिटाकर विष्णुधामको चले जाते हैं। पिता आदिके साथ वीर्यका सम्बन्ध है और माताने तो गर्भमें ही धारण किया है। अत: उनकी सद्गति हो तो कोई अनुचित बात नहीं है। नियम यह है कि एक पुरुष जो कर्म करता है, उसका उपभोग भी वह अकेले ही करता है। ब्रह्मन्! कर्तासे भिन्न जो उसके पिता हैं, उनके वीर्यसे उसका जन्म हुआ है और माताके पेटसे वह पैदा हुआ है। इसलिये वह जिसको पिण्ड देनेका अधिकारी है और जिससे उसका शरीर प्रकट हुआ है, ऐसे पिता और माता इन दोनों पक्षोंको वह तार सकता है। किंतु वह पत्नीका वीर्य तो है नहीं और न पत्नीने उसे गर्भमें धारण किया है। अत: जगन्नाथ! पति या दामादके पुण्यकी महिमासे उसकी पत्नी तथा श्वशुर पक्षके लोग कैसे परम पदको प्राप्त होते हैं? इसीसे मेरे सिरमें चक्कर आ रहा है। पद्मयोने! वह अपने साथ पिता, माता और पत्नी—इन तीन कुलोंका उद्धार करके मेरे लोकका मार्ग त्यागकर विष्णुधाममें पहुँच जाता है। वैष्णवव्रत एकादशीका पालन करनेवाला पुरुष जैसी गतिको पाता है, वैसी गति और किसीको नहीं मिलती। एकादशीके दिन अपने शरीरमें आँवलेके फलका लेपन करके भोजन छोड़कर मनुष्य दुष्कर्मोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् धरणीधरके लोकमें चला जाता है। देव! अब मैं निराश हो गया हूँ। इसलिये आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आपकी सेवामें अपने दु:खका निवेदनमात्र कर देनेसे आप सबको अभयदान देते हैं। इस समय जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके लिये जो समयोचित कार्य प्रतीत हो, उसे आप करें। अब पृथ्वीपर वैसे पापी मनुष्य नहीं हैं, जो मेरे भूतगणोंद्वारा साँकल और पाशमें बाँधकर मेरे समीप लाये जायँ और मेरे अधीन हों। सूर्यके तापसे युक्त जो यमलोकका मार्ग था, उसे अत्यन्त तीव्र हाथवाले विष्णुभक्तोंने नष्ट कर दिया; अत: समस्त जनसमुदाय कुम्भीपाककी यातनाको त्यागकर परात्पर श्रीहरिके धाममें चला जा रहा है।

त्रिभुवनपूजित देव! निरन्तर जाते हुए मनुष्योंसे ठसाठस भरे रहनेके कारण भगवान् विष्णुके लोकका मार्ग घिस गया है। जगत्पते! मैं समझता हूँ कि भगवान् विष्णुके लोकका कोई माप नहीं है, वह अनन्त है। तभी तो सम्पूर्ण जीवसमुदायके जानेपर भी भरता नहीं है। राजा रुक्माङ्गदने एक हजार वर्षसे इस भूमण्डलका शासन प्रारम्भ किया है और इसी बीचमें असंख्य मानवोंको चतुर्भुज रूप दे पीत वस्त्र, बनमाला और मनोहर अङ्गरागसे सुशोभित करके उन्हें गरुड़की पीठपर बिठाकर वैकुण्ठधाममें

पहुँचा दिया। देवेश! लक्ष्मीपतिका प्रिय भक्त रुक्माङ्गद यदि पृथ्वीपर रह जायगा तो वह सम्पूर्ण लोकको भगवान् विष्णुके अनामय धाम वैकुण्ठमें पहुँचा देगा। लीजिये यह रहा आपका दिया हुआ दण्ड और यह है पट; यह सब मैंने आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया। देवेश्वर! राजा रुक्माङ्गदने मेरे अनुपम लोकपालपदको मिट्टीमें मिला दिया। धन्य है उसकी माता, जिसने उसे गर्भमें धारण किया था। मातासे उत्पन्न हुआ अधिक गुणवान् पुत्र सम्पूर्ण दु:खोंका विनाश करनेवाला होता है। माताको क्लेश देनेवाले पुत्रके जन्म लेनेसे क्या लाभ? देव! कुपुत्रको जन्म देनेवाली माताने व्यर्थ ही प्रसवका कष्ट भोगा है! विरञ्चे! नि:संदेह इस संसारमें एक ही नारी वीर पुत्रको जन्म देनेवाली है, जिसने मेरी लिपिको मिटा देनेके लिये रुक्माङ्गदको उत्पन्न किया है। देव! पृथ्वीपर अबतक किसी भी राजाने ऐसा कार्य नहीं किया था। अत: भगवन्! जो भयंकर नगाड़ा बजाकर मेरे लोकके मार्गका लोप कर रहा है और निरन्तर भगवान् विष्णुकी सेवामें लगा हुआ है, उस रुक्माङ्गदके पृथ्वीके राज्यपर स्थित रहते मेरा जीवन सम्भव नहीं!

## ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना

**ब्रह्माजी बोले**—धर्मराज! तुमने क्या आश्चर्यकी बात देखी है? क्यों इतने खिन्न हो रहे हो? किसीके उत्तम गुणोंको देखकर जो मनमें संताप होता है, वह मृत्युके तुल्य माना गया है। सूर्यनन्दन! जिनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे परम पद प्राप्त हो जाता है, उन्हींकी प्रीतिके लिये उपवास करके मनुष्य वैकुण्ठधामको क्यों न जाय? भगवान् श्रीकृष्णके लिये किया हुआ एक बारका प्रणाम दस अश्वमेध-यज्ञोंके अवभृथ-स्नानके समान है। फिर भी इतना अन्तर है कि दस अश्वमेध-यज्ञ करनेवाला मनुष्य पुण्यभोगके पश्चात् पुन: इस संसारमें जन्म लेता है; परंतु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला पुरुष फिर संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता[1]। जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' यह दो अक्षर विराजमान है, उसे कुरुक्षेत्र, काशी और विरजतीर्थके सेवनकी क्या आवश्यकता है? क्योंकि जो खिलवाड़में भी भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण और श्रवण कर लेता है, वह मनुष्य गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे प्राप्त हुई पवित्रताके तुल्य पवित्रता प्राप्त कर लेता है। त्रिभुवननाथ पुरुषोत्तम हमारे जन्मदाता हैं, उनके दिन (एकादशी)-का सेवन करनेवाले पुरुषपर शासन कैसे चल सकता है? जो राजकर्मचारी इस पृथ्वीपर राजाके श्रेष्ठ भक्तोंको नहीं जानता, वह उनके विरुद्ध सम्पूर्ण आयास करके भी फिर उन्हींके द्वारा दण्डनीय होता है। अत: राजकार्यमें नियुक्त हुए पुरुषको चाहिये कि वे अपराधी होनेपर भी राजाके प्रिय जनोंपर शासन न करें, क्योंकि वे स्वामीके प्रसादसे सिद्ध (कृतकार्य) होते हैं और शासकपर भी शासन कर सकते हैं। सूर्यनन्दन! इसी प्रकार जो पापी होनेपर भी भगवान् जनार्दनके चरणोंकी शरणमें जा चुके हैं,

१. एको हि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्य:। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥ (ना० उत्तर० ६। ३)

उनपर तुम्हारा शासन कैसे चल सकता है? उनपर शासन करना तो मूर्खताका ही सूचक है। धर्मराज! यदि भगवान् शिवके, सूर्यके अथवा मेरे भक्तोंसे तुम्हारा विवाद हो तो मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ; किंतु भास्करनन्दन! विष्णुभक्तोंके साथ सामना होनेपर मैं कोई सहायता नहीं कर सकूँगा; क्योंकि भगवान् पुरुषोत्तम सभी देवताओंके आदि हैं। भगवान् मधुसूदनके भक्तोंको दण्ड देना सम्भव नहीं है। जिन्होंने किसी बहानेसे भी दोनों पक्षोंकी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीका सेवन किया है, उनके द्वारा यदि तुम्हारा अपमान हुआ है तो उसमें मैं तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता।

## यमराजकी इच्छा-पूर्ति और भक्त रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीका अपने मनसे एक सुन्दरी नारीको प्रकट करना, नारीके प्रति वैराग्यकी भावना तथा उस सुन्दरी 'मोहिनी' का मन्दराचलपर जाकर मोहक संगीत गाना

**यमराजने कहा**—तात! वेद जिनके चरण हैं, उन भगवान्को नमस्कार करनेमें ही सबका हित है; इस बातको मैंने भी समझा है। जगत्पते! फिर भी जबतक राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीका शासन करता है, तबतक मेरा चित्त शान्त नहीं रह सकता। देवश्रेष्ठ! यदि एकमात्र रुक्माङ्गदको ही आप एकादशीके दिन धैर्यसे विचलित कर दें, तो मैं आपका किङ्कर बना रहूँगा। देव! उसने मेरे पटका लेख मिटा दिया है। आजसे जो मानव देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णुका स्मरण, स्तवन अथवा उनके लिये उपवासव्रत करेंगे, उनपर मैं कोई शासन नहीं करूँगा। जो मनुष्य किसी दूसरे व्याजसे भी सहसा हरि-नामका उच्चारण कर लेते हैं, वे माताके गर्भसे छुटकारा पा जाते हैं। वे चतुर मानव मेरे पटके लेखमें नहीं आते तथा देवताओंके समुदाय भी उन्हें नमस्कार करते हैं[1]।

**सौति कहते हैं**—वैवस्वत यमके कार्यसे और उनके सम्मानकी रक्षा करनेके लिये (और रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये) देवेश्वर ब्रह्माजीने कुछ देरतक विचार किया। सम्पूर्ण प्राणियोंसे विभूषित भगवान् ब्रह्माने क्षणभर चिन्तन करनेके पश्चात् सम्पूर्ण लोकको मोहमें डालनेवाली एक नारीको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके मनसे निर्मित हुई वह

देवी संसारकी समस्त सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ एवं प्रकाशमान

१. हरिरिति सहसा ये संगृणन्ति च्छलेन जननिजठरमार्गात्ते विमुक्ता हि मर्त्याः।
मम पटविलिपिं ते नो विशन्ति प्रवीणा दिविचरवरसङ्घैस्ते नमस्या भवन्ति॥
(ना० उत्तर० ७। ६)

थी। सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित हो वह उनके आगे खड़ी हुई। रूपके वैभवसे सम्पन्न उस सुन्दरीको सामने देख ब्रह्माजीने अपनी आँखें मूँद लीं। उन्होंने इस बातपर भी लक्ष्य किया कि मेरे स्वजन काममोहित होकर इस सुन्दरीकी ओर देख रहे हैं। तब उन्होंने उन सबको समझाते हुए कहा—'जो यहाँ माता, पुत्री, पुत्रवधू, भौजाई, गुरुपत्नी तथा राजाकी रानीकी ओर रागयुक्त मन और आसक्तिपूर्ण दृष्टिसे देखता या उनका चिन्तन करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य इन प्रमदाओंको देखकर क्षोभको प्राप्त होता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पुण्य व्यर्थ हो जाता है। यदि उन रमणियोंका सङ्ग करे तो दस हजार जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और पुण्यका नाश होनेसे पापी मनुष्य अवश्य ही पहाड़ी चूहा होता है; अतः विद्वान् पुरुष इन युवतियोंको न तो रागयुक्त दृष्टिसे देखे और न रागयुक्त हृदयसे इनका चिन्तन ही करे।

धर्मराज! जो पुत्रवधू अपने श्वशुरको अपने खुले अङ्ग दिखाती है, उसके हाथ और पैर गल जाते हैं तथा वह 'कृमिभक्ष' नामक नरकमें पड़ती है। जो पापी मनुष्य पुत्रवधूके हाथसे पैर धुलवाता, स्नान करता अथवा शरीरमें तेल आदि मालिश कराता है, उसकी भी ऐसी ही गति होती है। वह एक कल्पतक काले रंगके मुखवाले 'सूचीमुख' नामक कीड़ोंका भक्ष्य बना रहता है। अतः मनुष्य कामनायुक्त मनसे किसी भी नारीकी ओर विशेषतः पुत्री अथवा पुत्रवधूकी ओर न देखे। जो देखता है, वह उसी क्षण पतित हो जाता है। इस प्रकार विचार करके ब्रह्माजीने अपनी दृष्टि और सूक्ष्म कर ली और कहा—'यह जो गोल-गोल और कुछ ऊँचाई लिये हुए सुन्दर मुँह दिखायी देता है, वह हड्डियोंका ढाँचामात्र ही तो है, जो चर्म और मांससे ढका हुआ है। स्त्रियोंके शरीरमें जो दो सुन्दर नेत्र स्थित हैं, वे वसा और मेदके सिवा और क्या हैं? छातीपर दोनों स्तनोंमें यह अत्यन्त ऊँचा मांस ही तो स्थित है। जघनदेशमें भी अधिक मांस ही भरा हुआ है। जिस योनिपर तीनों लोकोंके प्राणी मुग्ध रहते हैं, वह छिपा हुआ मूत्रका ही तो द्वार है। वीर्य और हड्डियोंसे भरा हुआ शरीर केवल मांससे ढका होनेके कारण कैसे सुन्दर कहा जा सकता है? मांस, मेद और चर्बी ही जिसका सार-सर्वस्व है, देहधारियोंके उस शरीरमें सार-तत्त्व क्या है? बताओ। विष्ठा, मूत्र और मलसे पुष्ट हुए शरीरमें कौन मनुष्य अनुरक्त होगा?' इस प्रकार ब्रह्माजीने ज्ञानदृष्टिसे बहुत विचार करके उस नारीसे कहा—'सुन्दरी! जिस प्रकार मैंने मनसे तुम श्रेष्ठ वर्णवाली नारीकी सृष्टि की है, उसके अनुरूप ही तुम मनको उन्मत्त बना देनेवाली उत्पन्न हुई हो।'

तब उस नारीने चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'नाथ! देखिये, योगियोंसहित समस्त चराचर जगत् मेरे रूपसे मोहित हो गया है; तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे देखकर क्षुब्ध न हो जाय। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले किसी पुरुषको अपनी स्तुति नहीं करनी चाहिये; तथापि कार्यके उद्देश्यसे मुझे अपनी प्रशंसा करनी पड़ी है। ब्रह्मन्! आपने किसीके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेके लिये ही मेरी सृष्टि की है; अतः जगन्नाथ! उसका नाम बताइये, मैं निस्संदेह उसको क्षुब्ध कर डालूँगी। देव! पृथ्वीपर मुझे देखकर पहाड़ भी मोहित हो जायगा; फिर साँस लेनेवाले जङ्गम प्राणीके लिये तो कहना ही क्या? इसीलिये पुराणोंमें नारीकी ओर देखना, उसके रूपकी चर्चा करना मनुष्योंके लिये उन्मादकारी बतलाया गया है। वह कठिन-से-कठिन व्रतका

भी नाश करनेवाला है। मनुष्य तभीतक सन्मार्गपर चलता रहता है, तभीतक इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, तभीतक दूसरोंसे लज्जा करता है और तभीतक विनयका आश्रय लेता है, जबतक कि धैर्यको छीन लेनेवाले युवतियोंके नीली पाँखवाले नेत्ररूपी बाण हृदयमें गहरी चोट नहीं पहुँचाते। नाथ! मदिराको तो जब मनुष्य पी लेता है, तब वह चतुर पुरुषके मनमें मोह उत्पन्न करती है; परंतु युवती नारी दूरसे दर्शन और स्मरण करनेपर ही मोहमें डालती है; अतः वह मदिरासे बढ़कर है"[१]।

**ब्रह्माजीने कहा**—देवि! तुमने ठीक कहा है। तुम्हारे लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। ऐसी शक्ति रखनेवाली तुम सम्पूर्ण लोकोंके चित्तका अपहरण क्यों न करोगी। यह सत्य है कि तुम्हारा रूप सबको मोह लेनेवाला है। मैंने जिस उद्देश्यसे तुम्हारी सृष्टि की है, उसे सिद्ध करो। शुभे! वैदिश नगरमें रुक्माङ्गद नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं। उनकी पत्नीका नाम सन्ध्यावली है, जो रूपमें तुम्हारे ही समान है। उसके गर्भसे राजकुमार धर्माङ्गदका जन्म हुआ है, जो पितासे भी अत्यधिक प्रतापी है। उसमें एक लाख हाथीका बल है और प्रतापमें तो वह सूर्यके ही समान है। क्षमामें पृथ्वीके और गम्भीरतामें वह समुद्रके समान है। तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित होता है। त्यागमें राजा बलि, गतिमें वायु, सौम्यतामें चन्द्रमा तथा रूपमें कामदेवके समान है। राजकुमार धर्माङ्गद राजनीतिमें बृहस्पति और शुक्राचार्यको भी परास्त करता है। वरानने! पिताने केवल एक (अखण्ड) रूपमें समस्त जम्बूद्वीपका भोग किया है; किंतु धर्माङ्गदने अन्य द्वीपोंपर भी अधिकार प्राप्त कर लिया है। उसने माता-पिताके संकोचवश अभीतक स्त्रीसुखका अनुभव नहीं किया। सहस्रों राजकुमारियाँ उसकी पत्नी होनेके लिये स्वयं आयीं, किंतु उसने सबको त्याग दिया। वह घरमें रहकर कभी पिताकी आज्ञाके पालनसे विचलित नहीं होता। चारुहासिनि! धर्माङ्गदके तीन सौ माताएँ हैं। वे सब-की-सब सोनेके महलोंमें रहती हैं। राजकुमार उन सबके प्रति समानरूपसे पूज्य दृष्टि रखता है। रुक्माङ्गदके जीवनमें धर्मकी ही प्रधानता है। वे पुत्ररत्नसे सम्पन्न हैं। मोहिनी! तुम उत्तम मन्दराचलपर उन्हीं नरेशके समीप जाओ और उन्हें मोहित करो। सुन्दरी! तुमने इस सम्पूर्ण जगत्‌को मोहित कर लिया है, अतः देवि! तुम्हारे इस गुणके अनुरूप ही तुम्हारा 'मोहिनी' नाम होगा।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर मोहिनी ब्रह्माजीको प्रणाम करके मन्दराचलकी ओर प्रस्थित हुई। तीसरे मुहूर्त (पाँचवीं घड़ी)-में वह पर्वतके शिखरपर जा पहुँची। मन्दराचल वह पर्वत है, जिसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने कच्छपरूपसे अपनी पीठपर धारण किया था और देवता तथा दानवोंने जिसके द्वारा क्षीरसागरका मन्थन किया था एवं जो महान् पर्वत भगवान्‌के कूर्म-शरीरसे रगड़ा जानेपर भी फूट न सका तथा जिसने क्षीरसागरमें पड़कर उसकी गहराई कितनी है, इसे स्पष्ट दिखा दिया। वह अनेक प्रकारके रत्नोंका घर तथा भाँति-भाँतिकी धातुओंसे सम्पन्न है। मन्दराचल देवताओंकी क्रीडा और विहारका स्थान है। तपस्वी मुनियोंकी तपस्याका वह प्रमुख साधन है। उसका मूलभाग ग्यारह हजार योजनतक नीचे गया है। इतना ही उसका विस्तार भी है और ऊँचाईमें भी उसका यही माप है। वह अपने सुवर्णमय तथा रत्नमय शिखरोंसे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित कर रहा

१. पीतं हि मद्यं मनुजेन नाथ करोति मोहं सुविचक्षणस्य। स्मृता च दृष्टा युवती नरेण विमोहयेदेव सुराधिका हि॥ (ना० उत्तर० ७। ४०)

है। मोहिनी उस मन्दराचलपर आ पहुँची। उसके अङ्गोंकी प्रभा भी स्वर्णके ही समान थी; अत: वह अपनी कान्तिसे स्वयं भी उस पर्वतके तेजको बढ़ा रही थी। वह राजा रुक्माङ्गदसे मिलनेकी इच्छा रखकर पर्वतकी एक विशाल शिलापर जा बैठी, जिसका विस्तार सात योजन था। वह दिव्य शिला नीली कान्तिसे सुशोभित थी। राजेन्द्र! उस शिलापर एक वज्रमय शिवलिङ्ग स्थापित था, जिसकी ऊँचाई दस हाथकी थी। वह 'वृषलिङ्ग' के नामसे विख्यात था और ऐसा जान पड़ता था, मानो महलके ऊपर सुन्दर सोनेका कलश शोभा पा रहा हो। द्विजवरो! मोहिनीने उस शिवलिङ्गके समीप ही उत्तम संगीत प्रारम्भ किया। वीणाकी झंकार और ताल-स्वरसे युक्त वह श्रेष्ठ गीत मानसिक क्लेशको दूर करनेवाला था। वह सुन्दरी शिवलिङ्गके अत्यन्त निकट होकर मूर्च्छना और तालके साथ गान्धारस्वरमें गीत गा रही थी। राजेन्द्र! उसका वह गान कामवेदनाको बढ़ानेवाला था। मुनीश्वरो! उस संगीतके प्रारम्भ होनेपर स्थावर जीवोंकी भी उसमें स्पृहा हो गयी। देवताओं तथा दैत्योंके समाजमें भी कभी वैसा मोहक संगीत नहीं हुआ था। मोहिनीके मुखसे निकला हुआ वह गान चित्तको मोह लेनेवाला था।

## रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी सन्ध्यावलीसे वार्तालाप

**सौति कहते हैं**—महाराज रुक्माङ्गदने मनुष्य-लोकके उत्तम भोग भोगते हुए नाना प्रकारसे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना की। विप्रगण! युद्धमें पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली और वैवस्वत यमको जीतकर यमलोकका मार्ग सूना कर दिया। वैकुण्ठका मार्ग मनुष्योंसे भर दिया और उचित समय जानकर अपने पुत्र धर्माङ्गदको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम अपने धर्मपर दृढ़तापूर्वक डटे रहकर अपने पराक्रमसे इस धन-धान्य-सम्पन्न पृथ्वीका सब ओरसे पालन करो। पुत्रके समर्थ हो जानेपर जो उसे राज्य नहीं सौंप देता, उस राजाके धर्म तथा कीर्तिका निश्चय ही नाश हो जाता है। अपने शक्तिशाली पुत्रके द्वारा यदि पिता सुखी न हो तो उस पुत्रको तीनों लोकोंमें अवश्य पातकी जानना चाहिये। पिताका भार हल्का करनेमें समर्थ होकर भी जो पुत्र उस भारको नहीं सँभालता, वह माताके मल-मूत्रकी भाँति पैदा हुआ है। पुत्र वही है, जो इस पृथ्वीपर पितासे भी अधिक ख्याति लाभ करे। यदि पुत्रके अन्यायजनित दु:खसे पिताको रातभर जागना पड़े तो वह पुत्र एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। जो पुत्र घरमें रहकर पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करता है, वह देवताओंद्वारा प्रशंसित हो भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है। पुत्र! मैं प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर सदा नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक्त रहा। प्रजापालनमें संलग्न होकर मैंने कभी भोजन और शयनकी परवा नहीं की। कुछ लोग शिवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, कुछ लोग भगवान् सूर्यके भजन-ध्यानमें संलग्न हैं, कोई ब्रह्माजीके पथपर चलते हैं और दूसरे लोग पार्वतीजीकी आराधनामें स्थित हैं। कुछ लोग सायंकाल और सबेरे अग्निहोत्र कर्ममें लगे होते हैं। 'बालक हो या युवक, बूढ़ा हो या गर्भिणी स्त्री, कुमारी कन्या, रोगी पुरुष अथवा किसी कष्टसे व्याकुल मनुष्य—ये सब उपवास

नहीं कर सकते।' इस तरहकी बातें जिन्होंने कहीं, उन सबकी बातोंका मैंने सब तरहसे खण्डन किया और बहुत दिनोंतक पुराणमें कहे हुए वचनोंद्वारा प्रजाके सुखके लिये उन्हें बार-बार समझाया। विद्वानोंको शास्त्रदृष्टिसे समझाकर और मूर्खोंको दण्डपूर्वक काबूमें करके मैं एकादशीके दिन सबको निराहार रखता आया हूँ।

'वत्स! अपने हों या पराये, कभी किसीको दुःख नहीं देना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसे पुराणोंमें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है। अतः सौम्य! मैं प्रजाके लिये सदा कर्तव्यपालनमें लगा रहा। अपने शरीरको विश्राम देनेका मुझे कभी अवसर नहीं मिला। बेटा! मुझे कभी मदिरा पीने और जूआ खेलने आदिके सुखकी इच्छा नहीं होती। वत्स! इन दुर्व्यसनोंमें फँसा हुआ राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है। पुत्र! तुम्हारे ऊपर राज्यका भार रखकर मैं (प्रजाजनोंके रक्षार्थ) शिकार खेलने जाना चाहता हूँ और इसी बहाने अनेकानेक पर्वत, वन, नदी और भाँति-भाँतिके सरोवर देखना चाहता हूँ।'

**धर्माङ्गदने कहा**—पिताजी! मैं आपके राज्य-सम्बन्धी भारी भारको आजसे अपने ऊपर उठाता हूँ। आपकी आज्ञापालन करनेके सिवा मेरे लिये दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो पिताकी बात नहीं मानता, वह धर्मानुष्ठान करते हुए भी नरकमें पड़ता है। इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

ऐसा कहकर धर्माङ्गद हाथ जोड़े खड़े रहे। उनके इस वचनको सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने (प्रजाके रक्षार्थ) मृगयाके लिये वनमें जानेका निश्चय किया और पुत्रकी अनुमति प्राप्त कर ली। इस बातको जानकर धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्त हो प्रजावर्गको बुलाया और इस प्रकार कहा—'प्रजागण! पिताने मुझे आप लोगोंके पालन और हित-साधनके लिये नियुक्त किया है। सर्वथा धर्मपालनकी इच्छा रखनेवाले मुझ-जैसे पुत्रको पिताकी आज्ञाका सदैव पालन करना चाहिये। पुत्रके लिये पिताके आदेशका पालन करनेके सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं है। अब मैं दण्ड धारण करके राजाके पदपर स्थित हुआ हूँ। मेरे जीते-जी यहाँ कहीं यमराजका शासन नहीं चल सकता। ऐसा समझकर आप सब लोगोंको भगवान् गरुडध्वजका स्मरण तथा भगवदर्पणबुद्धिसे कर्म करते हुए उसके द्वारा भगवान् जनार्दनका यजन करते रहना चाहिये। संसारके भोगोंसे ममता हटाकर अपनी-अपनी जातिके लिये विहित कर्मद्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इससे आपको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी। प्रजाजनो! यह मैंने पिताजीके मार्गसे एक अधिक मार्ग आपको दिखाया है। ब्रह्मार्पणभावसे कर्ममें संलग्न होकर आप सब लोग ज्ञानमें निपुण हो जायँ। एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये—यह पिताजीका बताया हुआ सनातन मार्ग तो है ही, यह ब्रह्मनिष्ठारूप विशेष मार्ग आपके लिये मैंने बताया है। तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको इस ब्रह्मनिष्ठारूप मार्गका अवलम्बन अवश्य करना चाहिये। इससे इस संसारमें पुनः नहीं आना पड़ता।'

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रजाको अनुनयपूर्वक बारम्बार आश्वासन देकर धर्माङ्गद उनके पालनमें लगे रहे। वे न तो दिनमें सोते थे और न रातमें ही। वे अपने शौर्यके बलसे पृथ्वीको निष्कण्टक बनाते हुए सर्वत्र भ्रमण करते थे। हाथीके मस्तकपर रखा हुआ उनका नगाड़ा प्रतिदिन बजता और कर्तव्यपालनकी घोषणा इस प्रकार करता रहता था—'लोगो! (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको उपवास करते हुए ममतासे रहित हो जाओ और नाना

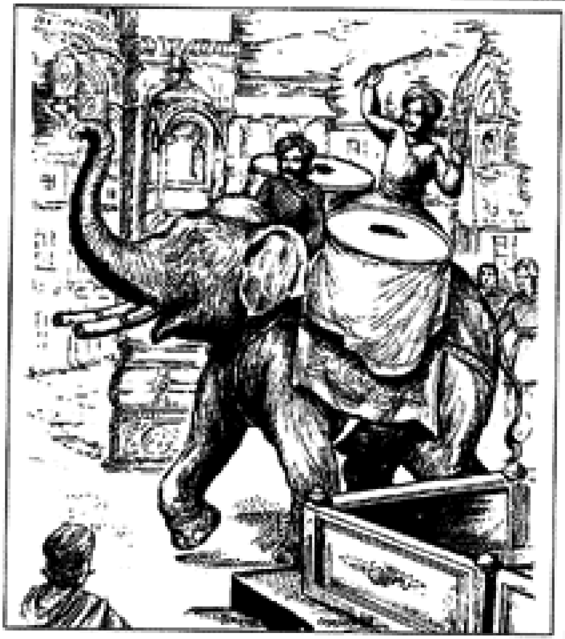

प्रकारके कार्योंमें देवेश्वर श्रीहरिका चिन्तन करते रहो। भगवान् पुरुषोत्तम ही यज्ञ और श्राद्धके भोक्ता हैं। सूर्यमें, सूने आकाशमें तथा सम्पूर्ण सृष्टिमें वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु व्याप्त हो रहे हैं। धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गकी भी इच्छा रखनेवाले सब मनुष्योंको उन्हींका स्मरण करना चाहिये। इसी प्रकार अपने वर्णोचित कर्तव्यकर्मका आचरण करते हुए भी उन्हीं भगवान् माधवका चिन्तन करना चाहिये। वे भगवान् पुरुषोत्तम ही भोक्ता और भोग्य हैं, सब कर्मोंमें उन्हींका विनियोग—उन्हींकी प्रसन्नताके लिये कर्मोंका अनुष्ठान करना उचित है।' इस प्रकार मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे डंका पीटकर श्रेष्ठ ब्राह्मण उपर्युक्त बातें दुहराया करते थे। ब्राह्मणो! इस तरह धर्मका सम्पादन करके धर्माङ्गदके पिताने जब यह जान लिया कि मेरा पुत्र मुझसे भी अधिक कर्तव्यपरायण है तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो द्वितीय लक्ष्मीके समान सुशोभित अपनी धर्मपत्नीसे बोले—'सन्ध्यावलि! मैं धन्य हूँ तथा श्रेष्ठ वर्णवाली देवि! तुम भी धन्य हो; क्योंकि हम दोनोंका पैदा किया हुआ पुत्र इस पृथ्वीपर चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कीर्तिसे प्रकाशित हो रहा है। सुन्दरी! यह निश्चय है कि सदाचार और पराक्रमसे सम्पन्न विनयशील एवं प्रतापी पुत्र प्राप्त होनेपर पिताके लिये घरमें ही मोक्ष है। किंतु अब मैं प्रसन्नतापूर्वक शिकार खेलने एवं जंगली पशुओंको मारनेके लिये वनमें जाऊँगा। विशाललोचने! वहाँ स्वच्छन्द विचरते हुए मैं जन-रक्षाका कार्य करूँगा।

## रानी सन्ध्यावलीका पतिको मृगोंकी हिंसासे रोकना, राजाका वामदेवके आश्रमपर जाना तथा उनसे अपने पारिवारिक सुख आदिका कारण पूछना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—पतिका यह वचन सुनकर विशाल नेत्रोंवाली रानी सन्ध्यावलीने कहा—'राजन्! आपने पुत्रपर सातों द्वीपोंके पालनका भार रख दिया। अब यह मृगोंकी हिंसा छोड़कर यज्ञोंद्वारा भगवान् जनार्दनकी आराधना कीजिये और भोगोंकी अभिलाषा त्यागकर देवनदी गङ्गाका सेवन कीजिये। आपके लिये अब यही न्यायोचित कर्तव्य हैं; मृगोंके प्राण लेना न्यायकी बात नहीं है। पुराणोंमें कहा गया है कि 'अहिंसा परम धर्म है। जो हिंसामें प्रवृत्त होता है, उसका सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है। राजन्! विद्वानोंने जीव-हिंसा छः प्रकारकी बतायी है। पहला हिंसक वह है, जो हिंसाका अनुमोदन करता है। दूसरा वह है, जो जीवको मारता है। जो विश्वास पैदा करके जीवको फँसाता

है, वह तीसरे प्रकारका हिंसक है। मारे हुए जीवका मांस खानेवाला चौथा हिंसक है; उस मांसको पकाकर तैयार करनेवाला पाँचवाँ हिंसक है तथा राजन्! जो यहाँ उसका बँटवारा करता है, वह छठा हिंसक है। विद्वान् पुरुषोंने हिंसायुक्त धर्मको अधर्म ही माना है। धर्मात्मा राजाओंमें भी मृगोंके प्रति दयाभावका होना ही श्रेष्ठ माना गया है। मैंने आपके हितकी भावनासे ही बार-बार आपको मृगयासे रोकनेका प्रयत्न किया है।'

ऐसी बातें कहती हुई अपनी धर्मपत्नीसे राजा रुक्माङ्गदने कहा—'देवि! मैं मृगोंकी हत्या नहीं करूँगा। मृगया बहाने हाथमें धनुष लेकर वनमें विचरण करूँगा। वहाँ जो प्रजाके लिये कण्टकरूप हिंसक जन्तु हैं, उन्हींका वध करूँगा। जनपदमें मेरा पुत्र रहे और वनमें मैं। वरानने! राजाको हिंसक जन्तुओं और लुटेरोंसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। शुभे! अपने शरीरसे अथवा पुत्रके द्वारा प्रजाकी रक्षा करना अपना धर्म है। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह धर्मात्मा होनेपर भी नरकमें जाता है; अतः प्रिये! मैं हिंसाभावका परित्याग करके जन-रक्षाके उद्देश्यसे वनमें जाऊँगा!'

रानी सन्ध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा रुक्माङ्गद अपने उत्तम अश्वपर आरूढ़ हुए। वह घोड़ा पृथ्वीका आभूषण, चन्द्रमाके समान धवल वर्ण और अश्वसम्बन्धी दोषोंसे रहित था। रूपमें उच्चैःश्रवाके समान और वेगमें वायुके समान था। राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से चले। वे नृपश्रेष्ठ अनेक देशोंको पार करते हुए वनमें जा पहुँचे। उनके घोड़ेके वेगसे तिरस्कृत हो कितने ही हाथी, रथ और घोड़े पीछे छूट जाते थे। वे राजा रुक्माङ्गद एक सौ आठ योजन भूमि लाँघकर सहसा मुनियोंके उत्तम आश्रमपर पहुँच गये। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने आश्रमकी रमणीय भूमिमें प्रवेश किया, जहाँ केलेके बगीचे आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। अशोक, बकुल (मौलसिरी), पुन्नाग (नागकेसर) तथा सरल (अर्जुन) आदि वृक्षोंसे वह स्थान घिरा हुआ था। राजाने उस आश्रमके भीतर जाकर द्विजश्रेष्ठ महर्षि वामदेवका दर्शन किया, जो अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें बहुत-से शिष्योंने घेर रखा था। राजाने मुनिको देखकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। उन महर्षिने भी अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया। वे कुशके आसनपर बैठकर हर्षभरी वाणीसे बोले—'मुने! आज मेरा पातक नष्ट हो गया। भलीभाँति ध्यानमें तत्पर

रहनेवाले आप-जैसे महात्माके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करके मैंने समस्त पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर लिया।' राजा रुक्माङ्गदकी यह बात सुनकर वामदेवजी बड़े प्रसन्न हुए और कुशल-मङ्गल पूछकर बोले—'राजन्! तुम अत्यन्त पुण्यात्मा तथा भगवान् विष्णुके भक्त हो। महाभाग! तुम्हारी दृष्टि पड़नेसे मेरा यह आश्रम इस पृथ्वीपर अधिक पुण्यमय हो गया। भूमण्डलमें कौन ऐसा राजा

होगा, जो तुम्हारी समानता कर सके। तुमने यमराजको जीतकर उनके लोकमें जानेका मार्ग ही नष्ट कर दिया। राजन्! सब लोगोंसे पापनाशिनी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीका व्रत कराकर सबको तुमने अविनाशी वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार प्रकारके सुन्दर उपायोंसे भूमण्डलकी प्रजाको संयममें रखकर अपने कर्म या विपरीत कर्ममें लगी हुई सब प्रजाको तुमने भगवान् विष्णुके धाममें भेज दिया। नरेश्वर! हम भी तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते थे, सो तुमने स्वयं दर्शन दे दिया। महीपाल! चाण्डाल भी यदि भगवान् विष्णुका भक्त है तो वह द्विजसे भी बढ़कर है और द्विज भी यदि विष्णुभक्तिसे रहित है तो वह चाण्डालसे भी अधिक नीच है। भूपाल! इस पृथ्वीपर विष्णुभक्त राजा दुर्लभ हैं[१]। जो राजा भगवान् विष्णुका भक्त नहीं है, वह भूदेवी और लक्ष्मीदेवीकी कृपा नहीं प्राप्त कर सकता। तुमने भगवान् विष्णुकी आराधना करके न्यायोचित कर्तव्यका ही पालन किया है। नृपते! भगवान्‌की आराधनासे तुम धन्य हो गये हो और तुम्हारे दर्शनसे हम भी धन्य हो गये।'

वामदेवजीको ऐसी बातें करते देख नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गद, जो स्वभावसे ही विनयी थे, अत्यन्त नम्र होकर उनसे बोले—'द्विजश्रेष्ठ! आपसे क्षमा माँगता हूँ। भगवन्! आप जैसा कहते हैं, वैसा महान् मैं नहीं हूँ। विप्रवर! आपके चरणोंकी धूलके बराबर भी मैं नहीं हूँ। इस जगत्‌में देवता भी कभी ब्राह्मणोंसे बढ़कर नहीं हो सकते; क्योंकि ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर जीवकी भगवान् विष्णुमें भक्ति होती है।' तब वामदेवजीने उनसे कहा—'राजन्! इस समय तुम मेरे घरपर आये हो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, अतः बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ? महीपाल! इस भूतलपर जो सबको अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है और एकादशीके दिन डंका पीटकर प्रजाको भोजन करनेसे रोकता है, उसके लिये क्या नहीं दिया जा सकता।'

तब राजाने हाथ जोड़कर विप्रवर वामदेवजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपके युगल चरणोंके दर्शनसे मैंने सब कुछ पा लिया। मेरे मनमें बहुत दिनोंसे एक संशय है। मैं उसीके विषयमें आपसे पूछता हूँ; क्योंकि आप सब संदेहोंका निवारण करनेवाले ब्राह्मणशिरोमणि हैं। मुझे किस सत्कर्मके फलसे त्रिभुवनसुन्दरी पत्नी प्राप्त हुई है, जो सदा मुझे अपनी दृष्टिसे कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देखती है। परम सुन्दरी देवी सन्ध्यावली जहाँ-जहाँ पैर रखती है, वहाँ-वहाँ पृथ्वी छिपी हुई निधि प्रकाशित कर देती है। उसके अङ्गोंमें बुढ़ापेका प्रवेश नहीं होता। मुनिश्रेष्ठ! वह सदा शरत्कालके चन्द्रमाकी प्रभाके समान सुशोभित होती है। विप्रवर! बिना आगके भी वह षड्रस भोजन तैयार कर लेती है और यदि थोड़ी भी रसोई बनाती है तो उसमें करोड़ों मनुष्य भोजन कर लेते हैं। वह पतिव्रता, दानशीला तथा समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली है। ब्रह्मन्! उसने सोते समय भी वाणीमात्रके द्वारा भी कभी मेरी अवहेलना नहीं की है। उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह सदा मेरी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहता है। द्विजश्रेष्ठ! ऐसा लगता है, इस भूतलपर केवल मैं ही पुत्रवान् हूँ, जिसका पुत्र पिताका भक्त है और गुणोंके संग्रहमें पितासे भी बढ़ गया है। मैं

१. श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ॥
विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधिकः। दुर्लभा भूप राजानो विष्णुभक्ता महीतले ॥
(ना० उत्तर० १०। ३७-३८)

भूमण्डलमें केवल एक द्वीपके स्वामीरूपसे प्रसिद्ध था; किंतु मेरा पुत्र मुझसे बढ़ गया। वह सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका पालक है। विप्रवर! वह मेरे लिये विद्युल्लेखा नामसे विख्यात राजकुमारीको ले आया था और युद्धमें उसने विपक्षी राजाओंको परास्त कर दिया था। वह रूप-सम्पत्तिसे भी सुशोभित है। उसने सेनापति होकर छः महीनेतक युद्ध किया और शत्रुपक्षके सैनिकोंको जीतकर सबको अस्त्रहीन कर दिया। स्त्रीराज्यमें जाकर उसने वहाँकी स्त्रियोंको युद्धमें जीता और उनमेंसे आठ सुन्दरियोंको लाकर मुझे समर्पित किया तथा उन सबको मातृभावसे उसने बारम्बार मस्तक झुकाया। पृथ्वीपर उसने जो-जो दिव्य वस्त्र तथा दिव्य रत्न प्राप्त किये, उन सबको लाकर मुझे दे दिया। इससे उसकी माताने उसकी बड़ी प्रशंसा की। वह एक ही दिनमें अनेक योजन विस्तृत समूची पृथ्वीको लाँघकर रातको मेरे पैरोंमें तेल मालिश करनेके लिये पुनः घर लौट आता है। आधी रातमें मेरे शरीरकी सेवा करके वह द्वारपर कवच धारण करके खड़ा हो जाता है और नींदसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले सेवकोंको जगाता रहता है। मुनिश्रेष्ठ! मेरा यह शरीर भी नीरोग रहता है। मुझे अनन्त सुख प्राप्त है और घरमें मेरी प्यारी पत्नी सदा मेरे अधीन रहती है। पृथ्वीपर सब लोग मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। किस कर्मके प्रभावसे इस समय मुझे यह सुख मिला है? वह सत्कर्म इस जन्मका किया हुआ है या दूसरे जन्मका? ब्रह्मन्! आप अपनी बुद्धिसे विचारकर मेरा पुण्य मुझे बताइये। मेरे शरीरमें रोग नहीं है। मेरी पत्नी मेरे वशमें रहनेवाली है। घरमें अनन्त ऐश्वर्य है। भगवान्‌के चरणोंमें मेरी भक्ति है। विद्वानोंमें मेरा आदर है और ब्राह्मणोंको दान देनेकी मुझमें शक्ति है। अतः मैं ऐसा मानता हूँ कि यह सब किसी (विशेष) पुण्यकर्मका फल है।'

## वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयनव्रत' को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजाका यह वचन सुनकर महाज्ञानी मुनीश्वर वामदेवजीने एक क्षणतक कुछ चिन्तन किया। फिर राजाके सुख-सौभाग्यका कारण जानकर वे इस प्रकार बोले।

**वामदेवजीने कहा**—महीपाल! तुम पूर्वजन्ममें शूद्रजातिमें उत्पन्न हुए थे। उस समय दरिद्रता तथा दुष्ट भार्याने तुम्हारा बड़ा तिरस्कार किया था। तुम्हारी स्त्री पर-पुरुषका सेवन करती थी। राजन्! तुम ऐसी स्त्रीके साथ बहुत वर्षोंतक निवास करते हुए दुःखसे संतप्त होते रहे। एक समय किसी ब्राह्मणके संसर्गसे तुम तीर्थयात्राके लिये गये; फिर सब तीर्थोंमें घूमकर ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर हो, तुम पुण्यमयी मथुरापुरीमें जा पहुँचे। महीपते! वहाँ ब्राह्मणदेवताके सङ्गसे तुमने यमुनाजीके सब तीर्थोंमें उत्तम—विश्रामघाट नामक तीर्थमें स्नान करके भगवान् वाराहके मन्दिरमें होती हुई पुराणकी कथा सुनी, जो 'अशून्यशयनव्रत'के विषयमें थी; चार पारणसे जिसकी सिद्धि होती है, जिसका अनुष्ठान कर लेनेपर मेघके समान श्यामवर्ण देवेश्वर लक्ष्मीभर्ता जगन्नाथ, जो अशेष पापराशिका

नाश करनेवाले हैं, प्रसन्न होते हैं। राजन्! तुमने अपने घर लौटकर वह पवित्र 'अशून्यशयनव्रत' किया, जो घरमें परम अभ्युदय प्रदान करनेवाला है। महीपते! श्रावण मासकी द्वितीयाको यह पुण्यमयव्रत ग्रहण करना चाहिये। इससे जन्म, मृत्यु और जरावस्थाका नाश होता है। पृथ्वीपते! इस व्रतमें फल, फूल, धूप, लाल-चन्दन, शय्यादान, वस्त्रदान और ब्राह्मणभोजन आदिके द्वारा लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। राजन्! तुमने यह सब दुस्तर कर्म भी पूरा किया। महीपते! तुमने जो पहले पुण्यके फलस्वरूप सुख विस्तारपूर्वक बताये हैं, वे इसी व्रतसे प्राप्त हुए हैं, सुनो—जिसके ऊपर भगवान् जगन्नाथ प्रसन्न न हों, उसके यहाँ वे सुख निश्चय ही नहीं हो सकते। राजेन्द्र! इस जन्ममें भी तुम (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीव्रतके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करते हो। राजन्! इससे तुम्हें निश्चितरूपसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होगा।

**राजा बोले—**द्विजश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा हो तो मैं मन्दराचलपर जानेको उत्सुक हूँ। राज्य-शासनका गुरुतर भार अपने पुत्रके ऊपर छोड़कर मैं हलका हो गया हूँ। अब मेरे कर्तव्यका पालन मेरा पुत्र करेगा।

राजाकी बात सुनकर वामदेवजी इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ! पुत्रका यह सबसे महान् कर्तव्य है कि वह सदा प्रेमपूर्वक पिताको क्लेशसे मुक्त करता रहे। जो मन, वाणी और शरीरकी शक्तिसे सदा पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके गङ्गास्नान करनेके लिये जाता है, उस पुत्रकी शुद्धि नहीं होती—यह वैदिक श्रुतिका कथन है[1]। भूपाल! तुम इच्छानुसार यात्रा करो। तुमने अपना सब कर्तव्य पूरा कर लिया।'

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीमान् राजा रुक्माङ्गद घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र गतिसे चले, मानो साक्षात् वायुदेव जा रहे हों। मार्गमें अनेकानेक पर्वत, वन, नदी, सरोवर तथा उपवन आदि सम्पूर्ण आश्चर्यमय हृदयोंको देखते हुए वे राजाधिराज रुक्माङ्गद थोड़े ही समयमें श्वेतगिरि, गन्धमादन और महामेरुको लाँघकर उत्तर-कुरुवर्षको देखते हुए मन्दराचलपर्वतपर जा पहुँचे, जो सब ओरसे सुवर्णसे आच्छादित था। वहाँ बहुत-से निर्झर झर रहे थे। अनेकानेक कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रही थीं। सहस्रों नदियोंसे पूर्ण मन्दराचल गङ्गाजीके शुभ जलसे भी प्रक्षालित हो रहा था। यह सब देखते हुए राजा रुक्माङ्गद उस महापर्वतके समीप जा पहुँचे। तत्पश्चात् उन्होंने समस्त मृग आदि पशुओं और पक्षियोंके समुदायको एक संगीतकी ध्वनिसे खिंचकर शीघ्रतापूर्वक एक ओर जाते देखा। वह ध्वनि मोहिनीके मुखसे निकले हुए संगीतकी थी। उनको जाते देख राजा रुक्माङ्गद स्वयं भी उन्हींके साथ शीघ्रतापूर्वक चल दिये। मोहिनीके मुखसे निकले हुए संगीतकी ध्वनि राजाके भी कानमें पड़ी, जिससे मोहित होकर उन्होंने

१. एतद्धि परमं कृत्यं पुत्रस्य नृपपुङ्गव। यत्क्लेशात् पितरं प्रेम्णा विमोचयति सर्वदा॥
पितुर्वचनकारी च मनोवाक्कायशक्तितः। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥
निरस्य पितृवाक्यं तु व्रजेत्स्नातुं सुरापगाम्। नो शुद्धिस्तस्य पुत्रस्य इतीत्थं वैदिकी श्रुतिः॥
(ना० उत्तर० ११। २—२३)

घोड़ा वहीं छोड़ दिया और पर्वतीय मार्गको लाँघते हुए वे क्षणभरमें सहसा उसके पास पहुँच गये। उन्होंने देखा, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाली एक दिव्य नारी पर्वतपर बैठी है, मानो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीकी रूपराशि उसके रूपमें अभिव्यक्त हुई हो। उसे देखकर राजा उसके पास खड़े हो उस मोहिनीका रूप निहारने लगे। देखते-देखते वे मोहित होकर वहीं गिर पड़े। मोहिनीने वीणाको रख दिया और गीत बन्द कर दिया। वह देवी राजाके समीप गयी। मोहिनी सन्तप्त राजा रुक्माङ्गदसे मधुर मनोरम वचनोंमें बोली—'राजन्! उठिये। मैं आपके वशमें हूँ। क्यों मूर्च्छासे आप अपने इस शरीरको क्षीण कर रहे हैं। भूपाल! आप तो पृथ्वीके इस महान् भारको तिनकेके समान समझकर ढोते आये हैं। फिर आज आप मोहित क्यों हो रहे हैं? दृढ़तापूर्वक अपनेको सँभालिये। आप धीर हैं, वीर हैं। आपकी चेष्टाएँ उदारतापूर्ण हैं। राजराजेश्वर! यदि मेरे साथ अत्यन्त मनोरम एवं मनोऽनुकूल क्रीड़ा करनेकी आपके मनमें इच्छा हो तो मुझे धर्मयुक्त दान देकर अपनी दासीकी भाँति मेरा उपभोग कीजिये।'

## राजाकी मोहिनीसे प्रणय-याचना, मोहिनीकी शर्त तथा राजाद्वारा उसकी स्वीकृति एवं विवाह तथा दोनोंका राजधानीकी ओर प्रस्थान

वसिष्ठजी कहते हैं—मोहिनीके इस प्रकार सुन्दर वचन बोलनेपर राजा रुक्माङ्गद आँखें खोलकर गद्गद कण्ठसे बोले—'बाले! मैंने पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली बहुत-सी रमणियोंको देखा, किंतु ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा है, जैसा कि विश्वविमोहन रूप तुमने धारण किया है। वरानने! मैं तुम्हारे दर्शनमात्रसे इतना मोहित हो गया कि तुमसे बाततक न कर सका और पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुझपर कृपा करो! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुम्हें

दूँगा। मैं सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारी सेवामें दे दूँगा। इसके साथ ही कोष, खजाना, हाथी, घोड़े, मन्त्री और नगर आदि भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे। तुम्हारे लिये मैं अपने-आपको भी तुम्हें अर्पण कर दूँगा; फिर धन, रत्न आदिकी तो बात ही क्या है? अतः मोहिनी! मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजाका मधुर वचन सुनकर मोहिनीने मुसकराते हुए उस समय उन्हें उठाया और इस प्रकार कहा—'वसुधापते! मैं आपसे पर्वतोंसहित पृथ्वी नहीं माँगती। मेरी इतनी ही इच्छा है कि मैं समयपर जो कुछ कहूँ, उसका निःशङ्क होकर आप पालन करते रहें। यदि यह शर्त आप स्वीकार कर लें तो मैं निःसंदेह आपकी सेवा करूँगी।'

**राजा बोले**—देवि! तुम जिससे संतुष्ट रहो, वही शर्त मैं स्वीकार करता हूँ।

**मोहिनीने कहा**—आप अपना दाहिना हाथ मुझे दीजिये; क्योंकि वह बहुत धर्म करनेवाला हाथ है। राजन्! उसके मिलनेसे मुझे आपकी बातपर विश्वास हो जायगा। आप धर्मशील राजा हैं। आप समय आनेपर कभी असत्य नहीं बोलेंगे।

राजन्! मोहिनीके ऐसा कहनेपर महाराज रुक्माङ्गदका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी क्रीडाविहारमें भी असत्य भाषण नहीं किया है। लो, मैंने पुण्य-चिह्नसे युक्त यह दाहिना हाथ तुम्हें दे दिया। मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो भी पुण्य किया है, वह सब यदि तुम्हारी बात न मानूँ तो तुम्हारा ही हो जाय। मैंने धर्मको ही साक्षीका स्थान दिया है। कल्याणी! अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ! मैं इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम रुक्माङ्गद है। मैं महाराज ऋतध्वजका पुत्र हूँ और मेरे पुत्रका नाम धर्माङ्गद है। तुम मेरी प्रार्थनाका उत्तर देकर मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो।'

राजाके ऐसा कहनेपर मोहिनीने उत्तर देते हुए कहा—'राजन्! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ। आपकी कीर्ति सुनकर आपके लिये ही इस स्वर्णमय मन्दराचलपर आयी हूँ। केवल आपमें मन लगाये यहाँ तपस्यामें तत्पर थी और देवेश्वर भगवान् शङ्करका संगीतदानके द्वारा पूजन कर रही थी। मुझे विश्वास है कि संगीतका दान देवताओंको अधिक प्रिय है। संगीतसे संतुष्ट हो भगवान् पशुपति तत्काल फल देते हैं। तभी तो अपने प्रियतम आप महाराजको मैंने शीघ्र पा लिया है। राजन्! आपका मुझपर प्रेम है और मैं भी आपसे प्रेम करती हूँ।' राजासे ऐसा कहकर मोहिनीने उनका हाथ पकड़ लिया।

**तदनन्तर राजाको उठाकर मोहिनी बोली**—महाराज! मेरे प्रति कोई शङ्का न कीजिये! मुझे कुमारी एवं पापरहित जानिये। महीपाल! गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये। राजन्! यदि अविवाहिता कन्या गर्भ धारण कर ले तो वह सब वर्णोंमें निन्दित चाण्डाल पुत्रको जन्म देती है। पुराणमें विद्वान् पुरुषोंने तीन प्रकारकी चाण्डाल-योनि मानी है—एक तो वह जो कुमारी कन्यासे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वह जो विवाहिता होनेपर भी सगोत्र कन्याके पेटसे पैदा हुआ है। नृपश्रेष्ठ! शूद्रके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र तीसरे प्रकारका चाण्डाल है[१]। महाराज! इस कारण मुझ कुमारीके साथ आप विवाह कर लें।

तब राजा रुक्माङ्गदने मन्दराचलपर उस चपलनयना मोहिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह

१. चाण्डालयोनयस्तिस्रः पुराणे कवयो विदुः॥
कुमारीसम्भवा त्वेका सगोत्रापि द्वितीयका। ब्राह्मण्यां शूद्रजनिता तृतीया नृपपुङ्गव॥
(ना० उत्तर० १३। ३-४)

किया और उसके साथ हँसते हुए-से रहने लगे।

**राजाने कहा**—वरानने! स्वर्गकी प्राप्ति भी मुझे वैसा सुख नहीं दे सकती, जैसा सुख इस मन्दराचल पर्वतपर तुम्हारे मिलनेसे प्राप्त हो रहा है। बाले! तुम यहीं मेरे साथ रहोगी या मेरे राजमहलमें ?

राजा रुक्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनीने अनुरागपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! जहाँ आपको सुख मिले, वहीं मैं भी रहूँगी। स्वामीका निवासस्थान धन-वैभवसे रहित हो तो भी पत्नीको वहीं निवास करना चाहिये। उसके लिये पतिके सामीप्यको ही सुवर्णमय मेरु पर्वत बताया गया है। नारीके लिये पतिके निवासस्थानको छोड़कर अपने पिताके घर भी रहना वर्जित है। पिताके स्थान और आश्रयमें आसक्त होनेवाली स्त्री नरकमें डूबती है। वह सब धर्मसे रहित होकर सूकर-योनिमें जन्म लेती है[1]। इस प्रकार पतिके निवासस्थानसे अन्यत्र रहनेमें जो दोष है, उसे मैं जानती हूँ। अतः मैं आपके साथ ही चलूँगी। सुखमें और दुःखमें आप ही मेरे स्वामी हैं।'

मोहिनीका यह कथन सुनकर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उस सुन्दरीको हृदयसे लगाकर बोले—'प्रिये! मेरी समस्त पत्नियोंमें तुम्हारा स्थान सर्वोपरि होगा। मेरे घरमें तुम प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बनकर रहोगी। आओ, अब हम लोग सुखपूर्वक राजधानीकी ओर चलें।' राजा रुक्माङ्गदने जब ऐसी बात कही, तब चन्द्रमाके समान मुखवाली मोहिनी उस पर्वतकी शोभाको अपने साथ खींचती हुई (राजा रुक्माङ्गदके साथ राजधानीकी ओर) चली।

## घोड़ेकी टापसे कुचली हुई छिपकलीकी राजाद्वारा सेवा, छिपकलीकी आत्मकथा, पतिपर वशीकरणका दुष्परिणाम, राजाके पुण्यदानसे उसका उद्धार

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! वे दोनों पति-पत्नी मन्दराचलके शिखरसे पृथ्वीकी ओर प्रस्थित हुए। मार्गमें अनेकों मनोहर पर्वतीय दृश्योंको देखते हुए क्रमशः नीचे उतरने लगे। पृथ्वीपर आकर राजाने अपने श्रेष्ठ घोड़ेको देखा, जो वज्रके समान कठोर टापोंसे धरतीको वेगपूर्वक खोद रहा था। उस भूभागके भीतर एक छिपकली रहती थी। जब तीखी टापसे वह घोड़ा धरती खोद रहा था, उसी समय वह छिपकली वहाँसे निकलकर जाने लगी। इतनेमें ही टापके आघातसे उसका शरीर विदीर्ण हो गया। दयालु राजा रुक्माङ्गदने जब उसकी यह दशा देखी तो वे बड़े वेगसे दौड़े और वृक्षके कोमल पत्तेसे उन्होंने स्वयं उसे खुरके नीचेसे उठाया तथा घास एवं तृणसे भरी हुई भूमिपर रख दिया। तत्पश्चात् उसे मूर्च्छित देख मोहिनीसे बोले—'सुन्दरी! शीघ्र पानी ले आओ। कमललोचने! यह छिपकली कुचलकर मूर्च्छित हो गयी है। इसे उस जलसे सींचूँगा।' स्वामीकी आज्ञासे मोहिनी शीघ्र शीतल जल ले आयी। राजाने उस जलसे बेहोश पड़ी हुई छिपकलीको

---

१. भर्तृस्थानं परित्यज्य स्वपितुर्वापि वर्जितम्॥
पितृस्थानाश्रयरता नारी तमसि मज्जति। सर्वधर्मविहीनापि नारी भवति सूकरी॥
(ना० उत्तर० १३। १८-१९)

सींचा। राजन्! शीतल जलके अभिषेकसे उसकी खोयी हुई चेतना फिर लौट आयी। किसी प्रकारकी चोट क्यों न हो, सबमें शीतल जलसे सींचना उत्तम माना गया है अथवा भीगे हुए वस्त्रसे सहसा उसपर पट्टी बाँधना हितकर माना गया है। राजन्! जब छिपकली सचेत हुई तो राजाको सामने खड़े देख वेदनासे पीड़ित हो धीरे-धीरे इस प्रकार (मनुष्यकी बोलीमें) बोली—'महाबाहु रुक्माङ्गद! मेरा पूर्वजन्मका चरित्र सुनिये। रमणीय शाकल नगरमें मैं एक ब्राह्मणकी पत्नी थी। प्रभो! मुझमें रूप था, जवानी थी तो भी मैं अपने स्वामीकी अत्यन्त प्यारी न हो सकी। वे सदा मुझसे द्वेष रखते और मेरे प्रति कठोरतापूर्ण बातें कहते थे। महाराज! तब मैंने क्रोधयुक्त हो वशीकरण औषध प्राप्त करनेके लिये ऐसी स्त्रियोंसे सलाह ली, जिन्हें उनके पतियोंने कभी त्याग दिया था (और फिर वे उनके वशमें हो गये थे)। भूपाल! मेरे पूछनेपर उन स्त्रियोंने कहा—'तुम्हारे पति अवश्य वशमें हो जायँगे। उसका एक उपाय है। यहाँ एक संन्यासिनी रहती हैं, उन्हींकी दी हुई दवाओंसे हमारे पति वशमें हुए थे। वरारोहे! तुम भी उन्हीं संन्यासिनीजीसे पूछो। वे तुम्हें कोई अच्छी दवा दे देंगी। तुम उनपर संदेह न करना।' राजन्! तब उन स्त्रियोंके कहनेसे मैं तुरंत वहाँ उनके पास पहुँची और उनसे चूर्ण और रक्षासूत्र लेकर अपने पतिके पास लौट आयी और प्रदोषकालमें दूधके साथ वह चूर्ण स्वामीको पिला दिया। साथ ही रक्षासूत्र उनके गलेमें बाँध दिया। नृपश्रेष्ठ! जिस दिन स्वामीने वह चूर्ण पीया उसी दिनसे उन्हें क्षयका रोग हो गया और वे प्रतिदिन दुबले होने लगे। उनके गुप्त अङ्गमें घाव हो जानेसे उसमें दूषित व्रणजनित कीड़े पड़ गये। कुछ ही दिन बीतनेपर मेरे स्वामी तेजोहीन हो गये। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे दिन-रात क्रन्दन करते हुए मुझसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारी शरणमें आया हूँ, अब कभी परायी स्त्रीके पास नहीं जाऊँगा। मेरी रक्षा करो।' महीपते! उनका वह रोदन सुनकर मैं उन तापसीके पास गयी और पूछा—'मेरे पति किस प्रकार सुखी होंगे?' अब उन्होंने उनके दाहकी शान्तिके लिये दूसरी दवा दी। उस दवाको पिला देनेपर मेरे पति तत्काल स्वस्थ हो गये। तबसे मेरे स्वामी मेरे अधीन हो गये और मेरे कथनानुसार चलने लगे। तदनन्तर कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी और मैं नरक-यातनामें पड़ी। मुझे ताँबेके भाड़में रखकर पंद्रह युगोंतक जलाया गया। जब थोड़ा-सा पातक शेष रह गया तो मैं इस पृथ्वीपर उतारी गयी और यमराजने मेरा छिपकलीका रूप बना दिया। राजन्! उस रूपमें यहाँ रहते हुए मुझे दस हजार वर्ष बीत गये।

'भूपाल! यदि कोई दूसरी युवती भी पतिके लिये वशीकरणका प्रयोग करती है तो उसके सारे धर्म व्यर्थ हो जाते हैं और वह दुराचारिणी स्त्री

ताँबेके भाड़में जलायी जाती है। पति ही नारीका रक्षक है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है। जो उसके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करेगी, वह कैसे सुख पा सकती है? वह तो सैकड़ों बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेती और अन्तमें गलित कोढ़के रोगसे युक्त स्त्री होती है। अतः महाराज! स्त्रियोंको सदा अपने स्वामीके आदेशका पालन करना चाहिये[१]। राजन्! आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। यदि आप विजया द्वादशीजनित पुण्य देकर मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो मैं फिर पातक युक्त कुत्सित योनिमें ही पड़ जाऊँगी। आपने जो सरयू और गङ्गाके पापनाशक एवं पुण्यमय संगम-तीर्थमें श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशीका व्रत किया है, वह पुण्यमयी तिथि प्रेतयोनिसे छुड़ानेवाली तथा मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। भूपाल! उस तिथिको जो मनुष्य घरमें रहकर भी भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हैं, उन्हें भगवान् सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करा देते हैं। भूपते! विजयाके दिन जो दान, जप, होम और देवाराधन आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिसका ऐसा उत्कृष्ट फल है, उसीका पुण्य मुझे दीजिये। द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करनेपर मनुष्य उस एक उपवासके बदले बारह वर्षोंके उपवासका फल पाता है। महीपाल! आप इस पृथ्वीपर धर्मके साक्षात् स्वरूप तथा यमराजके मार्गका विध्वंस करनेवाले हैं; दया करके मुझ दुखियाका उद्धार कीजिये।'

**छिपकलीकी बात सुनकर मोहिनी बोली—**'प्रभो! मनुष्य अपने ही कियेका सुख और दुःखरूप फल भोगता है; अतः स्वामीके प्रति दुष्ट भाव रखनेवाली इस पापिनीसे अपना क्या प्रयोजन है, जिसने रक्षासूत्र और चूर्ण आदिके द्वारा पतिको वशमें कर रखा था। इस पापिनीको छोड़िये, अब हम दोनों नगरकी ओर चलें। जो दूसरे लोगोंके व्यापारमें फँसते हैं, उनका अपना सुख नष्ट होता है।'

**रुक्माङ्गदने कहा—**ब्रह्मपुत्री! तुमने ऐसी बात कैसे कही? सुमुखि! साधुपुरुषोंका बर्ताव ऐसा नहीं होता है। जो पापी और दूसरोंको सतानेवाले होते हैं, वे ही केवल अपने सुखका ध्यान रखते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, पृथ्वी, अग्नि, जल, चन्दन, वृक्ष और संतपुरुष परोपकार करनेवाले ही होते हैं। वरानने! सुना जाता है कि पहले राजा हरिश्चन्द्र हुए थे, जिन्हें (सत्यरक्षाके लिये) स्त्री और पुत्रको बेचकर चाण्डालके घरमें रहना पड़ा। वे एक दुःखसे दूसरे भारी दुःखमें फँसते चले गये, परंतु सत्यसे विचलित नहीं हुए। उनके सत्यसे संतुष्ट होकर इन्द्र आदि देवताओंने महाराज हरिश्चन्द्रको इच्छानुसार वर माँगनेके लिये प्रेरित किया; तब उन सत्यपरायण नरेशने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—देवगण! यदि आप संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिये—'यह सारी अयोध्यापुरी बाल, वृद्ध, तरुण, स्त्री, पशु, कीट-पतंग और वृक्ष आदिके साथ पापयुक्त होनेपर भी स्वर्गलोकमें चली जाय और अयोध्याभरका पाप केवल मैं लेकर निश्चितरूपसे नरकमें जाऊँ। देवेश्वरो! इन सब लोगोंको पृथ्वीपर छोड़कर मैं अकेला स्वर्गमें नहीं जाऊँगा। यह मैंने

१. यान्यापि युवतिर्भूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्। वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभाष्ट्रके॥
भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च। तस्य वश्यं चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात्॥
तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकुष्ठसमन्विता। तस्माद्भूपाल कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तृवचः सदा॥
(ना० उत्तर० १४। ३९—४१)

सच्ची बात बतायी है।' उनकी यह दृढ़ता जानकर इन्द्र आदि देवताओंने आज्ञा दे दी और उन्हींके साथ वह सारी पुरी स्वर्गलोगमें चली गयी। देवि! महर्षि दधीचिने देवताओंको दैत्योंसे परास्त हुआ सुनकर दयावश उनके उपकारके लिये अपने शरीरकी हड्डियाँतक दे दीं। सुन्दरी! पूर्वकालमें राजा शिविने कबूतरकी प्राणरक्षाके लिये भूखे बाजको अपना मांस दे दिया था। वरानने! प्राचीन कालमें इस पृथ्वीपर जीमूतवाहन नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिन्होंने एक सर्पकी प्राणरक्षाके लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसलिये देवि! राजाको सदा दयालु होना चाहिये। शुभे! बादल पवित्र और अपवित्र स्थानमें भी समानरूपसे वर्षा करता है। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे चाण्डालों और पतितोंको भी आह्लाद प्रदान करते हैं। अतः सुन्दरि! इस दुःखिया छिपकलीको मैं उसी प्रकार अपने पुण्य देकर उद्धार करूँगा, जैसे राजा ययातिका उद्धार उनके नातियोंने किया था।

इस प्रकार मोहिनीकी बातका खण्डन करके राजाने छिपकलीसे कहा—'मैंने विजयाका पुण्य तुम्हें दे दिया, दे दिया। अब तुम समस्त पापोंसे रहित हो विष्णुलोकको चली जाओ।' भूपाल! राजा रुक्माङ्गदके ऐसा कहनेपर उस स्त्रीने सहसा छिपकलीके उस पुराने शरीरको त्याग दिया और दिव्य शरीर धारण करके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो वह दसों दिशाओंको प्रकाशित करती

हुई राजाकी आज्ञा ले अद्भुत वैष्णव धामको चली गयी। वह वैकुण्ठधाम योगियोंके लिये भी अगम्य है। वहाँ अग्नि आदिका प्रकाश काम नहीं देता। वह स्वयं प्रकाश, श्रेष्ठ, वरणीय तथा परमात्मस्वरूप है; अतः राजन्! यह अग्निको भी प्रकाश देनेवाली विजया-द्वादशी (वामन-द्वादशी) सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश देनेके लिये प्रकट हुई है।

## मोहिनीके साथ राजा रुक्माङ्गदका वैदिश नगरको प्रस्थान, राजकुमार धर्माङ्गदका स्वागतके लिये मार्गमें आगमन तथा पिता-पुत्र-संवाद

**वसिष्ठजी कहते हैं**—छिपकलीको पापसे मुक्त करके राजा रुक्माङ्गद बड़े प्रसन्न हुए और वे मोहिनीसे हँसते हुए बोले—'घोड़ेपर शीघ्र सवार हो जाओ।' राजाकी बात सुनकर मोहिनी वायुके समान वेगवाले उस अश्वपर पतिके साथ सवार हुई। राजा रुक्माङ्गद बड़े हर्षके साथ मार्गमें आये हुए वृक्ष, पर्वत, नदी, अत्यन्त विचित्र वन, नाना प्रकारके मृग, ग्राम, दुर्ग, देश, शुभ नगर, विचित्र सरोवर तथा परम मनोहर भूभागका दर्शन करते हुए वैदिश नगरमें आये, जो उनके अपने अधीन

था। गुप्तचरोंके द्वारा महाराजके आगमनका समाचार सुनकर राजकुमार धर्माङ्गद हर्षमें भर गये और अपने वशवर्ती राजाओंसे पिताके सम्बन्धमें इस प्रकार बोले—'नृपवरो! मेरे पिताका अश्व इधर आ पहुँचा है। इसलिये हम सब लोग महाराजके सम्मुख चलें। जो पुत्र पिताके आनेपर उनकी अगवानीके लिये सामने नहीं जाता, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक घोर नरकमें पड़ा रहता है। पिताके स्वागतके लिये सामने जानेवाले पुत्रको पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिक द्विज कहते हैं[१]। अतः उठिये, मैं आप लोगोंके साथ पिताजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम करनेके लिये चल रहा हूँ; क्योंकि ये मेरे लिये देवताओंके भी देवता हैं।'

तदनन्तर उन सब राजाओंने 'तथास्तु' कहकर धर्माङ्गदकी आज्ञा स्वीकार की। फिर राजकुमार धर्माङ्गद उन सबके साथ एक कोसतक पैदल चलकर पिताके सम्मुख गये। मार्गमें दूरतक बढ़ जानेके बाद उन्हें राजा रुक्माङ्गद मिले। पिताको पाकर धर्माङ्गदने राजाओंके साथ धरतीपर मस्तक रखकर भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया। राजन्! महाराज रुक्माङ्गदने देखा कि मेरा पुत्र प्रेमवश अन्य सब नरेशोंके साथ स्वागतके लिये आया है और प्रणाम कर रहा है, तब वे घोड़ेसे उतर पड़े और अपनी विशाल भुजाओंसे पुत्रको उठाकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उसका मस्तक सूँघा और उस समय धर्माङ्गदसे इस प्रकार कहा—'पुत्र! तुम समस्त प्रजाका पालन करते हो न? शत्रुओंको दण्ड तो देते हो न? खजानेको न्यायोपार्जित धनसे भरते रहते हो न? ब्राह्मणोंको अधिक संख्यामें स्थिर वृत्ति तुमने दी है न? तुम्हारा शील-स्वभाव सबको रुचिकर प्रतीत होता है न? तुम किसीसे कठोर बातें तो नहीं कहते? अपने राज्यके भीतर प्रत्येक पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला है न? बहुएँ सासका कहना मानती हैं न? अपने स्वामीके अनुकूल चलती हैं न? तिनके और घाससे भरी हुई गोचरभूमिमें जानेसे गौओंको रोका तो नहीं जाता? अन्न आदिके तोल और माप आदिका तुम सदा निरीक्षण तो करते हो न? वत्स! किसी बड़े कुटुम्बवाले गृहस्थको उसपर अधिक कर लगाकर कष्ट तो नहीं देते? तुम्हारे राज्यमें कहीं भी मदिरापान और जूआ आदिका खेल तो नहीं होता? अपनी सब माताओंको समानभावसे देखते हो न? वत्स! लोग एकादशीके दिन भोजन तो नहीं करते? अमावास्याके दिन लोग श्राद्ध करते हैं न? प्रतिदिन रातके पिछले पहरमें तुम्हारी नींद खुल जाती है न? क्योंकि अधिक निद्रा अधर्मका मूल है। निद्रा पाप बढ़ानेवाली है। निद्रा दरिद्रताकी जननी तथा कल्याणका नाश करनेवाली है। निद्राके वशमें रहनेवाला राजा अधिक दिनोंतक पृथ्वीका शासन नहीं कर सकता। निद्रा व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति अपने स्वामीके लोक-परलोक दोनोंका नाश करनेवाली है।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमार धर्माङ्गदने महाराजको बार-बार प्रणाम करके कहा—'तात! इन सब बातोंका पालन किया गया है और आगे भी आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। पिताकी आज्ञापालन करनेवाले पुत्र तीनों लोकोंमें धन्य माने जाते हैं। राजन् जो पिताकी बात नहीं मानता, उसके लिये उससे बढ़कर और पातक क्या हो सकता है? जो पिताके वचनोंकी अवहेलना करके गङ्गा-स्नान करनेके लिये जाता है और पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसे उस तीर्थ-

१. सम्मुखं व्रजमानस्य पुत्रस्य पितरं प्रति। पदे पदे यज्ञफलं प्रोचुः पौराणिका द्विजाः॥

सेवनका फल नहीं मिलता[1]। मेरा यह शरीर आपके अधीन है। मेरे धर्मपर भी आपका अधिकार है और आप ही मेरे सबसे बड़े देवता हैं।' अनेकों राजाओंसे घिरे हुए अपने पुत्र धर्माङ्गदकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने पुनः उसे छातीसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुमने ठीक कहा है; क्योंकि तुम धर्मके ज्ञाता हो। पुत्रके लिये पितासे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। बेटा! तुमने अनेक राजाओंसे सुरक्षित सात द्वीपवाली पृथ्वीको जीतकर जो उसकी भलीभाँति रक्षा की है, इससे तुमने मुझे अपने मस्तकपर बिठा लिया। लोकमें यही सबसे बड़ा सुख है, यही अक्षय स्वर्गलोक है कि पृथ्वीपर पुत्र अपने पितासे अधिक यशस्वी हो। तुम सद्‌गुणपर चलनेवाले तथा समस्त राजाओंपर शासन करनेवाले हो। तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे शुभ एकादशी तिथिने मुझे कृतार्थ किया है।'

पिताकी यह बात सुनकर राजपुत्र धर्माङ्गदने पूछा—'पिताजी! सारी सम्पत्ति मुझे सौंपकर आप कहाँ चले गये थे? ये कान्तिमयी देवी किस स्थानपर प्राप्त हुई हैं? महीपाल! मालूम होता है, ये साक्षात् गिरिराजनन्दिनी उमा हैं अथवा क्षीरसागर-कन्या लक्ष्मी हैं? अहो! ब्रह्माजी रूप-रचनामें कितने कुशल हैं, जिन्होंने ऐसी देवीका निर्माण किया है। राजराजेश्वर! ये स्वर्णगौरीदेवी आपके घरकी शोभा बढ़ाने योग्य हैं। यदि इनकी-जैसी माता मुझे प्राप्त हो जायँ तो मुझसे बढ़कर पुण्यात्मा दूसरा कौन होगा।'

## धर्माङ्गदद्वारा मोहिनीका सत्कार तथा अपनी माताको मोहिनीकी सेवाके लिये एक पतिव्रता नारीका उपाख्यान सुनाना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—धर्माङ्गदकी बात सुनकर रुक्माङ्गदको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'बेटा! सचमुच ही ये तुम्हारी माता हैं। ये ब्रह्माजीकी पुत्री हैं। इन्होंने बाल्यावस्थासे ही मुझे प्राप्त करनेका निश्चय लेकर देवगिरिपर कठोर तपस्या प्रारम्भ की थी। आजसे पंद्रह दिन पूर्व मैं घोड़ेपर सवार हो अनेक धातुओंसे सुशोभित गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर गया था। उसीके शिखरपर यह बाला भगवान् महेश्वरको प्रसन्न करनेके लिये संगीत सुना रही थी। वहीं मैंने इस सुन्दरीका दर्शन किया और इसने कुछ प्रार्थनाके साथ मुझे पतिरूपमें वरण किया। मैंने भी इन्हें दाहिना हाथ देकर इनकी मुँहमाँगी वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा की और मन्दराचलके शिखरपर ही विशाल नेत्रोंवाली ब्रह्मपुत्रीको अपनी पत्नी बनाया। फिर पृथ्वीपर उतरकर घोड़ेपर चढ़ा और अनेक पर्वत, देश, सरोवर एवं नदियोंको देखता हुआ तीन दिनमें वेगपूर्वक चलकर तुम्हारे समीप आया हूँ।'

पिताका यह कथन सुनकर शत्रुदमन धर्माङ्गदने घोड़ेपर चढ़ी हुई माताके उद्देश्यसे धरतीपर मस्तक रखकर प्रणाम करते हुए कहा—'देवि! आप मेरी माँ हैं, प्रसन्न होइये। मैं आपका पुत्र और दास हूँ। माता! अनेक राजाओंके साथ मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' राजन्! मोहिनी राजपुत्र धर्माङ्गदको

१. पितुर्वचनकर्तारः पुत्रा धन्या जगत्त्रये। किं ततः पातकं राजन् यो न कुर्यात्पितुर्वचः॥
पितृवाक्यमनादृत्य व्रजेत्स्नातुं त्रिमार्गगाम्। न तत्तीर्थफलं भुङ्क्ते यो न कुर्यात् पितुर्वचः॥
(ना० उत्तर० १५। ३४-३५)

धरतीपर गिरकर प्रणाम करते देख घोड़ेसे उतर पड़ी और उसने दोनों बाँहोंसे उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर कमलनयन धर्माङ्गदने मोहिनीको अपनी पीठपर पैर रखवाकर उस उत्तम घोड़ेपर

चढ़ाया। राजन्! इसी विधिसे उसने पिताको भी घोड़ेपर बिठाया। तत्पश्चात् राजकुमार धर्माङ्गद अन्य राजाओंसे घिरकर पैदल ही चलने लगे। अपनी माता मोहिनीको देखकर उनके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया और मेघके समान गम्भीर वाणीमें अपने भाग्यकी सराहना करते हुए वे इस प्रकार बोले—'एक माताको प्रणाम करनेपर पुत्रको समूची पृथ्वीकी परिक्रमाका फल प्राप्त होता है; इसी प्रकार बहुत-सी माताओंको प्रणाम करनेपर मुझे महान् पुण्यकी प्राप्ति होगी।' राजाओंसे घिरकर इस प्रकारकी बातें करते हुए धर्माङ्गदने परम समृद्धिशाली रमणीय वैदिश नगरमें प्रवेश किया। मोहिनीके साथ घोड़ेपर चढ़े हुए राजा रुक्माङ्गद भी तत्काल वहाँ जा पहुँचे। तदनन्तर राजमहलके समीप पहुँचकर परिचारकोंसे पूजित हो राजा घोड़ेसे उतर गये और मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! तुम अपने पुत्र धर्माङ्गदके घरमें जाओ। ये गुणोंके अनुरूप तुम्हारी गुरुजनोचित सेवा करेंगे।'

पतिके ऐसा कहनेपर मोहिनी पुत्रके महलकी ओर चली। धर्माङ्गदने देखा, पतिकी आज्ञासे माता मोहिनी मेरे महलकी ओर जा रही हैं। तब उन्होंने राजाओंको वहीं छोड़ दिया और कहा, 'आप लोग ठहरें। मैं पिताकी आज्ञासे माताजीकी सेवा करूँगा।' ऐसा कहकर वे गये और माताको घरमें ले गये। पंद्रह पग चलनेके बाद एक पलंगके पास पहुँचकर उन्होंने माताको उसपर बिठाया। वह पलंग सोनेका बना और रेशमी सूतसे बुना हुआ था। अतः मजबूत होनेके साथ ही कोमल भी था। उस पलंगमें जहाँ-तहाँ मणि और रत्न जड़े हुए थे। मोहिनीको पलंगपर बैठाकर धर्माङ्गदने उसके चरण धोये। संध्यावलीके प्रति राजकुमारके मनमें जो गौरव था, उसी भावसे वे मोहिनीको भी देखते थे। यद्यपि वे सुकुमार एवं तरुण थे और मोहिनी भी तन्वङ्गी तरुणी थी तथापि मोहिनीके प्रति उनके मनमें तनिक भी दोष या विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उसके चरण धोकर उन्होंने उस चरणोदकको मस्तकपर चढ़ाया और विनम्र होकर कहा—'माँ! आज मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ।' ऐसा कहकर धर्माङ्गदने स्वयं तथा दूसरे नर-नारियोंके संयोगसे मोहिनी माताके श्रमका निवारण किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके लिये सब प्रकारके उत्तम भोग अर्पण किये। क्षीरसागरका मन्थन होते समय जो दो अमृतवर्षी कुण्डल प्राप्त हुए थे, उन्हें धर्माङ्गदने पातालमें जाकर दानवोंको पराजित करके प्राप्त किया था। उन दोनों कुण्डलोंको उन्होंने स्वयं मोहिनीके कानोंमें पहना दिया। आँवलेके फल बराबर सुन्दर

मोतीके एक हजार आठ दानोंका बना हुआ सुन्दर हार मोहिनीदेवीके वक्ष:स्थलपर धारण कराया। सौ भर सुवर्णका एक निष्क (पदक) तथा सहस्रों हीरोंसे विभूषित एक सुन्दर लघूत्तर हार भी उस समय राजकुमारने माताको भेंट किया। दोनों हाथोंमें सोलह-सोलह रत्नमयी चूड़ियाँ, जिनमें हीरे जड़े हुए थे, पहनाये। उनमेंसे एक-एकका मूल्य उसकी कीमतको समझनेवाले लोगोंने एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा निश्चित किया था। केयूर और नूपुर भी जो सूर्यके समान चमकनेवाले थे, राजकुमारने उसे अर्पित कर दिये। उस समय धर्माङ्गदका अङ्ग-अङ्ग आनन्दसे पुलकित हो उठा था। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुकी जो त्रिलोकसुन्दरी पत्नी थी, उसके पास विद्युत्‌के समान प्रकाशमान एक जोड़ा सीमन्त (शीशफूल) था। वह पतिव्रता नारी जब पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करने लगी तो अपने सीमन्तको अत्यन्त दु:खके कारण समुद्रमें फेंक दिया। कालान्तरमें धर्माङ्गदके पराक्रमसे संतुष्ट हो समुद्रने उन्हें वे दोनों रत्न भेंट कर दिये। धर्माङ्गदने प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों सीमन्त भी मोहिनी माताको दे दिये। अत्यन्त मनोहर दो सुन्दर साड़ियाँ और दो चोलियाँ, जिनकी कीमत कोटि सहस्र स्वर्णमुद्रा थी, धर्माङ्गदने मोहिनीको भेंट कीं। दिव्य माल्य, उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य अनुलेपन जो सम्पूर्ण देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीके सिद्ध हाथसे तैयार किया हुआ तथा परम दुर्लभ था और जिसे वीर धर्माङ्गदने सम्पूर्ण द्वीपोंकी विजयके समय प्राप्त किया था; मोहिनी देवीको दे दिया। राजन्! इस प्रकार मोहिनीको विभूषित करके राजकुमारने बड़ी भक्तिके साथ षड्रस भोजन मँगाया और अपनी माताके हाथसे मोहिनीको भोजन कराया।

बहुत समझा-बुझाकर माता संध्यावलीको इस सपत्नीसेवाके लिये तैयार कर लिया था। उन्होंने कहा था—'देवि! मेरा और तुम्हारा कर्तव्य है कि राजाकी आज्ञाका पालन करें। स्वामीको स्नेहकी दृष्टिसे जो अधिक प्रिय है, उसके साथ स्वामीका स्नेह छुड़ानेके लिये जो सौतिया-डाह करती है, वह यमलोकमें जाकर ताँबेके भाड़में भूँजी जाती है। अत: पतिव्रता पत्नीका कर्तव्य है कि जिस प्रकार स्वामीको सुख मिले, वैसा ही करे। श्रेष्ठ वर्णवाली माँ! स्वामीकी ही भाँति उनकी प्रियतमा पत्नीको भी आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जो सपत्नी अपनी सौतको पतिकी प्यारी देख उसकी सदा सेवा-शुश्रूषा करती है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है।

'प्राचीन कालकी बात है, एक दुष्ट प्रकृतिका शूद्र था, जिसने अपने सदाचारका परित्याग कर दिया था। उसने अपने घरमें एक वेश्या लाकर रख ली। शूद्रकी विवाहित पत्नी भी थी, किंतु वह वेश्या ही उसको अधिक प्रिय थी। उसकी स्त्री पतिको प्रसन्न रखनेवाली सती थी। वह वेश्याके साथ पतिकी सेवा करने लगी। दोनोंसे नीचे स्थानमें सोती और उन दोनोंके हितमें लगी रहती थी। वेश्याके मना करनेपर भी उसकी सेवासे मुँह नहीं मोड़ती थी और सदाचारके पावन पथपर दृढ़तापूर्वक स्थित रहती थी। इस प्रकार वेश्याके साथ पतिकी सेवा करते हुए उस सतीके बहुत वर्ष बीत गये। एक दिन खोटी बुद्धिवाले उसके पतिने मूलीके साथ भैंसका दही और तैल मिलाया हुआ 'निष्पाव' खा लिया। अपनी पतिव्रता स्त्रीकी बात अनसुनी करके उसने यह कुपथ्य भोजन कर लिया। परिणाम यह हुआ कि उसकी गुदामें भगंदर रोग हो गया। अब वह दिन-रात उसकी जलनसे जलने लगा। उसके घरमें जो धन था, उसे लेकर वह वेश्या चली गयी। तब वह शूद्र

लज्जामें डूबकर दीनतापूर्ण मुखसे रोता हुआ अपनी पत्नीसे बोला। उस समय उसका चित्त बड़ा व्याकुल था। उसने कहा—'देवि! वेश्यामें फँसे हुए मुझ निर्दयीकी रक्षा करो। मुझ पापीने तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं किया। बहुत वर्षोंतक उस वेश्याके ही साथ जीवन बिताता रहा। जो पापी अपनी विनीत भार्याका अहंकारवश अनादर करता है, वह पंद्रह जन्मोंतक उस पापके अशुभ फलको भोगता है।' पतिकी यह बात सुनकर शूद्रपत्नी उससे बोली—'नाथ! पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपमें प्रकट होते हैं। जो विवेकी पुरुष उन दुःखोंको धैर्यपूर्वक सहन करता है, उसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ समझना चाहिये।' ऐसा कहकर उसने स्वामीको धीरज बँधाया। वह सुन्दरी नारी अपने पिता और भाइयोंसे धन माँग लायी। वह अपने पतिको क्षीरशायी भगवान् मानती थी। प्रतिदिन दिनमें और रातमें भी उसकी गुदाके घावको धोकर शुद्ध करती थी। रजनीकर नामक वृक्षका गोंद लेकर उसपर लगाती और नखद्वारा धीरे-धीरे स्वामीके कोढ़से कीड़ोंको नीचे गिराती थी। फिर मोरपंखका व्यजन लेकर उनके लिये हवा करती थी। माँ! वह श्रेष्ठ नारी न रातमें सोती थी, न दिनमें। थोड़े दिनोंके बाद उसके पतिको त्रिदोष हो गया। अब वह बड़े यत्नसे सोंठ, मिर्च और पीपल अपने स्वामीको पिलाने लगी। एक दिन सर्दीसे पीड़ित हो काँपते हुए पतिने पत्नीकी अँगुली काट ली। उस समय सहसा उसके दोनों दाँत आपसमें सट गये और वह कटी हुई अँगुली उसके मुँहके भीतर ही रह गयी। महारानी! उसी दशामें उसकी मृत्यु हो गयी। अब वह अपना कंगन बेचकर काठ खरीद लायी और उसकी चिता तैयार की। चितापर उसने घी छिड़क दिया और बीचमें पतिको सुलाकर स्वयं भी उसपर चढ़ गयी। वह

सुन्दर अङ्गोंवाली सती प्रज्वलित अग्निमें देहका परित्याग करके पतिको साथ ले सहसा देवलोकको चली गयी। उसने, जिसका साधन कठिन है, ऐसे दुष्कर कर्मद्वारा बहुत-सी पापराशियोंको शुद्ध कर दिया था।'

## संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन

**धर्माङ्गद कहते हैं**—माँ! इस बातपर विचार करके मोहिनीको भोजन कराओ। ऐसा धर्म तीनों लोकोंमें कहीं नहीं मिलेगा। श्रेष्ठ वर्णवाली माताजी! पिताको सुख पहुँचाना ही हम दोनोंका कर्तव्य है। इससे इस लोकमें हमारे पापोंका भलीभाँति नाश होगा और परलोकमें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी।

पुत्रकी यह बात सुनकर देवी संध्यावलीने उसके साथ कुछ विचार-विमर्श किया। फिर पुत्रको बार-बार हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुम्हारी बात धर्मसे युक्त है। अतः मैं उसका पालन करूँगी। ईर्ष्या और अभिमान छोड़कर मोहिनीको अपने हाथसे भोजन कराऊँगी। बेटा! व्रतराज एकादशीके अनुष्ठानसे तुझ-जैसा पुत्र मुझे प्राप्त हुआ है। लोकमें ऐसा लाभदायक व्रत दूसरा नहीं देखा जाता। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला तथा तत्काल फल देकर अपने प्रति विश्वास बढ़ानेवाला है। शोक और संताप देनेवाले अनेक पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ? समूचे कुलको सहारा देनेवाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जिसके भरोसे समस्त कुल सुख-शान्तिका अनुभव करता है[१]। तुम्हें अपने गर्भमें पाकर मैं तीनों लोकोंसे ऊपर उठ गयी। पुत्र! तुम शूरवीर, सातों द्वीपोंके अधिपति तथा पिताके आज्ञापालक हो एवं पिता और माता दोनोंको आह्लाद प्रदान करते हो। ऐसे पुत्रको ही विद्वानोंने पुत्र कहा है। दूसरे सभी नाममात्रके पुत्र हैं।'

ऐसा वचन कहकर उस समय देवी संध्यावलीने षड्रस भोजन रखनेके लिये पात्रोंकी ओर दृष्टिपात किया। राजन्! उसकी दृष्टि पड़नेमात्रसे वे सभी पात्र उत्तम भोजनसे भर गये। महीपते! मोहिनीको भोजन करानेके लिये कुछ-कुछ गरम और षड्रसयुक्त भोजनकी तथा अमृतके समान स्वादिष्ट जलकी व्यवस्था हो गयी। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णमयी चम्मच लेकर मनोहर हास्यवाली रानी संध्यावलीने शान्तभावसे मोहिनीको भोजन परोसा। सोनेके चिकने पात्रमें, जिसमें उचितमात्रामें सब प्रकारका भोज्य पदार्थ रखा हुआ था, मोहिनी देवी सोनेके सुन्दर आसनपर बैठकर अपनी रुचिके अनुकूल सुसंस्कृत अन्न धीरे-धीरे भोजन करने लगी। उस समय धर्माङ्गदके द्वारा व्यजन डुलाया जा रहा था।

मोहिनीके भोजन कर लेनेके अनन्तर राजकुमारने उसे प्रणाम करके कहा—'देवि! इन संध्यावली देवीने मुझे तीन वर्षतक अपने गर्भमें धारण किया है तथा आपके पतिदेवके प्रसादसे पलकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। मनोहर अङ्गोंवाली देवि! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे देकर पुत्र अपनी मातासे उऋण हो सके।'

पुत्र धर्माङ्गदके ऐसा कहनेपर मोहिनीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—'जिसमें पिताकी सेवाका भाव है, उसके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा है, उस धर्मात्मा पुत्रके प्रति मैं माता होकर कैसे कुत्सित बर्ताव कर सकती हूँ।' मोहिनी इस तरह नाना प्रकारके विचार करके पुत्रसे बोली—'तुम मेरे पतिको शीघ्र बुला लाओ, मैं उनके बिना दो घड़ी भी नहीं रह सकती।' तब

१. किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः। वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रमते कुलम्॥
(ना० उत्तर० १७। १०)

उसने तुरंत ही पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'तात! मेरी छोटी माँ आपका शीघ्र दर्शन करना चाहती है।' पुत्रकी यह बात सुनकर राजा रुक्माङ्गद तत्काल वहाँ जानेको उद्यत हुए। उनके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने महलमें प्रवेश करके देखा, मोहिनी पलंगपर सो रही है। उसके शरीरसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी प्रभा फैल रही है और उस बालाकी महारानी संध्यावली धीरे-धीरे सेवा कर रही हैं। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजा रुक्माङ्गदको शय्याके समीप आया देख सुन्दरी मोहिनीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उसने राजासे कहा—'प्राणनाथ! कोमल बिछौनोंसे युक्त इस पलंगपर बैठिये। जो मानव दूसरे-दूसरे कार्योंमें आसक्त होकर अपनी युवती भार्याका सेवन नहीं करता, उसकी वह भार्या कैसे रह सकती है? जिसका दान नहीं किया जाता, वह धन भी चला जाता है, जिसकी रक्षा नहीं की जाती, वह राज्य अधिक कालतक नहीं टिक पाता और जिसका अभ्यास नहीं किया जाता, वह शास्त्रज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता। आलसी लोगोंको विद्या नहीं मिलती। सदा व्रतमें ही लगे रहनेवालोंको पत्नीकी प्राप्ति नहीं होती। पुरुषार्थके बिना लक्ष्मी नहीं मिलतीं। भगवान्‌की भक्तिके बिना यशकी प्राप्ति नहीं होती। बिना उद्यमके सुख नहीं मिलता और बिना पत्नीके संतानकी प्राप्ति नहीं होती। अपवित्र रहनेवालेको धर्म-लाभ नहीं होता। अप्रिय वचन बोलनेवाला ब्राह्मण धन नहीं पाता। जो गुरुजनोंसे प्रश्न नहीं करता, उसे तत्त्वका ज्ञान नहीं होता तथा जो चलता नहीं, वह कहीं पहुँच नहीं सकता। जो सदा जागता रहता है, उसे भय नहीं होता। भूपाल! प्रभो! आप राज्यकाजमें समर्थ पुत्रके होते हुए भी मुझे धर्माङ्गदके सुन्दर महलमें अकेली छोड़ राजका कार्य क्यों देखते हैं?' तब राजा रुक्माङ्गद उसे सान्त्वना देते हुए बोले।

## धर्माङ्गदका माताओंसे पिता और मोहिनीके प्रति उदार होनेका अनुरोध तथा पुत्रद्वारा माताओंका धन-वस्त्र आदिसे समादर

**राजाने कहा**—भीरु! मैंने राजलक्ष्मी तथा राजकीय वस्तुओंपर पुनः अधिकार नहीं स्थापित किया है। मैंने धर्माङ्गदको पुकारकर यह आदेश दिया था कि 'कमलनयन! तुम मोहिनीको सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित अपने महलमें ले जाओ और इसकी सेवा करो; क्योंकि यह मेरी सबसे प्यारी पत्नी है। तुम्हारा महल हवादार भी है और उसमें हवासे बचनेका भी उपाय है। वह सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाला है, अतः वहीं ले जाओ।' पुत्रको इस प्रकार आदेश देकर मैं कष्टसे बचनेके लिये बिछौनेपर गया। शय्यापर पहुँचते ही मुझे नींद आ गयी और अभी-अभी ज्यों ही जगा हूँ, सहसा तुम्हारे पास चला आया हूँ। देवि! तुम जो कुछ भी कहोगी, उसे निस्संदेह पूर्ण करूँगा।

**मोहिनी बोली**—राजेन्द्र! मेरे विवाहसे अत्यन्त दुःखित हुई इन अपनी पत्नियोंको धीरज बँधाओ। इन पतिव्रताओंके आँसुओंसे दग्ध होनेपर मेरे मनमें क्या शान्ति होगी? भूपाल! ये पतिव्रता देवियाँ तो मेरे पिता ब्रह्माजीको भी भस्म कर सकती हैं। फिर आप-जैसे प्राकृत नरेशको और मेरी-जैसी स्त्रीको जला देना इनके लिये कौन बड़ी बात है? भूमिपाल! महारानी संध्यावलीके समान नारी तीनों लोकोंमें कहीं नहीं है। इनका एक-एक अङ्ग आपके स्नेहपाशसे बँधा हुआ है;

इसीलिये ये मुझे बड़े प्यारसे षड्रस भोजन कराती हैं और आपके ही गौरवसे मुझे प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें सुनाती हैं। इन्हींके स्वभावकी सैकड़ों देवियाँ आपके घरकी शोभा बढ़ा रही हैं। महीपते! मैं कभी इन सबके चरणोंकी धूलके बराबर भी नहीं हो सकती।

पुत्रके साथ खड़ी हुई जेठी रानीके समीप मोहिनीका यह वचन सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत लज्जित हुए। तब धर्माङ्गदने कहा—'माताओ! मेरे पिताको मोहिनीदेवी तुम सबसे अधिक प्रिय है। वे मन्दराचलके शिखरसे उस बालाको अपने साथ क्रीडाके लिये ले आये हैं। (अत: ईर्ष्या छोड़कर तुम सब लोग पिताके सुखमें योग दो।')

पुत्रकी यह बात सुनकर सब माताएँ बोलीं—'बेटा! तुम्हारे न्याययुक्त वचनका पालन हम अवश्य करेंगी।'

माताओंकी यह बात सुनकर राजकुमार धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्तसे एक-एकके लिये एक-एक करोड़से अधिक स्वर्णमुद्राएँ, हजार-हजार नगर और गाँव तथा आठ-आठ सुवर्णमण्डित रथ प्रदान किये। एक-एक रानीको उन्होंने दस-दस हजार बहुमूल्य वस्त्र दिये, जिनमेंसे प्रत्येकका मूल्य सौ स्वर्णमुद्रासे अधिक था। मेरुपर्वतकी खानसे निकले हुए शुद्ध एवं अक्षय सुवर्णकी ढाली हुई एक-एक लाख मुद्राएँ उन्होंने प्रत्येक माताको अर्पित कीं। साथ ही एक-एकके लिये सौसे अधिक दासियाँ भी दीं। घड़ेके समान थनवाली दस-दस हजार दुधारू गायें और एक-एक हजार बैल भी दिये। तदनन्तर भक्तिभावसे राजकुमारने सभी माताओंको एक-एक हजार सोनेके आभूषण दिये, जिनमें हीरे जड़े हुए थे। आँवले बराबर मोतीके बने हुए प्रकाशमान हारोंकी कई ढेरियाँ लगाकर उन माताओंको दे दीं। सभीको पाँच-पाँच या सात-सात वलय (कड़े) भी दिये। महीपते! महारानी संध्यावलीके पास चन्द्रमाके समान चमकीले ढाई सौ मोतीके हार थे। धर्माङ्गदने एक-एक माताको दो-दो मनोहर हार दिये। प्रत्येकको चौबीस सौ सोनेकी थालियाँ और इतने ही घड़े प्रदान किये। राजन्! हर एक माताके लिये सौ-सौ सुन्दर पालकियाँ और उनके ढोनेवाले मोटे-ताजे शीघ्रगामी कहार दिये। इस प्रकार कुबेरके समान शोभा पानेवाले उस धन्य राजकुमारने बहुत-सी माताओंको बहुत-सा धन देकर उन सबकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर यह वचन कहा—'माताओ! मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। आप सब लोग मेरे अनुरोधसे पतिके सुखकी इच्छा रखकर मेरे पितासे आज ही चलकर कहें कि—'नरेश्वर! ब्रह्मकुमारी मोहिनी बड़ी सुशीला हैं। आप इनके साथ सैकड़ों वर्षोंतक सुखसे एकान्तमें निवास करें।'

पुत्रका यह वचन सुनकर सबके शरीरमें

हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन सबने महाराजसे जाकर कहा—'आर्यपुत्र! आप ब्रह्मकुमारी मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास करें। आपके पुत्रके तेजसे हमारी हार्दिक भावना दुःखरहित हो गयी है, इसलिये हमने आपसे यह बात कही है। आप इसपर विश्वास कीजिये।'

## राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! अपनी पत्नियोंके इस प्रकार अनुमति देनेपर महाराज रुक्माङ्गदके हर्षकी सीमा न रही। वे अपने पुत्र धर्माङ्गदसे इस प्रकार बोले—'बेटा! इस सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका पालन करो। सदा उद्यमशील और सावधान रहना। किस अवसरपर क्या करना उचित है, इसका सदा ध्यान रखना। सदाचारका पालन हो रहा है या नहीं, इसकी ओर दृष्टि रखना। सदा सचेत रहना और वाणिज्य-व्यवसायको सदा प्रिय कार्य समझकर उसे बढ़ाना। राज्यमें सदा भ्रमण करते रहना, निरन्तर दानमें अनुरक्त रहना, कुटिलतासे सदा दूर ही रहना और नित्य-निरन्तर सदाचारके पालनमें संलग्न रहना। बेटा! राजाओंके लिये सर्वत्र अविश्वास रखना ही उत्तम बताया जाता है। खजानेकी जानकारी रखना आवश्यक है।'

पिताकी यह बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाले धर्माङ्गदने भक्तिभावसे मातासहित उन्हें प्रणाम किया। फिर उस राजकुमारने उन नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गदको असंख्य धन दिया। उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बहुत-से सेवकों और कण्ठमें सुवर्णका हार धारण करनेवाली बहुत-सी दासियोंको नियुक्त किया। इस प्रकार पिताको सुख पहुँचानेके लिये पुत्रने सारी व्यवस्था की। फिर उसने पृथ्वीकी रक्षाका कार्य सँभाला। तदनन्तर अनेक राजाओंसे घिरे हुए राजा धर्माङ्गद सातों द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। उनके भ्रमण करनेसे परिणाम यह होता था कि जनताके मनमें पापबुद्धि नहीं आती थी। उनके राज्यमें कोई भी वृक्ष फल और फूलसे हीन नहीं था। कोई भी खेत ऐसा नहीं था जिसमें जौ या धान आदिकी खेती लहलहाती न हो। उस राज्यकी सभी गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं। उस दूधमें घीका अंश अधिक होता था और उसमें शक्करके समान मिठास रहती थी। वह दूध उत्तम पेय, सब रोगोंका नाशक, पापनिवारक तथा पुष्टिवर्धक होता था। कोई भी मनुष्य अपने धनको छिपाकर नहीं रखता था। पत्नी अपने पतिसे कटुवचन नहीं बोलती थी। पुत्र विनयशील तथा पिताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर होता था। पुत्रवधू सासके हाथमें रहती थी। साधारण लोग ब्राह्मणोंके उपदेशके अनुसार चलते थे। श्रेष्ठ द्विज वेदोक्त धर्मोंका पालन करते थे। मनुष्य एकादशीके दिन भोजन नहीं करते थे। पृथ्वीपर नदियाँ कभी सूखती नहीं थीं। धर्माङ्गदके राज्यपालनमें प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् पुण्यात्मा हो गया था। भगवान्‌के दिन एकादशी-व्रतका सेवन करनेसे सब लोग इस जगत्‌में सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाते थे। भूपाल! चोर और लुटेरोंका भय नहीं था। अतः अँधेरी रातमें भी कोई अपने घरके दरवाजे नहीं बंद करते थे। इच्छानुसार

विचरनेवाले अतिथि घरपर आकर ठहरते थे। (किसीके लिये कहीं रोक-टोक नहीं थी।) हल चलाये बिना ही सब ओर अन्नकी अच्छी उपज होती थी। केवल माताके दूधसे बच्चे खूब हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पतिके संयोगसे युवतियाँ भी पुष्ट और संतुष्ट रहती थीं। राजाओंसे सुरक्षित होकर समस्त जनता हृष्ट-पुष्ट रहती थी तथा शक्तिसहित धर्मका भी भलीभाँति पोषण होता था। इस प्रकार सब लोगोंमें धर्म-प्रेमकी प्रधानता थी। सभी भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लगे रहते थे। राजकुमार धर्माङ्गदके द्वारा सारी जनता सुरक्षित थी और सबका समय बड़े सुखसे बीत रहा था।

उधर राजा रुक्माङ्गद नीरोग रहकर सब प्रकारके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो प्रचुर दानकी वर्षा करते और उत्सव मनाते थे। वे मोहिनीकी चेष्टाओंके सुखसे अत्यन्त मुग्ध थे।

## धर्माङ्गदका दिग्विजय, उसका विवाह तथा उसकी शासन-व्यवस्था

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! इस प्रकार मोहिनीके विलाससे मोहित हुए राजा रुक्माङ्गदके आठ वर्ष बड़े सुखसे बीते। नवम वर्ष आनेपर उनके बलवान् पुत्र धर्माङ्गदने मलयपर्वतपर पाँच विद्याधरोंको परास्त किया और उनसे पाँच मणियोंको छीन लिया, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली और शुभकारक थीं। एक मणिमें यह गुण था कि वह प्रतिदिन कोटि-कोटि गुना सुन्दर सुवर्ण दिया करती थी। दूसरी लाखकोटि वस्त्राभूषण आदि दिया करती थी। तीसरी अमृतकी वर्षा करती और बुढ़ापेमें भी पुनः नयी जवानी ला देती थी। चौथीमें यह गुण था कि वह सभाभवन तैयार कर देती और उसमें इच्छानुसार अन्न प्रस्तुत किया करती थी। पाँचवीं मणि आकाशमें चलनेकी शक्ति देती और तीनों लोकोंमें भ्रमण करा देती थी। उन पाँचों मणियोंको लेकर धर्माङ्गद मनःशक्तिसे पिताके पास आये। राजकुमारने पिता रुक्माङ्गद और माता मोहिनीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पाँचों मणि समर्पित करके विनीत भावसे कहा—'पिताजी! पर्वतश्रेष्ठ मलयपर मैंने वैष्णवास्त्रद्वारा पाँच विद्याधरोंपर

विजय पायी है। नृपश्रेष्ठ! वे अपनी स्त्रियोंसहित आपके सेवक हो गये हैं। आप ये मणियाँ मोहिनी देवीको दे दीजिये। वे इनके द्वारा अपनी बाहोंको विभूषित करेंगी। ये मणियाँ समस्त कामनाओंको देनेवाली हैं। भूपते! आपके ही प्रतापसे मैंने सातों द्वीपोंको बड़े कष्टसे अपने अधिकारमें किया है।' तदनन्तर कुमार धर्माङ्गदने नागोंकी भोगपुरी, विशाल दानवपुरी और वरुणलोकके

विजयकी बात सुनाकर वहाँसे जीतकर लाये हुए करोड़ों रत्न, हजारों श्वेतरंगके श्यामकर्ण घोड़े और हजारों कुमारियोंको पिताको दिखाया और कहा—'पिताजी! मैं और यह सारी सम्पत्तियाँ आपके अधीन हैं। तात! पुत्रको पिताके सामने आत्मप्रशंसा नहीं करनी चाहिये। पिताके ही पराक्रमसे पुत्रकी धनराशि बढ़ती है। अत: आप अपनी इच्छाके अनुसार इनका दान अथवा संरक्षण कीजिये। मेरी माताएँ भी अपनी इस सम्पदाको देखें।'

**वसिष्ठजीने कहा**—पुत्रकी बात सुनकर नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गद बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रियाके साथ उठकर खड़े हो गये। उन्होंने वह सारी धन-सम्पत्ति देखी। उन विष्णुपरायण राजाने एक क्षणतक हर्षमें मग्न रहकर बड़े प्रेमके सहित वरुण-कन्यासहित समस्त नागकन्याओंको अपने पुत्र धर्माङ्गदके अधिकारमें दे दिया। शेष सब वस्तुएँ बहुत-से रत्नों तथा दानव-नारियोंके साथ उन्होंने मोहिनीको अर्पित कर दीं। धर्माङ्गदके लाये हुए धन-वैभवका यथायोग्य विभाजन करके राजाने समयपर पुरोहितजीको बुलाया और कहा—'ब्रह्मन्! मेरा पुत्र सदा मेरी आज्ञाके पालनमें स्थित रहा है और अभीतक यह कुमार ही है। अत: इन सब कुमारियोंका यह धर्मपूर्वक पाणिग्रहण करे। धर्मकी इच्छा रखनेवाले पिताको पुत्रका विवाह अवश्य कर देना चाहिये। जो पिता पुत्रोंको पत्नी और धनसे संयुक्त नहीं करता, उसे इस लोक और परलोकमें भी निन्दित जानना चाहिये। अत: पुत्रोंको स्त्री तथा जीवन-निर्वाहके योग्य धनसे सम्पन्न अवश्य कर देना चाहिये।'

राजाका यह वचन सुनकर पुरोहितजी बड़े प्रसन्न हुए और धर्माङ्गदका विवाह करानेके उद्योगमें लग गये। धर्माङ्गद युवा होनेपर भी लज्जावश स्त्री-सुखकी इच्छा नहीं रखते थे तथापि पिताके आदेशसे उन्होंने उस समय स्त्री-संग्रह स्वीकार कर लिया। तदनन्तर महाबाहु धर्माङ्गदने वरुण-कन्याके साथ, मनोहर नागकन्याओंके साथ भी विवाह किया, जो पृथ्वीपर अनुपम रूपवती थीं। शास्त्रीय विधिके अनुसार उन सबका विवाह करके धर्माङ्गदने ब्राह्मणोंको धन, रत्न तथा गौओंका प्रसन्नतापूर्वक दान किया। विवाहके पश्चात् उन्होंने माता और पिताके चरणोंमें हर्षके साथ प्रणाम किया। तदनन्तर राजकुमार धर्माङ्गदने अपनी माता संध्यावलीसे कहा—'देवि! पिताजीकी आज्ञासे मेरा वैवाहिक कार्य सम्पन्न हुआ है। मुझे दिव्य भोगों तथा स्वर्गसे भी कोई प्रयोजन नहीं है। पिताजीकी तथा तुम्हारी दिन-रात सेवा करना ही मेरा कर्तव्य है।'

**संध्यावली बोली**—'बेटा! तुम दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीते रहो। पिताके प्रसादसे मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करो। वत्स! तुम-जैसे गुणवान् पुत्रके द्वारा मैं इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ पुत्रवाली हो गयी हूँ और सपत्नियोंके हृदयमें मेरे लिये उच्चतम स्थान बन गया है।'

ऐसा कहकर माताने पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका मस्तक सूँघा। तत्पश्चात् उसे राजकाज देखनेके लिये विदा किया। माता संध्यावलीसे विदा लेकर राजकुमारने अन्य माताओंको भी प्रणाम किया और पिताकी आज्ञाके अधीन रहकर वे राज्यशासनका समस्त कार्य देखने लगे। वे दुष्टोंको दण्ड देते, साधु-पुरुषोंका पालन करते और सब देशोंमें घूम-घूमकर प्रत्येक कार्यकी देखभाल किया करते थे। सर्वत्र पहुँचकर प्रत्येक मासमें वहाँके कार्योंका निरीक्षण करते थे। उन्होंने हाथी और घोड़ोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था की थी। गुप्तचर-मण्डलपर भी उनकी दृष्टि रहती थी। इधर-उधरसे प्राप्त समाचारोंको वे देखते और

उनपर विचार करते थे। प्रतिदिन माप और तौलकी भी जाँच करते रहते थे। राजा धर्माङ्गद प्रत्येक घरमें जाकर वहाँके लोगोंकी रक्षाका प्रबन्ध करते थे। उनके राज्यमें कहीं दूध पीनेवाला बालक माताके स्तन न मिलनेसे रोता हो, ऐसा नहीं देखा गया। सास अपनी पुत्रवधूसे अपमानित होकर कहीं भी रोती नहीं सुनी गयी। कहीं भी समर्थ पुत्र पितासे याचना नहीं करता था। उनके राज्यभरमें किसीके यहाँ वर्णसंकर संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई। लोग अपना धन-वैभव छिपाकर नहीं रखते थे। कोई भी धर्मपर दोषारोपण नहीं करता था। सधवा नारी कभी भी बिना चोलीके नहीं रहती थी। उन्होंने यह घोषणा करायी थी कि 'मेरे राज्यमें स्त्रियाँ घरोंमें सुरक्षित रहें। विधवा केश न रखावे और सौभाग्यवती कभी केश न कटावे। जो दूसरोंको साधारणवृत्ति (जीवन-निर्वाहके लिये अन्न आदि) नहीं देता, वह निर्दयी मेरे राज्यमें निवास न करे। दूसरोंको सद्गुणोंका उपदेश देनेवाला पुरुष स्वयं सद्गुण-शून्य हो और ऋत्विग् यदि शास्त्रज्ञानसे वञ्चित हो तो वह मेरे राज्यमें निवास न करे। जो नीलका उत्पादन करता है अथवा जो नीलके रंगसे अधिकतर वस्त्र रँगा करता है, उन दोनोंको मेरे राज्यसे निकाल देना चाहिये। जो मदिरा बनाता है, वह भी यहाँसे निर्वासित होने योग्य ही है। जो मांस भक्षण करता है तथा जो अपनी स्त्रीका अकारण परित्याग करता है, उसका मेरे राज्यमें निवास न हो। जो गर्भवती अथवा सद्यःप्रसूता युवतीसे समागम करता है, वह मनुष्य मुझ-जैसे शासकोंके द्वारा दण्डनीय है।'

## राजा रुक्माङ्गदका मोहिनीसे कार्तिकमासकी महिमा तथा चातुर्मास्यके नियम, व्रत एवं उद्यापन बताना

**वसिष्ठजी कहते हैं—**राजेन्द्र! इस प्रकार पिताकी आज्ञासे एकादशी-व्रतका पालन करते हुए धर्माङ्गद इस पृथ्वीका राज्य करने लगे। उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो धर्म-पालनमें तत्पर न हो। महीपते! कोई भी व्यक्ति दुःखी, संतानहीन अथवा कोढ़ी नहीं था। नरेश्वर! उस राज्यमें सब लोग हृष्ट-पुष्ट थे। पृथ्वी निधि देनेवाली थी, गौएँ बछड़ोंको दूध पिलाकर तृप्त रखतीं और एक घड़ा दूध देती थीं। वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधु भरा था। एक-एक वृक्षपर एक-एक दोन मधु सुलभ था। सर्वथा प्रसन्न रहनेवाली पृथ्वीपर सब प्रकारके धान्योंकी उपज होती थी। त्रेताके अन्तका द्वापरयुग सत्ययुगसे होड़ लगाता था। वर्षाकाल बीत चला, शरद्-ऋतुका आकाश और गृहस्थोंका घर धूल-पङ्कसे रहित स्वच्छ हो गया। राजा रुक्माङ्गद मोहिनीके प्रेमसे अत्यन्त मुग्ध होनेपर भी एकादशी-व्रतकी अवहेलना नहीं करते थे। दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन तीन दिनोंतक राजा रतिक्रीडा त्याग देते थे। इस प्रकार क्रीडा करते हुए उन्हें लगभग एक वर्ष पूरा हो गया। कालज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश! उस समय परम मङ्गलमय श्रेष्ठ कार्तिकमास आ पहुँचा था, जो भगवान् विष्णुकी निद्राको दूर करनेवाला परम पुण्यदायक मास है। राजन्! उसमें वैष्णव मनुष्योंद्वारा किया हुआ सारा पुण्य अक्षय होता है और विष्णुलोक प्रदान करता है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, दयाके तुल्य कोई धर्म नहीं है और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है। वेदके समान दूसरा शास्त्र नहीं है, गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है। भूमिदानके समान अन्य दान नहीं है और

पत्नी-सुखके समान कोई (लौकिक) सुख नहीं है। खेतीके समान कोई धन नहीं है, गाय रखनेके समान कोई लाभ नहीं है, उपवासके समान कोई तप नहीं है और (मन और) इन्द्रियोंके संयमके समान कोई कल्याणमय साधन नहीं है। रसनातृप्तिके समान कोई (सांसारिक) तृप्ति नहीं है, ब्राह्मणके समान कोई वर्ण नहीं है, धर्मके समान कोई मित्र नहीं है और सत्यके समान कोई यश नहीं है। आरोग्यके समान कोई ऐश्वर्य नहीं है, भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है तथा लोकमें कार्तिकव्रतके समान दूसरा कोई पावन व्रत नहीं है। ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। कार्तिक सबसे श्रेष्ठ मास है और वह भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है।

राजन्! कार्तिक मासको आया देख अत्यन्त मुग्ध हुए महाराज रुक्माङ्गदने मोहिनीसे यह बात कही—'देवि! मैंने तुम्हारे साथ बहुत वर्षोंतक रमण किया। शुभानने! इस समय मैं कुछ कहना चाहता हूँ। उसे सुनो। देवि! तुम्हारे प्रति आसक्त होनेके कारण मेरे बहुत-से कार्तिक मास व्यर्थ बीत गये। कार्तिकमें मैं केवल एकादशीको छोड़कर और किसी दिन व्रतका पालन न कर सका। अतः इस बार मैं व्रतके पालनपूर्वक कार्तिक मासमें भगवान्की उपासना करना चाहता हूँ। कार्तिकमें सदा किये जानेवाले भोज्योंका परित्याग कर देनेपर साधकको अवश्य ही भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त होता है। पुष्करतीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाको व्रत और स्नान करके मनुष्य आजन्म किये हुए पापसे मुक्त हो जाता है। जिसका कार्तिक मास व्रत, उपवास तथा नियमपूर्वक व्यतीत होता है, वह विमानका अधिकारी देवता होकर परम गतिको प्राप्त होता है। अतः मोहिनी! तुम मेरे ऊपर मोह छोड़कर आज्ञा दो, जिससे इस समय मैं कार्तिकका व्रत आरम्भ करूँ।'

**मोहिनी बोली**—नृपशिरोमणे! कार्तिक मासका माहात्म्य विस्तारपूर्वक बताइये। मैं कार्तिक-माहात्म्य सुनकर जैसी मेरी इच्छा होगी, वैसा करूँगी।

**रुक्माङ्गदने कहा**—वरानने! मैं इस कार्तिक मासकी महिमा बताता हूँ। सुन्दरी! कार्तिक मासमें जो कृच्छ्र अथवा प्राजापत्यव्रत करता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है अथवा तीन रातका उपवास स्वीकार करता है

अथवा दस दिन, पंद्रह दिन या एक मासतक निराहार रहता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य कार्तिकमें एकभुक्त (केवल दिनमें एक समय भोजन) या नक्तव्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचितव्रत (बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्नका दिन या रातमें केवल एक बार भोजन) करते हुए भगवान्‌की आराधना करते हैं, उन्हें सातों द्वीपोंसहित यह पृथ्वी प्राप्त होती है। विशेषतः पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी तथा सूकरक्षेत्रमें यह कार्तिक मास व्रत, दान और भगवत्पूजन आदि करनेसे भक्ति देनेवाला बताया गया है। कार्तिकमें एकादशीका दिन तथा भीष्मपञ्चक अधिक पुण्यमय माना गया है। मनुष्य कितने ही पापोंसे भरा हुआ क्यों न हो, यदि वह रात्रि जागरणपूर्वक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करे तो फिर कभी माताके गर्भमें नहीं आता। वरारोहे! उस दिन जो वाराहमण्डलका दर्शन करता है, वह बिना सांख्ययोगके परमपदको प्राप्त होता है। शुभे! कार्तिकमें शूकरमण्डल या कोकवाराहका दर्शन करके मनुष्य फिर किसीका पुत्र नहीं होता। उसके दर्शनसे मनुष्योंका आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके पापोंसे छुटकारा हो जाता है। ब्रह्मकुमारी! उक्त मण्डल, श्रीधर तथा कुब्जकका दर्शन करके भी मनुष्य पापमुक्त होते हैं। कार्तिकमें तैल छोड़ दे। कार्तिकमें मधु त्याग दे। कार्तिकमें स्त्रीसेवनका भी त्याग कर दे। देवि! इन सबके त्यागद्वारा तत्काल ही वर्षभरके पापसे छुटकारा मिल जाता है। जो थोड़ा भी व्रत करनेवाला है, उसके लिये कार्तिक मास सब पापोंका नाशक होता है। कार्तिकमें ली हुई दीक्षा मनुष्योंके जन्मरूपी बन्धनका नाश करनेवाली है। अतः पूरा प्रयत्न करके कार्तिकमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो तीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाका व्रत करता है या कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको व्रत करके मनुष्य यदि सुन्दर कलशोंका दान करता है तो वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। सालभरतक चलनेवाले व्रतोंकी समाप्ति कार्तिकमें होती है। अतः मोहिनी! मैं कार्तिक मासमें समस्त पापोंके नाश तथा तुम्हारी प्रीतिकी वृद्धिके लिये व्रत-सेवन करूँगा।

**मोहिनीने कहा**—पृथ्वीपते! अब चातुर्मास्यकी विधि और उद्यापनका वर्णन कीजिये, जिससे सब व्रतोंकी पूर्णता होती है। उद्यापनसे व्रतकी न्यूनता दूर होती है और वह पुण्यफलका साधक होता है।

**राजा बोले**—प्रिये! चातुर्मास्यमें नक्तव्रत करनेवाला पुरुष ब्राह्मणको षड्रस भोजन करावे। अयाचित-व्रतमें सुवर्णसहित वृषभ दान करे। जो प्रतिदिन आँवलेके फलसे स्नान करता है, वह मनुष्य दही और खीर दान करे। सुभ्रु! यदि फल न खानेका नियम ले तो उस अवस्थामें फलदान करे। तेलका त्याग करनेपर घीदान करे और घीका त्याग करनेपर दूधका दान करे। यदि धान्यके त्यागका नियम लिया हो तो उस अवस्थामें अगहनीके चावल या दूसरे किसी धान्यका दान करे। भूमिशयनका नियम लेनेपर गद्दा, रजाई और तकियासहित शय्यादान करे। पत्तेमें भोजनका नियम लेनेवाला मनुष्य घृतसहित पात्रदान करे। मौनव्रती पुरुष घण्टा, तिल और सुवर्णका दान करे। व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन करावे। दोनोंके लिये उपभोगसामग्री तथा दक्षिणासहित शय्यादान करे। प्रातःस्नानका नियम लेनेपर अश्वदान करे और स्नेहरहित (बिना तेलके) भोजनका नियम लेनेपर घी और सत्तू दान करे। नख और केश न कटाने—धारण करनेका नियम लेनेपर दर्पण दान करे। पादत्राण (जूता,

खड़ाऊँ आदि)-के त्यागका नियम लेनेपर जूता दान करे। नमकका त्याग करनेपर गोदान करे। प्रिये! जो इस अभीष्ट व्रतमें प्रतिदिन देवमन्दिरमें दीप-दान करता है, वह सुवर्ण अथवा ताँबेका घृतयुक्त दीपक दान करे तथा व्रतकी पूर्तिके लिये वैष्णवको वस्त्र एवं छत्र दान करे। जो एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है, वह रेशमी वस्त्र दान करे। त्रिरात्र-व्रतमें सुवर्ण तथा वस्त्राभूषणोंसे

अलंकृत शय्यादान करे। षड्रात्र आदि उपवासोंमें छत्रसहित शिबिका (पालकी) दान करे। साथ ही हाँकनेवाले पुरुषके साथ मोटा-ताजा गाड़ी खींचनेवाला बैल दान करे। एक भक्त (आठ पहरमें केवल एक बार भोजन करनेके) व्रतका नियम लेनेपर बकरी और भेड़ दान करे। फलाहारका नियम ग्रहण करनेपर सुवर्णका दान करे। शाकाहारके नियममें फल, घी और सुवर्ण दान करे। सम्पूर्ण रसों तथा अबतक जिनकी चर्चा नहीं की गयी, ऐसी वस्तुओंका त्याग करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सोने-चाँदीका पात्र दान करे। सुभ्रु! जिसके लिये जो दान कर्तव्य बताया गया है, उनका पालन न हो सके तो भगवान् विष्णुके स्मरणपूर्वक ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करे। सुन्दरी! देवता, तीर्थ और यज्ञ भी ब्राह्मणोंके वचनका पालन करते हैं; फिर कल्याणकी इच्छा रखनेवाला कौन विद्वान् मनुष्य उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा। प्रिये! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको जिस प्रकार यह धर्म-रहस्यसे युक्त उपदेश दिया था, वही मैंने तुमसे प्रकाशित किया है। यह दूसरे अनधिकारियोंके सामने प्रकट करने योग्य नहीं है। यह दान और व्रत भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका हेतु और मनोवाञ्छित फल देनेवाला है।

## राजा रुक्माङ्गदकी आज्ञासे रानी संध्यावलीका कार्तिक मासमें कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ करना, धर्माङ्गदकी एकादशीके लिये घोषणा, मोहिनीका राजासे एकादशीको भोजन करनेका आग्रह और राजाकी अस्वीकृति

**मोहिनी बोली**—राजेन्द्र! आपने कार्तिक मासमें उपवासके विषयमें जो बातें कही हैं, वे बहुत उत्तम हैं। पर राजाओंके लिये तीन ही कर्म प्रधान रूपसे बताये गये हैं। पहला कर्म है दान देना, दूसरा प्रजाका पालन करना तथा तीसरा है विरोधी राजाओंसे युद्ध करना। आपको यह व्रत नहीं करना चाहिये। मैं तो आपके बिना कहीं दो घड़ी भी नहीं रह सकती; फिर तीस दिनोंतक मैं आपसे अलग कैसे रह सकती हूँ। वसुधापते! आप जहाँ उपवास करना उचित मानते हैं, वहाँ उपवास न करके महात्मा ब्राह्मणोंको भोजन-दान करें अथवा यदि उपवास ही आवश्यक हो तो आपको जो

ज्येष्ठ पत्नी हैं, वे ही यह सब व्रत आदि करें।

मोहिनीके ऐसा कहनेपर राजा रुक्माङ्गदने संध्यावलीको बुलाया। बुलानेपर वे प्रचुर दक्षिणा देनेवाले महाराजके पास तत्काल आ पहुँचीं और हाथ जोड़कर बोलीं—'प्राणनाथ! दासीको किसलिये बुलाया? आज्ञा कीजिये, मैं उसका पालन करूँगी।'

रुक्माङ्गदने कहा—भामिनि! मैं तुम्हारे शील-स्वभाव और कुलको जानता हूँ। तुम्हारे आदेशसे ही मैंने मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास किया है। इस तरह चिरकालतक प्रियाके समागम-सुखसे मुग्ध हो निवास करते-करते मेरे बहुतसे कार्तिक मास व्यर्थ बीत गये। तथापि मेरा एकादशीव्रत कभी भङ्ग नहीं होने पाया है। अब सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह कार्तिक मास आया है। देवि! मैं उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाले इस कार्तिकव्रतको करना चाहता हूँ। परंतु शुभे! ये ब्रह्मकुमारी मुझे इस व्रतसे रोकती हैं। इसलिये शरीरको सुखानेवाले कृच्छ्र नामक व्रतका पालन मेरी ओरसे तुम करो।

रानी संध्यावलीने उस समय पतिदेवका वह प्रस्ताव सुनकर कहा—'प्रभो! मैं आपके संतोषके लिये व्रतका पालन अवश्य करूँगी। आपके लिये मैं अपने शरीरको आगमें भी झोंक सकती हूँ। भूमिपाल! आपने जो आज्ञा दी है, वह तो बहुत उत्तम है। नरदेवनाथ! मैं इसका पालन करूँगी।' यमराजके शत्रु राजा रुक्माङ्गदसे ऐसा कहकर मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली रानी संध्यावलीने उन्हें प्रणाम किया और समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये उस उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया। अपनी प्रियाद्वारा उत्तम कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ किये जानेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनीसे यह बात कही—'सुभ्रु! मैंने तुम्हारी आज्ञाका पालन किया। देवि! मेरे प्रति तुम्हारे मनमें जो-जो कामनाएँ निहित हैं, उन सबको सफल कर लो। मैं तुम्हारे संतोषके लिये राज्यशासनके समस्त कार्योंसे अलग हो गया हूँ। तुम्हारे सिवा दूसरी कोई नारी मुझे सुख देनेवाली नहीं है।'

अपने प्राणवल्लभके मुखसे ऐसी बात सुनकर मोहिनीके हर्षकी सीमा न रही। उसने राजासे कहा—'देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षस सब मेरी दृष्टिमें आये, किंतु मैं सबको त्यागकर केवल आपके प्रति स्नेहयुक्त हो मन्दराचलपर आयी थी। लोकमें कामकी सफलता इसीमें है कि प्रिया और प्रियतम दोनों एकचित्त हों—परस्पर एक-दूसरेको चाहते हों।' उस समय महाराज रुक्माङ्गदके कानोंमें डंकेकी चोट सुनायी दी, जो मतवाले गजराजके मस्तकपर रखकर धर्माङ्गदके आदेशसे बजाया जा रहा था। उस पटह-ध्वनिके साथ यह घोषणा हो रही थी—'लोगो! कल प्रातः-कालसे भगवान् विष्णुका दिन (एकादशी) है, अतः आज केवल एक समय भोजन करके रहो। क्षार नमक छोड़ दो। सब-के-सब हविष्यान्नका सेवन करो। भूमिपर शयन करो। स्त्री-संगमसे दूर रहो और पुराणपुरुषोत्तम देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका स्मरण करो। आज एक समय भोजन करके कल दिन-रात उपवास करना होगा। ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये श्राद्ध चाहे न किया गया हो, तुम्हें पिण्ड न मिला हो और तुम्हारे पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध न कर सके हों, तो भी तुम्हें भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होगी। यह कार्तिक शुक्ला एकादशी भगवान् श्रीहरिकी निद्रा दूर करनेवाली है। प्रातःकाल एकादशी प्राप्त होनेपर तुम कदापि भोजन न करो। इस प्रबोधिनी एकादशीको उपवास करनेसे इच्छानुसार किये हुए ब्रह्महत्या आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे। यह

तिथि धर्मपरायण तथा न्याययुक्त सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंको प्रबोध (ज्ञान) देती है और इसमें भगवान् विष्णुका प्रबोध (जागरण) होता है, इसलिये इसका नाम प्रबोधिनी है। इस एकादशीको जो एक बार भी उपवास कर लेता है, वह मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। मनुष्यो! तुम अपने वैभवके अनुसार इस एकादशीको चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

इस प्रकार मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले नगाड़ेको बजाकर जब उक्त घोषणा की जा रही थी, उस समय वे भूपाल मोहिनीकी शय्या छोड़कर उठ गये। फिर मोहिनीको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देते हुए बोले—'देवि! कल प्रात:काल पापनाशक एकादशी तिथि होगी। अत: आज मैं संयमपूर्वक रहूँगा। तुम्हारी आज्ञासे मैंने कृच्छ्र-व्रत तो संध्यावलीदेवीके द्वारा कराया है, किंतु यह प्रबोधिनी एकादशी मुझे स्वयं भी करनी है। यह सम्पूर्ण पापबन्धनोंका उच्छेद करनेवाली तथा उत्तम गति देनेवाली है। अत: मोहिनी देवी! आज मैं हविष्य भोजन करूँगा और संयम-नियमसे रहूँगा। विशाललोचने! तुम भी मेरे साथ उपवासपूर्वक समस्त इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् अधोक्षजकी आराधना करो, जिससे निर्वाणपदको प्राप्त करोगी।'

**मोहिनी बोली**—राजन्! चक्रधारी भगवान् विष्णुका पूजन जन्म-मृत्यु तथा जरावस्थाका नाश करनेवाला है—यह बात आपने ठीक कही है, किंतु पहले मन्दराचलके शिखरपर आपने मुझे अपना दाहिना हाथ देकर प्रतिज्ञा की है, उसके पालनका समय आ गया है। अत: मुझे आप वर दीजिये, यदि नहीं देते हैं तो जन्मसे लेकर अबतक आपने बड़े यत्नसे जो पुण्यसंचय किया है, वह सब शीघ्र नष्ट हो जायगा।

**रुक्माङ्गदने कहा**—प्रिये! आओ, तुम्हारे मनमें जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा। मेरे पास कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो, मेरा यह जीवनतक तुम्हें अर्पित है, फिर ग्राम, धन और पृथ्वीके राज्य आदिकी तो बात ही क्या है।

**मोहिनी बोली**—राजन्! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो आप एकादशीके दिन उपवास न करके भोजन करें। यही वर मुझे देना चाहिये। जिसके लिये मैंने पहले ही आपसे प्रार्थना कर ली है। महाराज! यदि आप वर नहीं देंगे तो असत्यवादी होकर घोर नरकमें जायँगे और एक कल्पतक उसीमें पड़े रहेंगे।

**राजाने कहा**—कल्याणी! ऐसी बात न कहो। यह तुम्हें शोभा नहीं देती। अहो! तुम ब्रह्माजीकी पुत्री होकर धर्ममें विघ्न क्यों डालती हो? शुभे! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी एकादशीको भोजन नहीं किया, तब आज जब कि मेरे बाल सफेद हो गये हैं, मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ। जिसकी जवानी बीत चुकी है और जिसकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो गयी है, उस मनुष्यके लिये यही उचित है कि वह गङ्गाजीका सेवन या भगवान् विष्णुकी आराधना करे। सुन्दरी! मुझपर प्रसन्न होओ। मेरे व्रतको भङ्ग न करो। मैं तुम्हें राज्य और सम्पत्ति दे दूँगा अथवा इसकी इच्छा न हो तो और कोई कार्य कहो उसे पूरा करूँगा। अमावास्याके दिन मैथुन करनेपर जो पाप होता

है, चतुर्दशीको हजामत बनवानेसे मनुष्यमें जिस पापका संचार होता है और षष्ठीको तेल खाने या लगानेसे जो दोष होता है, वे सब एकादशीको भोजन करनेसे प्राप्त होते हैं। गोचरभूमिका नाश करनेवाले, झूठी गवाही देनेवाले, धरोहर हड़पनेवाले, कुमारी कन्याके विवाहमें विघ्न डालनेवाले विश्वासघाती, मरे हुए बछड़ेवाली गायको दुहनेवाले तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेवाले पुरुषको जो पाप लगता है, मणिकूट[१], तुलाकूट[२], कन्यानृत[३] और गवानृतमें[४] जो पातक होता है, वही एकादशीको अन्नमें विद्यमान रहता है। चारुलोचने! मैं इन सब बातोंको जानता हूँ, अतः एकादशीको पापमय भोजन कैसे करूँगा?

**मोहिनी बोली**—राजेन्द्र! एकभुक्तव्रत, नक्त-व्रत, अयाचितव्रत अथवा उपवासके द्वारा एकादशी-व्रतको सफल बनावे। उसका उल्लङ्घन न करे, यह बात ठीक हो सकती है; किंतु जिन दिनों मैं मन्दराचलपर रहती थी, उन दिनों महर्षि गौतमने मुझे एक बात बतायी थी, जो इस प्रकार है—गर्भिणी स्त्री, गृहस्थ पुरुष, क्षीणकाय रोगी, शिशु, वलिगात्र (झुर्रियोंसे जिसका शरीर भरा हुआ है, ऐसा), यज्ञके आयोजनके लिये उद्यत पुरुष एवं संग्रामभूमिमें रहनेवाले योद्धा तथा पतिव्रता स्त्री—इन सबके लिये निराहार व्रत करना उचित नहीं है। नरश्रेष्ठ! एकादशीको बिना व्रतके नहीं व्यतीत करना चाहिये—यह आज्ञा उपर्युक्त व्यक्तियोंपर लागू नहीं होती। अतः जब आप एकादशीको भोजन कर लेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी। अन्यथा यदि आप अपना सिर काटकर भी मुझे दे दें तो भी मुझे प्रसन्नता न होगी। राजन्! यदि आप एकादशीको भोजन नहीं करेंगे तो आप-जैसे असत्यवादीके शरीरका मैं स्पर्श नहीं करूँगी। महाराज! समस्त वर्णों और आश्रमोंमें सत्यकी ही पूजा होती है। महीपते! आप-जैसे राजाओंके यहाँ तो सत्यका विशेष आदर होना चाहिये। सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं। भूपाल! सत्यपर ही यह पृथ्वी टिकी हुई है और सत्य ही सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है। सत्यसे वायु चलती है, सत्यसे आग जलती है और इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का आधार सत्य ही है। सत्यके ही बलसे समुद्र अपनी मर्यादाके आगे नहीं बढ़ता। राजन्! सत्यसे ही बँधकर विंध्यपर्वत ऊँचा नहीं उठता और सत्यके ही प्रभावसे युवती स्त्री समय बीतनेपर कभी गर्भ नहीं धारण करती। सत्यमें स्थित होकर ही वृक्ष समयपर फूलते-फलते दिखायी देते हैं। महीपते! मनुष्योंके लिये दिव्यलोक आदिके साधनका आधार भी सत्य ही है। सहस्रों अश्वमेध-यज्ञोंसे भी बढ़कर सत्य ही है। यदि आप असत्यका आश्रय लेंगे तो मदिरापानके तुल्य पातकसे लिप्त होंगे।

---

१. जो रत्नोंकी बिक्री करनेवाला पुरुष असलीका दाम लेकर नकली रत्न दे दे, उसका वह कर्म 'मणिकूट' नामक पाप है।

२. तौलमें ग्राहकको धोखा देकर कम माल देना 'तुलाकूट' नामक पाप है।

३. ब्याहके लिये एक कन्याको दिखाकर दूसरी सदोष कन्याको विवाह देना अथवा कन्याके सम्बन्धमें झूठ कहना 'कन्यानृत' नामक दोष है।

४. किसीको एक गाय देनेकी बात कहकर देते समय उसे बदलकर दूसरी दे देना अथवा गायके सम्बन्धमें झूठी गवाही देना 'गवानृत' कहा गया है।

## राजा रुक्माङ्गदद्वारा मोहिनीके आक्षेपोंका खण्डन, एकादशीव्रतकी वैदिकता, मोहिनीद्वारा गौतम आदि ब्राह्मणोंके समक्ष अपने पक्षकी स्थापना

**राजा बोले**—वरानने! गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर एकादशीको भोजन करनेके विषयमें तुमने जो महर्षि गौतमकी कही हुई बात बतायी है, वह कथन पुराणसम्मत नहीं है। पुराणमें तो विद्वानोंका किया हुआ यह निर्णय स्पष्टरूपसे बताया गया है कि एकादशी तिथिको भोजन न करे। फिर मैं एकादशीको भोजन कैसे करूँगा? एकादशीके दिन क्षीणकाय पुरुषोंके लिये मुनीश्वरोंने फल, मूल, दूध और जलको अनुकूल एवं भोज्य बताया है। एकादशीको किसीके लिये अन्नका भोजन किन्हीं महापुरुषोंने नहीं कहा है। जो लोग ज्वर आदि रोगोंके शिकार हैं उनके लिये तो उपवास और उत्तम बताया गया है। धार्मिक पुरुषोंके लिये एकादशीके दिन उपवास शुभ एवं सद्गति देनेवाला कहा गया है। अतः तुम भोजन करनेके लिये आग्रह न करो, इससे मेरा व्रत भङ्ग हो जायगा। इसके सिवा, तुम्हें जो भी रुचिकर प्रतीत हो, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा।

**मोहिनीने कहा**—राजन्! आप एकादशीको भोजन करें, इसके सिवा दूसरी कोई बात मुझे अच्छी नहीं लगती। एकादशीके दिन यह उपवासका विधान वेदोंमें नहीं देखा जाता है।

भूपते! मोहिनीकी यह बात सुनकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा रुक्माङ्गद मनमें तो कुपित हुए; परंतु बाहरसे हँसते हुए-से बोले—'मोहिनी! मेरी बात सुनो! वेद अनेक रूपोंमें स्थित है। यज्ञ आदि कर्मकाण्ड वेद है, स्मृति वेद है और ये दोनों प्रकारके वेद पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। अतः वरानने! मैं वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको मान्यता देता हूँ। जो शास्त्रको बहुत कम जानता है, उससे वेद डरता है कि 'यह कहीं मुझपर ही प्रहार न कर बैठे।' सब विषयोंका निर्णय इतिहास और पुराणोंने पहलेसे ही कर रखा है। वेदोंमें जो नहीं देखा गया, वह सब स्मृतिमें दृष्टिगोचर होता है। वेदों और स्मृतियोंमें भी जो बात नहीं देखी गयी है, उसका वर्णन पुराणोंने किया है। प्रिये! हत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तथा रोगीके औषधका वर्णन भी पुराणोंमें मिलता है। उन प्रायश्चित्तोंके बिना पापकी शुद्धि नहीं हो सकती। सुभ्रु! वेदों, वेदके उपाङ्गों, पुराणों तथा स्मृतियोंद्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह सब वेदमें ही बताया गया है—ऐसा मानना चाहिये। वरानने! पुराण बार-बार यह दुहराते हैं कि एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' पिताको कौन नहीं प्रणाम करेगा, कौन माताकी पूजा नहीं करेगा, कौन सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाके समीप नहीं जायगा और कौन है जो एकादशीको भोजन करेगा? कौन वेदकी निन्दा करेगा, कौन ब्राह्मणको नीचे गिरायेगा, कौन पर-स्त्री-गमन करेगा और कौन एकादशीको अन्न खायेगा?

**मोहिनीने कहा**—घूर्णिके! तुम शीघ्र जाकर वेद-विद्याके पारङ्गत ब्राह्मणोंको यहाँ बुला लाओ, जिनके वाक्यसे प्रेरित होकर ये राजा एकादशीको भोजन करें।

उसकी बात सुनकर घूर्णिका गयी और वेद-विद्यासे सुशोभित गौतम आदि ब्राह्मणोंको बुलाकर मोहिनीके पास ले आयी। उन वेद-वेदाङ्गके

पारङ्गत ब्राह्मणोंको आया देख राजासहित मोहिनीने प्रणाम किया। वह अपना काम बनानेके प्रयत्नमें लग गयी थी। महीपाल! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वे सब ब्राह्मण सोनेके सिंहासनोंपर बैठे। तदनन्तर उनमेंसे वयोवृद्ध ब्राह्मण गौतमने कहा—'देवि! सब प्रकारके संदेहका निवारण करनेवाले तथा अनेक शास्त्रोंमें कुशल हम सब ब्राह्मण यहाँ आ गये हैं। जिसके लिये हमें बुलाया गया है वह कारण बताइये।' उनकी बात सुनकर मोहिनी बोली।

**मोहिनीने कहा**—ब्राह्मणो! हमारा यह संदेह तो जड़तापूर्ण है; साथ ही छोटा भी है। इसपर अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोग प्रकाश डालें। ये राजा कहते हैं—मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा, किंतु यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका है। मरे हुए पितर भी अन्नद्वारा श्राद्ध करनेपर स्वर्गलोकमें तृप्ति एवं प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। द्विजवरो! स्वर्गके देवता बेरके बराबर पुरोडाशकी भी आहुति पानेकी इच्छा रखते हैं, अतः अन्न सर्वोत्तम अमृत है, भूखी हुई चींटी भी मुखसे चावल लेकर बड़े कष्टसे अपने बिलके भीतर जाती है। भला, अन्न किसको अच्छा नहीं लगता। ये महाराज एकादशी प्राप्त होनेपर खाना-पीना बिलकुल छोड़ देते हैं; किंतु व्रतका सेवन विधवाओं और यतियोंके लिये ही उचित होता है। राजाका धर्म है प्रजाकी रक्षा करना। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। स्त्रियोंके लिये पतिसेवा, पुत्रोंके लिये माता-पिताकी सेवा, शूद्रोंके लिये द्विजोंकी सेवा तथा राजाओंके लिये सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा स्वधर्म है। जो अपने धर्मानुकूल कर्मका परित्याग करके अज्ञान अथवा प्रमादवश परधर्मके लिये कष्ट उठाता है, वह निश्चय ही पतित है। इन राजाका शरीर तो अत्यन्त क्षीण हो गया है; फिर ये एकादशीके दिन संयम-नियमका पालन कैसे करेंगे? अन्नसे ही प्राणकी पुष्टि होती है और प्राणसे शरीरमें विशेषरूपसे चेष्टाकी शक्ति आती है। चेष्टासे शत्रुका नाश होता है। जो चेष्टा या पुरुषार्थसे रहित है, उसका पराभव होता है। ऐसा जानकर मैं राजाको बराबर समझाती हूँ, परंतु ये समझ नहीं पाते।

## राजाके द्वारा एकादशीके दिन भोजनविषयक मोहिनी तथा ब्राह्मणोंके वचनका खण्डन, मोहिनीका रुष्ट होकर राजाको त्यागकर जाना और धर्माङ्गदका उसे लौटाकर लाना एवं पितासे मोहिनीको दी हुई वस्तु देनेका अनुरोध करना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—मोहिनीकी कही हुई बात सुनकर वे ब्राह्मणलोग 'यह ठीक ही है' ऐसा कहकर राजासे बोले।

**ब्राह्मणोंने कहा**—राजन्! आपने जो यह पुण्यमय शपथ कर ली है कि दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये, वह निश्चय शास्त्रदृष्टिसे नहीं, अपनी बुद्धिसे ही किया गया है। जो अग्निहोत्री हैं, उनके लिये दोनों संध्याओंमें भोजनका विधान है। ब्राह्मण आदि तीन वर्णके लोग होमावशिष्ट (यज्ञशिष्ट) अन्नके भोक्ता बताये गये हैं। प्रभो! जो सदा अस्त्र-शस्त्र उठाये ही रहते हैं और दुष्ट पुरुषोंको संयममें रखते हैं, ऐसे भूपालोंके लिये विशेषत: उपवास-कर्म कैसे उचित हो सकता है? शास्त्रसे या अशास्त्रसे आपने इस व्रतके लिये जो प्रतिज्ञा कर ली है, वह ठीक है; किंतु आप ब्राह्मणोंके साथ भोजन करें, इससे आपका व्रत भङ्ग नहीं हो सकता।

यह वचन सुनकर राजाके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। पर वे उन ब्राह्मणोंसे मधुर वाणीमें बोले—'विप्रवरो! आप लोग सब प्राणियोंको मार्ग दिखानेवाले हैं, अत: आपको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये। जो लोग एकादशीके दिन उपवासका विधान करनेवाले वचनको (केवल) यतियों और विधवाओंके लिये ही विहित बताते हैं, वे ठीक नहीं कहते हैं। वैष्णवोंका कहीं ऐसा मत नहीं है। आप लोगोंने जो यह कहा है कि राजाओंके लिये उपवासका विधान नहीं है, उसके विषयमें मैं वैष्णवाचार-लक्षणके वचन सुनाता हूँ, आप लोग सुनें। 'मदिरा कभी नहीं पीना चाहिये, ब्राह्मणको कभी नहीं मारना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको जूएका खेल नहीं खेलना चाहिये और एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये। नहीं करने योग्य कार्यको करके कौन सौ वर्षोंतक जीवित रहता है? कौन सचेष्ट मनुष्य है, जो एकादशीके दिन भोजन करे। उत्तर दिशामें रहनेवाले विष्णुधर्मपरायण ब्राह्मणोंको तो उचित है कि वे एकादशीके दिन पशुओंको भी अन्न न दें। द्विजोत्तमो! मेरा शरीर क्षीण नहीं है और मैं रोगी भी नहीं हूँ, अत: ब्राह्मणके कहनेमात्रसे मैं एकादशीके व्रतका त्याग कैसे करूँगा? मेरा पुत्र धर्माङ्गद इस भूतलकी रक्षा कर रहा है। अत: मैं लोक या प्रजाकी रक्षारूप धर्मसे भी शून्य नहीं हूँ। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। द्विजवरो! ऐसा जानकर आपलोगोंको वैष्णव-व्रतका पालन करनेवाले मेरे प्रतिकूल कोई व्रतनाशक वचन नहीं कहना चाहिये। देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, ब्राह्मण, हमारे पिता, भगवान् विष्णु, भगवान् शिव अथवा मोहिनीके पिता श्रीब्रह्माजी, सूर्य अथवा और कोई लोकपाल स्वयं आकर कहें तो भी मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा। द्विजो! इस पृथ्वीपर विख्यात यह राजा रुक्माङ्गद अपनी सच्ची प्रतिज्ञाको कभी निष्फल नहीं कर सकता। ब्राह्मणो! इन्द्रका तेज क्षीण हो जाय, हिमालय बदल जाय, समुद्र सूख जाय तथा अग्नि अपनी स्वाभाविक उष्णताको त्याग दे तथापि मैं एकादशीके दिन उपवासरूप व्रतका त्याग नहीं

करूँगा। विप्रगण! तीनों लोकोंमें यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है और डंकेकी चोटसे दुहरायी जाती है कि जो लोग रुक्माङ्गदके गाँव, देश तथा अन्य स्थानोंमें एकादशीको भोजन करेंगे, वे पुत्रसहित दण्डनीय एवं वध्य होंगे और उनके लिये इस राज्यमें ठहरनेका स्थान नहीं होगा। एकादशीका दिन सब यज्ञोंसे प्रधान पापनाशक, धर्मवर्धक, मोक्षदायक तथा जन्मरूपी बन्धनको काटनेवाला है। यह तेजकी निधि है और सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि भी है। इस तरहके शब्दकी घोषणा होनेपर भी यदि मैं एकादशीको भोजन करता हूँ तो पापका प्रवर्तक होऊँगा। मेरा व्रत भङ्ग हो जानेपर मुझे जन्म देनेवाली माता अपनेको व्यर्थ मानेगी तथा ब्राह्मण, देवता तथा पितर निराश होंगे। जो वेद, पुराण और शास्त्रोंको नहीं मानता, वह अन्तमें सूर्यपुत्र यमराजकी पुरीमें जाता है। जो वमन करके फिर उसे खाता है, उसीके समान वह भी है, जो अपनी प्रतिज्ञा तथा व्रतको भङ्ग कर देता है। वेद, शास्त्र, पुराण, संत-महात्मा तथा धर्मशास्त्र कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो भगवान् विष्णुके प्रिय कार्यके योग्य एकादशीके दिन भोजनका विधान करते हों। एकादशीके दिनका व्रत भगवान् विष्णुके पदको देनेवाला है। उस दिन क्षयाह तिथि होनेपर भी अन्न-भोजनकी बात मूढ़ पुरुष ही कह सकते हैं।'

राजाकी यह बात सुनकर मोहिनी भीतर-ही-भीतर जल उठी और क्रोधसे आँखें लाल करके पतिसे बोली—'राजन्! तुम मेरी बात नहीं स्वीकार करते हो तो धर्मभ्रष्ट हो जाओगे। पृथ्वीपते! तुमने वर देनेके लिये अपना हाथ सौंपा था। अपनी उस प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करके यदि दिये हुए वचनका पालन न करोगे तो मैं चली जाऊँगी। नरेश! अब मैं न तो तुम्हारी प्यारी पत्नी हूँ और न तुम मेरे पति। तुम अपने वचनको मिटाकर धर्मका नाश करनेवाले हो। तुम्हें धिक्कार है।'

ऐसा कहकर मोहिनी बड़ी उतावलीके साथ उठी और जिस प्रकार सती देवी महादेवजीको छोड़कर गयी थीं, उसी प्रकार वह राजाको छोड़कर ब्राह्मणोंको साथ ले उसी समय वहाँसे चल दी। उस समय ब्रह्माजीकी मानसपुत्री मोहिनी 'हा तात! हा जगन्नाथ! जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले परमेश्वर! मेरी सुध लो'—इन शब्दोंका जोर-जोरसे उच्चारण करती हुई विलाप कर रही थी।

इसी समय धर्माङ्गद सारी पृथ्वीका परिभ्रमण करके घोड़ेपर चढ़े हुए आये। उनके मनमें कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। उन्होंने मोहिनीकी वह पुकार अपने कानों सुन ली थी। धर्माङ्गद बड़े पितृभक्त थे। धर्ममूर्ति रुक्माङ्गदकुमार तुरंत घोड़ेसे उतर पड़े और पिताके चरणोंके समीप गये। उन्हें प्रणाम करके धर्माङ्गदने फिर उठकर हाथ जोड़, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। राजन्! तदनन्तर रोषयुक्त हृदयवाली मोहिनीको शीघ्र-गतिसे बाहर जाती देख धर्माङ्गद बड़े वेगसे सामने गये और हाथ जोड़कर बोले—'माँ! किसने तुम्हारा अपमान किया है? देवि! तुम तो पिताजीको अधिक प्रिय हो, आज रुष्ट कैसे हो गयी? इन ब्राह्मणोंके साथ इस समय तुम कहाँ जा रही हो?' धर्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'बेटा! तुम्हारे पिता झूठे हैं, जिन्होंने अपना हाथ मुझे देकर भी उसे व्यर्थ कर दिया। अतः तुम्हारे पिता रुक्माङ्गदके साथ रहनेका अब मेरे मनमें कोई उत्साह नहीं है।'

धर्माङ्गदने कहा—देवि! तुम जो कहोगी,

उसे मैं तुरंत करूँगा। माँ! तुम क्रोध न करो। तुम पिताजीको अधिक प्रिय हो; अतः उनके पास लौट चलो।

**मोहिनी बोली**—वत्स! मुँहमाँगा वरदान देनेकी शर्त रखकर तुम्हारे पिताने मन्दराचलपर मुझे अपनी पत्नी बनाया था। देवेश्वर भगवान् शिव इसके साक्षी हैं, किंतु तुम्हारे पिता रुक्माङ्गद अब उस प्रतिज्ञासे गिर गये हैं। राजकुमार! मैं उनसे सुवर्ण, धन, हाथी, घोड़े, गाँव या बहुमूल्य वस्त्र नहीं माँगती हूँ, जिससे उनकी आर्थिक हानि हो। देहधारियोंमें श्रेष्ठ बेटा धर्माङ्गद! जिससे वे अपने शरीरको पीड़ा दे रहे हैं, वही वस्तु मैंने उनसे माँगी है; किंतु वे मोहवश उसे भी नहीं दे रहे हैं। नृपनन्दन! उन्हींके शरीरकी भलाईके लिये, उन्हींके सुखके लिये मैंने वर माँगा है, किंतु वे नृपश्रेष्ठ उसे न देकर आज भयंकर असत्यके दलदलमें फँस गये हैं। असत्य मदिरापानके समान घृणित पाप है। इस कारण तुम्हारे पिताको मैं त्याग रही हूँ। अब उनके साथ मेरा रहना नहीं हो सकता।

**मोहिनीका यह वचन सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने कहा**—'मेरे जीते-जी मेरे पिता कभी झूठे नहीं हो सकते। वरारोहे! तुम लौटो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। देवि! मेरे पिताने पहले कभी असत्यभाषण नहीं किया है; फिर वे महाराज मुझ पुत्रके होते हुए असत्य कैसे बोलेंगे? जिनके सत्यपर देवता, असुर तथा मानवोंसहित सम्पूर्ण लोक स्थित हैं, जिन्होंने यमराजके घरको पापियोंसे शून्य कर दिया है, जिनकी कीर्ति रोज बढ़ रही है और उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डल व्याप्त हो गया है, वे ही भूपालशिरोमणि असत्य-भाषणमें तत्पर कैसे हो सकते हैं? मैंने महाराजका वचन सुना नहीं है, फिर उनके परोक्षमें तुम्हारी बातपर कैसे विश्वास कर लूँ? शुभानने! मुझपर दया करके लौट चलो।

राजन्! धर्माङ्गदका यह कथन सुनकर मोहिनी लौटी। सूर्यके समान तेजस्वी रुक्माङ्गद जिस शय्यापर मृतकके समान लेटे थे, उसीपर धर्माङ्गदने मोहिनीको बिठाया। वह शय्या सुवर्णसे विभूषित, अनुपम और मनोहर थी। जब मोहिनी उसपर बैठ गयी, तब धर्माङ्गदने हाथ जोड़कर पितासे मधुर वाणीमें कहा—'तात! ये मेरी माता मोहिनी आज आपको असत्यवादी बता रही हैं। महाराज! इस पृथ्वीपर आप असत्यवादी क्यों होंगे? आप सातों समुद्रोंसे युक्त भूमण्डलका शासन करते हैं। आपके पास खजाना है, रत्नोंकी राशि संचित है। प्रभो! यह सब आप इन्हें दे दीजिये। और भी जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा आपने की हो, वह दे दीजिये। पिताजी! जब मैं धनुष-बाण धारण करके खड़ा हूँ तो आपके प्रतिकूल आचरण कौन कर सकता है? आप चाहें तो देवीको इन्द्रपद दे दीजिये और इन्द्रको जीता हुआ ही समझिये। ब्रह्माजीका पद अत्यन्त दुर्लभ है, वह योगियोंके ही अनुभवमें आने योग्य तथा निरञ्जन है। यदि देवी चाहें तो मैं तपस्यासे ब्रह्माजीको संतुष्ट करके वह भी इन्हें दे दूँगा। राजेन्द्र! इस त्रिलोकीमें जो दुष्कर हो अथवा अधिक प्रिय होनेसे जो देनेयोग्य न हो, वह भी मोहिनी देवीको दे दीजिये। ये चाहें तो मेरा अथवा मेरी जननीका जीवन भी इन्हें दे सकते हैं। इससे आप तत्काल ही इस लोकमें सदाके लिये उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होंगे।'

## राजा रुक्माङ्गदका एकादशीको भोजन न करनेका ही निश्चय

**राजा बोले**—बेटा! मेरी कीर्ति नष्ट हो जाय, मैं असत्यवादी हो जाऊँ अथवा घोर नरकमें ही पड़ जाऊँ, किंतु एकादशीके दिन भोजन कैसे करूँगा? पुत्र! यह मोहनी देवी ब्रह्माजीके लोकमें चली जाय, यह मुझसे बार-बार यही कहती है कि मैं पापनाशिनी एकादशीके दिन तुम्हें भोजन करानेके सिवा राज्य, वसुधा और धन आदि दूसरी कोई वस्तु नहीं चाहती। यह जो हमारी दुंदुभी स्वयं गुरुतर होकर गम्भीर नाद करती हुई लोगोंको शिक्षा देती है, वह आज असत्य कैसे हो जाय? अभक्ष्यभक्षण, अगम्या स्त्रीके साथ संगम तथा न पीने योग्य मदिरा आदिका पान करके कोई सौ वर्ष क्यों जीयेगा? इस चञ्चल कटाक्षवाली मोहिनीके वियोगसे यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो वह भी यहाँ अच्छा ही है; किंतु मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा। तात! नरकोंकी जो पङ्क्तियाँ मैंने सूनी कर दी हैं, वे मेरे भोजन करते ही पुनः ज्यों-की-त्यों लोगोंसे भर जायँगी। मेरा रुक्माङ्गद नाम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और एकादशीके उपवाससे ही मैंने इस यशका संचय किया है, वही अब मैं एकादशीको भोजन करके अपने ही द्वारा फैलाये हुए यशका नाश कैसे कर दूँगा। मोहिनी मर जाय या चली जाय, गिर जाय या नष्ट हो जाय तथापि मेरा मन इसके लिये एकादशीके उपवाससे विरत नहीं हो सकता। स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बीजनोंके साथ मैं अपने शरीरका त्याग कर सकता हूँ, परंतु भगवान् मधुसूदनके पुण्यमय दिवस एकादशीको अन्नका सेवन नहीं करूँगा।

## संध्यावली-मोहिनी-संवाद, रानी संध्यावलीका मोहिनीको पतिकी इच्छाके विपरीत चलनेमें दोष बताना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—पिताकी बात सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने अपनी कल्याणमयी माता संध्यावलीको शीघ्र ही बुलाया। पुत्रके कहनेसे वे उसी क्षण महाराजके समीप आयीं। धर्माङ्गदने उनसे मोहिनी तथा पिताकी भी बातें कह सुनायीं और निवेदन किया—'माँ! दोनोंकी बातोंपर विचार करके मोहिनीको सान्त्वना दो। यह एकादशीके दिन राजाको भोजन करानेपर तुली हुई है। मेरे पिता जिस प्रकार सत्यसे विचलित न हों और एकादशीको भोजन भी न करें—ऐसा कोई उपाय निकालो, ऐसा होनेपर ही दोनोंका मङ्गल होगा।' राजन्! पुत्रकी बात सुनकर संध्यावलीदेवी ब्रह्मपुत्री मोहिनीसे उस समय मधुर वाणीमें बोलीं—'वामोरु! आग्रह न करो। एकादशी प्राप्त होनेपर अन्नमात्रमें पापका सम्पर्क हो जाता है, अतः महाराज किसी प्रकार भी उसका आस्वादन नहीं कर सकते। तुम राजाका अनुसरण करो। ये हम लोगोंके सनातन गुरु हैं। जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! यदि इन्होंने पहले मन्दराचलपर कामसे पीड़ित होकर तुम्हें अपना हाथ दिया है तो उस समय इन्होंने योग्यायोग्यका विचार नहीं किया। जो देनेलायक वस्तु है, उसे तो ये दे ही रहे हैं और जो नहीं देनेयोग्य वस्तु है, उसको तुम माँगो भी मत। जो सन्मार्गमें स्थित है उसे यदि विपत्ति भी प्राप्त हो

तो वह कल्याणमयी ही होती है। सुभगे! जिन्होंने बचपनमें भी एकादशीके दिन भोजन नहीं किया है, वे इस समय वृद्धावस्थामें भगवान् विष्णुके पुण्यमय दिवसको अन्न कैसे ग्रहण करेंगे? तुम इच्छानुसार कोई दूसरा अत्यन्त दुर्लभ वर माँग लो। उसे महाराज अवश्य दे देंगे। उन्हें भोजन करानेके हठसे निवृत्त हो जाओ। देवि! मैं धर्माङ्गदकी जननी हूँ। यदि तुम मुझे विश्वसनीय मानती हो तो सातों द्वीप, नदी, वन और पर्वतसहित इस सम्पूर्ण राज्यको और मेरे जीवनको भी माँग लो। विशाललोचने! यद्यपि मैं ज्येष्ठ हूँ तथापि पतिके लिये छोटी सपत्नीकी भी चरण-वन्दना करूँगी। तुम प्रसन्न हो जाओ। जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करने योग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके बाद बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। कमलानने! धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि (नेक सलाह) दे; फिर तुम तो मेरी सखीके रूपमें स्थित हो। अतः तुम्हें क्यों न अच्छी सलाह दी जाय?'

संध्यावलीकी बात सुनकर मोहकारिणी मोहिनी सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाली पतिकी ज्येष्ठ प्रियासे उस समय इस प्रकार बोली—'सुभ्रु! तुम मेरी माननीया हो, मैं तुम्हारी बात मानूँगी। नारदादि विद्वान् महर्षियोंने ऐसा ही कहा है। देवि! यदि राजा एकादशीके दिन भोजन न करें तो उसके बदले एक दूसरा कार्य करें, जो तुम्हारे लिये मृत्युसे अधिक कष्टदायक है। शुभे! वह कार्य मेरे लिये भी दुःखदायक है तथापि दैववश मैं वह बात कहूँगी, जो तुम्हारे प्राण लेनेवाली है। तुम्हारे ही नहीं, पतिदेवके, प्रजावर्गके तथा पुत्रवधुओंके भी प्राण हर लेनेवाली वह बात है। उससे मेरे धर्मका नाश तो होगा ही, मुझे भारी कलंककी भी प्राप्ति होगी। उस बातको कर दिखाना तो दूर है, मनमें उसे करनेका विचार लाना भी सम्भव नहीं है। यदि तुम मेरे उस वचनका पालन करोगी तो इस संसारमें तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति फैलेगी, पतिदेवको भी यश मिलेगा, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी, तुम्हारे पुत्रकी सब लोग प्रशंसा करेंगे और मुझे चारों ओरसे धिक्कार मिलेगा।'

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! मोहिनीकी बात सुनकर देवी संध्यावलीने किसी तरह धैर्य धारण किया और उस मोहिनीसे कहा—'कहो, कहो क्या बात है? तुम कैसा वचन बोलोगी, जिससे मुझे दुःख होगा। मुझे अपने पतिके सत्यकी रक्षामें कभी कोई दुःख नहीं हो सकता। स्वामीके हितका साधन करते समय मेरे इस शरीरका अन्त हो जाय, मेरे पुत्रकी मृत्यु हो जाय अथवा सम्पूर्ण राज्यका नाश हो जाय; तथापि मुझे कोई व्यथा नहीं होगी। सुन्दरी! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुःखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक 'पूय' नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् भारतवर्षमें सात जन्मोंतक छछूंदर होती है। उसके बाद काकयोनिमें जन्म लेती है; फिर क्रमशः शृगाली, गोधा और गाय होकर शुद्ध होती है। अतः तुम माँगो; मैं पतिके हितके लिये तुम्हें अवश्य अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगी। वरानने! मेरा धन, शरीर, पुत्र अथवा अन्य कोई वस्तु जो चाहो माँगो, स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिके सिवा संसारमें दूसरा कौन देवता है?'

## मोहिनीका संध्यावलीसे उसके पुत्रका मस्तक माँगना और संध्यावलीका उसे स्वीकार करते हुए विरोचनकी कथा सुनाना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—संध्यावलीकी बात सुनकर ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनी अपने कार्यसाधनमें तत्पर होकर बोली—'शुभे! यदि तुम इस प्रकार धर्म और अधर्मकी गति जानती हो और स्वामीके लिये धन तथा जीवनका भी दान करनेको उद्यत हो तो मैं तुमसे उस धनकी याचना करती हूँ, जो तुम्हारे लिये जीवनसे भी अधिक महत्त्व रखता है। तुम्हारे पति राजा रुक्माङ्गद यदि एकादशीके दिन भोजन नहीं करेंगे तो वे अपने हाथमें तलवार लेकर धर्माङ्गदके चन्द्रमण्डल-सदृश सुन्दर एवं मनोहर कुण्डलभूषित मस्तकको, जिसमें अभी मूँछ नहीं उगी है, काटकर तुरंत मेरी गोदमें गिरा दें।'

मोहिनीका वह कड़वे अक्षरोंसे युक्त वचन सुनकर देवी संध्यावली शीतपीड़ित कदलीके समान क्षणभरके लिये काँप उठी। तदनन्तर श्रेष्ठ वर्णवाली महारानी धैर्य धारण कर हँसती हुई सुन्दर मुखवाली मोहिनीसे बोली—'सुभ्रु! पुराणोंमें द्वादशी (एकादशी)-के सम्बन्धमें वर्णित कुछ गाथाएँ सुनी जाती हैं, जो स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं—धनको त्याग दे; स्त्री, जीवन और घरको भी छोड़ दे; देश, राजा और मित्रको भी त्याग दे; अत्यन्त प्रिय व्यक्तिको भी त्याग दे; परंतु दोनों पक्षोंकी पवित्र द्वादशी (एकादशी)-का त्याग न करे; क्योंकि पुत्र, भाई, सुहृद् और प्रियजन—सब सम्बन्धी यहीं काम देते हैं, किंतु द्वादशी (एकादशी) इहलोक और परलोकमें भी अभीष्ट साधन करती है। अतः द्वादशी (एकादशी)-के प्रभावसे सब मङ्गल ही होगा। शुभे! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये धर्माङ्गदका मस्तक दिलाऊँगी। शोभने! मेरी बातपर विश्वास करो और सुखी हो जाओ। भद्रे! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है, उसे मैं कहती हूँ, तुम सावधान होकर सुनो।

पूर्वकालमें विरोचन नामसे प्रसिद्ध एक धर्मपरायण दैत्य थे। उनकी पत्नी विशालाक्षी ब्राह्मणपूजनमें तत्पर रहती थी। सुभ्रु! वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक ऋषिको बुलाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करती और प्रसन्नचित्त हो, भक्तिभावसे उनका चरणोदक लेती थी। उन दिनों हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर सब देवता प्रह्लादपुत्र विरोचनसे भी सदा शंकित रहते थे। एक दिन वे इन्द्र आदि देवता बृहस्पतिजीकी सलाह लेते हुए बोले—'हम लोग शत्रुओंसे बहुत पीड़ित हैं, इस समय हमें क्या करना चाहिये?' उनका वह वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'देवताओ! आज दुःखमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको अपना यह कष्ट भगवान् विष्णुसे निवेदन करना चाहिये।' अमित-तेजस्वी गुरुका यह भाषण सुनकर सब देवता विरोचनके प्राणनाशका संकल्प लेकर भगवान् विष्णुके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने अनेक प्रकारके स्तुतियोंसे सुरश्रेष्ठ श्रीहरिका स्तवन किया।

**देवता बोले**—देवताओंके भी अधिदेवता अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। भक्तोंके विघ्नका निवारण करनेवाले नरहरिको नमस्कार है। महात्मा वामनको नमस्कार है। वाराहरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। प्रलयकालीन समुद्रमें निवास करनेवाले मत्स्यरूप माधवको नमस्कार है। पीठपर मन्दराचलको धारण करनेवाले भगवान् कूर्मको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम तथा क्षीरसागरशायी भगवान् नारायणको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी श्रीरामको नमस्कार है।

विश्वके शासक तथा साक्षीरूप श्रीहरिको नमस्कार है। शुद्ध दत्तात्रेय-स्वरूप और दूसरोंकी पीड़ा दूर करनेवाले कपिलरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। धर्मको धारण करनेवाले सनकादि महात्मा जिनके स्वरूप हैं, उन यज्ञमय भगवान्‌को नमस्कार है। ध्रुवको वरदान देनेवाले नारायणको नमस्कार है। महान् पराक्रमी पृथुको प्रणाम है। विशुद्ध अन्त:करणवाले ऋषभको और हयग्रीवावतारधारी श्रीहरिको नमस्कार है। आगमस्वरूप भगवान् हंसको नमस्कार है तथा अमृत कलश धारण करनेवाले धन्वन्तरिको नमस्कार है एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जिनके व्यूहरूप शरीर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। ब्रह्मा, शङ्कर, स्वामिकार्तिकेय, गणेश, नन्दी और भृङ्गीरूपमें भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे गन्धमादन पर्वतपर निवास करते हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो जगदीश्वरपुरीमें जगन्नाथ नाम धारण करते हैं, सेतुबन्धमें रामेश्वर नामसे विख्यात होते हैं तथा द्वारका और वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूपसे रहते हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। प्रभो! आपके चरण, हाथ और नेत्र सभी कमलके समान हैं। आपको नमस्कार है। आप कमला देवीके प्रतिपालक भगवान् केशवको बारम्बार नमस्कार है। सूर्यरूपमें आपको नमस्कार है। चन्द्रमारूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। इन्द्रादि लोकपाल आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापतिस्वरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण प्राणियोंका समुदाय आपका स्वरूप है, आप जीवस्वरूप, तेजोमय, जय, विजयी, नेता, नियम और क्रियारूप हैं; आपको नमस्कार है। निर्गुण, निरीह, नीतिज्ञ तथा निष्क्रियरूप आपको नमस्कार है। बुद्ध और कल्कि—ये दोनों आपके सुप्रसिद्ध अवतार-विग्रह हैं, आप ही क्षेत्रज्ञ जीव तथा अक्षर परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप गोविन्द, विश्वम्भर, अनन्त, आदिपुरुष, शार्ङ्गधनुषधारी, शङ्खधारी, गदाधर, चक्रसुदर्शनधारी, खड्गहस्त, शूलपाणि, समस्त शस्त्रास्त्रघाती, शरणदाता, वरणीय तथा सबसे परे परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप इन्द्रियोंके स्वामी और विश्वमय हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। काल आपकी नाभि है, आप कालस्वरूप हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र परिपूर्ण, सबके सेव्य तथा परात्पर पुरुष हैं, आपको नमस्कार है। आप इस जगत्‌के कर्ता, भर्ता तथा धर्ता हैं। यमराज भी आपके ही रूप हैं। आप ही सबको मोह और क्षोभमें डालनेवाले हैं। अजन्मा होते हुए भी इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं। आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हैं; आपको नमस्कार है। भगवन्! हम सब देवता दैत्योंसे सताये हुए हैं और इस समय आपकी शरणमें आये हैं। जगदाधार! आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हम स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके साथ सुखी होकर रह सकें।

दैत्योंसे सताये हुए देवताओंका यह स्तवन सुनकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न

हुए और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। स्नेहपूर्ण हृदयवाले देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन करके उन देवताओंने विरोचनका शीघ्र वध करनेके लिये उनसे सादर प्रार्थना की। कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने इन्द्रादि देवताओंकी आवश्यकता सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और उन्हें प्रसन्न करके प्रेमपूर्वक विदा किया। देववर्गके चले जानेपर भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर विरोचनके घर गये और ब्राह्मण-पूजनके समय वहाँ पहुँचे। जो पहले कभी नहीं आये थे, ऐसे ब्राह्मणको आया देख विशालाक्षी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। उसने भक्तिभावसे उनका सत्कार करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। शुभे! ब्राह्मणने उसके दिये हुए आसनको स्वीकार न करके कहा—'देवि! मैं तुम्हारे दिये हुए इस उत्तम आसनको ग्रहण नहीं करूँगा। मानिनि! जो मेरे मनोगत कार्यको समझकर उसे पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे, उसीकी पूजा मैं ग्रहण करूँगा।' बूढ़े ब्राह्मणकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें निपुण विशालाक्षी बड़ी प्रसन्न हुई। भगवान् विष्णुकी मायाने उसे मोहित कर लिया था। अपने स्त्री-स्वभावके कारण भी वह इस विषयमें अधिक विचार न कर सकी और बोली।

**विशालाक्षीने कहा**—ब्रह्मन्! आपका जो मनोगत कार्य है, उसे मैं पूर्ण करूँगी। मेरा दिया हुआ आसन ग्रहण कीजिये और अपना चरणोदक दीजिये।

**उसके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण बोले**—'मैं स्त्रीकी बातपर विश्वास नहीं करता। यदि तुम्हारे पति यह बात कहें तो मुझे विश्वास हो सकता है।' ब्राह्मणका यह वचन सुनकर विरोचनकी गृहस्वामिनीने वहीं उनके समीप पतिको बुलवाया। दूतके मुखसे सब बात सुनकर प्रह्लादपुत्र विरोचन हर्षभरे हृदयसे अन्तःपुरमें आये, जहाँ महारानी विशालाक्षी विराजमान थीं। पतिको आया देख धर्मपरायणा विशालाक्षी उठकर खड़ी हो गयी। उसने उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको नमस्कार करके पुनः आसन समर्पित किया। जब उन्होंने आदरपूर्वक दिये हुए उस आसनको ग्रहण नहीं किया, तब उसने अपने पति दैत्यराज विरोचनसे सब हाल कह सुनाया। सब बातें जानकर दैत्यराजने पत्नीके प्रेमसे मुग्ध होकर उस समय ब्राह्मणकी शर्त स्वीकार कर ली। विरोचनके स्वीकार कर लेनेपर ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'मुझे अपनी आयु समर्पित कर दो।' तब वे दोनों पति-पत्नी स्वनिर्मित शोकसे मोहित हो दो घड़ीतक कुछ चिन्तन करते रहे। फिर उन दम्पत्तिने हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर! हमारा जीवन ले लीजिये और अपना चरणोदक दीजिये। आपकी कही हुई बात हम सत्य करेंगे। आप प्रसन्न होइये।'

तब ब्राह्मणने प्रसन्नचित्त होकर आसन ग्रहण किया। विशालाक्षीने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके दोनों चरण पखारे और उनका चरणोदक पतिसहित अपने मस्तकपर धारण किया। फिर तो वे दोनों दम्पती सहसा (दैत्य-शरीर छोड़) दिव्यरूप धारण करके श्रेष्ठ विमानपर बैठे और भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें चले गये। इस प्रकार देवताओंका कण्टक दूर करके भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण देवताओंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए वैकुण्ठलोकको चले गये। देवि! इसी प्रकार मैंने भी जो तुम्हें देनेकी प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य दूँगी। देवि! मैं अपने पति महाराज रुक्माङ्गदको सत्यसे विचलित न होने दूँगी; क्योंकि सत्य ही मनुष्योंको उत्तम गति देनेवाला बताया गया है। सत्यसे भ्रष्ट हुए मनुष्यको चाण्डालसे भी नीच माना गया है।

## रानी संध्यावलीका राजाको पुत्रवधके लिये उद्यत करना, राजाका मोहिनीसे अनुनय-विनय, मोहिनीका दुराग्रह तथा धर्माङ्गदका राजाको अपने वधके लिये प्रेरित करना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—भूपते! तदनन्तर देवी संध्यावलीने पतिके दोनों चरण पकड़कर धर्माङ्गदके विनाशसे सम्बन्ध रखनेवाली बात कही—'महाराज! आपकी ही भाँति मैंने भी इसे बहुत समझाया है; किंतु इस मोहरूपा मोहिनीको इस समय दूसरी कोई बात अच्छी ही नहीं लगती। इसका एक ही आग्रह है, एकादशीके दिन राजा भोजन करें अथवा अपने पुत्रका वध कर डालें। नाथ! धर्म छोड़नेकी अपेक्षा तो पुत्रका वध ही श्रेष्ठ है। राजन्! गर्भ धारण करनेमें माताको ही अधिक क्लेश सहना पड़ता है और बालकपर उसीका स्नेह भी अधिक होता है। खेद और स्नेह जैसा माताका होता है, वैसा पिताका नहीं हो सकता। राजेन्द्र! इस भूतलपर पिताको बीज-वपन करनेवाला कहा गया है, माता उसको धारण करनेवाली है; अतः उसके पालन-पोषणमें अधिक क्लेश उसीको उठाना पड़ता है। पुत्रपर पितासे सौगुना स्नेह माताका होता है। उसके स्नेहकी अधिकतापर ही दृष्टि रखकर गौरवमें माताको पितासे बड़ी माना गया है, किंतु नृपश्रेष्ठ! आज मैं माता होकर भी सत्यके पालनसे परलोकको जीतनेकी इच्छा रखकर पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि दे चुकी हूँ। भूपाल! स्नेहको दूर करके पुत्रका वध कीजिये। राजन्! वे आपत्तियाँ भी धन्य हैं, जो सत्यका पालन करानेवाली हैं। सत्यका संरक्षण करानेवाली होनेसे वे मनुष्योंके लिये मोक्षदायिनी हैं। अतः पृथ्वीपते! संतप्त होनेसे कोई लाभ नहीं, आप सत्यकी रक्षा कीजिये। राजन्! सत्यके पालनसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है। देवताओंने आपकी परीक्षाके लिये इस मोहिनीको कसौटीके रूपमें उत्पन्न किया है। अतः भूपाल! आप दृढ़ होकर प्रिय पुत्रका वध कीजिये। अपने सत्य-पालनके उद्देश्यसे मोहिनीके वचनकी पूर्ति कीजिये।'

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! पत्नीकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने मोहिनीके समीप रानी संध्यावलीसे इस प्रकार कहा—'प्रिये पुत्रकी हत्या बहुत बड़ी हत्या है। वह ब्रह्महत्यासे भी बढ़कर है। कहाँ-से-कहाँ मैं मन्दराचलपर गया और न जाने कहाँसे यह मोहिनी मुझे वहाँ मिली। देवि! यह स्त्री नहीं, धर्माङ्गदका नाश करनेके लिये साक्षात् कालप्रिया काली है। धर्माङ्गद धर्मज्ञ, विनयशील तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला है, अभीतक उसे कोई संतान भी नहीं हुई है। ऐसे पुत्रको मारकर मेरी क्या गति होगी? देवि! कुपुत्रको भी मारनेसे पिताके मनमें दुःख होता है, फिर जो धर्मशील तथा गुरुजनोंका सेवक है, उसके मरनेसे कितना दुःख होगा। वरवर्णिनि! इस समय तुम्हारे पुत्रके प्रतापसे ही मैंने सातों द्वीपोंके राज्यका उपभोग किया है। अपना यह पुत्र धर्माङ्गद इस पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ है। मनोहराङ्गी! वह मेरे समूचे कुलका सम्मान बढ़ानेवाला है। सुन्दरि! मोहिनी मोहमें डूबकर केवल मुझे दुःख दे रही है, तुम पुनः शुभ वचनोंद्वारा उसे समझाओ।'

अपनी प्रिय पत्नी संध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा उस समय मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'शुभे! मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा और पुत्रकी हत्या भी नहीं कर सकूँगा। अपनेको और संध्यावली देवीको आरेसे चीर सकता हूँ अथवा तुम्हारे कहनेसे कोई और भी भयंकर कर्म कर सकता

हूँ। सुभ्रु! पुत्रके सम्बन्धमें यह दुष्टतापूर्ण आग्रह छोड़ दो। बताओ, पुत्र धर्माङ्गदको मार देनेसे तुम्हें क्या फल मिलेगा? मुझे एकादशीको भोजन करा देनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा? वरानने! मैं तुम्हारा दास हूँ, सेवक हूँ और सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। सौभाग्यशालिनि! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। सुन्दरि! कोई दूसरा वर माँग लो। देवि! मुझपर कृपा करो। पुत्रकी भिक्षा दे दो। गुणवान् पुत्र दुर्लभ है और एकादशीका व्रत भी दुर्लभ है। इस पृथ्वीपर गङ्गाजीका जल दुर्लभ है, भगवान् विष्णुका पूजन दुर्लभ है तथा स्मृतियोंका संग्रह भी दुर्लभ है एवं भगवान् विष्णुका स्मरण एवं चिन्तन भी अत्यन्त दुर्लभ है। साधु पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है तथा भगवान्‌की भक्ति भी दुर्लभ ही बतायी गयी है। वरवर्णिनि! मृत्युकालमें भगवान् विष्णुका स्मरण भी दुर्लभ ही है, ऐसा समझकर मेरा धर्मरक्षाविषयक वचन स्वीकार करो। मैंने सब विषय भोग लिये, निष्कण्टक राज्य भी कर लिया; किंतु मेरे पुत्रने तो अभी संसारके विषयोंका सुख देखा ही नहीं, अतः उसकी हत्या कदापि नहीं करूँगा। मोहिनी! अपने ही हाथसे अपने पुत्रका वध! ओह! इससे बढ़कर पाप और क्या होगा?'

**मोहिनीने कहा**—राजन्! मैंने तो पहले ही कह दिया है, एकादशीको भोजन करो और इच्छानुसार बहुत वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते रहो। मैं पुत्रका वध नहीं कराऊँगी। एकादशीको तुम्हारे भोजन कर लेनेमात्रसे ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा। पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्युसे मेरा कोई मतलब नहीं है। राजन्! यदि पुत्र प्रिय है तो एकादशीके दिन भोजन करो। महीपाल! इस धर्मविरोधी विलापसे क्या लाभ? मेरी बात मानो और यत्नपूर्वक सत्यकी रक्षा करो।

राजन्! मोहिनी जब ऐसी बात कह रही थी, उसी समय धर्माङ्गद वहाँ आ गये और मोहिनीकी ओर देखकर उसे प्रणाम करके सामने खड़े हो विनीतभावसे बोले—'भामिनि! तुम यही लो (मेरे वधरूपी वरको ही ग्रहण करो); इसके विषयमें तनिक भी शङ्का न करो।' ऐसा कहकर उन्होंने राजाके आगे एक चमकती हुई तलवार रख दी और अपने-आपको भी समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् सत्य-धर्ममें स्थित हो पितासे कहा—'पिताजी! अब आपको मुझे मारनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। महाराज! आपने मेरी माता मोहिनीके समक्ष जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कर दिखाइये। आपके हितके लिये मेरा मरना मुझे अक्षय गति देनेवाला है और अपने वचनके पालनसे आपको भी तेजस्वी लोक प्राप्त होंगे। अतः पुत्रके मारे जानेका जो महान् दुःख है, उसको त्यागकर अपने धर्मका पालन कीजिये। इस मर्त्यशरीरका त्याग करनेपर मेरे भावी जीवनका आरम्भ अमर देहमें होगा। वह मेरा दिव्य शरीर सब प्रकारके रोगोंसे रहित होगा। प्रभो! जो पुत्र पिता अथवा माताके हितके लिये मारे जाते हैं तथा राजन्! जो गाय, ब्राह्मण, स्त्री, भूमि, राजा, देवता, बालक तथा आर्तजनोंके लिये प्राण त्याग करते हैं, वे अत्यन्त प्रकाशमय लोकोंमें जाते हैं। अतः शोक-संतापसे कोई लाभ नहीं, आप श्रेष्ठ तलवारसे मेरा वध कीजिये। राजेन्द्र! सत्यका पालन कीजिये और एकादशीको भोजन न कीजिये। मैंने अपने शरीरके वधके लिये जो बात कही है, उसे सत्य कीजिये। महाराज! आपने मोहिनीको दाहिना हाथ देकर जो वचन दिया है, उसका पालन न करनेसे असत्यका दोष लगेगा। उस भयंकर असत्य-भाषणके पापसे अपनेको बचाइये।

## राजाको पुत्रवधके लिये उद्यत देख मोहिनीका मूर्च्छित होना और पत्नी, पुत्रसहित राजा रुक्माङ्गदका भगवान्‌के शरीरमें प्रवेश करना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—पुत्रका यह वचन सुनकर राजा रुक्माङ्गदने उस समय संध्यावलीके मुखकी ओर देखा, जो कमलके समान प्रसन्नतासे खिल उठा था। फिर मोहिनीकी बात सुनी, जिसमें एकादशीको भोजन करो, पुत्रको न मारो, यदि भोजन न करना हो तो पुत्रका वध करो। यही बार-बार आग्रह किया जा रहा था। नृपश्रेष्ठ! इसी समय कमलनयन भगवान् विष्णु अदृश्यरूपसे आकाशमें आकर ठहर गये। उनकी अङ्ग-कान्ति मेघके समान श्याम थी। वे स्वभावतः निर्मल—निर्दोष हैं। भगवान् श्रीहरि गरुड़की पीठपर बैठकर वीर धर्माङ्गद, राजा रुक्माङ्गद तथा देवी संध्यावली—तीनोंकि धैर्यका अवलोकन कर रहे थे। जब मोहिनीने पुनः 'एकादशीके दिन भोजन करो, भोजन करो' की बात दुहरायी, तब राजाने हर्षयुक्त हृदयसे भगवान् गरुडध्वजको प्रणाम करके पुत्र धर्माङ्गदको मारनेके लिये चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली। पिताको खड्गहस्त देख धर्माङ्गदने माता, पिता तथा भगवान्‌को प्रणाम किया। तदनन्तर माताके उदार मुखपर दृष्टि डालकर राजकुमारने अपनी गरदन धरतीसे सटा ली। धर्माङ्गदने उसे ठीक तलवारकी धारके सामने रखा। वे पिताके भक्त तो थे ही, माताके भी महान् भक्त थे।

राजन्! जब पुत्रने चन्द्रमाके समान मनोहर मुखको प्रसन्न रखते हुए अपनी गरदन समर्पित कर दी और सम्पूर्ण जगत्‌के शासक महाराज रुक्माङ्गदने हाथमें तलवार उठा ली, उस समय वृक्षों और पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी। समुद्रमें ज्वार आ गया, मानो वह तीनों लोकोंको तत्क्षण डुबो देनेके लिये उद्यत हो गया हो। पृथ्वीपर सैकड़ों उल्काएँ गिरने लगीं। आकाशमें बिजली चमक उठी और गड़गड़ाहटकी आवाज होने लगी। मोहिनीका रंग फीका पड़ गया। उसने सोचा, 'जगत्स्रष्टा विधाताने इस समय मुझे व्यर्थ ही जन्म दिया। मेरा यह विमोहक रूप विडम्बनामात्र बनकर रह गया; क्योंकि इससे प्रभावित होकर राजाने पापनाशिनी एकादशीके दिन अन्न नहीं खाया। अब तो स्वर्गलोकमें मैं तिनकेके समान हो जाऊँगी। राजामें सत्त्वगुण एवं धैर्य अधिक होनेसे ये मोक्षमार्गको चले जायँगे, किंतु मैं पापिनी भयंकर नरकमें पड़ूँगी।' नृपश्रेष्ठ! इसी समय महाराज रुक्माङ्गदने तलवार ऊपर उठायी। यह देख मोहिनी मोहसे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। राजा धैर्य और हर्षसे युक्त हो पुत्रका चन्द्रमाके समान प्रकाशमान कुण्डलमण्डित मनोहर मुखयुक्त मस्तक काटना ही चाहते थे कि उसी समय भगवान् श्रीहरिने अपने हाथसे उन्हें पकड़ लिया और कहा—'राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न

हूँ, बहुत प्रसन्न हूँ, अब तुम मेरे वैकुण्ठधामको चलो। अकेले ही नहीं, अपनी प्रिया रानी संध्यावली और पुत्र धर्माङ्गदको भी साथ ले लो। तीनों लोकोंके लिये पूजनीय, निर्मल तथा उज्ज्वल कीर्तिकी स्थापना करके यमराजके मस्तकपर पाँव रखकर मेरे शरीरमें मिल जाओ।' ऐसा कहकर चक्रधारी भगवान्‌ने राजाको अपने हाथसे छू दिया। भगवान्‌के स्पर्शमात्रसे उनका (मोहिनीमें आसक्तिरूप) रजोगुण धुल गया। वे महात्मा नरेश अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वेगपूर्वक समीप जा भगवान्‌के दिव्य शरीरमें समा गये। उस समय आकाशसे पुष्पसमूहकी वर्षा होने लगी। हर्षमें भरे हुए सिद्ध तथा देवताओंके लोकपाल दुन्दुभियाँ बजाने लगे, जिनकी आवाज सब ओर गूँज उठी। सूर्यपुत्र यमराजने यह अद्भुत दृश्य अपनी आँखोंसे देखा। राजा उनकी लिपिको मिटाकर अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भगवान्‌के शरीरमें समा गये थे और सर्वसाधारण लोग भी राजाके सिखाये हुए मार्गपर स्थित होकर एकादशीका व्रत एवं भगवान्‌का कीर्तन आदि करते हुए वैकुण्ठके ही मार्गपर जाते थे। यह सब देखकर भयभीत हुए यमराज चतुर्मुख ब्रह्माजीके समीप पुनः जाकर बोले—'सुरलोकनाथ! अब मैं यमराजके पदपर नियुक्त नहीं होना चाहता, क्योंकि मेरी आज्ञा जगत्‌से उठ गयी। तात! मेरे लिये कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा प्रदान की जाय। दण्ड देनेका कार्य अब मेरे जिम्मे न रहे।'

## यमराजका ब्रह्माजीसे कष्ट-निवेदन, वर देनेके लिये उद्यत देवताओंको रुक्माङ्गदके पुरोहितकी फटकार तथा मोहिनीका ब्राह्मणके शापसे भस्म होना

**यमराज बोले**—देवेश्वर! जगन्नाथ! चराचरगुरो! प्रभो! राजा रुक्माङ्गदकी चलायी हुई पद्धतिसे सब लोग वैकुण्ठमें ही जा रहे हैं। मेरे पास कोई नहीं आता। पितामह! कुमारावस्थासे ही सब मनुष्य एकादशीको उपवास करके पापशून्य हो भगवान् विष्णुके परमधाममें चले जाते हैं। आपकी पुत्री मोहिनीदेवी लज्जावश मूर्च्छित होकर पड़ी है, अतः आपके पास नहीं आती। सब लोग उसे धिक्कारते हैं, इसलिये वह भोजनतक नहीं कर रही है। मेरा तो सारा व्यापार ही बंद हो गया है। आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूँ?

सूर्यपुत्र यमकी बात सुनकर कमलासन ब्रह्माजीने कहा—'हम सब लोग साथ ही मोहिनीको होशमें लानेके लिये चलें।' तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजीके साथ दिव्य विमानोंपर बैठकर पृथ्वीपर आये। उन्होंने विमानोंद्वारा मोहिनीको सब ओरसे घेर लिया। वह मन्त्रहीन विधि, धर्म और दयासे रहित युद्ध, भूपालरहित पृथ्वी और मन्त्रणारहित राजाकी भाँति शोचनीय अवस्थामें पड़ी थी। ममत्वयुक्त ज्ञान और दम्भयुक्त धर्मकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही उसकी भी थी। देवताओंने उसे सर्वथा तेजोहीन देखा। प्रभो! वह उत्साहशून्य होकर किसी गम्भीर चिन्तनमें निमग्न थी, सब लोग उसे देखते हुए निन्दायुक्त कटुवचन सुना रहे थे। वह धर्मसे गिर गयी थी। पतिके वचनको उलटकर अपनी बात मनवानेका दुराग्रह रखनेवाली और अत्यन्त क्रोधी थी। उस अवस्थामें उससे देवताओंने कहा—'वामोरु! तुम शोक न

करो। तुमने पुरुषार्थ किया है, किंतु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके मानका कभी खण्डन नहीं हो सकता। इसका एक कारण है, वैशाखमासके शुक्लपक्षमें जो परम पुण्यमयी मोहिनी नामवाली एकादशी आती है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंका विध्वंस करनेवाली है। राजा रुक्माङ्गदने पहले उस एकादशीका व्रत किया था। विशाललोचने! उन्होंने एक वर्षतक पादकृच्छ्रव्रत करते हुए उसका पूजन किया था। उसीका यह अनुपम अध्यवसाय (सामर्थ्य) है कि वे सत्यसे विचलित न हो सके। लोकमें नारीको समस्त विघ्नोंकी रानी कहा जाता है। तुम्हारे विघ्न डालनेपर भी राजा रुक्माङ्गदने मन, वाणी और क्रियाद्वारा एकादशीको अन्न न खानेका निश्चय करके पुत्रको मारनेका विचार कर लिया और स्नेहको दूरसे ही त्यागकर तलवार उठा ली। इस कसौटीपर कसकर भगवान् मधुसूदनने देख लिया कि 'ये प्रिय पुत्रका वध कर डालेंगे, किंतु एकादशीको भोजन नहीं करेंगे।' पुत्र, पत्नी तथा राजा तीनोंका विलक्षण भाव देखकर भगवान् बहुत संतुष्ट हुए। तदनन्तर वे सब भगवान्‌में मिल गये। देवि! सुभगे! यदि सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक कर्म करनेपर भी फलकी सिद्धि नहीं हो सकी तो अब इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिये शुभे! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। सद्भावपूर्वक प्रयत्न करनेवाले पुरुषका कार्य यदि नहीं सिद्ध होता तो भी उसको वेतनमात्र तो दे ही देना चाहिये। नहीं तो उसे संतोष नहीं होगा।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली मोहिनी आनन्दशून्य, पतिहीन एवं अत्यन्त दु:खित होकर बोली—'देवेश्वरो! मेरे इस जीवनको धिक्कार है, जो मैंने यमलोकके मार्गको मनुष्योंसे भर नहीं दिया, एकादशीके महत्त्वका लोप नहीं किया और राजाको एकादशीके दिन भोजन नहीं करा दिया। वह वीर भूपाल रुक्माङ्गद प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिमें मिल गये। जिनके कल्याणमय गुणोंका कोई माप नहीं है, जो स्वभावत: निर्मल तथा शुद्ध अन्त:करणवाले संतोंके आश्रय हैं। सर्वव्यापी, हंसस्वरूप, पवित्र पद, परम व्योमरूप, ओङ्कारमय, सबके कारण, अविनाशी, निराकार, निराभास, प्रपञ्चसे परे तथा निरञ्जन (निर्दोष) हैं, जो आकाशस्वरूप तथा ध्येय और ध्यानसे रहित हैं, जिन्हें सत् और असत् कहा गया है, जो न दूर हैं, न निकट हैं, मन जिनको ग्रहण नहीं कर सकता, जो परमधाम-स्वरूप, परम पुरुष एवं जगन्मय हैं, जो सनातन तेज:स्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् विष्णुमें राजा रुक्माङ्गद लीन हो गये। देवताओ! जो भृत्य स्वामीके कार्यकी सिद्धि नहीं करते और वेतन भोगते रहते हैं, वे इस पृथ्वीपर घोड़े होते हैं। आपकी यह मोहिनी तो पति और पुत्रका नाश करनेवाली है। इसके द्वारा कार्यकी सिद्धि भी नहीं हुई है, फिर यह आप स्वर्गवासियोंसे वर कैसे ग्रहण करे?'

**देवताओंने कहा**—मोहिनी! तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाषा हो उसे कहो, हम अवश्य उसकी पूर्ति करेंगे।

महीपते! जब देवता लोग इस तरहकी बातें कह रहे थे, उसी समय राजा रुक्माङ्गदके पुरोहित जो अग्निके समान तेजस्वी थे, वहाँ आये। वे मुनि पहले जलमें बैठकर योगकी साधनामें तत्पर थे। बारहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर पुन: जलसे निकले थे। जलसे निकलनेपर उन्होंने मोहिनीकी सारी करतूतें सुनीं। इससे क्रोधमें भरकर वे मुनिश्रेष्ठ देवसमुदायके पास आये और मोहिनीको वर देनेवाले सम्पूर्ण देवताओंसे इस प्रकार बोले—'इस मोहिनीको धिक्कार है, देवसमूहको भी धिक्कार है और इस पापकर्मको धिक्कार है। आप लोग धिक्कारके पात्र

इसलिये हैं कि आप मोहिनीको मनोवाञ्छित वर देनेवाले हैं। इसपर हत्याका पाप सवार है। इसमें नारीजनोचित साधु बर्ताव नहीं रह गया है। यह स्त्री नहीं, राक्षसी है। देवताओ! यदि यह जलती हुई आगमें कूद पड़े तो भी इस लोकमें इसकी शुद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि इसने इस पृथ्वीको राजासे शून्य कर दिया। देवगण! इस खोटी बुद्धिवाली पापिनीके लिये तो नरकोंमें भी रहनेका अधिकार नहीं है। फिर स्वर्गमें इसकी स्थिति कैसे हो सकती है? यह राजाके निकट नहीं जा सकती है। लोकापवादसे यह इतनी दूषित हो चुकी है कि लोकमें कहीं भी इसका रहना सम्भव नहीं है। देवताओ! जो सदा पापमें ही डूबी रही है और अपने दुष्कर्मोंके कारण जिसकी सर्वत्र निन्दा होती है, उस पापिनीके जीवनको धिक्कार है। यह वैष्णवधर्मका लोप करनेवाली तथा भारी पापराशिसे दबी हुई है। देवेश्वरो! यह तो स्पर्श करने योग्य भी नहीं है, इसे आप लोग वर कैसे दे रहे हैं? जो लोग न्यायपरायण तथा धर्ममार्गपर चलनेवाले हैं, उन्हींको वर देनेके लिये आपको सदा तत्पर रहना चाहिये। देवता लोग कभी पापीकी रक्षा नहीं करते; उन्हें धर्मका आधार माना गया है और धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है। वेदोंने पतिकी सेवाको ही स्त्रियोंका धर्म बताया है। पति जो कुछ भी कहे, उसे नि:शङ्क होकर करना चाहिये। इसीको सेवाकर्म जानना चाहिये। केवल शारीरिक सेवाका ही नाम शुश्रूषा नहीं है। देवगण! इसने अपनी आज्ञा स्थापित करनेकी इच्छासे पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मोहिनी सम्पूर्ण स्त्रियोंमें पापिनी है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इसकी शपथोंसे बँधे हुए राजा रुक्माङ्गदने सत्यकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी अनुनय-विनयभरी बातें कहीं, किंतु इसने उनकी ओरसे अनिच्छा प्रकट कर दी, अत: राजा इसके ऊपर पाप डालकर स्वयं मोक्षको प्राप्त हुए हैं। इसलिये इसपर हजारों हत्याका पाप सवार है। इसका शरीर ही पापमय है। जो सब प्रकारके उत्तम दान देनेवाले, ब्राह्मणभक्त, भगवान् विष्णुके आराधक, प्रजाको प्रसन्न रखनेवाले तथा एकादशी-व्रतके सेवी थे, परायी स्त्रियोंके प्रति जिनके मनमें आसक्ति नहीं थी, जो विषयोंकी ओरसे विरक्त हो चले थे, परोपकारके लिये सारा भोग त्याग चुके थे और सदा यज्ञानुष्ठानमें लगे रहते थे, इस पृथ्वीपर जो सदा दुष्टोंका दमन करनेमें तत्पर रहते थे और सात प्रकारके भयंकर व्यसनोंने कभी जिनपर आक्रमण नहीं किया, उन्हीं महाराज रुक्माङ्गदको इस जगत्से हटाकर दुराचारिणी मोहिनी वर पानेके योग्य कैसे हो सकती है? सुरश्रेष्ठगण! जो इस मोहिनीके पक्षमें होगा, वह देवता हो या दानव, मैं उसको भी क्षणभरमें भस्म कर दूँगा। जो मोहिनीकी रक्षाका प्रयत्न करेगा, उसको वही पाप लगेगा, जो मोहिनीमें स्थित है।'

राजन्! ऐसा कहकर उन द्विजेन्द्रने हाथमें तीव्र जल लिया और ब्रह्मपुत्री मोहिनीकी ओर क्रोधपूर्वक देखकर उसके मस्तकपर वह जल डाल दिया। उस जलसे अग्निके समान लपट उठ रही थी। महीपते! उस जलके छोड़ते ही मोहिनीका शरीर स्वर्गवासियोंके देखते-देखते तत्काल प्रज्वलित हो उठा, मानो तिनकोंकी राशिमें आगकी लपटें उठ रही हों। 'प्रभो! अपना कोप रोकिये, रोकिये।' यह देवताओंकी वाणी जबतक आकाशमें गूँजी, तबतक तो ब्राह्मणके वचनसे प्रकट हुई अग्निने उस रमणीको जलाकर राख कर दिया!

## मोहिनीकी दुर्दशा, ब्रह्माजीका राजपुरोहितके समीप जाकर उनको प्रसन्न करना, मोहिनीकी याचना

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजन्! मोहिनी मोहमय शरीर त्यागकर देवताओंके लोकमें गयी। वहाँ देवदूत (वायुदेव)-ने उसे डाँटा—'पापिनी! तेरा स्वभाव पापमय है। तेरी बुद्धि अत्यन्त खोटी है। तू सदा एकादशी-व्रतके लोपमें संलग्न रही है, अतः स्वर्गमें तेरा रहना असम्भव है।' इस प्रकार कठोर वचन कहकर वायुदेवने उसे डंडेसे पीटा और यातनामय नरकमें भेज दिया। राजन्! देवदूत (वायुदेव)-से इस प्रकार ताड़ित होनेपर मोहिनी नरकमें गयी। वहाँ धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंने उसे खूब पीटा और दीर्घकालतक क्रमशः सभी नरकोंमें उसे गिराया; साथ ही उससे यह बात भी कही—'ओ पापिनी! तूने पतिके हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदकी हत्या करनेको कहा, अतः अपने किये हुए उस पापकर्मका फल यहाँ अच्छी तरह भोग ले।' नृपश्रेष्ठ! यमदूतोंके इस प्रकार धिक्कारनेपर यमकी आज्ञाके अनुसार वह क्रमशः सब नरकोंकी यातनाएँ भोगती रही। मोहिनी ब्राह्मणके शापसे मरी थी, अतः उसके शरीरके स्पर्शसे उन नरक-यातनाओंकी अभिमानिनी चेतनशक्तियोंका सारा अङ्ग जलने लगा। वे अधिष्ठात्री देवियाँ उसको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं। राजन्! तब वे सभी नरक (नरकके अभिमानी देवता) धर्मराजके समीप आये और हाथ जोड़कर भयभीत हो बोले—'देवदेव! जगन्नाथ! धर्मराज! हमपर दया कीजिये और इस मोहिनीको हमारी यातनाओंसे शीघ्र अलग कीजिये, जिससे हमें सुख मिले। नाथ! इसके शरीरके स्पर्शसे हम लोग क्षणभरमें भस्म हो जायँगे; अतः इसे यहाँसे निकाल बाहर कीजिये।' उनकी बात सुनकर धर्मराज बड़े विस्मित हुए और अपने दूतोंसे बोले—'इसे मेरे लोकसे निकाल बाहर करो। जो ब्रह्मशापसे दग्ध हुआ है, वह स्त्री हो, पुरुष हो या चोर ही क्यों न हो, उस पापीका स्पर्श हमारी नरक-यातनाएँ भी नहीं करना चाहती हैं। अतः इस पापिनीको, जो पतिके वचनका लोप करनेवाली, पुत्रघातिनी, धर्मनाशिनी तथा ब्रह्मदण्डसे मारी गयी है, यहाँसे जल्दी निकालो।'

भूपते! धर्मराजके ऐसा कहनेपर वे दूत अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए मोहिनीको यमलोकसे बाहर कर आये। राजन्! तब मोहयुक्त मोहिनी अत्यन्त दुःखित होकर पाताललोकमें गयी, किंतु पातालवासियोंने भी उसे रोक दिया। तब मोहिनीने अत्यन्त लज्जित हो अपने पिताके समीप जाकर सारा दुःख निवेदन किया—'तात! चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें मेरे रहनेके लिये कोई स्थान नहीं है। जहाँ-जहाँ जाती हूँ वहाँ-वहाँ सब लोग मेरी निन्दा और तिरस्कार करते हैं। नाना प्रकारके आयुधोंसे मुझे खूब मारकर लोगोंने अपने स्थानसे बाहर निकाल दिया है। पिताजी! मैं तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही रुक्माङ्गदके समीप गयी थी और वहाँ ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ की, जो सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दित हैं। पतिको कष्टमें डाला, पुत्रको तीखी तलवारसे कटवा देना चाहा और संध्यावलीको भी क्षोभमें डाल दिया, इसीसे मेरी यह दशा हुई है। देव! मुझ पापिनीके लिये अब कहीं कोई सहारा नहीं है। विशेषतः ब्राह्मणके शापसे मुझे अधिक दुःख भोगना पड़ रहा है। पिताजी! जो ब्राह्मणके शापसे मरे हैं, आगसे जले हैं, चाण्डालके हाथों मारे गये हैं, व्याघ्र-सिंह आदि वन-जन्तुओंद्वारा भक्षण किये गये हैं तथा

बिजली गिरनेसे नष्ट हुए हैं, उन सबको मोक्ष देनेवाली केवल गङ्गा नदी हैं। यदि आप जाकर मुझे शाप देनेवाले उस ब्राह्मणको प्रसन्न कर लें तो मेरी सद्गति हो सकती है।'

राजन्! तब लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, इन्द्र, धर्म, सूर्य तथा अग्नि आदि देवेश्वरों और मुनियोंको साथ ले उपर्युक्त बातें कहनेवाली मोहिनीको आगे करके ब्राह्मणके समीप गये। वहाँ जाकर देवता आदिसे घिरे हुए स्वयं ब्रह्माजीने बड़े गौरवसे उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि ब्रह्माजी रुद्र आदि देवताओंके लिये भी पूजनीय और माननीय हैं, तथापि मोहिनीके स्नेहके कारण उन्होंने स्वयं ही नमस्कार किया। राजन्! जब तीनों लोकोंमें असाध्य एवं महान् कार्य प्राप्त हो जाय, तब बड़ेके द्वारा छोटेका अभिवादन दूषित नहीं माना जाता। वे ब्राह्मण देवता वेद-वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् और तपस्वी थे। लोककर्ता ब्रह्माजीको

देवताओंके साथ आया देख ब्राह्मणने उठकर मुनियोंसहित उन सबको प्रणाम किया और आसनपर बिठाकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका स्तवन किया, तब प्रसन्न होकर लोककर्ता जगद्गुरु भगवान् ब्रह्माने मोहिनीके लिये उन राजपुरोहित ब्राह्मणसे इस प्रकार प्रार्थना की—'तात! आप ब्राह्मण हैं, सदाचारी हैं और परलोकमें उपकार करनेवाले हैं। कृपासिन्धो! कृपा कीजिये और मोहिनीको उत्तम गति प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! मोहिनी मेरी पुत्री है। मानद! यमलोकको सूना देखकर रुक्माङ्गदको मोहनेके लिये (प्रकारान्तरसे उस भक्तका गौरव बढ़ानेके लिये) मैंने ही उसे भेजा था। धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह सम्पूर्ण लोकका कल्याण करनेवाली है। यह मोहिनी एक कसौटी थी, जिसपर सुवर्णरूपी राजा रुक्माङ्गदकी परीक्षा करके उन्हें स्त्री-पुत्रसहित भगवान्‌के धामको भेज दिया गया है। राजाने अविचल भक्तिसे एकादशी-व्रतका पालन करने और करानेके कारण यमराजकी लिपिको मिटाकर यमपुरीको सूना कर दिया था। ब्रह्मन्! सांख्यवेत्ताको जिसकी प्राप्ति असम्भव है, अष्टाङ्गयोगके साधनसे भी जो मिलनेवाला नहीं है, उस भक्तिगम्य पदकी प्राप्ति राजा, राजकुमार और देवी संध्यावलीको हुई है। मोहिनीने जो उस पुण्यशील भूपशिरोमणिके प्रतिकूल आचरण किया है, उस पापके वेगसे उसकी बड़ी दुर्दशा हुई है। आपके शापसे दग्ध होकर यह राखकी ढेरमात्र रह गयी है। इसके द्वारा जो अपकार हुआ है, उसे क्षमा कर दीजिये। दया कीजिये, शान्त होइये! आपके शाप देनेसे यह अधोगतिमें डाली गयी है। इसपर प्रसन्न होइये और इसे उत्तम गति दीजिये।'

ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन विप्रशिरोमणिने बुद्धिसे विचार करके क्रोध त्याग दिया और मोहिनीके पिता देवेश्वर श्रीब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा—'देव! आपकी पुत्री मोहिनी बहुत पापसे भरी हुई है, अतः प्राणियोंसे परिपूर्ण

लोकोंमें उसकी स्थिति नहीं हो सकती। सुरेश्वर! जिस प्रकार आपका और मेरा भी वचन सत्य हो, देवताओंका कार्य सिद्ध हो और मोहिनीकी आवश्यकता भी पूर्ण हो जाय, वही करना चाहिये। अत: जो भूतसमुदायसे कभी आक्रान्त न हुआ हो, उसी स्थानपर मोहिनी रहे।'

नृपश्रेष्ठ! तब ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंसे सलाह लेकर मोहिनी देवीसे कहा—'तुम्हारे लिये कहीं स्थान नहीं है।' यह सुनकर मोहिनी सम्पूर्ण देवताओंको प्रणाम करके बोली—'सुरश्रेष्ठगण! आप सब देवता सम्पूर्ण लोकके साक्षी हैं। पुरोहितजीके साथ आप लोगोंको सौ-सौ बार प्रणाम करके मैं हाथ जोड़ती हूँ। आप प्रसन्न हृदयसे मेरी याचना पूर्ण करें। मुझे वह स्थान दें, जो सबके लिये प्रीतिकारक हो। दूसरोंको मान देनेवाले महात्माओ! किसी दोषसे दूषित एकादशीका दिन जिस प्रकार मेरा हो जाय, ऐसा कीजिये—यही मेरी याचना है। इसे आप अवश्य पूर्ण कर दें। यह माँग मैंने स्वार्थसिद्धिके लिये की है।'

## मोहिनीको दशमीके अन्तभागमें स्थानकी प्राप्ति तथा उसे पुनः शरीरकी प्राप्ति

**देवता बोले**—मोहिनी! निशीथकालमें जिसका दशमीसे वेध हो, वह एकादशी देवताओंका उपकार करनेवाली होती है और सूर्योदयमें दशमीसे वेध होनेपर वह असुरोंके लिये लाभदायक होती है। यह व्यवस्था स्वयं भगवान् विष्णुने की है। त्रयोदशीमें पारण हो तो वह उपवास व्रतका नाश करनेवाला होता है। वैष्णव-शास्त्रमें जो आठ महाद्वादशियाँ[1] बतायी गयी हैं, वे एकादशीसे भिन्न हैं। वैष्णवलोग उनमें उपवास करते हैं। वैष्णव महात्माओंका एकादशी व्रत भिन्न हैं। दोनों पक्षोंमें वह नित्य बताया गया है। विधिपूर्वक किये जानेपर वह तीन दिनमें पूरा होता है। एकादशीके पहले दिन सायंकालका भोजन छोड़ दे और दूसरे दिन प्रात:कालका भोजन त्याग दे। यदि एकादशी दो दिन हो या प्रथम दिन विद्ध होनेके कारण त्याज्य हो तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिये। द्वादशीमें निर्जल उपवास करना उचित है। जो सर्वथा उपवास करनेमें असमर्थ हों, उनके लिये जल, शाक, फल, दूध अथवा भगवान्‌के नैवेद्यको ग्रहण करनेका विधान है; किंतु वह अपने स्वाभाविक आहारकी मात्राके चौथाई भागके बराबर होना चाहिये। साध्वी! स्मार्त (स्मृतियोंके अनुसार चलनेवाले गृहस्थ) लोग सूर्योदयकालमें दशमीविद्धा एकादशीका त्याग

१. आठ महाद्वादशियोंके नाम इस प्रकार हैं—उन्मीलनी, वञ्जुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी। इनमेंसे प्रारम्भकी चार द्वादशियाँ तिथियोगसे विशेष संज्ञा धारण करती हैं और अन्तकी चार द्वादशियोंके नामकरणमें भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंका योग कारण है। दशमी-वेधरहित एकादशी जब एक दिनसे बढ़कर दूसरे दिन भी कुछ समयतक दिखायी दे और द्वादशी न बढ़े तो वह 'उन्मीलनी' महाद्वादशी कहलाती है। जब एकादशी एक ही दिन हो और द्वादशी बढ़कर दूसरे दिनतक चली गयी हो तो वह 'वञ्जुली' कहलाती है। इसमें द्वादशीमें उपवास और द्वादशीमें ही पारण होता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी, दिनभर द्वादशी और दूसरे दिन प्रात:काल त्रयोदशी हो 'त्रिस्पृशा' नामक महाद्वादशी होती है। जिस पक्षमें अमावास्या या पूर्णिमा एक दिन साठ दण्ड रहकर दूसरे दिनमें भी कुछ समयतक चली गयी हो, उस पक्षकी द्वादशीको 'पक्षवर्धिनी' कहते हैं। द्वादशीके साथ पुनर्वसु-नक्षत्रका योग हो तो वह 'जया', श्रवण-नक्षत्रका योग हो तो 'विजया', पुष्यका योग हो तो 'पापनाशिनी' तथा रोहिणीका योग हो तो 'जयन्ती' कहलाती है।

करते हैं, परंतु निष्काम एवं विरक्त वैष्णवजन आधी रातके समय भी दशमीसे विद्ध होनेपर उस एकादशीको त्याग देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें यह बात विदित है कि दशमी यमराजकी तिथि है। अनघे! उस दशमीके अन्तिम भागमें तुम्हें निवास करना चाहिये। तुम दशमी तिथिके अन्तिम भागमें स्थित होकर सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंके साथ संचरण करोगी। अब तुम अपने पापका नाश करनेके लिये पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें भ्रमण करो। अरुणोदयसे लेकर सूर्योदयतकका जो समय है, उसके भीतर तुम व्रतमें स्थित होकर एकादशीका फल प्राप्त करो। जो कोई मनुष्य तुमसे विद्ध एकादशीका व्रत करता है, वह उस व्रतद्वारा तुम्हें लाभ पहुँचानेवाला होगा। यहाँ अरुणोदयका समय दो मुहूर्ततक जानना चाहिये। रात और दिनके पृथक्-पृथक् पंद्रह मुहूर्त माने गये हैं। दिन और रात्रिकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार त्रैराशिककी विधिसे रात या दिनके मुहूर्तोंको समझना चाहिये। रात्रिके तेरहवें मुहूर्तके बाद तुम दशमीके अन्त भागमें स्थित होकर उस दिन उपवास करनेवाले लोगोंके पुण्यको प्राप्त कर लोगी। शुचिस्मिते! यह वर पाकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। मोहिनी! जो व्रत करनेवाले लोग तुमसे विद्ध हुई एकादशीका व्रत यहाँ प्रयत्नपूर्वक करते हैं, उनके उस व्रतसे जो पुण्य होता है, उसका फल तुम भोगो!

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। अपने पाप दूर करनेके लिये तीर्थ-सेवनकी आज्ञा मिल जानेपर उसने जीवनको कृतार्थ माना। राजन्! ऐसा सोचकर हर्षमें भरी हुई मोहिनी देवताओं तथा पुरोहितको प्रणाम करके सूर्योदयसे पूर्ववर्ती दशमीके अन्त भागमें स्थित हो गयी। मोहिनीको अपनी तिथिके अन्तमें स्थित देख सूर्यपुत्र यमका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बोले—'चारुलोचने! तुमने इस लोकमें फिर मेरी अच्छी प्रतिष्ठा कर दी। राजा रुक्माङ्गदके मतवाले हाथीपर रखकर जो नगाड़ा बजाया जाता था, वह तो तुमने बंद करा ही दिया। यह दशमी तिथि यदि सूर्योदयकालका स्पर्श करे तो सदा निन्दित मानी गयी है। यदि दशमीसे उदयकालका स्पर्श न हो तो भी अरुणोदयकालमें रहनेपर वह मनुष्योंको मोहमें डालनेवाली होगी। उस दशमीको त्याग करके व्रत करनेपर मनुष्यको प्रिय वस्तुओंका संयोग एवं भोग प्राप्त होता है।' ऐसा कहकर सूर्यपुत्र यम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मकुमारी मोहिनीको प्रणाम करके देवताओंके साथ अपने चित्रगुप्तका हाथ पकड़े हुए स्वर्गलोकको चले गये। देवताओंके चले जानेपर मोहिनी ब्रह्माजीसे बोली—'पिताजी! मेरे इन पुरोहितने क्रोधपूर्वक मेरे शरीरको जला दिया है। मैं पुनः उसे प्राप्त कर लूँ—ऐसा प्रयत्न कीजिये।'

मोहिनीका यह वचन सुनकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजी पुत्रीके हितके लिये ब्राह्मणदेवताको पुनः शान्त करते हुए बोले—'तात! वसो! मेरी बात सुनो। महाभाग! मैं तुम्हारे, इस मोहिनीके तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये हितकारक वचन कहता हूँ। मानद! तुमने क्रोधवश मोहिनीको भस्मावशेष कर दिया है। अब यह पुनः अपने लिये शरीरकी याचना करती है, अतः आज्ञा दो। तात! मेरी पुत्री और तुम्हारी यजमान होकर यह दुर्गतिमें पड़ी है। तुम्हारा और मेरा कर्तव्य है कि इसका पालन करें। मानद! यदि तुम शुद्ध भावसे मुझे आज्ञा दो तो मैं इसके लिये पुनः नूतन शरीर उत्पन्न कर दूँगा, किंतु यह एकादशीसे वैर रखनेवाली होनेके कारण पापाचारिणी है। विप्रवर! जिस प्रकार यह पापसे शीघ्र शुद्ध हो सके, वही उपाय कीजिये।'

ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर राजपुरोहितने अपनी यजमानपत्नीके शरीरकी प्राप्तिके लिये प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। ब्राह्मणका अनुमोदक वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने मोहिनीके शरीरकी राखको कमण्डलुके जलसे सींच दिया। लोककर्ता ब्रह्माके सींचते ही मोहिनी पूर्ववत् शरीरसे सम्पन्न हो गयी। उसने अपने पिता ब्रह्माजीको प्रणाम करके विनयसे नतमस्तक हो पुरोहित वसुके दोनों पैर पकड़ लिये। इससे राजपुरोहित वसु प्रसन्न हो गये। उन्होंने पति और पुत्रसे रहित संकटमें पड़ी हुई विधवा यजमानपत्नी मोहिनीसे इस प्रकार कहा।

**वसु बोले**—देवि! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे क्रोध त्याग दिया। अब तीर्थ-स्नानादि पुण्य-कर्मसे तुम्हारी सद्गति कराऊँगा।

मोहिनीसे ऐसा कहकर ब्राह्मणने उसके पिता जगत्पति ब्रह्माजीको नमस्कार करके प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। तब ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये, जो परम ज्योतिर्मय है। रुक्माङ्गदके पुरोहित विप्रवर वसु मोहिनीको कृपाके योग्य मानकर मन-ही-मन उसकी सद्गतिका उपाय सोचने लगे। दो घड़ीतक ध्यानमें स्थित होकर उन्होंने उसकी सद्गतिका उपाय जान लिया।

## मोहिनी-वसु-संवाद—गङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन

**वसिष्ठजी कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ! सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरोहित वसु यजमानपत्नी मोहिनीसे मधुर वाणीमें बोले।

**पुरोहित वसुने कहा**—मोहिनी! सुनो, मैं तुम्हें तीर्थोंके पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। जिसके जान लेनेमात्रसे पापियोंकी उत्तम गति होती है। पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ गङ्गा हैं। गङ्गाके समान पापनाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।

अपने पुरोहित वसुका यह वचन सुनकर मोहिनीके मनमें गङ्गा-स्नानके प्रति आदर बढ़ गया। वह पुरोहितजीको प्रणाम करके बोली।

**मोहिनीने कहा**—भगवन्! सम्पूर्ण पुराणोंकी सम्मतिके अनुसार इस समय गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य बताइये। पहले गङ्गाजीके अनुपम तथा पापनाशक माहात्म्यको सुनकर फिर आपके साथ पापनाशिनी गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये चलूँगी। वसु सब पुराणोंके ज्ञाता थे। उन्होंने मोहिनीका वचन सुनकर गङ्गाजीके पापनाशक माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया।

**पुरोहित वसु बोले**—देवि! वे देश, वे जनपद, वे पर्वत और वे आश्रम भी धन्य हैं, जिनके समीप सदा पुण्यसलिला भगवती भागीरथी बहती रहती हैं[1]। जीव गङ्गाजीका सेवन करके जिस गतिको पाता है, उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्यागके द्वारा भी नहीं पा सकता। जो मनुष्य पहली अवस्थामें पापकर्म करके अन्तिम अवस्थामें गङ्गाजीका सेवन करते हैं, वे भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। इस संसारमें दुःखसे व्याकुल जो जीव उत्तम गतिकी खोजमें लगे हैं, उन सबके लिये गङ्गाके समान दूसरी कोई गति नहीं है। गङ्गाजी बड़े-बड़े भयंकर पातकोंके कारण अपवित्र नरकमें गिरनेवाले नराधम पापियोंको जबरन तार देती हैं। गङ्गा देवी अंधो, जडों तथा द्रव्यहीनोंको भी पवित्र बनाती हैं। मोहिनी! (विशेषरूपसे)

१. ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः। येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा॥ (ना० उत्तर० ३८। ८)

पक्षोंके आदि अर्थात् कृष्णपक्षमें षष्ठीसे लेकर पुण्यमयी अमावास्यातक दस दिन गङ्गाजी इस पृथ्वीपर निवास करती हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर दस दिनतक वे स्वयं ही पातालमें निवास करती हैं। फिर शुक्लपक्षकी एकादशीसे कृष्ण-पक्षकी पञ्चमीतक जो दस दिन होते हैं, उनमें गङ्गाजी सदा स्वर्गमें रहती हैं। [इसलिये इन्हें 'त्रिपथगा' कहते हैं] सत्ययुगमें सब तीर्थ उत्तम हैं। त्रेतामें पुष्कर तीर्थ सर्वोत्तम है, द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है और कलियुगमें गङ्गा ही सबसे बढ़कर है। कलियुगमें सब तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्तिको गङ्गाजीमें छोड़ते हैं, परंतु गङ्गादेवी अपनी शक्तिको कहीं नहीं छोड़तीं। गङ्गाजीके जलकणोंसे परिपुष्ट हुई वायुके स्पर्शसे भी पापाचारी मनुष्य भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो सर्वत्र व्यापक हैं, जिनका स्वरूप चिन्मय है, वे जनार्दन भगवान् विष्णु ही द्रवरूपसे गङ्गाजीके जल हैं, इसमें संशय नहीं है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं, इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजीका जल अपने क्षेत्रमें हो या निकालकर लाया गया हो, ठंडा हो या गरम हो, वह सेवन करनेपर आमरण किये हुए पापोंको हर लेता है। बासी जल और बासी दल त्याग देने योग्य माना गया है, परंतु गङ्गाजल और तुलसीदल बासी होनेपर भी त्याज्य नहीं है। मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती है, परंतु गङ्गाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है[१]। जो मनुष्य तीर्थयात्राकी पूरी विधि न कर सके वह भी केवल गङ्गाजलके माहात्म्यसे यहाँ उत्तम फलका भागी होता है। गङ्गाजीके जलसे एक बार भक्तिपूर्वक कुल्ला कर लेनेपर मनुष्य स्वर्गमें जाता और वहाँ कामधेनुके थनोंसे प्रकट हुए दिव्य रसोंका आस्वादन करता है। जो शालग्राम शिलापर गङ्गाजल डालता है, वह पापरूपी तीव्र अन्धकारको मिटाकर उदयकालीन सूर्यकी भाँति पुण्यसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए अनेक प्रकारके पापोंसे ग्रस्त हो, वह भी गङ्गाजीका दर्शन करके पवित्र हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। जो सदा गङ्गाजीके जलसे सींचकर पवित्र की हुई भिक्षा भोजन करता है, वह केंचुलका त्याग करनेवाले सर्पकी भाँति पापसे शून्य हो जाता है। हिमालय और विन्ध्यके समान पापराशियाँ भी गङ्गाजीके जलसे उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जिस प्रकार भगवान् विष्णुकी भक्तिसे सब प्रकारकी आपत्तियाँ। गङ्गाजीमें भक्तिपूर्वक स्नानके लिये प्रवेश करनेपर मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप 'हाय-हाय' करके भाग जाते हैं। जो प्रतिदिन

---

१. कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्। द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः। गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥
गङ्गाम्भःकणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि। पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः। स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः। गङ्गाम्भसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा॥
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा। गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम्॥
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्। न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम्॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र॥
(ना० उत्तर० ३८। २०—२७)

गङ्गाजीके तटपर रहता और सदा गङ्गाजीका जल पीता है, वह पुरुष पूर्वसंचित पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो गङ्गाजीका आश्रय लेकर नित्य निर्भय रहता है, वही देवताओं, ऋषियों और मनुष्योंके लिये पूजनीय है[1]। प्रभासतीर्थमें सूर्यग्रहणके समय सहस्र गोदान करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह गङ्गाजीके तटपर एक दिन रहनेसे ही मिल जाता है। जो अन्य सारे उपायोंको छोड़कर मोक्षकी कामना लिये दृढ़निश्चयके साथ गङ्गाजीके तटपर सुखपूर्वक रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है, विशेषत: काशीपुरीमें गङ्गाजी तत्काल मोक्ष देनेवाली हैं। यदि जीवनभर प्रतिमासकी चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको सदा गङ्गाजीके तटपर निवास किया जाय तो वह उत्तम सिद्धि देनेवाला है। मनुष्य सदा कृच्छ्र और चान्द्रायण करके सुखपूर्वक जिस फलका अनुभव करता है, वही उसे गङ्गाजीके तटपर निवास करनेमात्रसे मिल जाता है। ब्रह्मपुत्री! इस लोकमें गङ्गाजीकी सेवामें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको आधे दिनके सेवनसे जो फल प्राप्त होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी नहीं मिल सकता। सम्पूर्ण यज्ञ, तप, दान, योग तथा स्वाध्याय-कर्मसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर निवास करनेमात्रसे मिल जाता है। सत्य-भाषण, नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन तथा अग्निहोत्रके सेवनसे मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, वह गङ्गातटपर निवास करनेसे ही मिल जाता है। गङ्गाजीके भक्तको संतोष, उत्तम ऐश्वर्य, तत्त्वज्ञान, सुखस्वरूपता तथा विनय एवं सदाचार-सम्पत्ति प्राप्त होती है। मनुष्य केवल गङ्गाजीको ही पाकर कृतकृत्य हो जाता है[2]। जो भक्तिभावसे गङ्गाजीके जलका स्पर्श करता और गङ्गाजल पीता है, वह मनुष्य अनायास ही मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है[3]। जिनके सम्पूर्ण कृत्य सदा गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं, वे मनुष्य शरीर त्यागकर भगवान् शिवके समीप आनन्दका अनुभव करते हैं[4]। जैसे इन्द्र आदि देवता अपने मुखसे चन्द्रमाकी किरणोंमें स्थित अमृतका पान करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य गङ्गाजीका जल पीते हैं। विधिपूर्वक कन्यादान और भक्तिपूर्वक भूमिदान, अन्नदान, गोदान, स्वर्णदान, रथदान, अश्वदान और गजदान आदि करनेसे जो पुण्य बताया गया है, उससे सौ गुना अधिक पुण्य चुल्लूभर गङ्गाजल पीनेसे होता है। सहस्रों चान्द्रायणव्रतका जो फल कहा गया है, उससे

१. मनोवाक्कायजैर्ग्रस्त: पापैर्बहुविधैरपि। वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूत: पुरुषो नात्र संशय:॥
गङ्गातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्नाति य: सदा। सर्पवत्कञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत् स वै॥
हिमवद्विन्ध्यसदृशा राशय: पापकर्मणाम्। गङ्गाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापद:॥
प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम्। ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम्॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत् सदा। य: पुमान् स विमुच्येत पातकै: पूर्वसंचितै:॥
यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भय:। स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभि:॥
(ना० उत्तर० ३८। ३२—३७)

२. संतोष: परमैश्वर्यं तत्त्वज्ञानं सुखात्मता॥ विनयाचारसम्पत्तिर्गङ्गाभक्तस्य जायते।
(ना० उत्तर० ३८। ४९-५०)

३. भक्त्या तज्जलसंस्पर्शी तज्जलं पिबते च य:॥ अनायासेन हि नरो मोक्षोपायं स विन्दति।
(ना० उत्तर० ३८। ५१-५२)

४. सर्वाणि येषां गङ्गायास्तोयै: कृत्यानि सर्वदा। देहं त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदन्ते शिवसंनिधौ॥
(ना० उत्तर० ३८। ५३)

अधिक फल गङ्गाजल पीनेसे मिलता है। चुल्लूभर गङ्गाजल पीनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो इच्छानुसार गङ्गाजीका पानी पीता है, उसकी मुक्ति हाथमें ही है। सरस्वती नदीका जल तीन महीनेमें, यमुनाजीका जल सात महीनेमें, नर्मदाजीका जल दस महीनेमें तथा गङ्गाजीका जल एक वर्षमें पचता है। अर्थात् शरीरमें उसका प्रभाव विद्यमान रहता है। जो देहधारी मनुष्य कहीं अज्ञात स्थानमें मर गये और उनके लिये शास्त्रीय विधिसे तर्पण नहीं किया गया, ऐसे लोगोंको गङ्गाजीके जलसे उनकी हड्डियोंका संयोग होनेपर परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है[१]। जो शरीरकी शुद्धि करनेवाले चान्द्रायणव्रतका एक सहस्र बार अनुष्ठान कर चुका है और जो केवल इच्छानुसार गङ्गा-जल पीता है, वही पहलेवालेसे बढ़कर है। जो गङ्गाजीका दर्शन और स्तुति करता है, जो भक्तिपूर्वक गङ्गामें नहाता और गङ्गाका ही जल पीता है, वह स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग तथा मोक्ष सब कुछ पा लेता है[२]।

## गङ्गाजीके दर्शन, स्मरण तथा उनके जलमें स्नान करनेका महत्त्व

**पुरोहित वसु कहते हैं—**मोहिनी! सुनो, अब मैं गङ्गाजीके दर्शनका फल बतलाता हूँ, जिसका वर्णन तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुराणोंमें किया है। ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोंकी प्राप्ति गङ्गाजीके दर्शनका फल है। गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी चञ्चलता, दुर्व्यसन, पातक तथा

१. कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः। अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा॥
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम्। ततः शतगुणः पुण्यं गङ्गाम्भश्चुलुकाशनात्॥
चान्द्रायणसहस्राणां यत्फलं परिकीर्तितम्। ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते॥
गण्डूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत। स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गाङ्गं वर्षेण जीर्यति॥
शास्त्रेणाकृततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तदुत्तरफलावाप्तिर्गङ्गायामस्थियोगतः॥
(ना० उत्तर० ३८। ५५—६०)

२. गङ्गां पश्यति यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम्। स स्वर्गं ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति॥
(ना० उत्तर० ३८। ६२)

निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दूसरोंकी हिंसा, कुटिलता, परदोष आदिका दर्शन तथा मनुष्योंके दम्भ आदि दोष गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे दूर हो जाते हैं। मनुष्य यदि अविनाशी सनातन पदकी प्राप्ति करना चाहता है तो वह भक्तिपूर्वक बार-बार गङ्गाजीकी ओर देखे और बार-बार उनके जलका स्पर्श करे। अन्यत्र बावड़ी, कुआँ और तालाब आदि बनवाने, पौंसले चलाने तथा अन्नसत्र आदिकी व्यवस्था करनेसे जो पुण्य होता है, वह गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मिल जाता है। परमात्माके दर्शनसे मानवोंको जो फल प्राप्त होता है, वह भक्तिभावसे गङ्गाजीका दर्शनमात्र करनेसे सुलभ हो जाता है। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्करतीर्थमें स्नान, स्पर्श और सेवन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह कलियुगमें गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका कथन है।

राजपत्नी! जो अशुभ कर्मोंसे युक्त हो संसारसमुद्रमें डूब रहे हों और नरकमें गिरनेवाले हों, उनके द्वारा यदि गङ्गाजीका स्मरण कर लिया जाय तो वह दूरसे ही उनका उद्धार कर देती है। चलते, खड़े होते, सोते, ध्यान करते, जागते, खाते और हँसते-रोते समय तो निरन्तर गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सहस्रों योजन दूरसे भी भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्मरण करते हैं तथा 'गङ्गा-गङ्गा' की रट लगाते हैं, वे भी पातकसे मुक्त हो जाते हैं। विचित्र भवन, विचित्र आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, आरोग्य और धन-सम्पत्ति—ये गङ्गाजीके स्मरणजनित पुण्यके फल हैं। मनुष्य गङ्गाजीके नामकीर्तनसे पापमुक्त होता है और दर्शनसे कल्याणका भागी होता है। गङ्गामें स्नान और जलपान करके वह अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो अश्रद्धासे भी पुण्यवाहिनी गङ्गाका नामकीर्तन करता है, वह भी स्वर्गलोकका भागी होता है।

देवि! अब मैं गङ्गाजीके जलमें स्नानका फल बतलाता हूँ। जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है और मोहिनी! उसे उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके पवित्र जलसे स्नान करके शुद्धचित्त हुए पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी सुलभ नहीं है। जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारका नाश करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलसे अभिषिक्त हुआ पुरुष पापराशिका नाश करके प्रकाशमान होता है। गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके अनेक जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है और वह तत्काल पुण्यका भागी होता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे और समस्त इष्टदेव-मन्दिरोंमें पूजा करनेसे जो पुण्य होता है, वही केवल गङ्गास्नानसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। कोई महापातकोंसे युक्त हो या सम्पूर्ण पातकोंसे, विधिपूर्वक गङ्गास्नान करनेसे वह सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गास्नानसे बढ़कर दूसरा कोई स्नान न हुआ है, न होगा। विशेषत: कलियुगमें गङ्गादेवी सब पाप हर लेती हैं। जो मानव नित्य-निरन्तर गङ्गामें स्नान करता है, वह यहीं जीवन्मुक्त हो जाता है और मरनेपर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। गङ्गामें मध्याह्नकालमें स्नान करनेसे प्रात:कालकी अपेक्षा दस गुना पुण्य होता है, सायंकालमें सौ गुना तथा भगवान् शिवके समीप अनन्तगुना पुण्य होता है। करोड़ों कपिला गौओंका दान करनेसे भी गङ्गास्नान बढ़कर है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्य देनेवाली है; किंतु हरिद्वार, प्रयाग तथा गङ्गासागर-संगममें अधिक फल देनेवाली होती है। भगवान् सूर्य गङ्गाजीसे कहते हैं कि 'हे जाह्नवि! जो लोग मेरी किरणोंसे तपे हुए तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं, वे मेरा मण्डल भेदकर मोक्षको प्राप्त होते हैं।' वरुणने भी गङ्गासे कहा है कि 'जो मनुष्य अपने घरमें रहकर भी स्नानकालमें तुम्हारे नामका कीर्तन करेगा, वह भी वैकुण्ठलोकमें चला जायगा।'

## कालविशेष और स्थलविशेषमें गङ्गा-स्नानकी महिमा

**पुरोहित वसु कहते हैं**—वामोरु! अब मैं काल विशेषमें किये जानेवाले गङ्गा-स्नानका फल बतलाऊँगा। जो मनुष्य माघ मासमें निरन्तर गङ्गा-स्नान करता है, वह दीर्घकालतक अपने समस्त कुलके साथ इन्द्रलोकमें निवास करता है। तदनन्तर दस लाख करोड़ कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें जाकर रहता है। सम्पूर्ण संक्रान्तियोंमें जो मनुष्य गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठधामको जाता है। विषुव योगमें उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन तथा संक्रान्तिके समय विशेषरूपसे उसका फल बताया गया है। माघके ही समान कार्तिकमें भी गङ्गा-स्नानका महान् फल माना गया है। मोहिनी! जब सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करते हैं, उस समय तथा कार्तिक-पूर्णिमाको गङ्गा-स्नान करनेसे ब्रह्मा आदि देवताओंने माघस्नानकी अपेक्षा अधिक पुण्य बताया है। कार्तिक अथवा वैशाखमें अक्षयतृतीया तिथिको गङ्गा-स्नान करनेसे एक वर्षतक स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त होता है। मन्वादि और युगादि तिथियोंमें गङ्गा-स्नानका जो फल बताया गया है, तीन मासके निरन्तर स्नानसे भी वही फल प्राप्त होता है। द्वादशीको श्रवण, अष्टमीको पुष्य और चतुर्दशीको आर्द्रा नक्षत्रका योग होनेपर गङ्गा-स्नान अत्यन्त दुर्लभ है। वैशाख, कार्तिक और माघकी पूर्णिमा और अमावास्या बड़ी पवित्र मानी गयी हैं। इनमें गङ्गा-स्नानका सुयोग अत्यन्त दुर्लभ है। कृष्णाष्टमी (भाद्रपद कृष्णा अष्टमी)-को गङ्गा-स्नान करनेसे (साधारण तिथिके स्नानकी अपेक्षा) सहस्रगुना फल होता है। सभी पर्वोंमें सौगुना पुण्य प्राप्त होता है। माघ कृष्णा अष्टमी तथा अमावास्याको भी गङ्गा-स्नानसे सौगुना पुण्य होता है। उक्त दोनों तिथियोंको सूर्यके आधा उदय होनेपर 'अर्धोदय' योग होता है और आधासे कुछ कम उदय होनेपर 'महोदय' कहा गया है। महोदयमें गङ्गा-स्नान करनेसे सौगुना और अर्धोदयमें लाखगुना पुण्य बताया गया है। देवि? फाल्गुन और आषाढ़ मासमें तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय किया हुआ गङ्गा-स्नान तीन मासके स्नानका फल देनेवाला है। अपने जन्मके नक्षत्रमें भक्तिभावसे गङ्गा-स्नान करनेपर आजन्म संचित पापोंका नाश हो जाता है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको व्यतीपातयोग तथा कृष्णाष्टमी (भाद्रपद कृष्णा अष्टमी)-को विशेषत: वैधृतियोग गङ्गा-स्नानके लिये दुर्लभ है। जो मनुष्य पूरे माघभर विधिपूर्वक अरुणोदयकालमें गङ्गा-स्नान करता है, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण रखनेवाला) होता है। इतना ही नहीं, वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका अर्थवेत्ता, ज्ञानी तथा नीरोग भी अवश्य होता है। संक्रान्तिमें, दोनों पक्षोंकी अन्तिम तिथिको तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें इच्छानुसार गङ्गा-स्नान करनेवाला मानव ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहणका स्नान लाखगुना बताया गया है और सूर्यग्रहणका स्नान उससे भी दस गुना अधिक माना गया है। वारुण-नक्षत्र (शतभिषा)-से युक्त चैत्र कृष्णा त्रयोदशी यदि गङ्गा-तटपर सुलभ हो जाय तो वह सौ सूर्यग्रहणके समान पुण्य देनेवाली है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको मङ्गलवार तथा हस्त नक्षत्रके योगमें भगवती भागीरथी हिमालयसे इस मर्त्यलोकमें उतरी थीं। इस तिथिको वह आद्यगङ्गा-स्नान करनेपर दसगुने पाप हर लेती हैं और अश्वमेधयज्ञका सौगुना पुण्य प्रदान करती हैं। 'हे जाह्नवी! मेरे जो महापातक-समुदायरूप पाप हैं, उन सबको तुम गोविन्द-द्वादशीके दिन स्नान करनेसे नष्ट कर दो।' यदि माघकी पूर्णिमाको मघा नक्षत्र

या बृहस्पतिका योग हो तो उक्त तिथिका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। यदि यह योग गङ्गाजीमें सुलभ हो तब तो सौ सूर्यग्रहणके समान पुण्य होता है।

अब देशविशेषके योगसे गङ्गा-स्नानका फल बतलाया जाता है। गङ्गाजीमें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रसे दसगुना पुण्य देनेवाली है; किंतु जहाँ वे विन्ध्याचल पर्वतसे संयुक्त होती हैं, वहाँ कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। काशीपुरीमें गङ्गाजीका माहात्म्य विन्ध्याचलकी अपेक्षा सौगुना बताया गया है। यों तो गङ्गाजी सर्वत्र ही दुर्लभ हैं, किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका माहात्म्य बहुत अधिक है। गङ्गाद्वारमें कुशावर्ततीर्थके भीतर स्नान करनेसे सात राजसूय और दो अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है। उस तीर्थमें पंद्रह दिन निवास करनेसे छः विश्वजित् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। साथ ही विद्वानोंने वहाँ रहनेसे एक लाख गोदानका पुण्य बताया है। कुशावर्तमें भगवान् गोविन्दका और कनखलमें भगवान् रुद्रका दर्शन-पूजन करनेसे अथवा इन स्थानोंमें गङ्गा-स्नान करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकालमें वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए थे, वहाँ स्नान करके मनुष्य सौ अग्निहोत्रका, दो ज्योतिष्टोम यज्ञका और एक हजार अग्निष्टोम यज्ञोंका पुण्य-फल पाता है। वहीं ब्रह्मतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष दस हजार ज्योतिष्टोम यज्ञोंका और तीन अश्वमेध-यज्ञोंका पुण्य प्राप्त करता है। मोहिनी! कुब्ज नामसे प्रसिद्ध जो पापनाशक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सम्पूर्ण रोग और सब जन्मोंके पातक नष्ट हो जाते हैं। हरिद्वारक्षेत्रमें ही एक दूसरा तीर्थ है, जो कापिलतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। शुभे! उसमें स्नान करनेवाला मानव अस्सी हजार कपिला गौओंके दानके समान पुण्य-फल पाता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। तदनन्तर पवित्र नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें परम उत्तम है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दो विश्वजित् यज्ञोंका पुण्य पाता है। तदनन्तर वेणीराज्य नामक तीर्थ है, जहाँ महापुण्यमयी सरयू उत्तम पुण्यस्वरूपा गङ्गासे इस प्रकार मिली हैं, जैसे एक बहिन अपनी दूसरी बहिनसे मिलती है। भगवान् विष्णुके दाहिने चरणारविन्दके पखारनेसे देवनदी गङ्गा प्रकट हुई हैं और बायें चरणसे मानस-नन्दिनी सरयूका प्रादुर्भाव हुआ है। उस तीर्थमें भगवान् शिव और विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष विष्णुस्वरूप हो जाता है। वहाँका स्नान पाँच अश्वमेध-यज्ञोंका फल देनेवाला बताया गया है। तत्पश्चात् गाण्डवतीर्थ है, जहाँ गङ्गासे गण्डकी नदी मिली है। वहाँका स्नान और एक हजार गौओंका दान दोनों बराबर हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जिसके समीप पुण्यमय वैकुण्ठ है। तत्पश्चात् परम पवित्र सोमतीर्थ है, जहाँ नकुल मुनि भगवान् शिवकी पूजा करके उनका ध्यान करते हुए गणस्वरूप हो गये। उसके बाद चम्पक नामक पुण्य तीर्थ है, जहाँ गङ्गाकी धारा उत्तर दिशाकी ओर बहती है। उसे मणिकर्णिकाके समान महापातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। तदनन्तर कलश-तीर्थ है, जहाँ कलशसे मुनिवर अगस्त्य प्रकट हुए थे। वहीं भगवान् रुद्रकी आराधना करके वे श्रेष्ठ मुनीश्वर हो गये। इसके बाद परम पुण्यमय सोमद्वीप-तीर्थ है, जिसका महत्त्व काशीपुरीके समान है। वहाँ भगवान् शङ्करकी आराधना करनेवाले चन्द्रमाको भगवान् रुद्रने सिरपर धारण किया था। यहीं विश्वामित्रकी भगिनी गङ्गामें मिली हैं। उसमें गोता लगानेवाला मनुष्य इन्द्रका प्रिय अतिथि होता है। मोहिनी! जह्नुकुण्ड नामक महातीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारक

होता है। सुभगे! तदनन्तर अदिति-तीर्थ है, जहाँ अदितिने कश्यपसे भगवान् विष्णुको वामनरूपमें प्राप्त किया था। वहाँ किये जानेवाले स्नानका फल महान् अभ्युदय बताया गया है। तत्पश्चात् शिलोच्चय नामक महातीर्थ है, जहाँ तपस्या करके समस्त प्रजा तृण आदिके साथ स्वर्गको चली जाती है; क्योंकि वह स्थान अनेक तीर्थोंका आश्रय है। तदनन्तर इन्द्राणी नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्राणीने तपस्या करके इन्द्रको पतिरूपमें प्राप्त किया था। यह स्थान प्रयागके तुल्य सेवन करने योग्य है। उसके बाद पुण्यदायक स्नातक तीर्थ है, जहाँ क्षत्रिय विश्वामित्रने तपस्या करके तीर्थ-सेवनके प्रभावसे ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त किया था। तत्पश्चात् प्रद्युम्न-तीर्थ है, जो तपस्याके लिये प्रसिद्ध है। वहाँ कामदेव तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रद्युम्न नामक पुत्र हुए। उस तीर्थमें स्नान करनेसे महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर दक्षप्रयाग है, जहाँ गङ्गासे यमुना मिली हैं। वहाँ स्नान करनेसे प्रयागकी ही भाँति अक्षय पुण्य होता है।

## गङ्गाजीके तटपर किये जानेवाले स्नान, तर्पण, पूजन तथा विविध प्रकारके दानोंकी महिमा

**पुरोहित वसु कहते हैं**—राजपत्नी मोहिनी! अब गङ्गाजीमें स्नान-तर्पण आदि कर्मोंका फल बतलाया जाता है। देवि! यदि गङ्गाजीके तटपर संध्योपासना की जाय तो द्विजोंको पवित्र करनेवाली गायत्रीदेवी किसी साधारण स्थानकी अपेक्षा वहाँ लाख गुना पुण्य प्रकट करनेमें समर्थ होती हैं। मोहिनी! यदि पुत्रगण श्रद्धापूर्वक गङ्गाजीमें पितरोंको जलाञ्जलि दें तो वे उन्हें अक्षय तथा दुर्लभ तृप्ति प्रदान करते हैं। गङ्गाजीमें तर्पण करते समय मनुष्य जितने तिल हाथमें लेता है, उतने सहस्र वर्षोंतक पितृगण स्वर्गवासी होते हैं। सब लोगोंके जो कोई भी पितर पितृलोकमें विद्यमान हैं, वे गङ्गाजीके शुभ जलसे तर्पण करनेपर परम तृप्तिको प्राप्त होते हैं। शुभानने! जो जन्मकी सफलता अथवा संतति चाहता है, वह गङ्गाजीके समीप जाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। जो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होकर दुर्गतिमें पड़े हैं, वे अपने वंशजोंद्वारा कुश, तिल और गङ्गाजलसे तृप्त किये जानेपर वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। जो कोई पुण्यात्मा पितर स्वर्गलोकमें निवास करते हैं, उनके लिये यदि गङ्गाजलसे तर्पण किया जाय तो वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। जो मनुष्य गङ्गाजीमें स्नान करके प्रतिदिन शिवलिङ्गकी पूजा करता है, वह निश्चय ही एक ही जन्ममें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अग्निहोत्र, वेद तथा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी गङ्गाजीपर शिवलिङ्ग-पूजाके करोड़वें अंशके बराबर भी नहीं हैं। जो पितरों अथवा देवताओंके उद्देश्यसे गङ्गाजलद्वारा अभिषेक करता है, उसके नरकनिवासी पितर भी तत्काल तृप्त हो जाते हैं। मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा ताँबेके घड़ेसे किया हुआ स्नान दसगुना उत्तम माना गया है। इसी प्रकार अर्घ्य, नैवेद्य, बलि और पूजा आदिमें भी क्रमशः समझने चाहिये। उत्तरोत्तर पात्रमें विशेषता होनेके कारण फलमें भी विशेषता होती है। जो धन होते हुए भी मोहवश विस्तृत विधिका पालन नहीं करता, वह उस कर्मके फलका भागी नहीं होता।

देवताओंका दर्शन पुण्यमय होता है। दर्शनसे स्पर्श उत्तम है। स्पर्शसे पूजन श्रेष्ठ है और पूजनमें भी घृतके द्वारा कराया हुआ देवताका स्नान परम

उत्तम माना गया है। गङ्गाजलसे जो स्नान कराया जाता है, उसे विद्वान् पुरुष घृतस्नानके ही तुल्य कहते हैं। जो ताँबेके पात्रमें मगधदेशीय मापके अनुसार एक प्रस्थ गङ्गाजल रखकर उसमें दूसरे-दूसरे विशेष द्रव्य मिलाकर उस मिश्रित जलके द्वारा अपने पितरोंसहित देवताओंको एक बार भी अर्घ्य देता है, वह पुत्र-पौत्रोंके साथ स्वर्गलोकको जाता है। जल, क्षीर, कुशाग्र, घृत, दधि, मधु, लाल कनेरके फूल तथा लाल चन्दन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त अर्घ्य सूर्यके लिये देनेयोग्य कहा गया है। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजीके तटपर भगवान् विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा ब्रह्माजीकी स्थापना करता है और अपनी शक्तिके अनुसार उनके लिये मन्दिर बनवाता है, उसे अन्य तीर्थोंमें यह सब करनेकी अपेक्षा गङ्गाजीके तटपर कोटि-कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन गङ्गाजीके तटकी मिट्टीसे यथाशक्ति उत्तम लक्षणयुक्त शिवलिङ्ग बनाकर उनकी प्रतिष्ठा करके मन्त्र तथा पत्र-पुष्प आदिसे यथासाध्य पूजा करता और अन्तमें विसर्जन करके उन्हें गङ्गामें ही डाल देता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो नरश्रेष्ठ सर्वानन्ददायिनी गङ्गाजीमें स्नान करके भक्तिपूर्वक '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करता है, मुक्ति उसके हाथमें ही आ जाती है। जो नियमपूर्वक छः मासतक गङ्गाजीमें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रका जप करता है, उसके पास सब सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। जो गङ्गाजीके समीप प्रणवसहित '**नमः शिवाय**' मन्त्रका विधिपूर्वक चौबीस लाख जप करता है, वह साक्षात् शङ्कर (-के समान) है। '**नमः शिवाय**'—यह पञ्चाक्षरी मन्त्र सिद्ध-विद्या है। उसको जपनेवाला साक्षात् शिव (-के समान) ही है, इसमें संशय नहीं है। '**अपवित्रः पवित्रो वा**'[१]—इस मन्त्रका जप करनेवाला पुरुष पातकरहित हो जाता है। गङ्गाजीके पूजित होनेपर सब देवताओंकी पूजा हो जाती है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके देवनदी गङ्गाकी पूजा करनी चाहिये। गङ्गाजीके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। वे सम्पूर्ण अङ्गोंसे सुशोभित होती हैं। उनके एक हाथमें रत्नमय कलश, दूसरेमें श्वेत

कमल, तीसरेमें वर और चौथेमें अभय है। वे शुभ-स्वरूपा हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर श्वेत वस्त्र सुशोभित होता है। मोती और मणियोंके हार उनके आभूषण हैं। उनका मुख परम सुन्दर है। वे सदा प्रसन्न रहती हैं। उनका हृदय-कमल करुणारससे सदा आर्द्र बना रहता है। उन्होंने वसुधापर सुधाधारा बहा रखी है। तीनों लोक सदा उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार जलमयी गङ्गाका ध्यान करके उनकी पूजा करनेवाला पुरुष पुण्यका भागी होता है। जो इस प्रकार पंद्रह दिन भी निरन्तर पूजा करता है, वही देवताओंके समान हो जाता है और दीर्घकालतक पूजा करनेसे फलमें भी अधिकता होती है। पूर्वकालमें राजा

१. अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

जह्नुने वैशाख शुक्ला सप्तमीको क्रोधपूर्वक गङ्गाजीको पी लिया था और फिर अपने कानके दाहिने छिद्रसे उन्हें निकाल दिया। शुभानने! उस स्थानपर आकाशकी मेखलारूप गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। वैशाख मासकी अक्षयतृतीयाको तथा कार्तिकमें भी रातको जागरण करते हुए जौ और तिलसे भक्तिभावपूर्वक विष्णु, गङ्गा और शिवकी पूजा करनी चाहिये। उक्त सामग्रियोंके सिवा उत्तम गन्ध, पुष्प, कुंकुम, अगरु, चन्दन, तुलसीदल, बिल्वपत्र, बिजौरा नीबू आदि, धूप, दीप और नैवेद्यसे वैभव-विस्तारके अनुसार पूजा करनी उचित है। गङ्गाजीके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजा आदि सब कर्म कोटि-कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो अक्षयतृतीयाको गङ्गाजीके तटपर विधिपूर्वक घृतमयी धेनुका दान करता है, वह पुरुष सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न हो हंस-भूषित सुवर्ण-रत्नमय विचित्र विमानपर बैठकर अपने पितरोंके साथ कोटिसहस्र एवं कोटिशत कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो (कभी) गङ्गातटपर शास्त्रीय विधिसे गोदान करता है, वह उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। यदि गङ्गातटपर वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक कपिला गौका दान दिया जाय तो वह गौ नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंको तत्काल स्वर्ग पहुँचा देती है। जो गङ्गातटपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा सूर्यभगवान्‌की प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंको ग्रामदान करता है, उसे सम्पूर्ण दानोंका जो पुण्य है, समस्त यज्ञोंका जो फल है तथा सब प्रकारके तप, व्रत और पुण्यकर्मोंका जो फल बताया गया है, वह सहस्रगुना होकर मिलता है। उस दानके प्रभावसे दाता पुरुष करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर अपनी रुचिके अनुसार श्रीविष्णुधाममें अथवा श्रीशिवधाममें प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा-विहार करता है। देवता उसकी स्तुति करते रहते हैं। देवि! जो अक्षयतृतीयाके दिन गङ्गातटपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको सोलह मांशा सुवर्ण दान करता है, वह भी दिव्यलोकोंमें पूजित होता है। अन्नदान करनेसे विष्णुलोककी और तिलदानसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। रत्नदानसे ब्रह्मलोक, गोदान और सुवर्णदानसे इन्द्रलोक तथा सुवर्णसहित वस्त्रदानसे गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। विद्यादानसे मुक्तिदायक ज्ञान पाकर मनुष्य निरञ्जन ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

## एक वर्षतक गङ्गार्चन-व्रतका विधान और माहात्म्य, गङ्गातटपर नक्तव्रत करके भगवान् शिवका पूजन, प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको शिवाराधन तथा गङ्गा-दशहराके पुण्य-कृत्य एवं उनका माहात्म्य

**पुरोहित वसु बोले**—मोहिनी? एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। दिव्यस्वरूपा गङ्गादेवीका ध्यान करके एक सेर अगहनीके चावलको दो सेर दूधमें पकाकर खीर तैयार करावे, उसमें मधु और घी मिला दे, वे दोनों पृथक्-पृथक् एक-एक तोला होने चाहिये। तदनन्तर भक्तिभावसे परिपूर्ण हो खीर, पूआ, लड्डू, मण्डल, आधा गुंजा सुवर्ण, कुछ चाँदी, चन्दन, अगरु, कर्पूर, कुंकुम, गुग्गुल, बिल्वपत्र, दूर्वा, रोचना, श्वेत चन्दन, नील कमल तथा अन्यान्य सुगन्धित पुष्प यथाशक्ति गङ्गाजीमें छोड़े और अत्यन्त भक्तिभावसे निम्नाङ्कित पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करता रहे—'**ॐ गङ्गायै नमः**', **ॐ नारायण्यै नमः**, **ॐ शिवायै नमः**।' मोहिनी!

प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको प्रात:-काल एकाग्रचित्त हो इसी विधिसे गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य एक वर्षतक हविष्यभोजी, मिताहारी तथा ब्रह्मचारी रहकर दिनमें अथवा रात्रिके समय नियमपूर्वक भक्ति और प्रसन्नताके साथ यथाशक्ति गङ्गाजीकी पूजा करता है, उसे वर्षके अन्तमें ये गङ्गादेवी दिव्य शरीर धारण करके दिव्य माला, दिव्य वस्त्र तथा दिव्य रत्नोंसे विभूषित हो प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं और वर देनेके लिये उसके सामने खड़ी हो जाती हैं। शुभे! इस प्रकार दिव्य देहधारिणी प्रत्यक्षरूपा गङ्गाजीका अपने नेत्रोंसे दर्शन करके मनुष्य कृतकृत्य होता है। वह मानव जिन-जिन भोगोंकी कामना करता है, उन सबको प्राप्त कर लेता है और जो ब्राह्मण निष्कामभावसे गङ्गाकी आराधना करता है, वह उसी जन्ममें मोक्ष पा जाता है। गङ्गाजीके पूजनका यह सावंत्सरव्रत भगवान् लक्ष्मीपतिको संतुष्ट करनेवाला एवं मोक्ष देनेवाला है।

**वसिष्ठजी कहते हैं**—राजेन्द्र! वसुका यह गङ्गामाहात्म्यसूचक वचन सुनकर मोहिनीने पुन: अपने पुरोहित विप्रवर वसुसे पूछा।

**मोहिनी बोली**—ब्रह्मन्! गङ्गाजीके तटपर गङ्गा आदिके स्थापन और पूजनका क्या फल है? मुझ अबलाको गङ्गाजीके माहात्म्यसे युक्त देवाराधनकी विधि बताइये, जिसे सुनकर पापसे छुटकारा मिल जाता है।

**पुरोहित वसु बोले**—देवि! तुमने सब लोकोंके हितकी कामनासे बहुत उत्तम बात पूछी है। गङ्गाजीका सम्पूर्ण माहात्म्य बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें वृषध्वज भगवान् शिवने कृपापूर्वक इसका वर्णन किया था। देवी पार्वतीने प्रेमपूर्वक उनसे प्रश्न किया था और उन्होंने गङ्गाजीके तटपर बैठकर गङ्गाजीका माहात्म्य उन्हें सुनाया था। देवताओंने पूर्वाह्नकालमें, ऋषियोंने मध्याह्नकालमें, पितरोंने अपराह्नकालमें तथा गुह्यक आदिने रात्रिके प्रथम भागमें भोजन किया है। इन सब वेलाओंका उल्लंघन करके रातमें भोजन करना उत्तम है। अत: नक्तव्रतका आचरण करना चाहिये। रातको भोजन करनेवाले नक्त-व्रतीको ये छ: कर्म अवश्य करने चाहिये—स्नान, हविष्य-भोजन, सत्यभाषण, स्वल्पाहार, अग्निहोत्र तथा भूमिशयन। जो कोई भी साधक हो, वह माघ मासमें गङ्गातटपर शिव-मन्दिरके समीप रातमें घी मिलायी हुई खिचड़ी भोजन करे। भोजन आरम्भ करनेसे पहले भगवान् शिवको खिचड़ीका ही नैवेद्य लगावे। काष्ठ-मौन होकर भोजन करे और जिह्वाकी लोलुपता त्याग दे। भगवान् शिवको स्मरण करके जितेन्द्रियभावसे पलाशके पत्तेमें नियमपूर्वक भोजन करे। धर्मराज तथा देवीके लिये पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीको उपवास करे। पूर्णिमाके दिन गन्ध और गङ्गाजलसे तथा दूध, दही, घी, शहद (और शर्करा)-से भगवान् शिवको नहलाकर शिवलिङ्गके मस्तकपर धतूरका फूल चढ़ावे। तत्पश्चात् यथाशक्ति घीका पकाया हुआ पूआ निवेदन करे। फिर एक आढक तिल लेकर शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ावे। नील तथा लाल कमलके फूलोंसे सर्वेश्वर शिवका पूजन करे। कमलका फूल न मिले तो सुवर्णमय कमलसे महादेवजीकी पूजा करे। मधुयुक्त खीरका भोग लगावे। घृतमिश्रित गुग्गुलका धूप दे। घीका दीपक जलावे। चन्दन आदिसे अनुलेपन करे। भक्तिपूर्वक महेश्वरको बिल्वपत्र और फल चढ़ावे। उनकी प्रसन्नताके लिये काले रंगकी गौ और काले रंगका बैल दान करे। उन गाय-बैलोंकी शकल-सूरत एक-सी होनी चाहिये। माघ मास व्यतीत होनेपर आठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे। इस प्रकार यम-नियम, श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होकर जो एक बार भी शास्त्रीय विधिसे इस व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोगोंको भोगता है और मृत्युके पश्चात् परम उत्तम गतिका भागी होता है।